

080150

080150

वेज्ञान-लोक

080150



080150



७५
नये पैसे

तत्त्व	५
—सुरेशसिंह	
हमपात और तुषारवर्षा	१०
—दीनानाथ भार्गव	
म्बाकू की कहानी	१४
—अनिलचन्द्र	
गरापुंज और नीहारिकाएँ	१८
—जगदीशचन्द्र गोविल	
गारहीनियस	२४
—सत्यकुमार	
ये पुराने, पुराने नये होते हैं	२७
—कुमारी सरला	
अनजाने बिखरे तत्त्व	३२
—दिनेशकुमार गौतम	
काम बड़े, दर्शन छोटे	३५
—ओमशंकर बाजपेयी	
गरीर की इकाई—कोशिका	४२
—कौशलेन्द्रमोहन तिवारी	
सन्कोना	४८
—जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव	
चन्द्रमा पर मानव के चरण	५१
—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	
स्थायी स्तम्भ	
विचित्र संसार	३६
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	४७
विज्ञान-क्लब	५७
इनाम लो	६१
प्रापके प्रश्न	६२
तुम्हारी कलम से	६४

इस अंक के साथ विज्ञान-लोक अपना तृतीय वर्ष पूर्ण कर रहा है। इन तीन वर्षों में हमें अपने लेखकों और पाठकों से जो सहयोग मिला है उसके लिए हम आभारी हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में और भी अधिक सहयोग मिलता रहेगा।

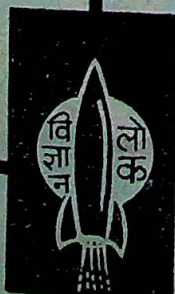
पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उक्त गोष्ठी में चर्चाओं और विचार-विमर्श का वातावरण स्वस्थ, विचारोत्तेजक और नवीन दिशाओं का सूचक रहा। उसमें अनेक उपयोगी तथ्य सामने आये। उल्लेखनीय एक यह भी था कि विविध वैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग जनसाधारण के लिए अवश्य किया जाना चाहिए अन्यथा केवल प्रयोगों तक ही सीमित रहनेवाले अनुसंधान प्रायः व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

उसी गोष्ठी में एक सुभाव यह भी था कि कम से कम इस राष्ट्रीय संकट के समय तो हम बातें कम और काम अधिक करें। निस्सन्देह यह सुभाव अत्यन्त उपयोगी और समयोचित है। जब तक हम पूरी लगन और तत्परता से काम नहीं करेंगे, हम किसी भी मोर्चे पर जीत न सकेंगे; चाहे वह मोर्चा युद्ध का हो, गरीबी, बेकारी, या भुखमरी-उन्मूलन का हो अथवा अपने प्रगति-पथ का ही हो।

विज्ञान-लोक आशा करता है कि राष्ट्र का जन-जन इस सत्य को समझेगा और युद्ध-स्तर पर अपने-अपने कार्य में पूरी लगन से जुटा रहेगा।

वर्ष ३

अंक १२



मूल्य

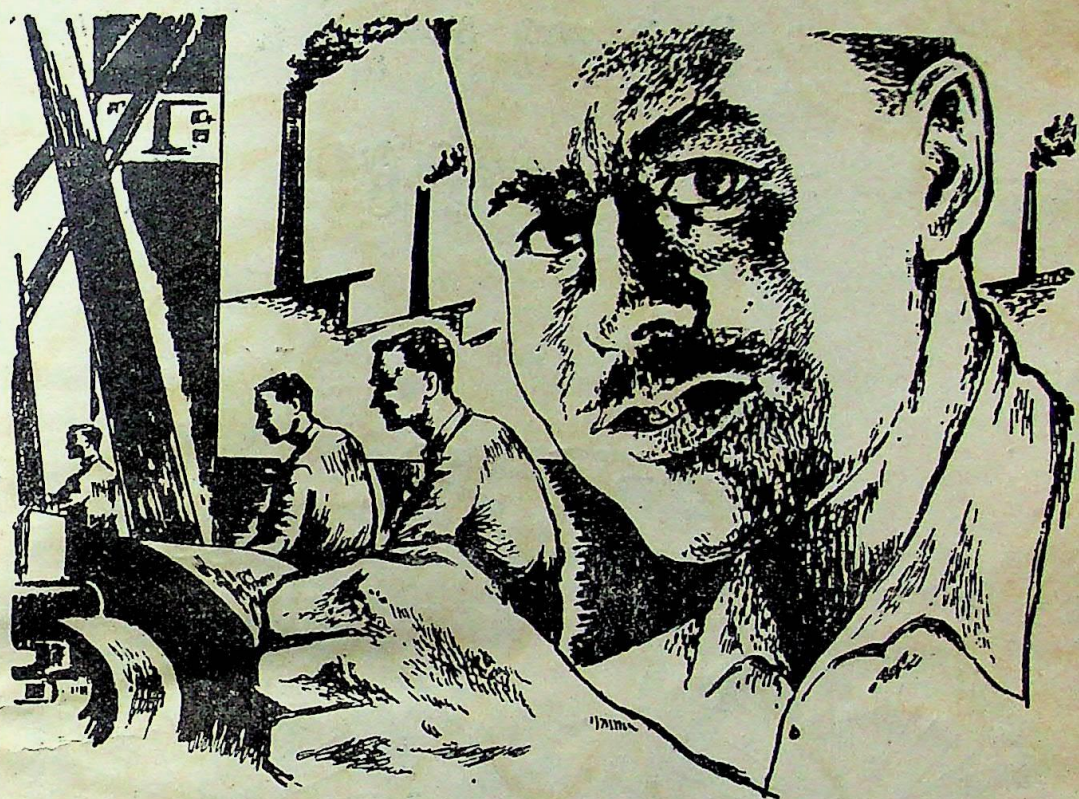
प्रति : ७५ नये पैसे

षक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा



जीत के लिए जी-तोड़ मेहनत

विजय के लिए आपका काम भी बहुत जरूरी है। मातृभूमि की रक्षा के लिए हमारी सीमा पर लड़ रही सेनाओं को सुदृढ़ करने, राष्ट्र को अधिक साधन सम्पन्न बनाने और सभी मोर्चों पर प्रहार-शक्ति सबल करने के लिए प्रत्येक को उत्पादन बढ़ाने के वास्ते जी-तोड़ मेहनत करना आवश्यक है।

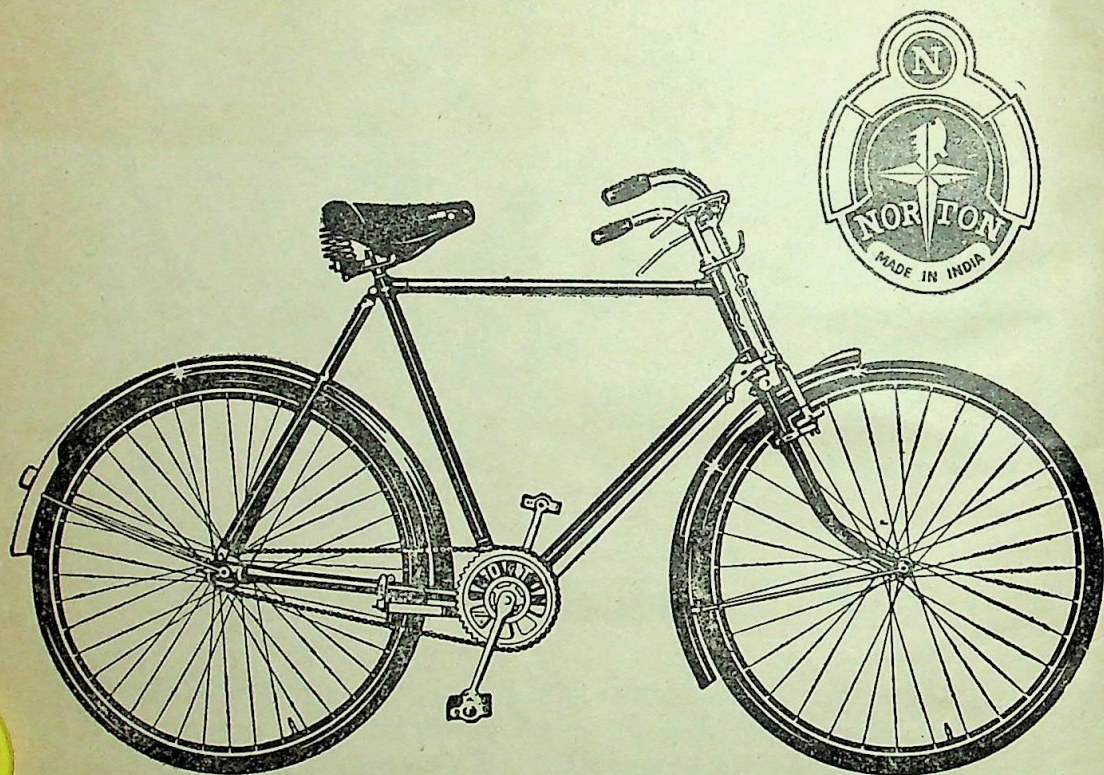
चाहे विशाल औद्योगिक-कारखाना हो या मशीन शॉप, चाहे फाउन्ड्री हो अथवा खराद, सभी प्रकार का काम करने वाले लोगों को उत्पादकता बढ़ाने और अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक परिश्रम करने का समय आ पहुंचा है। हमें इस बात का पक्का इंतजाम करना है कि सैनिक मोर्चों तक और देश की अन्दरूनी जरूरतों के लिए आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई का प्रवाह निरन्तर और निर्विघ्न चलता रहे।

**हर नागरिक
एक
सैनिक है**

**खूब उत्पादन बढ़ा कर
रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करने
के लिए**

हलकी - दौड़नेवाली नॉर्टन

सायकिलें आसानीसे चलती हैं !



उत्तम कारीगारी द्वारा बने कल-पुर्जों से युक्त नॉर्टन सायकिलें जीवन भर, आपका साथ देती हैं।

बिना प्रयास पैडलिंग के लिए नॉर्टन की सवारी कीजिए।

अन्य प्रसिद्ध ब्राण्ड



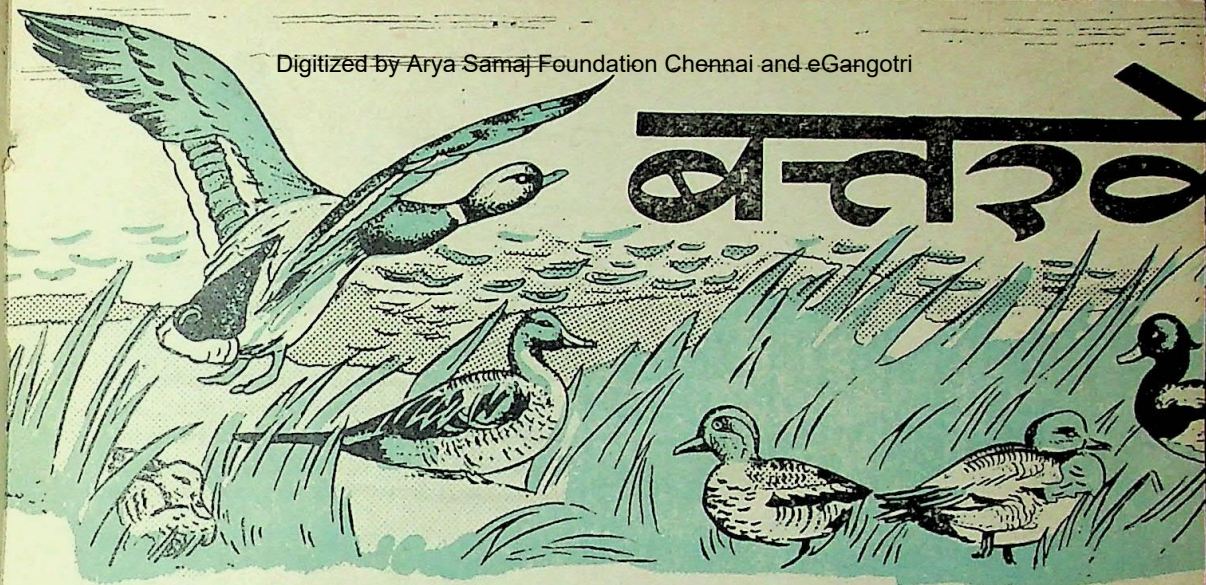
रॉयल स्टार, एडमिरल और हिन्द

ASP/HC-190 HIN

उत्तर प्रदेश एवम् बिहार के विक्रय-व्यवस्थापक

मैसर्स जवाहरकांता

३, विधानसभा मार्ग, लखनऊ



सुरेशसिंह

जाड़ा आया नहीं कि हमारे यहाँ के जलाशय बत्तखों से गुंजरित हो उठते हैं। ये रंग-बिरंगी बत्तखें उत्तर की ओर से आती हैं और जाड़ा समाप्त होते-होते हमारे जलाशयों को खाली भी कर जाती हैं। सितम्बर के आरम्भ में उत्तर की ओर से आती हुई ये बत्तखें दक्षिण की ओर बढ़ती जाती हैं। लंका तक पहुँचकर पुनः उत्तर की ओर घूम पड़ती हैं और मार्च समाप्त होते-होते जैसी आयी थीं, वैसी ही चली जाती हैं। इनका परिव्रजन का यह क्रम अटूट चलता ही रहता है।

यहाँ आनेवाली बत्तखें दो प्रकार की होती हैं—ऋतुकालिक और बारहमासी। ऋतुकालिक बत्तखें वे हैं जो ऊपर लिखे अनुसार ऋतु-विशेष में ही आती-जाती हैं और बारहमासी वे हैं जो बारहों महीने यहाँ बनी रहती हैं। जाड़ों में एकत्र हुई कुल बत्तखों में से स्थानीय बत्तखें अल्पसंख्यक होती हैं और अतिथि-बत्तखें बहुसंख्यक। वृहत् शरीर की नर बत्तख 'बत' कहलाती है। यही वास्तव में हमारा कलहंस है। इसकी भी अनेक जातियाँ हैं; किन्तु हमारे देश में तो सवन अर्थात् सोनहंस (Barred-headed goose) ही अधिक

संख्या में आते हैं। ये हंस श्वेत आभायुक्त हलके स्लेटी रंग के होते हैं। इनके सिर पर गहरे भूरे रंग की दो चौड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। लम्बाई में ये करीब ढाई फुट के होते हैं। इनकी गर्दन हंस जैसी लम्बी होती है।

छोटी बत्तखें भी कम संख्या में नहीं होतीं। ये पचासों जाति की होती हैं। बारहमासी श्रेणी में पाँच प्रकार की बत्तखें होती हैं: (१) नकटा (comb duck), (२) गिर्री (cotton teal), (३) छोटी सिलही (Lesser whistling teal), (४) बड़ी सिलही (Larger w. teal) और (५) बेर (Spotted bill)। इनकी पहिचानें इस प्रकार हैं: नकटा की चोंच पर उठा

यही वास्तव में हमारा कलहंस है



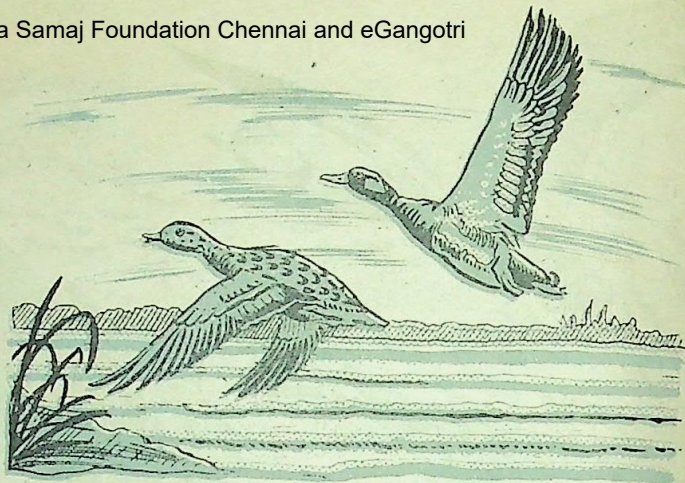
हुआ कुब्जक; बेर की चौंच पर पीले बेर जैसे दो निशान; गिरी का छोटा कद और दोनों सिलहियों के शरीर का नारंगी रंग। गिरी के अतिरिक्त शेष चारों प्रकार की बत्तखें पेड़ों पर भी रहने की अभ्यस्त हैं। वहीं वे अपने अंडे भी देती हैं।

ऋतुकालिक बत्तखों में प्रमुख हैं : सुर्खाब अर्थात् चकवा-चकवी (Ruddyshe Drake), सीख-पर अर्थात् पुछार (Pintail) और नीलसर (Mallard)। सुर्खाब को चक्रवाक भी कहते हैं। यही वह नारंगी रंग का हंसों का जोड़ा है जिसके बारे में कवियों ने कल्पना की है कि यह जोड़ा रातों को बिछुड़ जाता है और दिन निकलने पर ही मिलता है। प्राणी-विज्ञान इस कल्पना का समर्थन नहीं करता। यह अवश्य है कि अधिकतर इसका जोड़ा दिन में ही दिखायी पड़ता है।

सीखपर बत्तख को यह नाम इसलिए दिया गया है कि इसकी पूँछ के पीछे सीख-नुमा पतले और नुकीले, दो अतिरिक्त पंख निकले रहते हैं। नीलसर नाम तो नीले रंग के सिर से ही स्पष्ट है।

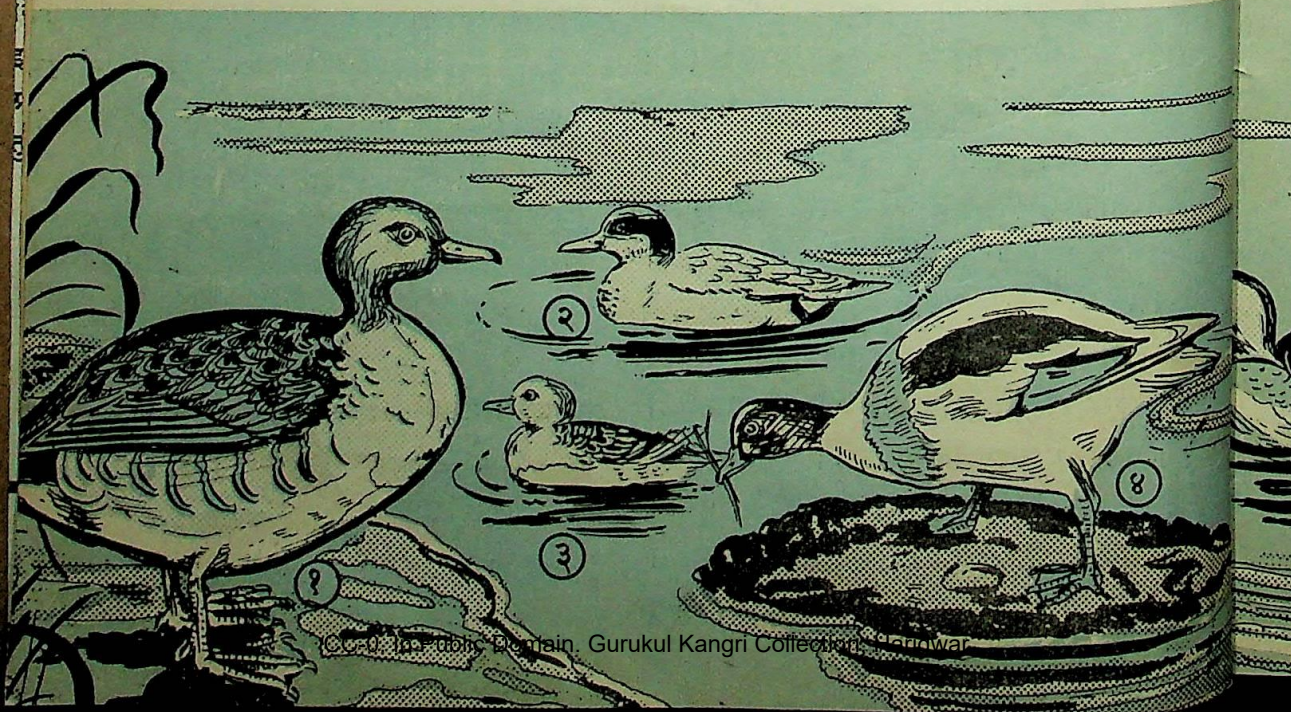
छोटी बत्तखों में मुख्यतः चैती (Common teal), मैल (Gadwall),

बत्तखों की अपनी दुनिया : १. पनडुब्बी बत्तख (करछिया), २. चैती, ३. ४. शाहचकवा,



बत्तखों का उड़ना, इनका अपना कौशल है जो सबसे निराला है तिदारी (Shoveller) और पतेरा (Wigeon) हैं। इनमें चैती अधिक प्रसिद्ध है। चैती और चैतवा एक ही शक्लसूरत के होते हैं। इनके डैनों के मध्य एक चौड़ी हरी पट्टी रहती है। मैल बत्तख तो नाम से ही स्पष्ट है कि मटमैली होती है। तिदारी की चौंच चौड़ी, खुरपी सरीखी होती है। पतेरा बत्तख कद में छोटी मगर सुडौल होती है। इसके नर-बत का सिर लाल रंग का होता है।

इन सबसे अलग, पनडुब्बी जाति की भी बत्तखें होती हैं। वे पानी में १००-१५० फुट तक गहरी डुबकी लगाने तथा तैरने में बड़ी कुशल होती हैं। इनमें भी लाल-सर (Red headed pochard) तथा



करछिया अथवा बुडार (White-eyed pochard) जाति की होती हैं। लालसर तो स्वभावतः ही लाल सिरवाली होती हैं जबकि बुडार वत्तखें काली तथा सफेद होती हैं। इनके सिर पर पीछे की ओर एक कलगी सी लगी रहती है। इन्हीं में छोटी पनडुब्बी (Little grebe) तथा बड़ी पनडुब्बी (Crested grebe) नामक वत्तखें भी होती हैं।

वत्तखों का उड़न-कौशल सच-मुच विलक्षण है। ये चीलों की तरह पंख फैलाकर हवा में नहीं उतरातीं, बल्कि तेजी से पर मारती हुई उड़ती रहती हैं। उतरते समय अपने पंखों की गति को रोककर गोलाकार उतराती हुई तालाब किनारे उतर पड़ती हैं।

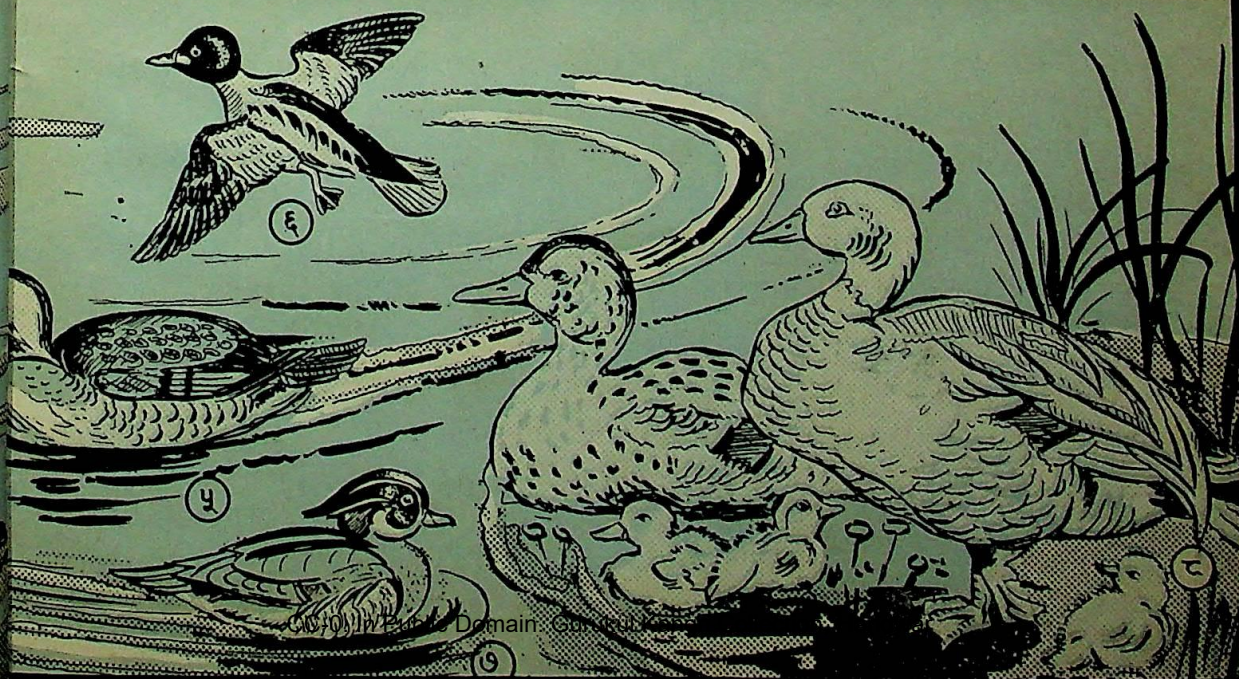
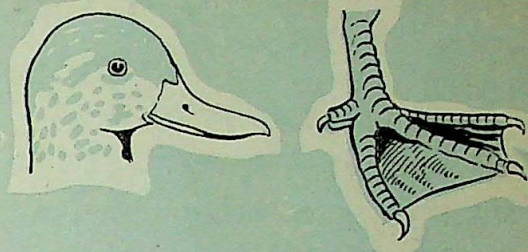
इनके पांवों की रचना इनकी जीवन-क्रिया के अनुरूप ही होती है। इन्हें पानी में भी अधिक रहना पड़ता है, अतः इनकी अंगुलियाँ एक झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। इससे इन्हें पानी में तैरने में सुविधा रहती है। इनकी चोंच चपटी होती है उसमें ऊपर नीचे बारीक दाँते से होते हैं। उसी के सहारे ये घास-पतवार जैसा अपना भोजन आसानी से नोच लेती हैं।

इनके सहजीवन में ऋतुकालिक क्रिया

प्रकृति ने वत्तख को चोंच और पंजे उसकी जीवन-क्रिया के अनुकूल ही दिये हैं। चोंच ऐसी जो कीचड़ पानी अथवा दलदल से अपना शिकार, अपना भोजन लपक सके और झिल्ली से जुड़े हुए पाँव ऐसे, जो इसके अधिकांश जल-जीवन के अनुरूप हों, तैरने में सुविधापूर्ण हों

एक ऐसी विशेषता है जो इनकी अपनी हो है, अन्य प्राणियों में नहीं मिलती। जब घोंसला बनाने और अण्डे देने का समय आता है तब एकाएक तो आप इनके नर-मादा को पहिचान भी न सकेंगे। नर-वत अपने चटकीले-चमकीले परों को गिराकर मटमैले पर धारण कर लेता है। इसकी उस अवस्था को ग्रहणावस्था (eclipsing) कहते हैं। उसे यह ग्रहण ग्रीष्म के मध्यकाल से लग जाता है। उन चमकीले परों में उसके उड़नेवाले पंख भी साथ ही भड़ जाते हैं। अब तो उसे अपने घोंसले की रक्षा करनी होती है न ! इस विचित्रता का पूरा हल अभी भी विज्ञान को नहीं मिल पाया है,

५. अमरीकन (बुड-डक) ६. सोंखपर ७. सब्जपरी (ग्रीनविंग) ८. सुर्खाब (चक्रवाक)



उत्तर रेलवे

सूचना

वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति के कारण निम्नांकित रियाज्रतें
दिनांक १ जनवरी १९६३ से बन्द कर दी जायेंगी :

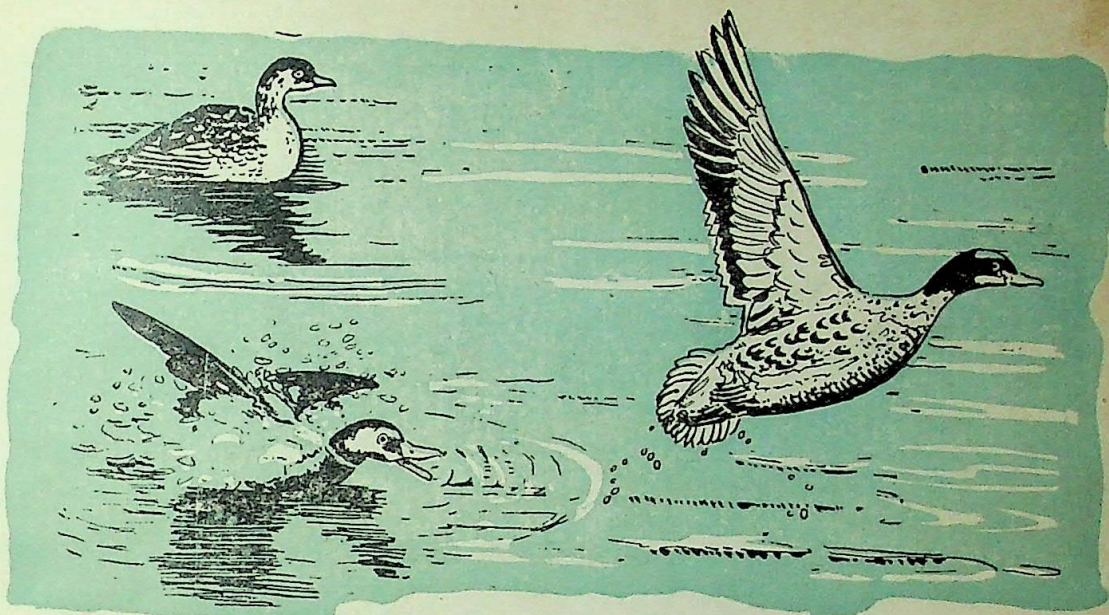
आई. आर. सी. ए. कोचिंग

टैरिफ नं. १८ के नियम नं. ४०१

जिन पर यह सूचना लागू होगी

के अनुबन्ध की क्रम संख्या

- | | | |
|-------|-------|---|
| १, २. | | भारतीय एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं तथा समस्त खेल-कूद, एथलेटिक स्पोर्ट्स आदि । |
| ३. | | पोलो की टीमों । |
| ४. | | गणतन्त्र-समारोह तथा आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित होनेवाले, मान्य व्यावसायिक मनोरंजन-दल, समूह तथा कलाकार आदि । |
| ७. | | शैक्षणिक प्रयोजन के लिए यात्रार्थी भारतीय एवं विदेशी छात्रगण । |
| ८. | | भारत में विद्यार्जन करते हुए विदेशी छात्रगण । |
| ९. | | न्यायशास्त्र के शिक्षार्थी छात्रगण । |
| १८. | | सामुदायिक योजनाओं में भाग लेनेवाले अवैतनिक कार्य-कर्तागण, विद्यार्थियों सहित । |
| १९. | | सर्विस सिविल इण्टरनेशनल के स्वयंसेवकगण । |
| २०. | | राष्ट्र की प्रसार-सेवाओं में अवैतनिक सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा उनके दल । |
| २१. | | किसानों एवं औद्योगिक श्रमिकों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० व्यक्तियों का) । |
| २२. | | राज्य विधान सभा के सदस्यों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० सदस्यों का) । |
| २४. | | प्राइमरी, सैकण्डरी, हाईस्कूल तथा हायर सैकण्डरी स्कूलों के अध्यापक एवं मान्य अनाथालयों के शिक्षक । |
| २५. | | कामनवेल्थ पार्लमेण्टरी एसोसिएशन की समस्त शाखाओं के सदस्य और उनके परिवार । |
| २६. | | शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व की अखिल भारतीय संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा समय-समय पर रेलवे बोर्ड द्वारा दी जानेवाली एतदर्थ (एडहॉक) रियाज्रतें । |
| २८. | | मान्यता प्राप्त अजायबघरों (पशुसंग्रहालयों) के लिए भेजे जानेवाले जानवर तथा परिन्दे । |
| २९. | | प्रदर्शनी के लिए भेजे जानेवाले कुत्ते, तीतर, बटेर, मुर्गियाँ तथा अन्य परिन्दे । |



शरद् का प्रारम्भ । नीलसर-युगल जलक्रीड़ा-मग्न । गर्मियों में भड़े हुए पंख नये उग आए हैं । ऋतु-सहवास के भी दिन हैं । किसी का भी विक्षेप सह्य नहीं; अतः बिन बुलाये विक्षेपकर्त्ता को नर-बत खदेड़े दे रहा है

क्योंकि यह विचित्रता अधिकतर पृथ्वी के उत्तरार्द्ध में रहनेवाली वृत्तखों में ही पायी गई है। नर को अपने गिराये हुए पंख शरद ऋतु में पुनः प्राप्त हो जाते हैं। इनके घोंसले सीधे-सादे होते हैं और जलाशयों के निकट तथा धरती के गड्ढों अथवा पेड़ों की खोहों में पाये जाते हैं। मादा एक साथ १० से १२ पेड़ पर ओट में बनाये हुए अपने घोंसले में इन ग्यारह अण्डों को सम्हाल कर इनकी मादा अभी-अभी गई है एक डुबकी लगाने, आती ही होगी। ये अकेले, अरक्षित फिर भी नहीं है। नर-बत नजदीक ही किसी डाल पर निगरानी करता बैठा होगा

तक अण्डे देती है। नन्हे बच्चे पैदा होते ही चलने-फिरने लगते हैं।

इनकी हजारों मील की उड़ानें तथा पर-देशों का गमनागमन निस्सन्देह प्रकृति का एक अबूझ आश्चर्य ही है। इनकी यात्राओं का समय और पथ ऐसा निर्धारित सा रहता है कि उसमें अन्तर नहीं आने पाता। और

भी आश्चर्य तो इस बात का है कि इनके भुण्डों में ऐसे भी होते हैं जो उसी वर्ष पैदा हुए हों और पिछली यात्रा से उनका सम्बन्ध ही न रहा हो, फिर भी यात्रा के पथ और समय की अचूकता सचमुच विलक्षण ही कही जायगी। बिना भूले-भटके, बिना किसी मार्ग दर्शक के ये परिव्राजक पक्षी, ये वृत्तखें प्रतिवर्ष हमारे यहाँ आती हैं और आतिथ्य ग्रहण करके अपनी अनन्त यात्रा की ओर चल भी पड़ती हैं।





दीनानाथ भार्गव

वायुमण्डल में ऊपर उठती हुई जलवाष्प को यदि एकाएक शून्य से कम ताप-वाला क्षेत्र मिल जाता है तो वह बगैर द्रव में परिणत हुए, सीधे ही ठोस अवस्था में आ जाती है। ऐसी दशा में धुनी हुई रुई के गालों के समान आकाश से नन्हे-मोटे हिमकण गिरने लगते हैं। कभी-कभी तो मेघरहित आकाश से भी गिरते हैं। यह इसलिए कि जब ताप शून्य से कम होता है तब वाष्प को जमने के लिए केवल 'नाभि' की आवश्यकता होती है जो उसे वायुमण्डल में व्याप्त रजकणों के रूप में मिल जाते हैं।

ध्रुवीय प्रदेशों में प्रायः वर्ष भर हिम-पात होता रहता है। समशीतोष्ण प्रदेशों में केवल शीतकाल में बर्फ पड़ती है। हमारे देश जैसे स्थानों में जो उष्ण कटिबन्ध में हैं, हिमपात के दर्शन केवल शीतकाल में पहाड़ों पर होते हैं। मैदानी प्रदेशों में रहने वाले केवल गर्मियों में ही पहाड़ों पर जाते हैं। अतः हिम-दर्शन उनके लिए दुर्लभ ही रहता है। यूनान के लोगों ने हिम को उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर गीला ऊन (wet wool) का नाम दिया था। यह नाम तो

उन्होंने केवल हिम के ढेर को देखकर ही दिया था। इससे बढ़कर तो हिम-पत्रों (snow-flakes) का सौन्दर्य है। हिम-पत्र भिन्न-भिन्न आकार के और छोटे-बड़े रवों के बने होते हैं। इनका आकार वायुमण्डल की उस दशा पर निर्भर करता है जिसमें ये बनते हैं। इनमें विचित्रता यह है कि शून्य के लगभग ताप में बननेवाले रवे बड़े होते हैं और शून्य से निम्नतर ताप पर बननेवाले छोटे। यही कारण है कि यूरोपीय प्रदेशों की शीतमय गर्मियों में हिमपात अधिक और बड़े रवों का तथा सर्दियों में कम और छोटे रवों का होता है। प्रकृति का यह असत्य प्रतीत होनेवाला विचित्र सत्य है। ध्रुवीय प्रदेशों में ताप शून्य से बहुत कम होता है। वहाँ रजकण जैसी बर्फ पड़ती है जिसे हिम-रज (sand-snow) कहते हैं। इस प्रकार की बर्फ बहुत खुरदरी होती है और किसी बर्फ की गाड़ी (sledge) तथा स्की-ब्लेड (ski-blade) को जल्द काट सकती है। इससे मिलता-जुलता स्वरूप इंग्लैण्ड और मध्य यूरोप में देखने को मिलता है। वहाँ उसे हीरक रज (diamond-dust) कहते हैं। वे नन्हे रवे

पृथ्वी पर न गिरकर हवा में ही उतराते रहते हैं और सूर्य की किरणों को हीरे की भाँति शत-सहस्र आभा में छितरा देते हैं।

उष्ण प्रदेशों में हिम-रवों का बनना शिशिर ऋतु में आकाश में देखा जा सकता है। तीतरपंखी मेघ (cirrus) जो पृथ्वी से ऊपर ४ से ७ मील तक की ऊँचाई में सफेद पंखों की तरह फैले हुए होते हैं, हिम रवों से ही बने होते हैं। कभी-कभी सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर जो एक प्रभा-मण्डल सा दिखायी पड़ता है, वह इन मेघों की उपस्थिति के कारण किरणों के परावर्तन द्वारा ही बनता है। शीतकाल में प्रायः जेट विमान के पीछे जो सफेद लकीर सी बन जाती है, वह उस विमान द्वारा निष्कासित गैस पर जमे हुए हिम-कणों द्वारा ही बनती है।

हिम-पत्रों का सूक्ष्म सौन्दर्य तथा विलक्षण रचना केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखी जा सकती है। कभी कुछ बड़े पत्र नंगी आँखों से भी देखे जा सकते हैं। आकार में ये चौरस, पट्टी, नली तथा मुई की भाँति

प्रकृति भी कभी-कभी खिलवाड़ पर उतर आती है ! बायें हाथ में देखिये मुर्गी का अण्डा और दायें हाथ में उसके मुकाबले कितना बड़ा हिम-कन्दुक अर्थात् गेंदनुमा ओला, वह भी मध्य-ग्रीष्म ऋतु में ! अमरीका के इलिनाय (Illinois) नगर से प्राप्त नमूना



होते हैं। विभिन्न आकार के होने पर भी इनकी रचना मूलतः षट्कोणीय होती है। अधिक सुन्दर हिम-पत्र प्रायः पट्टिकाकार होते हैं। इनमें भी कुछ फीते के बने फूल जैसे होते हैं। अनेक पत्रों के अन्दर बारीक नलिकाओं की मनोहर पच्चीकारी होती है। कफवटन नामक पत्र की रचना भी अति विचित्र होती है। उसमें दो षट्भुजीय रवे एक षट्भुजीय नलिका द्वारा जुड़े होते हैं। षट्भुजीय पत्रों की जगह कभी-कभी त्रिभुजीय पत्र भी मिलते हैं। निचले स्तर के मेघों में बननेवाले हिम-पत्र आकार में बड़े और शाखायुक्त होते हैं। ऊँचे मेघों में बननेवाले अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।

यह तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि गलने से पहले ही हिम-पत्रों का फोटो लेना कितना दुष्कर कार्य है। जिस व्यक्ति ने प्रथम बार यह प्रयास किया था उसने १००० विभिन्न पत्रों के फोटो उतारे थे। इन पत्रों की विभिन्नता इतनी असंख्य होती है कि एक एकड़ भूमि में यदि हिम-पत्र छा जाँएँ तो सम्भव है कि वे सबके सब विभिन्न रचनाओं के हों ! इसलिये इनके चित्रों का उपयोग स्वर्णकार और अन्य कारीगर नयी डिजाइनें बनाने में करते हैं।

हिम-रवों की प्रतिकृतियाँ

सन् १९४० में अमरीकन वैज्ञानिक विन्सेन्ट जे. शेफर ने आकाश से गिरनेवाले हिम-रवों के साँचे बनाने की एक सरल विधि प्रस्तुत की। इथीलिन डाइक्लोराइड में कुछ रासायनिक पदार्थों को घोलकर एक प्रकार का तरल प्लास्टिक तैयार किया। उसे खुली हवा में शून्य से भी कम ताप पर रख दिया। ज्यों-ज्यों हिम-पत्र रकाबी में गिरते थे, वह तरल पदार्थ उनके गिर्द लिपटता जाता था। तुरन्त ही इथीलिन डाइक्लोराइड उड़ जाने पर वे हिम-पत्र एक पतले पारदर्शक घोल में

कैद हो जाते थे। अन्दर की बर्फ गल जाने पर वह खोल एक ऐसे साँचे का काम देता था जिसमें उस हिमपत्र की सभी रचनात्मक बारीकियाँ मौजूद होती थीं। इस विधि द्वारा प्राप्त प्रतिमूर्तियों में प्रकाश के आवर्तन और परावर्तन के वैसे ही गुण पाये जाते हैं जैसे प्राकृतिक हिम-रवों में।

द्वितीय महायुद्ध में इन प्रतिमूर्तियों से काफी सहायता मिली थी। बर्फ़ीले तूफानों में उड़ते वायुयानों के अन्दर लगे वायरलेस को ठप्प करनेवाले हिमकणों का अध्ययन बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। उड़ता हुआ वायुयान जब हिमकणों से टकराता है तो घर्षण द्वारा उत्पन्न विद्युत् के कारण विमान अनेक भागों पर विद्युतावेशित हो जाता है। जब वह आवेश तीव्र हो जाता है तब वायु-मण्डल आयनीकृत हो जाता है। फलतः विमान के पंखों के सिरों पर विद्युतावेश के कारण चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। चिनगारियों के कारण वायरलेस में अत्यधिक शोर उत्पन्न हो जाता है।

हिम-रवों के ढाँचे में हवा भरी रहती है जो उन्हें हलका बनाये रखती है। हिम-कणों का घनत्व सामान्य प्रयोग में आनेवाली बर्फ के घनत्व का १५वां भाग होता है। 'हिम' शब्द से ही शुभ्रता का आभास होता है। हिम वास्तव में श्वेत नहीं होता। हिम के रवे मूल-स्वरूप में तो काँच की तरह रंग-हिमपत्रों की सुन्दरता तो अप्रतिम होती ही है, इनके चित्र-विचित्र डिजाइनों की विविधता भी अनन्त है। इन्हीं से स्वर्णकार जैसे अन्यान्य कलाकार नित नये डिजाइनों की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। 'कफ-बटन'

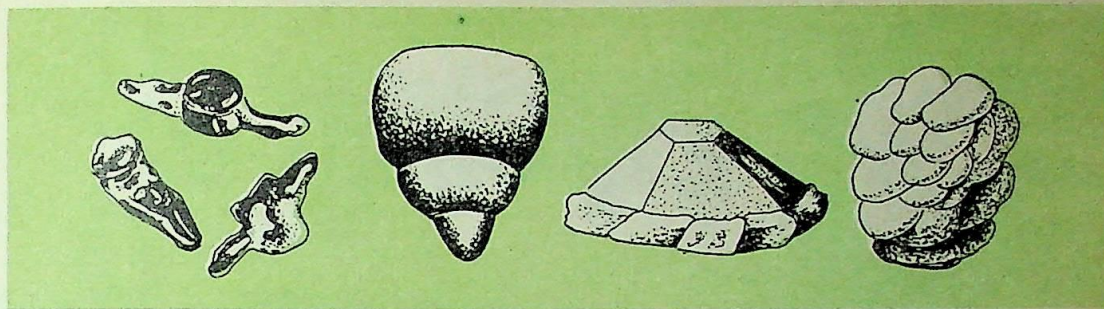
नामक डिजाइन मध्य में है

हीन और पारदर्शी होते हैं। जब पृथ्वी पर बिछ जाते हैं तब उनकी विभिन्न सतहों से उत्पन्न प्रकाश के आवर्तन-परावर्तन के कारण वे सफेद तथा विभिन्न रंग के लगते हैं। आस-पास के वातावरण का रंग भी उनमें झलकता है। इसीलिए प्रायः लाल, हरी, नीली और काली बर्फ तक देखने को मिलती है।

चार्ल्स डार्विन ने एक बार बर्फ पर अपने काफिले के साथ गुजरते हुए देखा था कि बर्फ पर बने उसके खच्चरों के पदचिह्न लाल रंग के थे। पहले तो उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं खच्चरों के पाँवों से खून न निकल रहा हो, परन्तु खोज करने पर पता लगा कि वह लाल रंग बर्फ में जमी एक प्रकार की शैवाल (algae) के कारण था। ऐसे ही नानसेन नामक एक अन्य पर्यटक ने गुलाबी रंग का हिम देखा था। इसी प्रकार शैवाल के कारण ही हरा और नीला हिम भी देखने को मिलता है।

जिन प्रदेशों में अधिक शीत पड़ता है वहाँ हिम-राशि वनस्पति के लिए कम्बल का कार्य करती है। हिम ताप का कुचालक है। अतः इसके आवरण में पेड़-पौधे बाहरी ठंड से सुरक्षित रहते हैं। वसंत में हिम पिघलने पर बना हुआ जल नन्हें बीजों और अंकुरों को उचित समय पर उगने में सहायता देता है। इसके अतिरिक्त बालू, मिट्टी आदि की





हिम-खण्ड (छोटे-बड़े ओले) हमेशा एक ही आकार, गेंद, अण्डा या गोली जैसे नहीं होते। विविधता इनमें भी होती है। ये चारों आकार विचित्र तो हैं ही, असाधारण भी हैं, अर्थात् सहज ही नजर नहीं आते।

इनमें बायें से प्रथम आकार तो लगभग दुर्लभ ही है

भी सुरक्षा इससे हो जाती है। आर्कटिक प्रदेशों में बर्फ की चढ़र में दबी बालू तेज हवा के भोंकों से इधर-उधर नहीं उड़ पाती।

बड़े नगरों में हिमपात से काफी हानि होती है। कई दिनों तक यातायात रुका रहता है। मार्ग में जमी हुई बर्फ को साफ कराना काफी खर्चीला सिद्ध होता है। इंग्लैण्ड के लीड्स में १९३८-३९ के हिम-पात में राजपथ से बर्फ साफ कराने में १०,००० पाउंड व्यय हुआ था!

कृत्रिम हिम

सन् १९४६ में अमरीका में कृत्रिम हिम बनाने का प्रयोग किया गया। चार मील ऊँचे बलाहक मेघ (Alto stratus) पर छः पाउंड कार्बन डाइआक्साइड पाउडर वायुयानों द्वारा छिड़का गया। प्रयोग काफी सफल रहा और उस प्रकार प्राप्त हिमकणों में मूलतः कोई अन्तर न था।

तुषार

पृथ्वीतल और उसके आसपास के वातावरण का ताप जब शून्य से कम हो जाता है तब जलवाष्प बिना द्रव में बदले बर्फ के रूप में चारों ओर जम जाती है। इसे तुषार कहते हैं। तुषार के भी बड़े सुन्दर बमूने खिड़कियों और दरवाजों के शीशों पर बन जाते

हैं। हिम-कणों जैसी विभिन्नता इनमें नहीं पायी जाती। जब ताप -2°C से 0°C के मध्य रहता है तब हलका तुषार पड़ता है। -20°C से भी ताप घटने पर घना तुषार पड़ता है। टोरन्टो नगर में एक बार इतना घना तुषार पड़ा कि एक मकान की आग बुझाने के लिए दमकलों से निकला हुआ पानी मकान पर तुषार बनकर गिर रहा था! १००-१५० वर्ष पहले इंग्लैण्ड में भी इतना घना तुषार पड़ता था कि टेम्स नदी का पानी जम जाया करता था और उस पर तुषार मेले लगा करते थे। सबसे बड़ा तुषार मेला सन् १६८२ का था जबकि वेस्ट मिनिस्टर से टेम्पल तक मेला-दर्शकों की घोड़ा गाड़ियाँ चला करता थीं।

ओले

जमे हुए पानी का एक रूप ओला भी है। बर्फीले तूफान का वेग इतना अधिक होता है कि जमे हुए जल-कण बड़े वेग से इधर-उधर, ऊपर-नीचे उड़ने लगते हैं। जब ये आकार में बड़े हो जाते हैं तब ओलों के रूप में नीचे गिरने लगते हैं। प्रत्येक ओले में, तले-ऊपर श्वेत, पारदर्शक हिम की पर्तें होती हैं। ये विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं।



तम्बाकू की कहानी

अनिलचन्द्र

तम्बाकू की कहानी का स्रोत करीब ढाई हजार वर्ष पहले, ईसा से ७०० पूर्व के काल में मिलता है। सिगार या सिगरेट के फैशन का प्रारम्भ सोलहवीं शताब्दी के उत्तरकाल से माना जाता है। इसी से तो जुड़ी हुई वह कहानी है जिसमें ब्रिटेन के इतिहास-प्रसिद्ध सर वाल्टर रेले के मुँह से इसका धुँआ निकलता देखकर उनका नौकर एक बाल्टी पानी उन पर उंडेलकर अड़ोस-पड़ोस के लोगों को मदद के लिए बुला लाया था !

प्रारम्भिक परिचय

१५-१६वीं शताब्दी में नयी दुनिया की खोज में निकलनेवाले साहसिक नाविकों में से अन्ततः कोलम्बस जब अमरीका पहुँचा तो वहीं उसे तम्बाकू का प्रथम परिचय मिला। वहाँ के निवासियों का तम्बाकू पीने का ढंग बहुत कुछ आज के ढंग में मिलता-जुलता ही था। वहाँ प्रचलित होते हुए भी धूम्रपान केवल विशेष अवसरों तथा प्रयोजनों के लिए ही सीमित था। यह खासकर शान्ति और मैत्री का सूचक माना जाता था। इसके औषधीय गुण-दोषों का पता लगने पर ही इसे पूर्वीय देशों में, सर्वप्रथम यूरोप के स्पेन, फ्रांस तथा ब्रिटेन में लाया गया। सर्वप्रथम फ्रेंच राजदूत जीन निकोट (Jean Nicot)

ने इसके बीज अपनी साम्राज्ञी कैथेरीन को भेंट किये। उसी पर इन पौधों के वर्ग को निकोटिना (Nicotina) नाम दिया गया। टॉबैको (Tobacco) नाम इसे मध्य अमरीका की कैरीबियन भाषा के शब्द टॉबैगो (Tobago) पर दिया गया है। यह नाम उस विचित्र नली से दिया गया है जिसमें भरकर वे तम्बाकू (tobacco) पीते थे। यही नाम उस बेलनाकार आकृति का भी सूचक है जो पत्ते को गोल लपेटकर उसमें तम्बाकू भरकर पीने के लिए बनायी जाती थी।

पत्ती-पत्ती में भेद

तम्बाकू के पौधों की ५० से भी अधिक किस्में निर्धारित की जा चुकी हैं। उनमें से केवल तीन ही किस्में अधिकतर उपयोग में आती हैं। इनमें प्रथम है, मध्य अमरीका तथा वेस्टइण्डीज में उत्पादित निकोटियाना टबेकम (*Nicotiana tabacum*) जो छः फुट से भी अधिक ऊँचा उगता है और गुलाबी फूल लिये होता है। अमरीका का तम्बाकू उद्योग इसी पर आधारित है। दूसरा है मैक्सिको का एन. रस्टिका (*N. rustica*)। यह पौधा चार फुट की ऊँचाई का होता है और इसमें पीले फूल लगते हैं। टर्किश मिश्रण

(ब्लैण्ड) और इजिप्शियन तम्बाकू इसी से बनायी जाती हैं। तीसरा है एन. पर्सिका (*N. Persica*)। इसमें सफेद फूल लगते हैं। यह अन्य प्रदेशों में कम प्रचलित है और केवल ईरान (*Persia* जिस पर *Persica* नाम दिया गया है) में ही उपजाया जाता है। वहाँ के बहुप्रचलित हुक्कों में इसी का उपयोग होता है। विविध श्रेणी के घटिया-बढ़िया तम्बाकू के मिश्रण तैयार करने के लिए पत्तों का चुनाव बड़ी बारीकी से किया जाता है। चुनाव में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है: पौधे की किस्म, पत्ते तैयार करने की विधि, पत्ते की विशेष उपयोगिता तथा पौधे का उत्पत्ति-काल।

पत्तों को जिन अनेक श्रेणियों में बांटा जाता है उनमें मुख्यतः अग्नि में सुखाये हुए, अंधेरे तथा सामान्य हवा में सुखाये हुए, गर्म हवा में सुखाये हुए, सिगार-रैपर, सिगार बाइण्डर, सिगार फिलर, बर्ले, मेरीलैण्ड, तथा पेरिक हैं। ये समस्त किस्में अधिकतर एन. टबेकम (*N. Tabacum*) के पौधे से तैयार की जाती हैं।

तम्बाकू की दो प्रधान जातियाँ—१. मेक्सिको में उत्पादित, चार फुट ऊँचा निकोटीना रस्टिका

२. वेस्ट इण्डीज का छः फुट-निकोटीना टबेकम



①

②

तम्बाकू की खेती

तम्बाकू का पौधा केवल एक वर्ष फलता-फूलता है। यह पौधा खुरदरा होता है। इसके पत्ते भुके-भुके पड़ते हैं और नीचे के सिरे पर तने से लिपटे रहते हैं। स्पर्श में चिपचिपे होते हैं, क्योंकि पत्तों की सतह के रोयों से चिपचिपा द्रव रिसता रहता है। बिगुल के आकार के इनके फूलों को खिलने से पहले जब वे कली के रूप में होते हैं उतार लेते हैं। इसके काले बीज इतने सूक्ष्म होते हैं कि ६० हजार बीज चाय का एक चम्मच भी पूरा नहीं भर सकते। इसके फूल स्व-परागण में समर्थ होते हैं। अधिकांश फूल सफेद ही होते हैं, किन्तु कई उप-श्रेणियों में पीले, गुलाबी, लाल रंग के भी होते हैं। फूल की पंखुरियों में पाँच नोकें होती हैं और पाँचों अलग-अलग खिली-खिली रहती हैं। पत्ते ही इस पौधे की जान हैं। पौधे की किस्म के साथ पत्ते के भी आकार-प्रकारों में भिन्नता रहती है। बड़े पौधों के पत्ते तीन-चार फुट लम्बे तथा डेढ़ दो फुट तक चौड़े होते हैं, जबकि छोटे से छोटे पत्ते (टर्किश पौधे के) केवल ३-४ इंच के ही रहते हैं। साधारण परिस्थितियों में एक पौधे से डेढ़ दो लाख (वजन केवल डेढ़ औंस) और विशेष परिस्थितियों में दस लाख तक बीज प्राप्त किये जा सकते हैं।

तम्बाकू के बीजों की बुवाई बड़ी सावधानी से की जाती है। इस पौधे को सम-शीतोष्ण जलवायु चाहिए। अतः गर्म प्रदेशों में ठंडा वातावरण तथा ठंडे प्रदेशों में गर्म वातावरण बनाए रखना पड़ता है। बीज यदि उत्तम प्रकार का है तो केवल आधे औंस की मात्रा १०० वर्ग गज भूमि के लिए पर्याप्त है। अनुकूल वातावरण में १०० वर्ग गज भूमि से १५ से २५ हजार तक पौधे

प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि मिट्टी उर्वरा हो, भली प्रकार जुती हुई हो और उसे खुली धूप मिल सकती हो। बीजों को लकड़ी के बुरादे तथा रेती जैसे तटस्थ पदार्थ में मिलाकर बिखेरते हैं ताकि वे इकसार बिखरे जा सकें। काफी बारीक मिट्टी तथा समतल भूमि में इसके बीज हलके से दबाकर बोये जाते हैं।

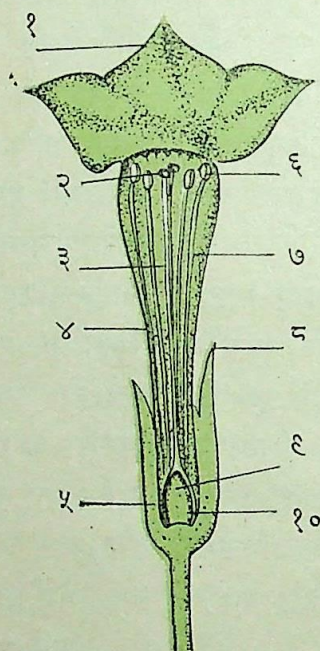
लगभग दो ढाई महीने में इसके पौधे ६-७ इंच उभर आते हैं और पुनरोपण (transplanting) के लिये तैयार हो जाते हैं। सूर्यास्त के समय इसकी सिचाई अधिक लाभप्रद होती है। पुनरोपण के पश्चात् पौधे की आवश्यक ऊँचाई आते ही सिरे के फूल और कलियाँ उतार ली जाती हैं। इस क्रिया को टॉपिंग (topping) अथवा डिसबुडिंग (disbudding) कहते हैं। मिट्टी में पोटेशियम सल्फेट, कार्बोनेट अथवा नाइट्रेट भली प्रकार देते रहने से पत्तों की उत्तमता तथा अग्निधारिता बढ़ती है और वानस्पतिक-रोगों का भय भी नहीं रहता। इस पौधे को Black root-rot, Bacterial leaf spot, Blue mould तथा Black shank

जैसे वानस्पतिक रोगों का सदैव खतरा रहता है। इनसे रक्षा करने के लिये अनेक उपाय किए जाते हैं; उदाहरणार्थ साफ-सुथरी भूमि, पौधों का समय-समय पर स्थानान्तरण, दवाओं के छिड़काव तथा कुछ भिन्न-भिन्न श्रेणी के पौधों के संयोग द्वारा रोग-निरोधक नस्लें तैयार करना, आदि।

जैसा मिश्रण वैसा जायका

पुनरोपण के लगभग ७० से १३० दिन के अनन्तर तम्बाकू की कटाई कर ली जाती है। दिनों का अन्तर तथा कटाई की विधि में भिन्नता तम्बाकू की विभिन्न श्रेणियों पर निर्भर रहती है। कटाई के समय तथा बाद में पत्तों को सूखने-मुड़ने से बहुत सम्हालना पड़ता है। तम्बाकू को खाने-पीने लायक बनाने का काम इसके पश्चात् प्रारम्भ होता

है। साधारणतया तम्बाकू पकाने (curing) की तीन विधियाँ काम में लायी जाती हैं: (१) खुली धूप-हवा, (२) आग तथा (३) आग की तप्त वायु (flue)। सूखने पर तम्बाकू का पत्ता टूट जाता है, चूर-चूर हो जाता है। अतः पकाने के लिये पत्तों को सूखने से पहले डंठल समेत नम वातावरण में लटकाये रहते हैं। वहाँ वे आर्द्र होते-होते नर्म हो जाते हैं और चाहे जिस तरह लपेटे-मोड़े जा सकते हैं। अब उन्हें डंठल से अलग कर लेते हैं और बड़े-छोटे छांट-छांटकर, गट्ठर बनाकर ५-६ फुट ऊँचे ढेर बना लेते हैं। उन ढेरों को १३०°F के स्थिर ताप पर ३-४ सप्ताह तक रखा



तम्बाकू के फूल की अन्तर-रचना-१. पत्र-दल, २. वर्तिकाग्र, ३. वर्तिका, ४. बन्द पत्र-दल, ५. बीजकोष, ६. परागकोष, ७. पराग-तन्तु, ८. बाह्यदल, ९. जरायु तथा १०. बीजकण

जाता है। पककर तैयार होने पर सावधानीपूर्वक छांटकर अलग-अलग पैक कर लिए जाते हैं। विशेष जाति की पत्ती तैयार करने के लिये तो कुछ नमूने २-४ वर्ष तक रखने पड़ते हैं।

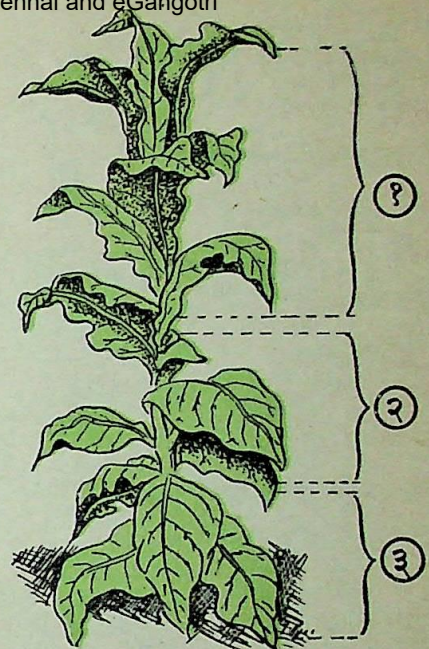
तम्बाकू के तीन मुख्य उपयोग हैं: खाने (chewing), पीने (smoking) तथा सूँघने

(snuffing) के लिए। बड़िया-घटिया किस्म की तथा तीनों अलग-अलग उपयोग में आने वाली तम्बाकू के मिश्रण जिन खूबियों से बनाये जाते हैं वे व्यावसायिक गुर हैं। अतः वे सामान्य चर्चा के विषय नहीं हैं। मोटे तौर पर समझा जा सकता है कि पौधे के सिरे वाले पत्ते केवल खाने की तम्बाकू बनाने में काम आते हैं तथा नीचे की पत्तियाँ, पीने के लिए। उपरोक्त विधियों द्वारा तम्बाकू की पत्ती में जो विभिन्न रासायनिक परिवर्तन आ जाते हैं उनमें प्रमुख यह है कि निकोटीन (Nicotine) की मात्रा घटती जाती है। उदाहरणार्थ, सिगार-पाइप में पीनेवाली तम्बाकू बनाने के लिए पत्ती को काफी समय तक पकाना पड़ता है। फल-स्वरूप उसकी पत्ती में निकोटीन की आधी मात्रा नष्ट हो जाती है। अतः वह पत्ती अन्य पत्तियों से कम हानिकारक होती है।

तम्बाकू का उत्पादन इसके उत्पादक राष्ट्रों के लिये निर्यात-कर आदि टैक्सों द्वारा आय का सर्वश्रेष्ठ साधन है। विश्वभर में तम्बाकू का वार्षिक उत्पादन लगभग ८० करोड़ पौंड है, जिसमें प्रथम स्थान पर संयुक्त राष्ट्र अमरीका है। यह अपने उत्पादन का चौथा भाग निर्यात कर देता है। भारत और रूस का नम्बर इसके बाद आता है।

धुआँ तम्बाकू का, अथवा स्वास्थ्य का !

धूम्रपान के शौकीनों, प्रशंसकों और अभ्यस्त पियक्कड़ों का तर्क है कि इससे कोई प्रत्यक्ष बड़ी हानि नहीं होती, बल्कि मानसिक तनाव, उलझन, परेशानी और न जाने कैसे-कैसे सिर दर्द धुएँ के साथ ही बल खाते हुए दूर हो जाते हैं ! प्रसिद्ध इंगलिश लेखक ठेकरे (Thackeray) ने तो इसके पक्ष में यहाँ तक कहा है, 'पाइप तो वह जादू है जो दार्शनिक के ओठों से उसका ज्ञान भंडार निकलवा लेता है और बकवादी मुखों के ओठ बन्द किये रहता है।' इस धूम्रपान के गुण-दोषों की चर्चा का यह स्थान भी नहीं है। केवल एक बात कहनी है कि



तम्बाकू के एक पौधे की पत्तियों के सामान्य तीन विभाग—१. खाने के उत्तम मिश्रण के लिए, २. खाने के मध्यम मिश्रण के लिए, ३. पीने के मिश्रण के लिए

तम्बाकू से निकला निकोटीन कितना जहरीला है यह समझने की आवश्यकता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि निकोटीन एक अति तीव्र कीटाणुनाशक औषधि है और धूम्रपान के अतिरिक्त इसका उपयोग फसलों के कीटाणु नष्ट करने में भी व्यापक रूप से होता है। तम्बाकू की पत्ती से निकोटीन अलग करने के लिए पत्ती पर कास्टिक सोडा या चूने के घोल की प्रक्रिया करायी जाती है। क्रिया में निकोटीन उस घोल में घुला चला जाता है। बाद में उसे डिस्टिल करके अलग प्राप्त कर लेते हैं। इसका प्रयोग किसी भी पाउडर आदि में मिलाकर छिड़काव के रूप में करते हैं। अतः विशेषज्ञों का यह निष्कर्ष गलत नहीं कि अजीर्ण, क्षुधाहीनता, अनिद्रा, बदहजमी, धड़कन की वृद्धि, श्वास की कठिनाई, दृष्टि-दोष तथा अन्त में जिन-जिन भागों से धुआँ गुजरता है उन भागों के किसी भी अंग में कैंसर जैसे घातक रोग निकोटीन के ही आभारी हैं बल्कि उससे भी अधिक तो अपर्याप्त ज्ञान लिये हुए अंधाधुंध धूम्रपान किये जाने के आभारी हैं।

तारापुंज और नीहारिकाएँ

जगदीशचन्द्र गोविल



षी के बाद जब वायुमण्डल की गर्द दूर हो चुकती है तब मेघरहित अंधेरी रात में दिखाई पड़नेवाले तारों की संख्या और उनकी जगमगाहट असाधारण तौर पर बढ़ी-चढ़ी होती है। साथ ही, क्षितिज के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली आकाशगंगा के दूधिया मार्ग (Milky way) का भव्य स्वरूप भी निखर उठता है। आकाश में दूर-दूर तक छिटके हुए जगमग तारों तथा आकाशगंगा की निर्मल ज्योति के अतिरिक्त कहीं-कहीं अत्यन्त मन्द तारे जैसे हलके प्रकाश के धब्बे भी नजर आते हैं। कोरी आँखों से केवल पाँच-छः ही दिखाई पड़ते हैं सो भी महत्त्वहीन ; किन्तु शक्तिशाली दूरदर्शी द्वारा देखे जाने पर उनकी संख्या काफी बढ़ जाती है। उनके भव्य स्वरूप और सौन्दर्य की अनुभूति भी तभी हो पाती है। दूरदर्शी-कैमरे द्वारा फोटो लेकर उनके विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी है।

कोरी आँखों से अत्यन्त मन्द तारे प्रतीत होनेवाले इन प्रकाश-बिन्दुओं को जब दूरदर्शी से देखते हैं तब इनमें कुछ तो हजारों तारों के झुंड से दिखाई पड़ते हैं जिन्हें 'तारापुंज' कहते हैं; और कुछ मन्द प्रकाश के हलके बादल की तरह दिखाई पड़ते हैं। उन्हें 'नीहारिका' कहते हैं। तारापुंज दो श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक तो गेंद के आकार के होते हैं, जिनमें तारों की संख्या अत्यधिक होती है और वे एक दूसरे के इतने निकट होते हैं कि एक ही समुदाय के सदस्य प्रतीत होते हैं। उन्हें कंदुकाकार तारापुंज (globular clusters) कहते हैं। दूसरे वे तारापुंज हैं जिनका कोई नियमित स्वरूप नहीं होता। उनमें तारों की संख्या १००-१५० से अधिक नहीं होती और अधिकांश तारे कुछ दूर-दूर बिखरे भी रहते

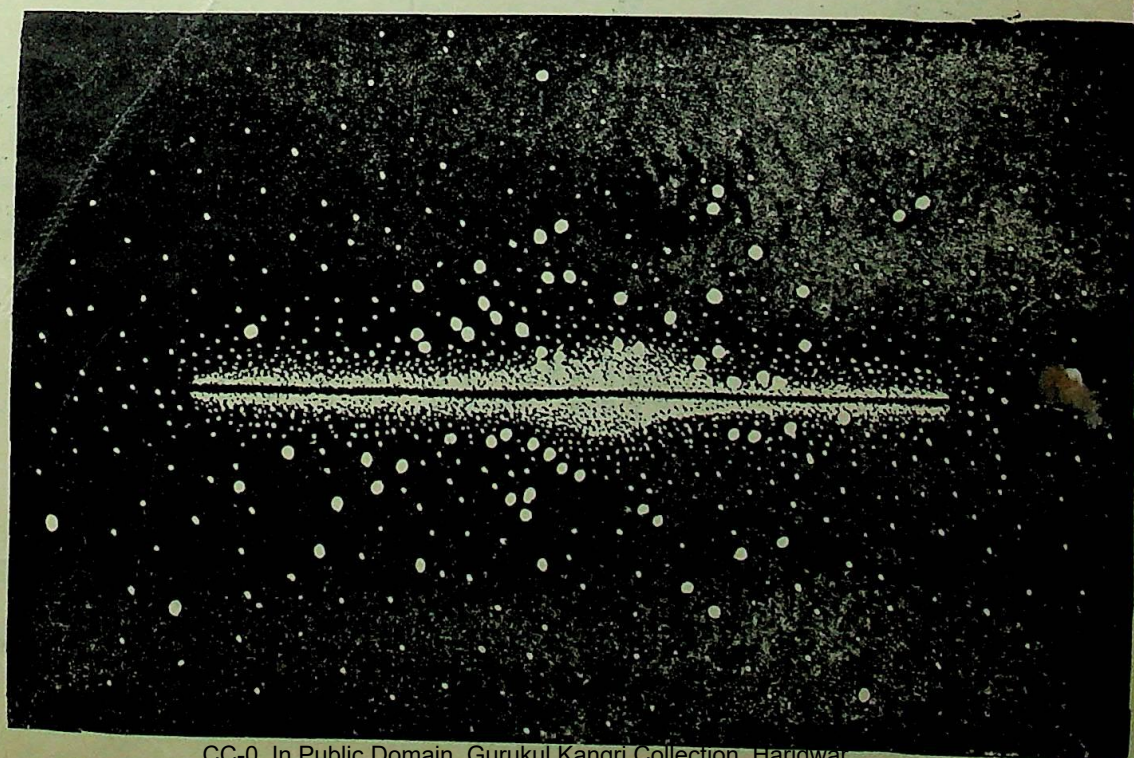
हैं। वे खुले तारापुंज (open clusters) कहलाते हैं।

इन तारापुंज के तारों की दूरी तथा गति लगभग समान ही होती है। इससे पता चलता है कि वे एक ही समुदाय के सदस्य हैं। अनुमान है कि किसी भी खुले तारापुंज के तारे प्रारम्भ में गैसों तथा धूल-कणों से बने किसी एक बादल के सिमटने के कारण बने होंगे। अब तक आकाश में लगभग दो सौ खुले तारापुंज देखे जा चुके हैं। वृष (Taurus) तारा-समूह में 'कृत्तिका' नामक एक सुन्दर खुला तारापुंज प्लीयुडीज (Pleiades) आसानी से देखा जा सकता है। कोरी आँखों से इस तारापुंज में केवल एक ही दर्जन तारे दिखाई देते हैं किन्तु वास्तव में इसमें लगभग डेढ़-सौ तारे हैं। उनमें कुछ तो इतने किच-पिच दिखाई पड़ते हैं कि इस तारापुंज का नाम ही 'किचपिचिया-पुंज' पड़ गया है। कर्क (Cancer) तारा-समूह का 'चषाल' (Praesepe) तारापुंज मधु-मक्खियों के

छत्ते जैसा प्रतीत होने वाला खुला तारापुंज है।

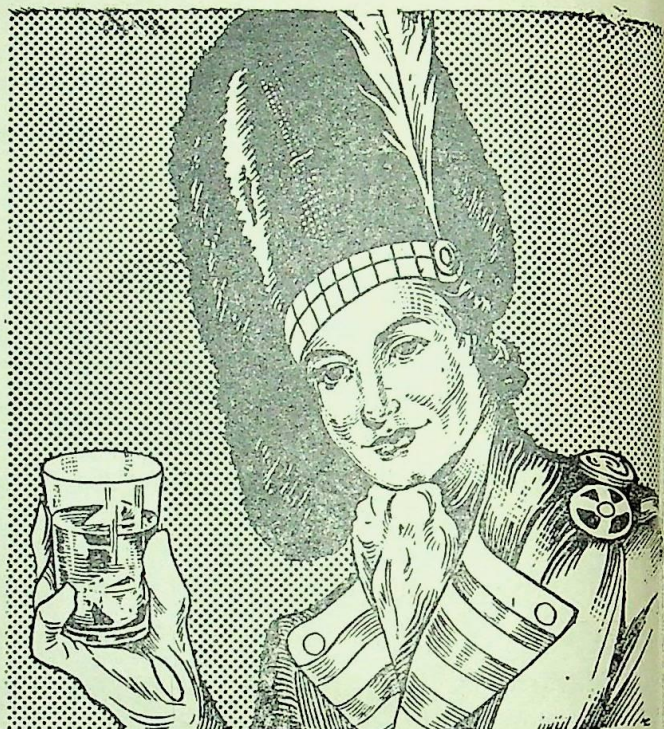
वैसे तो खुले तारापुंज अधिक महत्वपूर्ण नहीं, किन्तु हाल ही में अमरीका के ज्योतिर्विद आर. जे. ट्रेम्पलर ने कुछ तारापुंजों की दूरी तथा व्यास की गणना के पश्चात् घोषित किया है कि आकाशगंगा में दूरस्थ तारों के बीच ऐसे धूल-कण मौजूद हैं जो तारों से आनेवाले प्रकाश का शोषण कर लेते हैं। अनुसन्धान की दृष्टि से खुले तारापुंजों की अपेक्षा कंदुकाकार तारापुंज कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। उनमें बहुत बड़ी संख्या में तारे इतने पास-पास स्थित होते हैं कि पार-स्परिक गुरुत्वाकर्षण के कारण वे कंदुक के आकार में बने रहते हैं। उन तारापुंजों की एक विशेषता यह है कि बनावट तथा आकार में वे एकासे होते हैं और उनके केन्द्र से बाहर की ओर तारक-सघनता (star density) क्रमपूर्वक घटती जाती है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रायः सभी कंदुकाकार तारापुंजों के अन्दर अथवा उनके समीप

आकाश-गंगा का एक दुर्लभ दृश्य



मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
आद दिलाती है!

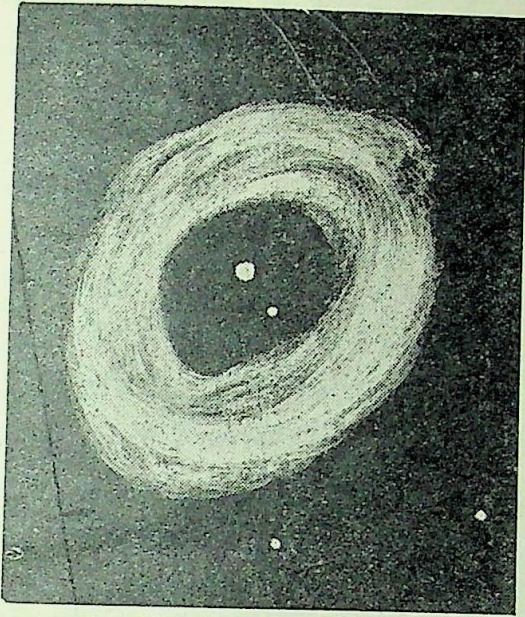
सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित
जब अतिथि आये
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए



प्रस्तुत कीजिए

हाईलैंड चीफ
माल्टेड हिस्की

जयर मीकिंग ब्रूअरीज लि० स्थापित १८५५



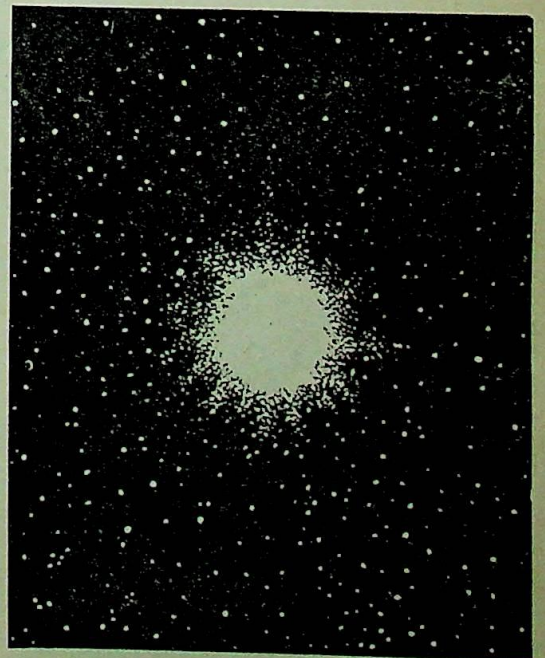
वीणा (Lyre) तारासमूह की वृत्ताकार नीहारिका लघुकालिक (short period) परिवर्ती तारे (Cepheid) मौजूद होते हैं। उन परिवर्ती तारों की चमक के नियमित रूप से घटने-बढ़ने के चक्र को ज्ञात करके तारापुंजों की सही दूरी ज्ञात की जा सकी है। गणनाओं से पता चलता है कि निकटतम कंदुकाकार तारापुंज लगभग अठारह हजार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है तथा दूरतम तारापुंज उससे लगभग तेरह गुनी दूरी पर है। इन तारा पुंजों का भार सूर्य के भार से लाखों गुना अधिक होता है। इनसे विकीरित प्रकाश भी सूर्य के प्रकाश से कई लाख गुना अधिक होता है।

हमारी आकाशगंगा की बनावट फूले हुए मालपूए जैसी है—बीच में मोटी तथा हाशिए पर पतली। कंदुकाकार तारापुंजों की दूरियाँ ज्ञात करने पर एक असाधारण बात यह पाई गई कि अधिकांश तारापुंज आकाशगंगा के फूले हुए भाग के भीतर और उसके बाहर फैले हुए हैं। इसी कारण ये तारापुंज सूर्य के एक ओर, आकाश के अर्द्ध भाग में ही अधिक दिखाई पड़ते हैं। लम्बाई-चौड़ाई में तो ये हमारी आकाशगंगा के समान ही फैले हुए हैं, किन्तु मोटाई में इनका विस्तार कहीं अधिक

है। सच तो यह है कि ये कंदुकाकार तारापुंज ही ब्रह्माण्ड में हमारी आकाशगंगा के आकार-प्रकार की सीमाएँ निर्धारित करते हैं।

शौरी (Hercules) तारा-समूह में, २ लाख ३० हजार प्रकाश वर्ष दूर, एक विराट कंदुकाकार तारापुंज है। फ्रांस के ज्योतिर्विद् मैसियर की सूची के अनुसार इसका नम्बर M-13 है। इस तारापुंज में पचास हजार से भी अधिक तारे हैं। उनमें से अनेक तारे सूर्य से कहीं अधिक चमकीले हैं।
नीहारिकाएँ

नीहारिकाओं को नेब्युली (Nebulae) कहते हैं। नेब्युली लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है 'बादल'। नीहारिकाएँ दीखती भी गैसों तथा धूल-कणों के बादल जैसी ही हैं। ये प्रायः अत्यन्त ही मन्द प्रकाश की होती हैं। इस कारण इनका विस्तृत अध्ययन सामान्य दूरदर्शी द्वारा सम्भव ही नहीं। सूक्ष्मग्राही दूरदर्शी-कैमरे की फोटो प्लेट को अधिक समय तक खुली रखे रहकर, प्रकाश-शौरी (Hercules) तारा-समूह में विराट कंदुकाकार तारापुंज M-13



दर्शन (expose) करा कर ही इनके फोटो लेना सम्भव है।

नीहारिकाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं : एक, जो हमारी आकाशगंगा में स्थित हैं तथा दूसरी जो बाहर स्थित हैं। अध्ययन से पता चला है कि स्थानीय नीहारिकाएँ केवल गैसों और धूल-कणों से बनी हुई हैं। इसके विपरीत दूरस्थ नीहारिकाएँ करोड़ों तारों के समुदाय हैं। उनमें ऐसे भी पदार्थ हैं जो तारों में परिणत होने की तैयारी में हैं। इस कारण बाहर की नीहारिकाएँ जिन्हें भ्रमवश नीहारिका माना जाता था, वास्तव में नीहारिकाएँ ही नहीं। वे तो आकाश-गंगा के समान ही स्वतन्त्र आकाशगंगाएँ हैं जो विश्व के असीम विस्तार में दूर-दूर तक फैली हैं और हमसे बहुत दूर होने के कारण ही नीहारिकाएँ लगती हैं। अन्य आकाश-गंगाओं से देखे जाने पर हमारी आकाशगंगा भी एक नीहारिका ही लगेगी।

हमारी आकाशगंगा में स्थित नीहारिकाओं में से कुछ का रूप नियमित होता मृग (Orion) तारासमूह में विराट, काली नीहारिका-घोड़े के सिर की आकृतियुक्त



है तथा कुछ का अनियमित। नियमित रूप वाली नीहारिकाएँ सदैव वृत्ताकार होती हैं। उन्हें प्लेनेटरी नेब्युली (Planetary Nebulae) कहते हैं। नियमतः उनके केन्द्र पर मन्द प्रकाश का एक तारा होना आवश्यक है। उसी के चारों ओर वे घूमती जो हैं! इस प्रकार की नीहारिकाएँ अत्यन्त ही विरल—लगभग वैकुश्रम के समान—चमकीली गैसों की बनी होती हैं। आकाश में ऐसी नीहारिकाएँ लगभग डेढ़ सौ से भी अधिक हैं। वीणा (Lyra) तारा-समूह में M-57 नामक विख्यात वृत्ताकार नीहारिका है।

अनियमित नीहारिकाओं को 'डिफ्यूज नेब्युली' (Diffuse Nebulae) कहते हैं। आकार में ये काफी बड़ी होती हैं। इनका कोई नियमित रूप भी नहीं होता। इनमें कुछ ऐसी भी होती हैं जिनके अन्दर अथवा समीप कुछ चमकदार तारे होते हैं। उन्हीं तारों से विकीरित होनेवाले प्रकाश तथा ऊर्जा के कारण ये नीहारिकाएँ प्रकाशमान दीखती हैं। इन्हें श्वेत नीहारिकाएँ भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और नीहारिकाएँ ऐसी हैं जिन्हें प्रकाश देने के लिए कोई भी तारा नहीं होता। वे काली नीहारिकाएँ कहलाती हैं। कुछ अन्य नीहारिकाएँ ऐसी भी होती हैं जिनका कुछ ही भाग प्रकाशमान होता है, शेष भाग काला रहता है। अनियमित नीहारिकाएँ ठंडी गैसों तथा अति सूक्ष्म धूल-कणों के बादलों से निर्मित होती हैं। ये विस्तार में बहुत बड़ी होती हैं किन्तु भार में अपेक्षाकृत हलकी होती हैं। इनके आकार का

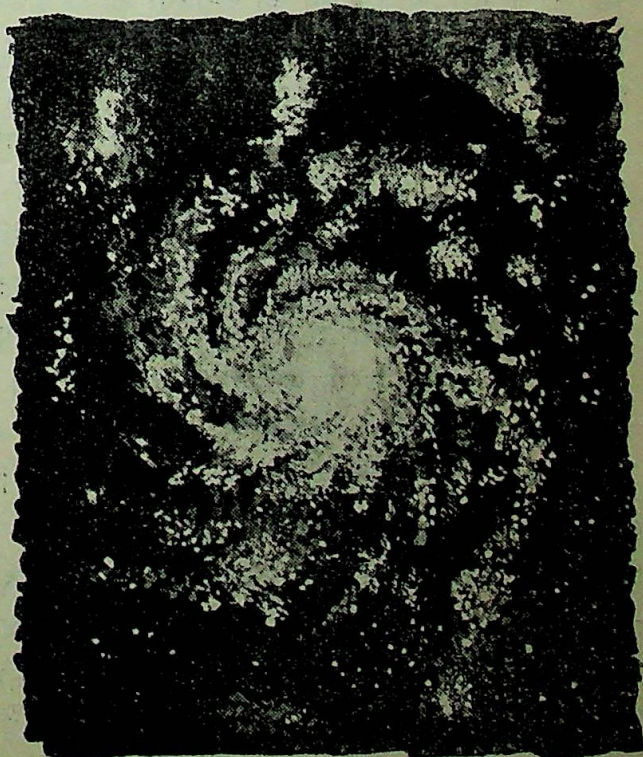
अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि बहुत ही कम घनत्व होने पर भी इनका भार सूर्य की तुलना में दसवें भाग से लेकर हजारों गुना अधिक तक होता है।

कुछ श्वेत नीहारिकाएँ अत्यन्त विशाल-काय और विशेष प्रकाशमान होती हैं। मृग (Orion) तारा-समूह में M-42 नाम की श्वेत-नीहारिका दूरदर्शी में बहुत ही सुन्दर दीख पड़ती है। इसका भार सूर्य से दस हजार गुना अधिक है। इसमें घोड़े के सिर (Horse Head) जैसी दीखनेवाली एक काली नीहारिका भी है। हंस तारा-समूह में दुपट्टे जैसी आकृति की 'ब्राइडल वेल' (Bridal Veil) तथा 'धनु' तारा-समूह में 'घोड़े की नाल' (Horse Shoe) नाम की श्वेत नीहारिकाएँ हैं। काली नीहारिकाएँ आकाश में प्रायः वहीं दिखलाई पड़ती हैं जहाँ तारे काफी घने हैं। ये नीहारिकाएँ उनके सामने आ जाती हैं तब उनके प्रकाश को अंशतः ढाँप लेती हैं। हमारी आकाशगंगा के दूधिया मार्ग में 'कोयले की बोरी' (Coal-Sack) नामक एक बहुत बड़ी और घनी काली नीहारिका है।

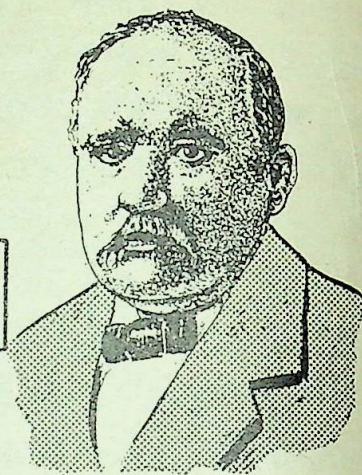
हमारी आकाशगंगा के बाहर-वाली नीहारिकाएँ वास्तव में तारों की मन्दाकिनी-संस्थाएँ ही हैं। ये प्रायः नियमित रूप की होती हैं। इनमें से कुछ गोल (globular), कुछ चपटी (elliptical) तथा कुछ कुंडल (spiral) आकार की हैं। कुंडल आकार की सबसे निकट नीहारिका 'देवयानी' (Andro-

meda galaxy) है। साधारण दूरदर्शी में यह चपटी प्रतीत होती है, किन्तु शक्ति-शाली दूरदर्शी में यह स्पष्ट कुंडलाकार दिखाई पड़ती है। देवयानी में स्थित परिवर्ती तारों के अध्ययन द्वारा पता चला है कि देवयानी की दूरी १५ लाख प्रकाश-वर्ष की है। ये आकाशगंगाएँ आकार-प्रकार में हमारी आकाशगंगा के ही समान हैं। यह इतनी सुन्दर है कि इसे 'नीहारिकाओं की रानी' कहा जाता है। दूरी में देवयानी के बाद 'त्रिकोण' (Triangulum) नामक आकाशगंगा का नम्बर आता है जो १५ लाख ६० हजार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। आधुनिक-तम पर्यवेक्षण के अनुसार सबसे दूरवर्ती आकाशगंगा हमसे लगभग दो अरब प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। सम्भव है, इससे भी अधिक दूरी पर स्थित किन्हीं आकाशगंगाओं का पता भविष्य में लग सके !

सर्पिल आकार की एक नीहारिका, चारों ओर गैसों के बादल तथा तारे छिटकाती हुई



आरहीनियस



सत्यकुमार

बात तब की है जब विज्ञान-जगत् में विद्युत के प्रवेश से तहलका मचा हुआ था। रसायनशास्त्रियों के सम्मुख विद्युत की चकाचौंध ने कितने ही प्रश्नचिह्न खड़े कर दिये थे। रसायनशास्त्र की कितनी ही गुत्थियाँ सुलझने के लिये सैद्धान्तिक आधार की प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हीं दिनों परिश्रमी युवक आरहीनियस ने उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप भौतिक रसायन की स्थापना की जा सकी। स्वीडन का वह पहला व्यक्ति था जिसे नोबुल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

स्वीडन के विज्क नामक गाँव में १६ फरवरी, १८५६ को आरहीनियस का जन्म हुआ था। तीन वर्ष की अवस्था से उसने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। वह कुशाग्र-बुद्धि था और शैशव से ही प्रकृति के रहस्य जानने की जिज्ञासा उसमें कूट-कूटकर भरी थी। गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद उसने उप्सला विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। गणित और विज्ञान उसके प्रिय विषय थे। आगे चलकर उसने रसायन-शास्त्र का भी विशेष अध्ययन किया।

आरहीनियस आयनीकरण - सिद्धान्त (Theory of Ionisation) के लिये

प्रसिद्ध है। यह विषय उसने अपने डाक्टरेट में अनुसंधान के लिये चुना था। किसी पदार्थ के विलयन में विद्युत प्रवाहित करने से क्या क्रिया होती है, यह तब तक स्पष्ट नहीं था। आरहीनियस से पूर्व अनेक वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये परन्तु वे सन्तोषजनक नहीं थे। आरहीनियस भी इसी समस्या का हल खोजने में जुट गया। उसके लिए न दिन रहा, न रात; न समय पर भोजन, न विश्राम। बस, विलयन, विलयन और विलयन ! भिन्न-भिन्न रंग और सान्द्रता के। तोलना, नापना और उनमें विद्युत प्रवाहित करना। दो वर्ष तक यही क्रम रहा। यह उसका सौभाग्य था कि उसने तनु (dilute) विलयन बनाये थे। उससे पूर्व सान्द्र (concentrated) विलयनों पर ही प्रयोग करते रहनेवाले असफल हो चुके थे। १७ मई, १८८३ को सारी रात जाग कर आरहीनियस ने कुछ तो निष्कर्ष निकाल ही लिया।

आज तो आयनीकरण-सिद्धान्त सर्व-विदित है। जब किसी विद्युत-विच्छेद्य (electrolyte) को पानी अथवा अन्य किसी उपयुक्त द्रव में घोला जाता है तो वह दो प्रकार के कणों में बँट जाता है। उन

कणों को आयन (ions) कहते हैं। ये कण धन अथवा ऋण विद्युत से आवेशित होते हैं और किसी भी विलयन में इन दोनों की संख्या समान होती है। विद्युत-विच्छेद्य पदार्थ के अणु विघटित होकर आयन बनाते हैं और विपरीत प्रकृति के आयन एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर उदासीन अणु बनाते हैं। इस प्रकार एक गतिशील सन्तुलन बन जाता है। आयनीकरण की मात्रा मुख्यतः विलयन की तनुता, ताप और विद्युत-विच्छेद्य की प्रकृति पर निर्भर करती है।

यह आयनीकरण रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान तथा वैश्लेषिक विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इस तथ्य को वैज्ञानिक जगत ने बड़ी मुश्किल से अपनाया था। डाक्टरेट के लिये अपनी थीसिस में आरहीनियस को उस समय प्रचलित कुछ गलत मान्यताओं का जान-बूझकर सहारा लेना पड़ा था, अन्यथा कट्टरपंथी परीक्षक उसे डिग्री देते ही नहीं! बड़ा एहसान जताकर उसे डिग्री दी गयी और उसके खोजपूर्ण निबन्ध की जरा भी सराहना नहीं की गई। आयनीकरण के सिद्धान्त की स्थापना के लिये आरहीनियस ने भरपूर प्रयत्न किया। उसने अपने एक अध्यापक क्लीव से इस सम्बन्ध में परामर्श लिया। क्लीव उस समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। होलमियम और थूलियम नाम के दो तत्त्वों की खोज का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। आरहीनियस के कार्य में उन्होंने कुछ रुचि नहीं ली। एक अन्य वैज्ञानिक ने भी ३० वर्ष पूर्व इसी प्रकार का कुछ कार्य किया था। आरहीनियस ने उसे भी लिखा पर कोई उत्तर नहीं मिला। रुचि तो दूर, लोग इस सिद्धान्त का ही विरोध करते थे। प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मेण्डलीफ भी, जिनके प्रति विज्ञान-जगत आवर्त-तालिका के लिये कृतज्ञ है, इस सिद्धान्त के

कट्टर विरोधी थे। बाद में ओसवाल्ड, कोलरोश व वांटहाफ नामक वैज्ञानिकों के अथक प्रयत्नों से इस सिद्धान्त की रसायन-जगत में स्थापना हो सकी। रसायन पर ओसवाल्ड की अपनी पत्रिका थी और उसके पास दूर-दूर से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। इन दोनों माध्यमों से उसने आरहीनियस के सिद्धान्तों का धुआंधार प्रचार किया। ओसवाल्ड के ६०वें जन्म-दिवस पर अपने संस्मरणों की *From My Youth* नामक पुस्तक उसे समर्पित करके आरहीनियस ने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी।

स्टाकहोम विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद पाने के लिये भी आरहीनियस को संघर्ष करना पड़ा था। उसके देशवासी उसकी विद्वत्ता से प्रभावित नहीं थे और प्रमुख वैज्ञानिकों को उसके क्रान्तिकारी सिद्धान्तों पर आस्था नहीं थी। आयन जैसी वस्तु जो दिखाई न पड़े, जिसका कोई भौतिक प्रमाण न दिया जा सके, उसे उस समय के वैज्ञानिक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। आरहीनियस की नियुक्ति के लिये दो बार जाँच-आयोग की नियुक्ति हुई। यदि जर्मनी की बुन्सन सोसाइटी ने आरहीनियस को सम्मानित न किया होता तो सम्भवतः उसे यह पद प्राप्त न हुआ होता। आखिर हारकर उसके देशवासियों को भी उदारता दिखानी पड़ी।

आरहीनियस ने उस पद पर अभूत-पूर्व क्षमता से अनुसंधान कार्य किया। फल-स्वरूप दो वर्ष में ही उसकी उन्नति अध्यक्ष के पद पर हो गई। लन्दन की राँयल सोसायटी ने उसे 'डेवी मेडल' से पुरस्कृत किया। १९०३ में उसे नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया। १९०४ में उसने अमरीका की यात्रा की और रसायनशास्त्र के सिद्धान्तों पर भाषण दिए। अमरीकन

केमिकल सोसायटी ने उसे 'विलार्ड गिब्स मेडल' से सम्मानित किया। १९०५ में उसे स्वीडन के सम्राट ने नोबुल इंस्टीट्यूट में भौतिक रसायन का प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त किया। इस पद पर वह १९२७ तक रहा। केम्ब्रिज तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों ने भी उसे सम्मानार्थ डाक्टरेट प्रदान किए। १९११ में उसने दूसरी बार अमरीका की यात्रा की। इस बार उसने विलयनों के सिद्धान्त पर भाषण दिए।

आरहीनियस का पारिवारिक जीवन सुखी था। वह प्रयोगशाला में भी उतना ही प्रसन्न रहता था जितना परिवार में। उसका पहला विवाह सोफिया रडनेक से १८९४ में हुआ था। उसके स्वर्गवास के पश्चात् दूसरा विवाह १९०५ में मेरिया जोआनसन से हुआ। पहली पत्नी से एक पुत्र व दूसरी से एक पुत्र व दो पुत्रियों का जन्म हुआ।

आरहीनियस कई भाषाओं का ज्ञाता था। उसने अनेक पुस्तकें व अनुसंधान-पत्र जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच व स्वीडिश में लिखे। उसकी कई पुस्तकों के अनेक संस्करण उसके जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुके थे। उसकी

सभी पुस्तकें रसायनशास्त्र से सम्बन्धित नहीं हैं। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने विज्ञान के अनेक पहलुओं का सफल अध्ययन किया था। उसकी कुछ पुस्तकों के नाम हैं: 'वर्ल्ड्स इन दी मेकिंग' 'लाइफ आफ दी यूनिवर्स', 'डेस्टिनी आफ दी स्टार्स' 'इम्यूनो-केमिस्ट्री', 'स्मालपाक्स एपिडेमिक' इत्यादि। उसकी अन्तिम पुस्तक रसायनशास्त्र की 'केमिस्ट्री इन माडर्न लाइफ' १९२५ में प्रकाशित हुई। उसकी पुस्तकों की भाषा बहुत सरल व भाव बहुत स्पष्ट हैं। जन-साधारण भी उस भाषा को समझकर विषय में रस ले सकता है।

जनसेवा के कार्यों में भी आरहीनियस सदा आगे रहता था। प्रथम विश्व-युद्ध में बन्दी वैज्ञानिकों की मुक्ति के लिए उसने अथक प्रयत्न किए।

१९२७ में उसने डाइरेक्टर के पद से अवकाश ग्रहण कर लिया। तब उसके देशवासियों ने दिल खोलकर उसका सम्मान किया। उसके लिये अच्छी पेंशन भी निश्चित कर दी। अन्तिम दिनों में उसके भाग्य में विश्राम नहीं लिखा था। २ अक्टूबर, १९२७ को वह अनन्त पथ की ओर चल पड़ा। ●

जल्दबाजों का अस्पताल

कभी-कभी बच्चे भी बड़ी बेतुकी जल्दबाजी कर जाते हैं, ऐसी कि पूरे नौ महीने से पहले, आठवें, सातवें या छठवें महीने में ही आ जाना चाहते हैं! ऐसे बच्चों का एक अनुठा अस्पताल पश्चिम जर्मनी के मेइन्ज नगर में दस लाख मुद्राओं के खर्च से बनाया गया है। बस, किसी भी जल्दबाज बच्चे के होने की खबर मिलने दीजिए, नर्स और उष्मक-कला युक्त एम्बुलेंस दरवाजे पर पहुँच जायगी और पूरी सावधानी से बच्चे को ले आयेगी। प्रकृति के नियमानुसार नौ महीने पूरे होने तक के शेष दिन उस बच्चे को उक्त अस्पताल में शीशे के कक्ष में बिताने पड़ते हैं। उसके चारों ओर सर्वथा कीटाणुरहित तथा शुद्ध वातावरण इतनी सख्ती से रखा जाता है कि डाक्टर और नर्स भी बगैर आवश्यक शुद्धि के प्रवेश नहीं कर सकते। बच्चे के माँ-बाप को तो बाहर ही से शीशे में झाँककर तसल्ली कर लेनी पड़ती है। बच्चे को आवश्यक पोषण तथा इवसन एवं अन्य क्रियाएं यन्त्रों द्वारा सम्पन्न करायी जाती हैं। नौ महीने पूरे होने पर जब बच्चा पहली बार सूरज की रोशनी में आँख खोलता है तब अभिनन्दन सहित उसे उसके माँ-बाप को सौंप दिया जाता है।



कुमारी सरला

क पड़े आप बदलते हैं, पेड़-पौधे बदलते हैं (नयी पत्तियों के रूप में) तो जीव-जन्तु भी बदलते हैं। हम और आप तो केवल शोभा के लिये बदलते हैं, किन्तु पेड़-पौधे और जीव-जन्तु तो शोभा से कहीं अधिक अपनी वृद्धि तथा विकास के लिए बदलते हैं। जीव-जन्तुओं में इसका एक अतिरिक्त प्रयोजन और भी है। वह है, शत्रु से बच निकलना। समय-समय पर अपना केंचुल बदलना ही इनके लिए कपड़े बदलना है। शत्रु द्वारा हाथ, पांव, पूंछ, चाहे कुछ भी पकड़े जाने पर तो ये यों भाग खड़े होते हैं मानो ट्रेन का डब्बा ही अलग हो गया हो ! पकड़ा हुआ अंग अलग और ये अलग ! उस दूटे हुए अंग का इन्हें दुःख भी नहीं होता, क्योंकि शीघ्र ही समय पाकर वह अंग नया उग आता है। केकड़े, छिपकली तथा सर्प जाति के जन्तुओं में यह प्रवृत्ति अधिकतर पायी जाती है।

मकड़ी

मकड़ी अपने आठों पांवों से चाहे जहाँ फुदकती फिरती है। वे लम्बे पांव ही इसे कभी-कभी संकट में डाल देते हैं। उस संकट

से बच निकलना भी यह खूब जानती है। जहाँ शत्रु ने इसका पांव लपका, यह उस पांव को ही छोड़कर भाग निकलती है। बेचारे शत्रु के पल्ले रह जाता है केवल पांव—वह टूटा पांव ! जल्द ही उस जगह नया पांव उभरना शुरू हो जाता है। बाहर निकलने और बढ़ने के लिए केंचुल बदलने तक ठहरना पड़ता है। केंचुल बदलने की क्रिया बड़ी कष्टप्रद और श्रमसाध्य है। इन प्राणियों को केंचुल बदलने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ऊपर का खोल अवस्था के अनुसार बढ़ते-फैलते शरीर का साथ नहीं दे पाता और प्राणी का दम घोंटता तथा भींचता रहता है। अतः बार-बार केंचुल बदलना आवश्यक हो जाता है। मकड़ी को तो शिशु-अवस्था से पूर्णतः विकसित होने तक ८-९ बार पुराना चोला बदलकर नया धारण करना पड़ता है। इस क्रिया के लिए मकड़ी अपने ही काते हुए एक मजबूत धागे के सहारे उलटी लटक जाती है और आठों पांवों को सिकोड़कर जोर लगाती है। कई बार जोर लगने के बाद पीठ की ओर से खोल चटखने लगता है। तभी मकड़ी अपने सिर

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

Book II.....Price : Re.1'00

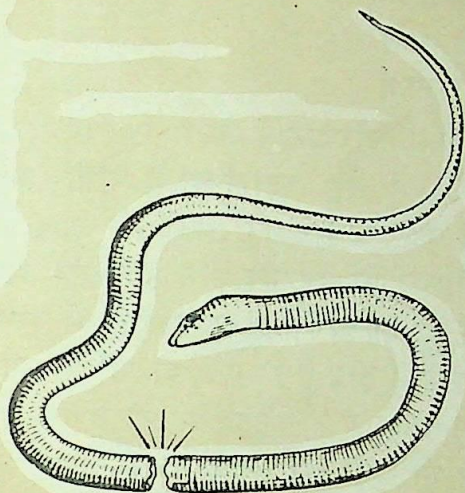
Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.

Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



छिपकली परिवार का यह ग्लास स्नेक वास्तव में छिपकली ही है। इसकी पूँछ क्या है, शीशे की छड़ है जो तड़ से टूटना जानती है तो समय पाकर जुड़ना भी !

से लेकर शरीर के हर अंग को बारी-बारी से निकालना शुरू करती है। पाँवों का नम्बर आने पर बेचारी की मुसीबत आ जाती है। एक-एक पतली टाँग को तंग फुँकनी जैसे खोल से निकालना सहज नहीं होता। कभी-कभी तो ५००-६०० तक भटके लगाने पड़ते हैं !

ग्लास स्नेक

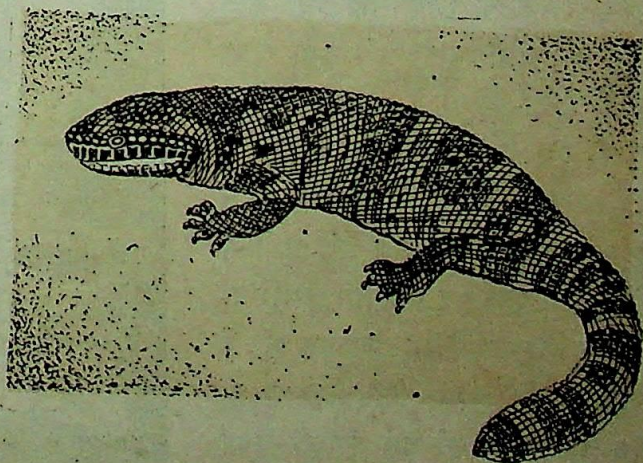
छिपकली परिवार का यह प्राणी मेक्सिको तथा एरिजोना प्रदेशों में पाया जाता है। इसके हाथ-पांव नजर नहीं आते तथा यह चार फुट तक लम्बा पाया जाता है; इसीलिए इसे स्नेक अर्थात् सर्प कहा जाता है। ग्लास-स्नेक इसलिए कहते हैं कि मौका पड़ने पर इसकी पूँछ शीशे की तरह चटखकर टूट जाती है और समय पाकर पुनः जुड़ भी जाती है। इसी परिवार में गिला मान्स्टर (Gila Monster)

भी है। चमकीली लाल चित्तियोंयुक्त इसका शरीर दूर से ही नजर आ जाता है। इसकी पूँछ इसके लिये भोजन-भण्डार का काम देती है। भरपेट खा लेने के बाद भी काफी भोजन इसमें जमा कर लेने के कारण यह फूलकर कुप्पा हो जाती है। इसलिए जल्द-जल्द भोजन तलाश करने की जरूरत नहीं पड़ती। आक्रमणकारी प्राणी भी इससे बचकर ही चलते हैं; क्योंकि इसकी चपेट में आ जाने पर उन्हें छुटकारा नहीं मिल पाता।

छिपकली

इसके पाँव तो काफी छोटे होते हैं लेकिन पूँछ लम्बी और नाजुक होती है। आक्रमण-कारी पहले पूँछ को ही धर दबाता है। तुरन्त ही यह अपनी पूँछ को यों भटक देती है मानो काटकर ही फेंक दी हो ! जब तक शत्रु इसकी छटपटाती पूँछ का तमाशा देखता रह जाता है, यह साफ बच निकलती है। पूँछ की कीमत पर जान बचा ले जाने का सौदा इसे महंगा नहीं पड़ता। कुछ दिनों बाद नयी पूँछ उग आती है। कई छिपकलियाँ तो पूँछ दबोचने का मौका ही नहीं देती और मारे डर के या शत्रु को उल्लू बनाने के लिए पहले ही अपनी पूँछ उसकी भेंट चढ़ा देती

छिपकली-परिवार का यह गिला मान्स्टर इस समय ठूस-ठूस कर खाये हुए आराम से पड़ा है। पूँछ में काफी भोजन जमा भी कर लिया है

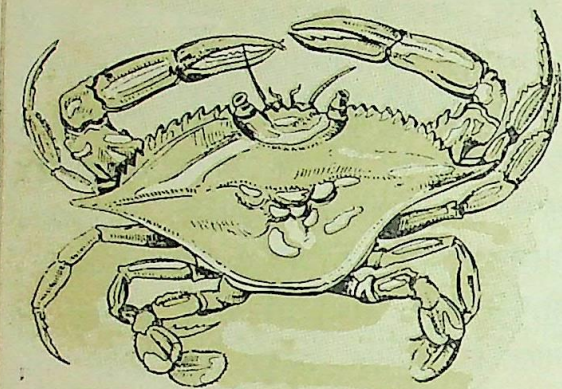
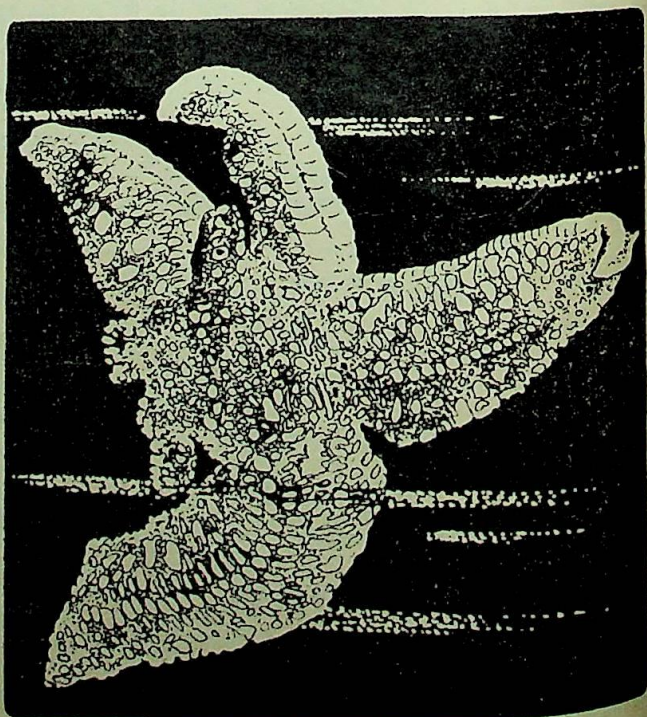


हो और कम से कम चौबीस बार अपने कपड़े बदल चुका हो ।

स्टारफिश

इसी परिवार में ब्रिटल फिश (Brittle fiish) भी है । स्टारफिश के पांचों हाथ-पांव एक सितारे की शकल में होते हैं । इसीलिए इसे उपरोक्त नाम से पुकारा जाता है । टूटे हुए अंग नए उपजा लेने की इसकी गति बड़ी तीव्र है । एक, दो या तीन-तीन हाथ-पांव एक साथ टूटने पर फौरन एक साथ उग भी आते हैं । लाल सागर तथा हिन्द महासागर में पायी जानेवाली इस परिवार की मछलियाँ तो टूटे हुए हाथ-पांवों की जगह समूची नयी मछलियाँ ही पैदा कर लेती हैं । ऐसी विलक्षण मछलियों को लिंकिंग (Linking) भी कहते हैं । काले, भूरे और नीले रंगों में ये ऐसी चटकीली होती हैं कि जिन मूंगे की चट्टानों पर विचरती हैं, उसी की भलक में घुल-मिल जाती हैं । इनके पुराने टूटे अंगों से उपजती हुई नयी मछली का नन्हा सिर ऐसे मालूम

यह है स्टारफिश, कोई भी अंग टूटने की देर नहीं, कि नया तैयार !

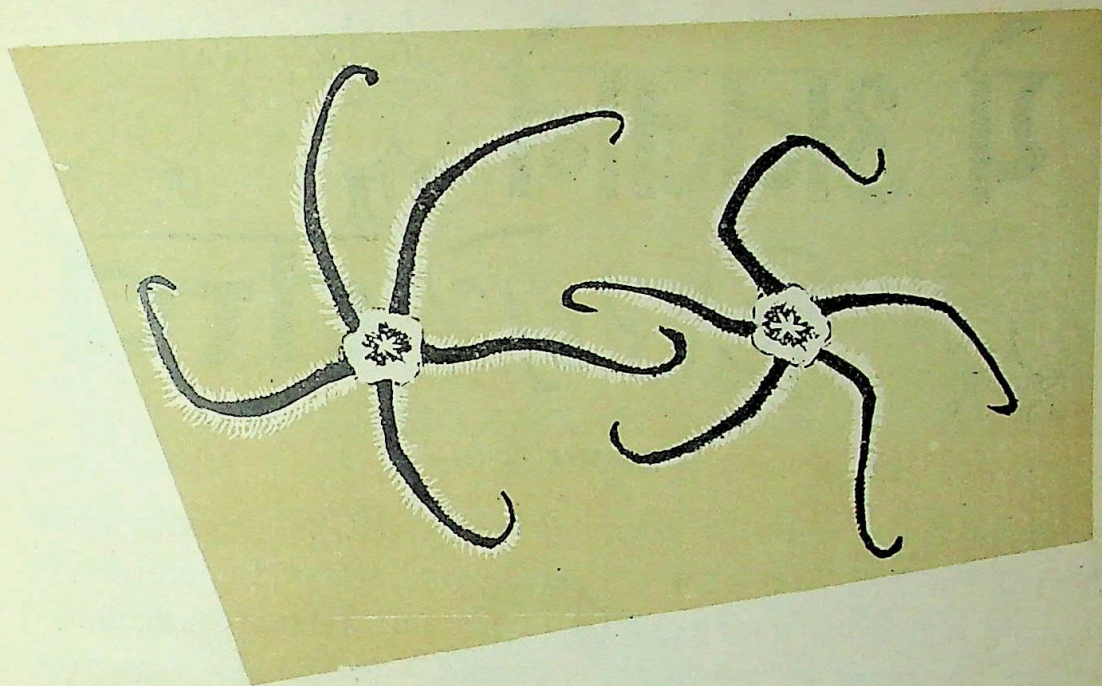


इन केकड़ा महाशय की तो बस, कुछ न पूछिये । टेढ़े-मेढ़े अंगों की कोई गिनती नहीं । खूबी यह कि जरा कोई टूटा-फूटा कि नया तैयार !

हैं । कभी-कभी तो नयी पूँछ इस तेजी से उग आती है कि पुरानी पूँछ तब तक पूरी नहीं भड़ पाती । इसलिए अक्सर दो-दो पूँछवाली छिपकलियाँ भी देखने में आती हैं ।

केकड़ा (Crab) और भींगा (Lobster)

ये घोंघे की तरह शंख जैसे अपने चारों ओर सख्त खोल लिए हुए पैदा होते हैं । जल्द ही शरीर बढ़ने के साथ-साथ उस तंग खोल में बड़ी घुटन महसूस करते हैं । जहाँ कहीं भी खोल में जरा सी दरार नजर आई कि जोर लगाकर थोड़ी और चटखा देते हैं और धीरे-धीरे बाहर निकल आते हैं । बाहर आकर भी कैद से वह छुटकारा इनके लिए सुखदायी नहीं होता । अतः जल्द ही नया खोल ओढ़ लेना पड़ता है । बगैर खोल न तो एक कदम चल सकते हैं, न तैर सकते हैं और न खा-पी सकते हैं । नया खोल कुछ ही घंटों में तैयार हो जाता है । भींगा, आमिष-आहार का एक प्रिय व्यंजन भी है लेकिन इसे तभी लिया जाता है जब कि यह नौ वर्ष का हो चुका



ये ब्रिटलफिश भी स्टारफिश की सहेलियाँ हैं। प्रत्येक दृढ़ अंग एक स्वतन्त्र मछली ही बन जाता है होता है जैसे कोई पुच्छल-तारा पानी में तैर रहा हो।

गिरगिट (डोमलियन)

यह रंग और रंगत बदलने में इतना बदनाम है कि धोखाधड़ी की उपमा के लिए इसकी समानता दी जाती है। यह एक अभिनेता की शान से कपड़े बदलता है। जरूरत हुई वहाँ चोला बदल लिया, वर्ना रंग ही बदलने से काम निकाल लिया ! जिन भाड़ियों, पत्तियों के बीच यह छिपा हुआ अपने शिकार की ताक में रहता है, उन्हीं

के रंग में रम जाता है। यहाँ तक कि पत्तियों के हिलने की नकल भी बखूबी कर लेता है। अपना पुराना केंचुल बदलकर तो यह आकर्षक साज-सज्जा में हो जाता है। यह अफ्रीका में बहुतायत से पाया जाता है। इस जाति के प्राणियों में सींगोंवाला गिरगिट भी होता है। देखने में यह जितना डरावना होता है, स्वभाव में उतना ही सीधा-सादा होता है।

इन मूक, प्राणियों के लिए चोला बदलना कितना सरल है !

मत्स्य-भोजन में भी रेडियो सक्रियता

आणविक विस्फोट के प्रयोगों ने वातावरण की रेडियो सक्रियता बढ़ाकर पृथ्वी निवासियों के लिए तो विभिन्न कठिनाइयाँ प्रस्तुत की ही हैं, सागरों में रहनेवाली मछलियों को भी बाकी नहीं छोड़ा। इस प्रभाव से दूषित मछलियों के विविध खाद्य हानिकारक सिद्ध हुए हैं और मत्स्याहारी वर्ग के लिए यह एक चिन्ता और खोज का विषय बन गया है।

झींगुर की मदद लीजिए

पौधों को चरनेवाले, पौधों को बनायेंगे। अमरीका के अनेक पश्चिमी राज्यों में अंगूर की लताओं तथा अन्य नाजुक पौधों में लग जानेवाले रोगों की रोक-थाम के लिए झींगुरों का प्रयोग किया जा रहा है। सामान्यतः तो झींगुर पौधों को चट करते रहते हैं किन्तु ये पालतू झींगुर उनके रोगाणुओं का सफाया करते रहेंगे। अतः झींगुरों को देश-विदेशों से उनकी स्वस्थता की जाँच करके मंगाया जा रहा है और विशेष नस्लें तैयार की जा रही हैं।



दिनेशकुमार गौतम

भू-रसायनज्ञों (geochemists) में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो पृथ्वी के गर्भ तथा खान-खदानों के ही अध्ययन में लगे रहते हैं। दूसरी ओर दृष्टि उठाने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। लम्बे समय तथा अथक परिश्रम और अनन्त प्रयोगों के पश्चात् भी वे बहुत कुछ सा लेकर सामने नहीं आते। जो उनके कार्य को पहचानते हैं वे जानते हैं कि उनकी वह थोड़ी सी भी उपलब्धि विशेष महत्वपूर्ण होती है। वे ऐसे-ऐसे दुष्प्राप्य धातु-तत्त्व खोजकर लाते हैं जो सामान्यतः सहज उपलब्ध नहीं। पृथ्वी में गर्भस्थ रासायनिक धातु-तत्त्वों की सूची यों तो काफी लम्बी है, किन्तु अभी तक केवल पन्द्रह ही तत्त्व ऐसे प्राप्त हुए हैं जो सरलतापूर्वक और अधिकता से प्राप्त हो सकते हैं। शेष में अनेक ऐसे हैं जो काफी अल्प मात्रा में तथा जहाँ-तहाँ बिखरे-बँटे रहते हैं। इन्हीं की खोज में हमारा आज का भू-रसायनज्ञ व्यस्त रहता है। यह कार्य ही ऐसा श्रमसाध्य है।

ये कम सुने, कम जाने नाम

सोना और प्लेटिनम इन्हीं में गिनाया जा सकता है। कितने परिश्रम से, कितने बड़े ढेर में, कितना जरा सा मिल पाता है! उन कम जाने-पहिचाने धातु-तत्त्वों के नाम अधिक प्रचलित न होने से हर किसी पुस्तक

में मिलेंगे भी नहीं। इनमें से कुछ हैं: गेलियम (Gallium), इण्डियम (Indium), थेलियम (Thallium), जर्मेनियम (Germanium), सेलेनियम (Selenium), टेल्यूरियम (Tellurium), रिहनियम (Rhenium), सीसियम (Cesium), स्केण्डियम (Scandium) तथा हैफनियम (Hafnium)। ये प्रकृति में कहाँ-कहाँ फैले हुए हैं और हमारे वैज्ञानिक किन-किन तरीकों से इनके गुणों और उपयोगों की जानकारी प्राप्त करते हैं, यह निम्न पंक्तियों से ज्ञात होगा।

विशिष्ट गुण तथा उपयोग

जिंक ब्लेण्ड (Zink Blende) को स्फेलराइट (Sphalerite) भी कहते हैं। यह कत्थई भलक लिए हुए पीले ढेलेनुमा होता है। इसे तोड़ने पर इसके टुकड़ों की सतह बड़ी चिकनी और चमकीली निकलती है। खान से निकला हुआ इसका नमूना कच्ची धातु जैसा किंचित् भी नहीं दीखता किन्तु है वही। इसमें केवल जस्ता और गंधक समभाग में होते हैं। इसकी संरचना सरल प्रतीत होती है, किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। एक्स-रे द्वारा पता लगाया गया है कि इसकी रचना बड़ी मनोरंजक है। गंधक और जस्ते के अणु बराबर होने के बावजूद इस प्रकार संगठित हैं कि जस्ते के चार

अणुओं के घेरे में एक अणु गंधक सटा हुआ है और गंधक के चार अणुओं के घेरे में जस्ते का एक अणु बैठा हुआ है। जिक ब्लेण्ड के और नमूने भी होते हैं जिनमें कथई रंग गहरा होता-होता काले रंग तक पहुँच जाता है। इसमें यह परिवर्तन लोहे की कम या अधिक मात्रा मिश्रित हो जाने के कारण होता है। लोहा भी विशेष प्रकार और नियम के अनुसार ही मिश्रित होता है। हलके कथई रंग में तो यह जस्ते के प्रति १००वें अणु को हटाकर उसकी जगह ले लेता है।

फिर यह १०० से घटाता हुआ प्रति ५०वां, ३० वां, २०वां तथा १०वां करते-करते अपना अनुपात बढ़ा लेता है। जिक ब्लेण्ड में अधिक मात्रा गंधक, जस्ता तथा लोहे की होते हुए भी इसका मूल्य इन तीनों में से एक भी पदार्थ के कारण नहीं। चौथा पदार्थ केवल १ प्रतिशत अर्थात् एक सहस्रांश के अनुपात में होते हुए भी इन तीनों पदार्थों की कुल मात्रा की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। वह पदार्थ है इण्डियम।

इण्डियम, दुर्लभ और अमूल्य पदार्थों में से है। गुणों में अल्यूमिनियम तथा थैलियम से मिलता-जुलता है। यह नर्म, श्वेत धातु साधारण ताप पर हवा-पानी में खराब नहीं होती। यही विशेष गुण इसे मूल्यवान पदार्थों की श्रेणी में रखता है।

थोरियम आक्साइड (Thorium oxide) भी ऐसा ही एक दुर्लभ पदार्थ है जो तप्त होने पर तीव्र प्रकाश देता है। इसका उपयोग गैस मेन्टल बनाने में किया जाता है। सीसियम बिल्कुल रुबीडियम की

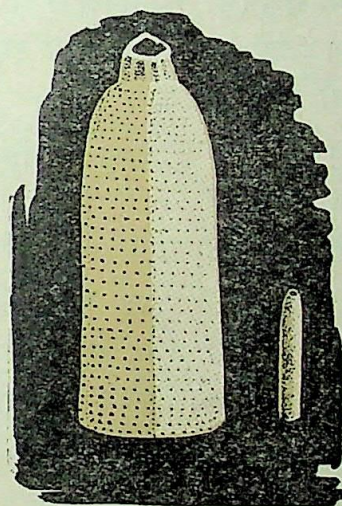
तरह है। इसका उपयोग एलेक्ट्रान-परावर्तक दर्पणों के बनाने में होता है। इसलिए फोटो-सेल के उद्योग में यह अत्यन्त उपयोगी है।

गेलियम (Gallium) एक तीसरी विचित्र धातु है। यह भी जिक ब्लेण्ड तथा अभ्रक में पाई जाती है। यह केवल 30°C ताप पर ही पिघल जाती है। अतः पारे (जो 35°C पर पिघलता है) की स्थान-पूर्ति यह भलीभाँति कर लेती है। पारे की वाष्प तो अत्यन्त जहरीली होती है जबकि गेलियम उस दोष से भी मुक्त है। अतिरिक्त

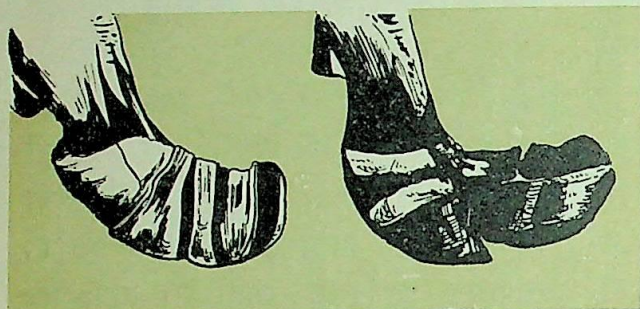
लाभ यह है कि तापमापी बनाने में पारे की दौड़ 40°C से 360°C तक ही सीमित है, क्योंकि पारे का क्वथनांक 360°C है। इसके मुकाबले गेलियम का तापमापी 35°C से लेकर $700^{\circ}\text{C}/800^{\circ}\text{C}$ के मध्य शीशा पिघलने तक, तथा क्वार्ट्ज शीशा लें तो 1500°C तक का बना सकते हैं क्योंकि गेलियम का क्वथनांक 2300°C है। इसमें एक विचित्रता और भी है। बिस्मथ, पैराफिन,

पिग आइरन तथा बर्फ की तरह यह अपने ही द्रव में तैर लेता है। अन्यथा, अन्य धातुएँ प्रायः अपने द्रव में डूबी रहती हैं।

यह तो प्रत्यक्ष है कि तांबा-मिश्रित धातु समुद्र के खारे पानी के प्रभाव से क्रमशः खराब होती रहती है। पनडुब्बियों तथा अन्य जलयानों में जहाँ-जहाँ तांबे का उपयोग अनिवार्य है वहाँ यह भी सम्भव नहीं कि बार-बार किसी रासायनिक पेंट आदि से उसे सुरक्षित रखा जाए। इण्डियम की उचित मात्रा मिली हुई वह धातु उस हानि का देर तक मुकाबला किए रहती है। धातु की



थोरियम डाइ-आक्साइड का उपयोग गैस-मेन्टल बनाने में किया जाता है



सेलेनियमयुक्त अस्वास्थ्यकर घास के मैदानों में चरती हुई गायों के खुर इस प्रकार रोगाक्रान्त हो जाते हैं

क्षमता काफी बढ़ जाती है। इण्डियम अपने सहयोग द्वारा चाँदी की चमक काफी बढ़ा देता है। अतः शक्तिशाली सर्चलाइट के दर्पणों में इण्डियम का उल्लेखनीय सहयोग रहता है।

कैडमियम के कुछ उपयोग तो ज्ञात ही होंगे ! एक उल्लेखनीय उपयोग और भी है। कभी ट्राम की छत पर लगे उस ढाँचे (bow) को देखिएगा जिस पर ऊपर का तार घिसता चलता है। ढाँचे में उस जगह पड़ा हुआ गड्ढा बतायेगा कि घिसाई कितनी अधिक होती है। वही हाल ऊपर के विद्युत-वाहक ताँबे के तार का भी समझिए। अतः मजबूती के लिए उस तार की धातु में कैडमियम मिलाना बहुत आवश्यक हो जाता है।

सेलेनियम गंधक का निकट सम्बन्धी है। चाँदी, सीसा और ताँबे के सल्फाइड-युक्त खनिज पदार्थों में रहता है। व्यावसायिक रूप से यह सल्फ्यूरिक एसिड उत्पादन के अन्तर्गत चैम्बर में बचे हुए द्रव्य से तथा

विद्युत विच्छेदन द्वारा ताँबे की शोधन क्रिया में धनाग्र (anode) पर एकत्र हुए द्रव्य से प्राप्त किया जाता है। इस पर पड़नेवाले कम या अधिक प्रकाश से इसकी विद्युतवाहक शक्ति घटती-बढ़ती रहती है। इस विशेषता के कारण टेलीग्राफिक रेडियो द्वारा चित्र भेजने की क्रिया में इसका उपयोग होता है। ऐसे स्वचालित यन्त्रों में भी इसका उप-

योग आवश्यक होता है जो घूमती हुई प्रकाशमान तथा अप्रकाशमान वस्तुओं का लेखा अंकित करती हैं। साथ ही, प्रकाश पुंज की शुद्ध माप इसी के द्वारा सम्भव हो सकी है।

कांच के उद्योग में भी सेलेनियम बहुत उपयोगी है। कांच की सतह में हरे रंग की झलक लौह-तत्त्व के मिश्रण के कारण होती है। उसे सेलेनियम ही दूर कर सकता है। अतः विशुद्ध, कांच बनाने में यह पदार्थ बहुत उपयोगी है, क्योंकि चश्मे, दूरदर्शी तथा सूक्ष्मदर्शी आदि के लेंस सर्वथा निर्मल कांच के ही बनाए जा सकते हैं।

इस सीमित स्थल पर इन समस्त धातु-तत्त्वों का वर्णन सम्भव नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि इन तत्त्वों की खोज पग-पग पर नया ही पथ खोलने की क्षमता रखती है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करने की गुंजाइश है।

अल्यूमिनियम के पुल

सोवियत संघ में निश्चित क्रम से सफलतापूर्वक इस्पात के पुलों की स्थापना अल्यूमिनियम के पुलों द्वारा हो रही है। यह प्रयोग-सिद्ध है कि अल्यूमिनियम मजबूती में तो इस्पात के मुकाबले है और वजन में केवल एक-तिहाई ही बैठता है। इसके अतिरिक्त, इस्पात में आसानी से लग जानेवाले जंग और क्षरण के दोषों से भी यह मुक्त रहता है। वजन का उल्लेखनीय हलकापन इसे किसी भी ऊँचाई पर आसानी से बिठाने में सहायक होता है। यह इतना सुविधाजनक अवश्य है फिर भी अल्यूमिनियम तथा उसके लिए आवश्यक धातु मिश्रणों का कार्य काफी जटिल और पेचीदा है।

काके बड़े दर्शन होते



ओमशंकर बाजपेयी

पौधों में बीजांकुरण से लेकर अन्त तक की समस्त जीवनक्रिया कुछेक 'मास्टर-यौगिकों' द्वारा नियन्त्रित होती रहती है। वे मास्टर यौगिक हारमोन्स कहलाते हैं। हारमोन्स की कार्यपद्धति बड़ी सुव्यवस्थित, जटिल तथा विलक्षण रहती है। यद्यपि हारमोन्स थोड़ी ही मात्रा में रहते हैं तथापि वह अल्प मात्रा ही सम्पूर्ण जीवनक्रिया को प्रभावित करती है। छुइमुई (mimosa) एक छोटा सा साधारण पौधा है किन्तु इसकी एक विशेषता सभी को आकर्षित कर लेती है। जरा इसकी पत्तियों को उंगली से छू दीजिए। आप देखेंगे कि पत्तियाँ तुरन्त बन्द होने लगती हैं! जरा और छूने पर तो वे बिल्कुल ही बन्द हो जाएंगी और समूचा पौधा मानो निर्जीव होकर लटक पड़ेगा। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे चेतना लौटने पर पत्तियाँ पूर्ववत् हो जाएंगी। यह क्रिया इनमें रहे हुए एक प्रकार के हारमोन के कारण ही होती है। यह किसी भी कठोर वस्तु के स्पर्श को बिजली की गति से ग्रहण करके एक कोशिका से दूसरी और दूसरी से तीसरी में दौड़ा देता है। कोशिका-द्रव्य साइटोप्लाज्म (cytoplasm) भी उत्तेजित हो उठता है

और वह अपने अन्दर का जल-भाग एक निश्चित मात्रा में मध्य-स्थानों पर एकत्र कर देता है। यह उत्तेजना-क्रम सिरे की पत्तियों से पत्र-मूल की ओर चलता है। इसी तनाव के घटने-बढ़ने से पत्तियाँ मुँदती-खुलती हैं। उत्तेजना का प्रभाव समाप्त होने पर वही जल-भाग पूर्ववत् बँट जाता है और तनाव तथा पत्तियाँ आदि ज्यों की त्यों सचेत हो जाती हैं। सभी पौधे ऐसी विशेषता प्रदर्शित नहीं कर पाते। इसका अर्थ यह नहीं कि उन अन्य पौधों में यह संवेदनशीलता होती ही नहीं। पौधों की अधिकांश क्रियाएँ इतनी मन्द और अप्रत्यक्ष होती हैं कि हम उन्हें देख या पहचान नहीं पाते। हां, वैज्ञानिक अवश्य उन्हें ज्ञात करके हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है।

वनस्पति और संगीत; कुछ नये प्रयोग

नए-नए प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा रहा है कि पौधों के लिए उनका प्रिय वातावरण खड़ा कर दिया जाए तो उनकी प्रत्येक क्रिया तीव्र हो उठती है और वे भी खुशी से झूमने लगते हैं। प्रो. टी. एन. सिंह ने इसी विषय में प्रयोगों द्वारा अनेक मनोरंजक परिणाम प्राप्त किए

हैं। उनका मत है कि पौधे संगीत पसन्द करते हैं। वे भी हमारी भाँति ही संगीत की स्वर-लहरी से भूम उठते हैं और तीव्रता से विकसित होते हैं। शायद इसी कारण कृष्ण की मोहिनी मुरली कुंजवनों की सुन्दरता बढ़ा देती थी, हर कली, हर फूल खिला देती थी। ऐसे ही एक प्रयोगस्वरूप जब पौधों को रिकार्ड-संगीत सुनाया गया तो शीघ्र-विकास के लक्षण स्पष्ट हो उठे।

इस प्रकार के प्रयोग गेहूँ, जौ, चावल तथा विभिन्न पौधों पर भी सफलतापूर्वक किए गए। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी ऐसे प्रयोग किए गए हैं। इसका रहस्य यही समझा जा सकता है कि पौधों की कोशिकाओं का जीवद्रव्य साइटोप्लाज्म सजीव है और उसमें ध्वनि, विशेषतः संगीत स्वर-लहरी ग्रहण करने की क्षमता है। परिणामतः पौधे के हारमोन्स की सक्रियता बढ़कर फलने-फूलने का वेग बढ़ा देती है। वे ही हारमोन्स प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया भी तीव्र करके पोषक तत्वों के निर्माण में सहायक होते हैं।

चिकित्सक हारमोन्स

हारमोन्स पौधों की अन्य प्रकार से भी सहायता करते हैं। किसी पौधे को कहीं चोट लग जाए तो चिकित्सक के रूप में उसके उपचार के लिए तुरन्त पहुँच जाते हैं। ट्राउ-मेटिक एसिड या डाइकार्बोक्सिलिक एसिड ऐसे ही दो पदार्थ हैं जो हारमोन्स की भाँति चोट के स्थान को जीवाणुओं से सुरक्षित रखने तथा नये अंग (tissues) को बनाने में सहायता करते हैं। अब तक कृषक पौधों की केवल उत्पादकता पर ही निर्भर रहता था और जैसे भी फल आ जाएँ, अपना भाग्य समझकर सन्तोष कर लेता था। अब तो गस्टा-फसन नामक वैज्ञानिक ने फलों का नियंत्रण करनेवाले हारमोन्स की खोज करके इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। परा-गण के उपरान्त शीघ्र फल-निर्माण में पेन्टो-थिनिक एसिड और एडनीम हारमोन्स सहायक होते हैं। फल और बीज पर ही तो पौधे का भविष्य निर्भर रहता है ! इन्हीं हारमोन्स पर पौधों की वंश-परम्परा भी निर्भर रहती है।

छुइमुई का पौधा



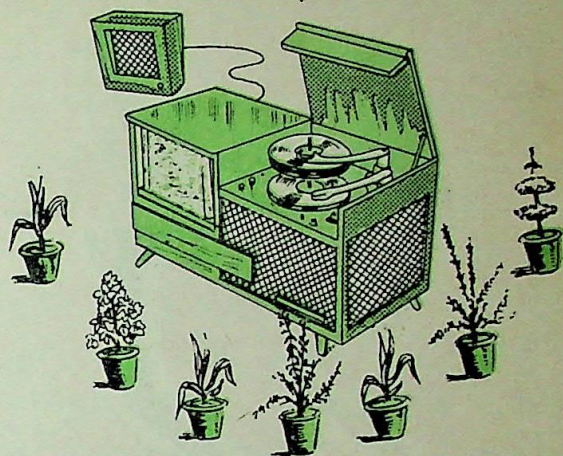
फल में गूदा ही गूदा, बीज नहीं !

गस्टाफसन ने कुछ पौधों से हारमोन्स निकालकर उनका घोल जब टमाटर के फूलों पर छिड़का तो पाया कि परागण बगैर ही उन फूलों में फल लग गए ! यों, इस प्रयोग ने बिना परागण, फल उत्पन्न करने का नया मार्ग सुझा दिया। यह पाया गया कि इस प्रकार उत्पन्न किए गए फलों में रस, गूदा और स्वाद अधिक तथा बीज कम और मुलायम होते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से भी यही अधिक उपयोगी माना जाएगा कि फलों में रस, गूदा और स्वाद अधिक से अधिक हो, बीज कम से कम। इन्हीं हारमोन्स के द्वारा बीजरहित टमाटर भी उपजाना सम्भव है।

इतना ही नहीं, कच्चे फलों का टूट गिरना भी हारमोन्स द्वारा रोका जा सकता है। 2-4-D नामक रासायनिक द्रव यदि हलके घोल के रूप में पेड़-पौधों पर छिड़का दिया जाए तो कच्चे फलों का गिरना रुक जाएगा। अतः मूल्यवान फलों के बगीचों में, जहाँ सेब, सन्तरा, नाशपाती, नींबू, आदि उगाये जाते हैं, वहाँ वृक्षों पर 2-4-D का छिड़काव करने से फल समय से पूर्व नहीं गिरते। इस प्रकार उनकी अनावश्यक क्षति रुक जाती है।

हारमोन्स-युक्त कलम अधिक सम्पन्न

जिन पौधों में कलम (grafting) द्वारा प्रजनन कराया जाता है, उनमें भी हारमोन्स अपना महत्त्व रखते हैं। एक टहनी को काटकर उसका सिरा मिट्टी में गाड़ दिया जाता है, तो कुछ समय के पश्चात् नयी जड़ें जम जाती हैं और वह कलम लग जाती है। इसमें वास्तविकता यह है कि तने की निर्माण-क्रिया का नियन्त्रण करनेवाला हारमोन IAA अन्य शर्कराओं की सहायता द्वारा कटे हुए भाग से नवीन जड़ें निकालने में



संगीत की सुखानुभूति से पौधे ही क्यों वंचित रहें !
प्रयोग कर देखिये, निराशा तो होगी नहीं

समर्थ होता है। IAA के प्रभाव से उन पौधों के कटे हुए तनों में भी जड़ें निकल आती हैं जिनमें बीज-निर्माण द्वारा प्रजनन होता है, जैसे मटर आदि। इस प्रकार कृत्रिम ढंग से जड़ें प्राप्त किए हुए पौधे अधिक तीव्रता से बढ़ते हैं। अतः बागबानी की दृष्टि से यह बहुत ही उपयोगी हारमोन है। IAA अथवा इससे मिलते-जुलते हारमोन युक्त पौधों की कलमें दूर-दूर तक भेजी जा सकती हैं और वहाँ उन पौधों को सुगमता से जमाया जा सकता है।

पोषक है तो शोषक भी !

प्रायः देखा गया है कि अमुक पदार्थ यदि एक का पोषक है तो दूसरे का शोषक भी बन जाता है। 2-4-D हारमोन भी इसका अपवाद नहीं। एक ओर तो 2-4-D का हलका घोल गेहूँ, जौ, धान, इत्यादि के खेतों में छिड़कने से फसल को उत्तम और स्वस्थ बनाता है, दूसरी ओर साथ ही उगे हुए कुछ अन्य पौधों को नष्ट भी करता है। पौधे इन हारमोन्स को पत्तियों द्वारा ग्रहण करते हैं, जड़ों द्वारा नहीं। अतः इस विशेषता का भी वैज्ञानिकों ने पूरा लाभ उठाया है। गेहूँ के खेत में अनेक अनावश्यक पौधे स्वतः उग आते हैं, और खेत का पानी तथा पोषक तत्त्व



खींचते रहते हैं। उन निरर्थक पौधों के कारण उपयोगी फसल घाटे में रहती है। यदि इनकी रोकथाम न की जाए तो ये निश्चय ही किसान के लिए विकट समस्या बन जाएँ। इसी कारण किसान इन पौधों को उखाड़ फेंकता है। यदि इनकी जड़ें पृथ्वी में रह जाएँ तो ये पुनः उग आते हैं। इसलिए आजकल खेतों में अनावश्यक पौधों को, जिन्हें बीड़ज (weeds) कहते हैं, 2-4-D के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

2-4-D की इस विशेषता के कारण 'बीड़-किलर' भी कहा जाता है। हारमोन्स की इस शृंखला में Indolebutyric acid, Naphthalene acetic acid तथा B-Naphthoxy acetic acid उल्लेखनीय हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि ये हारमोन्स पौधों के अन्दर निर्मित नहीं होते, फिर भी पौधों की वृद्धि में सहायक हैं। इन पदार्थों की रचना IAA की तरह है जिसे पौधे स्वयं बनाते हैं।

इन यौगिकों की सफलता से उत्साहित होकर वैज्ञानिकों ने अन्य अनेक यौगिकों का निर्माण किया है और उनके सफल परीक्षण भी किए हैं। इनकी सहायता से हम अधिकतम लाभ उठा सकेंगे, तथा खाद्याभाव की समस्या काफी अंश तक हल की जा सकेगी।

हारमोनयुक्त कलमें लगाकर अधिक स्वस्थ और पुष्ट पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं

१. तराशी हुई कलमें, २. कलमें रोप दी गयीं

यह मकान नहीं गिरेगा

तुर्कमेनिया के अश्खाबाद नगर का एक नव-निर्मित मकान आज यह कहने में समर्थ है कि धरती भले ही करवट बदलती रहे, मकान की नींव भूकम्प के उन धक्कों को पी जायगी। तीन सोवियत इंजीनियरों ने मिलकर इस मकान की नींव बनायी है। मकान धरती पर नहीं, धातु-निर्मित आधारों पर खड़ा है जो धरती के कम्पनों को जज्ब कर लेते हैं। ऐसे ही दूसरे एक मकान की नींव हवा की एक परत पर स्थित है जो भूकम्प की लहरों से मकान को अछूता ही रखती है।

विश्व संसार



तीरंदाज फूंक !

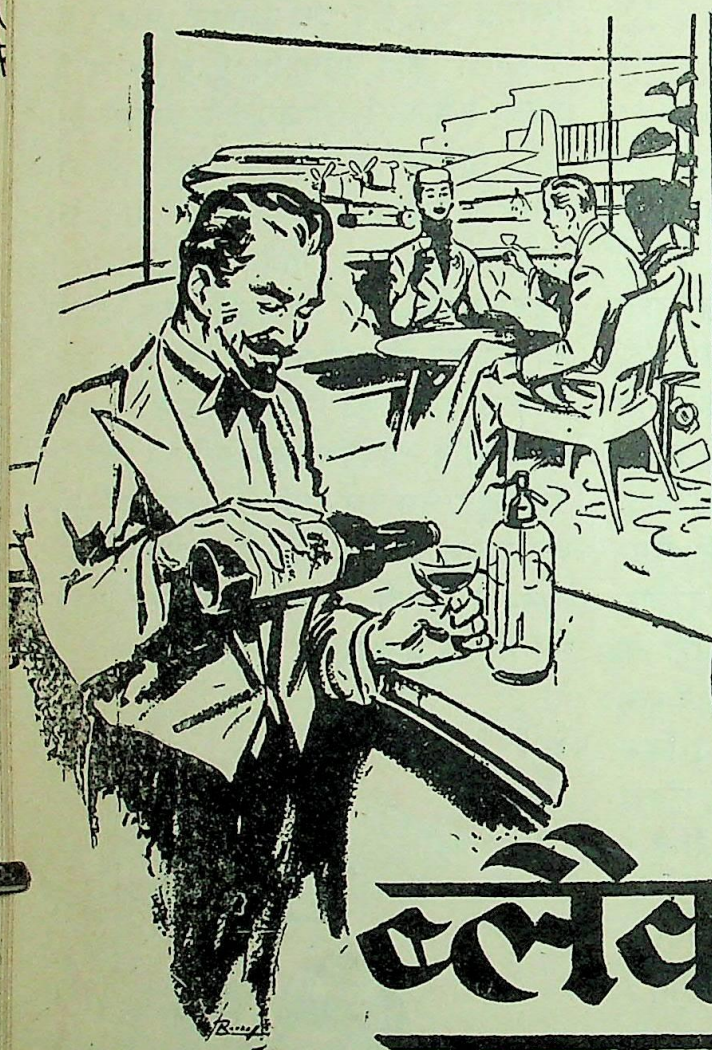
साधारणतया तीरंदाजी हस्तकौशल का विषय है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इसमें बगैर हाथ दिखाए ही असाधारणता पैदा किए हुए हैं। तीरंदाजी के लिए उन्हें हाथों का प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वे हैं दक्षिण अमरीका के आदिवासी—इण्डियन्स। मछलियों में आर्चरफिश (archer fish) तथा रेप्टाइल्स में शेमलियन (chamaeleon) अर्थात् गिरगिट तो आप जानते ही हैं, मुँह की पिचकारी से कैसा अचूक निशाना साधकर शिकार कर लेते हैं ! वैसे ही एक आदिवासी को चित्र में देखिए; मालूम होता है कि बिगुल फूंकने जा रहा है। वास्तव में कुछ और ही है। यह एक फूंकनी है और इसमें से फूंक के जोर से एक तीर निकलेगा जिसकी जहरबुभी नोक के लक्ष्यवेध से शिकार बच न पाएगा। कुरारी (curari) नामक जिस वानस्पतिक विष का उपयोग तीर बुझाने में किया जाता था, उसी से आधुनिक विज्ञान ने मानव के लिए वरदान स्वरूप दो अमूल्य औषधियों का निर्माण किया है। इनमें एक का उपयोग संज्ञानाशक (anaesthetic) के रूप में होता है।

कागज की रद्दी खायी जाती है

अजायबघरों, पशुवाटिकाओं में जबकि अन्य पशु कठघरों में, सीखचों में बन्द रहते हैं, बकरियों को खुला घूमने दिया जाता है, क्योंकि उनसे कोई खतरा नहीं। उन

बकरियों पर तरस खाकर प्रायः ही दर्शकगण मिठाई, बिस्कुट आदि बची-खुची जूठन खिलाते रहते हैं। उस मुलायम भोजन की अधिकता कहीं पाचनक्रिया न बिगाड़ दे, इसकी सूझ प्रकृति ने उन्हें खूब दे रखी है। अतः अन्तःप्रेरणा से ही वे पैकियों, पुड़ियों आदि के रद्दी कागज खा-खाकर आँतों को खुरदरा और मोटा भोजन (roughage) पहुँचाती रहती हैं। तब कहीं उनके पाचन का सन्तुलन बन पाता है। साथ ही, वहाँ के सफाईवालों का कार्य भी काफी हलका हो जाता है; क्योंकि बकरियों की कृपा से रद्दी बहुत कम बच पाती है। बकरियाँ भी जब कागज का तोड़ा पड़ जाता है तब आने जानेवाले किसी के भी कपड़े तक खींच लेने में नहीं हिचकतीं !





हर एक
अवसर पर
उपयुक्त

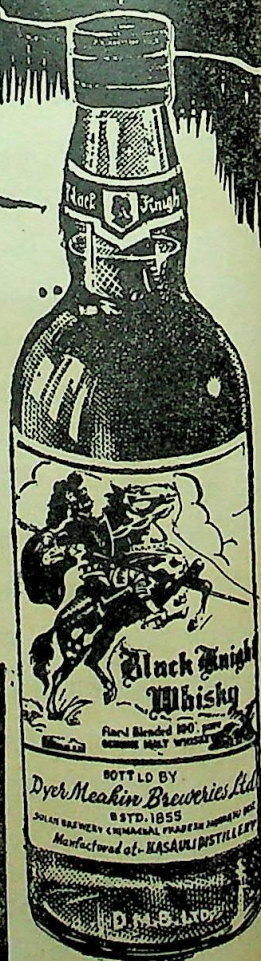
ब्लैक नाइट टिहर-की

असली माल्ट व्हिस्कियों का श्रेष्ठ १००% शुद्ध मिश्रण

डायर मीकिंग ब्रूयरीज लि०

स्थापित १८५५

सोलन ब्रेयूरी, कसौली डिस्टिलरी, लखनऊ डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रेयूरी तथा ग्लाइड इंडस्ट्रीज (उ. प्र.)
सोल डिस्ट्री ब्यूटर्स:- मे० एम्पेन्सर एंड कं० लि०



सफेद हाथी, एक महंगा सांदा

किसी भी बेकार तथा भारी खर्च को सफेद हाथी बाँधने की मिसाल क्यों दी जाती है, इसका भी एक मनोरंजक इतिहास है। एशिया के कुछ प्रदेशों में पहले अल्बिनो (albino) जाति के सफेद हाथी जहाँ भी पाए जाते थे, बड़े पवित्र माने जाते थे। उन्हें किसी भी काम में लगाना पाप समझा जाता था। अतः जब भी ऐसा हाथी पाया जाता था तो किसी राजा के संरक्षण में भेज दिया जाता था। वहाँ बगैर काम-धाम किए, वह मुफ्त के माल मारा करता था। उसका खर्चा उठाने की गुंजाइश राजे-महाराजों को ही हो सकती थी। इसीलिए आज भी यदि कोई व्यक्ति अपनी हैसियत से बाहर का खर्चा बाँध लेता है तो सफेद हाथी बाँधना ही कहा जाता है।

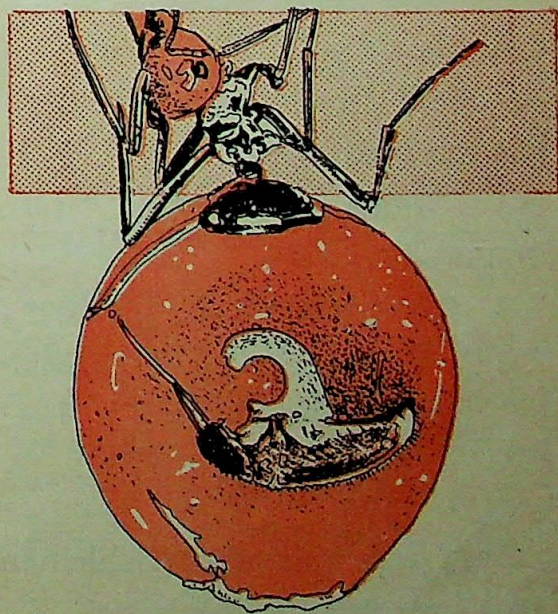
गोली से पहले खुद निशाने पर !

अब वह बात भी बहुत सोच-विचार कर माननी पड़ेगी जिसमें तीव्रतम वेग के लिए बन्दूक की गोली की मिसाल दी जाती थी। एक तीव्रगामी जेट विमान की ऐसी ही आत्मघाती उड़ान का समाचार मिला है जो इस धारणा की पुष्टि करता है। उस विमान ने उड़ान के दौरान में अपनी तोप से एक गोला दाग दिया और स्वयं तेजी से उसी दिशा में तनिक झुककर डुबकी लगा गया। वह डुबकी ही उसके विनाश का साधन बन गयी, क्योंकि तीन मील नीचे पहुँचते ही विमान अपने उसी गोले का निशाना बन गया और रह गयी यह कहानी मात्र !

अंगूर के गुच्छे पृथ्वी के अन्दर !

हैन, आश्चर्य ! दक्षिण-पश्चिमी भारत में एक स्थान पर जमीन खोदते हुए मजदूर यह देखकर आश्चर्यचकित हो गए कि ५-६ फुट की गहराई पर पहुँचते-पहुँचते तो कितने ही ऐसे गुच्छे हाथ लगे जो बिल्कुल अंगूर ही लगते

थे; लगते ही नहीं, चखने में भी शहद का स्वाद देते थे ! प्रकृति के इस अन्यतम आश्चर्य पर अधिक खोज की गयी तो मालूम हुआ कि चींटी जैसे क्षुद्रतम जन्तुजगत की वह महान् उपलब्धि थी। चींटियों में ही एक वर्ग ऐसा अलग पड़ जाता है जो मधु-चींटियाँ बनना पसन्द करता है। शैशवावस्था में ही ऐसी चींटी एक मधुकलश बनना प्रारम्भ कर देती है। उस अवस्था में अन्य अंगों के साथ ही पेट भी काफी लचीला रहता है। रातों को जब कि अन्य चींटियाँ अपने दिनभर के परिश्रम के पश्चात् विश्राम करती हैं, ये चींटियाँ उन कीटों के निकट पहुँच जाती हैं जिन्हें एफिड (aphids) कहते हैं। एफिड वर्ष भर में केवल कुछ ही सप्ताह पौधों, फूलों से रस चूसने का कार्य करते हैं। उनके अंग से चींटियाँ चिपटकर रस चूसती और स्वयं फूलती रहती हैं। परिवार की शेष समस्त चींटियाँ अपने इन मधुकलशों को बड़े जतन से छत पर उलटा लटकाए रहती हैं और वर्षभर इसका उपभोग करती हैं। कभी ये गिर भी जाएँ तो अनेक चींटियाँ मिलकर इन्हें उठाकर पुनः जमा देती हैं, क्योंकि मारे बोझ के ये स्वयं हिल-डुल भी नहीं सकतीं।





शरीर की इकाई कोशिका

कौशलेन्द्रमोहन तिवारी

स नियोजित समुदाय से सिपाहियों के बटालियन, नागरिकों के समाज और मन्त्रियों के मन्त्रिमण्डल की रचना होती है। ठीक इसी प्रकार कोशिकाओं (सेल्स) से हमारे शरीर की रचना होती है।

घटना लगभग ३०० वर्ष पूर्व की है। सन् १६६५ में एक दिन वैज्ञानिक राबर्ट हुक (Robert Hooke)

अपनी प्रयोगशाला में बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि सामने रखी बोतल के कार्क पर जम गई। कार्क किस चीज से बना है, इसी जिज्ञासावश उन्होंने उसका एक

चप्पा काटकर सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखा। एकाएक वे कह उठे—‘अरे ! यहाँ तो छोटी-बड़ी न जाने कितनी कोठरियाँ हैं !’ वे ही कोठरियाँ थीं, कोशिकाएँ (सेल्स)।

कोशिका सिद्धान्त

सन् १८३८-३९ में श्लीडन (Schleiden M. J.) और श्वान्न (Schoenbein C. F.)

नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों ने कोशिका सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि प्रत्येक जीव कम या अधिक कोशिकाओं के समूह से ही बना होता है। रचनात्मक दृष्टिकोण से तो ये कोशिकाएँ शरीर की इकाई हैं ही परन्तु कार्यात्मक दृष्टि से भी कोशिकाएँ शरीर का आधार हैं। आगे चलकर इसी आधार

पर जन्तु-जगत् को दो खण्डों में बाँट दिया गया—एक का नाम प्रोटोजोआ (Protozoa) अर्थात् एक-कोशीय और दूसरे का नाम, मेटाजोआ (Metazoa) अर्थात् बहुकोशीय।

स्वरूप और आकृति

अब प्रश्न उठेगा कि कोशिका क्या है ? मोटे तौर पर समझना चाहिए कि कोशिका जीवद्रव्य (protoplasm) का एक ऐसा पिंड है जिसमें एकनाभिक (nucleus) अनिवार्य रूप से रहता है। अमीबा (Amoeba) और श्वेत रक्त-कण इस बात के प्रमाण हैं कि कोशिकाओं का स्वरूप तथा

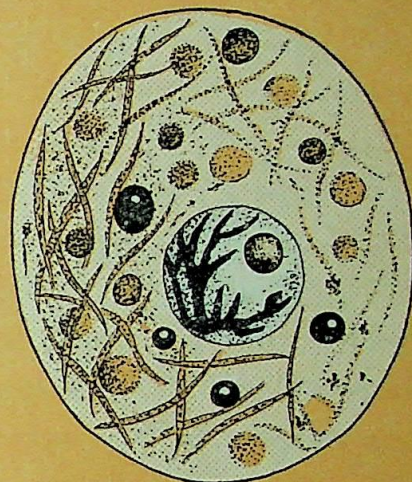
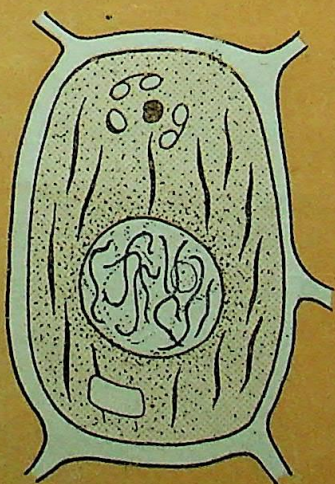
इस लेख का शीर्ष-चित्र—सानफ्रान्सिस्को (अमरीका) की अमरीकन मेडिकल एसोसिएशन के उपयोगार्थ वहाँ की अपजहान कम्पनी द्वारा १९५८ में प्रस्तुत किया गया यह अद्वितीय प्लास्टिक-निर्मित मॉडल जीव-कोशिका के सूक्ष्म अंग-प्रत्यंग का उत्तम प्रदर्शन करता है। २४ फुट व्यास का यह विशाल अर्द्धगोलाकार मॉडल दर्पण की सतह पर रखा गया है जिससे कि कोशिका सम्पूर्ण गोलाकार में प्रदर्शित हो। एक कोशिका का यह अनुमानतः १० लाख गुना विशालित दृश्य है।

आकार सदैव समान अथवा निश्चित नहीं रहता। एक ओर तो एककोशीय बैक्टीरिया सूक्ष्मदर्शी में भी सरलता से नहीं देखा जा सकता, दूसरी ओर शुतुरमुर्ग का एककोशीय अण्डा लगभग ४-६ इंच व्यास का होता है !

जैसे प्रत्येक जीव समय के साथ-साथ एक निश्चित अवधि तक ही बढ़ता है, फिर बढ़ना बन्द कर देता है, उसी प्रकार कोशिका का भी आकार एक निश्चित समय तक ही बढ़ता है। बाद में उसकी वृद्धि रुक जाती है। यह क्रिया जीवद्रव और नाभिक के पारस्परिक संयोग के कारण होती है। अतः कोशिकाएं लम्बी, गोल, पतली, चपटी, तिकोनी और किसी भी आकार की छोटी या बड़ी हो सकती हैं।

कोशिका के अन्दर दो वस्तुएँ हैं—एक, द्रव और दूसरा, उसमें तैरनेवाला ठोस नाभिक। इस द्रव को साइटोसोम (cytosome) और नाभिक को न्यूक्लियस कहते हैं। साइटोसोम में दो प्रकार की रचनाएँ होती हैं, एक जीवित, दूसरी मृत। पहले जीवित पदार्थों को लें।

जीव-कोशिका विशालित रूप में—अन्यान्य भागों के अतिरिक्त नाभिक (न्यूक्लियस) के अन्दर क्रोमोसोम स्पष्ट दिखाये गये हैं



नाभिक (न्यूक्लियस) का अति विशालित दृश्य
साइटोप्लाज्म

कोशिका में जो द्रव भरा रहता है उसे साइटोप्लाज्म कहते हैं। यह एक जटिल रासायनिक पदार्थ है। साइटोप्लाज्म के ५० से ६० प्रतिशत भाग में पानी, तथा शेष में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और अन्य अकार्बनिक लवण होते हैं। जीवद्रव एक कोलॉयडल (colloidal) रचना है जिसमें अनेक ठोस पदार्थ गोल्गाई बाडीज (golgi bodies), सेल सेण्टर (cell centre), माइटोकाण्ड्रिया (mitochondria), क्रोमिडियल ग्रैनुल्स (chromidial granules) आदि लटके रहते हैं। अतः भौतिकी की दृष्टि से साइटोप्लाज्म 'क्रिस्टलो-कोलाइड' (crystallo-colloid) रचना है। यदि साइटोप्लाज्म से उसकी सारी ठोस वस्तुएँ अलग कर दी जाएँ तो जो द्रव बच रहेगा, उसे हाइलोप्लाज्म (hyloplasm) कहेंगे। जीव-वैज्ञानिकों के मत इसकी रचना के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ के मतानुसार इसकी रचना धागे के रेशों जैसी होती है, तो कुछ के अनुसार जालदार तथा दानेदार होती है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि इस द्रव

में बीच-बीच में हवा के स्थान भी होते हैं।

सेल मेम्ब्रेन

जन्तु-कोशिका के बाह्यतम आवरण को सेल मेम्ब्रेन (cell membrane) कहते हैं। इसे प्लाज्मा मेम्ब्रेन (plasma membrane) भी कहते हैं। प्रायः इसकी मोटाई $1/10000000$ मिलीमीटर होती है। इसकी रचना विभिन्न प्रोटीन और लिप्वायड (lipoid) से होती है। इसकी झिल्ली अत्यन्त लचीली होती है। इसके अन्दर से द्रव का कुछ भाग इस पार से उस पार जाता रहता है। इस प्रवृत्ति को अर्द्धपारगम्यता (semipermeability) कहते हैं। एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर कुछ अन्य वस्तुएँ भी दिखायी देती हैं। यकृत की कोशिकाओं में सेल मेम्ब्रेन के बाहरी भाग पर उंगलियों के आकार की कुछ रचनाएँ निकली रहती हैं जिन्हें माइक्रोविल्लाई कहते हैं। इनकी उपस्थिति से कोशिकाओं की शोषण-शक्ति कई गुना बढ़ जाती है।

सेल मेम्ब्रेन पर जहाँ-कहीं अधिक अणु एकत्र हो जाते हैं, वहाँ झिल्ली अन्दर की ओर दब जाती है। फलतः एक रिक्त स्थान (vacuole) कुछ देर के लिए बन जाता है। उसे पाइनोसाइटिक वैक्युओल (pinocytic vacuole) कहते हैं। यह सिद्ध करता है कि एककोशीय जीव अमीबा की भाँति अन्य

जीवित कोशिकाओं में भी अन्तर्ग्रहण की प्रवृत्ति रहती है। इस क्रिया को पिनोसाइटोसिस (pinocytosis) कहते हैं। सेल मेम्ब्रेन पर कभी-कभी एक अन्य आवरण भी दिखायी पड़ता है जो सेल का न होकर, बाहरी पदार्थ का बना होता है।

गोल्गाई बाडीज

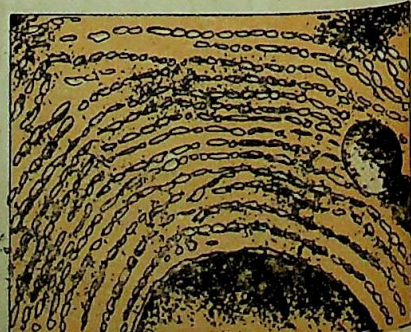
नाभिक के चारों ओर दानेदार, तथा सलाई के आकार के जो पदार्थ तैरते रहते हैं उन्हें गोल्गाई बाडीज कहते हैं। प्रत्येक गोल्गाई बाडी का बाहरी भाग लिप्वायड तथा भीतरी भाग प्रोटीन का बना होता है। स्रवनक्रिया में यह प्रायः नियमनकर्ता, अर्थात् कन्ट्रोलर का काम करता है। अण्डे की जर्दी के स्रवन में गोल्गाई बाडीज का अपना विशिष्ट स्थान है। इनका सम्बन्ध एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम (endoplasmic reticulum) से होता है। अतः इसमें बहुत से रासायनिक पदार्थ एकत्र होते रहते हैं। इस प्रकार, कोशिकारूपी फैक्ट्री में यह स्टोर-रूम का कार्य करता है।

माइटोकाण्ड्रिया

पूरी कोशिका में शलाका जैसी जीवित रचनाएँ पायी जाती हैं। ये दानेदार या बहुत कुछ गोल भी होती हैं। दानेदार माइटोकाण्ड्रिया को काण्ड्रियोमाइल्स तथा गोल माइटोकाण्ड्रिया को काण्ड्रियोस्फीयर कहते हैं।

एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा विशालित कोशिका के विभिन्न अंग;

बायें से दायें—माइटोकाण्ड्रिया; सेल-सेण्टर (सेण्ट्रोसोम); तथा एण्डोप्लाज्मिक रेटिकुलम



आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि ये साइटोप्लाज्म में बहुत तेजी से चलती रहती हैं। इनका ऊपरी भाग तो सपाट परन्तु भीतरी भाग आलमारी के खानों जैसा होता है। माइटोकाण्ड्रिया ही शुक्रकोशिका की ऊपरी नोक बनाती है। वह ऊपरी नोक achrosome कहलाती है। उसी की सहायता से शुक्राणु तेजी से दौड़ने के लिये अपना मार्ग बना लेता है। अध्ययन करने पर मालूम हुआ है कि इनका रंग पीला और रचना कोलेस्ट्रल (collastral), नाभिक प्रोटीन, फास्फो-लिप्वायड (phospholipoid) एवं वसा से मिलकर होती है। पायरीडाक्साइन और राइबोफ्लेविन नामक दो विटामिन तथा आक्सीकरण और अनाक्सीकरण की क्रियाओं से सम्बन्ध रखनेवाला पदार्थ 'साइटोक्रोम-सी' भी इनमें रहते हैं। श्वसन और अन्य क्रियाओं के लिए इनमें लगभग १०० से अधिक एन्जाइम (enzymes) होते हैं। यकृत के माइटोकाण्ड्रिया में करीब सभी succin oxidases होते हैं। यकृत तथा अन्य अंगों की कोशिकाओं के माइटोकाण्ड्रिया में कुछ अन्य आक्सीडेसेज (cytochrome oxidases), कुछ फास्फेट तथा डी. पी. एन. साइटोक्रोम-सी रिडक्टेज और टी. पी. एन साइटोक्रोम-सी रिडक्टेज आदि भी पाए जाते हैं।

सेल-सेण्टर

नाभिक के बाहर साइटोप्लाज्म का कुछ भाग एक झिल्ली से घिरा होता है। इस साइटोप्लाज्म को इडियोसोम (idiosome) और इसमें लटकी हुई दो बारीक वस्तुओं

को सेण्ट्रियोल (centriole) कहते हैं। यह सम्पूर्ण आकृति ही सेल-सेण्टर कहलाती है। यह सेल-सेण्टर कोशिका-विभाजन में महत्वपूर्ण कार्य करता है।

कोमाडियल ग्रैनुल्स

ये ग्रैनुल्स (दाने) प्रायः पक्षियों के तन्त्रिका-तन्त्र की कोशिका के नाभिक के चारों ओर पाए जाते हैं। इन्हें नाइसल रचनाएँ कहते हैं।

लाइसोम

जीवद्रव में तैरती, उतराती थैलियों जैसी वस्तुएँ होती हैं। इनमें बहुत से एन्जाइम एकत्र होते रहते हैं। इन्हें लाइसोम कहते हैं। जब कोशिका स्वयं बीमार हो जाती है तब ये थैलियाँ फट जाती हैं और बीमार कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं। यही कारण है कि त्वचा में होने वाले रोगों से कुछ समय के बाद प्राणी को स्वयं ही मुक्ति मिल जाती है।

मृत रचनाएँ

मृत-रचनाओं में प्रोटीन और ग्लाइकोजन के दाने, विभिन्न वैक्युओल्स, वर्ज्य पदार्थ, वसा तथा कुछ अन्य तत्त्व रहते हैं।

नाभिक (न्यूक्लियस)

नाभिक का आकार पूर्ण रूप से कोशिका के आकार का निर्माण करता है। साधारण अवस्था में यह गोल ही होता है परन्तु विशेष परिस्थितियों में यह कभी शाखाओं जैसा, कभी बीडेड (पिरोये हुए दानों जैसा) तथा कभी लोब्ड (डैनेनुमा) जैसा होता है। कई कोशिकाओं के नाभिक टूटे हुए भी पाए जाते हैं। नाभिक और जीव द्रव के सम्बन्ध को नाभि-जीवद्रवात्मक सारिणी (karyo-

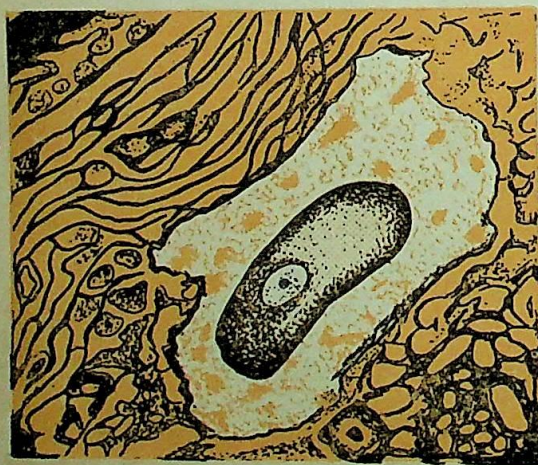


शुक्र-कोशिका (Sperm-cell) का अतिविशालित दृश्य, शीर्ष, मध्य तथा पुच्छ भाग

plasmic index) कहते हैं। इनका सम्बन्ध इस प्रकार है :

$$\frac{\text{नाभिक का आयतन}}{\text{जीवद्रव का आयतन}} = \frac{\text{नाभिजीवद्रवात्मक}}{\text{सारिणी}}$$

सच पूछिए तो यह विशेष प्रकार का जीवद्रव है जो बाहर की ओर नाभिक-आवरण (न्यूक्लियर मेम्ब्रेन) से ढँका रहता है। पूरी रचना लगभग $1/8000000$ इंच की होती है। इस जीवद्रव को नाभिक-द्रव (nuclear sap) कहते हैं। इसमें धागे के समान भी कुछ रचनाएँ लटकी रहती हैं जिन्हें क्रोमोनिमेटा कहते हैं। कोशिका-विभाजन से कुछ पूर्व ही इन पर राइबोज न्यूक्लिक एसिड और डीआक्सीराइबोज न्यूक्लिक एसिड नामक प्रोटीन के दाने एकत्र हो जाते हैं। इन दानों को क्रोमोमियर्स केंचुए की एक कोशिका के नाभिक का एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी द्वारा लिया गया विशालित दृश्य



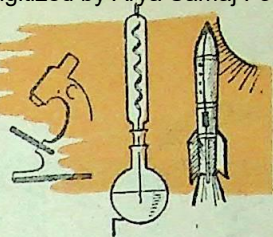
कहते हैं। इनके जमा होने के कारण क्रोमोनिमेटा साफ-साफ दिखाई पड़ने लगते हैं तथा इनका नाम क्रोमोसोम हो जाता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पैतृक गुणों को पहुँचानेवाले 'जीन्स' इन्हीं में रहते हैं। क्रोमोसोम तीन प्रकार के होते हैं—टीलोसेण्ट्रिक, सबटीलोसेण्ट्रिक, और मेटासेण्ट्रिक। टीलोसेण्ट्रिक, बिल्कुल सीधे, सबटीलोसेण्ट्रिक 90° का कोण बनाकर और मेटासेण्ट्रिक V का आकार बनाकर मुड़ते हैं। तारीफ तो यह है कि जिस स्थान पर ये मुड़ते हैं, वहाँ पर एक ज्वाइण्ट जैसी रचना (सेण्ट्रोमियर) बनाते हैं। कुछ जीव-रसायनज्ञों के मतानुसार जीन्स न्यूक्लिक एसिड और न्यूक्लियोप्रोटीन से बनते हैं। नाभिक द्रव में विभिन्न प्रकार के एन्जाइम, एमाइनो एसिड, लिपिड तथा कैल्सियम, मैगनीशियम और थोड़ी सी मात्रा में पोटैशियम भी पाए जाते हैं परन्तु न्यूक्लियोलस में ये नहीं पाए जाते। प्राणियों की प्रत्येक नस्ल में क्रोमोसोम और उनमें उपस्थित जीन्स की संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कोशिकाएँ ही शरीर की वे रचनाएँ हैं जो स्वयं शरीर की रचना और रक्षा करती हैं, उसे विकास की सीढ़ियों पर चढ़ाती हैं और भावी पीढ़ियों में वंशानुगत प्रकृतियों का वहन करती हैं।

मोटरकार को पेट्रोल से छुड़ी

अमरीका की स्टुअर्ट मोटर कम्पनी ने विद्युत-बैटरी से चलनेवाली ऐसी कार बनायी है जिसके इंजन को पेट्रोल की आवश्यकता ही नहीं। बैटरी के साथ ही चार्जर भी रहता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर किसी भी वर्कशाप में बिजली के कनेक्शन द्वारा बैटरी को पुनः चार्ज किया जा सकता है। यह कार 35 मील तक की रफ्तार दे सकती है। औद्योगिक पैमाने पर इसका उत्पादन शीघ्र ही प्रारम्भ होने की आशा है। प्रति मील इसका व्यय 5 नये पैसे से भी कम बैठेगा। 10 फुट लम्बाई और 4 फुट चौड़ाई की यह छोटी सी कार वजन में भी कुल 1200 पौण्ड होगी। इसकी बाँड़ी फाइबर-ग्लास की तथा सीटें प्लास्टिक की रहेंगी।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



स्ट्रांशियम की छड़ में विद्युत की धारा

परमाणु-शक्ति से विद्युतधारा उत्पन्न करने के प्रचलित तरीके काफी खर्चीले साबित होते हैं कारण कि उनके द्वारा काफी शक्ति व्यर्थ भी चली जाती है। प्रथम तो परमाणु रीएक्टर की उष्मा से जलवाष्प उत्पन्न करते हैं। दूसरे, वह जलवाष्प डाइनमो चलाती है तब कहीं विद्युत उत्पन्न होती है। इस विधि में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के प्रयोग तेजी से किए जा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने स्ट्रांशियम-९० (रेडियोधर्मी) युक्त एक ऐसी छड़ तैयार की है जिसके अन्दर रेडियो-सक्रियता से ताप तथा ताप से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। अभी ये प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था में होने के कारण विद्युतधारा क्षीण मात्रा में ही प्राप्त की जा सकी है किन्तु इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति के प्रयास अनवरत किए जा रहे हैं।

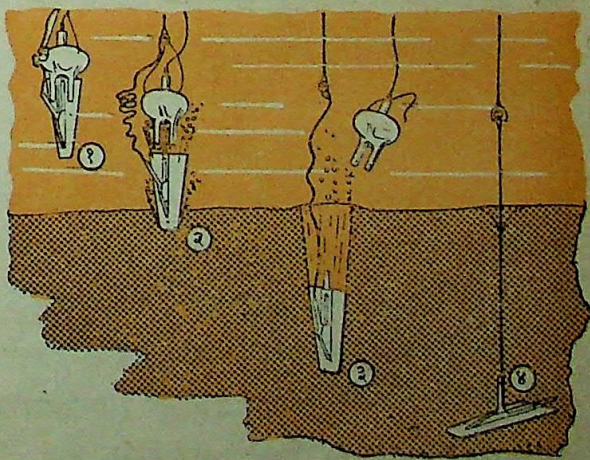
भटके हुआँ का सहारा—गुब्बारा

अमरीका की जलसेना-विभाग के वैज्ञानिक ऐसे नये प्रयोग सफलतापूर्वक कर रहे हैं जिनके द्वारा यह सम्भव है कि निर्जन स्थलों पर फँसे हुए व्यक्तियों को गुब्बारे की सहायता से आकाश में उठाकर वायुयान में लिया जा सकता है। बीहड़ रेगिस्तान तथा दलदल भरे स्थल ऐसे होते हैं जहाँ वायुयान अथवा हेलिकाप्टर उतारना सम्भव नहीं। इसके लिए एक गुब्बारेयुक्त साधन का प्रयोग किया जाता है जिसे स्काइ-हुक (Sky-hook) कहते हैं। ५०० फुट लम्बे नाइलॉन के रस्से के एक सिरे पर एक लबादा सा फिट रहता है और दूसरे सिरे पर प्लास्टिक का बड़ा गुब्बारा। गुब्बारा फुलाने के लिए उसी में हीलियम गैस का एक सिलेण्डर भी रहता है।

फँसे हुए व्यक्ति के ऊपर उड़ता हुआ वायुयान इस स्काइ-हुक को उसके पास गिरा देता है। वह व्यक्ति पहले तो सिलेण्डर खोलकर गैस द्वारा गुब्बारे को भर लेता है और ज्योंही गुब्बारा उड़ान शुरू करता है, वह दूसरे सिरे पर लगे लबादे में प्रवेश कर जाता है। तुरन्त ही हवा के रुख के विरुद्ध वायुयान तेजी से उड़ता हुआ आकर गुब्बारे को रस्से से अलग कर देता है और वह खुला हुआ सिरा यान में अटककर फिट हो जाता है। यान में लगी हुई चरखी उस रस्से को ज्यों-ज्यों लपेटती है, वह व्यक्ति ऊपर उठता आता है और अन्त में उसे यान में ले लिया जाता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि ऐसे व्यक्ति को कोई भी असाधारण भटका नहीं लगता।

समुद्र-तल में स्वयं जड़ जमानेवाला लंगर

आधुनिक विज्ञान ने एक नए लंगर का निर्माण किया है। यह लंगर अपने ही बल से समुद्र-तल में काफी गहराई तक धँसता चला जाता है और लगभग तीन लाख पौंड तक के वजन का खिंचाव देते हुए जमा रहता है। इसके सिरे पर राकेट सरीखा एक यन्त्र लगा रहता है जिसमें विस्फोटक पदार्थ भी भरा रहता है। निश्चित संकेत पर एक फ्यूज द्वारा राकेट दग जाता है। फलस्वरूप लंगर नीचे गहराई में उतरता जाता है और राकेट ऊपर रहा आता है जिसे तारों के रस्से द्वारा बाहर खींच लिया जाता है। उसी राकेट को अन्य लंगरों में भी काम ला सकते हैं।



सिन्कोना

जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव

औषधि के रूप में कुनेन लगभग तीन शताब्दियों से एक बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जा रहा है। कुनेन, सिन्कोना वृक्ष की छाल से प्राप्त किया जाता है। यह वृक्ष अमेज़ॉन (Amazon) की तराइयों में दक्षिणी कोलम्बिया से बोलिविया तक के प्रदेशों में पाया जाता है। मलेरिया-ज्वर का उन्मूलन ही इसका प्रधान गुण है। सर्वप्रथम सन् १६३० के लगभग पेरू में जिसुइट्स को इसके गुणों का पता चला था। लाक्सा से कुछ मील दूर, दक्षिण की ओर मालाकोटा नामक स्थान के निवासियों में एक किंवदन्ती है कि वहाँ सर्वप्रथम मलेरिया से पीड़ित एक यूरोपियन मिशनरी का इसी वृक्ष से प्राप्त कुनेन के द्वारा इलाज किया गया था। घर लौटने पर उस मिशनरी ने अपने देशवासियों को उस अद्भुत सिन्कोना वृक्ष के गुणों की कहानी सुनाई थी। लाक्सा स्थित कान्वेन्ट के पुस्तकालय में एक हस्तलेख से प्रतीत होता है कि उस समय (१६३० में) सिन्कोना वृक्ष की छाल का उपयोग बहुधा यूरोपियनों द्वारा ही किया जाता था। लगभग उन्हीं दिनों लाक्सा के कोरिग्डार डान फ्रान्सिस्को ज्वर से पीड़ित हुए तो सिन्कोना से प्राप्त कुनेन द्वारा ही वे स्वस्थ हुए।

उस प्रयोग ने सिन्कोना की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैला दी।

इंग्लैण्ड में सन् १६५५ के लगभग कुनेन का उपयोग प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक कुनेन के साथ राबर्ट टेल्वर का नाम जुड़ा रहा। उन्होंने इस औषधि की सहायता से मलेरिया के उपचार में विशेष ख्याति प्राप्ति की। उनकी ख्याति इस तेजी से बढ़ी कि चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने ज्वर का इलाज उन्हीं से कराया। इस चिकित्सा की सफलता के कारण उन्हें राजकीय सहायता भी प्राप्त हुई। उनमें चिकित्सक की योग्यताओं की कमी थी, फिर भी इसकी बदौलत वे चार्ल्स द्वितीय के निजी चिकित्सक नियुक्त कर लिए गए।

तत्पश्चात् सन् १६७६ में उन्होंने फ्रान्स का भ्रमण किया और वहाँ भी ज्वर के उपचार के लिये इंग्लैण्ड की भाँति शीघ्र ही अत्यधिक नाम कमाया। टेल्वर की ख्याति सारे फ्रान्स में फैल गयी। सम्राट् लुई १४वें इतने प्रभावित हुए कि अनेक बार उन्होंने टेल्वर से आग्रह किया कि वह कुनेन के अपने सर्वाधिकार उन्हें दे दे। बहुत आग्रह के पश्चात् टेल्वर इस बात पर सहमत हुए कि उनकी चिकित्सा का रहस्य

उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित किया जाए। १६८१ में उनका देहान्त हुआ। तब तक तो सारे यूरोप में उनकी ख्याति फैल चुकी थी। थोड़े समय पश्चात् ही कुनेन द्वारा चिकित्सा एवं उपचार की गोपनीय विधि प्रकाशित हुई। तभी से कुनेन का भविष्य निखर उठा।

अब तक सिन्कोना वृक्ष की छाल ही कुनेन प्राप्त करने का एकमात्र साधन था। छाल के चूर्ण की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग ने मूल्य में काफी तेजी ला दी थी। १६७५ में कुनेन-पाउडर का मूल्य चार शिलिंग प्रति औंस हो गया। १६७७ में 'लन्दन फार्मो-कोपिया' नामक ग्रन्थ में कुनेन को महत्त्वपूर्ण औषधि का स्थान भी प्राप्त हो गया।

इसके पौधे का बीज सर्वप्रथम एक अंग्रेज को प्राप्त हुआ। उसने कुछ बीज अपने भाई के पास भेज दिए। उनमें से उसने कुछ बीज ब्रिटिश सरकार को भेंट करना चाहा, परन्तु उस समय सरकार ने लेना अस्वीकार कर दिया। उनमें से थोड़े बीज लंका के एक कृषक को भेज दिए गए और शेष डच सरकार को उपहार में दे दिए गए।

डच सरकार ने जावा द्वीप-समूह में सिन्कोना वृक्ष के लिए अनुकूल जलवायु का स्थल ढूँढ लिया। सन् १८५४ में कई हजार पौधे जहाज द्वारा जावा भेजे गए। वहाँ इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक कारखाना भी स्थापित किया गया। वहाँ पर अनुकूल वातावरण में पौधों की वृद्धि विशेष रूप से हुई। छाल से कुनेन की मात्रा भी दक्षिण अमरीका के मुकाबले दूनी, तिगुनी हो गई। फलस्वरूप गत महा-युद्ध से पूर्व ही जावा सारे संसार की सिन्कोना की माँग पूरी करने में समर्थ हो गया। लगभग १५ लाख पौंड सिन्कोना की छाल प्रतिवर्ष जावा से निर्यात की जाती थी।

भारत में सिन्कोना वृक्ष सर्वप्रथम १८५६ में लाया गया था। लंका में तो इसके प्रयोग में सफलता न मिली परन्तु हमारे यहाँ स्थिति सन्तोषजनक रही। इसी प्रकार बोलिविया, कोलम्बिया तथा पेरू आदि-देशों में भी इसकी उपज सन्तोषजनक रही।

सिन्कोना का रासायनिक विश्लेषण

लगभग १७६२ में सिन्कोना की छाल का रासायनिक विश्लेषण किया गया। १८१० में स्पेन के एक चिकित्सक ने इससे एक स्फटिक पदार्थ भी प्राप्त किया जिससे 'सिन्कोनिनो' नाम दिया गया। अन्य विश्लेषणों से ज्ञात हुआ कि सिन्कोना की छाल में लगभग ३० प्रकार के वानस्पतिक पदार्थ पाए जाते हैं।

मलेरिया दूर करने की शक्ति केवल चार पदार्थों में पायी गयी है—कुनेन, क्यूनी-डीन, सिनक्यूनीडीन तथा सिन्कोनीन। इसमें कुनेन मुख्य है। रसायनशास्त्र के अनुसार ये चारों वानस्पतिक पदार्थ दो जोड़े बनाते

सिन्कोना वृक्ष की एक डाल



हैं जिनमें दोनों एक-दूसरे से विचित्र सम्बन्ध रखते हैं। कुनेन के कण कार्बन, हाइड्रोजन, तथा नाइट्रोजन के संयोग से बनते हैं।

आज तो कुनेन शुद्ध रूप में एक बड़े पैमाने पर उपयोग में लाया जा रहा है। इसकी छाल के चूर्ण को चूने के साथ, लेई की तरह गाढ़ा करके भली-भाँति सुखा लेते हैं। तत्पश्चात् एमाइड एल्कोहल (Amide alcohol) के साथ उसका अर्क निकाल लेते हैं। तनु हाइड्रोक्लोरिक एसिड के साथ भली-भाँति हिलाकर पानी, सोडा, तथा अमोनिया मिलाने से वानस्पतिक पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं। उन्हें फिल्टर से छानकर अलग कर लेते हैं। उस अवक्षेप (alkaloid) को पुनः अम्ल में घोलते हैं। उस घोल की कुछ मात्रा में सोडा डालकर उस समय तक गरम करते हैं जब तक वह उबलने न लगे। तत्पश्चात् उसे ठण्डा कर लेते हैं। इस प्रकार शुद्ध कुनेन की मात्रा घोल से पृथक् हो जाती है। कुनेन पानी में लगभग अधुलनशील है। अतः बहुधा इसका उपयोग घुलनशील सल्फेट के रूप में करते हैं।

कुनेन अपने बहुमूल्य गुणों के कारण अजेय है। मलेरिया के कीटाणुओं के लिए

तो यह यमदूत ही है। उन पर यह उस अवस्था में धावा बोल देता है जब वे रक्त में स्वतन्त्र विचरते रहते हैं। मलेरिया के उपचार में अनुमानतः प्रतिदिन ५-७ ग्रेन कुनेन लेना आवश्यक होता है। अधिक मात्रा में ले लेने पर यह हानि पहुँचाता है। उस अवस्था में दृष्टि-दोष, बहरापन तथा कानों में सनसनाहट की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी हालत को 'सिन्कोनिज्म' कहते हैं।

कुनेन की रासायनिक संरचना

कुनेन ($C_{20}H_{24}O_2N_2$) वानस्पतिक पदार्थ होने के कारण अम्ल के साथ लवण के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। इसमें नाइट्रोजन के दो परमाणु हैं जो एक अम्लीय-क्षार के रूप में कार्य करते हैं। फलतः $(C_{20}H_{24}O_2N_2)2H_2SO_4 \cdot 7H_2O$ सल्फेट बनता है। यही कुनेन है। यह पानी में बहुत कम घुलनशील है, एल्कोहल में कुछ अधिक तथा एल्कोहल और क्लोरोफार्म के मिश्रण में सबसे अधिक। इसके दो अन्य सल्फेट $C_{20}H_{24}O_2N_2H_2SO_4 \cdot 7H_2O$ तथा $C_{20}H_{24}O_2N_2 \cdot 7H_2SO_4 \cdot 7H_2O$ हैं जो अधिक घुलनशील हैं। उनका भी प्रयोग किया जाता है।

भूसा भी भवन निर्माण में

यूक्रेन की निर्माण और भवन-निर्माण अकादमी ने आर्गिलबिट तथा अर्बिलिट नामक ऐसे दो पदार्थों का निर्माण किया है जो भूसे की कतरन तथा अन्य कूड़ा-करकट आदि से बनाये जा सकते हैं और भवन-निर्माण में गारे की जगह बखूबी काम आ सकते हैं। यह पदार्थ सड़ता नहीं, आग से अप्रभावित है तथा वजन में हलका भी रहता है। इससे बनायी हुई वस्तु को आसानी से चीरा, फाड़ा तथा जोड़ा जा सकता है।

तम्बाकू की नासूर को तलाक

स्मोकर्स को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि तम्बाकू ने अब नासूर को तलाक देने का फैसला कर लिया है। अब बीड़ी-सिगरेट पीनेवालों को नासूर का खतरा न रहेगा। पश्चिम जर्मनी के डा. वेन्डिंग ने 'वे-३६' नामक रसायन के प्रयोग द्वारा तम्बाकू से नासूरकर्ता तत्त्व, 'वेन्जेप्रेन' खींच लेने की विधि निर्धारित की है। इस क्रान्तिकारी आविष्कार ने उन्हें विश्व के करोड़ों धूम्रपायी व्यक्तियों का आशीर्वाद तथा धन्यवाद प्राप्त कराया है।

उस
रक्त
या के
ग्रेन
मात्रा
उस
कानों
जाती
ते हैं।

पतिक
लवण
इसमें
लीय-
कलतः
तल्फे
में

कुछ
गर्म के
अन्य
तथा
जो
प्रयोग

दो
ते हैं
ग से
नाड़ा

सला
के
लेने
क्त्यों

न-लाक



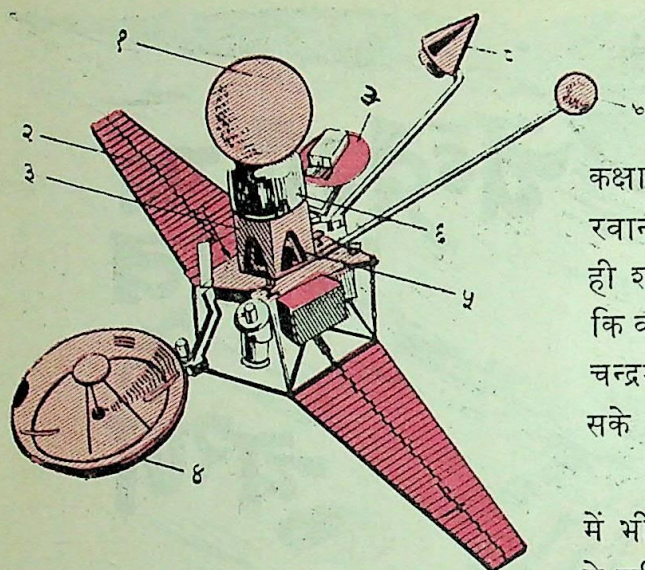
भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

रुस के मेजर निकोलोयेव तथा कर्नल पोपोविच के अन्तरिक्ष-अभियान की रोमांचकारी सफलता ने रूसी वैज्ञानिकों के अन्तरिक्ष-यान नियंत्रण की व्यवस्था और उसकी श्रेष्ठता को निर्विवाद रूप से स्थापित कर दिया है। रूसी अन्तरिक्ष-इंजीनियरों की कार्य-कुशलता का अनुमान आप अकेले इस बात से लगा सकते हैं कि वोस्तोक-३ तथा वोस्तोक-४ लगभग एक ही कक्षा में स्थापित किए गए थे और उनके कक्षातल में केवल एक डिग्री के ६०वें भाग का अन्तर था ! दोनों यानों के बीच अधिकतम दूरी केवल १३ मील थी और दोनों के परिभ्रमण काल में अन्तर भी केवल बारह सैकण्ड था ! स्पष्ट है कि दोनों यानों को अन्तरिक्ष में दागने की व्यवस्था तथा उनके नियंत्रण के आयोजन सर्वथा त्रुटिहीन थे, वरना यानों के दागने में एक सैकण्ड के शतांश की देर भी इस बात के लिए काफी थी कि उन दोनों के बीच सैकड़ों मील का फासला

पड़ जाता। दरअसल वोस्तोक-४ को दागने का जो समय विशेषज्ञों ने निश्चित कर रखा था उसमें इंजीनियरों को कुछ त्रुटि नजर आयी और तुरन्त यह तय पाया कि नियत समय से १५ सैकण्ड पहले ही इस यान को दागा जाय। फलस्वरूप यह यान वोस्तोक-३ के उतने निकट अपने भ्रमणपथ से स्थापित हो सका वरना यह उससे सैकड़ों मील के फासले पर रह जाता।

इस सर्वथा नये ढंग के अभियान द्वारा रूसी इंजीनियरों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि अन्तरिक्ष की एक ही कक्षा में दो वा दो से अधिक यान एक दूसरे के अत्यन्त निकट स्थापित किए जा सकते हैं तथा उन यानों के यात्रियों के लिए यह भी सम्भव हो सकता है कि वे परस्पर बातचीत करके एक दूसरे को परामर्श तथा आदेश दे सकें और आवश्यकता पड़ने पर अपने यान का समुचित नियंत्रण करके यानों को परस्पर और भी सटा सकें। तब उन यानों के बीच,

जनवरी १९६३



यह रेंजर-स्पेसक्राफ्ट चन्द्रमा तक जानेवाले कैप्सूल को अन्तरिक्ष में ले जाएगा। १. लैंडिंग स्फियर, २. सोलर पैनल, ३. कैप्सूल-वाहक प्लेटफार्म, ४. रेडियो कंट्रोल एरियल, ५. एयर कंट्रोल यूनिट, ६. लैंडिंग स्फियर का वापसी राकेट, ७. गामा किरणान्वेषक, ८. संवाद-प्रसार एरियल, ९. कैप्सूल छोड़ने का संकेत-यंत्र

यात्रियों तथा ईंधन आदि का आदान-प्रदान भी हो सकेगा। इस अभियान द्वारा यह बात भी एक तरह से पक्की हो गयी कि चन्द्रयात्रा को जानेवाले राकेटों के लिए यह जरूरी न होगा कि वे सीधे ही धरती से रवाना होकर चन्द्रमा तक चले जाएँ। ऐसा करने के लिये उन्हें ईंधन की बहुत अधिक मात्रा साथ में ले जानी होगी। इस दिक्कत से बचने के लिए ऐसा किया जा सकता है कि छोटे-छोटे कई राकेट, वोस्तोक-३ तथा वोस्तोक-४ की भांति, धरती के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएँ और फिर उन्हें परस्पर जोड़कर एक अन्तरिक्ष-प्लेटफार्म बना लिया जाए। उसी प्लेटफार्म पर इंजीनियर धरती से भेजे गये पुर्जों को जोड़कर चन्द्र यात्रा पर जानेवाला राकेट तैयार कर लें और आगे के लिये उड़ान भरें।

उस ऊँचाई पर स्थित प्लेटफार्म स्वयं

भी लगभग १८००० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से घूम रहा होगा तथा पृथ्वी से काफी फासले पर उसकी कक्षा स्थित होगी। अतः उस प्लेटफार्म से रवाना होनेवाले राकेट के इंजन को थोड़ी ही शक्ति लगाने से इतना बल मिल जाएगा कि वह पृथ्वी के रहे-सहे आकर्षण से छूटकर चन्द्रमा की ओर आसानी से अग्रसर हो सके।

रूस के अन्तरिक्ष-इंजीनियर इस योजना में भी लगे हुए हैं कि अगली बार वोस्तोक से अधिक शक्ति वाले बड़े यान पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किये जाएँ, ताकि प्रत्येक यान में कम से कम दो अन्तरिक्ष यात्री रह सकें। तदुपरान्त इंजीनियर अन्तरिक्ष-स्टेशन स्थापित करके वहाँ पर तैयार किए गए राकेट यान को चन्द्रमा पर भेजने का भी प्रयोग करेंगे। उस यान में मानव-यात्री के बैठने का भी प्रबन्ध रहेगा।

अन्तरिक्ष-कक्षा में एक यान को दूसरे यान के निकट स्थापित करना निस्सन्देह एक दुस्तर कार्य है। कल्पना कीजिए कि मील-आध-मील की ऊँचाई पर उड़ते हुए वायुयान पर पृथ्वी से एण्टी-एयरक्रैफ्ट-गन दागती है। इसके लिये आवश्यक होगा कि ऊँचे आकाश में एक ही बिन्दु पर तथा एक ही क्षण पर वायुयान तथा गोला दोनों पहुँचें। इसके लिए तरह-तरह के यन्त्रों की सहायता लेनी पड़ेगी ताकि गोला सही दिशा में तथा बिल्कुल सही वेग से दागा जाए, अन्यथा हो सकता है कि गोला जिस क्षण वायुयान के मार्ग पर पहुँचे उस वक्त तक वायुयान आगे जा चुका हो या वहाँ पहुँचा ही न हो!

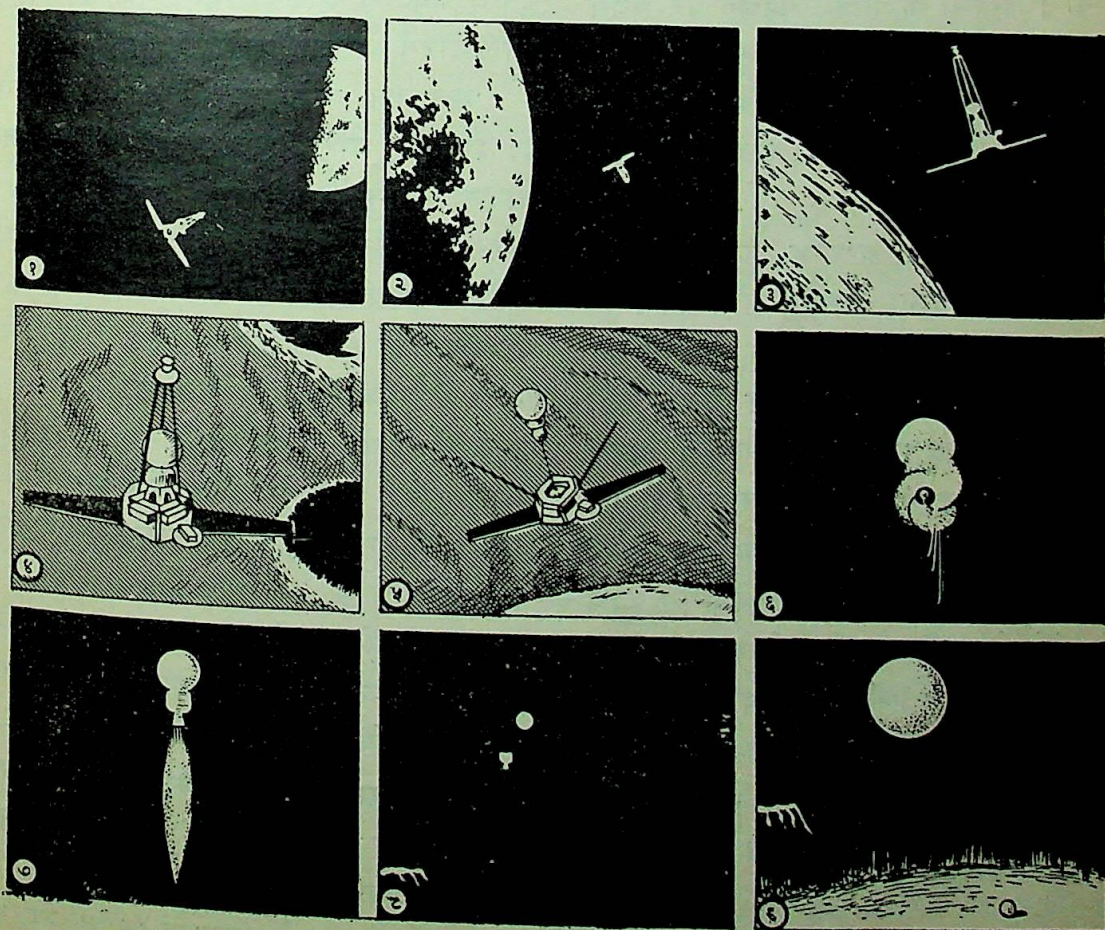
अन्तरिक्ष-यानों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाने का कार्य तो ऊपर दिए गए उदाहरण से भी अधिक मुश्किल है। द्वितीय राकेटयान जिस क्षण प्रथम यान के भ्रमण-

पथ पर पहुँचे, ठीक उसी वक्त प्रथम यान को भी वहीं पहुँच जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उस क्षण द्वितीय यान की रफ्तार तथा उसकी दिशा भी वही होनी चाहिए जो प्रथम यान की है। इसका अर्थ यह है कि मिलन के ठीक पूर्व, द्वितीय यान की दिशा तथा उसके वेग के नियंत्रण के लिए सर्वथा सही किस्म के एलेक्ट्रानिक यन्त्र काम में लाए जाएँ। स्मरण रहे कि जिस क्षण द्वितीय यान प्रथम यान के निकट पहुँचे उस समय दोनों यानों की रफ्तार में रूचमात्र भी अन्तर नहीं होना चाहिए और न उनकी दिशा में ही विभिन्नता होनी चाहिए, अन्यथा

वे यान अपनी कक्षा से पथभ्रष्ट हो जाएँगे और सारी योजना असफल हो जाएगी। अन्तिम क्षणों में रफ्तार और दिशा के सूक्ष्म नियन्त्रण की व्यवस्था राकेट पर लगे नन्हे गैस-जेटों द्वारा सम्पन्न की जाती है।

चन्द्रयात्रा के सिलसिले में अमरीकन अन्तरिक्ष-विशेषज्ञों की योजनाओं का भी उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। अमरीकी अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों की योजनानुसार चन्द्र-यात्रा एक ही स्टेज में पूरी की जाएगी। इसके लिए अत्यन्त शक्तिशाली राकेटयान की जरूरत पड़ेगी। इस योजना को कार्यरूप देने के निमित्त एक विशालकाय राकेटयान का

१, २, ३, ४. चन्द्रमा के निकट पहुँचने पर पृथ्वी से प्राप्त संकेतानुसार कैप्सूल को छोड़ने की तैयारी में राकेट, ५. चन्द्रमा से २५ मील ऊपर कैप्सूल से राकेट अलग हो रहा है, ६, ७, ८. तीव्रवेग से चक्कर काटते हुए कैप्सूल को दूसरे राकेट द्वारा संतुलित किया जा रहा है। ९. कैप्सूल चन्द्रमा से संदेश-प्रसारण के लिए तैयार है



निर्माण किया जा रहा है जिसे 'नोवा' नाम दिया गया है। यह एक छः खण्डी राकेट होगा और इसका वजन अनुमानतः १ करोड़ २० लाख पौण्ड होगा तथा पेंदे का व्यास ५० फुट। पूरे राकेट की ऊँचाई लगभग ४०० फुट होगी।

प्रथम खण्ड के दगने पर राकेट कुछ सौ मील की ऊँचाई तक आकाश में चढ़ जाएगा और तब मुख्य राकेट से अलग होकर नीचे गिर जाएगा। ठीक उसी वक्त द्वितीय खण्ड दगेगा जो राकेट को पृथ्वी के गिर्द परिभ्रमण-कक्षा में स्थापित कर देगा। तदुपरान्त ठीक दिशा और स्थिति में आते ही तृतीय खण्ड का राकेट दगेगा ताकि मुख्य राकेट कक्षा-पथ को छोड़कर चन्द्रमा की ओर चल निकले। अपने मार्ग पर अन्तरिक्षयात्रा में यह राकेट लगभग २½ दिन तक चलता रहेगा। चन्द्रमा के निकट पहुँचने पर चतुर्थ खण्ड दगेगा जो रफ्तार कम करके राकेट को चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा-पथ में स्थापित कर देगा और तत्काल ही चन्द्रमा पर यान को सकुशल उतार लेगा।

वापसी यात्रा आरम्भ करने के लिए पाँचवां खण्ड दागा जाएगा जो राकेट को ऊपर उठाकर पृथ्वी की दिशा में उसे वेग प्रदान करेगा और स्वयं अलग होकर वहीं चन्द्रमा की सतह पर गिर जाएगा। छठवें खण्ड के राकेट के अग्रभाग पर लगे कैप्सूल में ही तीन अन्तरिक्ष-यात्रियों के आवास की समुचित व्यवस्था रहेगी। उनके लिए कोच लगे होंगे जिन पर आधी लेटी अवस्था में वे आराम कर सकेंगे। लेटी अवस्था में रहने से लाभ यह होगा कि अतिरिक्त-गुरुत्वाकर्षण को वे सहज ही संभाल सकेंगे तथा भारहीनता की दशा का भी सामना कर सकेंगे।

छठवें खण्ड में लगे नन्हे जेट आदि की

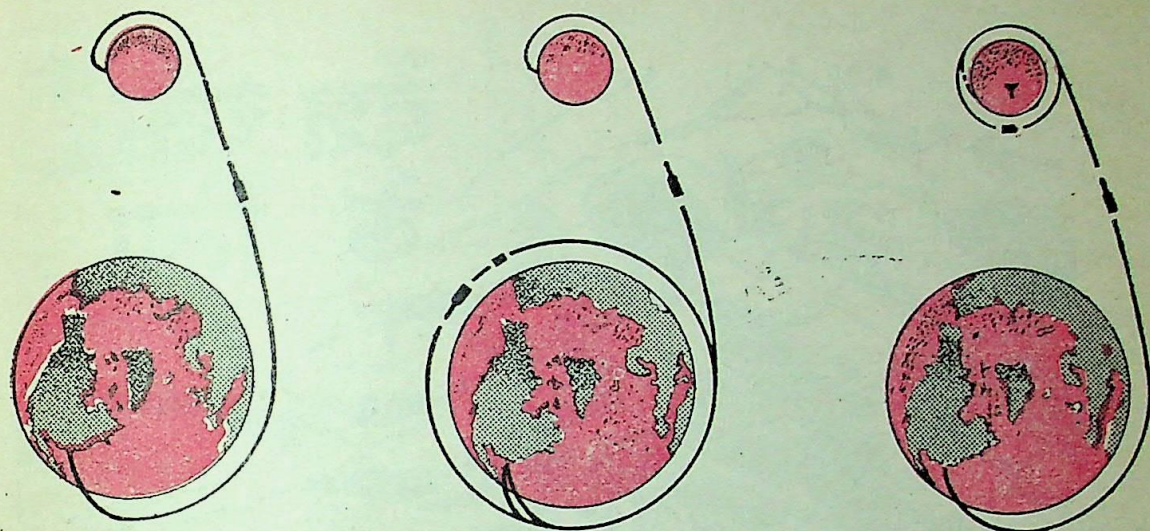
मदद से इसकी रफ्तार कम की जा सकेगी ताकि पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने पर घर्षण की वजह से कैप्सूल के जल जाने का खतरा उत्पन्न न हो जाय। धरती के निकट पहुँचने पर स्वचालित यन्त्रों की मदद से कैप्सूल मुख्य राकेट से अलग हो जाएगा और पैराशूट की सहायता से सकुशल धरती पर उतर आएगा।

इस सीधी यात्रा की अमरीकन योजना में खूबी यह है कि पृथ्वी के गिर्द, कक्षा-पथ में दो या दो से अधिक यानों के सम्मिलन की व्यवस्था नहीं करनी पड़ेगी। इस योजना को कार्यान्वित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सीधी उड़ान के योग्य शक्ति प्राप्त करने के लिए 'नोवा' राकेट बहुत विशाल आकार का बनाना पड़ेगा तथा उसके प्रथम खण्डी राकेट को दागने पर विस्फोट का इतना जबर्दस्त धक्का लगेगा कि आसपास की इमारतें धराशायी हो सकती हैं।

अतः इन कठिनाइयों से बचने के लिए दो योजनाएं और भी विचाराधीन हैं। एक योजना के अनुसार अपेक्षाकृत छोटे 'सैटर्न-५' किस्म के कई राकेट पृथ्वी के गिर्द एक ही कक्षा में स्थापित किए जाएंगे ताकि उनका सम्मिलन हो सके। उन पर लगे कैप्सूलों के अन्दर बैठे इंजीनियर अपने यन्त्रों को चालू करके दोनों यानों को जोड़कर एक शक्तिशाली राकेट बना लेंगे और फिर 'नोवा' की भाँति चन्द्रमा की ओर वह सम्मिलित राकेट चल पड़ेगा।

दूसरी योजना के अनुसार पृथ्वी से भेजे गए कई राकेट पहले चन्द्र के गिर्द एक कक्षा में स्थापित किए जाएँगे, फिर वहीं उनका सम्मिलन कराया जाएगा। बाद में वे चन्द्रमा की सतह पर उतारे जाएँगे। वापसी यात्रा 'नोवा' की भाँति पूरी की जाएगी।

दूसरी योजना के अनुसार 'नोवा' किस्म



के राकेटयान का वजन 'नोवा' से कम होगा क्योंकि उसमें चन्द्रमा पर से उड़ान के लिए आवश्यक ईंधन नहीं लादना पड़ेगा। प्रस्तावित स्कीम इस प्रकार है—चन्द्रमा के निकट पहुँचकर वह यान उलटे मुँह से हलके राकेट दागकर अपनी रफ्तार उचित मात्रा में घटा लेगा और चन्द्रमा के गिर्द परिक्रमा करने लगेगा। स्पष्ट है कि उस दशा में उसके इंजन चालू नहीं रहेंगे। तत्पश्चात् अग्रभाग में रखे 'टैक्सी राकेट' को दागा जाएगा जो चन्द्रमा पर पहुँचेगा। 'टैक्सी-राकेट' पर लगे कैप्सूल में दो यात्री होंगे और तीसरा यात्री

मुख्य यान में ही रह जाएगा। तीन चार दिनों तक निरीक्षण करने के बाद टैक्सी-राकेट पुनः दगेगा और लौटकर उसी कक्षा में पहुँच जाएगा जिसमें मुख्य यान बन्द इंजन की दशा में चन्द्रमा का चक्कर लगा रहा होगा। सम्मिलन के बाद ही मुख्य यान अपने इंजन को चालू करके उस कक्षा से बाहर निकलकर धरती की ओर चल पड़ेगा। अवश्य, इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में कुछ वर्षों की देर है, किन्तु ऐसी आशा है कि ८-१० वर्षों के अन्दर ही मनुष्य चन्द्रमा की वापसी-यात्रा पूरी कर लेगा।

मक्खियों के लिए परिवार-नियोजन

'अफोलेट' ऐसा ही एक रासायनिक पदार्थ तैयार किया गया है जो मक्खियों की वंशवृद्धि पर पूर्ण विराम लगा सकता है। खाना तो दूर, इसे स्पर्श कर लेने पर भी मक्खियाँ स्वयं तो मरेंगी नहीं, प्रजनन के लिए बेकार हो जाएँगी। उनके अण्डों से बच्चे पैदा ही नहीं होंगे! मक्खियों की बाढ़ से इस प्रकार छुटकारा दिलाने का श्रेय अमरीकी संयुक्त राज्य के कृषि-विभाग को है। इस विभाग ने लम्बे समय तक अथक परिश्रम और अनेक प्रयोगों के अनन्तर यह नया पदार्थ प्रस्तुत किया है।

अकल्पनीय ऊँची छलांग

रायल एयर फोर्स का एक तोपची जलते हुए यान से कूदते समय बहुत कोशिश करने पर भी जब अपना पैराशूट न खोल सका तब इस खूबी और सावधानी से नीचे उतरता चला आया कि १८००० फुट की ऊँचाई से १२० मील प्र. घ. के वेग से नीचे आते हुए भी सकुशल आ गिरा!

जनवरी १९६३



देश रक्षा
के लिए

आपकी
बचत की जरूरत है

इन नयी मदों में रुपया लगाइये :

**१० वर्षीय
रक्षा जमा पत्र**

४½% प्रतिशत कर-मुक्त व्याज प्रति वर्ष दिया जाता है।

ये जमा पत्र ५० रु० या इसके गुणकों में मिलते हैं।

ये भारतीय रिजर्व बैंक के सभी कार्यालयों, भारतीय स्टेट बैंक तथा इसके सहायक बैंकों की शाखाओं और ट्रेजरियों व सब-ट्रेजरियों से मिल सकते हैं।

**१२ वर्षीय
राष्ट्रीय रक्षा पत्र**

६½ प्रतिशत प्रति वर्ष साधारण व्याज या ४½ प्रतिशत प्रति वर्ष चक्रवृद्धि व्याज मिलता है।

ये ५ रु०, १० रु०, ५० रु०, १०० रु०, ५०० रु०, १,००० रु०, ५,००० रु० और २५,००० रुपयों के मिलते हैं। इनमें लगाई रकम १२ वर्ष पूरे होने पर ७५ प्रतिशत लाभ सहित वापस मिल जाएगी।

ये बचत बैंक का काम करने वाले सभी डाकघरों से मिल सकते हैं।

अधिकतम सीमाएं- एक व्यक्ति के लिए ३५,००० रु०
और संयुक्त रूप से ७०,००० रु०

भारत की रक्षा शक्ति को और सुदृढ़ कीजिए



राष्ट्रीय बचत संगठन

DA-62/600



प्यारे बच्चो,

विज्ञान-लोक इस अंक से अपना तीसरा वर्ष पूरा कर रहा है। यह जनवरी-अंक नये वर्ष की शुभकामनाओं सहित तुम्हारे हाथ में रख रही हूँ।

ये ही दिन, ये ही महीने तुम्हारे मेहनत करने के हैं—वर्ष भर का सारा जोर लगा देने के हैं। तभी तो अपनी कक्षा से नयी कक्षा तक विजयी छलांग लगा सकोगे! पिछले दो अंकों को तुम सबने बहुत पसन्द किया है इसकी चर्चा तुम्हारे पत्रों में भरी पड़ी है। विद्यार्थियों ने विज्ञान-लोक से अपने अध्ययन में लाभ ही लाभ उठाया है।

कुछ पाठकों को अक्टूबर-अंक में 'परमाणु-विस्फोटन', 'परम शून्य', तथा 'पशु-वाटिका के बीमार सदस्य' लेख विशेष उपयोगी प्रतीत हुए हैं तो अन्य पाठकों ने नवम्बर अंक के 'मकड़ी' और 'सब कुछ आटोमैटिक' लेखों को बहुत पसन्द किया है। 'फोटो-प्रिन्ट' (नवम्बर अंक में प्रकाशित) तुम्हारे ही पाठक-मित्र की रचना है और ऐसी ही रचना की काफी माँग भी है। तुम भी कुछ नया खोजकर ऐसी ही रोचक सामग्री भेज सकते हो।

विज्ञान-लोक से तुम और क्या चाहो? कुछ रचनात्मक सुझाव हों

निस्संकोच लिखो। उस पर अवश्य विचार किया जायगा।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३४ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

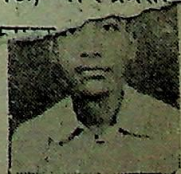
भुवनेश्वर (६१४) आगरा, विजय (१००८) भाँसी, प्रभातसुमन (१२२७) जयपुर, गजेन्द्रपाल (१६०५) मेरठ, सुधीरकुमार (१६१६) आगरा, हरवंशलाल (२६६६) थानेसर, मदनलाल (२८३३) कुरुक्षेत्र, राजेन्द्रपाल (३०७३) लुधियाना, इन्द्रकृष्ण (५०६२) आगरा, जगदीशप्रसाद (६६१६) कानपुर, धर्मवीर (८२००) आगरा।

द्वितीय पुरस्कार

सुभाषचन्द्र (२८४) अलमोड़ा, मुरलीधर (३५४०) कानपुर, प्रकाशचन्द्र (३७२०) जबलपुर, राजनलाल (५६४८) गढ़उमराव, अशोक (६१६२) रुड़की, रवीन्द्रकुमार (६३५६) लखनऊ, शान्तिलाल (६४७४) उदयपुर, अरुणा (६६३५) दिल्ली, नरेशकुमार (६६३६) आगरा, सुधीरकुमार (६६३७) जालंधर, अनिलकुमार (६७१५) आगरा, विमलचन्द्र (७१७२) पीसांगन, सज्जनसिंह (७६८१) उदयपुर, वल्लभदास (७७५८) उदयपुर, मोहिनी (७८२७) रांची, शोभाराम (८०४८) तुमसर, शशिकान्ता (८२३५) हिसार, देवीशरण (८८२१) बेगूसराय।

तृतीय पुरस्कार

अशोक (२७०१) लखनऊ, अमरेन्द्रनाथ (३३५३) पटना, अफसरहुसैन (३४३६) जबलपुर, रामकुमार (४७७४) राजगढ़, अरुणा (५३६२) आगरा, प्रकाशविष्णु (६११३) अजमेर, सुरेन्द्रसिंह (६१८०) जबलपुर, प्रेमसिंह (६५४०) पूरनपुर, दिलीपकुमार (६७३२) बम्बई, सुरेशकुमार (७१६०) अमृतसर, मंजु (७२६०) लखनऊ, वीरेन्द्रप्रताप (७३०२) इलाहाबाद, रवीन्द्रकुमार (८४०२) दिल्ली, सौभागचन्द (८४०२) राजपाल-गोरखपुर (११) सिरौही, ३७ कुमार (१३) हाथरस, ३६ कृष्णाकिशोर (१४) भिलाई।



विनोदकुमार
(स. सं. ७४३२)

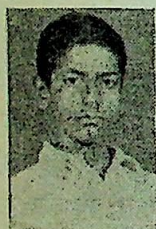
विज्ञान क्लब के नये सदस्य



रामचन्द्रराव
(स. सं. ५२४)



रवीन्द्रनाथ
(स. सं. २४२६)



विश्वनाथ
(स. सं. २७०५)



सुभाषचन्द्र
(स. सं. २७०६)



विकासकुमार
(स. सं. ३११६)



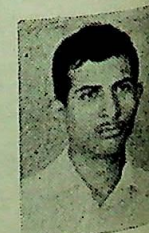
अवधेशकुमार
(स. सं. ३६००)



रमेशकुमार
(स. सं. ३६२७)



सुरेशचन्द्र
(स. सं. ३६५४)



रामनारायण
(स. सं. ६६६१)

५३६४ धर्मपाल (१५) तिजारा, ६५ अरुणकुमार (१२) आगरा, ६६ पशुपतिराय (१५) टेंगडा, ६६ कु. प्रभा अग्रवाल (१४) उन्नाव, ६८ गुलाबचन्द (१३) लाडन, ६९ वसंतशंकर (१८) पूना, ७० भगवान शांताराम (२०) पूना, ७१ शान्तिलाल (१५) चिताड़, ७२ अजीतसिंह (१२) लाडन, ७३ गोपालप्रसाद (१७) पिपरिया, ७४ सुरेश कुमार (१३) पिपरिया, ७५ रमेश मिर्धा (१५) जोधपुर, ७६ कृष्ण कुमार (१५) गया, ७७ धर्मचन्द्र (१४) कुचमन, ७८ सुभाष चन्द्र (१५) जयपुर, ७९ सुभाषचन्द्र (१४) आलिराजपुर, ८० महेशचन्द्र (१७) रायपुर, ८१ कैलाशप्रसाद (१६) राँची, ८२ हरिश्चन्द्र (१५) विलासपुर, ८३ कुस्या खाड़गड़े (१८) बैतूल, ८४ सीताराम (१४) लहरियासराय, ८५ भीमराज दुवे (१४) फतेहपुर, ८६ माराकलाल (१६) व्यावर, ८७ कमलजीत (१५) अमृतसर, ८८ निर्मल कुमार (१७) कलकत्ता, ८९ कु. चित्राघोष (१६) कलकत्ता, ९० चम्पालाल (१४) वरकाना, ९१ नरेन्द्रसिंह (१३) छटमलपुर, ९२ एकनारायण (१४) डिगबोई, ९३ इन्द्रराज (१६) रायगढ़, ९४ माधव प्रसाद (१८) रायगढ़, ९५ राहुल (८) लखनऊ, ९६ वीरभरतलाल (१३) पटना, ९७ नेत्रपाल (१४) देहरादून, ९८ प्रेमकिशोर (१४) लोहारदगा, ९९ कु. कुसुम खत्री (१६) फैजाबाद, ५४०० सुरेन्द्रकुमार (१५) बम्बई, १ सुरेशचन्द्र (१७) व्यावर, २ अरविन्दकुमार (१५) भाँसी, ३ सुरेन्द्रप्रसाद (१४) कुमारधुवी, ४ कृष्णकुमार (१४) आगरा, ५ सतीशचन्द्र (१६) धौलपुर, ६ बालकृष्ण (१३) अलीगढ़, ७ श्रीकान्त (१५) इलाहाबाद, ८ अवतारसिंह (१३) गोलमुरी, ९ कु. शोभारानी (११) इलाहाबाद, १० रतनकुमारी (१०) इलाहाबाद, ११ कु. उर्मिला (१६) इलाहाबाद, १२ ओमकान्त (१०) इलाहाबाद, १३ लालताप्रसाद (१६) लखनऊ, १४ अरुणकुमार (१४) लखनऊ, १५ हरीशचन्द्र (१४) पिथौरागढ़, १६ जगदीशकुमार (१५) मुरैना, १७ अशोककुमार (१३) कानपुर, १८ अशोककुमार (१२) व्यावर, १९ देवकीनन्दन (१६) अजमेर, २० महेशकुमार (१४) खोड़न, २१ मोहनलाल (१६) व्यावर, २२ सत्यनारायण (१५) पटना, २३ विश्वमित्र (१५) बीकानेर, २४ विश्वनाथ (१३) काम्पटी, २५ बलदेवसिंह (१२) कुरुक्षेत्र, २६ काशीनाथ (११) फैजाबाद, २७ चन्द्रप्रकाश (११) भाँसी, २८ विमलकुमार (१२) मीरगंज, २९ चेतनदास (१६) अजमेर, ३० भानुप्रकाश (१४) शाहाबाद, ३१ सरोजकुमार (१८) कुरुद, ३२ ज्ञानेश्वर तुलसीराम (१५) अकोला, ३३ त्रिवेदी सीमालाल (१४) भाभर, ३४ सुरेशकुमार (१३) भिवानी, ३५ दयानन्द (१२) जमशेदपुर, ३६ रवीन्द्र (१६) अधियाना, ३७ जयप्रकाश (१३) हरिद्वार, ३८ अविनाश (११) मुमदनगर, ३९ नवलकिशोर (१४) मुजफ्फरपुर, ४० श्रीगंगानगर, ४१ रमेशचन्द्र (१६) कलकत्ता, ४२ नारण भाई (१४) कलकत्ता, ४३ अमरनाथ (१५) कानपुर, ४४ अजयकुमार (१२) कलकत्ता, ४५ टाकविनोद (१६) भावनगर,

भारत की



राष्ट्रीय



भूपिन्दलाल
(स. सं. ४००२)



रजनीकान्त
(स. सं. ५२४१)



रामचन्द्र
(स. सं. ५४३६)



शैलेन्द्रकुमार
(स. सं. ५६१३)



विजयकुमार
(स. सं. ६७४०)

जनवरी १९६३

४६ ललितमोहन (१५) जयपुर, ५० प्रमोदबहादुर (१४) सरदारशहर, ५१ देवप्रकाश (२१) सीकर, ५२ ओमप्रकाश (१४) नारायना, ५३ गोपालसिंह (१८) जयपुर, ५४ अरुणकुमार (१६) आगरा, ५५ सत्यनारायण (१२) कटरास बाजार, ५६ सुधाकर वासुदेवराव (१६) भरमानी, ५७ श्यामलाल (१४) जमशेदपुर, ५८ कु. जयश्री (१०) पिथौरागढ़, ५९ सत्यप्रकाश (१६) पृथ्वीपुर, ६० नरेन्द्रकुमार (१७) आमला, ६१ देवेन्द्रकुमार (१३) आसीन्द, ६२ जेठमल (१६) आसीन्द, ६३ कु. स्वदेश (१५) भोपाल, ६४ माधव भट्टाचार्य (१८) बरेली, ६५ पुरुषोत्तमदास (१६) हरदा, ६६ देशराजवीर (१५) बरेली, ६७ धनश्यामदास (१४) आसीन्द, ६८ किशनसिंह (१५) आसीन्द, ६९ प्रमोदकुमार (१८) शमशाबाद, ७० प्रहलादराम (१२) गाटी भरकट्टा, ७१ साधुशरण (१६) कतरासगढ़, ७२ कु. श्यामा (१५) फैजाबाद, ७३ राधेश्याम (१३) मुरैना, ७४ चन्द्र-प्रकाश (१४) इन्दौर, ७५ रायरामलाला. (११) धनबाद, ७६ दिगम्बर मल्लिक (१८) रतनपुर, ७७ नागेन्द्रनाथ (१३) गया, ७८ अवधेशकुमार (१२) पटियाली, ७९ नरेशचन्द्र (१५) गोरख-पुर, ८० वसन्तकुमार (१५) पेण्ड्रा रोड, ८१ कैलाशचन्द्र (१८) जबलपुर, ८२ प्रदीपकुमार (१४) अहमदाबाद, ८३ परमानन्द (१५) कानपुर, ८४ फजलुर रहमान (१७) पचट्टी, ८५ दिग्विजयसिंह बुनियादागंज, ८६ धनश्याम (१६) इन्दौर, ८७ रमेशचन्द्र (१७) (१५) इन्दौर, ८८ प्रदीपकुमार (१५) इन्दौर, ८९ लक्ष्मण वन्सीमल (१७) अजमेर, ९० श्यामराव (१६) रायपुर, ९१ रवीन्द्रकुमार (१६) सहारनपुर, ९२ अशोक कुमार (१५) महु, ९३ पुष्पलता (१६) महु, ९४ अनिलकुमार (१२) महु, ९५ कमलकुमार (१५) महु, ९६ अशोककुमार (११) महु, ९७ जगजीतसिंह (१६) बैतूल, ९८ राजेन्द्रकुमार (१०) तेलङ्गी, ९९ श्यामानन्द (९) रेबडा, ५५०० रामजीभाई बालजीभाई (२६) मालपरा, १ सवाईसिंह (१५) नागदा, २ मानचन्द्र (१४) कुरुक्षेत्र, ३ जगदीशनारायण (१७) कानपुर, ४ रमेशचन्द्र (१६) वाढौन, ५ प्रमोदकुमार (१६) शाहनगर, ६ सुरेन्द्रकुमार (१६) जबलपुर, ७ राकेश-कुमार (१६) लुधियाना, ८ रामावतार (१३) चूरू, ९ अजय-कुमार (१६) रायपुर, १० विपेन्द्र (१६) जगदीशपुर, ११ अरविन्द कुमार (१३) कोटा, १२ भगवतीनारायण (१७) नरायना, १३ सत्यनारायण (१६) नरायना, १४ चन्दाकुमारी (१३) चूरू, १५ योगेन्द्रपाल (१४) बड़ौत, १६ कलियुगीनारद (१५) गया, १७ वीरेन्द्रप्रताप (१४) सियानवाक, १८ रणजीतकुमार (१३) लाडनू, १९ बाबूराम प्रजापति (१७) भोपाल, २० जगत-कुमार (१४) लाडनू, २१ सूरजमल (१६) अजमेर, २२ ओंकार-नाथ (१३) वाराणसी, २३ अमलेन्दुकुमार (१२) महेशपुर, २४ जगदीशप्रसाद (१४) जयपुर, २५ रविप्रकाश (१७) हलद्वानी, २६ रमेशचन्द्र (१४) श्योपुरकलां, २७ अमृतलाल (१५) जम-शेदपुर, २८ त्रिलोचनसिंह (१३) डोंगरगढ़, २९ मुरलीधर (१५) कोपा बाजार, ३० बृजनन्दन (१५) लोहारदगा, ३१ मौलिप्रसाद (१७) कछवा, ३२ नजर परवीन (१५) मौदहा, ३३ राजपाल-सिंह (१५) धौलाना, ३४ विजयप्रभात (१७) शाजापुर, ३५ नन्दकुमार (१६) कुरुद, ३६ राजेन्द्रकुमार (११) सिरोही, ३७ जेठमल (१६) मीनासर, ३८ राजकुमार (१३) हाथरस, ३९ कु. सरोजिनी (१४) राँची, ४० कृष्णकिशोर (१४) भिलाई ।



उमेशचन्द्र
(स. सं. ६८३८)



हिमांशुकुमार
(स. सं. ७०८६)



कृष्णचन्द्र
(स. सं. ७२११)



विष्णुऔतार
(स. सं. ७२६५)



विनोदकुमार
(स. सं. ७४३२)

‘सोना दो, लोहा लेंगे’

आज हमारे लिए लोहा सोने से भी कीमती है

इसलिए कि

भारतीय जवान सरहद पर लोहा ले रहे हैं

उन्हें लोहे की कमी न पड़ने पाए

नहीं तो

मुल्क का सारा सोना खतरे में पड़ जाएगा

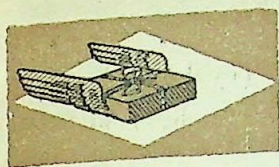
बाहर से लोहा मँगाने के लिए सोना चाहिए

आइए

गहने देकर हथियार जुटाएँ

रक्षा कोष को और बढ़ाएँ

[सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित]



विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर "विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६ का उत्तर" लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ जनवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३६ के प्रश्न

१. पानी का जहाज बनाते समय लोहे की चदरों में लाल-सुर्ख तप्तावस्था में ही रिविटें बिठाने का क्या आशय है ? स्पष्ट कीजिए।

२. Bauxite शब्द का अर्थ तथा उत्पत्ति-स्रोत क्या है ?

३. ऐसा कौन सा पक्षी है जिसके पंख नहीं, पूँछ भी नहीं और कहाँ पाया जाता है ?

४. दिक्सूचक (magnetic compass) की सुई पृथ्वी के उत्तर को ही इंगित करती है। यह सत्य है तो इसका कारण बताइए।

५. अन्तरिक्ष में घूमती हुई हमारी पृथ्वी की गति कितने प्रकार की है ? उन प्रकारों को गिनाइए।

६. एक प्राणी ऐसा भी है जो अण्डे तो देता

है किन्तु स्तनपायी है। वह कौन है और कहाँ पाया जाता है ?

७. Ermine क्या है, इसका प्राप्ति-स्रोत क्या है ?

८. Tramway शब्द का सर्वप्रथम उपयोग किस अर्थ में किया गया ?

९. सूर्य से भी अधिक ताप, अर्थात् ५० लाख डिग्री सें. विज्ञानशाला में प्राप्त किया जा सका है। उक्त विज्ञानशाला का पूरा नाम क्या है और वह कहाँ है ?

१०. अन्तरिक्ष के अनुसन्धानक वायुमण्डल की आर्द्रता नापने के लिए किस विशेष मापकयन्त्र का उपयोग करते हैं ?

प्रतियोगिता संख्या ३४ के प्रश्नों के उत्तर

१. मशीन तथा प्राणियों में नियन्त्रण और संदेशवाहन प्रणाली के विज्ञान को साइबरनेटिक्स नाम दिया गया है। एलेक्ट्रानिक मस्तिष्क आदि इसी विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं।

२. व्हेल।

३. साइबेरिया में आर्कटिक समुद्र तट पर।

४. लगभग ४० मील प्रति घण्टा।

५. एडीसन ने।

६. चीन में मल्लुए कारमोरांट नाम की चिड़िया

इस काम के लिए इस्तेमाल करते हैं।

७. भूसा डालने पर सांचे के अन्दर की ईंट सूखने के बाद सिकुड़ती नहीं थी; वर्ना खाली मिट्टी से जो ईंट बनायी जाती थी वह सिकुड़कर टूट जाती थी।

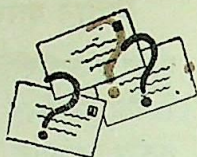
८. एस्बेस्टस।

९. अंगूठे का निशान हमेशा एक सा बना रहता है।

१०. एक प्रकार के कीड़े के शरीर से लाख प्राप्त होता है।

जनवरी १९६३

आपके प्रश्न



मदनलाल कपूर (२८३३) कुरुक्षेत्र

प्रश्न—पोलियोमाइलेटिस (Poliomyelitis) रोग के लिए वैक्सीन सर्वप्रथम किसने बनायी ?

उत्तर—अमरीकन डा. जोसेफ साक (Dr. Joseph Sak) ने १९५४ में। उसी के नाम पर उस वैक्सीन का नाम साक-वैक्सीन (Sak-vaccine) पड़ा।

कु. सुरेन्द्र कौर (१४८७) कदमा

प्रश्न—बिजली प्रवाहित करने पर बल्ब से तो प्रकाश निकलता है, लेकिन हीटर से ताप, ऐसा क्यों ?

उत्तर—दोनों में भिन्न-भिन्न प्रतिरोधन (resistance) के तार लगाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, बल्ब में टंगस्टन (tungsten) तार रहता है जो तप्त होने पर तीव्र प्रकाश देता है।

आलोककुमार साहा (११५६) गिरिडीह

प्रश्न—शरीर की त्वचा पर जलने से फफोला क्यों पड़ जाता है ?

उत्तर—वहाँ के जल-भाग का वाष्पीकरण हो जाता है; साथ ही कुछ अतिरिक्त जल-बिन्दु भी एकत्र हो जाते हैं। तभी तो फफोला फोड़ने पर पानी सा वह निकलता है !

नरेन्द्रकुमार सर्राफ (६३३०) वर्धा

प्रश्न—बिजली का धक्का लगने पर मनुष्य का एकबारगी बोल क्यों बन्द हो जाता है ?

उत्तर—धक्के के कारण समूचा मेरुदण्ड (spinal cord) सुन्न पड़ जाता है और शरीर के अंग-प्रत्यंग को पलक मारते ही प्रभावित कर देता है। अतः केवल वाणी ही क्यों, सारे अंग एक प्रकार से निर्जीव और शून्यवत् हो जाते हैं।

द्वारकाप्रसाद नामदेव (३७५०) इन्दौर

प्रश्न—रेलगाड़ी किसी नदी के पुल को पार करती है तो उसकी आवाज भारी क्यों हो जाती है ?

उत्तर—पुल और नदी की सतह के बीच के वायुभाग में प्रतिध्वनि का विस्तार असाधारण रूप से बढ़ जाता है।

अरुण श्रीवास्तव (६६०३) लखनऊ

प्रश्न—साइक्लोट्रॉन (cyclotron) अर्थात् परमाणु-विभंजक (Atom-smasher) का आकार किसने किया ?

उत्तर—ओ. ई. लारेन्स (O. E. Lawrence) तथा लिविंग्स्टन (Livingston) ने सम्मिलित उद्योग से, १९३१ में।

राधेलाल गुप्ता (६४३७) बुलन्दशहर

प्रश्न—कौन से सेटेलाइट (satellite) ने सर्वप्रथम चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के चित्र लिए और कब ?

उत्तर—सोवियत स्पेस-राकेट-३ (Space Rocket-3) ने ७ अक्टूबर, १९५६ को।

प्रकाशनारायण साथुर (८६४५)

प्रश्न—पाश्चुराइजेशन (pasteurisation) किसे कहते हैं ?

उत्तर—वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा दूध को बैक्टीरिया तथा अन्य हानिकारक तत्वों से मुक्त करने की विधि।

सतीशकुमार (४०२६) गोरखपुर

प्रश्न—ईथर क्या चीज है ? क्या यह वायुमण्डल में पाया जाता है ?

उत्तर—पृथ्वी के गिर्द वायुमण्डल का जो आवरण है, उसमें ईथर का महत्त्वपूर्ण भाग है। अनेकानेक प्रयोगों तथा अनुसन्धानों के पश्चात् सर ओलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने निश्चित रूप से घोषित किया कि ईथर से वायुमण्डल का कोना-कोना व्याप्त है। यह अत्यधिक शीतल है, पारदर्शक है तथा एक्स-किरणों और रेडियो तरंगों का उत्तम चालक है। प्रोटान तथा एलेक्ट्रॉन से निर्मित इस ईथर में चुम्बकीय तथा विद्युतीय प्रभाव के कारण स्वयं की शक्ति भी है। भूमण्डल पर होने वाली समस्त भौतिक तथा रासायनिक प्रक्रियाओं का यह अप्रत्यक्ष सहायक भी है।

शशिकान्त श्रीवास्तव (५६५८) आगरा

प्रश्न—पत्तियों पर गीज लगा देने से वे पीत क्यों पड़ जाती हैं ?

उत्तर—उनकी श्वसन-क्रिया छिद्रों के बन्द हो जाने से रुक जाती है न ! कुछ देर बाद तो वे मुर्झा कर भूढ़ भी जाएंगी।

रामनन्दन मिश्र (६६७६) भागलपुर

शामबिहारी (१०१८) अमृतसर

प्रश्न—यदि चन्द्रमा के आकर्षण द्वारा भूमण्डल के सागर में ज्वार आता है तो पृथ्वी पर जल से भी काफी हलकी वस्तुएं हैं, उन्हें चन्द्रमा क्यों नहीं खींच लेता ?

उत्तर—किसने कहा कि चन्द्रमा सागर-जल को खींचता है ? सत्य यह है कि चन्द्रमा तो पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित करता है। फलस्वरूप जितना पृथ्वी हटती है, उतना भाग जल से आप्लावित हो जाता है और ज्वार आया प्रतीत होता है।

अवधेशप्रसाद (२५७२) ढाका

प्रश्न—क्या शीशे को कपड़े में बदला जा सकता है ? यदि हाँ, तो सर्वप्रथम इसका प्रयोग किसने किया और कब ?

उत्तर—आजकल तो शीशे के वस्त्र (glass fabrics) बनाना एक आधुनिकतम वैज्ञानिक उद्योग है। इधर ही के वर्षों में शीशे के रेशे (glass wool) से प्रारम्भ होकर १/५००० इंच जैसे बारीक धागे काते जाते हैं और उनसे विविध साज-सज्जा के वस्त्रादि बनते हैं। वैसे इसका प्रथम स्वप्न १७१३ में कार्लो रीवा (Carlo Riva) नामक एक इटालियन वैज्ञानिक सार्थक कर चुका था जब कि प्रथम बार उसने शीशे से रेशे-धागे निकालने का सफल प्रयोग प्रदर्शित किया था।

सीताराम (४७३१) बीकानेर

प्रश्न—खुली हवा में रखा ठण्डा पानी धीरे-धीरे गर्म तथा गर्म पानी ठण्डा क्यों हो जाता है ?

उत्तर—अपने चारों ओर के ताप से समानता प्राप्त कर लेने का सहज स्वभाव कहाँ जायगा ? अतः अन्त में चारों ओर के वातावरण की अपेक्षा न तो अधिक ठण्डा, न अधिक गर्म रहेगा।

जानेश्वर (४१३०) इन्दौर

प्रश्न—निकोटिनिक अम्ल (Nicotinic acid) का पीना मनुष्य के लिए लाभप्रद है अथवा हानिकारक ?

उत्तर—निकोटीन तो तम्बाकू की पत्ती में निहित एक विष ही है; अतः इसके उपयोग से हानि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी आशा न रखनी चाहिए।

प्रश्न—हाइड्रोपोनिक से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—बगैर खाद-मिट्टी के, बागवानी की कला का नाम है। इसके द्वारा रासायनिक विधि से पौधे उगाये जा सकते हैं।

परमेश्वरशरण श्रीवास्तव (५७१६) गया

प्रश्न—रात में खिलनेवाले पुष्प प्रायः सफेद क्यों होते हैं ?

उत्तर—परागण-क्रिया में सहायक, अपने मित्र-कीटों को आमन्त्रित करने के लिए।

कुमारी उमा (१६६६) सरगुजा

प्रश्न—हम श्वास के साथ कार्बन डाइऑक्साइड बाहर फेंकते हैं किन्तु एक बड़ा आग का ढेर तो हमारे फूँकने से बुझता नहीं, उलटे बढ़ता ही है। ऐसा क्यों ?

उत्तर—श्वास के साथ निकली हुई कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस इतनी पर्याप्त नहीं होती कि आग को बुझा दे। यहाँ तक कि मोमबत्ती की लौ तक उस गैस से नहीं किन्तु वायु के झपाटे के कारण बुझती है। आग के ढेर को तो फूँक द्वारा हम अधिक वायु अर्थात् अधिक आक्सीजन ही पहुँचाते हैं, तब बुझने का प्रश्न ही कहाँ ?

हरजीतसिंह (४६१४) जमशेदपुर

प्रश्न—यदि आपरेशन द्वारा किसी बुद्धिमान व्यक्ति का मस्तिष्क एक मूर्ख के सिर में बिठा दिया जाए तो क्या वह भी बुद्धिमान हो जायेगा ?

उत्तर—प्रश्न दिलचस्प है और प्रयोग अभी नये ही हैं। बुद्धिमान व्यक्ति का ज्ञान-भण्डार तो नहीं ज्ञान-ग्राहक मस्तिष्क उस मूर्ख को अवश्य मिल जाएगा। तत्पश्चात् उचित शिक्षण द्वारा ही क्रमशः उसकी ज्ञान-धारिता में विकास अवश्य हो सकेगा।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

तुम्हारी कलम से



ज्वालामुखी के मुख में

मुकुटदेश अग्रवाल (स. सं. ७६६२)

ज्वालामुखी, आग उगलनेवाला पर्वत, पत्थर के पिघले शीरे का अक्षय भण्डार, कभी भी किसी भू-प्रदेश को सदा के लिए सुला सकता है। कितनों को सुला भी चुका है, इसका इतिहास साक्षी है। ऐसे प्रलयकारी ज्वाला-

मुखी से खेल करने की कौन सोच सकता है? खेल करना तो अलग, पास जाना भी खतरे से खाली नहीं। किसी भी क्षण फटकर वह महा-विनाश ला सकता है। शेर और मगर के मुख में जाना तो सहज है, पर ज्वालामुखी के मुख में

उतरना असम्भव ही है। समय-समय पर ज्वालामुखी के भयंकर रूप को देखकर अनेक जिज्ञासुओं के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इसके भीतर का हाल देखा जाए। परन्तु क्या हाल जानना सम्भव था?

सम्भव तो दूर, उसकी कल्पना करना भी महामूर्खता कही जा सकती थी।

इतने पर भी विज्ञान के लिए तो वह कल्पना भी महामूर्खता न रहकर खोज का विषय बन गयी। वैज्ञानिकों ने एस्वेस्टस

क्लाडियस पत्थर के सैनिक बागी सरदार स्पार्टकस और उसके ७० साथियों का पीछा कर रहे थे। स्पार्टकस अपने साथियों सहित पेड़ों की लम्बी, लटकती डालों और बेलों की रस्सेनुमा शाखों पर झूलते हुए एक पहाड़ी गह्वर में उतर गया। पहाड़ी के गिर्द, नीचे से ऊपर चोटी तक हरे-भरे खेत लहलहा रहे थे। पीछा करनेवालों के लौट जाने पर, तुरंत ही इन्हें भी वह स्थान छोड़कर भागना पड़ा, क्योंकि कुछ जानकार साथियों से उन्हें ज्ञात हो गया कि वह गिरि-गह्वर प्रसिद्ध ज्वालामुखी विस्पूवियस का था जिसने सन् ७६ की २४ अगस्त को मुंह खोला था तो पाम्पिआई तथा हरकुलेनियम नगरों को उदरस्थ करके ही दम लिया था!

नामक पदार्थ भी खोज निकाला जिस पर अग्नि का विलकुल प्रभाव नहीं पड़ता। फिर भी यह तो आसान था ही नहीं कि उसे पहन-ओढ़ कर ज्वालामुखी के अन्दर उतरा जाये। किसी भी क्षण पर्वत फट पड़े तो शरीर का रोया भी नजर न आये।

किरनर महोदय ऐसे ही नर-वीर थे जिन्होंने प्राणों को हथेली पर रखकर इस असम्भव कार्य को भी सम्भव कर दिखाया। उन्होंने एस्वेस्टस के रस्से बनाये, एस्वेस्टस से सारे शरीर को ढँका, फोटो लेने के

कैमरे और लेंस को भी एस्वेस्टस से सुरक्षित कर लिया । उन्होंने अपने साथ आक्सीजन के सिलेण्डर भी रख लिए, क्योंकि ज्वालामुखी के भीतर सांस लेने के लिए वायु कहाँ ?

पूरी तैयारी करके भूमध्य सागर स्थित सिसली टापू के उत्तर में स्ट्राम्बोलो ज्वालामुखी का पर्वत उन्होंने चुना । ज्वालामुखी के मुख पर गिरी लगायी और उसकी सहायता से वे रस्से के सहारे अन्दर उतरे । वे पर्वत की गर्म लपटों में निर्भयतापूर्वक आठ सौ फुट तक उतरते चले गये । आठ सौ फुट ! भयंकर ज्वालामुखी के मुख में !!

इस तरह प्राणों को संकट में डालकर उन्होंने ज्वालामुखी के उन अद्भुत रहस्यों को देखा जिन्हें देखना पहले असम्भव माना जाता था । भीतर हजारों छेद थे जिनमें

से गन्धक आदि की अग्निशिखाएँ लपलपा रही थीं और चारों ओर अनेक गहरे कुएं थे जिनमें से तेजी से लावा निकल रहा था मानो लावा का सागर ही बह रहा हो ! कुएं के भीतर रंग-बिरंगी तप्त गैसों का धुआँ छाया हुआ था । सारा वायुमण्डल गन्धक की जहरीली गैस से भरपूर था और सभी कुछ अत्यधिक गर्म था ।

लगभग ३ घंटे ज्वालामुखी के मुख में बिताकर किरनर महोदय बाहर निकले और सारे संसार को आश्चर्य में डाल दिया । यों विज्ञान की करामात ने इस असम्भव काम को भी सम्भव बना डाला ।

क्या पता, विज्ञान अपने करिश्मों से एक दिन ऐसा भी आविष्कार कर दिखाये जिससे कोई भी व्यक्ति बिना किसी खतरे के ज्वालामुखी के मुख में उतर सके !

तुरंत आराम और राहत के लिये

जोशीना

जोशीना प्रसिद्ध यूनानी सुखे 'जोशान्दा' का एक्सट्रेक्ट है । यह जुकाम के सभी लक्षणों को तुरन्त दूर करती है, घन्द नाक को खोलती है और आराम पहुँचाती है ।

जोशीना की एक शीशी सदा अपने पास रखिये ।

हमदर्द

देहली ● कानपुर ● पटना



जनवरी १९६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

GAY/HDI/338

ग्राहक बनिए और पढ़िए

सोवियत भूमि

भारत-रूस मैत्री पर सचित्र पत्रिका अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़, बंगाली, आसामी, उड़िया, गुजराती, मराठी और नैपाली में प्रकाशित होती है।

दरों में विशेष रिआयत

(१-१२-१९६२ से ३१-१-१९६३ तक)

घटी दरें	अंग्रेजी	अन्य भाषाओं में
१ वर्ष	५)	४)
२ वर्ष	९)	७)
३ वर्ष	१२)	१०)
साधारण दरें :		
१ वर्ष	६)	५)

कलेण्डर का पुरस्कार

प्रत्येक ग्राहक को एक सुन्दर, बहुरंगा, सात-पेजी कलेण्डर पुरस्कारस्वरूप दिया जाएगा। कलेण्डर के प्रत्येक पेज पर एक आकर्षक चित्र होगा जिसमें सोवियत संघ की मनोरम दृश्यावलि तथा इसी संघ के राष्ट्रीय वेश में सुसज्जित व्यक्तियों की आकर्षक भांकी चित्रित होगी।

वार्षिक शुल्क सीधा हमें अथवा स्थानीय एजेण्ट द्वारा भेजें।

भारत-स्थित सोवियत संघ का सूचना विभाग

२५, बाराखम्भा रोड, नई दिल्ली-१

यहाँ से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन

आयु

नाम

घर का पता

पुस्तकालय

पुस्तकालय

गुरुकुल

गुरुकुल काँगड़ी

स्कूल का नाम

शिक्षा

रुचि

यहाँ से काटिए

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्री साधु मेहरा एण्ड कंपनी, आगरा के लिए प्रकाशित।
[मल्लपुल्ल बजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

विज्ञान-लोक केवल २) में !

चतुर्थ वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में

विज्ञान-लोक

की

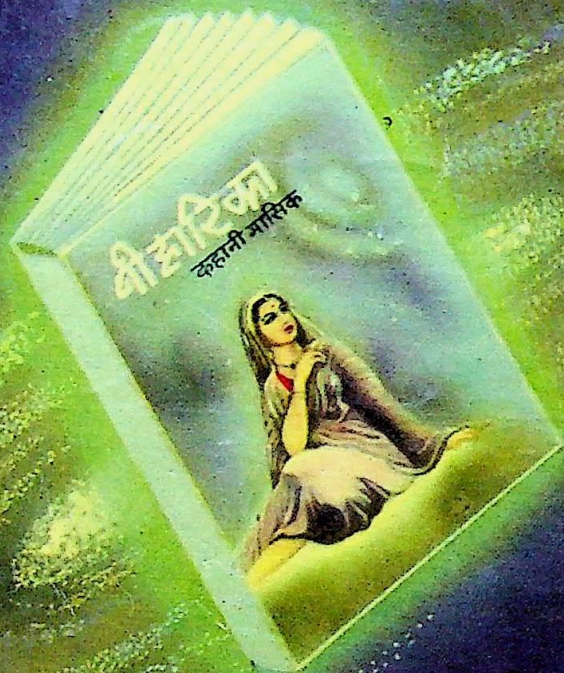
नवीन आकर्षक योजना

- इस योजना के अनुसार आप २०) भेजकर तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं ।
- विज्ञान-लोक का वार्षिक शुल्क ९) है किन्तु इस योजना से आप तृतीय वर्ष के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं ।
- इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा ।
- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी, १९६३ ।

आज ही विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा को मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी जगत में नया नक्षत्र



वीहाटिका

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रुपये

एक प्रति ६० न

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



म

जा

पल

रुपये

0 न

७५
नये पैसे

मछलियाँ भी घोंसला बनाती हैं ५

—कुमारी प्रमिला

मेरिनर की शूक्र यात्रा ६

—हरीश अग्रवाल

आयोडीन १३

—चन्द्रकुमार

चुलबुली बुलबुल १८

—सुरेशसिंह

प्राचीन जलवायु २२

—नरेन्द्रसिंह माथुर

जी, मैं कंगारू हूँ २६

—प्रकाशमोहन गर्ग

कर्णातीत ध्वनियाँ ३२

—डा. दयाप्रसाद खण्डेलवाल

बगैर दवा सर्दी जुकाम से

छुटकारा ३७

—रामप्रसाद जैन

जहाँ बेयर्ड ४२

—गुणाकर मुले

पूरब का चुम्बक—मसाले ४६

—राजेन्द्रकुमार

यौन परिवर्तन ५१

—जगदीशप्रसाद अग्रवाल

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ४१

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४५

विज्ञान-क्लब ५५

इनाम लो ५८

आपके प्रश्न ६१

तुम्हारी कलम से ६४

वर्ष ४



विज्ञान के शिक्षण में ब्रिटेन ने गत मास महत्वपूर्ण नया कदम उठाया है। देश-विदेश विज्ञान-शिक्षकों तथा उनके विभिन्न संगठनों एक बृहत् संगठन में सम्मिलित होने का आग्रह किया है।

७ जनवरी, १९६३ को 'एसोसिएशन फॉर साइंस एजुकेशन' के नाम से इस नये संगठन की स्थापना १००० सदस्यों की प्रारम्भिक सदस्यता से की जा चुकी है। बरमिंघम विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर राबर्ट एटकिन इसके प्रथम अध्यक्ष हैं। प्रधान सचिव के पद से श्री ई. डब्ल्यू टैपर इसका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि संगठन ससार भर के (विशेषतः कामनवेल्थ) राष्ट्रों में स्थित विज्ञान के शिक्षकों से तथा उनके विभिन्न संगठनों से सम्पर्क स्थापित करने तथा नयी सूझें, नये विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए बनाया गया है।

उक्त अवसर पर उपस्थित दो भारतीय प्रतिनिधि श्री आर. सी. दास और श्री एच. वर्याकुर यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए कि ब्रिटेन में आज जबकि कैसा भी वैज्ञानिक उपकरण सहज प्राप्य तथा खरीदा जा सकता है, वहाँ के शिक्षकों ने स्वयं ही विज्ञान के प्रदर्शित किये थे।

विज्ञान-लोक इस नयी संस्था का स्वागत करता है और आशा करता है कि हमारे देश के विज्ञान-शिक्षण-तंत्र इससे अवश्य नया दिशा-मार्ग प्राप्त करेगा और विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों के साथ कदम से कदम मिलाये रहेगा।

अंक १

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

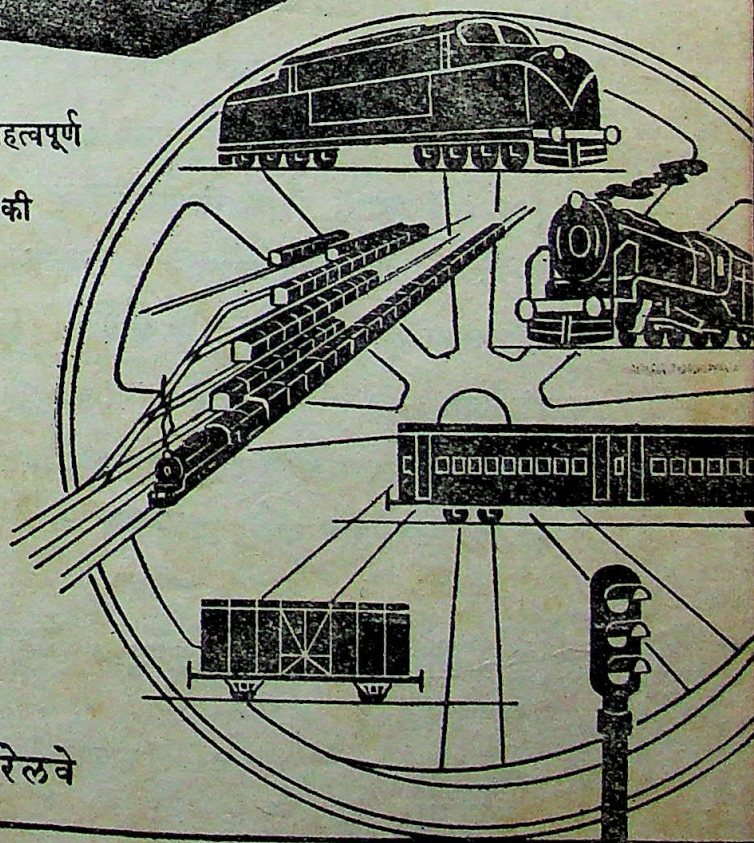


हरेक अपने काम में जुटा रहे जब तक हम पूरी तरह
जीत नहीं जाते

देश को समृद्ध बनाने में रेलों को महत्वपूर्ण
काम करना है। और आज तो देश की
रक्षा के लिए उनका काम और भी
महत्वपूर्ण हो उठा है।



मध्य और पश्चिम रेलवे



आपकी बचत राष्ट्र की बचत है

प्रीमियम इनामी बांड खरीदिये

बड़े इनाम के लिए

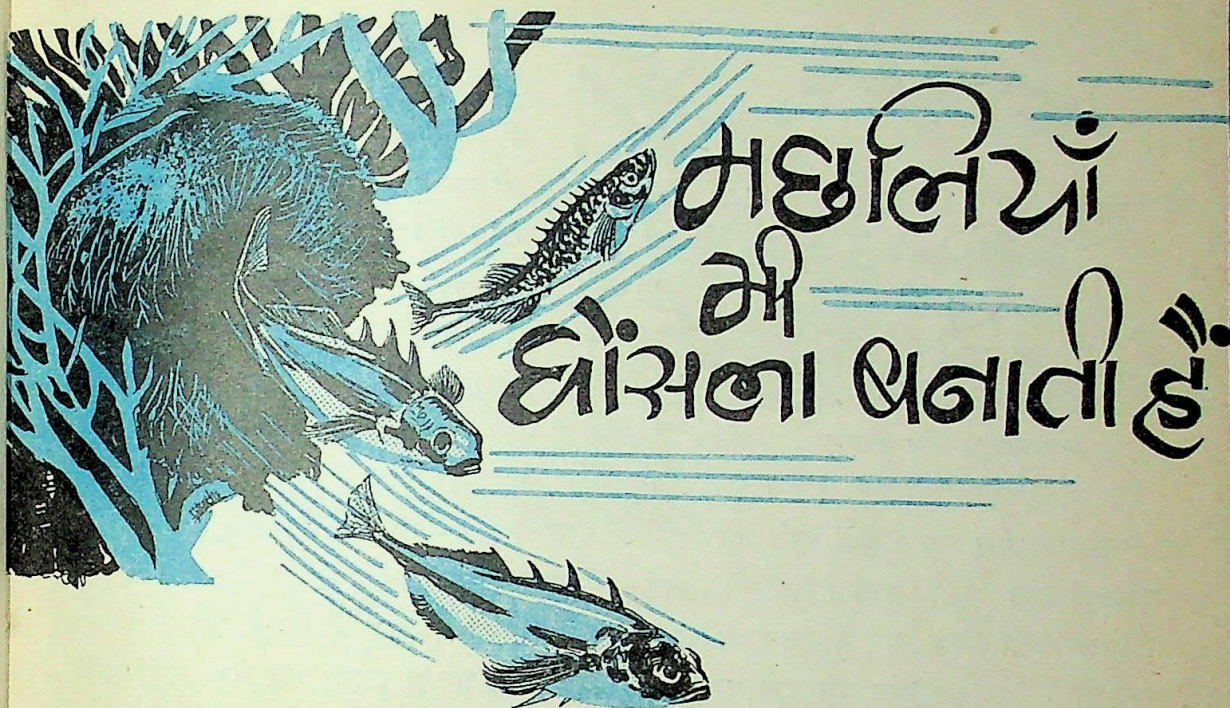
बड़े लाभ के लिए

बड़े काम के लिए

१०० रु. और ५ रु. मूल्यों के ये बेयरर बांड भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यालयों, भारतीय राज्य बैंक और उसके सहायक बैंकों की शाखाओं, खजानों तथा छोटे खजानों और डाकखानों में उपलब्ध हैं। बांड की रकम पाँच साल बाद १० प्रतिशत प्रीमियम सहित वापस कर दी जायेगी। इसके अलावा इन बांडों के खरीददार १९६४ में इनामों की दो निकासियों में भाग ले सकेंगे। एक-एक करोड़ रुपये के प्रत्येक प्रकार के बांड के लिए हर निकासी में पाँच-पाँच लाख रुपये के इनाम रखे जायेंगे। इस प्रकार १०० रु. के बांडों पर २४३ और ५ रु. के बांडों पर ५६८ इनाम बाँटे जायेंगे। इनामों की संख्या और उनकी रकम सीमित नहीं होगी बल्कि बांडों की बिक्री में होने वाली वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जायेगी।

लाभ (प्रीमियम) और इनाम दोनों आय-कर से मुक्त

[सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रसारित]



कुमारी प्रमिला

पक्षियों को छोड़कर वन्दरों का ही घोंसला बनाना कम अचरजभरा नहीं। कुछ मछलियाँ भी ऐसी हैं जो घोंसला बनाती हैं। शरीर में २-४ इंच की, जीवन भी कुल ३-४ वर्ष का किन्तु तेजी बहुत रहती है। यह मछलियाँ स्टिकलबैक (Stickleback) तथा ट्यूबनोज (Tubenose) हैं।

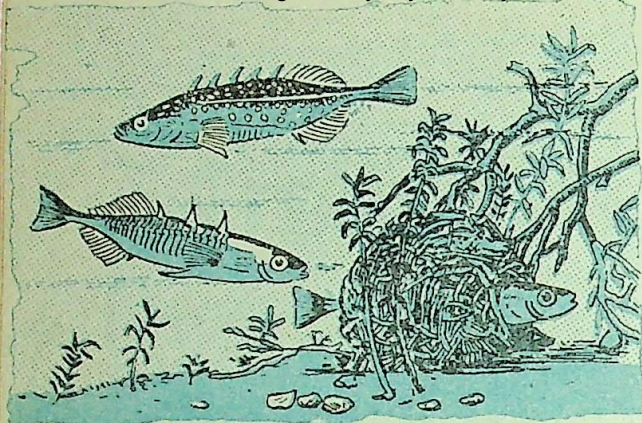
इन्हीं मछलियों के नर प्राणी घोंसले बनाकर रहना पसन्द करते हैं, विशेषतः ऋतुकाल में। इनके लम्बे आकार को देखकर प्रायः ही पाइपफिश (Pipefishes) तथा नीडलफिश (Needlefishes) का भ्रम हो जाता है। इनके बारे में अनेक मनोरंजक विवरण प्राप्त किये गये हैं। भूमण्डल के उत्तरी गोलार्द्ध में समशीतोष्ण सागर-जल में तथा नदियों में ये अधिक पायी जाती हैं। कुछ जातियाँ खारे तथा मीठे, दोनों तरह के पानी में सरलता से रह लेती हैं।

स्टिकलबैक

यह नाम इन्हें इसलिए दिया गया है कि

इनकी पीठ पर पंक्तिबद्ध काँटे से निकले रहते हैं। ये काँटे पाव इंच से बड़े नहीं होते किन्तु बड़े पैने होते हैं और इनके लिए अस्त्र का काम देते हैं। काँटों की संख्या जाति विशेष पर आधारित रहती है। कहीं केवल तीन ही होते हैं तो कहीं पन्द्रह तक। कई मछलियों के दोनों पार्श्व कवचनुमा अस्थि-पट्टियों से सुरक्षित रहते हैं। उन पट्टिकाओं की भी संख्या विभिन्न रहती है। अधिक से अधिक ३६ पट्टिकाएँ तक देखी गयी हैं। ये मछलियाँ कैसे पानी में रहती हैं, उस पानी का ताप तथा खारापन कितना है, इन्हीं पर इन पट्टिकाओं की संख्या भी निर्भर रहती है।

इन मछलियों के वे काँटे इन्हें तब सहायक नहीं होते जब कुछ बड़े पक्षी तथा अन्य जीव इन्हें बड़े चाव से अपने आहार में मिला लेते हैं। उनके अतिरिक्त फीताकृमि (tapeworms) भी इनके लिए कम मुसीबत खड़ी नहीं करते। वे अपने अण्डों को इनके शरीर में छोड़ देते हैं जो भीतर ही



मछलियाँ... और घोंसला ? प्रकृति में
वैचित्र्य की कमी है क्या ?

भीतर तैयार होते रहते हैं। ऐसी गर्म और सुरक्षित जगह उन्हें कहाँ मिलेगी ? कोई कोई मछली तो इनके भार से इतनी परेशान हो उठती है कि चल-फिर भी नहीं पाती।

कहाँ-कहाँ प्राप्य हैं

इनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ पृथक-पृथक विस्तारों में पायी जाती हैं। तीन काँटों-वाली तो सबसे अधिक संख्या में लगभग समस्त उत्तरी गोलार्द्ध के खारे तथा मीठे जलागारों में मिलती हैं। नौ काँटोंवाली भी अधिकता से मिलती हैं किन्तु उन्हें गर्म वातावरण की अपेक्षा उत्तर ध्रुवीय विस्तारों का शीतल जलवायु अधिक अनुकूल रहता है। पन्द्रह काँटोंवाली अधिकतर ब्रिटेन के सागरतटों के निकट पायी जाती हैं। ये मछलियाँ प्रायः सात इंच लम्बी होती हैं। इस परिवार की मीठे पानी में रहने-वाली मछली कुल २॥ इंच की होती है। वह उत्तरी अमरीका के बर्फीले सागर-जल में रहती है। उसकी पीठ पर पाँच काँटे होते हैं।

अल्पजीवी किन्तु तेज स्वभाव की

इन मछलियों का जीवन अति संक्षिप्त होने पर भी बहुत प्रवृत्तिमय है। ४ वर्ष होते-होते तो ये पूरा जीवन जी लेती हैं ! जिस तेजी से जीवन जीती हैं, उसी तेजी से

समय भी खो जाती हैं। विश्राम इनके जीवन में है ही नहीं। इनमें भी नर ही तेज स्वभाव का होता है। घोंसला बनाने, घर बसाने और शत्रुओं को मार भगाने के कार्य उसी के अधीन रहते हैं।

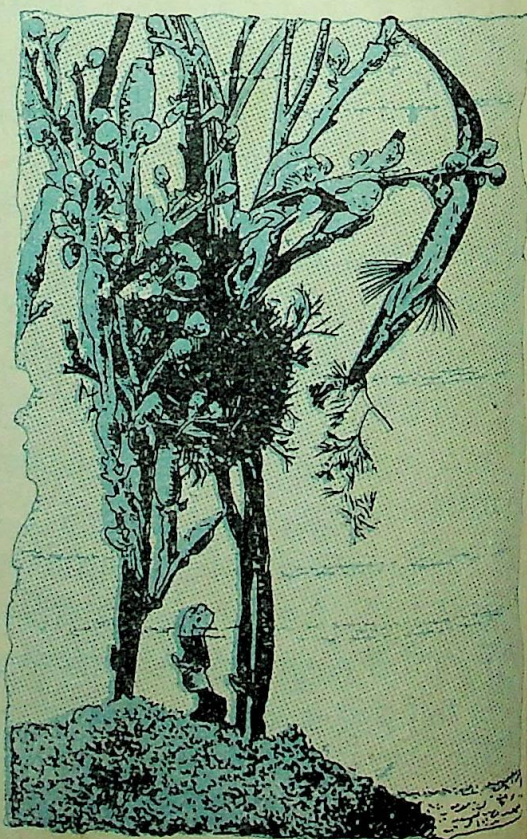
नर द्वारा गृह निर्माण

वसंत ऋतु के लगभग इनका ऋतुकाल प्रारम्भ होता है। उस समय नर प्राणी नये रंग धारण कर लेता है।

पेट का भाग चमकीला लाल तथा पीठ चटकीले नीले रंग की हो जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है मानो नर महाशय विवाह की पोशाक में खिल उठे हों। मादा की साज-सज्जा इतनी भड़कीली नहीं होती। अब नर शुरुआत करता है घोंसला बनाने से। उसके लिए पानी में डूबी हुई किसी

यह नर स्टिकलबैक चक्कर लगाये जा रहा है
घोंसला बनाने के फेर में





यह लाया है सादा को घेरकर, पूँछ सहलाता हुआ, प्रणय-निवेदन करता हुआ, घर बसाने के लिए

भी चट्टान की खोह जैसी सुरक्षित जगह ढूँढ़ लेता है। जगह मिल जाने पर घास-पतवार और भाड़-भंखाड़ चुन-चुनकर एकत्र कर लेता है। उनमें से लम्बे रेशे छाँटकर उनका एक गोलाकार घेरा बनाता है। बनाते-बनाते उस घेरे के चक्कर भी लगाता जाता है। उन्हीं दिनों इसके गुर्दे अत्यधिक सक्रिय हो उठते हैं और एक चिपचिपा द्रव स्रवित करते हैं। चक्कर लगाते समय उसी द्रव को धागे के रूप में उस घोंसले के चारों ओर लपेटता जाता है। घोंसला सुदृढ़ बन जाता है।

सजग गृहपालक

इस प्रकार घर तो बन गया। अब मादा की तलाश शुरू होती है। अनुकूल मादा नजर आते ही उसकी पूँछ को सहलाता हुआ, अपना प्रणय-नृत्य दिखाता हुआ और तरह-तरह से मादा को रिझाता हुआ अपने घोंसले में गृहप्रवेश करा देता है। मादा भी घोंसले में अण्डे देकर और समय पाकर नीचे के किसी सुराख से निकल जाती है। अपने घोंसले को अण्डों से भरपूर कराने के प्रयास में नर को प्रायः

अनेक मादाएँ लानी पड़ती हैं। जब वह घोंसला अण्डों से भर जाता है तब उन होनेवाले माँ-विहीन बच्चों का यह बाप अपनी दोहरी जिम्मेदारी निभाता है। अण्डों की पूरी-पूरी देखभाल करता है तथा उन्हें आक्सीजन बराबर मिलती रहे इस हेतु अपने डैने फड़फड़ाकर उन पर ताजा पानी बरसाता रहता है। अण्डे तैयार हो जाने पर बच्चे निकलना प्रारम्भ हो जाता है।

यह फिर भी जल्दबाजी नहीं करता। बच्चों के समर्थ हो जाने

तक उनकी रक्षा, उनका भरण-पोषण करता है। इस रक्षाकाल में एक निडर, और लड़ाकू सिपाही की तरह घोंसले पर तैनात रहता है और प्रत्येक आक्रमणकारी को दूर खदेड़ता रहता है।

ट्यूबनोज

इस परिवार में एक ही जाति की ट्यूबनोज मछलियाँ हैं। दक्षिण केलिफोर्निया से अलास्का तक के विस्तार में ये सबसे अधिक पायी जाती हैं। कहीं-कहीं तो इतनी अधिक हैं कि बड़ी मछलियों का सहज और भरपूर आहार बनती रहती हैं। बड़ी मछलियों के पेट में इनका प्रायः ही पाया जाना इस कथन का समर्थन करता है। एक विज्ञप्ति के अनुसार दक्षिण केलिफोर्निया के सान्ता रोजा (Santa Rosa) टापू के किनारे-किनारे चौथाई मील व्यास के विस्तार में, ३०-३५ फुट तक की गहराई का सागर-जल इन्हीं ट्यूबनोज मछलियों से भरा हुआ था।

६॥ इंच लम्बी यह मछली स्टिकलबैक जैसी ही दिखती है। अन्तर केवल यह है कि इसकी पीठ पर काँटों की संख्या



घोंसले के लिए तिनके जुटाता हुआ नर स्टिकलवैक

२५ होती है, जबकि स्टिकलवैक में १५ से अधिक नहीं। एक अन्तर यह भी है कि यह उनकी सी तेज-मिजाज न होकर बड़ी नाजुक मिजाज होती है, इतनी कि जाल में फँसे बाद सुरक्षित मीनालय में आते-आते आतंक के मारे आधी मछलियाँ तो दम ही तोड़ देती हैं। इनका भी गृहस्थ जीवन स्टिकलवैक जैसा ही है। इनमें भी नर अपने अन्तःस्त्राव रेशों से घोंसला बनाता है और उसी सतर्कता से अपने अण्डों और घोंसले की रक्षा करता है।

वास्तव में ये मछलियाँ जीवन जीना खूब जानती हैं। कितना छोटा सा जीवन और उसका प्रत्येक पल कितना प्रवृत्तिमय, कितना उद्यमपूर्ण !

एक ही आवाज है

एक ही स्वर है

एक ही नारा है

काश्मीर से कन्याकुमारी तक

कच्छ से कामरूप तक

कि

आक्रमणकारी को निकाल बाहर करने के लिए

अधिक मेहनत करेंगे

अधिक पैदा करेंगे

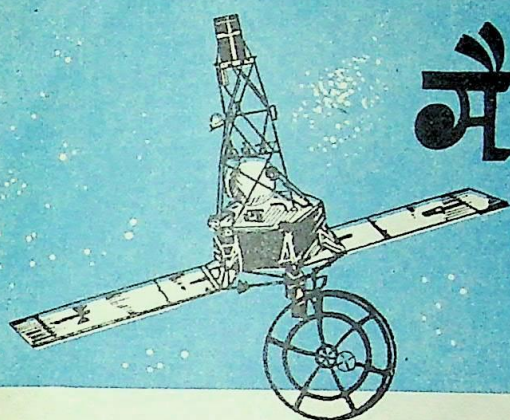
अधिक बचत करेंगे

और

बचत का धन

राष्ट्रीय सुरक्षा योजनाओं में लगायेंगे

[सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित]



मैरिनर की शुक्रयात्रा

हरीश अग्रवाल

शुक्र ग्रह पृथ्वी के सर्वाधिक समीप है। पर अभी तक यह वैज्ञानिकों के लिए एक रहस्य बना हुआ था। १४ दिसम्बर, १९६२ को अमरीका का अन्तरिक्ष-यान मैरिनर-२ शुक्रग्रह के निकट से निकला था। उस समय शुक्रग्रह से उसकी दूरी लगभग २१,५०० मील थी। उसने वहाँ से जो संकेत भेजे हैं और भेज रहा है, उनसे आशा है कि वहाँ का रहस्य अब रहस्य नहीं रह जाएगा।

मैरिनर-२ अमरीका द्वारा २७ अगस्त, १९६२ को केप केनेवरल (फ्लोरिडा) से अन्तरिक्ष-अनुसंधान के लिए छोड़ा गया था। इस कार्य के लिए वह दिन इसलिए चुना गया था कि उस अवसर पर शुक्रग्रह पृथ्वी के निकटतम था। वैसी स्थिति १९ महीनों में एक बार आती है। शुक्र के निकट से निकलने तक वह यान लगभग १ करोड़ ५० लाख मील की यात्रा कर चुका था।

मैरिनर-२ का निर्माण अमरीका की जेट-प्रोपल्शन लेबोरेटरी द्वारा किया गया है। छोड़ने के समय इसके आधार का व्यास ५ फुट, ऊँचाई ६ फुट ११ इंच तथा भार ४४६ पौंड था। इसमें वैज्ञानिक उपकरणों का भार ४० पौंड है। अन्तरिक्ष में इसकी सौर बैटरी सूर्य की तरफ रहती थी ताकि

उपकरणों को चलाने के लिए विद्युत शक्ति उत्पन्न की जा सके। इसका एरियल संकेत भेजने के लिए पृथ्वी की तरफ रहता था।

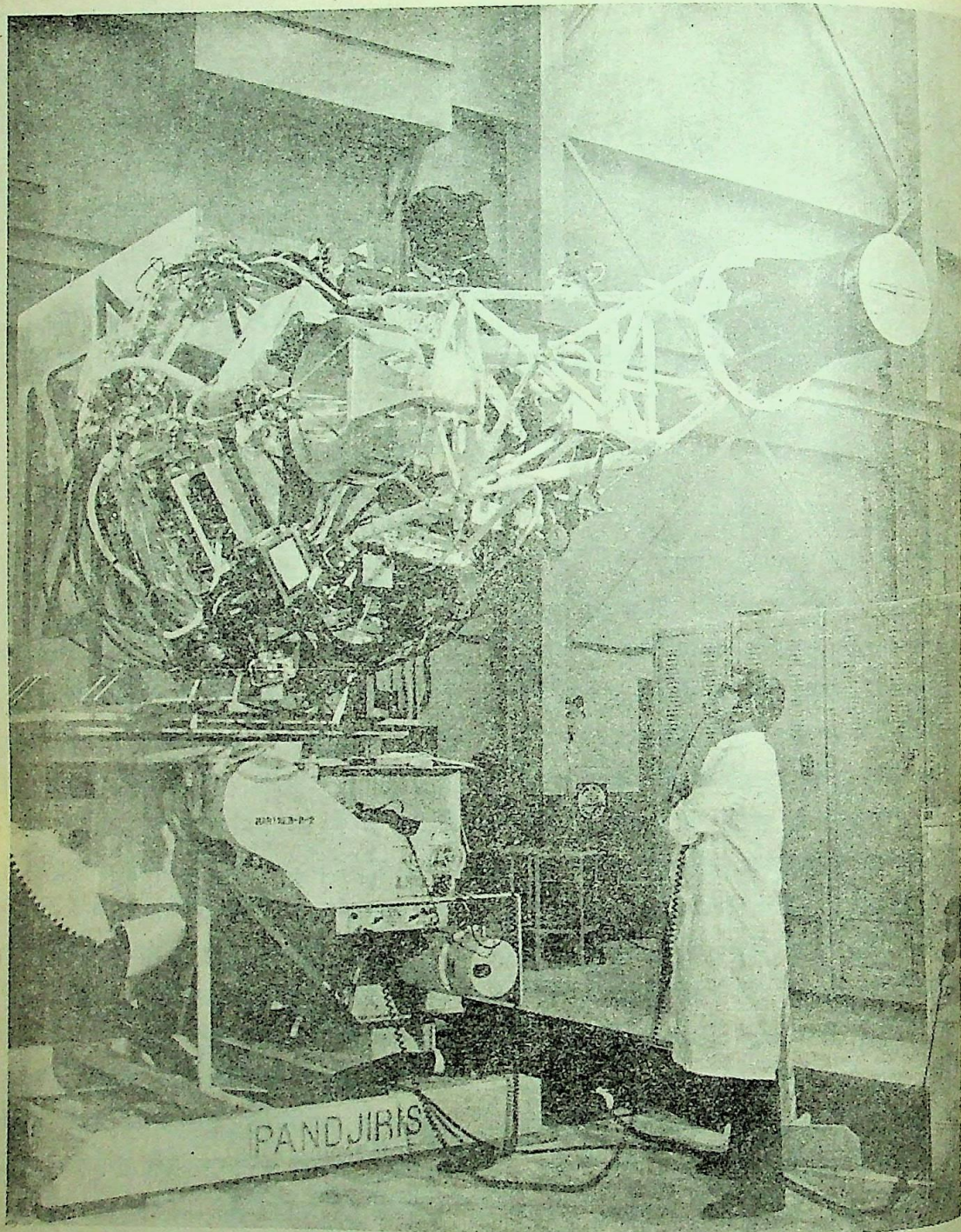
सूर्य की शक्ति को विद्युत में बदलने के लिए इसमें २७ वर्ग फुट के सौर-फलक (solar panels) हैं जिनमें ६,५०० सौर-बैटरियाँ हैं। इनसे १४८ से २२२ वाट तक विद्युत शक्ति प्राप्त हो सकती है। एक बैटरी द्वारा इसमें विद्युत शक्ति संचित करने की भी व्यवस्था होती है। यह संचित विद्युत उस समय काम आती है जब यान अपना मार्ग बदलता है। उस समय उसके सूर्य-फलक सूर्य की तरफ नहीं रहते।

मैरिनर में ग्रहों के ताप, विकिरण, चुम्बकीय क्षेत्र, कास्मिक धूल आदि ज्ञात करने के लिए विभिन्न उपकरण रखे गये हैं। उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं :

माइक्रोवेव रेडियोमीटर—इसके द्वारा शुक्र के धरातल का ताप तथा वायुमण्डल की जल वाष्प के बारे में विवरण प्राप्त किया गया।

इन्फ्रारेड रेडियोमीटर—यह माइक्रोवेव-रेडियोमीटर से मिलता-जुलता है। इससे भी शुक्र के ताप और वायुमण्डल के बारे में विवरण प्राप्त किये गये हैं।

फरवरी १९६३



मैरिनर-२, अन्तरिक्ष-यान केलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी, पेसाडोना की जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी में तैयार किया गया है। यह चित्र मैरिनर को अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व लिया गया था।

मैग्नेटोमीटर—यह ग्रहों की चुम्बकीय शक्ति तथा दिशा ज्ञात करने के लिए है। चुम्बकीय क्षेत्रों की जानकारी से अन्तरिक्ष-यान तथा पृथ्वी के मध्य संचार व्यवस्था कायम करने में सहायता मिलती है।

आयनीकरण कक्ष—यह कक्ष अन्तरिक्ष में तथा शुक्र के गिर्द सक्रिय कणों की संख्या और शक्ति ज्ञात करने के लिए है। अन्तरिक्ष-यात्रा में मानव की सुरक्षा के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

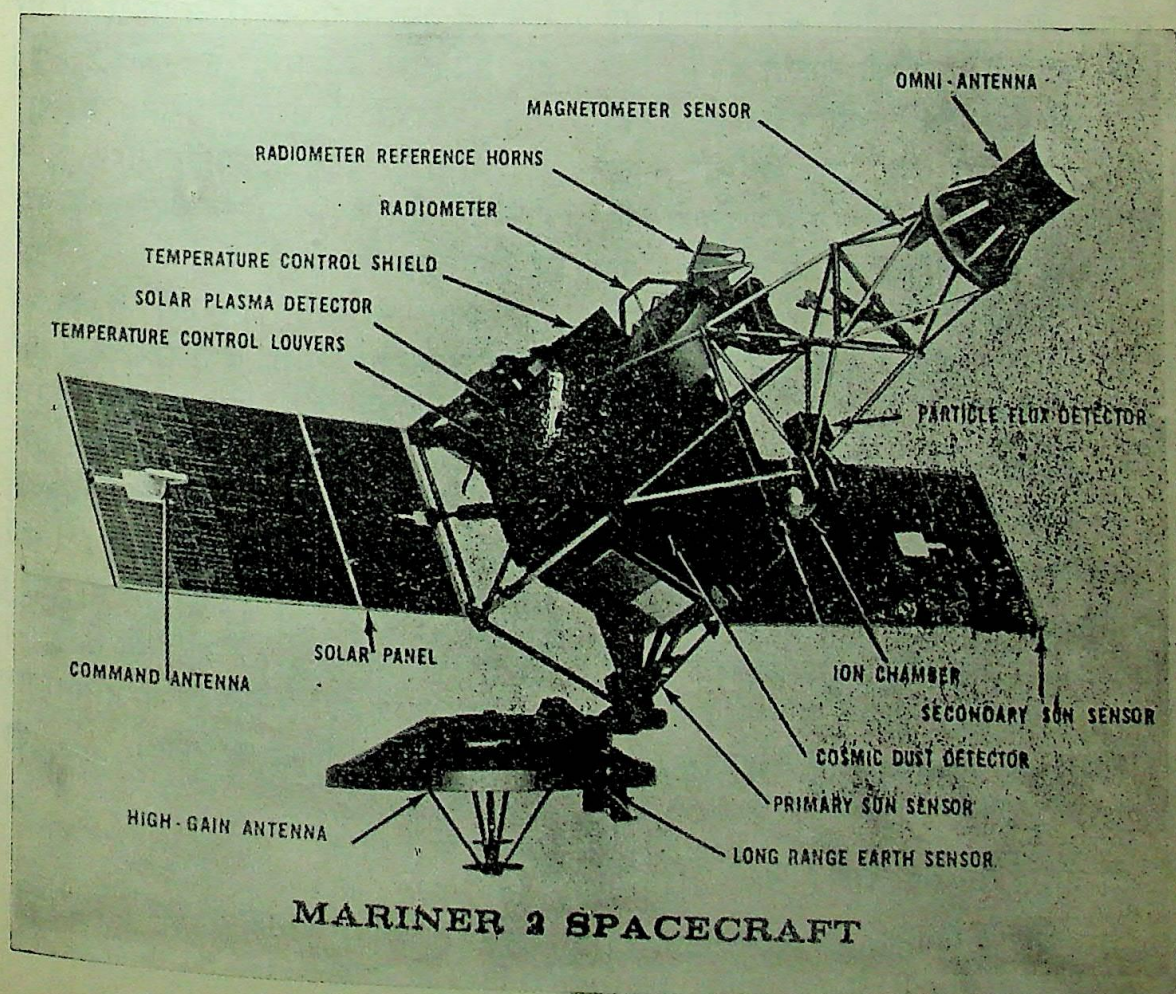
सौर प्लाज्मा परिचालक—यह सूर्य से निरन्तर आनेवाली आवेशित किरणों की सान्द्रता, विस्तार तथा शक्ति की सूचना देता है। इससे तथा मैग्नेटोमीटर से अन्तरिक्ष में सौर-तूफान और चुम्बकीय क्षेत्रों का ज्ञान स्पष्ट हो सकेगा।

कास्मिक धूल परिचालक—यह अन्तरिक्ष में व्याप्त तथा शुक्र के निकटस्थ धूल-कणों के फैलने के विस्तार, वेग तथा दिशा ज्ञात करने के लिए है। अन्य उपग्रह तथा राकेट तो पृथ्वी के निकट की कास्मिक धूल का अध्ययन कर रहे हैं परन्तु मैरिनर ही प्रथम यान है जिसने अन्तरिक्ष में इतने दूर यह अध्ययन किया है। वैज्ञानिकों को कास्मिक किरणों के स्रोत ज्ञात करने की लालसा है

ही। उससे तो सारे सौरमण्डल की उत्पत्ति तथा विकास के बारे में पता लगेगा। इस प्रयोग से अन्तरिक्ष-यानों को इन कणों के भय-स्थानों का पता लग सकेगा।

मैरिनर की उड़ान-योजना इस प्रकार थी: एक द्विखण्डीय एटलस 'एजेना-बी' राकेट द्वारा मैरिनर को छोड़ा गया। एटलस के अलग होने पर शीघ्र ही 'एजेना-बी' ने मैरिनर की कक्षीय गति लगभग १८,००० मील प्रति घण्टा तक पहुँचा दी। उस समय तक यह पृथ्वी से ११५ मील दूर पहुँच चुका था। उसके बाद 'एजेना-बी' ने मैरिनर को शुक्र के प्रक्षेप-मार्ग पर करके इसकी गति करीब २५,५०० मील प्रति घण्टा कर दी। यह गति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति

मैरिनर-२ के कुछ वैज्ञानिक उपकरण इस चित्र में दिखाये गये हैं



से बाहर निकलने की आवश्यक गति से करीब १,००० मील प्रति घण्टा अधिक है। वहीं पर मैरिनर और एजेना अलग हो गये।

छोड़ने के लगभग ३ दिन पश्चात् मैरिनर पृथ्वी से करीब छः लाख मील की दूरी पर था तथा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से पूर्णतः बाहर था।

पृथ्वी की सूर्य से आपेक्षिक गति करीब ६६,००० मील प्रति घण्टा है। यह गति पृथ्वी को एक वृत्ताकार कक्ष में रखने के लिए पर्याप्त है। मैरिनर की गति इस गति से करीब ७,००० मील कम थी तथा यह सूर्य के आकर्षण से बचने के लिए भी बहुत कम थी। फलतः मैरिनर सूर्य की तरफ खिंचा। केन्द्रीय तथा गोलीय वेग ने मैरिनर को एक दीर्घ-वृत्तीय कक्षा में स्थापित कर दिया। वह कक्षा शुक्र की कक्षा को काटती थी।

सूर्य की तरफ खिंचने के कारण इसकी गति बढ़ गई और यह शुक्र की ओर बढ़ता गया। शुक्र के आकर्षण के कारण इसकी गति ६१,००० मील प्रति घण्टा हो गई और यह शुक्र के निकट से निकला। सूर्य के चारों तरफ शुक्र की औसत गति ७८,३०० मील प्रति घण्टा है।

यदि मैरिनर को सीधे ही शुक्र पर भेजा जाता तो वहाँ पहुँचने पर निरीक्षण के लिए उसे केवल कुछ ही मिनट मिलते किन्तु इस खूबी से योजना बनायी गई थी कि करीब ३० मिनट तक वहाँ का विवरण प्राप्त किया जा सका।

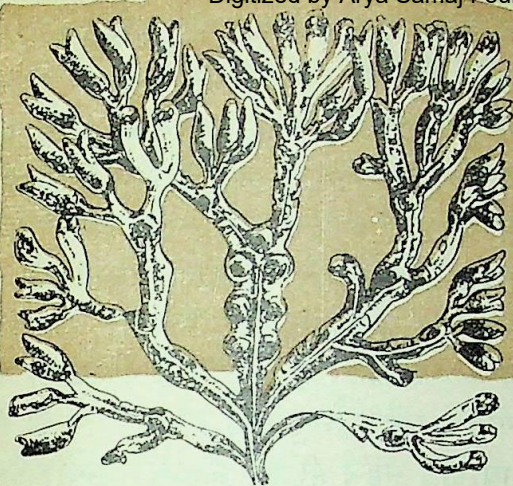
मैरिनर का मुख्य कार्य तो उस समय

समाप्त हो गया जबकि वह शुक्र के निकट से गुजरा। इसमें १०६ दिन लगे। अब यह आशा की जाती है कि दूसरे यानों—ल्यूनिक-१, पायनियर-४ तथा रेन्जर-३ की तरह मैरिनर भी सूर्य के गिर्द घूमता रहेगा। यह अपनी यात्रा के आरम्भ से ही पृथ्वी पर महत्वपूर्ण विवरण भेज रहा है। उन विवरणों से यह पता लगा है कि सूर्य से लगातार सौर-तूफान आते हैं जो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्रों को घेरने के लिए काफी शक्तिशाली हैं। कास्मिक धूल गहरे घने अन्तरिक्ष की अपेक्षा पृथ्वी के निकट १००० गुना अधिक है। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्रह अपने समीप इस कास्मिक धूल को एकत्र करते हैं। यह भी ज्ञात किया गया है कि विभिन्न शक्तियों के चुम्बकीय क्षेत्र लगभग प्रत्येक स्थान पर स्थित हैं तथा घना अन्तरिक्ष पृथ्वी को घेरे हुए विकिरण कटिबन्धों से मुक्त है। इन प्राप्त विवरणों का अध्ययन किया जा रहा है। आशा है इनसे उपयोगी तथ्य प्राप्त होंगे और हम अपने पड़ोसी शुक्र ग्रह के बारे में बहुत कुछ जान सकेंगे।

इससे भी आगे अमरीका में १९६४ के आरम्भ में मंगल तथा शुक्र ग्रहों पर मैरिनर छोड़ने की एक श्रृंखला-योजना बन रही है। वह नया मैरिनर इससे तीन गुना भारी रहेगा तथा उसमें स्पष्ट विवरण लेने के लिए अधिक उपकरण होंगे। उसमें टेलीविजन कैमरा तथा रेडियोमीटर भी होंगे। वह मैरिनर उपकरणों को ग्रहों की सतह पर उतारेगा ताकि वहाँ की जीवन-सम्भावना पर विस्तृत अध्ययन किया जा सके।

दो आँखें, ५००० हाथ !

सोवियत वैज्ञानिक एक ऐसे कम्प्यूटर-यंत्र को अन्तिम रूप देने में संलग्न हैं जिसके द्वारा एक व्यक्ति अकेला ही बड़ी से बड़ी सीमेन्ट फैक्टरी अथवा किसी भी उद्योग-संस्थान का निरीक्षण कर सकेगा। उक्त यंत्र एक सेकण्ड में ५००० कार्य सम्पन्न करेगा।



आयोडीन

चन्द्रकुमार

अधिक समय नहीं हुआ जब प्रत्येक सम्पन्न और समझदार घराने में छोटी-मोटी घरेलू दवाओं की प्रथम पंक्ति में टिचर-आयोडीन की शीशी अनिवार्यतः रहती थी। 'चोट' शब्द के साथ 'टिचर' शब्द बराबर जुड़ा रहता था। आज चाहे आयोडीन को कीटाणुरोधक (antiseptic) दवाओं में पिछड़ा हुआ मान लें, शरीर-रसायन (bodychemistry) में तो इसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

बात पुरानी नहीं

डेढ़ सौ वर्ष का समय अधिक नहीं कहा जा सकता जब सन् १८११ में प्रथम बार आयोडीन से भेंट हुई थी। नेपोलियन प्रथम के शासनकाल में युद्ध के धूम-धड़ाकों से फ्रांस का वायुमण्डल प्रकम्पित था। देश को अधिक से अधिक विस्फोटक सामग्री देते रहने में फ्रांस के वैज्ञानिकों और उत्पादकों ने एड़ी-चोटी का जोर लगा रखा था। उन्हीं में बर्नार्ड कोर्टोय (Bernard Courtois) भी एक था। समुद्री घास-पतवार (sea-weeds) से शोरे (nitre) जैसा पदार्थ प्राप्त करने के प्रयोग कर रहा था ताकि उसे विस्फोट-मिश्रण बनाने में काम लिया

जा सके। उसने देखा कि विविध धोलों से भरे हुए बड़े-बड़े ताँबे के पात्रों की बाहरी सतह पर एक विचित्र प्रकार का जंग (rust) लग रहा है। उसने जिज्ञासावश खुरचकर उस पर गंधक के अम्ल की क्रिया कराई तो वह यह देखकर चकित रह गया कि एक काला सा पदार्थ अलग पड़ गया। उसे गर्म किया तो बैंगनी रंग की घनी वाष्प के रूप में उठकर वह ऊपर के पात्र की ठण्डी सतह पर जमकर पत्रों (flakes) के रूप में एकत्र हो गया। उस समय उसने उस अनजाने पदार्थ का नाम एक्स (X) रखकर अपने एक केमिस्ट मित्र के पास परीक्षणार्थ भेज दिया। तीन-चार वर्ष और बीत गए किन्तु सन्तोषप्रद अनुसंधान न हो सका।

सन् १८१५ में जे. एल. गे लुसेक (J. L. Gay Lussac) ने आयोडीन को एक तत्त्व के रूप में घोषित किया। इसकी वाष्प का बैंगनी रंग होने के कारण इसे ग्रीक शब्द *iodes* अर्थात् बैंगनी से Iodine नाम दिया। चार वर्ष पश्चात् एडिनबर्ग के डा. एन्ड्रयू फाइफ (Andrew Fyfe) ने इसका एक और रहस्य ज्ञात कर लिया। उन्होंने घोषित किया कि आयोडीन मानव शरीर के लिए भी एक अत्यावश्यक तत्त्व

फरवरी १९६३

है। इसकी सम्पुष्टि दूसरे ही वर्ष १८२० में स्विस चिकित्सक डा. कोयण्डेट ने इस प्रकार की कि उन्होंने बड़ी हुई थायराइड-ग्रन्थि अर्थात् गलगण्ड (goitre) के रोगियों को आयोडीन की अतिरिक्त मात्रा देकर रोगमुक्त कर दिया। डा. कोयण्डेट का वह प्रयोग एक प्रकार से बहुत ही अग्रिम रहा क्योंकि पूरी एक शताब्दी बीत गई लेकिन उनकी उस चिकित्सा को मान्यता नहीं मिली। आज उनकी उस चिकित्सा को साभार स्वीकार किया जा रहा है। इसकी कीटाणुरोधक विशेषता की विधिवत् घोषणा १८७३ में सी. जे. डेविड ने की थी। वैसे इसी प्रयोजन के लिए इसका उपयोग उससे ५०-६० वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था।

स्रोत और गुणावगुण

आयोडीन स्वतन्त्र रूप से कहीं भी उपलब्ध नहीं। आयोडाइड के रूप में यह सागर जल तथा वानस्पतिक और जैविक पदार्थों में सूक्ष्म रूप में रहता है। सागर जल में ८००० भाग क्लोराइड में १ भाग आयोडाइड रहता है। समुद्री घास-पतवार तथा प्राकृतिक खारे भरनों में आयोडाइड अधिकता से होता है। औद्योगिक दृष्टि से आयोडाइड का सबसे बड़ा स्रोत दक्षिणी अमरीका के चिली प्रदेश के विश्व प्रसिद्ध शोरे के आगार हैं। पृथ्वी की सतहों में १० प्रतिशत आयोडीन होने का अनुमान है। अधिकता से मिलनेवाले प्राकृतिक तत्त्वों में क्रमानुसार आयोडीन का स्थान २८वाँ है।

हैलोजन-परिवार का सदस्य-आयोडीन

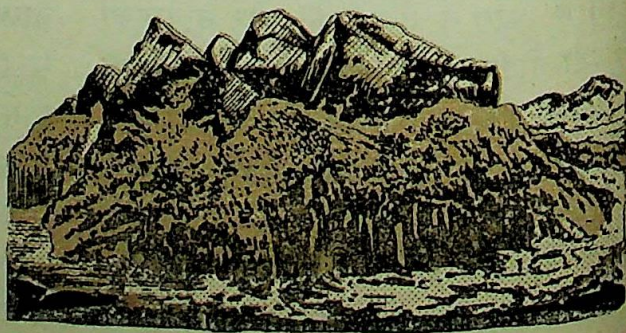
आयोडीन का परमाणु भार १२६.९१ है। इसके शुष्क पत्र ११४°C पर द्रवित हो जाते हैं। उस द्रव का क्वथनांक १८३°C है।

घन रूप से इसका वाष्पीकरण सामान्य ताप पर ही हो जाता है। पानी में यह बहुत कम घुलनशील है। कुछ जलयुक्त घोलों में इसकी घुलनशीलता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ कार्बन टेट्राक्लोराइड में पानी की अपेक्षा यह ८५ गुना अधिक घुलनशील है। पानी और अल्कोहल में आयोडीन के घोल का रंग कथई रहता है जबकि अन्य घोलों में बैंगनी। अनेक धातु तथा अधातु पदार्थों से आयोडीन सहज ही संयुक्त होकर आयोडाइड बनाता है। आवसीकरण की क्रिया में अपने परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा यह अत्यधिक सुस्त है। ब्रोमाइड, क्लोराइड और फ्लोराइड की अपेक्षा आयोडाइड बनने की क्रिया में कम ताप उत्पन्न होता है। आयोडीन का एक और स्वभाव अति विचित्र है। प्रयोग करते समय हाथों पर तथा कागज या कपड़े पर यह ऐसा कथई दाग छोड़ जाता है जो छुड़ाए नहीं छूटता। उस हालत में फोटोग्राफी में काम आनेवाले हाइपो सल्यूशन अर्थात् सोडियम थायोसल्फेट की सहायता लेनी पड़ती है। इसके संयोग से आयोडीन एक रंगहीन यौगिक बना लेता है और यों वह दाग छूट जाता है।

नमक से निकट सम्बन्ध

हमारे दैनिक प्रयोग में आनेवाला नमक भी आयोडीन का एक प्रमुख स्रोत है।

सागरतट की घास-पतवार भी आयोडीन का एक बड़ा स्रोत है।

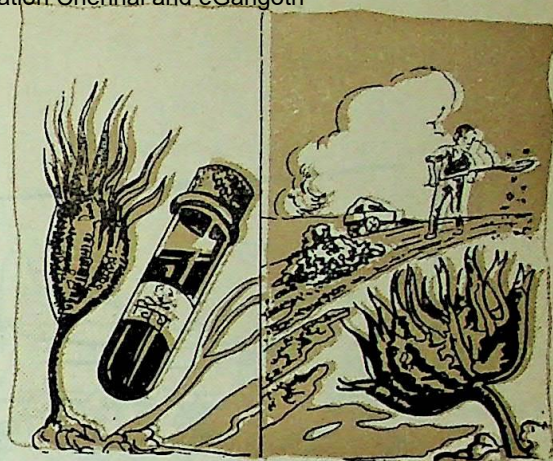


नमक, मूल रूप में मटमला तथा बदरंग होता है। उस अवस्था में उसमें आयोडीन भरपूर रहता है। नमक को खाने के योग्य सफेद बनाने के लिए रासायनिक विधियों द्वारा शोधित किया जाता है। नमक के सफेद होते-होते काफी आयोडीन निकल जाता है, क्योंकि उसे 600°F ताप से गुजरना पड़ता है। अतः खाने के साथ हमें आयोडीन की कमी न रहे इस हेतु उस शोधित नमक (refined salt) में अति अल्प मात्रा आयोडीन की मिलानी पड़ती है। सामान्यतः पोटैशियम आयोडाइड एक शतांश के भी १००वें भाग के अनुपात से नमक में मिलाया जाता है। ऐसे नमक को आयोडाइज्ड नमक (iodized salt) कहते हैं। आर्द्र-गर्म जलवायु में आयोडाइड के स्थान पर आयोडेट मिलाया जाता है।

नमक के शोधन में आयोडीन उड़ता है या नहीं इसका भी एक मनोरंजक इतिहास है। १९२६ में अमरीका के मिशिगन नगर में इसी विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। उसी सिलसिले में एक अनुसंधानक-दल एक नमक की रिफाइनरी में पहुँचा। उस दल में एक सदस्य चमकीला सफेद और माड़ी लगा सख्त कालर लगाए हुए थे। जब एक तंग गली से निकलने लगे तो बाहर आते-आते उनका कालर नीला पड़ गया। आश्चर्य-सहित उस रहस्य की खोज की गई तो ज्ञात हुआ कि टंकियों से उठती हुई आयोडीन वाष्प ने अपना प्रभाव दिखा दिया था! उससे आगे तो अनुसंधान की आवश्यकता ही न रही!

शरीर-रसायन में प्रमुख भाग

प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि शरीर-रसायन के लिए आयोडीन अत्यन्त आवश्यक है। एक औसत व्यक्ति के लिए ०.१५ से

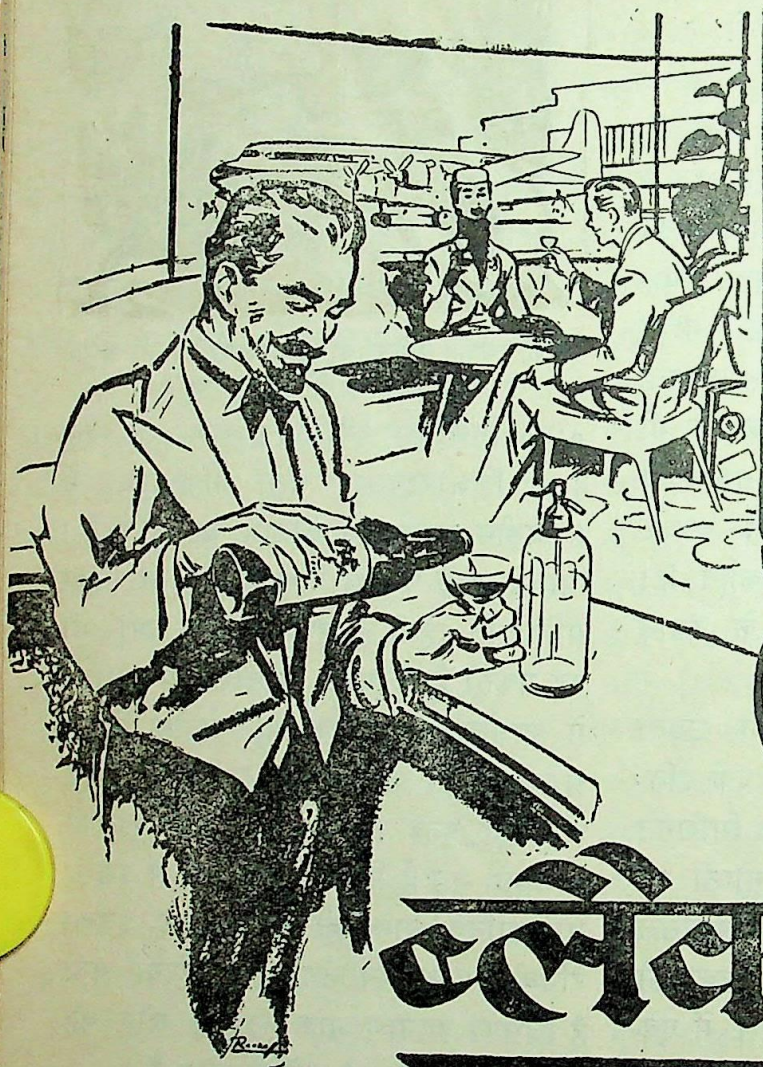


अनेक उर्वरक पदार्थों के साथ आयोडीन भी समुद्र से प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है

०.३० मिलीग्राम की दैनिक मात्रा आवश्यक है। किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में आयोडीन का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। विविध खाद्य पदार्थों में आयोडीन की मात्रा अनिश्चित रहती है तथा इसकी कमी भी रह सकती है। अतः उपरोक्त अवस्थाओं में आयोडाइज्ड नमक का प्रयोग विशेष आवश्यक हो जाता है। शरीर के लिए आवश्यक अन्य तत्वों से विपरीत, इसकी विशेषता यह है कि प्राकृतिक रूप में इसका समस्थानिक प्राप्य ही नहीं। पर इसका रेडियो समस्थानिक तैयार कर लिया गया है जिसका परमाणु भार १३१ है और वह सुचारु रूप से उपयोग में आ रहा है।

आयोडीन की धर-पकड़

शरीर की थाइरायड ग्रन्थि के लिए भी आयोडीन अत्यन्त आवश्यक है। थाइरायड ग्रन्थि के स्राव; थाइरायड हारमोन अर्थात् थाइराक्सिन (thyroxin) का निर्माण इसी से सम्भव है। शरीर वृद्धि में थाइरायड ग्रन्थि का प्रमुख भाग रहता है। शरीर की कोशिकाओं की कार्य-प्रणाली का नियमन इसी के द्वारा होता है। आयोडीन का प्रभाव हमारे शरीर पर कितना विलक्षण है, यह इससे समझा जा सकता है कि हमारे रक्त में इसकी सान्द्रता एक शतांश



हर एक
अवसर पर
उपयुक्त

ब्लैक नाइट विहर-की

असली मास्ट विहरिकियों का प्रेष्ठ १००% शुद्ध मिश्रण

डायर मीकिंग ब्रूयरीज लि०

स्थापित १८५५

सोलन ब्रूयरी, कसौली डिस्टिलरी, लखनऊ डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रूयरी तथा सलाइड इन्डस्ट्रीज (उ. प्र.)
सोल डिस्ट्री ब्यूटर्स:- मे० एन्पेन्सर एन्ड कं० लि०



के ४० हजारवें भाग जितनी सूक्ष्म रहती है। यह अभी तक एक रहस्य ही बना हुआ है कि किस प्रकार थाइराक्सिन बनाने के लिए थाइरायड ग्रन्थि में आते ही आयोडीन की सान्द्रता २५ गुना बढ़ जाती है! इस चमत्कारिक क्रिया को आयोडीन की धर-पकड़ (iodine trapping) कहते हैं।

आयोडीन न हो तो थाइरायड असहाय

आयोडीन की इस धर-पकड़ में कभी-कभी चूक भी हो जाती है। तब थाइरायड ग्रन्थि असहाय हो जाती है। आयोडीन के अभाव में थाइराक्सिन बनाते-बनाते यह थक जाती है, बीमार हो जाती है और तब हमारा गला सूज आता है। उस रोग को गलगण्ड (goitre) कहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में यह खतरनाक प्रतीत नहीं होता किन्तु असावधान रहने पर यह रोग श्वसन-क्रिया में बाधाएँ बढ़ाता हुआ अधिक विकृत होने पर घातक भी सिद्ध हो सकता है। इस रोग के निवारणार्थ आयोडीन आवश्यक है। यह तथ्य १९१० और १९२० के मध्य किये गये अनुसन्धानों के पश्चात् ही प्रस्तुत किया गया था।

— इस चिकित्सा का श्रेय डा. डेविड मैरीन (Dr. David Marine) को है। जिन दिनों वे ओहायो (Ohio) विश्व-विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों गलगण्ड का रोग फैला हुआ था। उन्होंने सर्वप्रथम इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अपने साथियों सहित इसके अध्ययन में जुट गए। उनके साथियों में डा. ओ. पी. किम्बाल

मशीन से पृष्ठिए

निकट भविष्य में हवाई अड्डों पर रखे जानेवाले कम्प्यूटर यंत्र आपको यह बता सकेंगे कि आनेवाले हवाई जहाज में आपको जगह मिल सकेगी या नहीं; उसमें नहीं तो किस आनेवाले में मिलेगी, जहाज कितनी दूरी पर है, कितनी देर में आ पाएगा, आदि। दक्षिण जर्मनी का एक प्रसिद्ध कारखाना ऐसे कम्प्यूटर यंत्र का उत्पादन प्रारम्भ कर रहा है। इसके प्राथमिक प्रयोग सफल रहे हैं।

(Dr. O. P. Kimball) का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ने किशोरवयस्क छात्रों का निरीक्षण प्रारम्भ किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऐसे रोगियों को प्रारम्भिक अवस्था में ग्रहानिकर आयोडीनयुक्त पीने का पानी देने से लाभ हो सकता है।

अन्य चिकित्सकों ने भी इस दिशा में प्रयोग प्रारम्भ किये। उन्होंने सीधे ही थाइराक्सिन का विश्लेषण किया और इस भिन्न प्रकार से भी थाइराक्सिन से आयोडीन के सम्बन्ध का समर्थन किया।

खाद्य-चुनाव में सावधानी

नित्य प्रयोग की किन खाद्य वस्तुओं से शरीर को आवश्यक आयोडीन मिल सकता है? यों तो फल, सब्जियाँ और कुछ अनाज भी आयोडीन देने में समर्थ हैं किन्तु आवश्यक है कि वे आयोडीनयुक्त मिट्टी-खाद में ही उपजाए जाएँ। ऐसी गायों का दूध भी आयोडीन-सम्पन्न होगा जो अपने चारे में आयोडीन का मिश्रण पाती होंगी अथवा आयोडीनयुक्त चरागाहों में ही चरती होंगी। यह ऊपर कह ही आए हैं कि समुद्री घास-पतवार में आयोडीन प्रचुर मात्रा में होता है। इन्हीं में पौधे तथा मछलियाँ भी सम्मिलित हैं। अतः जापान-निवासी जो अधिकतर इन्हीं का सेवन करते हैं, गलगण्ड के भय से सर्वथा मुक्त रहते हैं।

स्पष्ट है कि आयोडीन हमारे शरीर-रसायन के लिए अति महत्वपूर्ण तत्त्व है और हमें अपने शारीरिक विकास के लिए खाद्य-चुनाव में, विशेषतः नमक के उपयोग में पूरी सावधानी रखनी चाहिए।

बुलबुल
बुलबुल



सुरेश सिंह

उर्दू काव्य-प्रेमियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनकी गजलों में चहकनेवाली बुलबुल हमारे देश का पक्षी नहीं है। पिंजड़े में कैद होकर भले ही वह हमारे यहाँ आती हो लेकिन अपनी राजी से अपने वतन ईरान (फारस) के गुलिस्तानों को छोड़कर वह यहाँ के बाग-बगीचों का रुख नहीं करती। एक प्रकार से हमी ने उसे फारसी साहित्य से मांगकर अपने उर्दू काव्योद्यान में ला छोड़ा है। इस बुलबुल ने भी हंसों की तरह हमारे देश को नहीं अपनाया। यही कारण है कि हम अपने यहाँ की अन्य पचासों जाति की बुलबुलों में फारस की बुलबुल को आसानी से नहीं पाते। उसकी जाति ही भिन्न है।

बुलबुल को अंग्रेजी में नाइटिंगेल (Nightingale) कहते हैं। देशों के अनुसार इसे तीन श्रेणियों में रख सकते हैं—पश्चिमी, पूर्वीय तथा फारसी। फारसी बुलबुल को 'बुलबुल हजार-दास्तां' भी कहते हैं। इनमें नर-मादा बहुत कुछ समान ही होते हैं। अन्तर केवल पूँछ की लम्बाई का रहता है।

कलकत्ते के चिड़िया-बाजारों में कभी-कभी यह नजर आ जाती है। तब इसकी कीमत बहुत बढ़ जाती है। कभी-कभी तो

सैकड़ों रुपये तक बोली पहुँच जाती है। बोली बोलनेवाला इसके गुणों को पहिचानता है, इसकी मीठी बोली पर वारी जाता है।

तरह-तरह की बुलबुलें

हमारे देश में कम से कम ५०-५५ जाति की बुलबुलें मिलेंगी। उनमें से चुनकर ८ किस्म की बुलबुलों से आपका परिचय कराएँ। उनके नाम हैं : (१) गुलदुम तौरवी, (२) गुलदुम स्याहा, (३) गुलदुम बर्रहा, (४) बनकरा, (५) कांगड़ा, (६) सिपाही, (७) जर्द तथा (८) मछरिया।

इन सब में गुलदुम बुलबुलें बहुत प्रसिद्ध हैं। ये अपने द्वन्द्व-कौशल के कारण अधिकतर पाली जाती हैं। पूँछ के नीचे के लाल पंखों के कारण इन्हें यह प्यारा नाम दिया गया है। इनमें भी किसी प्रदेश में स्याहा लोकप्रिय है तो किसी में गंगा की तौरवी। तौरवी का सिर, ठूड़ी और कण्ठ, गहरा काला तथा गर्दन, पीठ, सीना और डैने भूरे रंग के, सफेद किनारी होते हैं। जड़ की ओर तो पूँछ भूरी होती है लेकिन सिरे तक आते-आते स्याह हो जाता है। पेट का रंग सफेदी लिए हुए होता है। पूँछ के नीचे के पर लाल होते हैं।

गुलदुम स्याहा सादा बुलबुल होती है। कान के पास इसके पर स्लेटी रंग के होते हैं। सिर की स्याही गर्दन से आगे बढ़कर कुछ भाग पीठ का भी घेर लेती है। नीचे की ओर का काला रंग सीने तक फैल जाता है। शेष निचला भाग, लाल पूंछ को छोड़कर स्लेटी भूरा होता है।

बरंहा पंजाब की बुलबुल है। यह तौरवी और स्याहा से कुछ बड़ी होती है। इसके सिर और गर्दन की स्याही कम ही होती है। ऊपरी हिस्से में गुद्दी से पहले और नीचे सीने तक पहुँचते-पहुँचते रंगत स्याह से कलछौंहा होती जाती है। कान के नजदीक वाले पर गहरे कथई और पीठ भूरे रंग की होती है।

ये तीनों गुलदुम बुलबुलें ८-९ इंच की होती हैं। इनमें स्याहा और तौरवी तो प्रायः सभी जगह मिल जाती हैं। बरंहा पंजाब से आगे नहीं जाती और उत्तर प्रदेश से कुछ ही आगे तक आती है।

बनकरा बुलबुल को धुर काली बुलबुल भी कहते हैं। वैसे यह धुर काले रंग की नहीं होती। दूर से यह काली जरूर दिखायी पड़ती है। यह इसलिए कि इसका ऊपर का रंग गहरा स्लेटी और पूंछ तथा डैने गहरे कथई होते हैं। इसके सिर और पंखों पर भी स्याही रहती है। पेट और पूंछ के नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। यह गुलदुम बुलबुल से कुछ बड़ी, १० इंच तक की होती है। यह हिमालय के विस्तारों में ६००० फुट की ऊँचाई पर मिलती है।

कांगड़ा बुलबुल पहाड़ी है। पहाड़ों में यह ७००० फुट तक की ऊँचाई पर मिलती है। यह आठ इंच की होती है। इसका सिर और टेढ़ी चोटी भूरी होती है तथा गाल, ठुड़ी और गर्दन का रंग स्याह। गाल के निकट इसके पर सफेद होते हैं। शरीर का ऊपरी भाग, डैने और पूंछ भूरी होती है।

पूँछ सिर की ओर काली होती जाती है। पूँछ के बीच के दो परों को छोड़कर सब परों के सिर सफेद रहते हैं। शरीर का निचला हिस्सा हलका मटमैला होता है। पेट के पास कुछ सफेदी रहती है। पूँछ का निचला भाग गंधक जैसा पीला होता है।

सिपाही बुलबुल को उसके लाल गल-मुच्छों के कारण सिपाही कहते हैं। इसने शक्लसूरत भी सुन्दर पाई है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बुलबुल है जो तराई के मैदानों से लेकर मध्य प्रदेश तक फैली हुई है। इसके शरीर का ऊपरी भाग तथा डैने मटमैले भूरे रंग के और निचला हिस्सा सफेद होता है। पूँछ गहरी भूरी होती है और कुछ परों के सिर सफेद होते हैं। पूँछ का निचला भाग गुलदुम बुलबुल की तरह लाल रहता है। गर्दन की बगल का भाग और सीने का अर्द्धचन्द्राकार चिह्न कलछौंहा रहता है। माथा, चोटी और गाल पर मूँछों जैसे काले डोरे रहते हैं। गाल का कुछ भाग सफेद भी होता है। आँख के पास का भाग लाल होता है। इसे गाँवों में कांगड़ा भी कहते हैं।

जर्द बुलबुल तो जैसा नाम से ही स्पष्ट है, पीले रंग का पक्षी है। कद में यह ७।। इंच से बड़ी नहीं होती। यह जंगलों में रहनेवाली बुलबुल है। इसे हिमालय के प्रदेशों में ४००० फुट की ऊँचाई तक और मध्य प्रदेश के पठारों तथा जंगली विस्तारों में देखा जा सकता है। इसका निचला हिस्सा पीला, पूँछ और डैने भूरे तथा सिर, ठुड़ी और गर्दन स्याह होती है।

मछरिया बुलबुल उत्तर प्रदेश से लेकर दक्षिण तक पहुँचती है। इसकी आँख के ऊपरी भाग में मछलियों जैसी सफेद पट्टियाँ होती हैं। उन्हीं से इसे यह नाम दिया गया है। यह भी आकार में ८ इंच की होती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग धूमिल-हरा,

सिर स्लेटी और पूँछ तथा डेने भूरे होते हैं। शरीर का निचला भाग हलका पीलापन लिये हुए स्लेटी सा रहता है। पूँछ का निचला भाग पीला होता है।

बुलबुलों की जीवन प्रणाली

बुलबुल बारहमासा पक्षी है। यह हमारे देश में ही स्थान-परिवर्तन भले ही कर ले किन्तु परदेशी परिव्राजक पक्षियों की तरह देश से बाहर नहीं जाती। फल ही इनका मुख्य भोजन है। कभी-कभी फलों के अतिरिक्त कीड़े-मकोड़े चुगते हुए भी नजर आ जाती हैं। इनके नन्हे पाँव इनकी पहिचान में बड़े सहायक होते हैं। सिर की चोटी ही इन पक्षियों की विशेषता है। किसी-किसी बुलबुल की चोटी इतनी छोटी होती है कि बस, सिर से चिपकी हुई नजर आती है। ऐसा नहीं होता कि चोटी हो ही नहीं।

बुलबुल गाती नहीं, चहकती जरूर है। इसके चहकने को गाँव के लोग कुरचना कहते हैं। इसका चहकना भला ही लगता है, चाहे उसमें कोयल की कूक का रस और पपीहे की पीड़ा न हो। इन्हें लोग चहकने के कारण नहीं, बल्कि इनके द्वन्द्व-कौशल के कारण पालते हैं। यह शौक इतना गहरा समाया हुआ है कि हमारे देश में इतने बड़े-बड़े परिवर्तन हो गए मगर बुलबुल, तीतर और बटेरें लड़ाने के शौकीनों से आप को कोई कोना खाली न मिलेगा। जाड़ा आया नहीं कि मशहूर बुलबुलबाजों में चहल-पहल शुरू हो गई। कहीं तो पिंजड़े (जिन्हें 'चक्कस' कहते हैं) साफ हो रहे हैं, कहीं बुलबुलों के सौदे हो रहे हैं। चक्कस में बन्द बुलबुल के शरीर के गिर्द कपड़े की एक पट्टी



बुलबुल को उसके द्वन्द्व-कौशल का आनन्द लेने के लिए ही पालते हैं

लपेटकर उसमें धागा पिरोकर उसके पाँव बाँधे रहते हैं। कहीं बुलबुल अपने चमन को उड़ न जाए !

गुलदुम बुलबुलें लड़ने में बड़ी तेज होती हैं। शौकीनों द्वारा अधिकतर ये ही पाली जाती हैं। कुछ दिनों तो उस्ताद के यहाँ इनकी तालीम चलती है। पक्की हो जाने पर द्वन्द्व कराने की शर्तें लगायी जाती हैं। सब कुछ तय हो जाने पर दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को मैदान में उतारा जाता है। लड़ाने से पहले इन्हें किंचित् भूखा अवश्य रखा जाता है। दोनों के मैदान में उतरते ही पहले बीच में एक कटोरी शरबत रख देते हैं। दोनों भूखी बुलबुलों को बूंद-दो-बूंद चखाकर उनकी भूख को मानो और भी तेज कर देते हैं। तभी एकाएक कटोरी गायब कर देते हैं। दोनों एक दूसरे को कटोरी-चोर समझकर उलझ पड़ती हैं और जी-जान से लड़ती हैं। एक बार हार जाने पर काफी समय तक उसकी हिम्मत दुबारा भिड़ने की नहीं होती।

लगातार दो-तीन विजय प्राप्त हो जाने पर विजयी बुलबुल की प्रसिद्धि फैल जाती है। अन्ततः अच्छी लड़ाकू बुलबुलें रखकर बाकी सब छोड़ दी जाती हैं।

अपने अण्डों के बारे में बुलबुलों को कम परेशान नहीं होना पड़ता। सांप, नेवले आदि इनके अण्डों को चट करते ही रहते हैं। फलतः वर्ष में कई बार इन्हें अण्डे देने पड़ते हैं। ठिगने पेड़, झाड़ी, घास या खर के ढेरों में ये अपने घोंसले बनाती हैं लेकिन वहाँ तक इनके दुश्मन सहज ही पहुँच जाते हैं। कभी-कभी तो अण्डों को बचाने में स्वयं इन्हें भी उनका शिकार हो जाना पड़ता है। ये एक बार में २-३ से अधिक अण्डे नहीं देती। इनके अण्डे गुलाबी या हलके बैंगनी रंग के होते हैं।

घोंसला बनाने का इनका ढंग काफी दिलचस्प होता है। अण्डे देने से ३-४ दिन पहले नर-मादा मिलकर घोंसला बनाने का उद्योग करते हैं। नन्हीं, पतली टहनियाँ, घास-फूस और पत्तियाँ एकत्र करते हैं। मकड़ी के जाले को रस्सीनुमा धागा बना लेते हैं जो घोंसले को मजबूती के लिए बांधने

के काम आता है। घोंसला बनाने के लिए कोई दो-फंकी नीची डाल चुन लेते हैं। उस पर पहले टहनियाँ बेतरतीब फैला देते हैं। फिर उस पर घास-फूस बिछाकर बारी-बारी से सीना दबा-दबाकर उसे कटोरीनुमा बनाते हैं। जब तक एक साथी अन्य सामान जुटाने को बाहर रहता है, दूसरा साथी घोंसले को बनाने में लगा रहता है। एक के आने पर दूसरा बाहर चला जाता है। यों, दो दिन में घोंसला तैयार हो जाता है। घोंसले की गहराई ३-४ इंच से अधिक नहीं रहती। अतः उसके अन्दर बैठकर अण्डे सेती हुई बुलबुल की पूंछ बाहर दिखती रहती है। जब-जब इनके अण्डे दूसरों के शिकार बन जाते हैं, तब-तब इन्हें अण्डे देने के समय नये ही घोंसले बनाने पड़ते हैं।

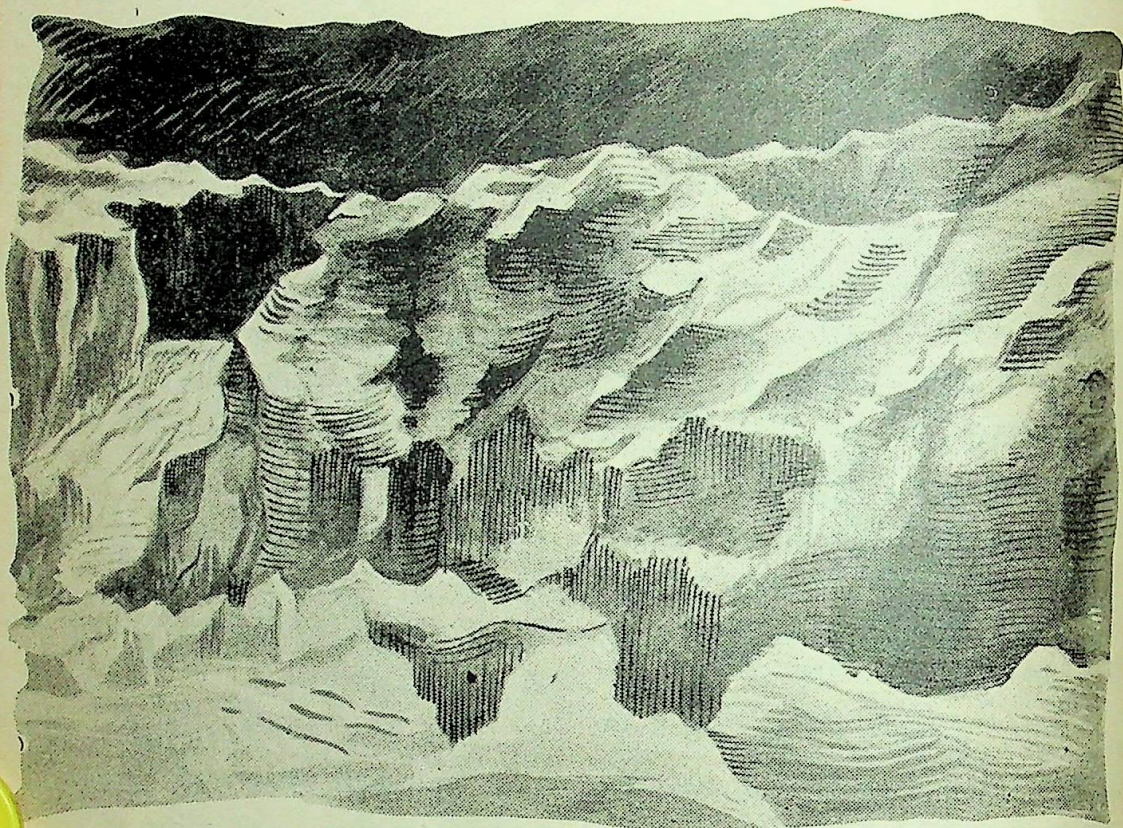
हमारी इन प्यारी बुलबुलों को इस तरह कदम-कदम पर परेशानी की जिन्दगी गुजारते हुए और उजड़ी दुनिया को पुनः पुनः बसाते हुए देखकर ही शायद किसी शायर ने कहा है :

कहता है कौन नालये बुलबुल को बेअसर ?
पर्दों में गुल के लाख जिगर चाक होगए।

कोयले से नये उर्वरक और रासायनिक खादें भी

कनाडा के डा. एन बर्कोविट्ज और अमरीका के डा. राजर डब्ल्यू यंग के सम्मिलित प्रयासों द्वारा कोयले से ऐसे पदार्थ प्राप्त करने में सफलता मिली है जो बंजर भूमि को उर्वर बना सकेंगे। प्रयोगस्वरूप 'लिंगनाइट' नामक नर्म कोयले से उक्त पदार्थ प्राप्त किया गया है। इस प्रकार प्राप्त रासायनिक उर्वरक में ह्यूमिक एसिड काफी मात्रा में पाया गया है। 'ह्यूमस' वह तत्त्व है जो उर्वरा भूमि की संरचना एक प्रमुख भाग है। इस पर आगे भी अनुसन्धान करते हुए डा. यंग का कथन है कि इस नये पदार्थ में अमोनिया मिलाकर भूमि की जुताई-बुवाई करने से भूमि की पोषण-क्षमता और भी बढ़ जाएगी। डा. बर्कोविट्ज ने भी स्पष्ट किया है कि इस पदार्थ में निहित ह्यूमिक अम्ल अन्य अनेक उपयोगी कार्यों में आ सकता है। मुख्यतः उसका उपयोग चमड़ा पकाने में काम आनेवाले मसालों में, भूमि-छिद्रण (earth drilling) के दौरान में आनेवाली सख्त चट्टानों को नर्म करने में तथा आणविक भट्टियों के लिए उपयोगी कृत्रिम ग्रेफाइट बनाने में किया जा सकेगा।

प्राचीन जलवायु



नरेन्द्रसिंह माथुर

सृष्टि का जलवायु जो आज है, वह सैकड़ों-हजारों वर्ष पहले नहीं था। आज से हजारों वर्ष बाद भी कैसा रहेगा, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। आज से १०-२० करोड़ वर्ष पूर्व, सृष्टि के आरम्भ काल में कैसा होगा, यह सर्वसाधारण के लिए भले ही कल्पना का विषय हो, एक जिज्ञासु वैज्ञानिक के लिए तो अनुसन्धान का मनोरंजक विषय है। फ्रेंच उपन्यासकार अनातोले फ्रांस ने इस बारे में अवश्य एक रोचक कल्पना की थी—'वह भी एक युग था जब यह पृथ्वी हमारे रहने लायक नहीं थी। सर्दी, गर्मी, वर्षा, सभी कुछ तो बेहिसाब था, अनाप-शनाप था! आगे चलकर ऐसा ही युग फिर भी आ सकता है जब यह पृथ्वी पुनः जीवरहित हो जाएगी और मानव का अस्तित्व ही उठ जाएगा। सूर्य

की जीवनलीला समाप्त होने से पूर्व ही अन्तिम पीढ़ी का मानव ठीक वैसा ही साधनहीन तथा बुद्धिहीन, गुफाओं में जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा होगा, जैसे आदिम युग का गुहानिवासी मानव करता था। पृथ्वीपट पर सभी कुछ बर्फ ही बर्फ से ढँका होगा और अन्तिम मानव उस निर्मम आकाश से सदा-सदा के लिए विदा ले लेगा।' यह कल्पना कैसी भी भयावह तथा मर्मन्तिक क्यों न हो, उस गणना के आधार पर गलत नहीं कही जा सकेगी जिसके अनुसार एक न एक दिन सूर्य को सदैव के लिए अस्त होना ही है। फिर भी इससे विचलित न होकर सच्ची लगन के भूवेत्ता (geologists) तो अपने विभिन्न अनुसंधानों द्वारा नित नये तथ्य प्रस्तुत कर ही रहे हैं।

चराचर जगत जलवायु से प्रभावित

यह तो निर्विवाद है कि समस्त जड़ तथा चेतन वस्तुएँ जलवायु से स्पष्टतः प्रभावित होती हैं। प्रत्येक वस्तु को जीवित रहने तथा विकसित होने के लिए निश्चित प्रकार का जलवायु आवश्यक है। इससे कल्पना की जा सकती है कि प्रागैतिहासिक काल में जैसे दैत्याकार प्राणी (dinosaur) तथा प्रस्तरयुगीन मानव और विशाल वृक्षों युक्त वन-प्रान्तर होते थे, वैसा ही विलक्षण जलवायु उन दिनों रहा होगा जो उन्हें माफिक आता रहा। इस अनुसंधान-कार्य में जिन साधनों से विशेष सहायता मिल सकती है वे हैं—वर्तमान जलवायु, जीवाश्म (fossils), पथराये हुए वन-प्रदेश तथा भूमिगत चट्टानें।

जुरैसिक (Jurassic) युग में उष्ण जलवायु का प्रभुत्व रहा होगा, यह वनस्पतियों के इन जीवाश्म-नमूनों से समझा जा सकता है



जल और वायु के विकट प्रभाव

जलवायु के मुख्य तीन भेद हैं—शुष्क, उष्णार्द्र और शीतल। जल और वायु मिलकर ही तो जलवायु शब्द बना है! चट्टानों पर जल का प्रभाव देखना हो तो तूफानी लहरों के थपेड़े खाते हुए उन शिला-खण्डों को, घाट की सीढ़ियों को तथा बड़ी-बड़ी चट्टानों को देखिए जो पानी की मार से घिसते-घिसते शेष रह जाते हैं। इसी प्रकार, तेज हवा के निरन्तर भोंके भी पहाड़ियों, घाटियों के रूप-रंग बदलते रहते हैं। शुष्क वायु में जल का अंश नहीं होता। फलस्वरूप चट्टानों की सतहें जो जल की उपस्थिति में कुछ अंश तक वायु से सुरक्षित रह सकतीं, घिसती चली जाती हैं। लम्बे-चौड़े विस्तार में फैले हुए ऐसे पहाड़ी प्रदेश आज भी मिल जाएँगे जहाँ कि घिसी-पिटी चट्टानें शुष्क वायु की मार की गवाही देंगी।

गर्म जलवायु में चट्टानों का रासायनिक क्षरण अधिकतम होता है। सिलिकायुक्त पीली मिट्टी तथा खरिया आदि इस नियम के प्रमुख उदाहरण हैं। इनके रजकण सूखे जलवायु का सहज सामना कर लेते हैं। जिस युग में भूमिगत चट्टानें कार्बन अर्थात् कोयले में परिवर्तित होती रहीं, वह युग—Carboniferous Period—बहुत अंश तक जीवन क्रिया के अनुकूल रहा। चट्टानों का कार्बन में रूपान्तर गर्म जलवायु में ही सम्भव है। जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ भी इसी जलवायु में उत्पन्न तथा विकसित होती हैं। साथ ही गर्म जलवायु में एक दोष भी है। वह यह कि जितनी शीघ्रता से इस जलवायु में जीवन विकास

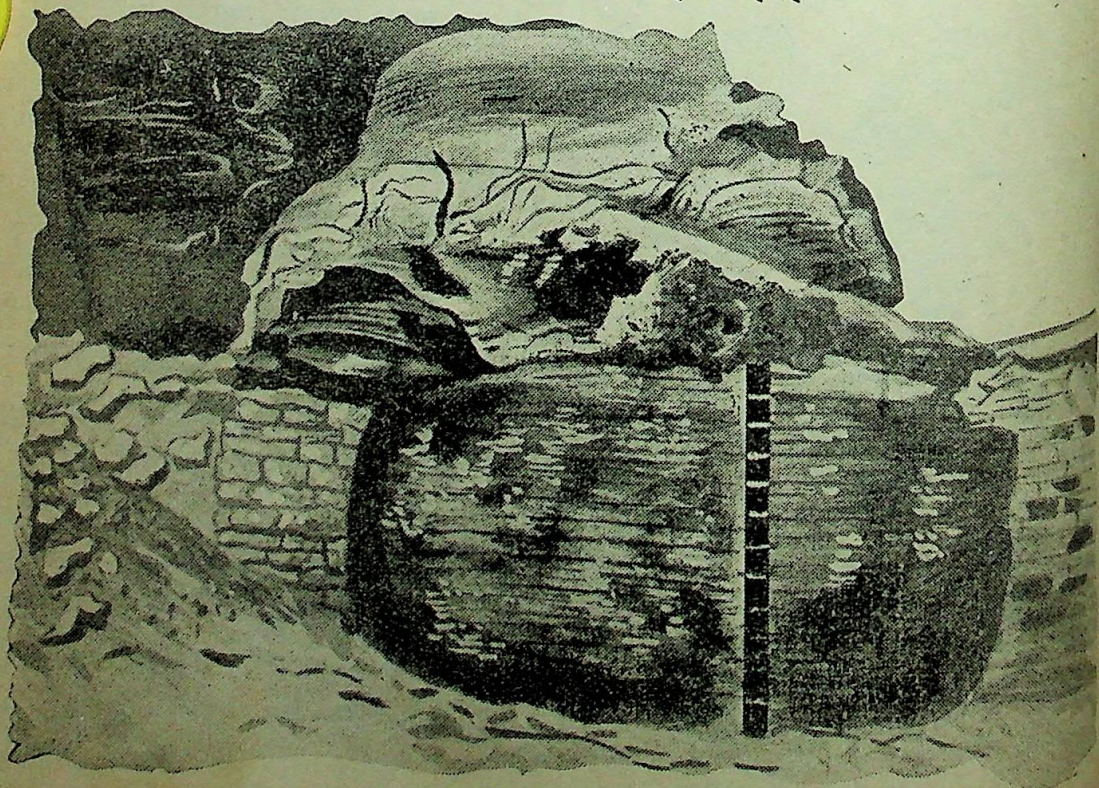
सम्भव है, उतना ही शीघ्र सड़ना-गलना भी शुरू हो जाता है। कोयले की पत्तों के बीच-बीच वानस्पतिक अवशेष यह सिद्ध करते हैं कि गर्म जलवायु के पश्चात् शीघ्र ही शीतकाल छा गया होगा।

जीवाश्म अर्थात् फासिल्स का अध्ययन भी भूवेत्ता का कार्य बहुत सरल कर देता है। गर्म जलवायु में ही जीवित रह सकने वाले जीव-जन्तु, तितलियाँ, रेप्टाइल्स, केंचुए, स्पंज, घोंघे तथा उच्च श्रेणी के स्तनपायी एवं वनस्पतियों में पाम, साईकैडस फर्न आदि वृक्षों के फासिल्स यही तथ्य प्रदर्शित करते हैं। इनके विपरीत, विशालकाय मेमथ तथा लम्बे बालों वाले गेंडे आदि प्राणियों को सर्द जलवायु ही अनुकूल रहता था। आज भी हिमखण्डों (icebergs) में दबे हुए ऐसे विशालकाय प्राणियों के कंकाल तथा कहीं कहीं समूचे शरीर जब कभी प्राप्त

हो जाते हैं तो यही सिद्ध करते हैं। समुद्र में फैली हुई मूँगे की चट्टानें तो गर्म जलवायु की सबसे बड़ी परिचायक हैं।

सर्द जलवायु के प्रमाण खोजने का परिश्रम करने की तो आवश्यकता ही नहीं आज के हिम-नद, हिम-खण्ड तथा ध्रुवीय प्रदेशों के अटूट हिम-साम्राज्य बहुत कुछ कह देते हैं। ग्लासोटेरिस वंश का पौधा फासिल के रूप के हमारे सम्मुख आता है तो प्रमाणित कर देता है कि उसका जीवनकाल में हिम का प्रभुत्व रहा होगा। हिमयुग की तो बस कुछ न पूछिये! चाहे बड़े और तीन छोटे, कुल सात-सात हिमयुगों से हमारी यह पृथ्वी गुजर चुकी है। अन्तिम हिमयुग ने पिछले २५-३० हजार वर्षों में अपना विस्तार समेटना शुरू किया है। इस हिसाब से आज का हमारा युग अन्तिम हिमयुग का शेष भाग ही समझा

बलुआ पत्थर (sandstone) और स्लेट (shole) के नीचे दबी, यह दस फुट ऊँची कोयले की चट्टान संकेत करती है कि प्रागैतिहासिक काल के वृक्ष और वनस्पतियाँ भी इसी प्रकार दबाव तथा जलवायु के प्रभाव से कोयले में परिवर्तित होती रही हैं



जा सकता है। यह और भी विचित्र बात है कि हिमयुगों के बीच-बीच छोटे-छोटे उष्ण-काल भी आते रहे हैं। उन बीच के युगों में ही साबर जैसे दांतों वाले बाघ-चीते, तथा लम्बे वालों वाले ऊँट आवाद रहे थे। उनके भी फासिल्स इस कथन की सत्यता प्रमाणित करते हैं। यह कहना कठिन है कि आज का युग वैसे ही एक अल्पकालिक उष्ण-काल में से गुजर रहा है या सचमुच ही हिमयुग समाप्ति की ओर अग्रसर है।



ग्लोसोटेरिस (Glossopteris) परिवार की ये पण वनस्पतियाँ (ferns) सहनशक्ति में अद्भुत हैं और सिद्ध करती हैं कि इनके काल में शीत का साम्राज्य रहा होगा

बचाया जा सके, उष्णता उतनी ही अधिक टिक सकेगी। यह कार्य बादलों की छत्रछाया द्वारा भली भाँति सम्पन्न हो जाता है। यों, पृथ्वी की जलवाष्प बादलों के नीचे ही नीचे टिकी रहती है और ऊपर से सूर्य अपना कार्य किये जाता है। इसके विपरीत, पर्वतीय प्रदेश पृथ्वी की इस उड़नशील सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर पाते। फलस्वरूप वहाँ शीत का साम्राज्य रहता है और बर्फ की चमकीली सतहें सूर्य की रश्मियों और ताप को ज्यों का त्यों परावर्तित करती रहती हैं।

जलवायु परिवर्तन के दो कारण और भी माने गए हैं। वायुमण्डल की गैसीय संरचना में परिवर्तन आ जाने से भी जलवायु बदलता रहता है। उदाहरणार्थ, वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की न्यूनाधिकता तथा धूल-कणों में ज्वालामुखी के कणों की अधिकता जलवायु परिवर्तित करती रहती है। पृथ्वी के भ्रमण-पथ में तथा इसकी धुरी के कोण में सूक्ष्म सा भी अन्तर आ जाने और सूर्य के क्रिया-कलाप में अन्तर आ जाने को भी जलवायु के परिवर्तनों का कारण माना गया है।

इस प्रकार प्राचीन काल के जलवायु का अनुमान लगाना एक जिज्ञासु भूवेत्ता के लिए कम रोचक विषय नहीं, वह भी विशेषतः तब जब कि उसकी सहायता के लिए ऊपर वर्णित इतने अनेक साधन प्रकृति में उपलब्ध हैं।



फरवरी १९६३

जी, मैं कंगारू हूँ

प्रकाशमोहन गर्ग



जी मैं हूँ कंगारू—अपने जन्म का चौधरी, कंगारू परिवार का प्रसिद्ध लम्ब-तड़ंग भू कंगारू (large gray kangaroo) लगभग ३५० वर्ष पूर्व की कहानी सुनिएगा ?”

“क्यों नहीं ?” मैंने कहा । मैं गया ही इसलिए था । मेरा आशय भी यही था कि कंगारूओं के देश में घूम-घूमकर प्रकृति के इस चमत्कारिक प्राणी का निकट से परिचय प्राप्त करूँ । यह प्राणी पेट के बाहरी की थैली में बच्चे को लिए कुलाने भरता है, बैठने के लिए कुर्सी की एक टांग की तरह अपनी पूंछ का उपयोग करता है, एक अच्छे-खासे मुक्केबाज की शान से बॉक्सिंग करता है, स्प्रिंग की तरह उछलकर अपना २०० पौंड वजनी शरीर लिफ्ट २०-२५ फुट लम्बी छलांग लगाता है, बिल्ली की तरह पंजों से राख रगड़कर अपने शरीर की सफाई करता है, बन्दर की तरह डाल डाल फुदकता है और मानव की भाँति अपने दोनों हाथों में भोजन थामकर खाता है । कंगारू गिरने के मुखिया से उस दिन मेरी प्रशंसा भेंट थी ।

कंगारू-मानव प्रथम भेंट

चौधरी ने शुरू किया—“मैं १६२६ की बात है । आपकी ओर से, दूर विदेश से कुछ खलासियों सहित एक कप्तान (नाम याद नहीं आ रहा) समुद्री खजाने की तलाश में निकले थे । हमारे किनारे आते-आते तूफान ने उन्हें घेर लिया । कुछ टूटा, कुछ डूबा और जो

रहा, उसे उन्होंने अपने साथियों सहित किनारे पर जमा कर लिया। जब तक कप्तान सहायता की खोज में इधर-उधर भटकते रहे, खलासियों में लूट-मार और खून-खराबा मच गया। किसी तरह कप्तान को पहले ही पता चल गया। उन्होंने चुन-चुनकर विद्रोहियों को फांसी पर लटका दिया और अपना आतंक जमा दिया। सब कुछ ठीक हो जाने पर बचे-खुचे विश्वस्त साथियों सहित यहाँ डेरा डाल दिया। यहीं उन्हें सबसे बड़ा आश्चर्य, हम कंगारुओं को पहली बार देखकर हुआ था।”

“तो, वही आपकी मानव से और....”

“...मानव की हमसे प्रथम भेंट थी। सच तो यह है कि एक सुधरे-सुलभे मानव को हमारे पुरखों ने प्रथम बार तभी देखा था। मैं तो सुनी-सुनाई कह रहा हूँ। बाकी तो आप आए ही हैं, स्वयं देख लेंगे।”

मैंने पूछा—“आपका इतिहास....”

“बहुत पुराना है। यह भी कहना गलत न होगा कि आपके आदि-मानव से भी काफी पुराना।”

मैं चकराया। मैंने फिर पूछा—
“मतलब?”

“डिनासर-युग तो सुना ही होगा! प्रागैतिहासिक काल में उन्हीं का तो पृथ्वी पर एकछत्र राज्य था! जिन दिनों हमारा मध्यकाल था, डिनासर-युग अपने उत्तर-काल से गुजर रहा था। हम थैलीयुक्त प्राणियों को अपने शिशु अपरिपक्वावस्था में ही उत्पन्न करना और उन्हें इस थैली में लटकाए फिरना अत्यन्त असुविधाजनक और अरक्षित है। भौगोलिक परिवर्तनों के फलस्वरूप जब हमारा आस्ट्रेलिया खण्ड एक ऐसा महाद्वीप बन गया जो संसार के अन्य खण्डों से सर्वथा पृथक् था, तब यहाँ हम ही हम रह गए और

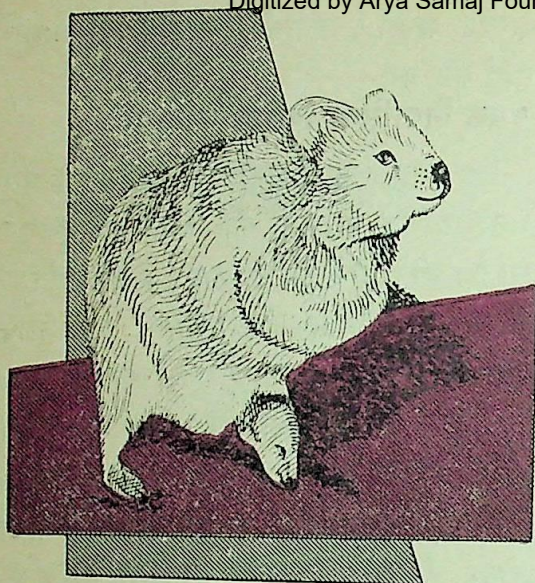
अधिक समर्थ स्तनपायी जीव संसार में जहाँ-तहाँ बँट गए।

पृथक् निवासिनी विभिन्न जातियाँ

“हमारा यह महाद्वीप, हम और हम जैसे अन्य विचित्र प्राणियों का एक अजायबघर सा है। धीरे-धीरे हम लगभग ५० उपजातियों में विभाजित होते गए। हमारे यहाँ आप स्वस्थ कंगारू केवल १ फुट का (musk rat kangaroo) भी पाएँगे और मुझ जैसा ७ फुट ऊँचा (large gray kangaroo) भी पाएँगे। देखिये, मैं आपकी बगल में खड़ा होता हूँ और आपके कानों से भी हाथ-आधा-हाथ ऊँचा पहुँचता हूँ। हमारे रहन-

अपने अपरिपक्व बच्चे हमें थैली में ही लटकाये फिरना पड़ता है





मद्धिम शरीर की वालाबी मादा अपने नन्हे को लिए हुए सैर पर निकली है

सहन में भी बड़ी विभिन्नता है। कुछ कंगारू बन्दरों की तरह पेड़ों पर ही रहने के अभ्यस्त हैं, कुछ को पहाड़ी चट्टानों और घाटियाँ पसन्द हैं, कुछ दलदली जगहों में ही मस्त हैं तो कुछ ऐसे भी हैं जो रेगिस्तान ही पसन्द करते हैं।”

मैंने बीच में पूछा—“आपकी कंगारू जाति तो एक और उपजातियाँ पचास ! यों तो पहिचानना भी मुश्किल होता होगा !”

“कुछ भी मुश्किल नहीं, क्योंकि हमने उनके बड़े-बड़े समुदायों को अलग-अलग नाम दे रखे हैं। उनका वर्गीकरण हमने उनके डील-डौल और आकृतियों से कर रखा है। मैदानों में रहनेवाले, सबसे बृहत् शरीर-धारी, हम कंगारू ही कहलाते हैं। हमें गर्व है कि हमारे राष्ट्र के सुरक्षा-प्रतीकों में हमारे यहाँ के बृहत् पक्षी एमु (emu) के साथ हमीं को चुना गया है। पहाड़ियों पर रहने-बसनेवाले कंगारूओं को वालारू (wallaroo) तथा यूरो (euro) कहते हैं। मद्धिम कद के और कुछ शर्मिले वालाबी (wallaby) और पेडेमेलन (pademalon) कहलाते हैं।”

“आपने एक फुट वाले कंगारू की भी बात कही थी न !” मैंने याद दिलाया।

“वही कहने जा रहा हूँ। उन नन्हों के मस्क रैट कंगारू (mask rat kangaroo) कहते हैं। प्राणी-विज्ञान में हमारे शाखा को मैक्रोपोडिडी (macropodidae) अर्थात् लम्बपाद (long-footed) कहते हैं। एक बात जो हम सबमें सामान्य है वह यह कि हम अपने विशेषण लम्बपाद के अनुरूप ही अपनी पिछली लम्बी टांगों से छलांगें भरते हैं जिनके लिए हम प्रसिद्ध हैं। आपके अजायबघरों में अधिकतर हमी मिलेंगे। हमें ‘बड़े म्यां’ (Old Boomer) का छोटा सा प्यारा खिताब भी दिया गया है”—कहते कहते चौधरी कंगारू शर्मा गए।

“इसमें क्या शक ?” मैंने दाद दी। धन्यवाद, कहकर उसने कहानी आगे चलाई।

“मेरी ७ फुट की ऊँचाई और २०० पौंड का वजन तो आप सुन ही चुके हैं। छलांग भी २५-३० फुट की लगा लेता हूँ। कभी मेरी दौड़ देखनी हो तो जीप मेरे साथ कर लीजिएगा। ३० मील की रफ्तार तक तो आपको आगे निकलने न दूँगा। वह रफ्तार बस थोड़ी ही देर तक चल पाती है। लम्बी दौड़ अपने बस की बात नहीं। फिर भी हमलावरों से बच निकलने के लिए वही काफी है।”

दुश्मनों से मुकाबला

“दुश्मनों से आपको चौकला तो बहुत रहना पड़ता होगा !”—मैंने पूछा।

“जी हाँ, हमारे प्रमुख शत्रु तीतर हैं—शिकारी कुत्ते, चट्टानों में छिपे हुए सव्जा-अजगर (green python) और हमारे नन्हे बच्चों को उठा ले जानेवाले गिद्ध बाज आदि। इनसे बचे भी तो दो प्रबल शत्रु और हमारे पीछे पड़े रहते हैं, और पशुओं में नहीं, आप मनुष्यों में ही हैं।”

“कौन हैं वे निर्दयी ?”

“निर्दयी नहीं, लालची कहिये। काले आदमी का भाला और गोरे आदमी की गोली हमें चाहे जब वेध सकती है। वह भी सिर्फ तीन वस्तुओं के लिए—हमारा आहार प्रिय मांस, जूतों के लिए हमारी खाल तथा हाथ के दस्तानों के लिए हमारे नर्म रोयें। इसीलिए हम भुण्ड में रहते-विचरते हैं। हम शुद्ध शाकाहारी हैं और घास-पात पर ही गुजर कर लेते हैं। सुबह के पहले पहर में तथा ढलती शाम और रात के भी पहले पहर में हमारी चहल-पहल अधिक रहती है। दिन का समय हमारे आराम का है। लम्बी, ऊँची, घनी घास के बीच आराम से पड़े रहते हैं। जरा सी भी आहट होने पर हम चौकन्ने हो जाते हैं। हम शाकाहारी हैं तो यह न समझ लीजिएगा कि कमजोर भी होंगे। घूँसे और लातें हमारी अपनी ताकत है। एक बार तो हम सामनेवाले के छक्के ही छुड़ा देते हैं। कभी ऐरे-गैरे कुत्तों के बीच हम फँस भी जाएँ तो लातें और घूँसे वो जम कर चलते हैं कि कुत्तों को भागते ही बनती है। इसी प्रकार टोली की नेतागीरी का भी सवाल हम बातों से नहीं, लातों से हल करते हैं।

कुशल बाक्सर

“घूँसेबाजी बचपन से ही हमारा प्रिय शौक रहता है। जब कभी खूँखवार लड़ाई का काम पड़ जाता है तब हम सब कुछ करने पर उतर आते हैं। हाथ तो केवल घूँसों का ही काम करते हैं लेकिन पाँव भी अपनी कारगुजारी साथ ही दिखाते हैं। दाँव लगने पर अपने पंजों से ही हम दुश्मन की खाल उधेड़ देते हैं और पेट तक फाड़कर रख देते हैं। दाँतों से उसका मुँह और

कंधे भी नोच लेने में नहीं चूकते। हाँ, तमाशा दिखाने भर के लिए हम आपसे भी बाक्सिंग कर सकते हैं।”

“मुझसे..... मेरा मतलब है, आदमियों से ?” मैंने घबराहट व्यर्थ ही छिपाते हुए कहा।

“क्या मुश्किल है ? आप कुत्तों को हरेक कला और कलाबाजी सिखाते हैं न ? इसी तरह अजायबघरवाले हमें जब पाल लेते हैं तब तमाशा दिखाकर पैसा कमाने के लिए हमें बाक्सिंग का मानवीय ढंग सिखा देते हैं। हमारा वह ट्रेनिंगकाल उनके लिए तब तक मुसीबत बना रहता है जब तक हम लातें चलाने की अपनी आदत सुधार न लें।

पौन इंच का बच्चा, सात फुट का नर !

“हमारे यहाँ बच्चों का जन्म प्रकृति की एक और विचित्रता है। हम स्तनपायी जीव हैं और अपने पेट से ही बच्चा पैदा करते हैं, अण्डों से नहीं। जरा अन्दाजा तो



लगाइए कि जन्म के समय हमारा बच्चा किस आकार-प्रकार का होगा ?”

“यही हाथ भर का और ८-१० पौंड का समझिए”—मैंने अन्दाज से हांक दिया। चौधरी इस पर जोर से हँसा और इतना हँसता रहा कि पंछ के बल बैठे रहने का उसका सन्तुलन बिगड़ गया। लोट-पोट होकर वह फिर से जमा तो मैंने कारण पूछा।

“आपने बात ही ऐसी कही ! यहाँ भी आपने अपना गणित लगाया मालूम होता है। हमारा बच्चा पैदा होते समय आपकी अँगुली के एक पोर जितना बड़ा भी नहीं होता।”

“यानी... एक इंच से भी छोटा ?” मैं सकपकाया देखता ही रह गया।

“अब ठीक कहा आपने। बिलकुल चुहिया का नन्हा बच्चा ही समझिए। बात यह है कि हमारी मादाओं के शरीर में अन्य स्तनपायी प्राणियों जैसा सशक्त जरायु (placenta) न होने से उसे अन्दर ही अन्दर रक्त द्वारा जो पोषण तथा आक्सीजन मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। इधर कुछ तो हजरत बच्चे की ही जल्दबाजी और कुछ उधर मादा की मजबूरी; वस, पूरा बनने से पहले ही बगैर नाक-कान का नन्हा सा बच्चा निकल पड़ता है। उस समय उसकी त्वचा ऐसी पारदर्शक होती है मानो मांसपिण्ड पर प्लास्टिक का खोल मढ़ा हो।

“तब से वह अपनी माँ के स्तन से इस प्रकार चिपका चलता है जैसे उस अंग से जुड़ ही गया हो। धीरे-धीरे बढ़ता हुआ वह माँ के पेट की थैली में घर बनाना सीख लेता है। जब कभी पेट के रोयों के बीच उसे थैली का मार्ग नहीं मिलता, तब मादा जीभ से पेट पर लकीर खींचकर उसे रास्ता बताती है। उन दिनों उसकी मंजिल बस इतनी ही रहती है कि भूख लगी तो रेंग कर स्तनों से आ चिपका और पेट भर गया तो थैली में जा पहुँचा। सबसे पहले उसके हाथों के पंजे विकसित होते हैं जिनसे माँ के पेट की पकड़ मजबूत रहती है।

“तीन महीने में तो वह सर्व-अंग-सम्पन्न

हो जाता है। सर्व-गुण-सम्पन्न फिर भी नहीं हो पाता। माँ के दूध से उकताया हुआ वह बीच-बीच में ललचाता है कि कुछ दुनिया देखे, दुनियादारी देखे और नर्म घास का आनन्द ले। तब वह उचककर बाहर भी हो लेता है और दो-चार मुँह नर्म घास में मारकर थैली में लौट जाता है।”

मैंने फिर बीच में पूछा—“किसी के द्वारा पीछा किये जाने पर बच्चे को ढोये फिरना तो मादा को और भी भार मालूम देता होगा !”

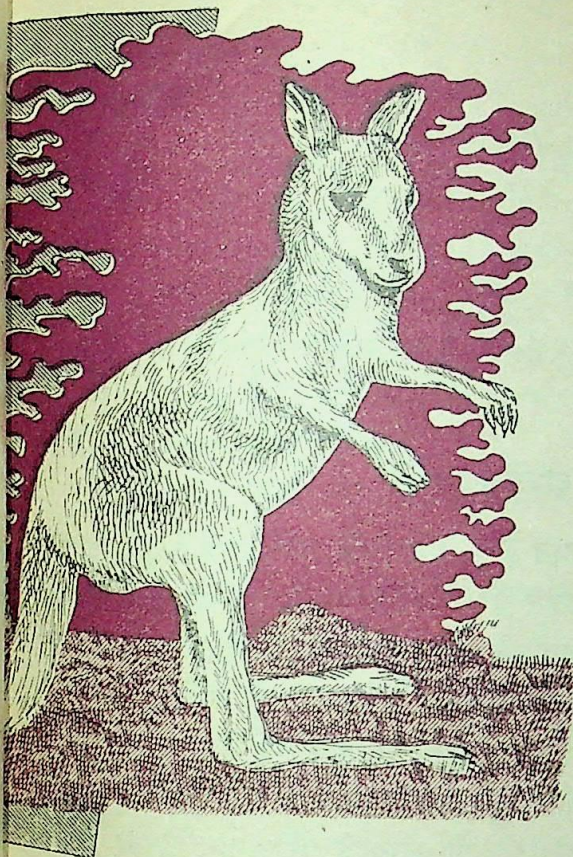
“आपने ठीक कहा। साधारण शत्रु से तो एक ही छलांग में पीछा छुड़ा लिया जाता है या दाँव पड़ गया तो एक ही लात में उसे धूल भी चटा दी जाती है। हाँ, विकट सामना पड़ने पर दौड़ते-दौड़ते मादा किसी झाड़ी की ओट में बच्चे को फेंककर निर्द्वन्द्व भागती है। अधिकांश तो यही होता है कि बचकर लौटने पर माँ-बेटे पुनः मिल लेते हैं। वरना माँ निछावर होना भी खूब जानती है। हमारे यहाँ बच्चे को भी आप लोगों ने एक नन्हा सा बड़ा प्यारा नाम जोय (Joe) दे रखा है।”

मैं मुग्ध भाव से सुने जा रहा था।

अन्य जाति-भाई

“शिकारियों को चकमा देने में हमारे पहाड़ी-भाई (rock kangaroo) भी बहुत तेज हैं। नुकीली, सँकरी, ढलवाँ चट्टानों पर ऐसे जमे हुए कदमों से सरपट भागते हैं, मानो सर्प सरसराता जा रहा हो। अधिकतर तो यही होता है कि शिकारी का भाला निशाना चूककर चट्टान से टकरा जाता है और टुकड़े-टुकड़े हो जाता है या खाई-खन्दक में खो जाता है। इस पहाड़ी और फुर्तीली जिन्दगी के लायक ही उनके पिछले पाँव हमसे कुछ छोटे होते हैं। उनका कद भी ठिगना होता है।

“हमारे मैदानी-भाई, लाल कंगारू (red kangaroo) भी ऐसे ही तेज होते हैं। उन्हें यहाँ के रेतीले मैदानों और रेगिस्तानों में पानी के लिए दूर-दूर भटकना पड़ता है।”



उन्हें डालों पर बैठने में सुविधा रहती है। पिछले पाँवों के तलवे फिसलने न होकर खुरदरे होते हैं ताकि डालों की पकड़ मजबूती से हो सके। हाथों के पंजे मजबूत तथा मुड़े से भी रहते हैं। उनके द्वारा वे लटकती शाखों को पकड़कर सरलता से डाल-डाल भूल सकते हैं। इस डाल से उस डाल, वे भी २०-३० फुट की छलाँग लगा लेते हैं और बन्दर जैसी सरलता से ४० फुट ऊँचे पेड़ से जमीन पर भी कूद लेते हैं। उन्हें भी दिन में सोना पसन्द है। घुटनों में सिर दिए, डाल पर बैठे ही बैठे ऊँघते रहते हैं। शाम के भुटपुटे में और रात के अंधेरे में नीचे उतरकर वे भोजन की तलाश में निकलते हैं। जलाशयों के निकट उन्हें अपना शाकाहार प्रचुरता से मिल जाता है। उनका शिकार बड़ी निर्ममता से किया जाता है।”

“वह कैसे ? भाला तो ऊपर पहुँचता नहीं होगा ? बन्दूक से ?” मैंने पूछा।

“अजी नहीं। शिकारी कुत्तों की टोली पेड़ के नीचे घेरा डाले, जीभें लप-लपाती ताक में रहती है और भाला लिए शिकारी पेड़ पर चढ़कर इन्हें घेरते हैं। कुछ देर तो ये मुकाबला लेते हैं लेकिन घबराहट के मारे उछल-कूद में जब नीचे जा गिरते हैं तब बाकी कहानी वे कुत्ते पूरी कर देते हैं।”

कहानी के अचानक ही इस गीले मोड़ पर कुछ देर चुप्पी रही। तभी चौधरी-कंगारू फिर बोला—“आज आपका बहुत समय लिया। अब शाम भी घिर आई है। कल फिर मिलिएगा न ?”

“अवश्य।” कहकर मैंने पुनः उसे धन्यवाद दिया और अपनी जीप स्टार्ट कर दी। तभी पीछे से एक लाल कंगारू सरपट भागता हुआ जीप की बगल से गुजरा। मैंने भी चाल तेज करके कदम जो मिलाया तो मान गया कि चौधरी कंगारू ने सच ही कहा था।

मेरा स्पीडोमीटर उसकी रफ्तार २८-३० बता रहा था !

नन्हा जोय अब कुछ बड़ा हो गया है। माँ ने छाती से चिपकाये रखना छोड़ दिया है। फिर भी जब भूख सताती है तो माँ की छाती से लिपट ही जाता है,

मैंने याद दिलाया—“पेड़ों पर रहनेवाले कंगारू का भी आपने जिक्र किया था।”

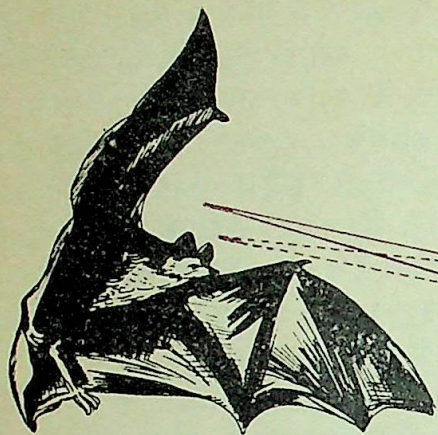
“मैं भूला नहीं हूँ। बस, ये ही दो-एक बातें बताकर आज आपसे छुट्टी लूँगा। आपको भी कैम्प पहुँचना है न ?”

मैंने स्वीकार किया—“खूब याद दिलाया। मैं तो आपके वार्त्ति-रस में डूबा हुआ उभर ही नहीं पा रहा था !”

“यह तो आपकी कृपा है।”

तरु निवासी कंगारू

“पेड़ों पर रहनेवाले कंगारू यद्यपि सरपट दौड़-भाग तथा उछल-कूद कर सकते हैं फिर भी उन्होंने पेड़ों से ही नाता जोड़ रखा है। इसलिए उनके हाथ-पाँव कुछ छोटे और कूल्हे चौड़े तथा गद्दीदार होते हैं। इससे



कर्णातीत ध्वनियाँ

डा. दयाप्रसाद खण्डेलवाल

सामान्य ध्वनियाँ वायु के कम्पनों की बनी होती हैं। यदि प्रति सेकण्ड २० से लगाकर १५००० तक कम्पन उत्पन्न किये जाएँ तो उनसे जो तरंगें वायु में उत्पन्न होती हैं उन्हें मनुष्य के कान सुन सकते हैं। उन्हें श्रव्य-ध्वनियाँ कहते हैं। १५००० से अधिक आवृत्ति के कम्पनों को मनुष्य के कान नहीं सुन सकते। ऐसी ध्वनियों को कर्णातीत या श्रव्येतर ध्वनियाँ कहते हैं। यदि औसत श्रव्य-ध्वनि की आवृत्ति ५०० कम्पन प्रति सेकण्ड हो तो वायु में उसकी तरंग-दूरी लगभग ६० सेंटीमीटर होगी। इसकी तुलना में ५०००० आवृत्ति की कर्णातीत ध्वनि के लिए तरंग-दूरी केवल ०.६ सेंटीमीटर रहेगी।

कर्णातीत ध्वनि उत्पन्न करने के लिए विशिष्ट उपकरण चाहिए। क्वार्ट्ज (quartz) उनमें मुख्य है। इसमें यह गुण होता है कि इसकी पतली पट्टियाँ काटकर उनके विपरीत पृष्ठों पर विद्युतावेश बारी-बारी से बदलें तो पट्टियाँ बारी-बारी से मोटी-पतली होती जाती हैं। उन पृष्ठों पर धातु की पन्ध्रियाँ लगाकर उन पर विद्युत कम्पन कराएँ तो पट्टियों में भी उसी आवृत्ति के कम्पन उत्पन्न हो जाते हैं। एक विशिष्ट आवृत्ति पर तो वे कम्पन बहुत प्रबल हो

जाते हैं। इस क्रिया को 'यांत्र-वैद्युत क्रिया' कहते हैं। इसी प्रकार यदि लोहे की किसी छड़ को बारी-बारी से चुम्बकित और विचुम्बकित करें तो उसकी भी लम्बाई बढ़ती-घटती जाती है। छड़ को चुम्बकित करने वाली कुण्डली में प्रत्यावर्ती विद्युतधारा बहाएँ तो छड़ की लम्बाई में कम्पन उत्पन्न होते हैं। ये कम्पन भी एक विशिष्ट आवृत्ति पर प्रबल होते हैं। वह आवृत्ति छड़ के आकार तथा गुणों पर निर्भर होती है। ४६ प्रतिशत लोहा, ४६ प्रतिशत कोबाल्ट तथा २ प्रतिशत वेनेडियम मिश्रित धातु में यह क्रिया बहुत प्रबल होती है। इस क्रिया को 'चुम्बकीय क्रिया' कहते हैं।

कर्णातीत ध्वनियों को समझने के लिए विवर्तन क्रिया समझना आवश्यक है। रात के समय घर के बाहर खड़े होकर देखें तो प्रकाश सीधी रेखा में पहुँचता दीखेगा; किन्तु ध्वनि को दीवारों की ओट से भी सुना जा सकता है। इसका कारण यह है कि प्रकाश तरंगें अत्यन्त लघु होती हैं। अतः दीवारों की ओट में मुड़ने की अर्थात् विवर्तन की क्रिया उनमें बहुत कम होती है। प्रकाश तरंगों में तरंग दूरी १/२००००० सेंटीमीटर के लगभग होती है। इसके विपरीत ध्वनि-तरंगों में तरंग-दूरी ६० सेंटीमीटर के

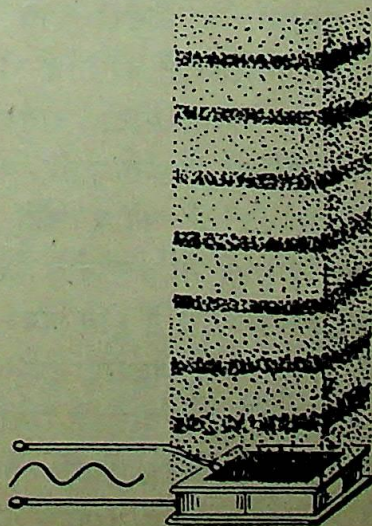
लगभग होती है। इसलिए सामान्य ध्वनि-तरंगों सरल रेखीय पथ पर सीमित न रहकर बहुत विवर्तित होती हैं अर्थात् फैलती हैं। उच्च आवृत्ति-तरंगों की तरंग-दूरी कम होगी। अतः वे अपेक्षाकृत कम ही विवर्तित होंगी। यही कर्णातीत ध्वनियों का रहस्य है। उदाहरणार्थ ५०००० कम्पन प्रति सेकण्ड की ध्वनि २० सेंटीमीटर व्यास की प्लेट से उत्पन्न करें तो वह प्लेट की लम्ब दिशा से केवल दो डिग्री इधर-उधर फैलेगी।

कर्णातीत ध्वनियों का उपयोग प्रथम महायुद्ध में प्रारम्भ हुआ था। सन् १९१६ में फ्रांस का जहाजी बेड़ा जर्मन पनडुब्बियों से परेशान था। पाल लेंगेविन ने सुझाया कि कर्णातीत ध्वनियों की सहायता से पनडुब्बियों की टोह ली जा सकती है। प्रेषण-केन्द्र से कर्णातीत ध्वनि का एक संक्षिप्त संकेत भेजें तो मार्ग में कोई रुकावट न होने पर तो वह विलीन हो जाएगा अन्यथा रुकावट से टकराकर लौट आएगा। संकेत के भेजने तथा लौटने के मध्य जो समय लगेगा, उससे उस रुकावट की दूरी ज्ञात हो जाएगी। मान लें कि समय का वह अंतर ४ सेकण्ड है तो चूँकि पानी में ध्वनि का वेग लगभग ५०००० फुट प्रति सेकण्ड है, ध्वनि २०००० फुट तक गई मानी जाएगी। अतः उस वस्तु की दूरी १०००० फुट अर्थात् लगभग २ मील हुई। आप शायद सोचें कि इसमें कर्णातीत ध्वनियों की ही क्या विशेषता है? सामान्य ध्वनि तरंगों से यह क्यों नहीं हो सकता? इसका रहस्य विवर्तन की क्रिया में है। सामान्य ध्वनि तरंगों को किसी निश्चित दिशा में सीमित नहीं किया जा सकता, अतः वे तो प्रेषण-केन्द्र से किसी भी दिशा में रुकावट होने पर लौट आएँगी। हमारा उद्देश्य उस वस्तु की दूरी ही नहीं उसकी दिशा भी जानने का है, अतः कर्णातीत ही

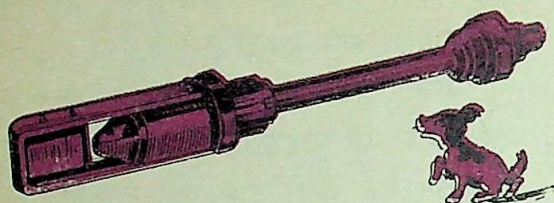
आवश्यक है जो अपनी लघु-तरंग दूरी के कारण बहुत कम फैलती है।

पानी में कर्णातीत ध्वनियाँ उत्पन्न करने वाले यन्त्र को हाइड्रोफोन कहते हैं। इस यन्त्र में १५००० से ३०००० कम्पन प्रति सेकण्ड तक की ध्वनियाँ काम में लायी जाती हैं और प्रत्येक संकेत लगभग १/१० सेकण्ड के लिए उत्पन्न किया जाता है। लौटनेवाली प्रतिध्वनि संग्राहक केन्द्र पर पड़ती है जिसका संकेत एक कम्पन-आलेख (ओसिलोग्राफ) पर पढ़ा जा सकता है। भेजे गये तथा लौटे हुए संकेतों की दूरी इस आलेख पर पढ़ने से उस रुकावट की दूरी ज्ञात हो सकती है जहाँ से संकेत टकराकर लौटा। आजकल प्रत्येक जहाज में हाइड्रोफोन लगा रहता है। यह यन्त्र लगातार सक्रिय रहता है और प्रति-ध्वनियों की टोह रखता है। इस प्रकार यह चौकीदार का काम करता है। भिन्न प्रकार की रुकावट से प्रतिध्वनि भी भिन्न प्रकार की आती है। अतः यन्त्र के सामने बैठा व्यक्ति न केवल वस्तु की दूरी बल्कि उसका अनुमानित स्वरूप भी जान लेता है कि वह कोई हिमखण्ड है या पनडुब्बी या व्हेल। समुद्र की गहराई नापने के लिए भी यही

क्वार्ट्ज की पतली, विद्युतावेशित पट्टियाँ,
कम्पनावस्था में



फरवरी १९६३



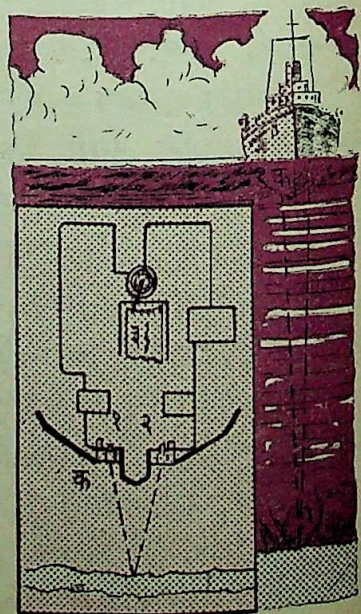
कर्णातीत-ध्वनि उत्पादक इस सीटी की आवाज यह पालतू कुत्ता ही सुन सकेगा हम या आप नहीं विधि काम में आती है। ज्यों-ज्यों जहाज चलता है, गहराई का माप अंकित होता जाता है। इसी विधि के द्वारा लगभग ३०० फुट नीचे एक डूबे हुए जहाज की खोज की जा सकी थी।

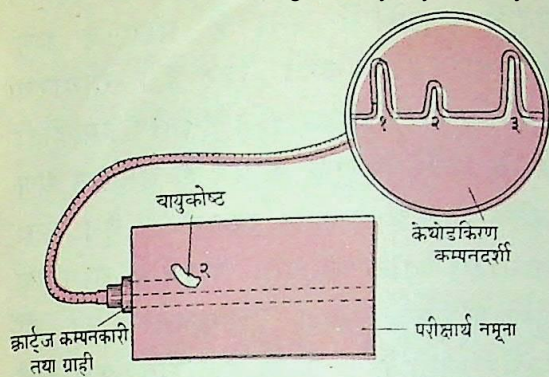
प्रकृति में भी कर्णातीत ध्वनियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कुत्ते के कान १५००० प्रति सेकण्ड से भी अधिक आवृत्ति की ध्वनियों को सुन सकते हैं। फलतः किसी मेले में हम केवल इन उच्चतर आवृत्तियों की ध्वनि उत्पन्न करके अपने कुत्ते को दूर से बुला सकते हैं। अन्य व्यक्तियों को इसका पता भी नहीं चलेगा। चमगादड़ कर्णातीत ध्वनियाँ इधर-उधर भेजता रहता है और उनकी प्रतिध्वनियों के आधार पर ही मार्ग की टोह ले लेता है। नेत्रहीन मनुष्यों के लिए भी ऐसे प्रयोग चल रहे हैं कि कर्णातीत ध्वनि की सहायता से वे मार्ग का पता लगाते हुए चल-फिर सकें।

ठोस वस्तुओं के भीतरी दोष ज्ञात करने के लिए एक्स-किरणों का नाम तो सुना ही होगा। किन्तु अधिक मोटी धातुओं के लिए उनका उपयोग सम्भव नहीं, क्योंकि उनके छोटे-छोटे दोषों को वे नहीं बता सकतीं। इस दिशा में भी कर्णातीत ध्वनियों का उपयोग व्यापक रूप से होने लगा है। ये ध्वनियाँ धातुओं की गहराई तक बिना क्षीण हुए जा सकती हैं। धातु में जरा भी दरार पड़ी हो तो उससे यह ध्वनि क्षीण हो जाती है और स्पष्ट पता लग जाता है। प्रेषक

तथा ग्राही को खिसकाते जाएँ तो पदार्थ में भी दोष होगा वहीं तीव्रतामापी में क्षीण का संकेत आ जाएगा। यह विधि कई तक की मोटाई के लिए काम आ सकती है। इसमें कठिनाई यह है कि दोष कितनी गहराई पर है, इसका सहज पता नहीं लगता।

परावर्तन पर आधारित यन्त्र में यह नहीं। इस यन्त्र में कर्णातीत ध्वनि-कम लगातार नहीं भेजे जाते। एक बहुत छोटे संकेत भेजा जाता है और उसकी प्रतिध्वनियों के संकेत की प्रतीक्षा की जाती है। वस्तु अन्त तक ठीक है तब तो प्रतिध्वनियों केवल दूसरे सिरे से ही आएंगी किन्तु वहाँ में कोई भी दोष होने पर अन्य प्रतिध्वनियाँ भी आएँगी। हाइड्रोफोन की भाँति ही ध्वनि संकेतों को ग्राही द्वारा विद्युत-संकेतों में बदलकर एक कैथोडकिरण के कम्पन पर लगाया जाता है। उस पर समय अन्तर के अनुसार प्रत्येक प्रतिध्वनि अलग-अलग संकेत बन जाता है। क्रिया का सिद्धान्त चित्र में प्रदर्शित है। कम्पनकारी से भेजे गये संकेत का कुछ हाइड्रोफोन द्वारा जहाज पानी में छिपी बाधाओं की टोह सहज ही ले सकता है।





परावर्तन पर आधारित कर्णातीत-परीक्षक सिद्धान्त

पहले पृष्ठ १ से तथा कुछ अन्तिम पृष्ठ ३ से परावर्तित होता है। कम्पनदर्शी के पर्दे पर इनके लिए संकेत १ और ३ बनते हैं। अब यदि नमूने के पदार्थ में कोई बुलबुला रह गया है या दरार पड़ी है तो एक प्रतिध्वनि संकेत वहाँ से भी आएगा जो कम्पनदर्शी पर १ और ३ के बीच अंकित होगा। यदि कम्पनदर्शी पर दूरी १-२ और १-३ का अनुपात $\frac{3}{5}$ मान लें, तो नमूने में दोष $\frac{3}{5}$ गहराई पर माना जाएगा।

मानव-शरीर के परीक्षण में भी इस प्रकार की विधियाँ काम में ली जाती हैं। मस्तिष्क की बनावट जानने के लिए, गाँठ (ट्यूमर) की स्थिति ज्ञात करने के लिए तथा इसी प्रकार के अनेक उपयोगों में कर्णातीत ध्वनि काम में ली जाती है। इसमें कठिनाई यह है कि अन्य अनेक प्रतिध्वनियाँ भी मानव अंगों से आती हैं, अतः पर्याप्त ज्ञान तथा अनुभव के बाद ही सही निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर के स्वस्थ अंग की अपेक्षा ट्यूमर से पीड़ित अंग की कर्णातीत प्रतिध्वनि भिन्न होती है। सरल ट्यूमर में क्षीणतर तथा जटिल अवस्था में तीव्रतर होती है। अतः न केवल ट्यूमर की स्थिति का, बल्कि उसके प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है।

अनेक रासायनिक तथा भौतिक क्रियाएँ भी ऐसी हैं जो उच्चतर आवृत्ति के कम्पनों की उपस्थिति में ही होती हैं। बहुत से जीवाणु अत्यधिक आवृत्ति के कम्पनों से मर जाते हैं। अतः कर्णातीत ध्वनियाँ स्वयं भी अनेक क्रियाएँ कर सकती हैं।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि सरलतम जीवाणु कर्णातीत ध्वनियों के प्रभाव से $\frac{1}{100000}$ सेकण्ड से भी कम समय में नष्ट हो जाते हैं। रोगाणुओं के विनाश के लिए इन ध्वनियों के महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। बड़े प्राणियों में यह प्रभाव इतना घातक नहीं होता। मछलियों में देखा गया है कि इन ध्वनियों के कारण वे पानी की सतह पर उलटी हो जाती हैं और असहाय अवस्था में बहने लगती हैं। ध्वनि के बन्द होते ही वे पुनः स्वस्थ हो जाती हैं। कम तीव्रता वाली ध्वनियों का उपयोग कुछ रोगों के इलाज में किया जाता है। इसके अतिरिक्त उनका उपयोग दीर्घ श्रृंखली अणुओं को बनाने तथा भंग करने की क्रिया को नियंत्रित करने में, पायस (इमल्शन) बनाने में, मणिभ उगाने में तथा चमड़ा साफ करने आदि में भी होता है। विविध उपयोगों के लिए विभिन्न आवृत्ति तथा तीव्रता की कर्णातीत ध्वनियाँ आवश्यक हैं। इस विषय पर प्रयोग और अनुसंधान बराबर जारी हैं।

अमरीका इस दिशा में किस तत्परता से प्रगति कर रहा है यह निम्नवर्णित उपयोगों से समझा जा सकेगा।

कुछ समय पूर्व वहाँ के बोस्टन हवाई अड्डे पर एक एलेक्ट्रा जेट विमान पक्षियों के झुण्ड से टकरा गया था। अब यह सम्भव है कि पक्षियों द्वारा उत्पन्न कर्णातीत ध्वनियों का पूर्वसंकेत प्राप्त करके ऐसी दुर्घटना को टाला जा सके। इसी का एक अन्य उपयोगी उपकरण है साउण्ड स्पेक्ट्रम एनलाइजर है।

यह उन पुर्जों की ध्वनि-लहरों के आवर्तन की माप करता है जो कभी-कभी कर्कश ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं। साथ ही, यह हानिकारक स्पन्दनों और आकस्मिक धक्कों के प्रभाव को भी अंकित करता है।

इस प्रारम्भिक अवस्था में उपकरणों की कीमतें काफी अधिक होने के कारण विकास इतना तीव्रगामी नहीं है। फिर भी कदम बराबर प्रगति की ओर अग्रसर है। हाल ही में नये प्रकार के जनरेटर, हाइड्रोमेटिक आसिलेटर और एलेक्ट्रो हाइड्रॉलिक माड्युलेटर नमूने के स्वरूप तैयार किये गए हैं। इनके द्वारा खाद्य-पदार्थ, रसायन, रंग, सौन्दर्य-प्रसाधन, वस्त्रादि तथा धातु-शोधन के उद्योगों में ध्वन्यात्मक ऊर्जा का प्रयोग किया जा सकेगा। इस शक्ति का उपयोग सफाई करने के प्रयोगों में भी हो रहा है। इसके द्वारा उत्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत लहरें किसी भी सतह की धूल आदि को फूँककर उड़ा देती हैं। इनके लिए आवश्यक उपकरण और भी विकसित रूप में निर्मित होने पर घड़ियों के नाजुक पुर्जों की, जटिल मशीनों के पुर्जों की तथा जेट विमान के पुर्जों की भी सफाई विश्वसनीय रूप से की जा सकेगी।

आपको कोई भवन या नाट्यशाला बनानी हो और आप ध्वनि की दृष्टि से उसके गुण-दोष जानना चाहें तो वास्तविक भवन जो बनाना है उसके १/१० या १/२० का एक नमूना बनवाइए और उसमें मानव ध्वनि से क्रमशः १० या २० गुनी आवृत्ति की ध्वनियाँ उत्पन्न करके परीक्षण कर लीजिए। उन ध्वनियों की तरंग-दूरी वास्तविक भवन के अनुपात में होगी। अतः परीक्षण के आधार पर भवन में आवश्यक परिवर्तन आप पहले ही से ज्ञात कर सकेंगे।

यह सभी जानते हैं कि सृष्टि का प्रत्येक

पदार्थ अणुओं से बना है और वे अणु निरन्तर गति करते रहते हैं। साधारण ध्वनि-कम्पनों की आवृत्ति इतनी कम होती है कि ध्वनि के एक कम्पन के समय में अणु अनेक बार इधर-उधर टकरा लेते हैं। अतः साधारण ध्वनि की गति पदार्थ के सामूहिक गुणों (घनत्व तथा प्रत्यास्थता) पर ही निर्भर होती है। इसके विपरीत, कर्णातीत ध्वनियों का कम्पनकाल अत्यन्त छोटा होता है। उनकी गति के अध्ययन से पदार्थ के अणुओं के गुण-दोषों पर भी प्रकाश पड़ता है।

कर्णातीत ध्वनियों का कार्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। इंजीनियरिंग, चिकित्सा, युद्ध और रक्षा तथा उद्योग-व्यापार के लिए अत्यन्त उपयोगी इस कर्णातीत ध्वनि-विज्ञान में बहुत कुछ करना शेष है।

भारत का इतिहास बच्चों के लिए

बच्चों में इतिहास पढ़ने की दिलचस्पी पैदा करने के लिए, सरल भाषा में रोचक ढंग से लिखी गयी, इकरंगे और बहुरंगी चित्रों तथा नक्शों से परिपूर्ण, यह पुस्तक अपने बच्चों के लिए जरूर खरीदिए।

● काउन चार पेजी

● १६४ पृष्ठ

● मूल्य ३ रु०

पब्लिकेशन्स डिवीजन,
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,

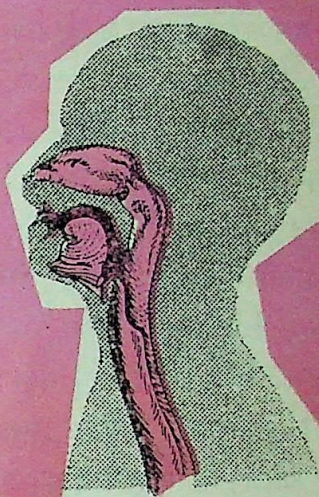
पुराना सचिवालय, दिल्ली-६

डी.ए. ६२/६४

विज्ञान-लो

खर्गैर देवा

सर्दी जुकाम से छुटकाश



रामप्रसाद जैन

कड़ाके की सर्दी के दिन अभी-अभी ही बीते हैं। अभी होली तक सर्दी की बहार और रहेगी। सर्दियों में तो सर्दी से बचते रहना सरल है किन्तु सर्दी के आरम्भ और अन्त में प्रायः ही धोखा हो जाता है। वह सर्दी जब लगती है तब फेफड़ों की सूजन, खाँसी, जुकाम, बुखार तथा न्यूमोनिया आदि बड़ी उलझनें पैदा कर देती है। कभी-कभी तो असावधान रहने पर जीवन-संकट तक उपस्थित हो जाता है। कुछ व्यक्तियों को स्वभावतः ही ये बीमारियाँ सर्दी के मौसम भर परेशान करती हैं। अधिकांश रोगी तो अस्थायी रोक-थाम करके ही सन्तोष कर लेते हैं। कुछ ही ऐसे होते हैं जो इन रोगों को जड़ सहित उखाड़ फेंकने का उद्योग करते हैं।

ब्रोन्काइटिस किन कारणों से

फेफड़ों की सूजन अथवा ब्रोन्काइटिस (Bronchitis) का सीधा सम्बन्ध हमारे श्वसन-तंत्र से है। सर्दी का सहज शिकार भी यह श्वसन-तंत्र ही हो जाता है। जिन स्थलों पर सर्दी-गर्मी के परिवर्तन आकस्मिक

तथा तीव्र होते हैं और जहाँ कारखानों की अधिकता के कारण वायुमण्डल गर्द और धुंध भरा रहता है, वहाँ के निवासियों को यह रोग अधिक परेशान करता है। इनके अतिरिक्त, जहरीले धुएँ के गुब्बार उड़ते हुए डीजल के ट्रक और बसें भी वायु को दूषित करते रहते हैं। ऐसे दूषित वातावरण में रहनेवाले स्वस्थ व्यक्तियों के रक्त में भी ब्रोन्काइटिस के सूक्ष्माणु पाये गये हैं, परन्तु उनकी जीवन-शक्ति इन सूक्ष्माणुओं को बढ़ने नहीं देती।

असन्तुलित और अनियमित आहार भी इस रोग का एक मुख्य कारण है। श्वेतसार और शर्करा की अधिकता दाँतों के लिए हानिकारक है।

ब्रोन्काइटिस अचानक आक्रमण तो अपवाद स्वरूप ही करता है। सामान्यतः तो इस पर निर्भर रहता है कि बाल्यावस्था से ही खाद्य-व्यवस्था कैसी रही है। अतः जिन्हें इन विगत सर्दियों में ब्रोन्काइटिस ने बेहद परेशान किया हो, वे यहाँ लिखित सूचनाओं पर आचरण करते हुए आगामी

फरवरी १९६३

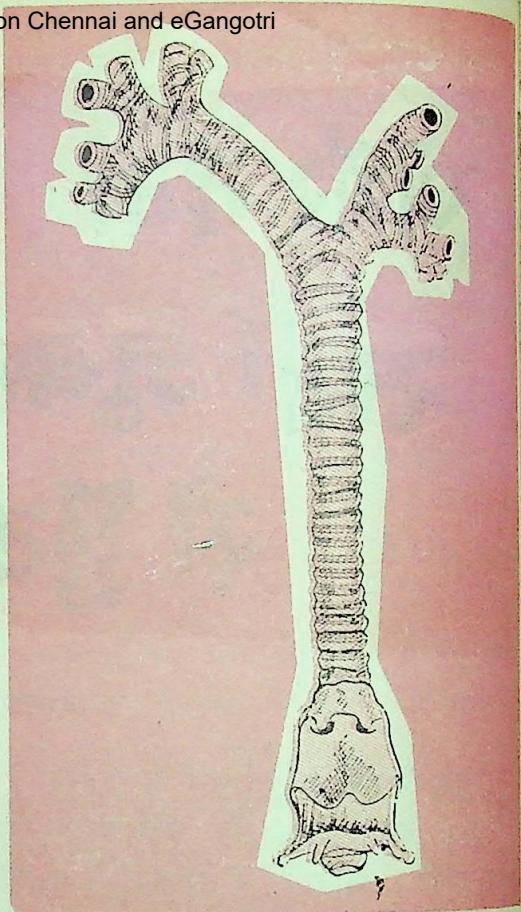
सर्दियों में इन रोगों का मुकाबला बखूबी कर सकेंगे ।

हमारा श्वसन-तंत्र

इस रोग से सहज ही प्रभावित हो जाने वाले श्वसन-तंत्र की रचना समझ लेना उपयोगी रहेगा । हमारे दोनों फेफड़ों में ब्रॉन्कियल नलिकाओं (Bronchial tubes) का पेड़ की शाखाओं सरीखा जाल रहता है जिसके कारण इसे ब्रॉन्कियल वृक्ष (Bronchial tree) का नाम दिया गया है । इन नलिकाओं का यही काम है कि फेफड़ों में स्थित असंख्य वायु-कोशिकाओं (air sacs) के लिए वायु का वहन-प्रतिवहन करती रहें । इन नलिकाओं की भीतरी सतह में श्लेष्म-झिल्ली (mucous membrane) का आवरण रहता है । इस झिल्ली में नन्ही-नन्ही ग्रन्थियाँ होती हैं जो श्लेष्म-द्रव स्रवित करते हुए झिल्ली को तर रखती हैं । ब्रॉन्काइटिस की अवस्था में इस झिल्ली में सूजन आ जाती है और ये ग्रन्थियाँ अधिक दबाव पड़ने के कारण असाधारण रूप से सक्रिय हो उठती हैं । तब अतिरिक्त बनता और बहता हुआ श्लेष्म-द्रव कफ कहलाता है । उसकी रंगत श्वेत से क्रमशः पीली होती जाती है ।

रोग की विभिन्न अवस्थाएँ

रोग का वेग बढ़ने पर इन नलिकाओं का मार्ग संकुचित होता जाता है । फलतः रोगी को श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है । इस अवस्था को एस्थमा (Asthma) कहते हैं । नलिका-संकोचन के अतिरिक्त वायु कोशिकाओं की वायुधारिता भी जब कम हो जाती है तब रोगी की स्थिति विशेष शोचनीय हो जाती है और उसे असाधारण अशक्ति घेर लेती है । उपयुक्त उपचार न होने पर वर्ष-प्रतिवर्ष सर्दियों में यह रोग अपना विस्तार फैलाते-फैलाते



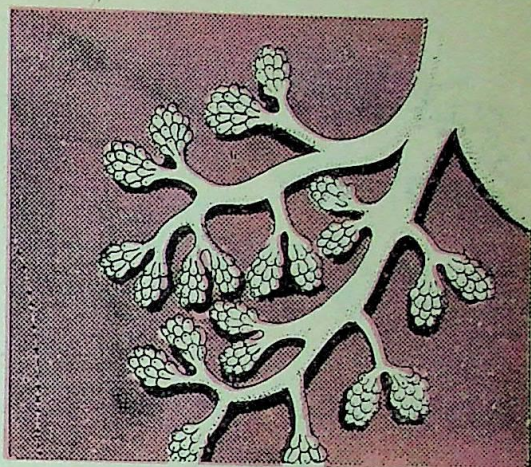
यह है मुख्य श्वसनी (bronchus) जो शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित होकर फेफड़ों में फैली है । हृदय की सीमाओं को भी लांघते लगता है ।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रॉन्काइटिस की प्रारम्भिक अवस्था सरल घरेलू उपचार तथा सन्तुलित आहार से कुछ ही सप्ताहों में दूर की जा सकती है । कठिन अवस्था के रोगी को एक सुसंचालित प्राकृतिक चिकित्सालय का आश्रय लेने से अवश्य लाभ हो सकेगा । जहाँ यह व्यवस्था सम्भव न हो, वहाँ निम्नलिखित सरल उपचार लाभप्रद सिद्ध होगा ।

सुनियोजित उपवास

सुनियोजित उपवास इस प्राकृतिक चिकित्सा का प्रथम चरण है । यदि रोग की अवस्था बढ़ी हुई हो और उपवास के कुशल नियन्त्रण की व्यवस्था सुलभ न हो तो

ऐसा उपवास २-३ दिन से अधिक न चलाना चाहिए। कदाचित्त कार्य की व्यस्तता जैसी विशेष परिस्थितिवश उपवास सम्भव न हो तो ३-४ दिन के लिए भोजन में स्टार्च और प्रोटीनयुक्त पदार्थ न लेने चाहिए। रोग की तीव्रता के अनुसार यह उपवास-क्रम १-२ दिन से लेकर ४ दिन तक चलाया जा सकता है।



श्वसनी को शाखाएँ वायुकोषों सहित उपवास के पश्चात् का आहार

तीनों समय के उपरोक्त आहार की मात्रा उपवास के पश्चात् कम से कम तीन दिन तक रखना आवश्यक है। इन्हीं दिनों एक-एक करके क्रमशः स्टार्च और प्रोटीनयुक्त आहार, रोटी, दाल तथा पनीर आदि बढ़ाने चाहिए। अधिक मात्रा में दूध का उपयोग ब्रोन्काइटिस के रोगी को हानिकारक सिद्ध होगा। संतुलित भोजन का क्रम ६ या ७ महीने तक निभाना अधिक लाभप्रद रहेगा। यह ध्यान देने योग्य है कि मिठाई आदि का प्रयोग न किया जाए और ताजा फलों का पहला क्रम सुबह के नाश्ते में और दोपहर के खाने के बाद बराबर चलता रहे।

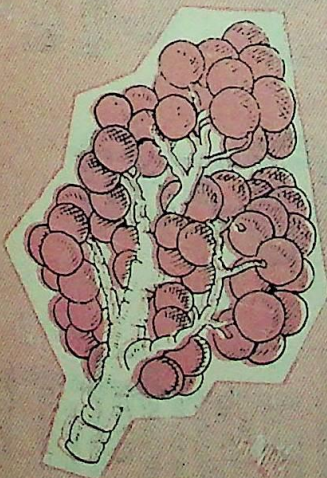
यह २-३ दिन का लघु उपवास और उपवास के बाद फल तथा सलाद का आहार महीने में एक बार तब तक करते रहना चाहिए जब तक श्वसन-तन्त्र हलका और स्वस्थ न हो जाए।

उपरोक्त उपचार प्रारम्भ करनेवाले दिन से गुनगुने पानी से नित्य-प्रति स्नान करना चाहिए। स्नान का पानी कभी अधिक गर्म न होना चाहिए। गुनगुने पानी के अन्त में सुहाते-सुहाते ठण्डे पानी में भीगा मोटा तौलिया निचोड़कर शरीर को रगड़कर

[शेष पृष्ठ ५० पर]

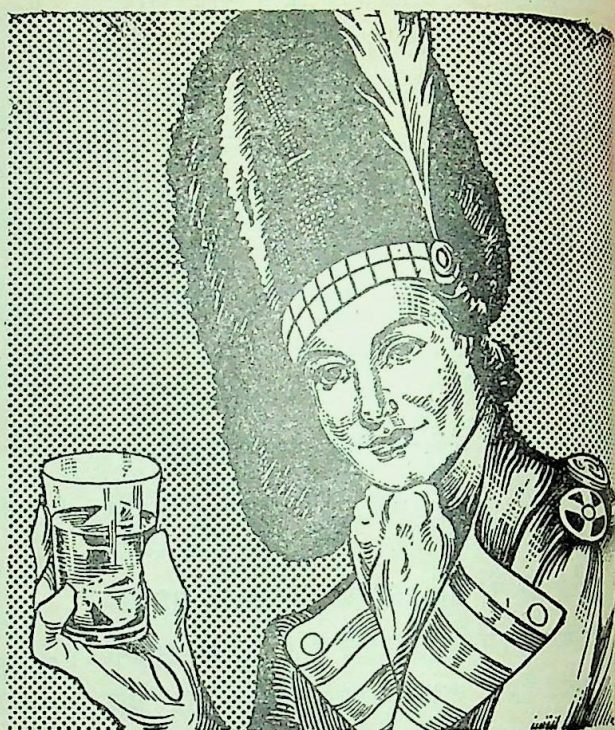
उपवास के अन्तिम दिन पुनः आहार प्रारम्भ करने में जल्दबाजी न करनी चाहिए। प्रथम आहार में ऋतु के अनुकूल फल का रस ही लेना चाहिए। यदि रसीला फल प्राप्य न हो तो सेब जैसे अन्य फल को बारीक कतरकर काम में ले सकते हैं। यह आवश्यक है कि पीने अथवा फल खाने की यह क्रिया बहुत धीमी होनी चाहिए। दूसरे आहार में फलों की उचित मात्रा बढ़ाई जा सकती है। सेब, अनार, आड़ू, अंगूर, पपीता आदि ले सकते हैं किन्तु खाने की क्रिया अत्यन्त धीमी होनी चाहिए। रात के समय केवल हलका सलाद लेना चाहिए।

फेफड़ों में स्थित, श्वसनी को एक शाखा अपनी प्रशाखाओं सहित

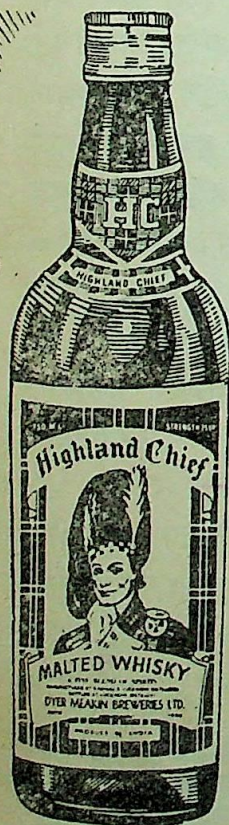


मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
याद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित
जब अतिथि आएं
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए



प्रस्तुत कीजिए



हाईलैंड चीफ माल्टेड व्हिस्की

जार्ज मीकिंग ब्रूअरीज लि० स्थापित १८८०

बोतलों में लखनऊ डिस्टिलरी एवं सोलन ब्रूएरी द्वारा भरा गया

विश्व संसार



तोप, जो आग बुझायेगी !

तेल-उत्पादक क्षेत्रों से मीलों लम्बी पाइप लाइन द्वारा तेल को परिवहन केन्द्र तक पहुँचाया जाता है। उसमें कुछ स्थलों पर ऐसे केन्द्र बनाये जाते हैं जहाँ एक स्टोरेज टैंक और उसके नीचे गहरे विशाल खाली कुएँ रहते हैं। ऐसे एक केन्द्र से कुछ दूर एक तोप को गोलाबारूद से तैयार रखा जाता है। यदि वह टैंक आग पकड़ ले तो परिणाम की भयंकरता का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। अतः उस अवसर पर तोप फौरन दाग दी जाती है। तोप किसी को सहायतार्थ संकेत करने के लिए नहीं, सीधे आग के ऊपर ही दागी जाती है। गोले को ऐसे निशाने पर दागते हैं कि वह कुएँ और टैंक की संयोजक प्लेट को तोड़ देता है। फलतः आग का विस्तार बढ़ने से पहले ही टैंक का सारा तेल नीचे कुएँ में चला जाता है और असहाय आग स्वयं समाप्त हो जाती है।

यह पेड़ पहले हवा में उगता है,

तब भूमि में जमता है

हवाई द्वीप (प्रशान्त महासागर स्थित) में ओहिया लेहुआ (Ohia Lehua) नामक यह वृक्ष एक ऐसे बीज से उत्पन्न होता है जो फर्न के वृक्ष की ऊँची डाल पर टिका होता है। वहीं से अंकुर फूटकर कोमल तन्तु नीचे को लटकते हैं और क्रमशः भूमि तक पहुँचकर जड़ जमाने लगते हैं। धीरे-धीरे बल पाकर ये शाखें और तने का रूप ले लेते हैं। कालान्तर में वह फर्न का वृक्ष समाप्त हो जाता है और यह वृक्ष खड़ा रहता है।

चूहों का सगुन काम कर गया !

अमरीका के ओहायो बन्दरगाह पर एक जहाज माल से खाली किया जा रहा था। कुछ यात्री तथा खलासी अभी जहाज में ही थे कि अन्दर से दो चूहे सरपट भागकर रस्सों द्वारा किनारे पर कूद गए। यह देखकर, तीन वहमी खलासी भी जहाज से उतरकर दूर टहलने लगे। एकाएक जहाज ने एक विस्फोट से साथ आग पकड़ ली और कुछ भी न बचाया जा सका। वे ही तीन खलासी सकुशल बचे थे !

अण्डा या तरबूज ?

इस चित्र से प्रतीत होता है कि यह बालक इस तरबूज का एक बड़ा हिस्सा अपने लिए पाने की लालसा में बैठा है। वास्तविकता कुछ और ही है। ईप्योरनिस (aepyornis) नामक दस फुट ऊँचे शुतुरमुर्ग का यह विशाल अण्डा है। वह शुतुरमुर्ग २०० वर्ष पहले मेडागास्कर में पाया जाता था। आकार में यह मुर्गी के १५० अण्डों के बराबर है !





जहाँ बेयर्ड

गुणाकर मुले

आज तो रेडियो का प्रचार घर-घर हो गया है। बहुत कम लोग होंगे जो रेडियो से परिचित न हों, परन्तु ऐसे लोगों की कमी नहीं जिन्होंने अभी तक टेलीविजन का नाम भी न सुना हो। देखने की तो बात ही बहुत दूर है। हमारे देश में टेलीविजन अभी केवल प्रायोगिक रूप से ही गुजर रहा है। आज आपको उस महान् व्यक्ति का परिचय कराएँ जिसके अथक प्रयासों द्वारा टेलीविजन का एक समय का दुरूह स्वप्न सहज यथार्थ बन सका है।

वह व्यक्ति था जहाँ बेयर्ड। १८८८ में स्काटलैण्ड के हेलेन्सबर्ग नामक गाँव में उसका जन्म हुआ। किशोरावस्था तक उसका अधिकांश समय विद्युत यन्त्रों के विविध प्रयोगों में ही बीता। उसने अपने ही काम-चलाऊ साधनों से एक टेलीफोन तैयार कर लिया था जिस पर अपने पड़ोसी मित्रों से बातचीत करता था। पिता स्काटलैण्ड चर्च के धर्म प्रचारक थे और चाहते थे कि पुत्र जहाँ भी उनका अनुसरण करे परन्तु जहाँ तो ग्लासगो के रायल टेक्निकल कालेज में पढ़ना चाहता था। आखिर जीत उसी की रही और उसे ग्लासगो विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए भेजा गया।

प्रथम महायुद्ध के दिनों में उसे बीच में अध्ययन छोड़ना पड़ा। स्वास्थ्य भी न रहने से उसे नौकरी भी नहीं मिली फलतः उसे स्काटलैण्ड की जलवायु से दूरी कैरिबियन के ट्रिनिडाड द्वीप में रहना पड़ा वहाँ उसने एक जैम फैक्ट्री भी खोली कि जल्द ही उसे समेटकर स्वदेश लौटना पड़ा इंग्लैण्ड में उसने अनेक प्रवृत्तियों में अपना मन लगाना चाहा, किन्तु उसके विज्ञान प्रेम को मस्तिष्क को कहीं भी चैन न मिला। टेलीविजन का स्वप्न उससे पहले कभी का देख जा चुका था किन्तु वास्तविकता की ओर किसी ने भी प्रयास नहीं किया था। वह कल्पना इसके मन में रह-रहकर करवटें रही थी। काश, कुछ ठोस चीज सामने ला जा सके !

जहाँ से वर्षों पहले

१८७५ में एक अमरीकन वैज्ञानिक ने घोषित कर चुका था कि मानव-नेत्र रचना के आधार पर दृश्यपट-टेलीविजन तैयार किया जा सकता है। ध्वनि को नियन्त्रित आवेगों (impulses) प्रसारित किया जा सकता है, किन्तु प्रसारित करने के लिए अत्यन्त लघु तरंगों की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार

अनेक कठिनाइयाँ थीं। १८८३ में एक जर्मन वैज्ञानिक पाल निष्कोव ने सुझाया कि सम्पूर्ण चित्र को एक ही साथ प्रसारित करने की बजाय एक-एक तत्त्व द्वारा एक के बाद एक भागों में प्रसारित किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रसारण-गति ऐसी हो जो दर्शक की दृष्टि चित्र के भागों को एक सम्पूर्ण चित्र के रूप में ग्रहण कर सके। संक्षेप में निष्कोव की सूचित विधि इस प्रकार थी।

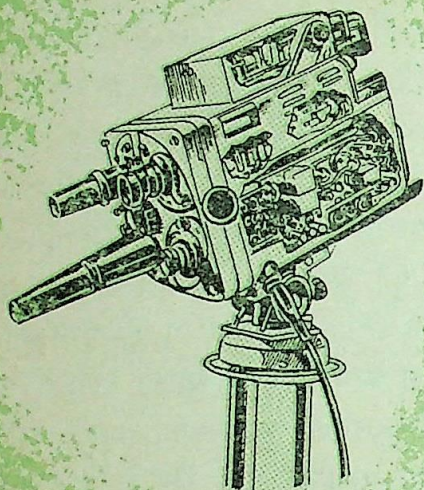
एक ऐसी डिस्क बनाई जाए जिसमें सर्पिल रूप में छिद्र किये गए हों। उस डिस्क को घुमाते हुए सम्पूर्ण चित्र को एक ही आवेग द्वारा संचारित करने पर सफलता मिल सकती है। तदनुसार ही जहाँ बेयर्ड ने गत्ते की डिस्कें बनायीं। जहाँ-तहाँ से विजली का पुराना सामान, मोटर आदि अपनी प्रयोगशाला में ले आया। पेट काट-काटकर पैसे बचाता और प्रयोगों के लिए सामग्री जुटाता रहता। पहली बार १८२४ में एक त्रास का प्रतिबिम्ब प्राप्त करने में बेयर्ड को सफलता मिली। लन्दन जाकर उसने अपने उस प्रयोग का प्रदर्शन भी किया। उस समय तो उसकी सफलता ने उसे काफी प्रशंसा दिलाई किन्तु वह प्रशंसा अल्पजीवी ही रही और शीघ्र ही लोग उसे भूल गए।

अब बेयर्ड को अपने प्रयोगों की गति बढ़ाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ी। सहायता के लिए उसने बहुत हाथ-पाँव मारे किन्तु तत्काल सफलता कहीं नहीं मिली। अतः उसने 'टेलीविजन लिमिटेड' नामक एक कम्पनी खड़ी की जिसमें उसके कुछ मित्रों ने ५०० पौंड के शेयर भी खरीदे। प्रारम्भ में उसने चित्र के पात्र के लिए मानव-सिर का एक लकड़ी का माडल बनाया। उसका उसने नाम भी 'मि. बिल' रख दिया। वह माडल ही उसका

संचा साधन था। २ अक्टूबर, १८२५ को उसे माडल के प्रतिबिम्ब में नाक, आँख सहित चेहरा स्पष्ट दिखाई दिया। इससे उत्साहित होकर अधिक बड़े माडल के लिए वह प्रयोगशाला से बाहर आया और सड़क पर खेलते हुए विलियम टेन्टोन नामक एक लड़के को अन्दर ले गया। उसे बिल के स्थान पर बिठाकर स्वयं प्रतिबिम्ब देखने के लिए उधर को गया तो पर्दे पर कुछ भी नजर न आया। इधर आकर देखा तो पाया कि कौतुहलवश वह लड़का अपनी जगह से हट गया था। उसे पुनः ठीक से बिठाया और पारिश्रमिक के रूप में कुछ पैसे भी दिये। इस बार के प्रयोग में रिसीवर पर लड़के का चेहरा स्पष्ट दिखाई दिया। इस प्रकार विलियम टेन्टोन प्रथम जीवित व्यक्ति था जिसका चेहरा टेलीविजन पर देखा जा सका।

बेयर्ड की इस सफलता की पुष्टि करने के लिए अनेक वैज्ञानिक उसकी प्रयोगशाला में आए। संसार के उस प्रथम टेलीविजन-प्रयोग ने अमरीका को भी आकर्षित किया। 'रेडियो न्यूज' नामक प्रमुख पत्र ने अपने प्रतिनिधियों का एक जाँच-कमीशन भेजा। कमीशन की घोषणा इन शब्दों में आज भी स्मरणीय है : 'बेयर्ड को टेलीविजन-प्रयोगों में पूर्ण सफलता मिली है।'

इस प्रसिद्धि पर उसका एक पुराना मित्र कैप्टन ओलीवर जार्ज हचिन्सन आर्थिक सहायक तथा साभोदार के रूप में सामने आया। जल्द ही बेयर्ड की वह छोटी सी प्रयोगशाला लन्दन के मोटोग्राफ हाउस में प्रतिष्ठापित हो गई। अब अर्थाभाव न रहने से नया उत्साह लेकर बेयर्ड अपने काम में जुट गया। प्रकाश किरणों की अपेक्षा इन्फ्रारेड किरणों के प्रयोग से अन्धकार में भी वस्तुओं का संचारण सम्भव हो गया। १८२८ में



आधुनिक टेलीविजन कैमरा

बेयर्ड को उल्लेखनीय और असाधारण सफलता मिली। उसने अपने माडल का प्रसारण अतलांतिक महासागर के पार, हर्स्टडाले (न्यूयार्क) के स्टेशन पर किया तो वहाँ वह रिसीवर पर सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया गया। इस पर 'न्यूयार्क टाइम्स' ने ६ फरवरी, १९२८ को प्रशस्ति लिखी :

'मार्कोनी द्वारा महासागर-पार 'एस' (S) के अक्षर को संचारित करने की जो महान् सफलता थी उसी कोटि में बेयर्ड की इस सफलता को निस्संकोच रखा जा सकता है।'

उसी वर्ष बेयर्ड को रंग-संचारण में भी सफलता मिली। उसके द्वारा संचारित किया गया मानव का चेहरा पहले पीला सा दिखाई दिया, बाद में उसकी जीभ का गुलाबी रंग भी दिखा और फूलों के गुच्छे के रंग भी बिलकुल स्पष्ट थे।

बेयर्ड के इन सफल प्रयोगों के बावजूद

कबूतर का कलेजा हृदय चिकित्सा में

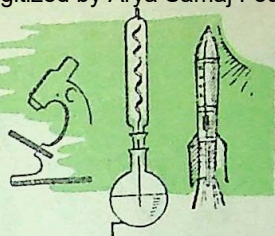
पश्चिम जर्मनी के चिकित्साविदों ने कबूतर के कलेजे से एक ऐसा सीरम तैयार किया है जो हृदय-रोगों में आश्चर्यजनक रूप से लाभकारी सिद्ध हुआ है। कबूतर को दवा मिश्रित दाने खिलाये बेहोश किया जाता है, तत्पश्चात् शल्य-क्रिया द्वारा उसका कलेजा निकाला जाता है।

बी.बी.सी. (B.B.C.) ने व्यावसायिक पैमाने पर प्रोत्साहन नहीं दिया। बेयर्ड को इसकी चिन्ता नहीं थी। वह तो अपने टेलीविजन सेट पर संचारण करता ही रहा। दूसरी ओर अमरीका में भी जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी, अमरीकन टेलीफोन एण्ड टेलीग्राफ कम्पनी तथा पेन्किन्स कम्पनी इस दिशा में अपने अलग प्रयोग करती रहीं। न्यूयार्क और सानफ्रान्सिस्को में दो विशाल टेलीविजन स्टेशन खड़े किये गए, तब कदाचित् १९३० में बी.बी.सी. ने इनका अनुकरण किया और अपने यहाँ भी टेलीविजन स्टेशन स्थापित किया।

जर्मनी और अमरीका में स्वतन्त्र रूप से टेलीविजन-यंत्रों में संशोधन होते रहे। बेयर्ड को यद्यपि जनता और पत्रों ने काफ़ी सम्मान दे रखा था, वैज्ञानिक जगत अत्यन्त उसकी ओर से उदासीन ही था। १९३५ में बड़े विलम्ब से इण्टरनेशनल फैकल्टी ऑफ साइंस ने बेयर्ड को स्वर्ण पदक से सम्मानित किया और एडिनबरा की रायल सोसायटी ने उसे अपना फेलो बनाया।

अवकाश प्राप्त करके बेयर्ड इंग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे एक काटेज में रहने लगे। वहाँ भी जीवन के अन्तिम दिनों तक १९४६ तक कलर-टेलीविजन (रंगीन) का प्रयोग-करता ही रहा। यद्यपि आज प्रारम्भिक उपकरणों का स्थान नये-नये यंत्रों ने ले लिया है, फिर भी टेलीविजन का स्वप्न-जगत से सत्य-जगत में ले आने का श्रेय तो बेयर्ड ही को है। टेलीविजन-जगत में बेयर्ड का नाम अमर रहेगा।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



संश्लिष्ट पदार्थों से निर्मित भवन

संश्लिष्ट पदार्थों द्वारा प्रयोगस्वरूप एक छोटा सा मकान मास्को में बनाया गया है। उक्त मकान के डिजाइनर थूरी दिचोविची ने अल्यूमिनियम, कांच, हलके कंक्रीट तथा प्लास्टिक जैसे पदार्थों से मकान बनाने का यह प्रथम सफल प्रयोग किया है। कल्पना कीजिए, आप इस मकान का स्नानागार उठाकर चाहे जहाँ ले जा सकेंगे क्योंकि उसका वजन केवल १३-१४ किलोग्राम होगा ! इस मकान में दो कमरों का एक प्लैट और तीन कमरों का दूसरा प्लैट है। अनेक प्रकारों में सामान्य मकानों के जैसा होते हुए भी इसकी साज-सज्जा भिन्न है। रोशनदान, फर्श, पानी के तथा गटर के पाइप आदि अधिकतर उपकरण प्लास्टिक के बने हैं। पाँच मंजिल का दूसरा मकान निर्माणाधीन है।

रक्त वाहिनियों की मरम्मत

और नया रसायन

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक ऐसा नया रासायनिक गोंद तैयार किया है जो रक्त वाहिनियों की सिलाई के पश्चात् सिलाई के छिद्रों से रक्त-प्रवाह को रोककर घावों को शीघ्र भरने में सहायता करेगा। पोलियरथेन प्रोपोलीमर्स नामक एक कृत्रिम राल से बना हुआ यह पदार्थ रक्त वाहिनियों के छिद्रों को बन्द करता है। साथ ही, लचीला भी इतना है कि हृदय की धड़कन के साथ संकोचन और विमोचन की क्रियाओं में बाधा नहीं

डालता। अब तक प्रयुक्त होनेवाले विविध पदार्थों में यह क्षमता न होने से प्रायः ही जोड़े गए स्थलों में सूजन आ जाती थी। यह पदार्थ न केवल रक्त वाहिनियों की मरम्मत में बल्कि हृदय तथा मस्तिष्क की भी शल्य चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

साठ पशुओं की डेरी का संचालन

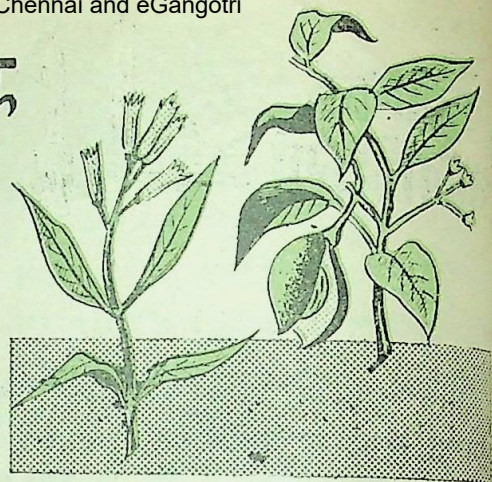
केवल एक व्यक्ति द्वारा

पश्चिम जर्मनी के अल्लिगाव ग्राम के एक किसान फ्रेडरिक बेर्नहार्ड की आश्चर्यजनक उपलब्धि की यह कहानी है। इनके फार्म पर अधिकांश कार्य यन्त्रों द्वारा होने पर भी कुछ समय पूर्व तक पशुओं को चारा-पानी देना, दुहना, गोबर उठाना आदि कार्यों के लिए आदमी रखने पड़ते थे। अब सारा काम स्वयं कर लेने पर भी इन्हें इतना अवकाश मिल जाता है कि अतिथियों का स्वागत कर सकें तथा घूमकर उन्हें अपनी डेरी दिखा सकें। इसका रहस्य उनके द्वारा आविष्कृत एक ऐसी विशाल यान्त्रिक व्यवस्था में है जिसने उनके फार्म को दूर-दूर के किसानों तथा गोपालकों के लिए आकर्षण बना दिया है। वह बृहत् यन्त्र अपने यान्त्रिक हाथों द्वारा मनो वजन के घास-चारे को एक फुंकनी में डालता है। उसी में अनाज की भी आवश्यक मात्रा मिलाकर आग-पानी पर उसे औटाता है। फलतः जो चारा तैयार होता है वह सामान्य की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तथा बगैर दुर्गन्ध दिये अधिक दिनों तक ठहर सकता है। पशुओं का गोबर भी इसी तरह जहाँ भी गिरता है वहीं से ढालू कंक्रीट के मार्ग द्वारा नीचे एक गढ़े में एकत्र हो जाता है और इस प्रकार गौशाला के मार्ग सफाईदार बने रहते हैं।

फरवरी १९६३

पूरब का चुम्बक

मसाले



राजेन्द्रकुमार

पृथ्वी का चुम्बक उसका गुस्त्वाकर्षण है जो प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचता है। यह एक ऐसा सत्य है जो ज्ञात तो सबको है किन्तु स्थूल रूप से नजर किसी को नहीं आता। यह बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि १६-१७वीं शताब्दी के मध्यकाल में पृथ्वी का पूरब, एक चुम्बक स्वरूप ऐसा ही प्रबल आकर्षण रहा था जो पश्चिम के लोगों को अपनी ओर खींचे जा रहा था। पूरब के प्रशान्त महासागरीय द्वीपसमूहों में मलक्का (मलाया-समूह) और ईस्ट इण्डोइज दो ऐसे प्रमुख देश थे जिनके मसाले पश्चिमी लोगों के लिए सबसे बड़े आकर्षण थे। यथार्थ तो यह है कि उनके लिए मसाले प्राप्त करने का एकमात्र साधन भूमि मार्ग ही था। जहाजों में मसाले उन टापुओं से एशिया के पूर्वीय तट तक ही आ पाते थे। शेष यात्रा तो ऊँट के काफिलों द्वारा समूचा एशिया लाँघकर अरबस्तान तक पूरी करनी पड़ती थी। वहीं से यूरोप के देश मसाले प्राप्त करते थे। इस प्रकार भूमि मार्ग का एकाधिपत्य होने के कारण समुद्री मार्गों की खोज के लिए होड़ सी मची हुई थी। कोलम्बस और अन्य न जाने कितने नाविक अपने-अपने देशों से निकल पड़े थे ! उन्हीं में एक

स्पेनिश नाविक फर्डिनन्ड मैगेलन भी था जो अपने देश, स्पेन के सम्राट् द्वारा अपनी ऐतिहासिक यात्रा पर १५१९ में निकल पड़ा था। यद्यपि वह स्वयं यात्रा के दौरान मृत्युवादी आततायियों द्वारा मारा गया था, तथापि तीन वर्ष के बाद जब पाँच में से केवल एक ही जहाज सकुशल स्वदेश लौटा तो उसमें लाए हुए मसाले ने सम्राट् को घाटे में नहीं रहने दिया। शेष चारों जहाजों का नुकसान तथा यात्रा का पूरा खर्चा काटकर भी काफी धन की प्राप्ति हुई थी।

युद्ध आदि की जड़, ये मसाले

मसालों के उन पूर्वीय देशों तक पहुँचने के जल-थलीय मार्गों पर एकाधिपत्य जमाने के लिए समय-समय पर न केवल ऐतिहासिक विश्व-यात्राएँ ही की गयीं, बल्कि विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्ध भी होते रहे। फलस्वरूप भूमध्य सागरीय मार्ग पर कभी किसी का, कभी किसी का अधिकार रहा। १५-१६वीं शताब्दी तक अरबस्तान का प्रभुत्व रहने के पश्चात् इटली के वेनिस बन्दरगाह का सितारा चमका। तत्पश्चात् अफ्रीका का चक्कर लगाते हुए, केप-आफ-गुडहोप होते हुए उस लम्बे मार्ग का द्वार खुल जाने पर पहले हालैण्ड फिर पुर्तगाल के भाग्य का भी

दरवाजा खुल गया। उस एकाधिपत्य की चुनौती देने के लिए ही १६०० में इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ प्रथम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी।

यह सब क्यों ?

उन दिनों खाद्य-संरक्षण (food preservation) के लिए आज के जैसे वैज्ञानिक साधन तो थे नहीं ! आमिष तथा अन्य खाद्य पदार्थ कुछ ही दिन रखे-रखे खराब हो जाते थे, फेंक देने योग्य हो जाते थे। अतः उनके संरक्षण के लिए मसालों की आवश्यकता पड़ती थी। मसालों द्वारा वस्तुओं का स्वाद बढ़ जाता है तथा उस स्वाद की दृष्टि से मसाले अनिवार्य हैं, यह तो आज के युग की बात है। उन दिनों स्वाद जैसी चीज को आज का सा महत्त्व नहीं दिया जाता था।

अन्य प्रयोजन भी

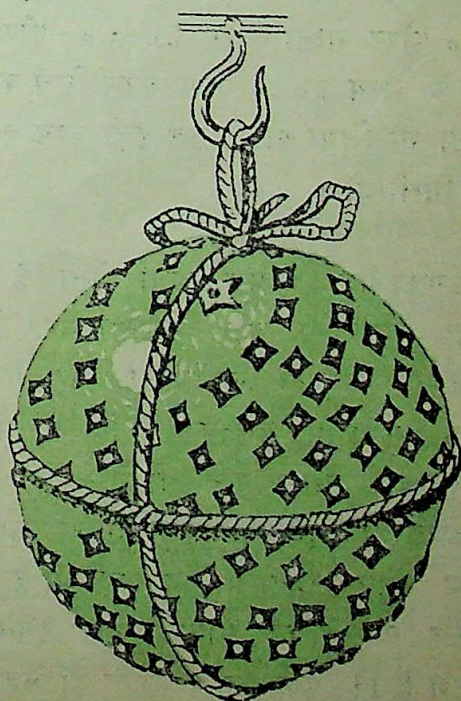
मसालों का महत्त्व स्वाद से अधिक सुगंध के लिए रहा है। इनके प्रयोग से खाद्य वस्तु की कोई दुर्गन्ध नहीं रह पाती। साथ ही, मुँह और श्वास सुगन्धित होकर स्वयं को और निकट बैठनेवालों को भी आह्लादित करते हैं। एलिजाबेथ के समय में धनीमानी और राज-घराने के लोग अपने कमरे में सुगन्धित गेंदें लटकाए रखते थे। वे गेंदें न होकर सन्तरे होते थे जिनमें आकर्षक डिजाइन से लौंगें खोंसी रहती थी। उन्हें पामेण्डर-बाल (Pom-mander Ball) कहते थे। इसी प्रकार कुछेक पूर्वकालीन एशियाई प्रदेशों में भी यह राज्यादेश था कि सम्राट के सम्मुख बात करते समय मुँह में लौंग अवश्य रखी जाए जिससे बात के साथ वात (श्वास) भी सुगन्धित होकर सम्राट तक पहुँचे। कुछ मसालों में सुगन्ध उनमें निहित तेल-भाग के कारण होती है। उदाहरणार्थ लोबान और गुल को मन्दिर-मस्जिद में जलाए रखने का अभिप्राय यही है कि उनकी सुगन्ध

वातावरण को शुद्ध बनाए रखे। इतिहास प्रसिद्ध शीबा की साम्राज्ञी जब सम्राट् सोलोमन से भेंट करने गई थी तब प्रमुख भेंटस्वरूप मसाले ही ऊँटों के काफिले पर लादकर ले गई थी।

कुछ प्रमुख मसाले

इन मसालों के पेड़-पौधों की सर्वप्रथम विशेषता तो यह है कि सभी मसालों के लिए पेड़ का एक ही भाग काम में नहीं आता। किसी की अधखिली कली काम आती है तो किसी का फल; किसी का फूल, तो किसी की केवल पत्तियाँ; किसी के तने का छिलका, तो किसी की जड़ें ही। कालीमिर्च बेल के रूप में उगती है। यह मुख्यतः ईस्ट और वेस्ट इण्डोज, भारत, मलाया, सियाम, तथा मलाबार में उपजायी जाती है। मलाबार की सबसे श्रेष्ठ होती है। इसी परिवार की सफेद मिर्च इसी बेल से प्राप्त की जाती है। अन्तर केवल तोड़ लेने का है। काली मिर्च के दाने पहले उतार लिये जाते हैं और सफेद मिर्च के कुछ समय बाद।

पामेण्डर-बाल





कालीमिर्च की एक डाल

काली मिर्च से प्राचीन ग्रीक-निवासी भली-भाँति परिचित थे। मध्य-युग में मूल्य की दृष्टि से सोने-चाँदी के पश्चात् इसी का स्थान था। वेनिस और जिनेवा ने तो इसी के बल पर अपार धन अर्जित किया था। उन दिनों सोने-चाँदी तथा सिक्कों के अभाव में आयात-कर की वसूली इसी को लेकर की जाती थी। एक ऐतिहासिक उल्लेख के अनुसार सन् ४०८ में रोम से अपनी सेना का घेरा उठाने के लिए गोथिक सम्राट् ने ५००० पौण्ड सोना और ३०००० पौण्ड चाँदी के साथ ३००० पौण्ड कालीमिर्च का खजाना भी लिया था ! तब कहीं रोम को मुक्ति मिली थी।

जायफल-जावित्री

इसका पेड़ २५ फुट ऊँचा होता है। एशिया, अमरीका और मेडागास्कर में अधिकतर उपजाया जानेवाला यह पेड़ मलाया, सुमात्रा, मलक्का आदि में भी प्रचलित है। इसका फल तो जायफल है और अन्दर के गूदे को जकड़े हुए जो लाल रंग का खोल रहता है, वह जावित्री है। जायफल के तेल का औषधीय गुण इतना विलक्षण है कि पूर्वकाल में शरीर या चेहरे

के दाग मिटाने के काम आता था। अवस्था में इसका गूदा एक प्रिय मिष्ठ खाद्य गिना जाता है। जावित्री काफी गर्म होती है। इसे चावलभर एक पान में रखकर खाने पर सिर भन्ना जाता है। इसका भी तेल अत्यन्त गुणकारी है।

दालचीनी

इसका ३० फुट ऊँचा पेड़ मलावा, श्रीलंका, सुमात्रा तथा जमइका में खासतः उगाया जाता है। कुछ अन्य श्रेणी के पेड़ वेस्ट इण्डीज तथा फ्लोरिडा में भी उगा जाते हैं। रेतीली भूमि इसे अधिक अनुकूल रहती है। इसके तने का छिलका ही दालचीनी है। मसालों के अतिरिक्त अनेक दवाओं में भी इसका उपयोग होता है। इसके बीजों को उबालकर तेल निकाला जाता है। इसकी सुगन्ध बड़ी प्रिय होती है।

जायफल-जावित्री



इसे तम्बाकू के मिश्रणों में भी मिलाते हैं।

अदरक

यह हमारे नित्य प्रयोग की प्रिय वस्तु है। आलू, अरबी की तरह यह पौधे की जड़ का भाग है। सूखने पर इसका नाम सोंठ हो जाता है। इसके निराले स्वाद ही के कारण कहा जाता है—बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद? स्वाद के अतिरिक्त इसके औषधीय गुण भी अनेक हैं। कैंसा भी रुका हुआ कफ और हठीली खाँसी हो, पान के साथ चूसने से अथवा शहद के साथ चाटने से तुरन्त आराम मिलता है। खाने के साथ इसे अनेक रूपों में लेते हैं।



लौंग का पौधा

लाल-हरी मिर्च

इसके पौधे अधिक ऊँचाई प्राप्त नहीं करते। कुछ पौधों में तो हरी मिर्च ही सूखने पर लाल हो जाती है और कुछ पौधे अलग ही लाल मिर्च के होते हैं। इसके छिलके और बीज, दोनों में अत्यधिक तेजी होती है। यथार्थ में खाद्य वस्तु का स्वाद बढ़ाने का सर्वाधिक श्रेय मिर्च को ही रहता है। सुगन्धिकारक मसाले इसके बाद आते हैं।

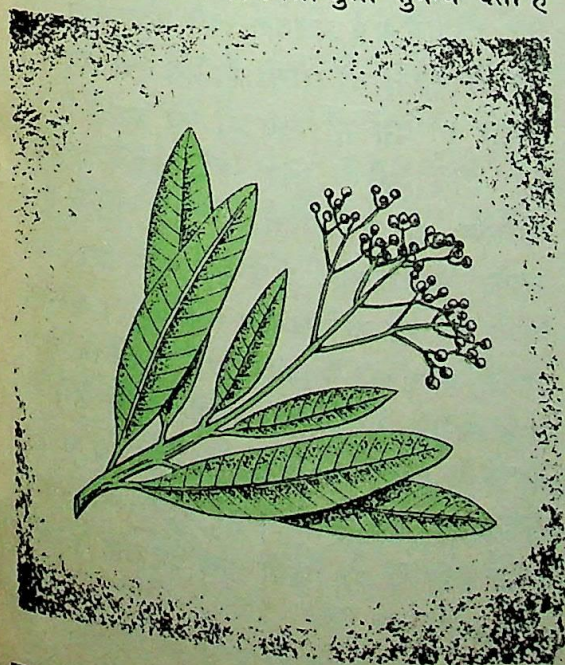
यह है 'एक में अनेक' (Allspice)। कहने को एक किन्तु अनेक मसालों की मिली-जुली सुगन्ध देता है

लौंग

यह बारहमासी पौधा है। दक्षिणी फिलिपाइन, मलक्का तथा ब्राजील इसके मुख्य उत्पादक हैं। इसके पौधे में आकर्षक नन्हें गुलाबी फूल लगते हैं और इसकी पत्ती-पत्ती से मनोरम सुगन्ध आती है। यह पौधे का कली-भाग है। इसे खिलने से पहले ही उतार लेते हैं क्योंकि अधिक पक जाने पर इसकी सुगन्ध क्षीण हो जाती है। खाने के अतिरिक्त अनेक पीड़ाओं में यह रामबाण औषध सिद्ध होती है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। इसका तेल दाँत-डाढ़ के दर्द को दूर करने में सहायक है। कोई भी जहरीला कीड़ा काट जाए तो उस स्थान पर लौंग घिसकर लगा देने से जहर उतर जाता है। स्वाद में इसकी तेजी के कारण इसे भी तम्बाकू के साथ मिलाया जाता है।

एक में अनेक

इस एक ही मसाले में लौंग, इलायची तथा जायफल की स्पष्ट और अन्य मसालों की मन्द सुगन्ध बसी होने से इसे 'एक में अनेक' (Allspice) नाम दिया गया है। इसका वृक्ष ४० फुट तक ऊँचा उगता है।



फरवरी १९६३

यह मध्य अमरीका, वेस्ट इण्डोज, इंग्लैंड तथा जापान में मुख्यतः उपजाया जाता है। इसकी अधपकी टेंटियाँ सूख कर अचार बनाने में तथा सूखा मसाला अनेक व्यंजन बनाने में काम आता है।

इलायची

यह अपने पौधे का फल-भाग है। इलायची बड़ी भी होती है और छोटी भी। छोटी ही अधिक प्रिय मानी जाती है। इसके दानों को स्वर्ग की सौगात (Gift of Paradise) भी कहा गया है। सुमात्रा तथा मेडागास्कर के अतिरिक्त यह हमारे देश के दक्षिण में भी उपजायी जाती है। जैसे मसालों के बिना भोजन फीका, वैसे ही इलायची के बिना पान में जान नहीं होती। इलायची का तेल भी एक प्रभावशाली औषध है। दिल की घबराहट में

छोटी इलायची को पीसकर शहद के साथ देने पर तुरन्त लाभ होता है। बड़ी इलायची बहुधा गरम मसाले बनाने में काम आती है।

हींग

यही एक ऐसा अनोखा मसाला है जो काबुल में पैदा होता है और दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है। फेरुला फिटिडा (*Ferula Foetida*) पेड़ की जड़ों में से यह गोंद के रूप में निकाला जाता है।

घरेलू उपचारों में इसका उपयोग पेट के अफरे में किया जाता है। कुछ समय पहले इसका उपयोग बेहोशी, उन्माद, दिल का दौरा, मृगी आदि के उपचार में भी होता था, क्योंकि इसकी तीव्र गंध तन्त्रिका-तंत्र पर सीधा प्रभाव डालती है।

यह है कुछ गिने-चुने मसालों की मसालेदार कहानी !

बगैर दवा, सर्दी जुकाम से छुटकारा

[पृष्ठ ३६ का शेष]

पोंछना चाहिए। इससे लाभ यह होगा कि शरीर पर अधिक कपड़े पहिने ही पहिने रहने से त्वचा के रोम-छिद्र जो रुंधे रहते हैं, खुल जाएँगे और शरीर को ताजगी तथा रक्त को नवसंचार मिलेगा।

सर्दी से छुटकारा

सोने के कमरे की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि वायु का आवागमन मुक्त होता रहे। साथ ही कमरे का ताप भी स्थिर रहे। विस्तर और तकिये यथासम्भव गुदगुदे और मुलायम हों। सिरहाने शहद की शीशी और गुनगुने नीबू के रस की प्याली भी रखी रहे जो बीच-बीच में थोड़ी मात्रा में ली जा

सके। गर्म-गर्म प्लेनल की पट्टी सीने लिपटी रहेगी तो खाँसी का वेग दबा रहेगा। खाँसी का वेग भी रात ही को बढ़ता है।

सीने और पीठ की हलकी-हलकी मालिश भी बड़ी सहायक सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त दीर्घ-श्वास-प्रश्वास क्रिया का भी उल्लेखनीय महत्त्व है। सम्भव हो तो प्रातः की ताजी वायु में तनिक तेज चाल चलते हुए गहरी लम्बी साँस लेने में भी लाभ होगा। यदि यह सम्भव न हो तो कमरे की खिड़की ही सुबह खोलकर ताजी हवा में यह क्रिया कुछ देर तक करनी चाहिए।

यौन परिवर्तन

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

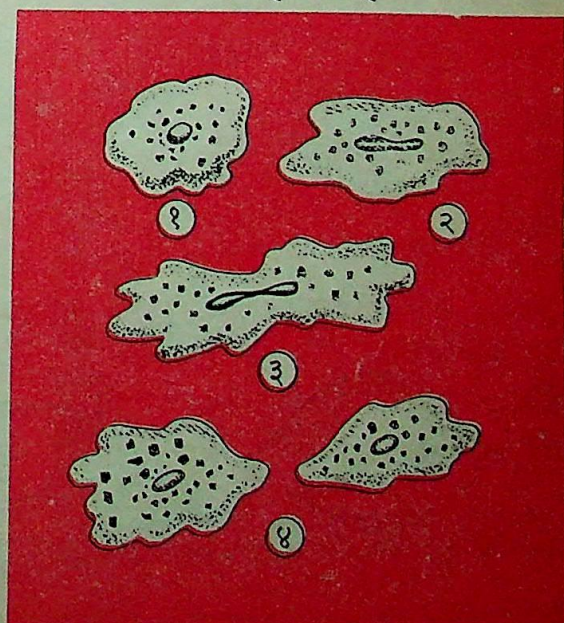
एक वह भी समय था जब लोगों ने एक अंग्रेज हवाई सैनिक मि. राबर्ट में हुए यौन परिवर्तन का समाचार अत्यन्त आश्चर्य से पढ़ा था। उन्होंने पढ़ा था कि कल का मि. राबर्ट आज मिस राबर्टा बन गया है। आज तो यह आश्चर्य का विषय नहीं रह गया। आए दिन ऐसे समाचार मिलते ही रहते हैं। प्रकृति के लिए तो यह एक बड़ी सामान्य बात है। अनेक जीव-जन्तुओं में यौन परिवर्तन एक स्वाभाविक क्रिया मात्र है। हाँ, मनुष्य के लिए यह सर्वथा नया क्षेत्र है। विज्ञान के निरन्तर विकास के फलस्वरूप आज यह सम्भव हो सका है कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार यौन परिवर्तन करा ले। इसकी जटिलता समझने के लिए जीव-जन्तुओं के उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे।

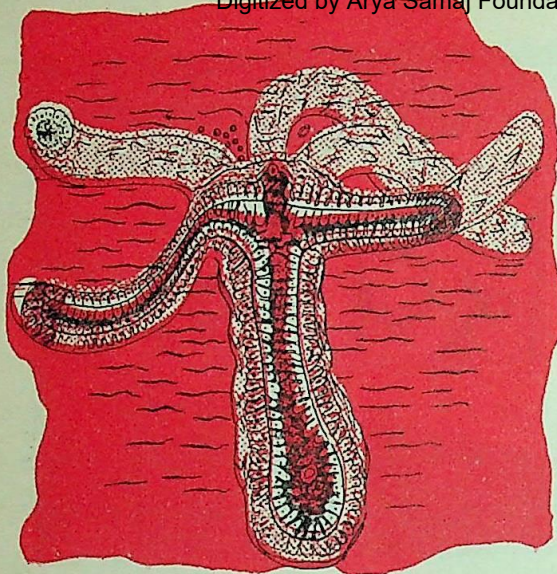
जन्तुओं में लिंग परिवर्तन

अनेक एक कोशीय जीवाणुओं में (जिन्हें सूक्ष्मदर्शी के नीचे ही देखा जा सकता है) कोई लिंग-भेद ही नहीं होता। अमीबा (amoeba) और हाइड्रा (hydra) जैसे जन्तु तो अपने शरीर के किसी भी नन्हें भाग से नया सर्वांग-सम्पूर्ण जीव ही बना लेते हैं। पादपों में कुछ अधिक विकसित जीव

प्रस्फुटित होकर जनन-क्रिया सम्पन्न कर लेते हैं। केंचुए तथा घोंघे आदि उभयलिंगी होते हैं। परजीवियों (parasites) में, यकृत-कृमि (liver-flukes) तथा फीताकृमि (tapeworms) में तो उभयलिंगी विशेषता इस हद तक पायी जाती है, मानो उन्हें सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त और कुछ काम ही नहीं !

आनुवंशिक नियमों के ज्ञान से पूर्व लोगों अमीबा में कोई लिंग-भेद नहीं। स्वजनन द्वारा ये अपने शरीर के किसी भी भाग को पृथक करके एक से अनेक हो जाते हैं



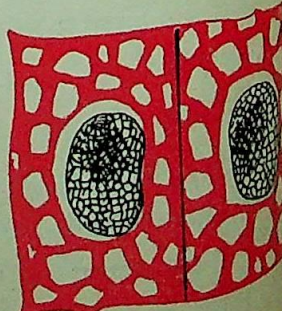
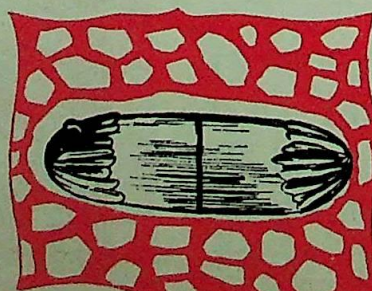
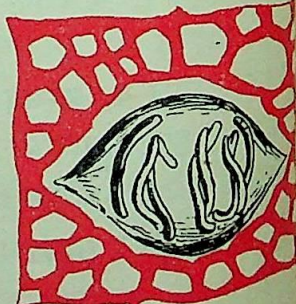
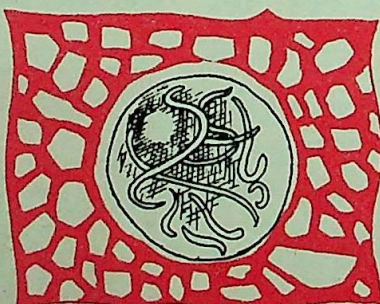
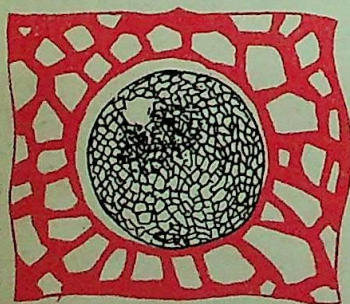


हाइड्रा भी अमीबा की भाँति लिंग-भेद रहित है और अपने किसी भी अंग से नया जीव-निर्माण कर लेता है

का अनुमान था कि भ्रूण का लिंग-भेद माता-पिता के स्वास्थ्य, आयु, भोजन और समागम-काल आदि पर निर्भर है। अब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि लिंग का आधार विशिष्ट गुणसूत्रों (chromosomes) की संख्या और उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर निर्भर है। रासायनिक पदार्थों की

लिंग का आधार गुणसूत्रों (chromosomes) पर है। कोशिका-विभाजन में प्रदर्शित तन्तु जैसी आकृतियाँ ही गुणसूत्र हैं। वंशानुक्रम भी इन्हीं पर आधारित है

सहायता से चेतन किये हुए अण्डे नर-बीज के बगैर भी विकसित कर लिये जाते हैं। कई वर्षों पूर्व जेकिक्स लोयब (Jaques Loeb) नामक एक वैज्ञानिक ने मेंढक आदि के अण्डों से इसी प्रकार पितृहीन सन्तान की रचना की थी। एक बार तो उसे भी विश्वास न हुआ होगा कि उसकी परखनली में उछल रहे शिशु-मेंढक केवल मेंढकी और मैग्नीशियम क्लोराइड की सन्तानें हैं। अब तो प्रयोगों द्वारा यह भी सम्भव हो गया है कि निषेचित अण्डे को एक मादा के शरीर से निकालकर दूसरी मादा के शरीर में प्रवेश कराकर सन्तानोत्पत्ति कराई जा सके तथा अवाहिनी ग्रन्थियों के स्राव भी रवे के रूप में प्राप्त किये जा सकें। उन रवों के द्वारा किसी का भी लिंग-परिवर्तन करना सम्भव है। पुरुषत्व अथवा नारीत्व के लक्षण प्रकट कर देना इन रवों के लिए मामूली बात है। इनकी सहायता से हम एक मोरनी को आकर्षक पंखोंयुक्त मोर में बदल सकते हैं। फोलिक्युलिन (folliculine) द्वारा चूहे में कृत्रिम उत्तेजन



पैदा की जा सकती है और नुर्मा अण्डों से बाहर आते ही बोल सकता है। प्रोलेक्टिन (prolectin) द्वारा एक ऐसे पक्षी को जो घोंसले पर बैठने के लिए तैयार ही न हो, अण्डों को सेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसी के द्वारा एक मेंढक को, जो तालाब के पास फटकना भी नहीं चाहता, सहवास के लिए मादा की खोज में तालाब की ओर दौड़ाया जा सकता है।

देखा गया है कि सीपी (oyster), क्रेपीड्युला प्लाना (*crepidula plana*) स्टारफिश (starfish) तथा घोंघे में लैंगिक परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। एसिनवर्ग नामक एक वैज्ञानिक ने दो मछलियों का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जिन्होंने तीन वर्ष की आयु पर ही सन्तानोत्पत्ति बन्द कर दी और कुछ समय तक नर-लक्षणों का प्रदर्शन करती रहीं। परीक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ कि उक्त मछलियों की आयु के हिसाब से उनके अर्द्धविकसित जनद (gonad) में नर-बीज उपस्थित थे। दूसरे वैज्ञानिक हर्म्ज ने इन मछलियों को विभिन्न अवस्था में यौन परिवर्तन करते देखा है। यौन परिवर्तन के मध्य भी ये मछलियाँ सन्तानोत्पत्ति कर सकती हैं। यौन परिवर्तन पूर्ण हो जाने पर मादायें नर बन जाती हैं और अपनी श्रेणी के सामान्य नरों की अपेक्षा शरीर में बड़ी-चड़ी रहती हैं। यौन परिवर्तन काल में मछली की अवस्था जितनी अधिक होगी उतने ही उनमें नारीत्व के लक्षण स्पष्ट होंगे।

अनुमान है कि शरीर की आन्तरिक क्रियाओं तथा अंग निर्माण की क्रियाओं में अन्तर आ जाने के कारण यौन परिवर्तन हो जाता होगा। यह भी देखा गया है कि नर से परिवर्तित मादा मछलियाँ सदैव मादा सन्तानों को ही जन्म देती हैं। अन्य प्रयोगस्वरूप एक नर-मेंढक के आधे अण्डों

को निषेचित कराया गया और शेष को कुछ समय पश्चात् निषेचित कराने के लिए अलग रख दिया गया। नव्वे घण्टों के बाद देखा गया तो उन अण्डों से पैदा होनेवाले बच्चे सब के सब नर थे। इससे अनुमान लगाया जा सका कि किसी भी प्राणी की स्वाभाविक शरीर क्रिया में हस्तक्षेप करके यौन परिवर्तन कराया जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग किया गया। कुछ अपरिपक्व भ्रूणों को दो-दो की जोड़ी में एक-दूसरे की पूँछ से जोड़ दिया गया। विकसित होने पर देखा गया कि वे सब के सब नर ही नर थे। वैज्ञानिक विट्शी द्वारा किये गए प्रयोग भी इसी की पुष्टि करते हैं।

प्रयोगों के पश्चात् यह निर्धारित किया गया कि प्राणी की स्वाभाविक आन्तरिक क्रिया में हस्तक्षेप करके भ्रूणावस्था के पश्चात् भी प्रौढ़ावस्था में यौन परिवर्तन कराया जा सकता है। इसके लिए दो स्थितियाँ आवश्यक हैं : १. अंग निर्माण क्रिया में परिवर्तन की संभावना तथा मादा में गुणसूत्रों के २४ समान जोड़े होते हैं जबकि नर में २३ समान और १ असमान होता है। इसी असमान जोड़े में एक x (दायाँ) और दूसरा y (बायाँ) होता है



बाह्य एवं गौण जननांगों में भी परिवर्तन की क्षमता। यदि किसी व्यक्ति में बाह्य तथा गौण जननांग भ्रूण की प्रारम्भिक अवस्था में ही किसी भी उद्दीपन के प्रति उदासीन हो जाते हैं तो उस व्यक्ति में पूर्णतः यौन परिवर्तन सम्भव नहीं।

हर्म्ज ने एक मेंढक को नपुंसक करके काफी समय तक केवल वसायुक्त खाद्य पर रखा तो पाया कि उसकी शुक्रवाहिनी का पिछला भाग गर्भाशय के रूप में परिवर्तित हो चला था और दूसरे अंग भी स्त्रीलिंग का रूप धारण करते जा रहे थे। उचित समय बाद उस नर-मेंढक ने पूर्णतः मादा जीवन ही प्रारम्भ कर दिया। वैज्ञानिक चेम्पी (Chempy) ने भी ऐसे प्रयोगस्वरूप एक घोंघे (triton) को उसके शीतकालीन उपवास के बाद वसायुक्त खाद्य पर ही रखा तो उसने भी मादा के ही लक्षण प्रकट किये। इससे स्पष्ट हुआ कि घोंघे में नर-बीज की क्रिया को उपवास के द्वारा रोका जा सकता है तथा उसमें बाह्य जननांगों का विकास भी नहीं होता। उस अवस्था में वह नपुंसकता का प्रदर्शन करता है। उसके अंग को चीरकर अन्दर देखा गया तो ज्ञात हुआ कि वृषण का प्रतिनिधित्व चर्बी की एक हलकी सी पर्त कर रही थी। इसकी पुष्टि करने के लिए एक अन्य घोंघे को इसी प्रकार उपवास काल के बाद खूब वसायुक्त पदार्थ खिलाया गया। फलस्वरूप उसकी पीठ का गहरा नीला रंग गायब हो गया और उसकी जगह मादा का हलका चितकबरा हरा रंग उभर आया।

रिडल नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने फास्ता परिवार की एक चिड़िया का यौन-परिवर्तन करते हुए निरीक्षण किया था। उन्होंने देखा कि चिड़िया को उस प्रौढ़ मादा ने १७ जनवरी से १५ अप्रैल के मध्य ११ अण्डे दिए। तत्पश्चात् छः महीनों में उसने तीन बार नर-सहवास भी किया। उस दम्याँन उसने स्वयं तो अण्डे देना बन्द कर

दिया किन्तु दूसरी के अण्डे सेती रही डेढ़ वर्ष के बाद तो उसकी लैंगिक चेष्टा बिल्कुल बदल गयीं और वह अपने नर साथी से स्त्रियोचित व्यवहार की अपेक्षा रखने लगी! अन्तिम अण्डा देने के २२ मास पश्चात् उसे कुछ वृद्ध और निष्क्रिय चिड़ियों के साथ रखा गया तो वहाँ २१ मास पश्चात् क्षय रोग से उसकी मृत्यु हो गयी। उसके शरीर को चीर कर देखा गया तो ज्ञात हुआ कि दोनों वृषण मौजूद थे और गर्भाशय का भाग यकृत तथा तिल्ली के निकट क्षयग्रस्त पड़ा था। उन तीन वर्षों में उसका वजन और आकृति नर जैसी हो चली थी।

वैज्ञानिक क्र्यू (Crew) ने ऐसी एक मुर्गी का वर्णन किया है जो कई बच्चों की माँ थी और तीन वर्ष की अवस्था में ही क्षयग्रस्त हो चुकी थी। तत्पश्चात् वह नर लक्षणों को अपनाकर दो बच्चों का बाप भी बन चुकी थी।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि मछलियों, मेंढकों आदि में तो अण्डावस्था में ही यौन परिवर्तन हो जाता है। इनका यह यौन परिवर्तन परस्पर दोनों लिंगों में हो सकता है किन्तु पक्षियों में केवल मादा से नर ही होना सम्भव है। स्तनधारियों में भ्रूणावस्था के उपरान्त पूर्ण रूप से यौन परिवर्तन नहीं हो सकता।

एक समय ऐसा भी आ सकता है जब मनुष्य अपने विज्ञान बल से ग्रीन फ्लाई की भाँति स्व-जनन कर सके, नाटिलस की तरह दूर बैठा-बैठा ही गर्भाधान कर-करा सके जिफोफरस मछली की तरह प्रचुरता से लिंग-परिवर्तन कर सके, केंचुए के समान नवोद्गम की क्षमता प्राप्त कर सके, छिपकली की भाँति टूटे हुए अंगों की जगह नये पैदल कर सके और कंगारू की तरह माँ के पेट से बाहर भी पोषण पा सके!

विज्ञान के लिए यह असम्भव नहीं!



**विज्ञान
कलब**



नया माग शुभ लक्षण है और हमारे विद्वान लेखकों के लिए प्रेरणा-स्रोत भी। विज्ञान-लोक तुम्हारा ही तो है ! इसमें क्या-क्या नया चाहते हो, निस्संकोच लिखते रहो।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्यारे बच्चो,

यह है, चतुर्थ वर्ष का प्रथम अंक। इसमें तुम्हें बहुत कुछ नया और रोचक जानने को मिलेगा। क्या और कैसा पसन्द आया, सो तुम्हारे पत्रों से ही मालूम होगा।

पिछले दिसम्बर और जनवरी के अंक तुम सबों ने बड़े चाव से पढ़े हैं और अनेक लेख तुमने बेहद पसन्द किये हैं, यह तुम्हारे ढेर सारे पत्रों से जानने को मिला है। दिसम्बर अंक ही को लो, सौराष्ट्र के तुम्हारे एक मित्र को 'सांप पैदा हो गया' लेख अत्यन्त रोचक लगा है। इसी प्रकार पटना से एक छात्रा-मित्र ने लिखा है कि जनवरी अंक में 'चन्द्रमा पर मानव के चरण' बड़ा तथ्यपूर्ण है। पाठिका का यह भी आग्रह है कि चन्द्र-यात्रा सम्बन्धी होनेवाली दिनोंदिन की प्रगति जब-तब विज्ञान-लोक में अवश्य दी जाती रहे।

चण्डीगढ़ से एक नये पाठक-बन्धु ने दिसम्बर अंक का 'दुर्लभ हंसों का जोड़ा' बहुत पसन्द किया है। 'अंकों का जादूगर-गौस' की जीवनी ने भी उसे प्रभावित किया है। अनेक पाठकों ने जनवरी अंक के दो लेख—'काम बड़े, दर्शन छोटे' और 'नये पुराने, पुराने नये होते हैं' सुपाठ्य और बोधगम्य कहे हैं।

पाठकों का यह सूक्ष्मतर अध्ययन और

प्रतियोगिता संख्या ३५ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

विजयमणि अन्थवाल (२८०) आगरा, चाँदस्वरूप (५३८) आगरा, विजय रस्तोगी (१००८) भाँसी।

द्वितीय पुरस्कार

वेदप्रकाश गुप्ता (२४३) खण्डवा, राजीवकुमार मिश्र (४२३) बलरामपुर, सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा, गोपाल माधव (२३७६) मेरठ, मोहिनी शहानी (७८२७) रांची, धर्मवीरसिंह वर्मा (८२००) आगरा, मायादेवी गुप्ता (८६०४) कानपुर, शिवकुमार कोहली (८८३८) आगरा।

तृतीय पुरस्कार

ओमप्रकाश गुप्ता (२४५) खण्डवा, भानुदर्शन एक्का (८८६) राँची, भुवनेश्वर गुप्ता (६१४) आगरा, गिरीशचन्द्र अग्रवाल, (११५७) आगरा, प्रभात सुमनराय एण्डरू (१२२७) जयपुर, गजेन्द्र-पालसिंह (१६०५) मेरठ, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, चन्द्रभूषण गिरोत्रा (३४७१) बम्बई, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर, सुशीला चौधरी (७२३१) राँची, नरेन्द्र बत्सल (७८२८) आगरा, शोभाराम मलेवार (८०४८) तुमसर, अशोककुमार (८४०४) बम्बई।

विज्ञान क्लब के नये सदस्य



पारसकुमार
(स. सं. ३६२२)



विपिनकुमार
(स. सं. ३६६५)



अब्दुल आशिक
(स. सं. ४१६७)



जेठमल खत्री
(स. सं. ५५३७)



अविनाशचन्द्र
(स. सं. ५७०७)

५५४१ चेताराम (१५) हथनापुर, ४२ रामपदार्थ (१६) सुपौल, ४३ कुमारी सुशीला (१५) रांची, ४४ हरीमोहन (१५) अलीगढ़, ४५ योगानन्द (१२) मंभारपुर, ४६ प्रतापनारायण (१४) लखनऊ, ४७ प्रेमनारायण (१४) लखनऊ, ४८ महावीर प्रसाद (१५) कलकत्ता, ४९ रामस्वरूप (१३) चूरू, ५० आनन्दशंकर (१७) भरौलीकला ५१ नित्यानन्द (१२) जमशेदपुर, ५२ ओमप्रकाश (१३) बघाना, ५३ नरसिंह प्रकाश (१८) राजगढ़, ५४ सर्वेशचन्द्र (१२) कानपुर, ५५ अमरसिंह (१३) तलेन, ५६ कैलाशचन्द्र (१३) तलेन, ५७ विनोद कुमार (१४) गोरखपुर, ५८ गोपीचन्द्र (२२) भण्डारा, ५९ अशोककुमार (१९) विदिशा, ६० ओमप्रकाश आनन्द (१९) बस्ती, ६१ नाथूलाल (१५) अजमेर, ६२ मालती देवी, (११) लखनऊ, ६३ प्रमोदकुमार (१५) पिपरिया, ६४ अरुण कुमार (१३) फिरोजाबाद ६५ विलासचन्द्र (१७) खड़गपुर, ६६ कृष्णचन्द्र (१७) देवरिया, ६७ रसिकलाल (१५) जमशेदपुर, ६८ तुलसीराम (१६) रायपुर, ६९ बाधूमल (१६) कटनी, ७० देवीलाल (१६) अजमेर, ७१ कृष्णलाल (१७) मुरैना, ७२ राजेन्द्रसिंह (१५) वाराणसी, ७३ सन्तोष कुमार (१६) जबलपुर, ७४ राधेश्याम (१७) शिवपुरी, ७५ प्रकाशचन्द्र (१७) शिवपुरी, ७६ राजनारायण प्रसाद, (१४) चम्पारण, ७७ एस. शंकर (१४) जबलपुर, ७८ प्रभात कुमार (१३) दरभंगा, ७९ बल्लभ भाई पटेल (१७) गुंढाला, ८० जनक प्रसाद (१५) जयनगर, ८१ मुरलीमनोहर (१५) मोतीहारी, ८२ शत्रुघ्न (१५) दरभंगा, ८३ सुरेन्द्र कुमार (१३) लखनऊ, ८४ शान्ती देवी (१६) मथुरा, ८५ सूरजप्रकाश (१५) नासिक, ८६ मुहम्मद अनसार हुसेन (१६) इसलामपुर, ८७ मुकेश्वरनाथ (१३) कानपुर, ८८ सत्यनारायण (१५) हिसार, ८९ देवेन्द्रसिंह (९) एटा, ९० राजेन्द्रनाथ (१९) जयपुर, ९१ कृष्णगोपाल (१४) चिड़वा, ९२ प्रहलाद प्रसाद (१६) करगीरोड, ९३ जमुनाप्रसाद (१४) करगीरोड, ९४ अर्जुनप्रसाद (११) फतेहपुर, ९५ मोहनलाल (१६) शाजापुर, ९६ प्रेमधारी प्रसाद (१५) सिसवा बाजार, ९७ महावीरसिंह (१६) देवरिया, ९८ ब्रिजेन्द्रपाल (१३) लखनऊ, ९९ दामोदरलाल (१०) बकानी, ५६०० कु. कान्तीदेवी (१२) बकानी, १ ज्ञानेन्द्र कुमार (१५) रतलाम, २ अवतारकृष्ण (१२) रांची, ३ देवेन्द्र कुमार (१४) भुमनू, ४ कु. सविता (१८) रायपुर, ५ पदमचन्द्र (१५) भिवानी, ६ गोकर्णसिंह (१०) फरसाली, ७ किशनलाल (१८) लाडनू, ८ सत्यनारायण (१६) व्यावर, ९ धनीराम (१५) फरूखाबाद, १० कैलाशचन्द्र (१५) लश्कर, ११ तिलकराज (१६) इलाहाबाद, १२ यज्ञवीरसिंह (१२) पटियाली, १३ शैलेन्द्रकुमार (१५) भागलपुर, १४ अजयकुमार (१४) दिल्ली, १५ छगनलाल (१६) भालपरा, १६ विजयकुमार (१७) भागलपुर, १७ प्रदीपकुमार (१४) जलंधर, १८ अशोककुमार (१४) पटना १९ सुरेन्द्रप्रकाश (१७) चन्डीगढ़, २० नियामतउल्ला (१३) आगरा, २१ मगनलाल (१६) रायपुर, २२ महेन्द्रस्वरूप (१९) भिवानी, २३ सुरेन्द्र कुमार (१८) भिवानी, २४ विनोदशर्मा (१७) बनारस, २५ देवेन्द्रप्रसाद (१६) सिवनी, २६ राम-



गुलाम
(स. सं. ५५४१)



राजकुमार
(स. सं. ५५४१)



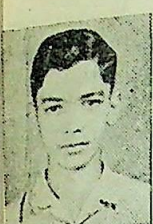
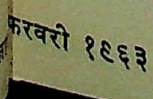
सतीश
(स. सं. ५५४१)



सन्तोष
(स. सं. ५५४१)

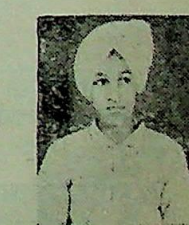


सी. वि.
(स. सं. ५५४१)

लाम अ
सं. १४भगवानदास
(स. सं. ६२१३)राजकु
सं. ६४हरीशकुमार
(स. सं. ६२४१)सतीश
सं. ६५अनुपमराय
(स. सं. ६२५७)सन्तोष
सं. ६६विजयकुमार
(स. सं. ६६६८)सतीश
सं. ६७प्रभात
(स. सं. ६७५३)वि
सं. ६८

करवरी १९६३

कुमार, दिल्ली, २७ विनोदकुमार (१३) आगरा, २८ श्याम-
सुन्दर (१५) अमृतसर, २९ कल्याणचन्द (१७) श्योपुरकलां,
३० प्रकाशकुमार (१४) पटना, ३१ अमरनाथ प्रसाद (१५)
साहिबगंज, ३२ कमलनारंग (१३) इलाहाबाद ३३ अरविन्द-
नारंग (११) इलाहाबाद, ३४ हनुमान प्रसाद (११) रांची, ३५
राजेन्द्रसिंह (१५) रामनगर, ३६ विद्यापति (१५) गया, ३७
नरेन्द्रमोहन (१४) दिल्ली, ३८ विनयकुमार (१४) साहिबगंज,
३९ अशोककुमार (१२) वाराणसी, ४० सुराजकुमार (१५)
सिवनी, ४१ प्रेमकुमार (१४) चाईबासा, ४२ हरीप्रकाश (११)
सुलतानपुर, ४३ उपेन्द्रकुमार (१५) इलाहाबाद, ४४ नारायण
(१७) रायगढ़, ४५ राजशरण (८) गया, ४६ मायारानी
(१५) लश्कर, ४७ उमाकान्त (१२) दरभंगा, ४८ राजनलाल
(१९) गढ़उमराव, ४९ मन्मूलाल (१५) बालोद, ५० सुनील
(१२) नैनीताल, ५१ सुरेन्द्र प्रसाद (१८) छपरा, ५२ निर्मल-
कुमार (१६) विदिशा, ५३ रमेशकुमार (१६) लुधियाना, ५४
हरीप्रसाद (१६) पिपरिया, ५५ कु. पूनम (६) भागलपुर, ५६
जगन्नाथप्रसाद (१४) दरभंगा, ५७ सतीशचन्द्र (१३) परी-
क्षितगढ़, ५८ राजेन्द्र प्रसाद (१५) लालापुर भदेर, ५९ नलिन-
कान्त (११) दिल्ली, ६० गोपाल (१५) लोहरदगा,
६१ घनश्यामसिंह (१५) भांसी, ६२ गोपीचन्द्र (१५) गुलाब-
पुरा, ६३ पटेल भरतकुमार कुवेर भाई (१६) विरमगाँव, ६४
इन्दुरानी (१६) दिल्ली, ६५ मृत्युंजयसिंह (१४) खमरिया,
६६ कृष्णकुमार (१३) पिथौरागढ़, ६७ अनुपमचन्द्र (९) दिल्ली,
६८ हंसराज (१४) लुधियाना, ६९ जवाहर (१५) शारदाग्राम,
७० सौरीन्द्रनाथ (१५) इलाहाबाद, ७१ नवलकिशोर (१५)
कलकत्ता, ७२ आत्माराम (१३) कलकत्ता, ७३ कुमारी प्रतिमा
(१६) कलकत्ता, ७४ सुमनकुमार (१६) कलकत्ता, ७५ किशोर-
लक्ष्मीदास (१५) शारदाग्राम, ७६, शुद्धोदन (१६) पडरौना,
७७ नथमल प्रसाद (१३) भरिया, ७८ राजेन्द्रप्रसाद (१३)
खडिया, ७९ कमलकिशोर (१४) लोहारदगा, ८० श्यामनारायण
(१४) भरिया, ८१ नृपतकुमार (१६) सुजानगढ़, ८२ उमेशचन्द्र
(१४) ललितपुर, ८३ अनिलकुमार (१५) भागलपुर, ८४ अखिले-
श्वर कुमार (१३) आँगारी, ८५ जगदीश नारायण (१६) नरायना,
८६ उमेश्वर प्रसाद (१३) हरौली, ८७ विजयकुमार (१४) नई
दिल्ली, ८८ जगदीशचन्द्र (१६) जमशेदपुर, ८९ विनोदकुमार
(१४) गया, ९० शब्बीर हुसेन (१४) महु, ९१ रामजी (१४)
दतिया, ९२ भँवरलाल (१६) नरायना, ९३ वैकटरमण (१५)
सक्ती, ९४ रमेशचन्द्र (१६) मथुरा, ९५ मोतीलाल (१६)
सुपौल, ९६ महानन्द (१५) रतनपुर, ९७ पुरुषोत्तम (१५) जोध-
पुर, ९८ इन्द्रमोहनसिंह (१२) इटारसी, ९९ कुमारी उर्मिला
(१०) इटारसी, ५७०० अजीतसिंह (१३) इटारसी, १ नरेन्द्र-
दत्त (१४) भोपाल, २ प्रेमकुमार (१४) उज्जैन, ३ आनन्द
बिहारी (१४) मथुरा, ४ शशिरंजन (१४) इलाहाबाद, ५
कुमारी पदमा (९) लश्कर, ६ सानन्द नारायणसिंह (१६)
देनावागछाला, ७ अविनाशचन्द्र (१७) दिल्ली, ८ प्रेमकुमार
(१५) रांची, ९ बद्रीप्रसाद (१४) व्यावर, १० बी. कृष्ण (१३)
जमशेदपुर, ११ रामप्रसाद (१५) कस्तूरबा नगर, १२ दिलप्रसाद
(१५) डिगबोई, १३ विनयकुमार (१५) बिलासपुर, १४
मुरारीलाल (१३) धौलपुर, १५ हर्षदराय (१६) करणपुरा ।

महावीरशरणदास
(स. सं. ६७८४)गौरीशंकर
(स. सं. ७०६०)सरस्वती दयासिंह
(स. सं. ७१७३)कुलविन्दरसिंह
(स. सं. ७३०७)आद्याप्रसाद
(स. सं. ७४३२)



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तक
२० रु. की पुस्तक
१५ रु. की पुस्तक

अन्तिम तिथि : २८ फरवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग ले का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिख पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३७ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर २८ फरवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३७ के प्रश्न

१. सामान्यतः विद्युतवाहक (conductor) का प्रतिरोधन (resistance) ताप के बढ़ने के साथ बढ़ता है किन्तु उसे क्या कहेंगे जिसका प्रतिरोधन उलटे घटता हो ? यह विशेषता किस धातु से निर्मित विद्युतवाहक में पायी जाती है ?

२. वनस्पतियों के लिए मैलिक हाइड्रोजाइड की उपयोगिता क्या है ?

३. कौन सा पेड़ अधिकतम वेग से बढ़ता है ?

४. इवान पावलोव (Ivan Pavlov) किस लिए प्रसिद्ध हैं ?

५. किस जाति के कुत्ते की जीभ काली होती है ?

६. उत्तरी नक्षत्र समूह (Cassiopea) की जो किसने की ?

७. वह कौन सा शहर है जो आषा-आषा खण्डों (continents) पर बसा हुआ है ?

८. कुत्ते से आतंकित बिल्ली के रोएँ कि शारीरिक-क्रिया के फलस्वरूप खड़े हो जाते हैं ?

९. बेस-बाल (Baseball) के मैच में आन्त्रित टीम तथा आमन्त्रण देनेवाली टीम में पहले कौन खेलेगा इसका निर्णय किस प्रकार किया जाता है ?

१०. पेन्सिल का आविष्कार किसने और कब ?

प्रतियोगिता संख्या ३५ के प्रश्नों के उत्तर

१. ब्रिटिश सर्जन, जासेफ लिस्टर ने, सन् १८६५ में।

२. श्रीलंका तथा उष्णकटिबन्ध के अन्य कुछेक प्रदेशों में उगनेवाले विशालतम बाँस (घास-परिवार) १२० फुट तक की ऊँचाई प्राप्त करते हैं।

३. केम्ब्रिज के डा. मेक्स फर्डिनन्ड पेरेज तथा डा. ज्वाहन काउड्रे केन्द्र्य को प्रोटीन पर संशोधन कार्य करने के उपलक्ष्य में संयुक्त रूप से दिया गया है।

४. दो, तीन या पाँच सवारियों के लिए एक ही बाइसिकल पर जितने सवार, उतनी ही सीटें, उतने ही हैंडिल और उतने ही पैडल-सेट होते हैं। स्टियरिंग के लिए केवल आगे का हैंडिल घूमता रहता है, बाकी सब स्थिर (fixed) रहते हैं। यह बाइसिकल ओलम्पिक खेलों में दौड़ में काम आती है।

५. साथी मधुमक्खियों को संकेत द्वारा स्थल का पता बताती है जहाँ से स्वयं मधु चूसकर लायी है और जहाँ उन्हें भी मिल सकता है।

६. अमेजन के मुहाने पर, जहाँ वह अतलांति महासागर से मिलती है।

७. भवन-निर्माण सम्बन्धी प्राचीन स्थापत्य की प्रणालियों के नाम हैं।

८. आर्मरप्लेट-शीशे की प्लेट; यह एक हाथ का वजन सहन कर लेगी।

९. प्रो. एस. पी. लैंगले (S.P. Langley) द्वारा आविष्कृत अतिसूक्ष्म ताप को मापने का यंत्र है। इसके द्वारा १°F के पाँच करोड़वें भाग तक का ताप मापा जा सकता है।

१०. मिट्टी की पतें उलट-पुलटकर अधिक छिद्रमयी बनाते हैं जिससे आवश्यक वायु और फलतः अधिक उर्वर बन सके।

उत्तर रेलवे

सूचना

१. वर्तमान संकटकालीन परिस्थिति के कारण निम्नांकित रिआयतें दिनांक १ जनवरी १९६३ से बन्द कर दी जाएँगी :

आई. आर. सी. ए. कोचिंग

टैरिफ नं. १८ के नियम नं. ४०१

जिन पर यह सूचना लागू होगी

के अनुबन्ध की क्रम संख्या

- | | | |
|-------|------|---|
| १, २. | | भारतीय एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं तथा समस्त खेल-कूद, एथलेटिक स्पोर्ट्स आदि । |
| ३. | | पोलो की टीमें । |
| ४. | | गणतन्त्र-समारोह तथा आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित होनेवाले, मान्य व्यावसायिक मनोरंजन-दल, समूह तथा कलाकार आदि । |
| ७. | | शैक्षणिक प्रयोजन के लिए यात्रार्थी भारतीय एवं विदेशी छात्रगण । |
| ८. | | भारत में विद्यार्जन करते हुए विदेशी छात्रगण । |
| ९. | | न्यायशास्त्र के शिक्षार्थी छात्रगण । |
| १८. | | सामुदायिक योजनाओं में भाग लेनेवाले अवैतनिक कार्य-कर्तागण, विद्यार्थियों सहित । |
| १९. | | सर्विस सिविल इण्टरनेशनल के स्वयंसेवकगण । |
| २०. | | राष्ट्र की प्रसार-सेवाओं में अवैतनिक सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा उनके दल । |
| २१. | | किसानों एवं औद्योगिक श्रमिकों के दल (प्रत्येक दल कम से कम २० व्यक्तियों का) । |

जनवरी १९६३

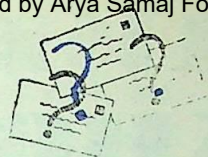
२२. राज्य विधान सभा के सदस्यों के दल (प्रत्येक दल के से कम २० सदस्यों का) ।
२४. प्राइमरी, सैकण्डरी, हाईस्कूल तथा हायर सैकण्डरी स्कूलों के अध्यापक एवं मान्य अनाथालयों के शिक्षक ।
२५. कामनवेल्थ पार्लमेण्टरी एसोसिएशन की समस्त शाखाओं के सदस्य और उनके परिवार ।
२६. शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व की अति भारतीय संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति तथा समय-समय पर रेलवे बोर्ड द्वारा जानेवाली एतदर्थ (एडहॉक) रिश्नायतें ।
२७. मान्यता प्राप्त अजायबघरों (पशुसंग्रहालयों) के लिए भेजे जानेवाले जानवर तथा परिन्दे ।
२८. प्रदर्शनी के लिए भेजे जानेवाले कुत्ते, तीतर, बटेर, मुर्गियाँ तथा अन्य परिन्दे ।
५०४. शैक्षणिक यात्रा पर निकले हुए छात्रों की स्पेशल ट्रेनें ।
५०५. केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा आयोजित किसानों के लिए स्पेशल ट्रेनें ।
५०६. यात्रा पर निकले हुए औद्योगिक श्रमिकों की स्पेशल ट्रेनें ।

२. उपरोक्त यात्राएँ यदि १ जनवरी १९६३ से पूर्व ही प्रारम्भ की गई हों तो ऊपर वर्णित रिश्नायतें उन्हें दी जा सकेंगी । १ जनवरी १९६३ के दिन तथा तदनन्तर प्रारम्भ होनेवाली उपरोक्त श्रेणियों की यात्राओं के लिए रिश्नायतें प्राप्य न होंगी ।

३. क्रिसमस की छुट्टियों के लिए रिश्नायती वापसी टिकट १५ दिसम्बर १९६२ से ३१ दिसम्बर १९६२ के मध्य की जानेवाली यात्रा के लिए दिए जाएँगे; १ जनवरी १९६३ को तथा तदनन्तर प्रारम्भ होनेवाली यात्राओं के लिए नहीं ।

चीफ कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट

आपके प्रश्न



सुधीरकुमार गर्ग (८) कासगंज

प्रश्न—सेन्टीग्रेड पैमाने का आविष्कार किसने किया और कब ?

उत्तर—स्वीडिश वैज्ञानिक आन्द्रे सेलेसियस (Celsius Andre) ने १७४२ में।

जयप्रकाश साहा (७५१६)

प्रश्न—केथेटोमीटर क्या है, इसका उपयोग क्या है ?

उत्तर—दो निकटस्थ बिन्दुओं के मध्य का लेवल तथा ऊँचाई के अति सूक्ष्म अन्तर मापने का यन्त्र है। विशेषतः मर्करी-लेवल मापने के काम आता है।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—वह कौन सा पक्षी है जो पानी की सतह पर तैरने के बजाय पाँवों से चलता है ?

उत्तर—ब्राजील में पाया जानेवाला जकाना, बगुले जैसा पक्षी है। इसके पंजे विशेषतः लम्बे होते हैं। वहाँ की भीलों में उगते हुए जल-कमल के विशाल गोल पत्तों पर पाँव टिकाकर, सरकाता हुआ यह एक तरह से पानी पर चल ही लेता है।

रमणीकलाल मोनाणी (८७२५) बांठवा

प्रश्न—यदि किसी बालक को जन्म से ही ऐसे स्थान पर रखा जाए जहाँ उसे पोषण तो बराबर मिलता रहे किन्तु मनुष्यों के सम्पर्क से दूर रहे, मनुष्य की बोली भी सुनायी न पड़े, तो बड़ा होने पर मनुष्य की भाषा वह तथा उसकी बोली मनुष्य समझ सकेगा क्या ?

उत्तर—मनुष्य कदाचित् उसकी चेष्टाएँ समझ सके किन्तु उस बालक के पल्ले कुछ भी न पड़ेगा।

आलोक भट्टाचार्य (८७००) कानपुर

प्रश्न—रेडियो दूरदर्शी क्या है ? इसका आविष्कार किसने और कब किया ?

उत्तर—अन्तरिक्ष से निरन्तर आती हुई रेडियो रश्मियों के निरीक्षण के लिए आविष्कृत दूरदर्शी है। अमरीकन वैज्ञानिक ग्रेटे रबर ने १९३७ में इसका आविष्कार किया था।

फरवरी १९६३

प्रश्न—शरीर की त्वचा पर दाद क्यों हो जाती है, इसका उपाय क्या है ?

उत्तर—परजीवी फन्जाई (parasitic fungi) के सूक्ष्माणु तथा ट्राइकोफाइटन (Trichophyton) के जीवाणु इस चर्मरोग के मुख्य कारण हैं। प्रायः यह गन्दी जगहों पर नंगे पाँव फिरने से, गीले-सीले वस्त्र पहिनने से तथा जिन अंगों की नित्य सफाई ठीक से न हो पाती हो और उनमें नमी रह जाए वहाँ इनका सहज आक्रमण हो जाता है। धोवी की धुलाई भी इस संक्रामक रोग को ले आती है। इसे दूर करने के लिए कीटाणुनाशक साबुन से सफाई, कीटाणुनाशक मलहम आदि का प्रयोग तथा रोग की तीव्रता बढ़ने पर एक्स किरणों का भी सहारा लेना चाहिए।

शत्रुघ्न रावत (५५८२) मधुबनी

प्रश्न—सूर्य का क्रोमोस्फियर किस प्रकार निर्धारित किया गया ?

उत्तर—सर्वप्रथम सन् १७०६ में कैप्टन स्टेन्यन ने पूर्ण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर इसका अवलोकन किया था। सूर्य की ग्रहण से मुक्ति होते-होते उसके पश्चिमी पार्श्व पर केवल ६-७ सेकण्ड के लिए एक तीखी लाल रेखा दिखाई पड़ी थी। अब भी यह विशेषतः तो पूर्ण सूर्य-ग्रहण के अवसर पर तथा सामान्यतः वर्णक्रमदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। रायल सोसाइटी ऑफ लन्दन के विलियम शारपे के परामर्श से जे. नार्मन लाक्यर ने १८६८ में उक्त सतहों का रंग लाल, नीला और पीला होने से क्रोमोस्फियर नाम दिया था।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२६१) ग्वालियर

प्रश्न—क्या कारण है कि वेनिस शहर में इतनी अधिक नहरें ही नहरें हैं ?

उत्तर—यह शहर १०० से भी अधिक नन्हे टापुओं को जोड़कर बसाया हुआ है।

आदित्यकुमार भट्टाचार्य (८६२०) जबलपुर

प्रश्न—वजनदार वस्तु को ढकेलकर उसमें वेग पैदा करना सरल है किन्तु उसे रोकना कठिन। क्यों ?

उत्तर—एक बार वेग में आ जाने पर उसमें संवेग (momentum) जो उत्पन्न हो जाता है !

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

Book II.....Price : Re.1*00

Book III.....Price : Re.1*20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

रामअवध चौरसिया (६४४०) गोरखपुर

प्रश्न—विज्ञान-लोक जून '६२ के अंक में मक्का की पंदावार बुशल के माप में दी गई है। इसकी सरल माप दीजिए।

उत्तर—अमरीकन बुशल की माप २१५१ घन इंच की है।

इन्द्रकृष्ण भट्ट (५०६२) आगरा

प्रश्न—जीरो वाट (zero watt) के बल्ब अपारदर्शक काँच के ही क्यों बनाये जाते हैं?

उत्तर—इस बल्ब का मुख्य प्रयोजन सोने के कमरे में रात भर जलते रहने का है। काँच अपारदर्शक होने से सोनेवाले की आँख को रोशनी की चमक (glare) नहीं लगती।

शिमभूशरण मेहरा (१५०४) आगरा

प्रश्न—सुना है, एक केकड़ा पेड़ों पर भी बसता है। वह कौन है?

उत्तर—हिन्द तथा प्रशान्त महासागर में, विशेषतः श्रीलंका के निकट ऐसे केकड़े मिल जाएँगे जो ऊँचे नारियल के पेड़ों पर बसेरा करते हैं और नारियल ही खाते हैं। उन्हें कोकोनट-क्रैब (coco-nut crab) कहते हैं।

विजयकान्तसिंह (८००४) रामगढ़

प्रश्न—दूध के फटने का क्या कारण है?

उत्तर—जो सूक्ष्माणु दूध को जमाकर दही कर देते हैं, उसी प्रकार के सूक्ष्माणु इसके लिए भी उत्तरदायी हैं। वातावरण में छाये तो रहते ही हैं, गन्धे वर्तन, बाहरी वस्तु का सम्पर्क अथवा दूध देने वाले पशु की ही कोई चूटि का मौका देखते ही ये सूक्ष्माणु अपना करिश्मा दिखा देते हैं।

कमलेशकुमारी (४६४) मुरादनगर

प्रश्न—लम्ब-माप की मेट्रिक प्रणाली का प्रारम्भ कब, किसने किया।

उत्तर—१७९१ में फ्रेन्च एकेडमी आफ साइन्स ने।

विजयकृष्ण मित्रा (१०३७) सतना

प्रश्न—स्टीमबोट का आविष्कार किसने किया और कब?

उत्तर—फुल्टन (Fulton) ने १८०७ में।

जयप्रकाश श्रीवास्तव (२८५) सौनौलिया

प्रश्न—कोलतार से भी कोई खाद्योपयोगी वस्तु प्राप्त करने की आशा रखी जा सकती है?

उत्तर—क्यों नहीं? हर एक को प्रिय, अत्यन्त मीठी, रोकरीन इसी से तो प्राप्त होती है।

अशोककुमार (१४६७) जमशेदपुर

प्रश्न—पेड़-पौधों के बीजों को बिखरना और दूर-दूर तक पवन तथा पक्षियों द्वारा उड़े-उड़े फिरना क्यों आवश्यक है। वहीं गिरकर भी तो भूमि से पुनः उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर—असंख्य बीज एक ही स्थल पर ढेर हो रहेंगे तो कितने ही नष्ट हो जाएँगे, और कितने ही उपजेंगे तो पेड़-पौधे इतने घने हो जायेंगे कि उनमें से भी अनेक को नष्ट हो जाना पड़ेगा। फिर, किसी भौगोलिक दुर्घटना-स्वरूप यदि वहाँ की भूमि ही नष्ट हो जाए तब तो उन पैतृक पौधों के वंश ही नष्ट हो जाएँगे! बीजों की दूर-दूर यात्रा द्वारा उनकी उत्पत्ति सहज तथा सुरक्षित रहती है।

वेदप्रकाश गुप्ता (२४३) खंडवा

प्रश्न—ऐसा कौनसा पक्षी है जो खड़े होकर अण्डे सेता है, जबकि प्रायः ही पक्षी को बैठकर सेना पड़ता है?

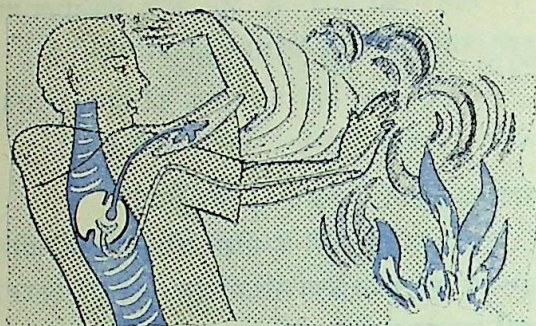
उत्तर—पेन्गुइन पक्षी खड़े होकर ही अण्डे सेता है।

सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर

प्रश्न—ल्यूटाइन बेल (Lutine Bell) से क्या तात्पर्य है?

उत्तर—यह 'ल्यूटाइन' नामक एक जहाज का घण्टा है जो आजकल लायड्ज इन्डोरेन्स के केन्द्रीय कार्यालय में टंगा रहता है। उक्त जहाज १७९० में हालैण्ड के निकट डूब गया था। तत्पश्चात् उसके अवशेष समुद्र-तल से प्राप्त करके उनमें से यह घण्टा कार्यालय में रखा गया है। किसी जहाज को यदि आने में विलम्ब हो तो अच्छे समाचार प्राप्त होने पर इसे दो बार और यदि दुखद समाचार हो तो एक बार बजाया जाता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।



शरीर का पीड़ा-सायरन

अब्दुल हई कुरेशी (स. सं. ६७४१)

जरा भी चोट लगने पर हमें पीड़ा होती है। पीड़ा का आभास होते ही हमारा समस्त ध्यान उस स्थान पर केन्द्रित हो जाता है और हम उसकी मरहम-पट्टी करने लगते हैं। यदि हमें पीड़ा का आभास न हो तो हमें चोट लगने की खबर ही न होगी। चोट लगने के पश्चात् हमारे शरीर से खून बहता रहेगा। चोट लगने का पता हमें उस समय चलेगा जब हम अपनी आँखों से खून बहते हुए देखेंगे या अन्य व्यक्ति उस चोट के विषय में हमें संकेत करेगा।

पीड़ा तो स्नायुओं से उठी एक ऐसी तरंग है जो शरीर के किसी भी अंग को होनेवाली क्षति की सूचना मस्तिष्क को देती है। हमारी शरीर की त्वचा के प्रति वर्ग सें. मी. में मिलनेवाले स्नायु-तन्तुओं के सिरों पर ३००० संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। डा. वेडल ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि ये ही संवेदी कोशिकाएँ पीड़ा का अनुभव कराने में सहायक होती हैं। पीड़ा का आभास हमें तीन स्थलों पर—त्वचा, मांसपेशियों तथा हृदय पर होता है।

स्नायुओं का जाल

हमारे शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। जब किसी आन्तरिक अंग में दर्द होने लगता है तब उस अंग की संवेदी पीड़ा-तरंगें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। प्रायः

इन दोहरी सूचनाओं के कारण मस्तिष्क पीड़ाग्रस्त क्षेत्र का उचित निर्णय नहीं करता। इसी कारण कभी-कभी हमें प्रतीत होता है कि पेट में पीड़ा हो रही है, डॉक्टर जाँच करके कहता है कि वह छाती में है।

मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाले विचारों के प्रकार के विचार भी पीड़ा को घटाने में सहायक होते हैं। मान लीजिए, गर्भवती स्त्री का यह विचार दृढ़ हो जाय कि उसे प्रसव के समय बहुत पीड़ा होगी, अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होते हुए भी प्रसव के समय बहुत पीड़ा का अनुभव होगा। चिंता की स्थिति में साधारण पीड़ा भी अधिक कष्टप्रद प्रतीत होती है। शरीर की अनुभूति में भावनाओं का महत्व योग है। युद्धस्थल में किसी सैनिक का अंग विच्छेद हो जाता है तो भी उसे पीड़ा का आभास नहीं होता। दूसरी ओर पाँव में जरा सी मोच भी आ जाती है तो लोग दर्द से विचलित हो जाते हैं।

विशेष अनुसंधान

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा जात है कि विभिन्न व्यक्तियों में पीड़ा अनुभव करने की क्षमता भिन्न-भिन्न है। सर रोनाल्ड मेलर्जेंक और आर. टामसन ने इस विषय में कुछ

पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये हैं। जब वे जन्तु छोटे थे, तब जलती हुई दियासलाई को देखकर भयभीत हो जाया करते थे। ज्यों-ज्यों उनकी आयु में वृद्धि होती गई, उनमें भय की मात्रा कम होती गई। एक ऐसा समय भी आया जब वे उससे जरा भी विचलित नहीं होते थे। पीड़ा का आभास शरीर के क्षतिग्रस्त अंग के अनुपात में कम या अधिक होता है। किसी अंग में तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है, किसी में मन्द। अधिक थकावट में अपेक्षाकृत कम पीड़ा का अनुभव होता है।

सम्मोहन-स्थिति और पीड़ा

सर रोनाल्ड मेलर्जेक ने यह भी सिद्ध किया है कि यदि किसी व्यक्ति का लक्ष्य किसी एक वस्तु पर केन्द्रित है और उसी एकनिष्ठ अवस्था में उसे सुई चुभोई जाए तो वह प्रत्यक्ष पीड़ा का अनुभव नहीं करेगा। अतः सम्मोहन-स्थिति में व्यक्ति साधारण

चीर-फाड़ की पीड़ा का विशेष अनुभव नहीं करता।

इसी प्रकार जब खेल के मैदान में खिलाड़ियों का ध्यान खेल पर ही केन्द्रित रहता है तब उन्हें चोट की पीड़ा विचलित नहीं करती। इसका कारण यह है कि सम्मोहन-स्थिति में मस्तिष्क किसी एक ही वस्तु पर केन्द्रित होने के कारण स्नायु तन्तुओं के पीड़ा सन्देश को ग्रहण नहीं कर पाता।

इस प्रकार प्रकृति ने हमें किसी भी पीड़ा से अवगत कराने के लिए हमारे शरीर में यह सायरन व्यवस्था कर रखी है। यह सायरन तभी बज उठता है जब पीड़ा की अवस्था सीमा से बाहर हो जाती है अन्यथा सामान्य व्याधियों का पिढारा लिए हुए तो यह शरीर महीनों, वर्षों चलता रहता है। पीड़ा तीव्र होते ही हमें चिन्ता घेरने लगती है कि इस खतरे की घण्टी का रहस्य समझा जाए।

१९६५ से जनवरी १९६६) के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं।

- इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा।
- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : २८ फरवरी १९६३।

विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा
को आज ही मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ।

यह अपने प्रण को दोहराने का समय है

आइये, आज हम हमलावर को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए अपने प्रण को दोहराएं। चौकसी और दृढ़ निश्चय में किसी तरह की ढिलाई न आने दें क्योंकि यह आपका अपना युद्ध है। यह फौरन काम करने का वक्त है। राष्ट्र सेवी संगठनों के स्वयंसेवकों की सूची में अपना नाम लिखवायें। कोई भी चीज ज़ाया न करें और फजूलखर्ची बिल्कुल बंद कर दें। खाने की चीजें और कपड़ा बहुत आवश्यक वस्तुएं हैं। इन्हें व्यर्थ नष्ट न करें। समय बड़ा कीमती है। इसे व्यतीत घंटों में न नापें बल्कि यह सोच कर नापें कि आपने क्या क्या काम कर लिया है। अपनी जिम्मेदारी निभायें। हर मामले में और हर समय अनुशासन से काम करें।

चोट के विषय में हमें संकेत करेगा।

पीड़ा तो स्नायुओं से उठी एक ऐसी तरंग है जो शरीर के किसी भी अंग को होनेवाली क्षति की सूचना मस्तिष्क को देती है। हमारी शरीर की त्वचा के प्रति वर्ग सें. मी. में मिलनेवाले स्नायु-तन्तुओं के सिरों पर ३००० संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। डा. वेडल ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि ये ही संवेदी कोशिकाएँ पीड़ा का अनुभव कराने में सहायक होती हैं। पीड़ा का आभास हमें तीन स्थलों पर—त्वचा, मांसपेशियों तथा हृदय पर होता है।

स्नायुओं का जाल

हमारे शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। जब किसी आन्तरिक अंग में दर्द होने लगता है तब उस अंग की संवेदी पीड़ा-तरंगें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। प्रायः

उसे प्रसव के समय बहुत पीड़ा होती है। अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होते हुए भी प्रसव के समय बहुत पीड़ा का अनुभव होता है। चिंता की स्थिति में साधारण सी पीड़ा भी अधिक कष्टप्रद प्रतीत होती है। पीड़ा की अनुभूति में भावनाओं का महत्व योग है। युद्धस्थल में किसी सैनिक का अंग विच्छेद हो जाता है तो भी उसे पीड़ा का आभास नहीं होता। दूसरी ओर पाँव में जरा सी मोच भी आ जाती है तो लोग दर्द से विचलित हो जाते हैं।

विशेष अनुसंधान

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया है कि विभिन्न व्यक्तियों में पीड़ा अनुभव करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। सर रोनाल्ड मेलर्जेक और डॉ. आर. टामसन ने इस विषय में कुछ ज

विज्ञान-लोक केवल २) में !

अन्तिम तिथि : २८ फरवरी

चतुर्थ वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में

विज्ञान-लोक

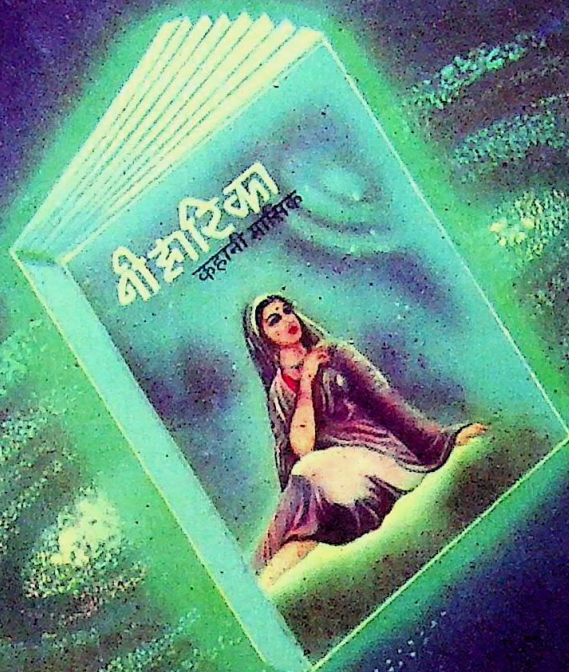
की नवीन आकर्षक योजना

- इस योजना के अनुसार आप २०) भेजकर तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं ।
- विज्ञान-लोक का वार्षिक शुल्क ९) है किन्तु इस योजना से आप तृतीय वर्ष (फरवरी १९६५ से जनवरी १९६६) के १२ अंक केवल २) में प्राप्त कर सकते हैं ।
- इस योजना के अन्तर्गत आपको विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ से जनवरी १९६६ तक भेजा जायगा ।
- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि : २८ फरवरी १९६३ ।

विक्रय व्यवस्थापक, विज्ञान-लोक, हास्पिटल रोड, आगरा
को आज ही मनीआर्डर द्वारा २० रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ ।

कहानी जगत में नया नक्षत्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eSangathi



वीरारिका

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रु.

एक प्रति ६०

श्रीराम नेहरू एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



७५
नये पैसे

तरह तरह की मछलियाँ	३
—कुमारी प्रमिला	
घास की क्या बात	८
—सत्यकुमार	
सागर में छिपी सरिताएँ	१२
—डा. नरेन्द्रमोहन वंसल	
बहुउपयोगी केला	१६
—नरेन्द्र छाबड़ा	
स्ट्रोबोस्कोप	२१
—डा. मनोहरलाल शर्मा	
आत्महत्याएँ	२४
—अनिलकुमार जैन	
जन्तुओं के विचित्र दाँत	२७
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल	
हाइड्रोजन की उपयोगिता	३१
—आदित्यगोपाल भिंगरन	
धीरे बहो नदिया	३४
—राजेन्द्रप्रसाद खन्ना	
अन्य लोक के निवासियों से	
बातचीत	४०
—डा. शिवगोपाल मिश्र	
डीजल इंजन का आविष्कर्ता	
रुडोल्फ डीजल	४२
—केदारनाथ	
आश्चर्यजनक करबद्ध कोर्ट मेन्टिस	४५
—डा. त्रिलोक मजपूरिया	
यदि सूर्य को निकट से देखें	५१
—कुलदीप चड्ढा	
स्थायी स्तम्भ	
विचित्र संसार	३८
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	४६
विज्ञान क्लब	५७
इनाम लो	६१
आपके प्रश्न	६३

वर्ष ४

अंक २



मूल्य

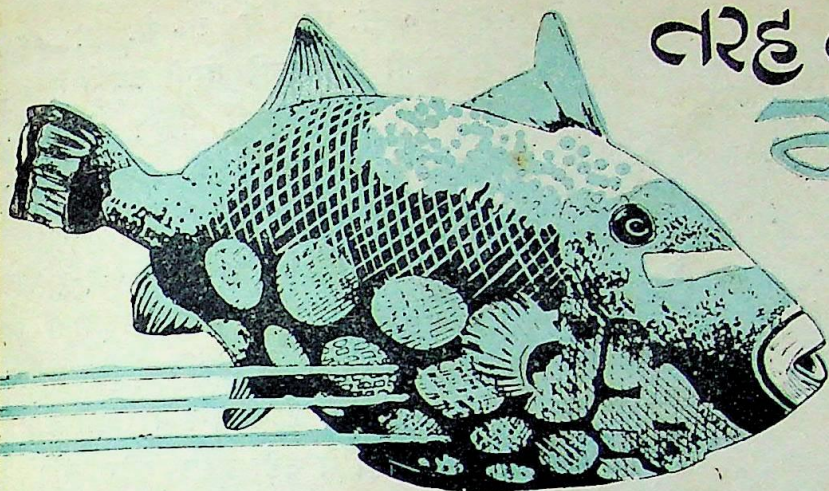
एक प्रति : ७५ नये पैसे

वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्री १०८ आर्य समाज, एण्ड कम्पनी, आगरा

तरह तरह की मछलियाँ



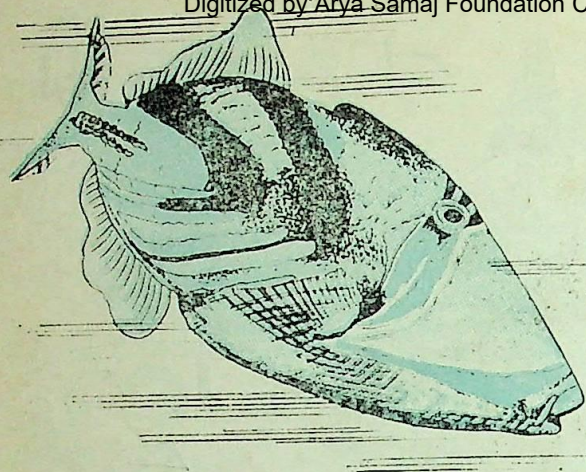
कुमारी प्रमिला

एक शताब्दी पूर्व की ही बात है, तब तक लोगों को यह ज्ञात नहीं था कि सागरों में तनिक गहराई पर तथा कहीं-कहीं कम गहराई पर भी कैसी-कैसी अनोखी मछलियाँ हैं! जब से सागरों में बिजली के केबिल बिछाये जाने लगे तभी से लोगों का—विशेषतः जीव-वैज्ञानिकों का—विचित्र मछलियों से परिचय होने लगा। तभी वे यह जान सके कि सागरों की गहराई में जीवन गुंजित है। उससे पूर्व यही समझा जाता था कि कुछ ही सौ फुट की गहराई के बाद अनन्त अँधेरा और निर्जीवता का साम्राज्य है। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि सागर की गहराइयों में भी जीवन है, स्पन्दन है और शोर-गुल भी है।

इन्हीं में कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो 'छोटे मुँह, बड़ी बात' की सार्थक प्रतीक हैं। मूंगे की चट्टानों के निकट ही अधिकतर पायी जाने वाली ये मछलियाँ वास्तव में काफी छोटे मुँह की होती हैं पर इनकी विशेषताएँ छोटी नहीं होतीं। मूंगे की रंग-बिरंगी वाटिकाओं में ये चहकती रहती हैं। अधिकतर तो वातावरण से रंग में रंग मिलाकर आक्रमणकारी से बच निकलती हैं और कुछ

मूंगे की खोलों में घुसकर शत्रुओं को धोखा देती रहती हैं। सागर की गहराइयों में वनस्पति इतनी प्रचुर तो होती नहीं जो मछलियों का निर्वाह हो जाए, अतः वहाँ बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती रहती है।

प्लेक्टोनेथ (Plectognath) श्रेणी की इन मछलियों के मुँह और आँखें काफी छोटी और दाँत मजबूत होते हैं। किन्हीं के शरीर पर रंगीली-चमकीली चित्तियाँ और धारियाँ होती हैं, किन्हीं की खाल सपाट तथा खुरदरी होती है, तो किन्हीं के शरीर पर पैनी छुरी जैसे काँटे या प्लेटें होती हैं। इनमें से अधिकांश तो उष्ण कटिबन्धीय सागर के जल में रहती हैं। कुछ हिम सागर के जल में भी रहती हैं। वास्तव में इस श्रेणी की मछलियाँ सर्जन फिश (Surgeon fish) एकनथुरिडी (Acanthuridae) के वंश के आधुनिक संस्करण हैं। सर्जन के काम में आने वाले तेज चाकू जैसे पैने काँटे तथा प्लेटोंयुक्त मछलियों के कारण ही इस वंश को सर्जन वंश का नाम दिया गया है। किन्हीं-किन्हीं में वे काँटे पूँछ के दोनों ओर १-१ तथा किन्हीं में सिर पर तथा पीठ पर भी होते हैं।



इस ट्रिगर फिश का नाम है हुमुहुमु-नुकुनुकु

वास्तव में वे त्वचा के शल्क (scales) हैं जो सख्त और कँटीले बन गये हैं।

ट्रिगर फिश—इस वर्ग में रिनेकेन्थस एक्युलीटस (*Rhinecanthas aculeatus*) तथा रिने-रेक्टेन्गुलेरिस (*Rhinerectangularis*) मुख्य मछलियाँ हैं। इन्हें हुमुहुमु-नुकुनुकु के नाम से पुकारते हैं। इन दोनों में समानता होते हुए भी आपस में पटती नहीं। दाँव लग जाने पर एक दूसरी को गुत्थमगुत्था करती हुई दूर घसीट ले जाती हैं। इन्हें ट्रिगर नाम इसलिए दिया गया है कि इनके सिर, पूँछ तथा पीठ पर जो काँटे होते हैं, उनमें ये अपनी विलक्षण स्नायविक क्रिया से आगे का काँटा खड़ा करके पीछे के काँटे को बन्दूक के घोड़े की तरह सरकाकर सहारे को लगाये रहती हैं। काम पूरा हो जाने पर पुनः उसी स्थिति में ले आती हैं। अतः जब कभी कोई बड़ी मछली इन्हें निगलने की कोशिश करती है तो ये काँटा खड़ा करके उसकी कोशिश बेकार कर देती हैं। इसी प्रकार जब कोई अन्य मछली पीछा करती है तो किसी भी मूँगे के खोल में अपना सिर देकर काँटा खड़ा कर लेती हैं। तब इनका बाहर खिंचना कठिन हो जाता है और आक्रमणकारी हार

कर लौट जाता है। ये मछलियाँ प्रा २० सें. मी. से ६० सें. मी. लम्बी होती हैं। इनके दोनों जबड़ों में दाँतों की बाहरी पंक्ति होती है। ऊपर के जबड़े में प्लेटनुमा दाँतों की एक भीतरी पंक्ति भी होती है। पूँछ के दोनों ओर १-१ निशान से उन्हें सहज पहचाना सकता है। ये मछलियाँ छिछले अपेक्षाकृत उष्ण जल में रहती हैं। स्वभाव से बड़ी सुस्त और गति मन्द हैं।

फाइल फिश—ऊपरी तौर पर ट्रिगर फिश से मिलती-जुलती यह मछली किंग्फिश से मिलती-जुलती है। सबसे आगे काँटा इसकी आँख के लगभग ऊपर ही होता है जबकि ट्रिगर फिश में जरा पीछे को सरका कर होता है। इसकी पीठ की चित्तियाँ रेखा (files) जैसी होने के कारण इसे फाइल फिश कहते हैं। इसके नीचे के अंग पर डैने नहीं होते।

क्वीन ट्रिगर फिश—यह महारानी (Queen) मछली है। यह महासागर तथा अतलांतिक महासागर के दोनों ओर पायी जाती है।



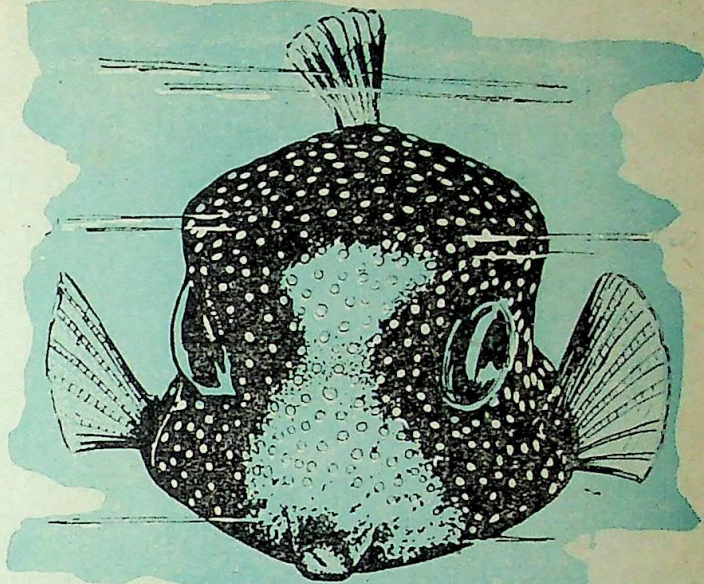
यह मछली प्रायः १२ से २२ सें.मी. तक की होती है किन्तु एल्युटेरा-स्क्रिप्टा (Alutera-scripta) नामक मछली अपवादस्वरूप १०० सें. मी. तक की पायी गयी है। इसका मुँह इतना छोटा होता है कि यदि इसे मीनालय में रखा जाए तो इसके खान-पान की विशेष सावधानी रखनी होगी। यह सूक्ष्माकार भोजन ही कर सकती है, वह भी काफी धीरे-धीरे।

पार्कुपाइन तथा बर्र फिश—

डायोडन्टिडी (Diodontidae)

परिवार की यह पार्कुपाइन मछली

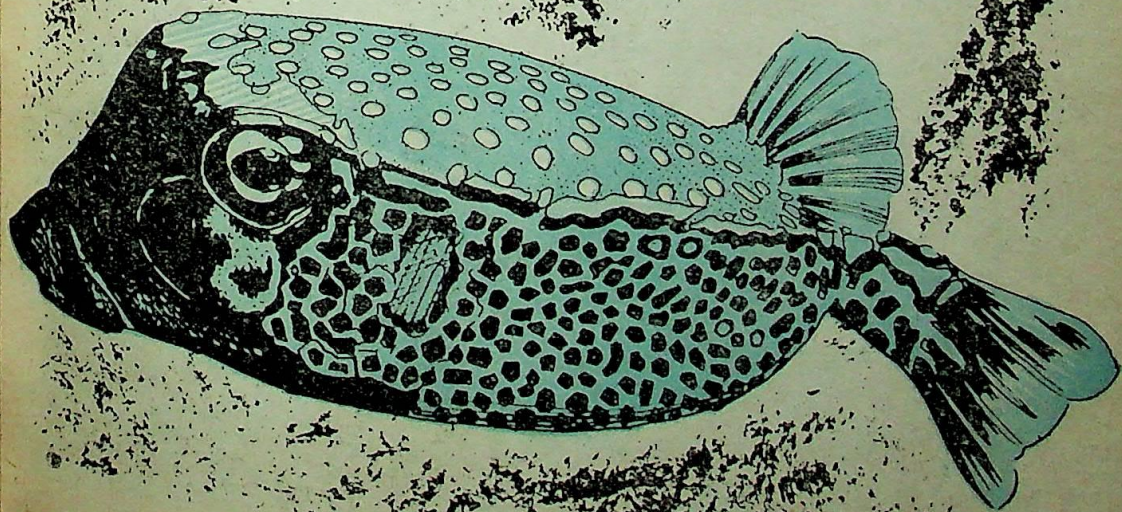
एक प्रकार से गुब्बारे जैसी पफर फिश ही है मगर सेही जैसे काँटों से युक्त। वे काँटे सामान्य अवस्था में तो लेटे रहते हैं किन्तु मछली को पानी से बाहर निकालते ही काँटे खड़े हो जाते हैं। बर्र फिश मछली के काँटे अचल रहते हैं। इनको पकड़ने वाले इनकी खाल को सुखाकर, पारदर्शक बनाकर गेंद-नुमा कर लेते हैं और उनमें रंग-बिरंगे लैम्प जलाकर सजावट का काम लेते हैं।



ब्लू ट्रंक फिश—शैशवावस्था में

ट्रंक फिश—ये मछलियाँ ओस्ट्राशियन्टिडी (Ostraciontidae) परिवार की हैं। आकार में ये ऐसी दिखती हैं मानो हड्डी का एक खोल या बक्स हो जिसमें आँख, मुँह आदि के लिए छिद्र रख दिये गये हों। एक ही परिवार के नर-मादा प्रायः भिन्न रंग के होकर बड़ी भूलभुलैया पैदा कर देते हैं। छेड़ने पर ये ऐसा द्रव पिचकारी की तरह छोड़ती हैं जो आसपास के पानी को

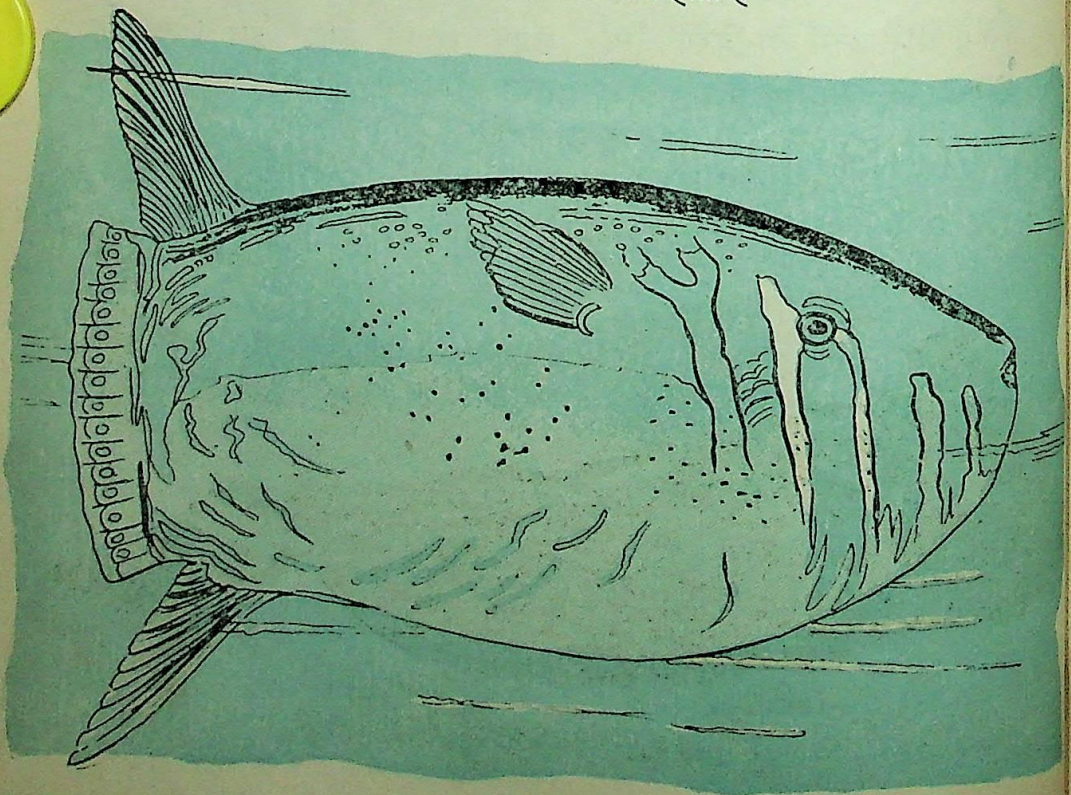
ब्लू ट्रंक फिश



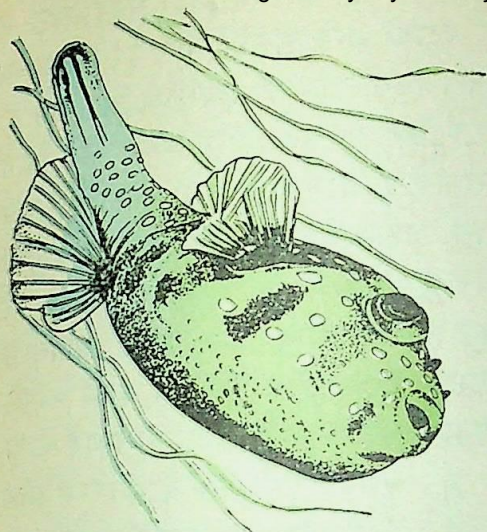
जहरीला बना देता है। अक्सर वह जहरीला पानी अन्य मछलियों के लिए घातक सिद्ध होता है। ये अधिक से अधिक ५० सें. मी. तक की पायी जाती हैं। इनका जहरीला द्रव इनके खाने वालों के लिए कोई बाधा उपस्थित नहीं करता।

पफर फिश—गुब्बारे की शकल की ये मछलियाँ टेट्राओडन्टिडी (Tetraodontidae) परिवार की बड़ी मनोरंजक मछलियाँ हैं। ज्योंही इन्हें पानी से निकालते हैं ये हवा खींचकर गुब्बारे जैसी फूल जाती हैं। फूली हुई अवस्था में इन्हें पुनः पानी में छोड़ देने पर कुछ मिनटों तक तो ये उलटी-पुलटी तैरती रहती हैं ताकि हवा निकल जाए; बाद में प्रकृतिस्थ होने पर ये अपने सामान्य रूप में आ जाती हैं। हवा की भाँति ये पानी भी भर लेती हैं। काँटेदार पफर अर्थात् पार्कुपाइन फिश की अपेक्षा इनके मुँह की रचना में यह अन्तर होता है

रेनजानिया नामक महासागरीय सन फिश। इसी जाति की मोला-मोला नामक सन फिश १००० किलोग्राम तक भारी होती है



कि पार्कुपाइन के सख्त चोंच जैसे मुँह दाँत जड़े हुए रहते हैं जबकि इनमें कैंची की भाँति बीच से दो फाँकों में बँटे रहते हैं। इन मांसाहारी मछलियों के परिवार में से भी अधिक उपजातियाँ होती हैं। साधारणतया ये ४५ सें.मी. की होती हैं किन्तु ६० सें.मी. तक की भी पायी गयी हैं। जब गुब्बारा बनकर पानी पर तैरने लगती हैं तो इन्हें निगलने की कोशिश उसी तरह बेकाय जाती है जिस प्रकार पानी में तैरती हुई एक गेंद को मुँह में पकड़ने की चेष्टा। यद्यपि इनमें भी औषधोपयोगी टेट्रोडोटोक्सिन (Tetrodotoxin) जैसा विषैला पदार्थ रहता है, तथापि अनेक देशों में, विशेषतः जापान में, ये मछलियाँ बड़े प्रिय खाद्य सम्मिलित हैं। किन्तु इन्हें खाने के योग्य बनाने के लिए विशेषतः प्रशिक्षित होना तथा प्रमाणपत्र प्राप्त करना पड़ता है, अन्यथा अज्ञानी लोगों द्वारा इनका प्रयोग ६० प्रति



पफर फिश

शत हानिकारक ही सिद्ध होता है। इन्हीं में Sharpnose Puffers अर्थात् नुकीली नाक वाली पफर भी हैं। उनकी नाक सँकरी, नुकीली, कुछ अधिक लम्बी तथा नथुने बड़े सूक्ष्म होते हैं।

ओशन सन फिश—बड़े महासागरों में पायी जाने वाली इन मछलियों को भीमकाय पफर फिश ही समझिए। शिशु अवस्था में तो इनके भी शरीर पर काँटे होते हैं जिनके कारण अपने ही परिवार की बड़ी मछलियों

में वे आसानी से नहीं पहचानी जातीं। ये पानी में तेजी से ऊपर-नीचे तैरती हैं। आयु बढ़ने के साथ इनमें सुस्ती भी बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि वृद्ध होने पर ये प्रायः किसी किनारे पर डूबे फड़फड़ाती पड़ी रहती हैं। इनमें मोला-मोला (Mola-mola) जाति की मछली खासकर विशालकाय होती है। वह $3\frac{1}{2}$ मीटर लम्बी तथा १००० किलो. तक भारी होती है। इस परिवार में कुल तीन ही उपजातियाँ हैं। रैनजानिया टाइपस (Ranzania Typus) ७५ सें.मी. लम्बी और मास्तुरस लेन्स्योलेटस (Masturus lanceolatus) जाति की $3\frac{1}{2}$ मीटर लम्बी होती है। ये मछलियाँ खाने योग्य नहीं मानी जातीं। कारावस्था में ये अधिक जीवित नहीं रहतीं, क्योंकि इन्हें तो स्वच्छन्द विचरने के लिए असीम सागर जल ही चाहिए। इन्हें खाने-खिलाने में विशेष असुविधा नहीं प्रतीत होती, क्योंकि श्वास के जोर से ये मुँह के सामने आयी हुई वस्तु को अन्दर खींच लेती हैं।

सचमुच 'छोटे मुँह, बड़ी बात' वाली ये मछलियाँ स्वयं विचित्रताओं के भण्डार ही हैं।

राष्ट्र को अपना
सोना
खून
श्रम
शौर्य
दीजिए

पहले की अपेक्षा आज उसे
इनकी अधिक जरूरत है

घास की कथा

सत्यकुमार

यह घास है-सकृत् द्वारा मुक्त हस्त से
लुटायी जाने वाली निधि, सहज उपलब्ध
घास। इसके बिना हमारे पर्वत नग्न हैं
सरित्-किनारे सूने और खेल के मैदान
वीरान हैं। घास नहीं, तो कोठी की लान
उदास, चरागाह बंजर, और हमारा पशुवन
निर्धन है। घास हमारे जीवन के अत्यन्त
निकट है। कवियों ने इस पर प्रशस्तियाँ लिखी
हैं, इसके मखमली कालीनों ने उनमें कोमल
कल्पनाएँ जगायी हैं और उपन्यासकार ने भी

अपने उपन्यास में प्रारम्भ और
अन्त के बीच, कहीं न कहीं इसे
सजाया-सँवारा अवश्य है। वैज्ञा-
निकों ने घास पर अनन्त प्रयोग
किये हैं। घास कहाँ नहीं है ?
पहाड़ की चोटी हो, सागरतल हो,
शुष्क मरुस्थल हो या हिमाच्छा-
दित ध्रुव-प्रदेश हो, घास तो
सब स्थानों पर मिलेगी ही।

घास की रचना अत्यन्त
सरल है। एक तना और तने के
हर जोड़ अर्थात् हर गाँठ पर एक
पत्ती, बस। सृष्टि भर की
विभिन्न घासों की मूल रचना तो
यही होती है। घास में फूल भी
होते हैं किन्तु उनका कुछ महत्त्व
नहीं। न तो उनमें चटकदार रंग
होते हैं, न कोई गंध ही। वैसे
भी फूलों में रंग, रूप और गंध
तो परागण हेतु ही कीटों को
आकर्षित करने के लिए होते हैं।
घास को बढ़ने के लिए इन
वस्तुओं की आवश्यकता नहीं।
इसके पौधे में लगभग पाँच करोड़
बीजाणु होते हैं। वायु में १३००
मीटर की ऊँचाई तक ये बीजाणु
उड़ते-उतराते देखे गये हैं।

घास के बीजों का उपयोग अनाज के रूप में—चाहे वह बोभा उठाने जैसा भारी परिश्रम हो चाहे तिनके से दाँत कुरेदने का कोमल कार्य हो, शक्ति खर्च होती ही है।

पशुओं में कितनी शक्ति होती है ? वे भी तो घास ही खाते हैं ! घास खाकर ही घोड़ा दूसरों को मात खिलाता है। घास खाकर ही गाय हमें दूध देती है और बैल कोल्हू चलाता है। गणना है कि २०० ग्राम घास में इतनी शक्ति रहती है कि एक व्यक्ति डेढ़ घण्टा चल सकता है, दो मिनट सीधी सीढ़ियों पर चढ़ा चला जा सकता है, आधा घण्टा लकड़ी चीर सकता है या तीन घण्टे तक बर्तन माँज सकता है। अनाज के ये दाने, एक प्रकार से घास के बीज ही तो हैं ! उनमें घास से चौगुनी शक्ति रहती है। ७०० बीघे का घास का मैदान एक दिन में सूर्य से उतनी शक्ति प्राप्त कर लेगा जितनी एक सामान्य परमाणु बम में रहती है, अर्थात् २०००० टन T.N.T. के बराबर !

घास को भी फूलों का श्रृंगार चाहिए !



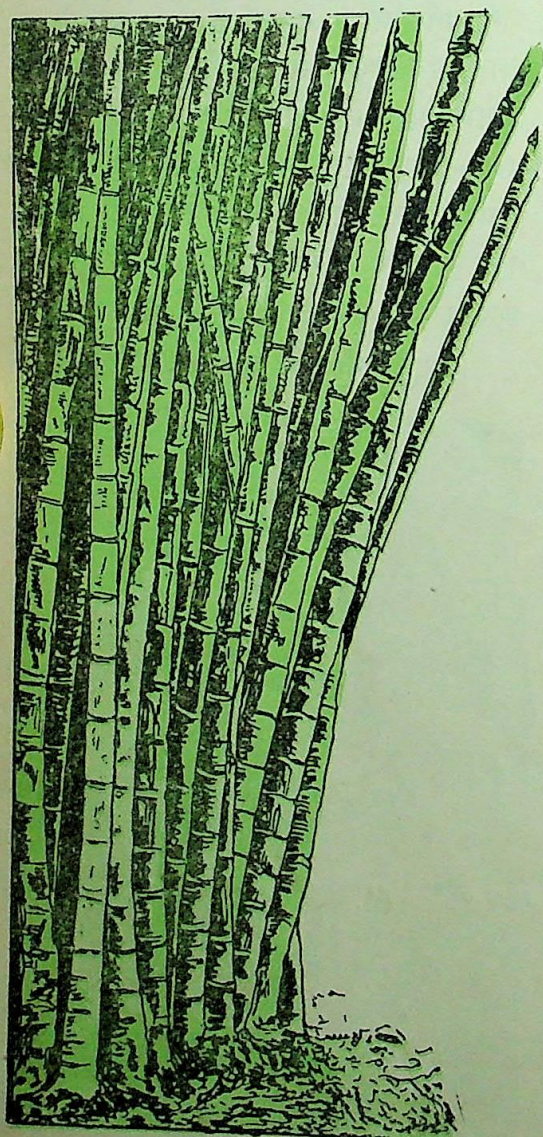
वर्षा ऋतु घास का यौवन काल मानी जाती है। उस ऋतु में आँखों को हरा ही हरा सूझता है। घास शब्द का अर्थ केवल दूध घास ही न समझें। घास-परिवार में ही गेहूँ, जौ, धान, गन्ना तथा बाँस आदि भी आते हैं, जिनमें घास की ही भाँति एक तना और तने की हर गाँठ पर पत्ती होती है। अनाजों की हरी-भरी बालें पककर पीली होती-होती सूखती हैं और दाने तैयार हो जाते हैं। आदि-मानव भी इस तथ्य से परिचित था। अनाज के रूप में वह इनसे भिन्न-भिन्न खाद्य प्राप्त कर लेता था। हमारे भी भोजन में आज मुख्य रूप अनाज का ही है—कहीं गेहूँ, कहीं चावल, कहीं मक्का तो कहीं ज्वार।

सोचने की बात है कि यदि हम एक समय भोजन न करें तो दूसरे समय सुस्ती क्यों घेरती है ? दो दिन खाना न खाएँ तो शिथिलता क्यों पकड़ लेती है ? यह सब इसलिए कि शरीर में शक्ति का अभाव आ जाता है और शक्ति भोजन से ही प्राप्त होती है। भोजन में वह शक्ति अनाज से आती है। घास रूप के ये पौधे सूर्य से निरन्तर ऊर्जा और भूमि से पोषक तत्व प्राप्त करते रहते हैं। भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति ही हमारी समस्त क्रियाओं का संचालन करती

मार्च १९६३

भी अधिक मूल्यवान है। जीवन के लिए यह वायु तथा प्रकाश जितनी ही आवश्यक है। इसकी एक उपयोगिता यह भी है कि यह वर्षा के पानी को अधिक से अधिक जब्ज कर लेती है और उस पानी को धरती में उतारती रहती है। हिसाब लगाया जाए तो वर्षा-जनित बाढ़ें रोकने में यह मानव-निर्मित

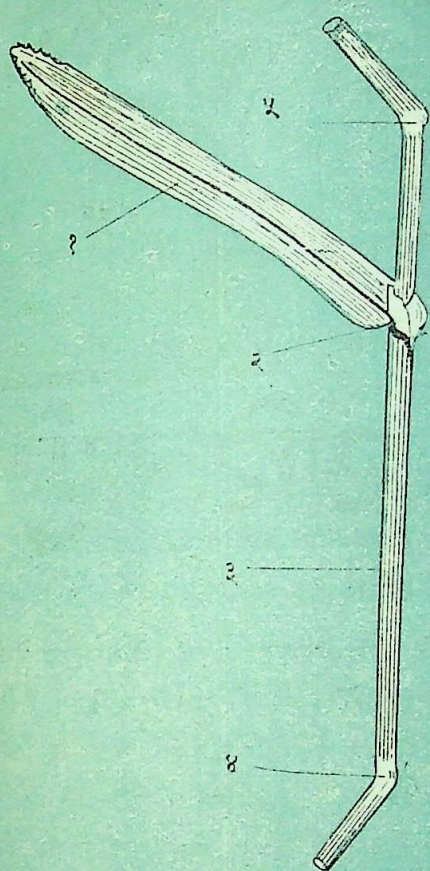
यह घास (बाँस) पाँवों के नीचे नहीं, सिर से ऊपर चढ़ती है—ऊँची बहुत ऊँची, ४० मीटर तक ! बढ़ती भी है एक दिन में ४० सें.मी. और इतनी सटी हुई कि तनों के बीच से आप निकल नहीं सकते !



पृथ्वी का $\frac{1}{4}$ भाग घास से ढँका हुआ है जहाँ घास है वहाँ के भरनों का पानी मीठा और निर्मल होता है। जिन खेतों में घास अधिक रहती है, उनकी मिट्टी वर्षा सहज ही बह नहीं जाती। समुद्र तट पर लहरों द्वारा जो कीचड़-मिट्टी जमा होती रहती है, घास ही उसे धीरे-धीरे दलदल के रूप में बदलती रहती है। वह दलदल समय पाकर सूखता-सूखता उर्वर भूमि बन जाता है। यों, भूमि-निर्माण में भी घास का महत्वपूर्ण भाग रहता है।

घास कहाँ नहीं है ? घास आपके पाँवों के नीचे है, घास आपके सिर पर है। जब अपना हैट (यदि पहनते हैं) तो देखिए घास की तीलियों से बना है, तभी तो इतना हलका है ! बैठने की वह चटाई भी देखिए कितनी हलकी, कितनी साफ है। कमर बुहारने की भाड़ू हो या डाक बँगले का फूफू का छप्पर, घास का ही दौरदौरा तो है। कागज बनता है तो घास से, रस्सी बनती है तो घास से। और, वह बाँस भी तो घास के ही कुनवे का है ! बाँस की उपयोगिता किससे छिपी है ? कागज बनाने में बाँस औषधीय बंसलोचन में बाँस, मछली-पकवानों में बाँस, मनमोहनी मुरली में बाँस, रेयन कपड़े में बाँस। बाँस के तो पूरे मकान के मकान बनते हैं ! भोंपड़ों का तो आधा स्तम्भ ही बाँस है। इस बहुउपयोगी बाँस की जननी घास विविध पैकिंग भरने में भी काम आती है। सर्दियों में ठिठुरते गरीबों का तो बिस्तर और कम्बल सूखी घास (पुआल) ही है।

बिजली के बल्बों में जो टंगस्टन का तार आप देख रहे हैं, उसकी जगह घास की आत में बाँस के तिनके ही थे। है न आश्चर्य ? सन् १९१० तक बाँस के रेशों का कार्बनी



घास को निकट से पहचानिए। ये हैं :

१. पत्र-फलक, २. जिह्वा, ३. आवरण, ४. गाँठ,
५. संधि-स्तम्भ

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने स्वयं प्रारम्भ में अनेकों प्रकार की घास के रेशों का कार्बनीकरण करके कितने ही प्रयोग किये थे, तब कहीं सफलता मिली थी।

पृथ्वी पर न जाने कितने विस्तृत घास के मैदान खेल के मैदानों के रूप में काम आ रहे हैं। घास पर खेली जाने वाली टेनिस तो लान टेनिस के नाम से ही विख्यात है। फुटबाल, क्रिकेट, पोलो तथा हाकी आदि खेलों में घास के मैदानों का ही महत्त्व है। गोल्फ के लिए घास की मखमली कालीन ही पसन्द की जाती है। आज के सुधरे हुए शहरों की जान, बीच-बीच में बनाये गये छोटे-छोटे कुंज तथा वाटिकाएँ हैं। उनकी शोभा घास की हरियाली से ही है। घास पहली ही दृष्टि में हमें नवजीवन का आभास कराती है। घास जीवन का ही प्रतीक है। अनुमान है कि घास की ६००० से भी अधिक किस्में हैं। भू-वेत्ताओं का अनुमान है कि करोड़ वर्ष पूर्व भी भूमण्डल पर घास का साम्राज्य था। आज भी घास पृथ्वी का शृंगार है और अनन्त काल तक शोभा शृंगार बनी ही रहेगी।

उठो देश के मामाशाहो, दौलत दे दो
उठो किसानो आज, खेत की माँग सजा दो
माँ का कर्ज चुकाना है हम सबको
उठो मजूरो, रात और दिन एक बना दो



सागर में छिपी सरिताएँ

डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

कुछ सरिताएँ ऐसी हैं जो न पर्वत से निकलती हैं, न पृथ्वी पर बहती हैं, फिर भी सरिताएँ तो वे हैं ही। उनमें भी कुछ तो इतनी विशाल हैं कि प्रत्येक में पृथ्वी की विशालतम नदी मिसिसिपी जैसी सौ-पचास नदियाँ समा जाएँ ! वे सरिताएँ सागरों में ही उपजती हैं, बढ़ती-बहती हैं और अन्ततः सागर में ही समा जाती हैं। वास्तव में इनके समा जाने या अन्त हो जाने जैसा कुछ है भी नहीं। ये तो अक्षय सरिताएँ हैं। साथ ही, सागर में उठते-गिरते ज्वार-भाटे को इनका कोई स्वरूप न समझ लेना चाहिए। दोनों सर्वथा भिन्न हैं। कुछ बातों में तो सागरों तथा उनके तटवर्ती प्रदेशों को विशेष महत्त्व इन्हीं सागर में छिपी सरिताओं के कारण प्राप्त है। उदाहरणार्थ, समान अक्षांश पर ही स्थित अमरीका का उत्तरी भाग और ग्रीनलैण्ड आदि स्थायी रूप से हिमाच्छादित हैं जबकि पश्चिमी यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन आदि उस स्थायी हिम-संकट से मुक्त हैं।

इन छिपी सरिताओं को सुविधा के लिए समुद्री धाराएँ (ocean currents) कहेंगे।

इनके अधिकतर नाम तो भूमध्य रेखा उन पार्श्वों (उत्तरी अथवा दक्षिणी) से दिये गये हैं जहाँ से ये बनती तथा चलती हैं। कुछ नाम उन प्रदेशों तथा खाड़ी आदि दिये गये हैं जिन्हें छूती हुई ये बहती हैं। उदाहरणार्थ कुछ नाम हैं—उत्तरी भूमध्य रेखीय धारा, दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा, लेब्राडोर धारा तथा गल्फ स्ट्रीम आदि।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इनका अस्तित्व है। ये धाराएँ ऐसी घुमक्कड़ हैं कि अक्षि विश्व में इनकी गति है। इन्हें रोकने का कोई भी नहीं। समस्त सागरों, महासागरों में ये निर्द्वन्द्व विचरती रहती हैं। पृथ्वी की सरिताओं को तो जब कभी अपने मार्ग बदलने पड़ते हैं किन्तु ये धाराएँ इसमें अपवाद हैं। अनुमान है कि लगभग १० वर्ष में एक बार ये धाराएँ समस्त सागरों का जल एक-दूसरे में लाती - ले जाती हैं। इनमें से कुछ शीत धाराएँ तो सागरों की गहराइयों में इतनी मन्द गति से चलती हैं कि रेडियो सक्रियतामापक यंत्रों द्वारा देखने पर कभी-कभी तो लगता है मानो सृष्टि आदिकाल का भी कुछ जल-भाग

(fossil) बनकर रह जाते हैं। इसी कारण और उष्ण धाराएँ हलकी होने के कारण पानी की सतह के निकट ही बहती हैं और उनका वेग ५-६ किलोमीटर प्रति घण्टा भी होता है। गल्फ स्ट्रीम इनमें मुख्य है और अतलान्तिक महासागर इसका प्रमुख क्रीड़ांगण है। यह धारा अतलान्तिक को एक प्रकार से मथकर रख देती है।

इनकी उत्पत्ति के विभिन्न कारण

हमारी पृथ्वी का जल-भाग भी उथल-पुथल में रहता है। स्थिर पानी तो किसी काम का नहीं। पानी में स्वयं गति उत्पन्न करने की क्षमता नहीं, इसका प्रकृति को पूरा-पूरा ध्यान है। अतः जल को गति प्रदान करने के लिए उसने तीन मुख्य साधन प्रस्तुत कर दिये हैं—सूर्य का असमान ताप, पृथ्वी की गति और उससे उत्पन्न पवन के वेग, तथा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण।

पृथ्वी के जिन भागों पर एक बार में सूर्य का ताप पड़ता है वहाँ सभी जगह एक समान नहीं पड़ता। यह ताप भूमध्य सागर पर तीव्रतम और ध्रुवीय सागरों तक नहीं के बराबर पहुँचता है। ताप की यह असमानता तथा गुरुत्वाकर्षण, दोनों जब मिल जाते हैं तब सागर-जल का अपेक्षाकृत शीतल भाग सतह के नीचे बैठता है और उष्ण भाग ऊपर उठता है। यों, एक नयी धारा का जन्म हो जाता है। वायु की सहायता से यह आगे बढ़ती है। वायु स्वयं भी सूर्य के असमान ताप तथा पृथ्वी की गति से ही उत्पन्न होती है। इसमें भी जल की भाँति तप्त लहरें ऊपर उठती हैं और शीत लहरें नीचे बैठती हैं। वेगवान वायु उस नवोत्पन्न समुद्री धारा को गति देती है। पृथ्वी अपनी वेगवान गति से उत्तरी गोलार्द्ध (clockwise) और दक्षिणी गोलार्द्ध की

धाराओं को घड़ी की सुइयों के प्रतिकूल (anticlockwise) दिशाएँ प्रदान करती है। अतः जिस दिशा में यह वायु बह रही हो उसके दायें अथवा बायें, किंचित् कोण बनाकर, ये धाराएँ बहती हैं।

इस कोणीय प्रभाव का सर्वप्रथम अनुभव १८६३ में नार्वे देश के नाविक एफ. नानसेन (F. Nansen) ने किया था। उसने देखा था कि ध्रुवीय सागर में उसका 'फ्राम' (Fram) नामक जहाज उस समय बहते हुए वायु की दिशा से २०° से ४०° तक का कोण बनाता हुआ समुद्री धारा से प्रेरित होकर चल रहा था। समुद्री धारा पर वायु का यह प्रभाव धारा के जल-परिमाण तथा ऋतु विशेष पर बहुत निर्भर करता है। जल का परिमाण जितना अधिक होगा, वायु का प्रभाव उतना ही कम होगा। वायु का भी विस्तार तथा वेग ऋतुओं पर तथा चारों ओर के प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति पर निर्भर करता है। तदनुसार ही वायु की स्थिति प्रति मास, प्रति ऋतु बदलती रहती है। समुद्री धारा पर इन परिवर्तनों का कम प्रभाव पड़ता है। उन प्रभावकारी वायुओं में आयेन-वायु (trade winds) प्रमुख हैं। वैसे तो वायु नाम तथा स्वभाव से ही अत्यन्त परिवर्तनशील है, किन्तु ये आयेन-वायु ऐसी हैं जो अपरिवर्तित रूप से भूमध्य रेखा के उत्तरी पार्श्व में उत्तर-पश्चिम की ओर तथा दक्षिणी पार्श्व में दक्षिण-पश्चिम की ओर औसत ५०-६० कि.मी. प्रति घण्टे के वेग से बहती हैं। उत्तर-दक्षिण भूमध्य रेखीय धाराओं को गति देने में इन वायुओं का प्रमुख भाग है।

प्रमुख धाराएँ

धाराओं के मुख्यतः दो विभाग हैं—सतह के निकट बहने वाली और गहराई में चलने वाली। सतह की धाराएँ वायु-चालित होती हैं और गहराई की धाराएँ अधिकतर पृथ्वी

मार्च १९६३

इनकी गतियाँ भी तीन प्रकार की हैं—तीव्र, मन्द और अतिमन्द। विविध प्रदेशों, खाड़ी तथा अन्य आधारों पर इन्हें जो नाम दिये गये हैं, उनमें मुख्य ये हैं : १. गल्फ स्ट्रीम (माना जाता है कि यह मेक्सिको की खाड़ी से निकलती है); २. पेरू धारा; ३. ब्राजीलियन धारा; ४. उत्तरी अतलान्तिक धारा; ५. दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा; तथा ६. पश्चिमी वायुप्रेरित धारा।

गल्फ स्ट्रीम नाम ही गलत

समस्त मुख्य धाराओं के विवरण तो इस सीमित स्थल पर न आ सकेंगे। गल्फ स्ट्रीम अवश्य उन सबमें प्रमुख है। अतः उसी का किंचित् विस्तृत विवरण इन पंक्तियों में प्रस्तुत है। कुछ समय पहले यह कथन चौंकाने वाला माना जाता कि गल्फ स्ट्रीम नाम गलत आधार पर दिया गया है। आधुनिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस धारा को मेक्सिको की खाड़ी (गल्फ) से उत्पन्न हुई मानना भ्रमपूर्ण है। सत्य तो यह है कि कैरीबियन धारा की ही उपधाराएँ मेक्सिको की खाड़ी के निकट बँट जाती हैं। कैरीबियन धारा स्वयं भी पश्चिम की ओर बहनेवाली भूमध्यरेखीय धारा का एक भाग है। केवल मेक्सिको की खाड़ी के निकट इसके विभाजन के कारण आज भी कुछ रूढ़िग्रस्त लोग वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर इसे गल्फ स्ट्रीम ही कहना पसन्द करते हैं।

प्रथम परिचय और नाम-निर्धारण

गल्फ स्ट्रीम से प्रथम परिचय पाने का भी मनोरंजक इतिहास है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साहसिक नाविकों ने सर्वप्रथम इसका आभास पाया था। उस काल में नाविकों को अतलान्तिक महासागर से ही अधिक काम पड़ता था। उन्हीं में

एक था जिसे उन दिनों की अपनी अतलान्ति यात्रा में पहली बार गल्फ स्ट्रीम से साम पड़ा था। वह यह देखकर आश्चर्य में गया था कि वायु अनुकूल होते हुए उसके जहाज को मानो पानी ने पकड़ रखा था। खोज करने पर उसे पता लगा कि प्रतिकूल बहाव की गल्फ स्ट्रीम की धारा ही उसके जहाज को आगे बढ़ने से रोक रही थी।

औसत अनुमानों के पश्चात् इसका आ लोकर और निश्चित स्वरूपांकन तो १७६९ में बेनजामिन फ्रैंकलिन के उद्योग से किया जा सका था। वे उन दिनों बोस्टन (अमरीका) में पोस्टमास्टर जनरल थे। बोस्टन के कस्टम बोर्ड वालों को शिकायत थी कि इंग्लैण्ड से आनेवाले माल-लदे जहाज औरों से अधिक समय लेते थे। इसका कारण खोजने के लिए फ्रैंकलिन ने अपने एक परिचित कप्तान फाल्जर (Folger) से अनुरोध किया। फाल्जर ने व्हेल-शिकारियों के दस्ते से मिलकर बड़ा उठाया। उन शिकारियों को गल्फ स्ट्रीम का अन्दाजा तो था ही। अतः अपने जहाजों को उससे बचाकर निकाल जाते थे। बीच में कुछ ऐसे स्थल भी थे जहाँ उन्हें एक धारा को काटकर दूसरी ओर जाना पड़ता था। उन स्थलों पर प्रतिरोध धाराओं में अटके हुए कुछ ब्रिटिश जहाज उन्हें दिखायी दिये। इन्होंने उनका लक्ष्य इस ओर खींचा और समझाया भी कि इस प्रकार तो उन्हें प्रति घण्टा तीन मील अधिक चक्कर काटने पड़ते हैं। किन्तु प्रमादवश जहाज ब्रिटिश नौ-अधिकारियों ने इन्हें साधारण नाविक समझकर इनकी बात को कोई महत्त्व नहीं दिया। फाल्जर ने गल्फ स्ट्रीम का अनुमानित नक्शा भी तैयार कर दि-

और फ्रैंकलिन को भेंट कर दिया। फ्रैंकलिन ने अपने यहाँ उसे पत्थर पर अंकित करा दिया और उसकी एक प्रतिलिपि सहृदयतावश इंग्लैण्ड भी भेज दी किन्तु वहाँ वालों ने पुनः अहंकारवश उसे खटाई में डाल दिया।

इन समुद्री धाराओं की शक्ति अपरिमित है। जहाँ मेक्सिको की खाड़ी फ्लोरिडा और क्यूबा के मध्य कुछ सँकरी हो जाती है, वहाँ इस गल्फ स्ट्रीम का विस्तार असीम हो जाता है। वहाँ इसकी चौड़ाई लगभग १५० कि.मी., गहराई $\frac{3}{4}$ कि.मी. तथा वेग करीब ६ कि.मी. प्रति घण्टा रहता है। उस स्वरूप में यह धारा सौ मिसिसिपी नदियों के बराबर जल वहन करती है।

जिस प्रकार अतलान्तिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम का साम्राज्य है, उसी प्रकार प्रशान्त महासागर में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा का प्रभुत्व है। यह धारा जगह-जगह बँटकर अनेक नामों से पुकारी जाती है। यह पनामा से फिलिपाइन तक २३००० वर्ग कि.मी. के विस्तार में अपना राज्य फैलाये हुए है। जापान के निकट पहुँचकर यह उत्तर की ओर मुड़ जाती है। वहाँ इसका नाम जापान धारा अर्थात् 'एशिया की गल्फ स्ट्रीम' हो जाता है। जिस प्रकार अतलान्तिक की उष्ण गल्फ स्ट्रीम की भेंट उत्तर में बर्फीली लेब्राडोर धारा से होती है, उसी प्रकार यह जापान धारा भी उत्तर की बर्फीली ओयाशियो धारा से जा मिलती है। दक्षिणी प्रशान्त महासागर की प्रमुख धारा हमबोल्ट धारा है। इसे पेरू धारा भी कहते हैं।

धाराओं के विभिन्न प्रभाव

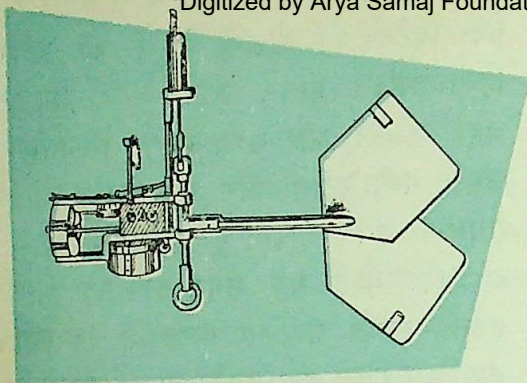
वनस्पति तथा प्राणी-जगत इन धाराओं से पूरा-पूरा प्रभावित रहता है।

यदि अतलान्तिक में गल्फ स्ट्रीम न होती तो ग्रेट ब्रिटेन भी उत्तरी ध्रुव की भाँति हिमाच्छादित होता, जीवन-शून्य होता। जहाँ शीतल और उष्ण धाराएँ मिलती हैं, अर्थात् गल्फ स्ट्रीम और लेब्राडोर धारा के संगम-स्थल पर घना कुहरा छा जाता है। शीतकाल में तो यह संगम ताप का अन्तर इतना स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि अनेक बार उस स्थल पर ठहरे हुए जहाजों के अग्र भाग और पृष्ठ भाग में 20°F तक का अन्तर पाया गया है! अमरीका के संयुक्त राज्य के तट और गल्फ स्ट्रीम के मध्य एक शीतल धारा बहती है जिसके कारण अमरीका के पश्चिमी तट की अपेक्षा उसका पूर्वोत्तरी तट ठण्डा रहता है।

धाराओं में बहकर आया हुआ दलदल जहाँ जमा हो जाता है वहाँ एक नया ही थल बन जाता है जिसे महातट (Grand Bank) कहते हैं। अतलान्तिक की गल्फ स्ट्रीम को एक वृहत् भौगोलिक परिवर्तन कर देने का भी श्रेय प्राप्त है। अतलान्तिक की ओर संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी किनारे पर केनेवरल (Canaveral), फीयर (Fear), लुक आउट (Look out) तथा हेटेरस (Hatteras) नामक जो चार महत्वपूर्ण अन्तरीप बन गये हैं वे गल्फ स्ट्रीम की ही बर्फीली हमबोल्ट धारा भूमध्य रेखा पर स्थित गैलेपेगोस टापुओं के प्राणियों को प्रचण्ड ताप से बचाये रखती है।



मार्च १९६३



धारामपी (Current Meter) द्वारा सागर सरिताओं (समुद्री धाराओं) का वेग और दिशा ज्ञात की जाती है

कृपा से बने हैं। इसका रहस्य यह है कि तीव्र वायु के कारण वहाँ सागर की सतह करीब २० सें.मी. उठ जाती है। अतः ढलान पाकर गल्फ स्ट्रीम बड़े हुए वेग से दौड़ती है और वहाँ की मिट्टी, चट्टानें आदि काट-काटकर बहाती हुई नये मार्ग, नयी भूमि बनाती जाती है।

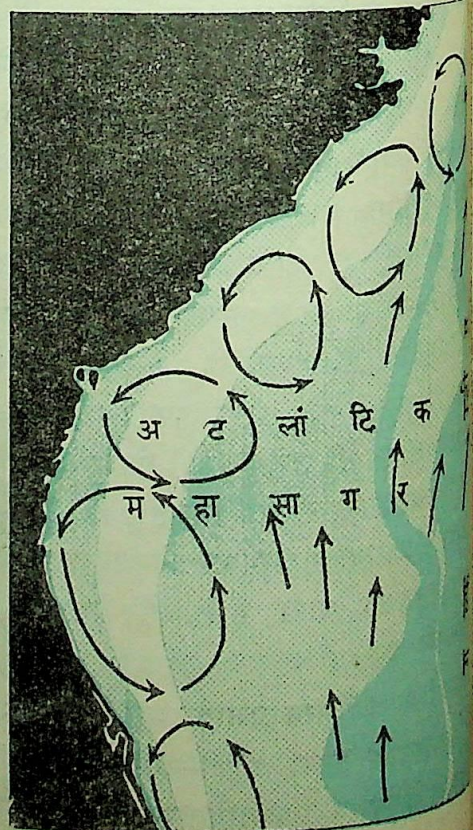
यह धारा अपने साथ अत्यन्त उर्वरक मिट्टी भी लिये चलती है। अनुमान है कि वर्ष भर में लगभग ३ लाख टन उर्वरक इस धारा में बहकर आये हुए ग्वानो (guano) नामक उन समुद्री पक्षियों के अवशेषों से प्राप्त होता है जो मरकर इसमें गिरते रहते हैं। साथ ही यह भी अनुमान है कि उर्वरक की इस मात्रा को बनाने के लिए उन पक्षियों ने लगभग ४० लाख टन मछलियाँ पचायी होंगी। इसके अतिरिक्त जब कभी इस धारा का अभाव हो जाता है तब वे मछलियाँ पोषण न मिलने से स्वतः तेजी से मरने लगती हैं। इन मछलियों के मरने से उन पक्षियों को भी भोजन का अभाव ले बैठता है। यह दोहरा जन्तु-विनाश और उनकी सड़ाँध ऐसी विषैली गैस उत्पन्न करते हैं जो अन्य समुद्री जीवों का भी विनाश करती है। यह गैस जहाजों पर भी विचित्र

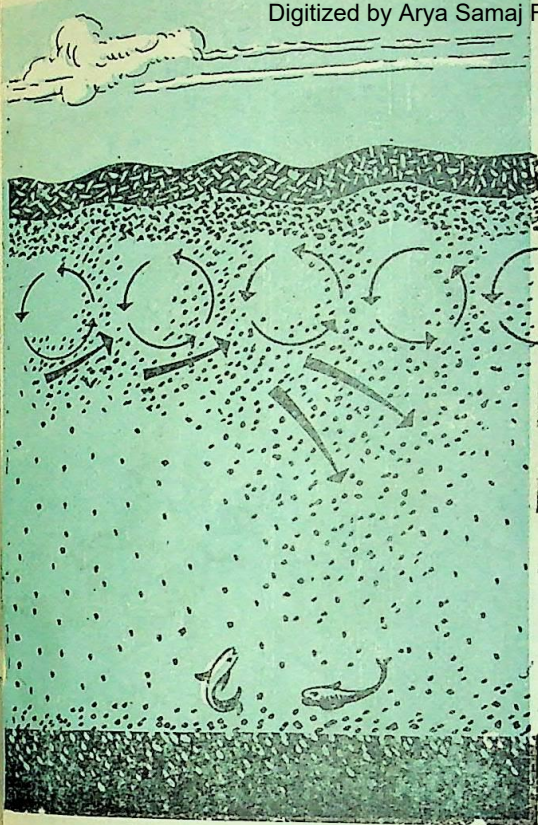
रंग चढ़ा देती है। वैसे यह घटना अपरुख स्वरूप ही होती है। पिछली शताब्दी ऐसी घटना केवल तीन बार देखने आयी थी।

धाराओं का रेखांकन

समुद्री धाराओं को अंकित करने अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। निर्धारित समय पर धाराओं का उतार-चढ़ाव तथा ताप परिवर्तन उन गणनाओं के मुख्य विषय हैं। हाल ही में एक नया यंत्र तैयार किया गया है जिसके द्वारा इनका अंकन काफी सरल रूप में संभव है। लन्दन की नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओशनोग्राफी ने एक बैलून बनाया है। वह बैलून पानी की सतह पर तैराया जाता है। वहीं से वह एक धारा प्रसारित करता है जो सतह पर तैरते जहाज के गणनापट पर अंकित कर दी जाती है। बैलून ३ मीटर लम्बा होता है।

संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वोत्तर पार्श्व पर चार अन्तरीप गल्फ स्ट्रीम की ही देन हैं





तैलून को ताप देने से जल गहराई पर तैराए रखा जा सके। जिस धारा की खोज की जा रही हो, उसके प्राप्त होते ही बैलून उस धारा में तैरा दिया जाता है। बैलून उसमें तैरता हुआ, उसके वेग, दिशा और ताप आदि के विवरण जहाज को भेजता जाता है। ऐसे एक बैलून की सहायता से एक प्रतिरोधी शीतल धारा की खोज समुद्र में ३००० मीटर की गहराई पर की जा सकी थी।

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि महासागरों का पानी अलग-अलग है। अतलान्तिक का पानी भूमध्य सागर में, प्रशान्त का हिन्द महासागर में ले जाती हुई सागर में छिपी ये सरिताएँ उत्तर को दक्षिण से और पूर्व को पश्चिम से मिलाती हैं। मनोरम सागर तट पर हमें आज मिलनेवाली शीतल वायु, संभव है, वर्षों पहले ध्रुवीय अंचल का स्पर्श पाये हुए किसी समुद्री धारा के कारण ही हो ! इसी प्रकार उष्ण और आर्द्र वायु का भोंका भी एक ऐसी धारा से प्रभावित होकर आया होगा जो अपनी भूमध्यरेखीय यात्रा से लौट रही होगी। इन सागर सरिताओं के प्रभाव से ही भूमण्डल के महासागर आज अनेक नहीं, एक हैं।

समुद्र में मृत मछलियाँ नीचे बैठ जाती हैं और उनके खनिज अवशेष धाराओं द्वारा ऊपर आकर सतह की वनस्पतियों में मिल जाते हैं। उन वनस्पतियों पर अन्य मछलियाँ अपना निर्वाह करती हैं

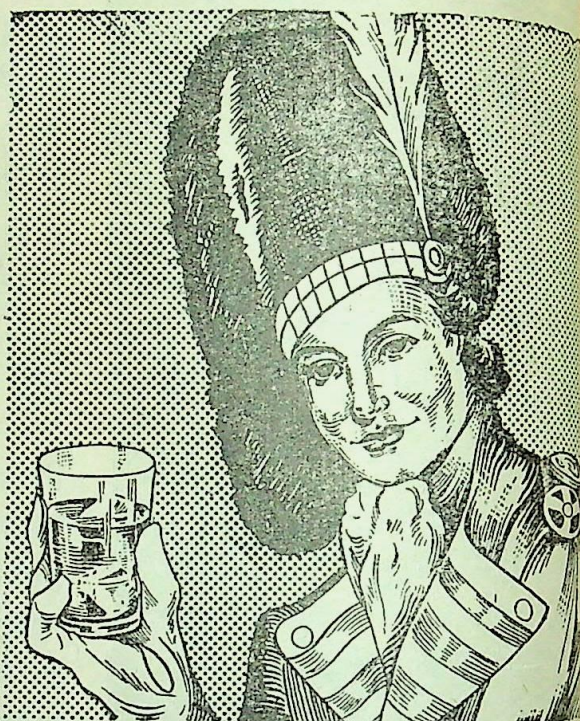
उसमें जेनरेटर, बैटरियाँ तथा वजनी बाँट रखे जाते हैं। बाँटों को घटा-बढ़ाकर भार कम या अधिक कर लिया जाता है ताकि

नींद भी बिजली से !

चिकित्सा के अन्तर्गत कृत्रिम नशा अथवा बेहोशी लाने की अब आवश्यकता न रहेगी। बिजली के यन्त्र द्वारा ही आपको गहरी नींद में मुलाया जा सकेगा। तीन सोवियत वैज्ञानिक एन. एस. लिवेट्सोव, जेड. ए. किरिलोव तथा वाइ. ई. सैगल ने वी. ए. गिल्यारोव्स्की के निरीक्षण में उस अद्भुत यन्त्र का सफल प्रदर्शन किया है जिसे इंग्लिश तथा फ्रेञ्च पत्रकारों ने 'नया रूसी चमत्कार' कहा है। मनुष्य कदाचित् २५-३० दिन भूख-हड़ताल खेंच ले जाय किन्तु नींद-हड़ताल तो ८-१० दिन की भी उसके बस की बात नहीं। शरीर के लिए ऐसी संजीवनी निद्रा को रिभाने के लिए अब गोलियों, इन्जेक्शनों का तो सहारा नहीं लेना पड़ेगा ! उपरोक्त वैज्ञानिकों के मतानुसार सम्मोहन अर्थात् हिप्नोटिज्म द्वारा प्रेरित नींद में और इस यान्त्रिक नींद में कोई अन्तर नहीं।

मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
याद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित
जब अतिथि आये
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए



प्रस्तुत कीजिए

हाईलैंड चीफ माल्टेड हिस्की

जॉर्ज मीकिंग ब्रूअरीज़ लि. स्थापित १८५८

बोतलों में लखनऊ डिस्टिलरी एवं सोलन ब्रूएरी द्वारा भरा गया

बहुउपयोगी केला

नरेन्द्र छावड़ा

केले का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी हमारी सभ्यता। यूनान के एक इतिहासकार ने भारत पर सिकन्दर के आक्रमण-काल में केले का भी उल्लेख किया है। अतः वहाँ के लोग बहुत पहले से केले से परिचित थे। इसे 'स्वर्ग का सेब', 'आदम का अंजीर' और 'पाला' जैसे नामों से पुकारा जाता था। दक्षिण भारत में तो आज भी 'पाला' ही नाम प्रचलित है।

केला-वृक्ष के विभिन्न उपयोग

भारतीय संस्कृति में केले का महत्वपूर्ण स्थान है। खम्भे जैसा इसका तना, केल-स्तम्भ, शोभा और समृद्धि का प्रतीक माना गया है। विवाहादि मंगल अवसरों पर केले के ही तनों, पत्तों से मण्डप सजाये जाते हैं। इसके लम्बे-चौड़े मुलायम पत्तों से खाने के पात्र, पत्तलें बनायी जाती हैं। इसके पत्तों व तने के रेशों से भारत की प्रसिद्ध साड़ियाँ तथा अन्य वस्त्र तैयार किये जाते हैं। केले के वृक्ष का शायद ही कोई भाग ऐसा हो जो उपयोग में न आता हो।

केला-उत्पादन

केले की १०० से भी अधिक किस्में उपजायी जाती हैं। भारत, अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, तथा मेक्सिको प्रमुख केला-

मार्च १९६३





कलियाँ क्रमशः केलों में परिणत होती हुई
उत्पादक देश हैं। भारत में मद्रास, कोचीन, त्रावणकोर, बम्बई तथा पश्चिमी बंगाल में यह अधिकता से उपजाया जाता है। मालभोग, चीनीचम्पा, सोनकेला, राजली, रसवाल आदि केले की मुख्य किस्में प्रचलित हैं। इनमें भी बम्बईया और कलकतिया केले अधिक प्रसिद्ध हैं। केले के फल बड़े-बड़े गुच्छों के रूप में पेड़ में लगते हैं। गुच्छे हरे होते हैं तभी उन्हें उतार लेते हैं। यदि केले को पेड़ पर ही पकने दिया जाए तो फल में महक नहीं रहेगी और छिलका फटकर कीड़े पड़ जाने का खतरा रहेगा।

पोषण तत्त्वों का भण्डार, केला

केले में शरीर के लिए आवश्यक प्रायः सभी तत्त्व भरे हैं। उनमें मुख्य हैं—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, सोडियम, कैल्शियम, पोटैशियम, मैगनीशियम, लोहा, ताँबा, फास्फोरस, गंधक, क्लोरीन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, तथा विटामिन ए, बी और सी। इसमें अम्लीय तत्त्वों की अधिकता होने के कारण शरीर का अम्लीय संतुलन बनाये

रखने में सहायता मिलती है। इसमें शर्करा और प्रोटीन का मात्रा बहुत कम पाया जाता है। इससे प्राप्त कैलोरी की मात्रा अन्य समस्त फलों से कहीं अधिक होती है। कच्चे केले में २० से २५% श्वेतसार, फल पकने पर १४ से २०% तक रह जाती है। शेष शर्करा में परिवर्तित हो जाती है।

केला—भोजन भी, औषध भी

केला बारहों महीने उपलब्ध है। पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर और सस्ता यह केला जलवायु-विचारों का फल है। अनेक देशवासियों का तो केला ही रोटी-पानी जैसा मुख्य भोजन है। जहाँ अनाज उपलब्ध नहीं, वहाँ इसका आटा ही रोटी बनाने के काम आता है। कच्चे केले को सुखाकर रोटी बनाने में उसका आटे का उपयोग करते हैं। इसकी रोटी वायु-विकार दूर करती है। पका केला पाचक, पौष्टिक और शीतल होता है। भ्रम है कि केला देर से पचता है। भले केले खाकर १-२ इलायची खा लेने से तुरंत पच जाते हैं। यह नेत्र रोगों में लाभकारी है और आँतों के कृमियों और रोगाणुओं के लिए तो मृत्युदूत ही है। मूत्र में बढ़ी यूरिक एसिड की मात्रा भी यह आश्चर्यजनक रूप से घटा देता है। जोड़ों के दर्द में लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

केला सुखाकर अंजीर की तरह खाया जाता है। कच्चे केले की सब्जी बनाकर स्वादिष्ट बनती है। पका केला अन्य फलों के सलाद के साथ बढ़िया चाट का आनंद देता है। आजकल तो हथेली पर सलामी जमाने की तरह कच्चे केले को कुत्तियों के रूप से गैस-हीटरों द्वारा पकाया जाता है। सर्दियों में बन्द कमरे में एथिलीन गैस का भी पका लिया जाता है। इसी तरह ताज़े हरे केलों पर आकर्षक चित्तियाँ भी कुत्तियों के रूप से डाल ली जाती हैं।



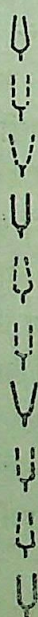
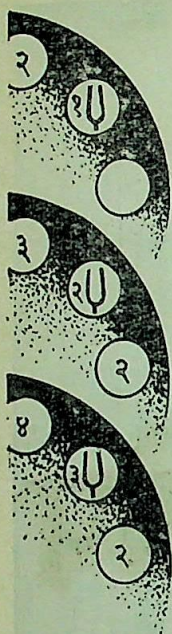
स्ट्रोबोस्कोप

डा. मनोहरलाल शर्मा

हमारे नेत्रों का एक स्वभाव दृष्टि-स्थिरता (persistence of vision) है। इसके प्रभाव से कोई भी वस्तु अपना काल्पनिक बिम्ब प्रायः १/१६ सेकण्ड तक नेत्रपटल (retina) पर छोड़ जाती है। उस समय के व्यतीत होने से पहिले ही यदि वही वस्तु घूमकर पुनः हमारी दृष्टि के सम्मुख आ जाए तो वह दो नहीं, एक ही प्रतीत होगी। चलचित्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है। पर्दे पर तसवीरें इसी के प्रभाव से चलती-फिरती दिखती हैं। इसी दृष्टि-स्थिरता पर आधारित दूसरा उपयोगी यन्त्र स्ट्रोबोस्कोप है। यह शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है जिनका संयुक्त अर्थ है—चक्र दृश्य। अतः इस यन्त्र को चक्रगति-निरीक्षक यन्त्र समझना चाहिए। यन्त्र उद्योग में तीव्र वेग से घूमती हुई मशीनें तथा उनके पुर्जों की गति का माप और गत्यावस्था में ही कार्य-निरीक्षण करने में यह यन्त्र अत्यन्त उपयोगी है। बहुत पहले माइकेल फैरेडे इस विषय में सामान्य रूप से कार्य कर चुके थे, परन्तु सैद्धान्तिक रूप से इसे प्रस्तुत करने का श्रेय फर्डिनेन्ड प्लेटो (Ferdinand Plato) को

है। निश्चित वैज्ञानिक स्वरूप तो १८६६ में आगस्ट टापलर (August Toplar) ने ही दिया। इसके सिद्धान्त को सरल रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है : अत्यधिक वेग से चक्राकार घूमती हुई किसी वस्तु पर एक निश्चित क्रम से प्रकाश रेखा फेंकी जाए अथवा वह वस्तु स्वयं ही एक प्रकाश रेखा को निश्चित क्रम से काटती जाए और उस निश्चित क्रम का वेग उस वस्तु की गति के समकक्ष हो जाए तो वह वस्तु स्थिर प्रतीत होगी। अतः उपरोक्त विधि से प्रकाश रेखा के पड़ने अथवा कटने के जिस वेग पर स्थिरता का प्रभाव प्रतीत हो, वही वेग उस घूमती हुई वस्तु का भी माना जाएगा। निम्न उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा।

एक स्वर द्विभुज (tuning fork) की किसी भी एक भुजा पर हलकी-सी चोट देने पर मधुर स्वर-लहरी गूँज उठती है। वह भुजा प्रकम्पित होकर ही उन ध्वनिलहरों को उत्पन्न करती है। वह कम्पन हम निरी आँखों से न देख सकेंगे। अतः जिस सरल विधि द्वारा उसका कम्पन मापना



ऊपर : यदि चकरी की गति द्विभुज के कम्पन के समान हो जाएगी तो द्विभुज स्थिर नजर आएगा ।

नीचे : दोनों की असमान गत्यावस्था में द्विभुज मन्द प्रकम्पित नजर आएगा क्योंकि प्रत्येक बार वह भिन्न

छिद्र से दिखेगा

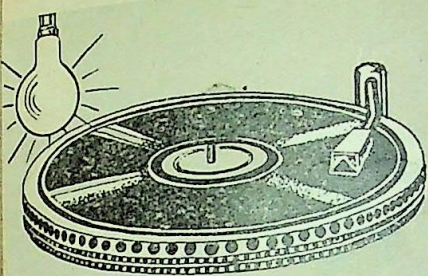
जटिल स्वरूप स्कोप यन्त्र है । प्रयोगस्वरूप दस समान छिद्रों युक्त एक गोल चकरी चित्र में दिखा अनुसार इलेक्ट्रिक मोटर से जोड़ दी जाती है । उसकी सहायता से वह तेजी से गोला में घूम सकेगी । चकरी के पीछे स्वरूप अर्थात् द्विभुज फिट किया हुआ रहेगा । यदि यह चकरी एक सेकण्ड में एक चक्कर पूरा कर ले तो इसके दसों छिद्र एक सेकण्ड में, अर्थात् प्रत्येक छिद्र $1/10$ सेकण्ड में हमारी दृष्टि से निकलता रहेगा । अतः यदि हम समझ लें कि उस द्विभुज की भुजा एक सेकण्ड में दस बार (वस्तुतः काँच की तीव्र गति से) कम्पन करती है तो इस प्रयोग द्वारा वह भुजा स्थिर प्रतीत होगी स्पष्टतः इसका कारण यह है कि दृष्टिरेख के कटने की और भुजा के प्रकम्पन की गति समान हो गयी । इस प्रभाव को गति-स्थिरता (motion freezing) कहते हैं । इस प्रकार चकरी का सही वेग तथा इसके छिद्रों की संख्या ज्ञात होने से भुजा की कम्पन-गति मापी जा सकती है । इसमें एक यह संकेत तब उपस्थित हो सकता है जब चकरी के छिद्रों की संख्या १० के बजाय २०, ३०, ४० हो जाए, तब भी प्रकम्पित भुजा स्थिर ही प्रतीत होगी । इसका रहस्य यह है कि छिद्रों की मूल संख्या जो भी हो, उसका गुणानुपात में बढ़ते हुए छिद्रों पर प्रभाव २०, ३०, ४०, ५० पर भी स्थिरता का प्रभाव बना रहेगा ।

गति-स्थिरता का यह सिद्धान्त सरल उदाहरणों से भी स्पष्ट हो जाएगा । बिजली की सजावटों में प्रायः ऐसे बल्बों की झालरें भी देखते हैं जो घूमते नजर नहीं आती हैं और एक भी बल्ब बुझता हुआ दिखाई देता । उसकी व्यवस्था इस प्रकार की होती है—मान लीजिए, बिजली की भुजा

कि उन दिनों अनेक प्रकार के स्ट्रोबोस्कोप यन्त्र काम में लाये जाते थे। प्लेटो (Plato) द्वारा निर्मित चकरी में लम्बाकार छिद्र रहते थे। उन दिनों इसका अधिक उपयोग ध्वनि-लहरों को मापने के लिए होता था। अतः स्वर द्विभुज की भुजाओं में भी छिद्र रखे जाते थे। इसके अतिरिक्त चक्राकार घूमने वाले कम्पनशील दर्पणों का भी उपयोग होता था।

आज के युग में इलेक्ट्रानिक विधियाँ तो स्वयं ही आश्चर्यजनक हैं। आजकल स्ट्रोबोस्कोप का उपयोग गतिमापन के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता, जितना कि तीव्र वेग से घूमती हुई वस्तु में गति-स्थिरता (motion freezing) का प्रभाव उत्पन्न करके उसी अवस्था में उसकी कार्य-प्रणाली, कार्यक्षमता आदिका सूक्ष्म अध्ययन करना। अतः बड़े-बड़े कारखानों में खराद, (Lathe), बरसे (Drill) आदि का तथा विद्युत वेग से हजारों प्रतियाँ प्रति मिनट छाप देनेवाली प्रिंटिंग मशीनों का चलती हुई अवस्था में सूक्ष्म अध्ययन स्ट्रोबो-स्कोप द्वारा ही सम्भव है।

रिकार्ड के बीच में लगायी गयी अंकित गोल तख्ती ग्रामोफोन की सही गति आने पर स्थिर नजर आएगी



ग्रामोफोन की गति ठीक आने पर बल्ब के प्रकाश में ये बिंदियाँ स्थिर ही दिखेंगी

धारा प्रत्यावर्ती (AC) और ५० चक्कर (cycles) प्रति सेकण्ड की है। उस धारा को इस प्रकार परिवर्तित करके बल्बों में पहुँचाएँगे कि उसकी गति दुगुनी अर्थात् १०० चक्कर प्रति सेकण्ड की हो जाए। फलस्वरूप मुख्य धारा के प्रति एक चक्कर पर बल्ब में दो बार बिजली नहीं पहुँचेगी, अर्थात् वह जलता-बुझता रहेगा। वह गति इतनी तीव्र होती है कि हमारी दृष्टि को उसका आभास नहीं हो पाता।

इसी प्रकार एक ग्रामोफोन रिकार्ड की भी गति मापी जा सकती है। इसमें प्रकाश के लिए मर्करी ट्यूब अथवा दूधिया लैम्प लेते हैं जिससे प्रकाश बिखरे नहीं और साफ, सीधा पड़ता रहे। रिकार्ड के ऊपर एक ऐसी गोल तख्ती बिठा दी जाती है जिस पर आवश्यक माप अंकित रहते हैं। निर्धारित गति न आने तक तो प्रकाश-रेखा भी घूमती हुई दिखती है किन्तु निर्धारित गति आ जाने पर स्थिर प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ रिकार्ड के चक्कर जब प्रति मिनट ७८ हो जाएँगे तो प्रकाश-रेखा स्थिर दिखेगी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में इस विषय पर लिखित सामग्री से ज्ञात होता है

आत्म हत्याएँ

अनिलकुमार जैन

‘मृत्यु पर मानव का बस नहीं’, यह स्वाभाविक मृत्यु के लिए ही सत्य है। कुछ मृत्युएँ ऐसी भी हैं जिन पर मानव का पूर्ण अधिकार है। विवेक-अविवेक, सदाशय-दुराशय द्वारा मानव चाहे तो अस्वाभाविक, असामयिक तथा आकस्मिक मृत्युओं को, हत्या-आत्महत्याओं को टाल सकता है अथवा बढ़ावा दे सकता है।

प्रति मिनट एक आत्महत्या

कुछ ऐसे भी देश-प्रदेश हैं जहाँ सेकण्ड की सुई एक पूरा चक्कर घूमी नहीं, कि किसी का जीवनचक्र भी अन्तिम चक्कर घूम गया। एक मिनट में एक आत्महत्या किसी भी देश अथवा समाज के लिए बड़े से बड़ा अपराध, बड़े से बड़ा कलंक कहा जा सकता है। संसार में सबसे अधिक आत्महत्याएँ क्रमशः जापान, स्विट्जरलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, अमरीका तथा स्वीडन में होती हैं। हमारे देश में भी सौराष्ट्र तथा गुजरात में औसत, विशेषतः स्त्रियों का, प्रतिदिन दो आत्महत्याओं का है।

उत्तरदायी कौन ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए तनिक गहरे उतरना होगा। सरसरी तौर पर यह कहा जा सकता है कि ये हत्याएँ,

आत्महत्याएँ नहीं, प्रेरित हत्याएँ हैं और समाज तथा व्यक्ति इन्हें चाहें तो रोक सकते हैं। इनमें कम से कम ८०% कमी तो की जा सकती है। समाज का आर्थिक असंतुलन, मान-प्रतिष्ठा की भ्रमपूर्ण सीमा, रुढ़िगत दूषित परम्पराएँ तथा अनुचित स्पर्धा ही इन आत्महत्याओं के मुख्य कारण हैं।

दूसरों की तुलना में समान बौद्धिक स्तर का व्यक्ति अपने परिवार में अपने परिवार अपने समाज में जब समान प्रतिष्ठा और स्नेह आदि पाने की अपेक्षा अवहेलना और अभावों का बवण्डर पाता है तो प्रेरित असहाय हुआ आत्महत्या के लिए प्रेरित होता है। उदाहरणार्थ, समाज में अन्य प्रकाश से समान स्तरीय एक परिवार जब विपन्न को सुख-साधन सम्पन्न तथा स्वयं को मंद आवश्यकताओं की भी पूर्ति के साधनों हीन देखता है और उसका दोष स्वयं पर नहीं, समाज के ढाँचे में पाता है तो जीने के प्रति उसका विश्वास हिल उठता है। इसी प्रकार बड़े परिवार में विभिन्न भावों से आयी हुई विवाहिताएँ साथ में लाये दहेज के अनुपात में परिजनों का स्नेह आदर पाती हैं, तो स्वभावतः ही अल्प

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने वाली बधू के दिन सिसकते और रातें रोते ही बीतती हैं। शीघ्र ही वह अशुभ घड़ी आ जाती है जिसको पीड़ित व्यक्ति तो नहीं टाल सकता, किन्तु पीड़ित करने वाले व्यक्ति चाहें तो विवेक-बुद्धि से अवश्य टाल सकते हैं। इसी प्रकार असफल प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी, जब उन्हें कुण्ठाग्रस्त समाज अपनाते को तैयार नहीं होता, इस मार्ग को अपनाते हैं और जो अनमोल जीवन समाज और राष्ट्र के लिए गौरव हो सकते थे, असामयिक, अस्वाभाविक और समाज-प्रेरित मृत्यु की काली चादर ओढ़ने को विवश हो जाते हैं।

कुछ अवलोकन, कुछ तथ्य

विभिन्न अवलोकनों से अनेक विचारणीय तथ्य प्रकट हुए हैं। देखा गया है कि अधिकतर मध्य-स्तरीय व्यक्ति ही आत्महत्या की भावना से पीड़ित रहते हैं। समृद्ध और सम्पन्न व्यक्ति, कठिन परिश्रमी अथवा ठेठ फाकेमस्त व्यक्ति को ऐसी आत्मघाती कल्पना सहेजने का अवकाश ही नहीं होता। मध्यम वर्ग का व्यक्ति यदि व्यावसायिक तथा आर्थिक कठिनाई में है, अविवाहित, अथवा पत्नी द्वारा परित्यक्त है तो उसकी आत्महत्या की सम्भावना अधिक सहज होगी। किन्हीं अवसरों पर आत्महत्या की भावना जब एकाएक नया मोड़ ले लेती है तब हत्याओं का पलड़ा भारी हो जाता है। वैसे भी इन दोनों में आनुपातिक न्यूनाधिकता रहती है, अर्थात् जब एक का औसत बढ़ा हुआ रहता है तब दूसरे का घटा हुआ।

सूक्ष्म अन्तर्वेदनाओं के अतिरिक्त बाह्य परिस्थितियाँ भी इस कुप्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं। उदाहरणार्थ, जब अपने-पराये और दूर-पास के सभी व्यक्ति छुट्टियाँ मनाने के लिए चले गये हों और उदास, उपेक्षित व्यक्ति की छाती पर पहाड़-सा दिन खड़ा हो अथवा सूनी, काली रातें काटे न कटती

हों, तब यह कल्पना और भी जोर पकड़ती है कि जिन्दगी बंकार है और इस घड़ी से अच्छी दूसरी घड़ी मिलेगी नहीं।

इनके अतिरिक्त आत्महत्याओं की आठ-दस हजार घटनाओं के अध्ययन से निम्न निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं :

(१) जो व्यक्ति अन्तरात्मा की आवाज का नियन्त्रण मानता है उसे यदि आत्महत्या की प्रेरणा अन्तरात्मा से ही मिली हो, तो वह किसी के रोके न रुकेगा।

(२) जिस व्यक्ति के तन अथवा मन की पीड़ा सहन-सीमा से बाहर हो चुकी हो, वह इसी मार्ग को अपनाएगा।

(३) किन्हीं मान्यताओं वश जिसकी यह धारणा बन गयी हो कि मृत्योपरान्त समृद्ध और सुखी जीवन प्राप्त होगा, उसे भी कोई न रोक सकेगा। जापान में यही भावना वहाँ की आत्महत्या का अंक संसार भर में उच्चतम पहुँचाये हुए है और वहाँ की 'हाराकिरी' प्रथा सर्वाधिक जन-संहारक है।

(४) असफल प्रेम, तीव्र घृणा और घोर प्रतिहिंसा की भावनाएँ भी जब उचित निष्कासन के मार्ग बन्द पाती हैं तो यही मार्ग शेष रह जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का कथन है कि आत्मघाती बीजारोपण प्रायः बाल्यावस्था में ही हो जाता है। बालक जब देखता है कि माता-पिता की ओर से उसे फटकार ही फटकार मिलती है और उसके भाई-बहनों को लाड़-प्यार मिलता है तो इस अन्याय के प्रति उसकी विद्रोह-भावना अन्दर ही अन्दर बल पकड़ती जाती है। यदि बालक सहनशील और मेधावी रहा तब तो स्वाश्रयी होकर वह निराशाओं का मुँह मोड़ देगा, किन्तु वैसे उदाहरण अपवाद स्वरूप ही होते हैं और अधिकतर परिणाम अवांछित ही निकलते हैं।

यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि एक ओर अनेक जनसंहारक महामारियों की रोक-थाम के लिए विपुल धन खर्च करके बड़ी-बड़ी योजनाएँ, बड़े-बड़े अभियान खड़े किये जाते हैं, दूसरी ओर उन सबसे विकटतम संहारक इस आत्मघाती प्रवृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक ध्यान दिया ही नहीं जाता। कितनी शोचनीय बात है कि एक भली-चंगी जिन्दगी जो स्वयं तो समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो ही सकती थी, वंश-वृद्धि द्वारा अन्य भी योग्यतापूर्ण जनबल दे सकती थी, वह पानी के बुलबुले की तरह यों समाप्त हो जाए मानो थी ही नहीं !

वैज्ञानिकगण इस बात से परेशान नहीं कि अमुक आत्महत्या क्यों की गयी, बल्कि इस बात से हैं कि आत्महत्या की कल्पना ही कहाँ और कब जागृत हुई। उनका अनुमान है कि किसी भी कुण्ठाग्रस्त अथवा असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति का सूक्ष्मावलोकन निरन्तर किया जाता रहे, तो निश्चय ही कुछेक अनमोल जीवन तो बचाये जा सकेंगे। ऐसे व्यक्ति को कुण्ठा अथवा रोग-मुक्त करने के निश्चित प्रयास किये जाएँ तो किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का जनबल व्यर्थ ही नष्ट होने से बचाया जा सकेगा। अनुमान है कि

आत्महत्या का संकल्प आकस्मिक नहीं होता जो व्यक्ति बीत-बीत में ही आत्महत्या संकेत प्रदर्शित करता है, वह उचित उपचार के अभाव में अधिक से अधिक तीन मास आत्महत्या कर गुजरता है।

अतः आवश्यकता इस बात की है अन्याय, अतृप्ति, असमानता और पक्षपाद आदि तत्त्वों को अपने परिवार और समाज से उसी सतर्कतापूर्वक दूर रखा जाए जिस प्रकार प्लेग और चेचक से भय खाया जाता है। पुत्र हो या पुत्रवधू, पत्नी हो या पुत्रवधू, वह जिस क्षण से कुण्ठा और हीनभावना लक्षण प्रकट करे, उसी क्षण से मातृ तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से स्नेह और सहानुभूति से उन लक्षणों को उखाड़ फेंकने का अभियान खड़ा कर दें और संगठित प्रयास द्वारा उन विकट शत्रुओं को इस निर्दयता मार भगाएँ जिस प्रकार किसी अतृप्त की चीरफाड़ कराने में हम तनिक भी से काम नहीं लेते। आत्महत्या मरने के लिए तो अपराध है ही (ऐसा जो भी न किया जा सके!) किन्तु अपराध और उत्तरदायित्व का भार तो चारों ओर की परिस्थितियों और उन परिस्थितियों को खड़ा करने वाले सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही रहता है।

टेलीविजन में रंगारंग

जर्मन वैज्ञानिक इस तैयारी में हैं कि आगामी तीन वर्षों के अन्दर ही आपको टेलीविजन पर मूल रूप के रंगीन चित्र प्रसारित कर दिखायेंगे। तब आप दूर विदेशों के कलाकारों को उनकी मूल रंग-बिरंगी वेशभूषा में ही टेलीविजन पर देख सकेंगे। टेलीविजन पर स्याह-सफेद की अपेक्षा रंगीन प्रसारण अत्यधिक जटिल है। अतः स्याह-सफेद के प्रसारण में प्रचलित वर्तमान विभिन्नताएँ मिटाकर सर्वदेशीय समानता-युक्त प्रणाली निर्धारित करना आवश्यक होगा।

जंतुओं के विचित्र दाँत

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

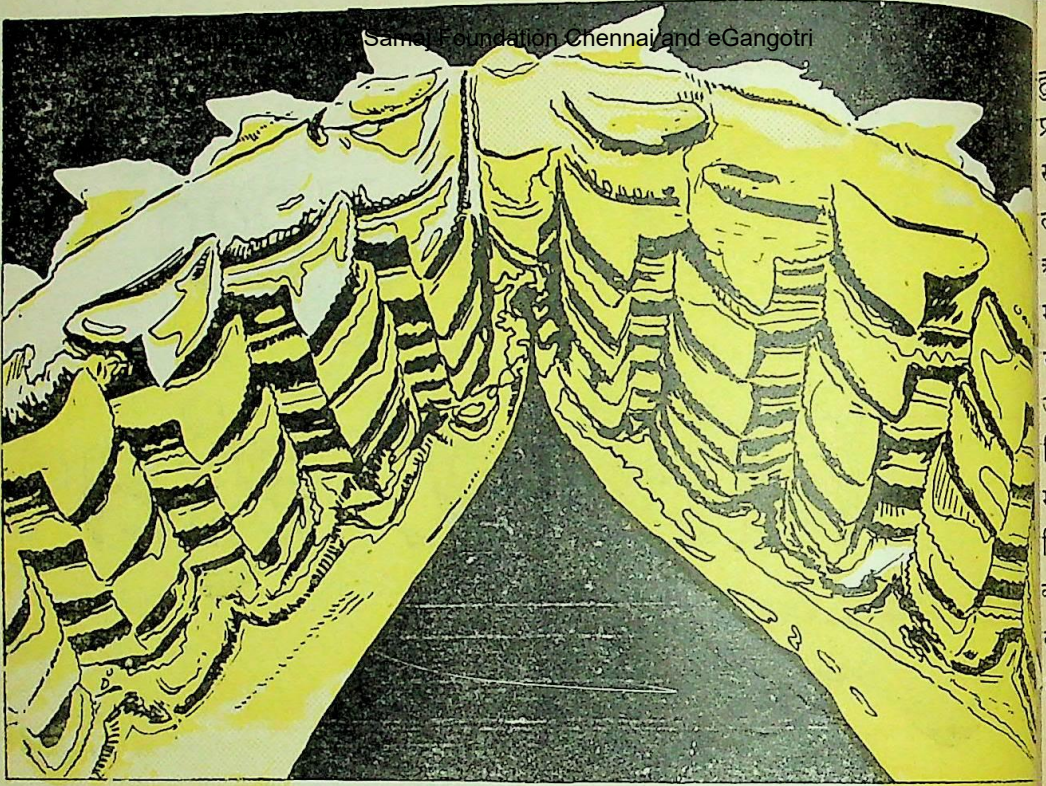
हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और' प्रसिद्ध लोकोक्ति है। अतः प्राणी-जगत में दाँतों का उपयोग खाने के अतिरिक्त अन्य कार्यों में भी किया जाता है। वह कथा पुरानी हो चुकी जिसमें कहा गया है कि एक चूहे ने अपने सिंह मित्र को दाँतों की सहायता से शिकारी के जाल से मुक्त किया था। चूहे के दाँतों की करामात का आधुनिक संस्करण तो कुछ ही वर्ष पहले वह मृत्युंजय चूहा हो गया जिसने साँप द्वारा निगले जाने पर भी हिम्मत नहीं हारी और साँप का पेट ही फाड़कर मुक्त हो गया।

मनुष्य दाँतों का उपयोग भोजन चबाने में करते हैं। नन्हें बालक खेल-खेल में लड़ाई हो जाने पर भगड़े का निपटारा इन्हीं से करते हैं। वन्य पशु शिकार को चीरने-फाड़ने में दाँतों से काम लेते हैं। बिल्ली आश्चर्यजनक कोमलता से अपने बच्चों को दाँत द्वारा ही पकड़कर इधर से उधर ले जाती है। इसी प्रकार सर्प शिशु अपने उस अनोखे

दाँत द्वारा ही अण्डे को चीरकर बाहर आता है, जो तत्पश्चात् शीघ्र ही भड़ भी जाता है। वालरस (walrus) नामक समुद्री घोड़ा तो चलता ही दाँतों की सहायता से है !

हिप्पोपोटेमस के विकराल दाँत





टाइगर शार्क मछली का अक्षय दंत-भण्डार—एक टूटा नहीं कि दूसरा मौजूद !

मेंढक के मुँह में केवल ऊपर के जबड़े में एक पंक्ति दाँतों की होती है जो मुँह में आये हुए शिकार को बाहर निकलने से रोकते हैं। इसी के जाति-भाई टोड तो निरे वेदांती (बिना दाँत के) होते हैं। आरा मछली (saw fish) का लम्बा नुकीला मुँह ही आरी जैसे दाँतों से युक्त होता है।

नेरीस (nereis) नामक समुद्री जन्तु के तो मुँह में नहीं, पेट में दाँत होते हैं। एक ओर चींटी, टिड्डे और भींगुर आदि के दाँत होते ही नहीं, तो दूसरी ओर सीपी और घोंघे में हजारों की संख्या में पंक्तिबद्ध दाँत होते हैं। सी-हार्स (sea horse), पाइप फिश (pipe fish) तथा एसीपेन्सर (acipenser) जैसी मछलियों में भी दाँत नहीं होते। इनकी त्वचा पर उभरे हुए शल्क (scales) ही दाँतों का काम देते हैं। वे शल्क पट्टिका (placoid scales) तथा कुण्डल (cycloid scales) रूप में होते

हैं। इसी प्रकार कछुए भी दंतहीन होते हैं किन्तु उनके जबड़े इतने पैने और मजबूत होते हैं कि सख्त से सख्त चीज भी उनसे आगे नहीं ठहर पाती। टर्न स्टर्ना जति पक्षियों में केवल भ्रूण-दन्त ही देखे गये हैं।

स्तनपायी प्राणियों में प्रायः दो बार दाँत आते हैं। मनुष्यों में भी तो पहले आये हुए दाँत गिरने पर ही स्थिर दाँत आते हैं। कहीं-कहीं तो वृद्धावस्था में भी नये दाँत दर्शन दे जाते हैं ! व्हेल के जीवनकाल में एक ही बार दाँत आते हैं। कुछ प्राणियों को दाँत देते रहने में प्रकृति काफी उदार है। उदाहरणार्थ, सर्प का एक भी दाँत टूटा कि दूसरा नया उपस्थित, और मछली का एक दाँत गिरा कि दूसरा मौजूद। डाग फिश (dog fish) नामक मछली दाँतों की कई पंक्तियाँ होती हैं किन्तु बार में एक ही पंक्ति काम में आती है। मेंढकों, मछलियों में दाँत जड़

हुए न होकर मुखगुहा की अस्थियाँ से इस प्रकार जुड़े रहते हैं जैसे कंघी के दाँते। सर्पों आदि के दाँत मांसपेशियों के सहारे लटके रहते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर अन्दर की ओर मोड़कर रखे जा सकते हैं। मगरमच्छ के दाँत जवड़ों के गड्ढों में जमे रहते हैं। उनमें जब कभी खाद्य कण अटक जाते हैं तो विशालकाय मगरराज को नन्हीं चिड़िया की सहायता लेनी पड़ती है जो, मानो अपने घोंसले में बैठी हो उस निर्भीकता से, मगर का दन्तमंजन करके उन कणों से अपना पेट भी भर लेती है। यों, दोस्ती की दोस्ती और साथ ही मजदूरी की मजदूरी भी बन जाती है।

ऊपर गिनाये हुए अनेक उपयोगों के

अफ्रीकन विषधर के विषदंत

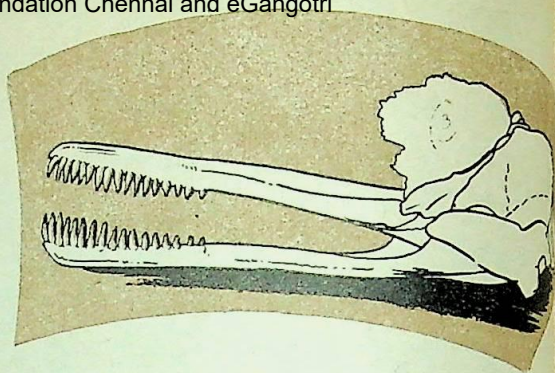
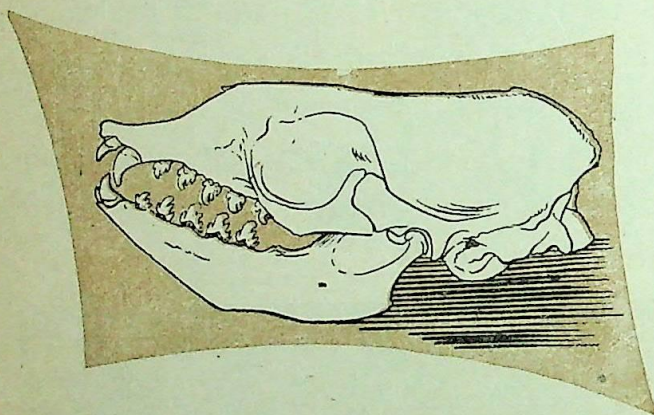
अतिरिक्त दाँतों का एक अन्य भी महत्त्वपूर्ण उपयोग सृष्टि के विकास का क्रमिक अध्ययन है। दाँत और अस्थियाँ ही ऐसी वस्तुएँ हैं जो युग-युगों तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं। प्रकृति के संग्रहालय तो जीवाश्म (fossils) ही हैं। अतः आज भी फासिल के अध्ययन से जीव-विकास की बड़ी रोचक शृंखलाएँ हाथ आती हैं। उन्हीं से ज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक काल जैसे दाँत तो आज हैं ही नहीं। क्या प्राणी, क्या मानव, दाँत का यह स्वरूप ही नहीं था जो आज हमारे सामने है। आदि-मानव के दाँत आज के हमारे दाँतों से कहीं बड़े और विचित्र रचना के थे। यही हाल प्राणियों के दाँतों का भी था। वृहत्काय हाथी जैसे



विशाल जीवों के दाँतों में दृढ़ सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

उस काल में पक्षियों के भी दाँत होते थे। आज सामान्यतः पक्षियों में दाँत नजर नहीं आते। उदाहरणार्थ, आजकल के कबूतर जैसा उन दिनों का आक्सोटाइरेक्स पक्षी लम्बे जबड़े और तीखे दाँतोंयुक्त होता था।

प्रकृति ने प्राणी-प्राणी के दाँतों में



केकड़ा-भक्षक सील के ये दाँत सर्वथा उपयुक्त

केकड़े जैसे कठोर शिकार को चबा सकें

रहस्यों से भरपूर है कि

तो दाँत बिलकुल ही नए

और कहीं एक ही मुँह में

कि गिनने भी कठिन, अब

एक मुँह और १४ हजार दाँत

साइबेरिया से प्राप्त प्रागैतिहासिक

विशालकाय प्राणी का ४½ मीटर

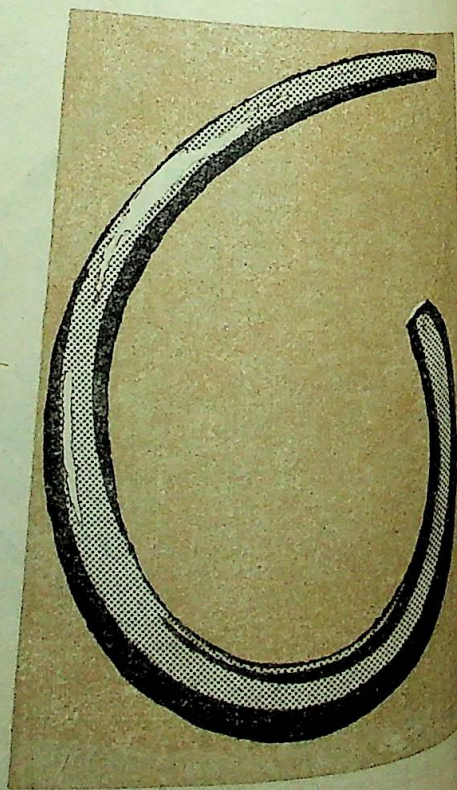
लम्बा दाँत लन्दन में

सुरक्षित है

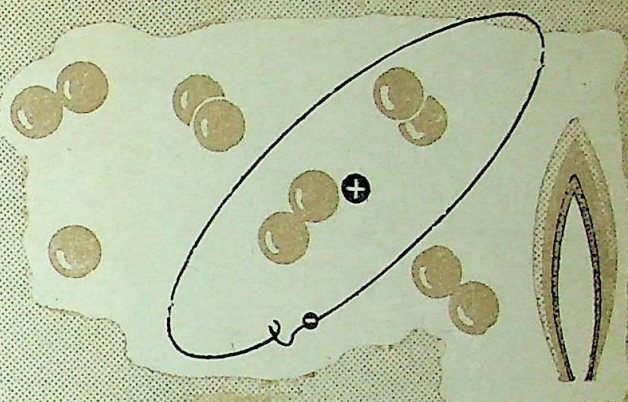
ऐसे ही सार्थक दाँत गंगा-निवासी पारपाइज के हैं जो छलनी के रूप में हैं और नन्हें, फिसलने जीवों को निकलने नहीं देते

बड़ी सूझ-बूझ से विभिन्नता रखी है। जिसका जैसा काम, वैसे उसके दाँत। एक के दाँत दूसरे का काम नहीं कर सकते। मांसाहारी पशुओं के दाँत भोजन को वह रूप नहीं दे सकते जो शाकाहारी के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार भेड़-बकरियाँ अपने दाँतों से मांसाहार नहीं चबा सकतीं। मनुष्य दोनों आहारों का अभ्यस्त है। अतः इसके लिए कहीं कठिनाई नहीं पड़ती। चूहे, गिलहरी, छछूंदर, नेवले तथा बीवर जैसे बिलकारी जीवों (rodents) के दाँत कुतरने योग्य काफी पैसे होते हैं और टूटनेवाले दाँतों के स्थान पर नये दाँत आते रहते हैं।

आप देखेंगे कि प्रकृति भी कितने गूढ़



हाइड्रोजन की उपयोगिता



आदित्यगोपाल भिंगरन

वैसे तो १६वीं शताब्दी में वैज्ञानिक पैरासेलस को यह ज्ञात हो चुका था कि धातु को अम्ल में घोलने पर एक ज्वलनशील गैस प्राप्त होती है, किन्तु कैवेन्डिश ने, जिसे विद्वानों में धनी और धनिकों में विद्वान कहा गया है (जीवनी के लिए देखें अप्रैल ६२ का अंक), उस गैस का विधिवत् अध्ययन किया था। उस समय तो किसी को यह कल्पना भी न रही होगी कि हाइड्रोजन द्वारा उत्पन्न ऊर्जा में संसार को तृप्त करने की क्षमता है। आजकल इस गैस का महत्त्व इसलिए अधिक है कि यह प्रयोगशाला के सामान्य कार्यों से लेकर परमाणु-ऊर्जा तक के उत्पादन में काम आती है।

गुब्बारे

इस गैस का उपयोग गुब्बारा उड़ाने से प्रारम्भ हुआ था। खेल-खिलौने वाले रंग-बिरंगे गुब्बारे तो बच्चों को भी बहुत प्रिय हैं जो इनमें गैस भरवाकर उड़ाते फिरते हैं। मानव-वाहक बड़ा गुब्बारा सर्वप्रथम १७८३ में एस. सी. चार्ल्स ने बनाया था और दो घण्टे की अपनी पहली उड़ान से लोगों को चकित कर दिया था। तत्पश्चात् तो लोगों को बहकाने के लिए कुछ उड़ाके गुब्बारों में

उड़कर ऊपर से विभिन्न वस्तुएँ बरसाते थे। लोग अपने अन्धविश्वास में उन्हें ईश्वर का प्रसाद बरसता समझते थे।

आज इन गुब्बारों के अनेक वैज्ञानिक उपयोग हैं। उनमें वायुमण्डल का अवलोकन प्रमुख है। वायुदाबमापी (barometer), तापमापी (thermometer) तथा रेडियो सांदि (radio sonde) जैसे यन्त्र गुब्बारे में रखकर उड़ाये जाते हैं। वहाँ से वे वायुमण्डल की वस्तुस्थिति का वर्णन रेडियो द्वारा प्रसारित कर देते हैं। इससे वायुयान के यातायात तथा अन्यान्य भौगोलिक स्थितियों की जानकारी में बड़ी सहायता मिलती है।

युद्धकाल में भी गैसीय गुब्बारे बहुत उपयोगी सिद्ध हुए थे। द्वितीय विश्व युद्ध में जापानियों ने चमकीले कागज (silver paper) के बने हुए गुब्बारों में विस्फोटक पदार्थ भरकर उन्हें प्रशान्त महासागर पर छोड़ा था। निश्चित समय पर वे विस्फोट करते थे। उन गुब्बारों में हाइड्रोजन भरी रहती थी और यह खतरा बना ही रहता था कि आकाशीय विद्युत से कभी भी उनमें आग लग सकती थी। अतः अब हाइड्रोजन के स्थान पर कोल गैस अथवा हीलियम-

मार्च १९६३

मिश्रित हाइड्रोजन का उपयोग किया जाता है।

हाइड्रोजनीकरण

वानस्पतिक तेलों का हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) इन दिनों बहुत प्रचलित है। यही हमारा वनस्पति घी है। दिनोंदिन बढ़ती हुई आवादी के कारण शुद्ध घी एक समस्या बनकर रह गया है। शुद्ध घी तो आज आसमान पर चढ़े हुए भावों के कारण जनसाधारण की पहुँच से बाहर है। अतः कुछ अंशों में उसकी पूर्तिस्वरूप यह वनस्पति घी प्रचलित किया गया है। आज इसी उद्योग के सहारे लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की रोजी-रोटी चल रही है। विदेशों में भी पिछले ६०-७० वर्षों से शुद्ध मक्खन की जगह कृत्रिम मक्खन मार्गेरीन (margarine) का प्रचलन है।

यूरोप में पेट्रोल की कमी है। उसके स्थान पर कोयले से गैसोलीन बनाने की अनेक विधियाँ काम में लाई जाती हैं। उनमें फिशर ट्राप की विधि (Fischer Trop's synthesis) उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त, अनेक मछलियों से प्राप्त तेल तथा चर्वी हाइड्रोजन भरे गुब्बारे में अमरीका के एक उड़ाके ने १७६३ में सर्वप्रथम १६३८ मीटर की उड़ान भरी



ज्याँ की ल्याँ खी सैन योग्य तो होती नही
अतः अधिकतर उनका उपयोग साधु
उद्योग में किया जाता है। उसमें भी उन
हाइड्रोजनीकरण इसलिए आवश्यक है कि
उनकी दुर्गन्ध नष्ट की जा सके। वानस्पति
तेलों से प्राप्त द्रवीय कार्बनिक अम्लों का
भी हाइड्रोजनीकरण के पश्चात् मोमक
बनाने में उपयोग करते हैं।

आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला

हाइड्रोजन को शुद्ध आक्सीजन से संयुक्त
कराने पर अति तीव्र ताप, 2000°C ताप
का, प्राप्त होता है। उस ताप का उपयोग
आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला के रूप में करते
हैं। इस ताप पर अधिकांश धातुएँ पिघल
हैं। यह कार्य सामान्य अग्नि द्वारा सम्भव
नहीं। अतः इस ज्वाला का उपयोग वेल्डिंग
अर्थात् धातुओं को जोड़ने में किया जाता
है। और भी अधिक ताप के लिए हाइड्रोजन
की अपेक्षा ऐसीटिलीन गैस का प्रयोग किया
जाता है। फिर भी कुछ विशिष्ट प्रयोजनों
में तो हाइड्रोजन ही उपयुक्त ठहरती है।
उदाहरणार्थ, कृत्रिम मानिक (rubies)
सीसे तथा एल्यूमिनियम की चदरें और
कार्बन रहित मिश्रधातुएँ (alloys) बनाने
में आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला ही उत्तम रहती
है, अन्यथा ऐसीटिलीन के प्रयोग में कार्बन
शोषित हो जाने की सम्भावना रहती है।

हाइड्रोजन गैस को जब टंगस्टन के
विद्युदाग्र द्वारा विद्युत्चाप में प्रवाहित किया
जाता है तब अति उच्च ताप पर हाइड्रोजन
के अणु, परमाणुओं में विघटित हो जाते
हैं। वे परमाणु वायु के संसर्ग में बहुत तेज
तीव्र ज्वाला उत्पन्न करते हैं। इसका
उपयोग अनेक उद्योगों में किया जाता है।
धातुकर्म में हाइड्रोजन

हाइड्रोजन में आक्सीजन से संयोग करने
का गुण तो है ही, अनेक आक्सीजन युक्त

यौगिकों में से आक्सीजन मुक्त कर देने की भी सामर्थ्य इसमें है। आक्सीजन पृथक् करने की विधि को अवकरण (reduction) कहते हैं। उदाहरणस्वरूप, सुख तप्त कापर आक्साइड पर जब हाइड्रोजन प्रवाहित की जाती है तब ताँवा धातु आक्सीजन से मुक्त हो जाती है। इसी प्रकार अन्य धातु आक्साइडों से भी धातुएँ आक्सीजन से मुक्त हो जाती हैं।

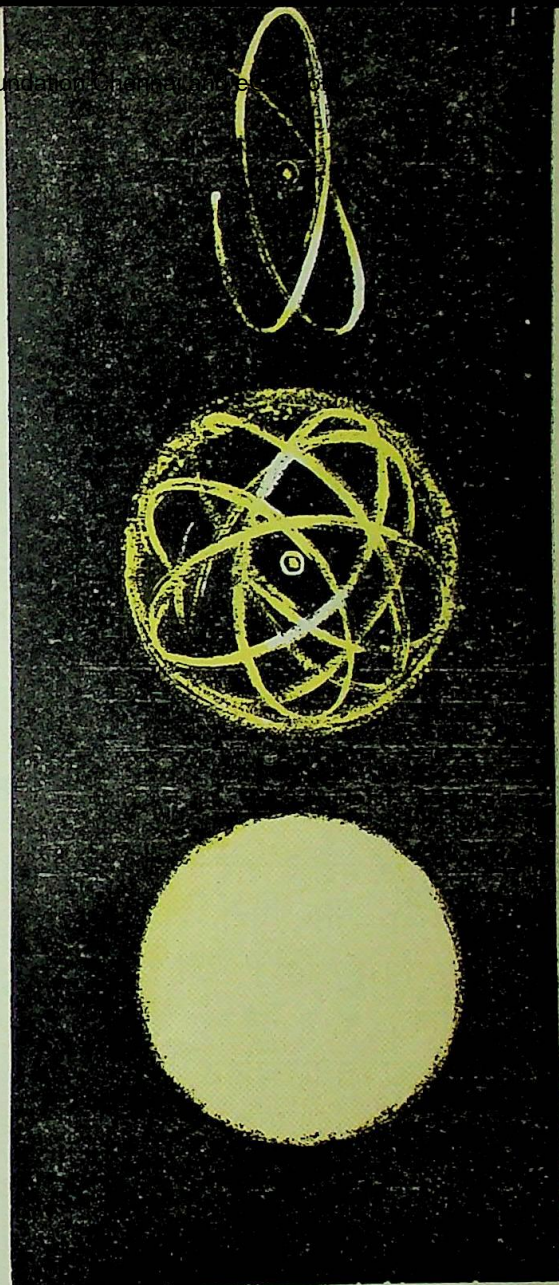
बहु उपयोगी युगल

हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का युगल बहु उपयोगी है। निर्धारित अवस्था में दोनों के संयोग से अमोनिया गैस बनती है। संश्लेषित विधि से अमोनिया बनाने का आविष्कार जर्मन वैज्ञानिक हेबर ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान किया था। नाइट्रेट प्राप्त करने के बाहरी साधन जब जर्मनी के लिए अप्राप्य हो गये तब हेबर की विधि ने ही उस संकट काल में जर्मनी की रक्षा की थी। इस विधि से प्राप्त अमोनिया को नाइट्रिक अम्ल में परिवर्तित कर लिया जाता है। यों अमोनियम नाइट्रेट नाइट्रिक अम्ल तथा पिक्निक अम्ल युद्धोपयोगी तीव्र विस्फोटक T.N.T. तथा डाइनेमाइट आदि बनाने में काम आते हैं।

हाइड्रोजन से ही प्राप्त अमोनियम सल्फेट तथा अमोनियम फास्फेट का उपयोग उर्वरक तथा खादें बनाने में अधिकता से होता है। दवाएँ बनाने में अमोनियम कार्बनेट, ड्राई बैटरियाँ (dry cells) बनाने में अमोनियम क्लोराइड तथा अमोनिया गैस बर्फ एवं प्रशीतन अर्थात् रेफ्रिजेशन में काम आती है।

हाइड्रोजन बम

हाइड्रोजन का सबसे विनाशकारी उपयोग हाइड्रोजन बम के रूप में किया जा सकता है। सन् १९४० से अमरीकन वैज्ञानिक इस दिशा में कार्यरत थे। प्रयोगों के पश्चात् उन्होंने ज्ञात किया कि इसके द्वारा तो परमाणु बम से भी हजारों गुना अधिक शक्तिशाली बम बनाया जा सकता है। इसके लिए हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के नाभिकों (nuclei) को मिलाया जाता है। इस क्रिया में और परमाणु बम के सिद्धान्त में अन्तर है; क्योंकि परमाणु बम के लिए तो

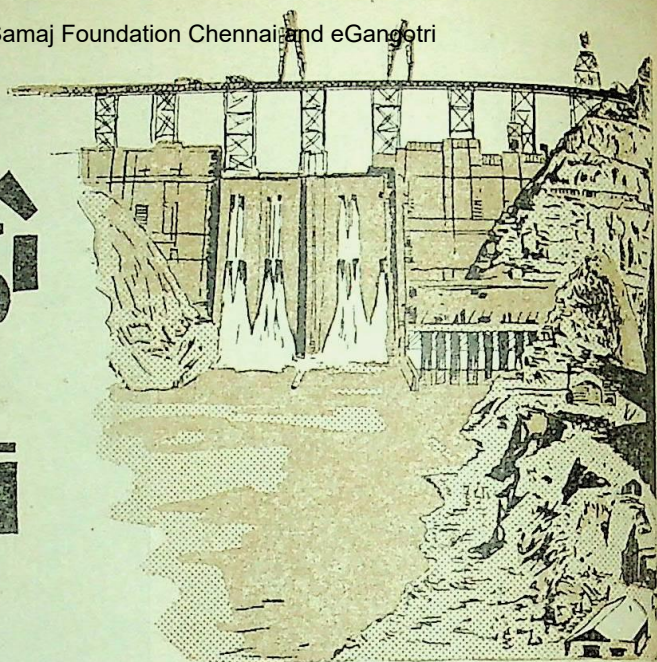


हाइड्रोजन-परमाणु का इलेक्ट्रान चारों ओर इतनी तेजी से चक्कर काटता है कि परमाणु पर एक ठोस खोल-सी प्रतीत होती है

परमाणु विखण्डन (fission) कराना पड़ता है। हाइड्रोजन की दो अन्य किस्में ट्रिटियम (tritium) तथा ड्यूटेरियम (deuterium) भी हैं। इनमें से ट्रिटियम के दो परमाणुओं को जब अत्यन्त उच्च ताप पर ले जाते हैं तब हीलियम के परमाणु का समस्थानिक बनता है। साथ ही न्यूट्रान भी बनते हैं। इस क्रिया में इतनी ऊर्जा निकलती है कि उसकी तुलना में हिरोशिमा पर गिराया गया परमाणु बम कुछ भी नहीं। हाइड्रोजन बम तो सारे संसार को भस्म कर सकता है!

मार्च १९६३

धीरे बहो नदियाँ



राजेन्द्रप्रसाद खन्ना

विफरती हुई नदी के बारे में ही यह कहा गया था—‘धीरे बहो नदिया, धीरे बहो; हम उतरहि पार।’ उन दिनों न तो भाखरा-नांगल थे, न सक्कर बाँध था, न अमरीका का संसार-प्रसिद्ध हूवर बाँध। उफनते नद और विफरती नदियाँ जब अपने स्वभाव पर आ जाती थीं तब उन्हें मनाने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता था ! जो नदी पिछले दिन रक्षिका बनी हुई थी, वही रातोंरात भक्षिका का चण्डी रूप धारण कर लेती थी।

पर्वत से सागर तक

आज विज्ञान के द्वारा नदी के धारा-प्रवाह का, जल-परिमाण का, प्रवाह की दिशा और वेग का तथा समय और काल का अधिकांशतः सही अनुमान लगा लेना सम्भव है। सर्दियों के उतार और वसन्त की शुरुआत से ही उन वैज्ञानिकों का काम शुरू हो जाता है जिन्हें नदियों को नियन्त्रण में रखना है। मैदान में रहने वालों को उन दिनों मौसम काफ़ी सुहावना मालूम होता

है लेकिन पहाड़ों पर उन दिनों भी बर्फ भरपूर साम्राज्य रहता है। बर्फ की ७-८ मीटर की मोटी चादर पहाड़ी ढलानों और घाटियों को घेरे रहती है। वही बर्फ पिघलकर पहाड़ी भरने और छोटी-छोटी सरिताएँ बनकर अन्ततः मिल-जुलकर नदी में मिल जाती है और यों नदी में आ जाती है। वह अनियन्त्रित पानी क्या विनाश कर सकता है यह सब विदित है।

इसी का पहले से ही प्रबन्ध करने के लिए इंजीनियरों का एक दल बर्फ घाटियों में चक्कर लगाना शुरू कर देता है। कुछ समय पहले तक उनके लिए यों घूमना और निश्चित समय पर वापस अपने कैंप में लौट जाना सम्भव नहीं था। कैंप बढ़ते-बढ़ते उन्हें १०-१२ दिन सही लग जाते थे। आज हेलिकाप्टर का यह सम्भव है कि सुबह खा-पीकर निकलें दिन भर काम किया और दिन ढलते कैंप में लौट आये। उस टोली को

जब वर्ष पिघलती है

वर्ष पिघलना शुरू होते ही पहाड़ी भरतों में होड़ लग जाती है। भरने बढ़-चढ़ कर नदी को उफना देते हैं। विफरती हुई नदी जब धुआँधार आगे बढ़ती है तब एका-एक अपने आगे एक बाँध की दीवार को पाकर ठहर जाती है। यहीं पर उसका विभाजन होता है। आवश्यकतानुसार उसका कुछ भाग एक विशाल, गहरी भील में भरने दिया जाता है और शेष भाग उस बाँध के सुरक्षा-द्वारों (safety gates) में से अथवा अतिरिक्त बहाव (overflow) के मार्ग में से निकलने दिया जाता है। भील में भरा हुआ पानी विशाल पाइपों (penstocks) द्वारा नीचे पहुँचाया जाता है। नीचे के विजलीघर में बड़े-बड़े टर्बाइन के पंखों को घुमाने का काम यही पानी करता है। टर्बाइन के पंखे घूमते ही जेनरेटर चालू हो जाता है और उससे उत्पन्न विजली सैकड़ों मील के विस्तार में कारखानों को तथा कोठियों को शक्ति और प्रकाश पहुँचाती है।

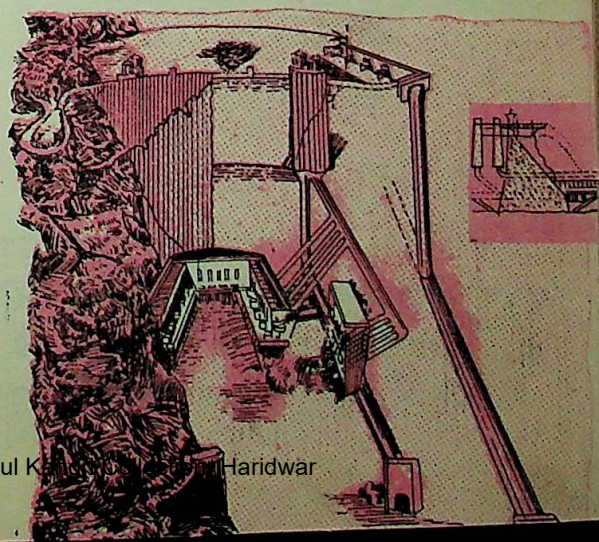
इतना काम करा लेने के बाद नदी को थोड़ा विश्राम दिया जाता है ताकि वह धीरे-धीरे आगे बढ़े। कुछ ही दूर जाने पर उसे

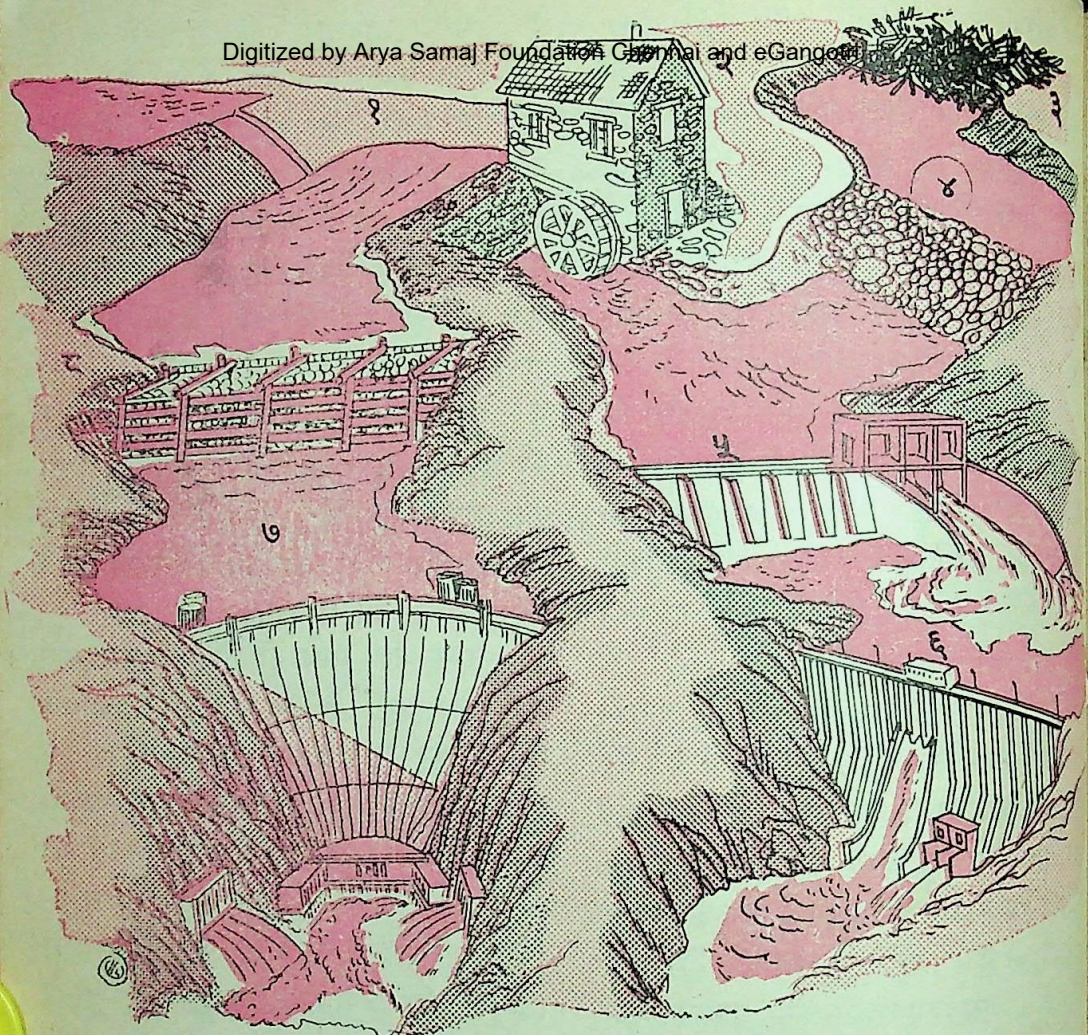
मार्च १९६३

पुनः अन्य छोटे-छोटे विजलीघरों में से निकलना पड़ता है। उस यात्रा के मध्य उसमें से नहरों के रूप में कई शाखा-प्रशाखाएँ निकाल ली जाती हैं। आज नहरें न होतीं तो सब ओर मरुस्थल ही नजर आता। जहाँ पर खुली नहरें बनाना सम्भव नहीं वहाँ बड़े-बड़े पाइपों (aqueducts) द्वारा मीलों दूर तक पानी पहुँचाया जाता है। बीच-बीच में उन पाइपों में बन्द पानी को भी एक कुण्ड के रूप में खुला रखकर पुनः पाइप में प्रविष्ट करा दिया जाता है जिससे ताजी हवा, तथा धूप उसे मिल सके।

बाँध निर्माण की आवश्यकता

समय के साथ ही यह आवश्यकता बढ़ती जा रही है कि अधिक से अधिक विजली का उत्पादन हो और अधिक से अधिक सिंचाई द्वारा खाद्य-उत्पादन बढ़ाया जाए। बाँध की मुख्य तीन उपयोगिताएँ हैं : (१) विनाशकारी बाढ़ों की रोकथाम, (२) सूखे दिनों के लिए जल-संग्रह तथा (३) विद्युत-उत्पादन। कुछ बाँध तीनों प्रयोजन के लिए, कुछ दो और कुछ एक ही उद्देश्य के लिए बनाये जाते हैं। बाँध कैसा भी बनाया जाए, उसके उपयुक्त स्थल का चुनाव सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। यही काम उस इंजीनियरिंग दल का पहला कदम है। सिर्फ बाढ़ रोकने के लिए बाँध बनाना हो तो शहर के नजदीक, नदी के बनने की तैयारी में बाँध





भाँति-भाँति के बाँध—१. मिट्टी के भराव का, २-३. बीवर निर्मित, ४. ढोकों के भराव का

५. अनेक खंभों युक्त, ६. अनेक मेहराबों का, ७. बड़ी मेहराब का

किनारे कहीं भी बनाया जा सकता है। यदि विद्युत-उत्पादन का भी लक्ष्य है तो ऊँची पहाड़ी जगह चुननी होगी जहाँ से टर्बाइन के इंजन चलाने के लिए पानी काफी वेग से नीचे गिर सके। वे वहाँ की चट्टानों के नमूने भू-शास्त्रियों के पास इस परीक्षण के लिए भेजेंगे कि समूचे बाँध का भार तथा खिंचाव वे चट्टानें सह सकेंगी या नहीं।

बाँध की भिन्न-भिन्न किस्में

तत्पश्चात् यह निर्णय करना पड़ेगा कि बाँध कितना चौड़ा, मोटा, ऊँचा और कुल कितना भारी होना चाहिए। बाँध से सम्बन्धित भील की दीवारें बाँध पर अपना

दबाव डालेंगी और बाँध स्वयं अपना दबाव उन चट्टानों पर डालेगा जिनके सहारे उन खड़ा होना है। मुख्यतः बाँध निम्न किस्मों के बनते हैं : (१) मिट्टी भरकर (earth-filled), (२) ढोके भरकर (rock-filled), (३) ईंट-चूने के ठोस (solid masonry), (४) ईंट-चूने के पोले (hollow masonry), (५) सीधे या शंकु-आकार के (flat or cone shaped), तथा (६) मेहराबदार (arched)।

इनमें मिट्टी के भरावदार बाँध सबसे कम खर्चीले हैं किन्तु ये अधिकतर बड़े सुविधाजनक हैं जहाँ अधिक ऊँचाई की आवश्यकता न हो और मिट्टी खोदने से

विज्ञान-तन्त्र

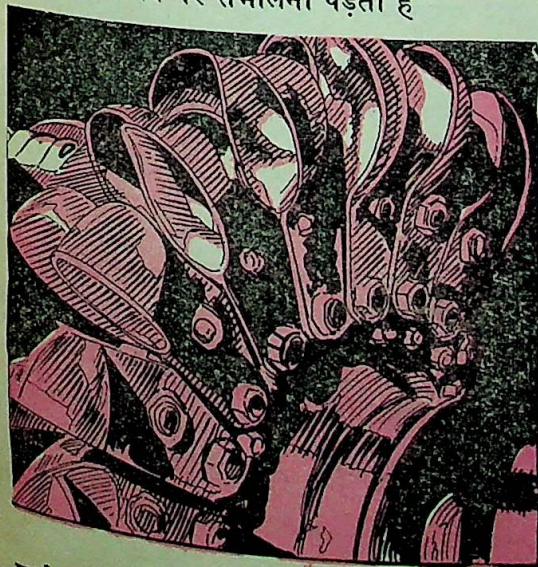
ढोने-भरने आदि के भारी आधुनिक यन्त्र वहाँ सरलता से पहुँच सकें। पहाड़ी जगहों पर कंक्रीट का बाँध बनाना उपयुक्त है। सपाट दीवार की अपेक्षा मेहराबदार बाँध बनाने में यद्यपि सामान कम लगता है लेकिन मजदूरी बहुत अधिक लगती है।

बाँध की सुरक्षा

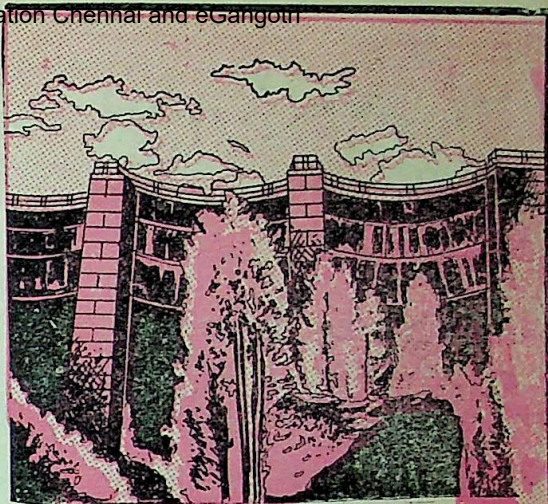
बाँध बन जाने पर उसकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है। बाँध के पश्चात् धीरे-धीरे कंक्रीट सूखने के समय रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप काफी ताप उत्पन्न होता है। इस ताप से बाँध की रक्षा करने की भी पूर्व व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः कंक्रीट के बीच-बीच में स्टील के पाइप फिट किये जाते हैं जिनमें से ठण्डा पानी आवश्यकतानुसार बहता रहता है। बाँध की ऊपरी सतह को अनियमित ताप आदि से बचाने के लिए मिट्टी के बाँध पर घास वगैरह उगाई जाती है तथा कंक्रीट की सतह पर एस्वेस्टस (asbestos) को अल्यूमिनियम पेंट में मिलाकर लगा दिया जाता है।

दलदल का प्रश्न

बाँध के निर्माण में दलदल भी एक समस्या उत्पन्न कर देता है। नदी अपने साथ रेत, पानी के वेग से चुटीले टर्बाइन के पंखों को समय-समय पर सँभालना पड़ता है



मार्च १९६३



मेहराबदार बाँध में सामान कम, मजदूरी अधिक लगती है

मिट्टी, कीचड़, घास-फूस, तथा तमाम कूड़ा-करकट घसीटे चलती है। यह दलदल बाँध के निकट आकर बड़ी कठिनाई पैदा कर देता, भील के तले में बैठ-बैठकर काफी जगह घेर लेता है और यदि यह खिड़कियों में से यों ही गुजरता रहा तो पानी के निकलने का मार्ग ही रोक देता है। इसके लिए कई बाँधों में जरा निचली सतह पर दलदल-निकास खिड़कियाँ (sluicing gates) बनाये जाते हैं जिनमें से अधिकांश दलदल निकल जाता है और साफ पानी ऊपर से बह जाता है। इसके विपरीत, कई बाँधों में कुछ ऊँची सतह पर केवल साफ पानी के लिए खिड़कियाँ रखते हैं जिससे दलदल युक्त पानी नीचे ही बैठा रह जाए।

पानी की चोट तथा उसमें घुले हुए मिट्टी-मसालों की प्रक्रिया टर्बाइन के पंखों को खा जाती है। वेग से टकराते हुए पानी का ताप काफी बढ़ जाता है और पानी उबलने लगता है। वह ताप तथा पानी में घुले हुए रासायनिक पदार्थ टर्बाइन के पंखों को हानि पहुँचाते हैं। अतः बीच-बीच में उन्हें ठीक करना पड़ता है।

इस प्रकार बाँध बनाकर विद्युत् उत्पादन, सिंचाई तथा परिवहन आदि अनेकानेक उपयोगी कार्य लिये जाते हैं।

विचित्र संसार

गाय के मुँह में सोने के दाँत

वाशिंगटन (अमरीका) के निकट सोने की खानों के प्रदेश की यह बात है। वहाँ के निकटवर्ती घास के मैदानों पर स्वर्णधूलि की बारीक गर्द खानों से उड़-उड़कर छायी रहती है। उन मैदानों में चरती हुई गायों के दाँत प्रायः ही स्वर्णविरित हो जाते हैं। दाँतों का कैलसियम स्वर्णकणों से संयुक्त होकर सोने की स्थायी परत दाँतों पर जमा देता है। कुछेक ऐसे स्वर्ण-दाँतोंयुक्त गायों के जबड़े वहाँ संग्रहालय में रखे भी हैं !

७१ वर्षों तक दिन-रात जागता रहा !

पेरिस का आर्मण्ड जेकस (१७६१-१८६४) ऐसा ही कुशल न्यायशास्त्री था जिसे 'न्याय की अक्षय मशाल' कहा गया है, अर्थात् न्याय की ऐसी ज्योति जो दिन-रात में एक क्षण के लिए भी न बुझ पाई। जेकस जब दो वर्ष का था, एक मेले की भीड़ में दुर्घटना वश दब-कुचलकर बेहोश हो गया था। मस्तिष्क की भीतरी गहरी चोट से काफी दिनों बाद पूर्णतः होश में आया, तब तक अपना पिछला इतिहास सब कुछ भूल चुका था। उस मस्तिष्क की चोट के कारण उसके निद्रा-तन्त्र ने ऐसी करवट बदली कि बाद के ७१ वर्षों तक पल भर के लिए भी सो न सका। निद्रा के अभाव ने उसे अस्वस्थ रखा हो, ऐसा भी नहीं। वह अपने जीवनकाल का अति प्रसिद्ध और प्रमुख न्यायशास्त्री था। इस प्रकार वह सशरीर ही न्याय की ऐसी मशाल था जो सचमुच ही ७१ वर्षों तक दिन और रात निरन्तर जलती रही !

आज भी हाथी ऐसा प्राणी है जो पालन-क्रिया के प्रारम्भिक काल में अपने पालने वाले की भाषा, चाहे कुछ भी हो, समझने से इनकार करता है। वह तो अपने चिरपुरातन वही चीख सुनना चाहेगा जिसके द्वारा आदि-मानव, गुहा-काल के मानव सर्वप्रथम लगभग ५०००० वर्ष पूर्व उसे कान में किया था। उसके आगे चाहे जिस भाषा में बकना-भकना, चीखना-समझाना सार्वजनिक व्यर्थ है। आश्चर्य है कि बदलते हुए समय के साथ पाँच सौ शताब्दियों के बाद भी हाथी पुरानी चीख के लिए अपना मोह नहीं छोड़ सका है !

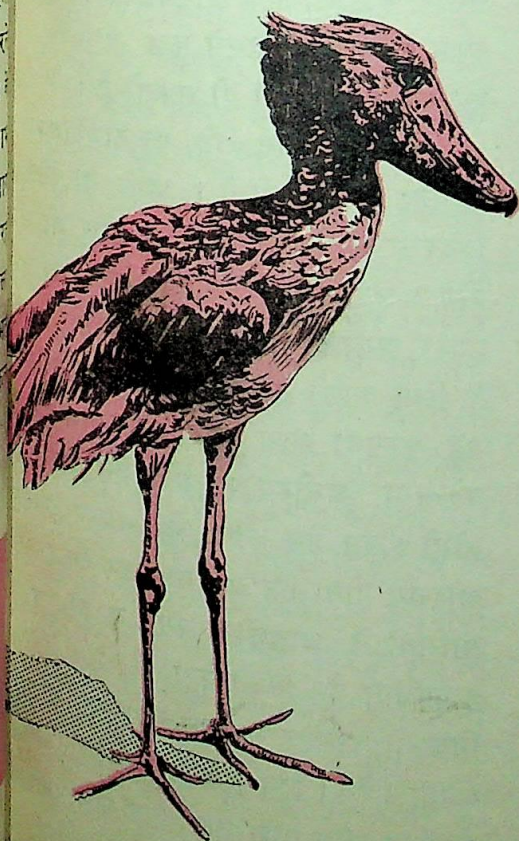
यहाँ बड़ा, छोटे से हारता है

चित्र में दिखाया गया बड़ा गुबरेला कीड़ा छोटे का पीछा कर रहा है। दोनों की जाति में अन्तर है और छोटे की विशेषता बड़े को मालूम नहीं। छोटा गुबरेला विस्फोटक वर्ग का है। यह उन विषम जन्तुओं में से है जो शत्रु से पीछा छुड़ाने के लिए अपनी बमवर्षक विशेषता का लाभ उठाते हैं। पूँछ के निकटस्थ अपने पृष्ठ भाग से तीव्र दुर्गन्धयुक्त ऐसा तीखा द्रव रहस्य से निकालता है जो शत्रु को रूक कर उछालता है मानो कोई रिवातकर चला रहा हो ! बड़ा गुबरेला चकित और स्तब्ध रह जाएगा तब तक छोटा साफ निकल जाएगा !



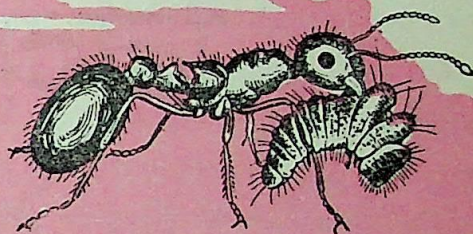
मृत्यु से भेंट—एक धड़ाका
 प्रकृति में एक ऐसा विचित्र जीव भी
 जो मृत्यु से भेंट करता है तो एक विस्फोट
 साथ, यों ही गुपचुप नहीं। वह एक जल-
 जीव है और इस प्रकार आवाज करने के
 कारण उसे स्टेन्टर (Stentor) कहते
 हैं। मृत्यु का स्वागत वह एक विस्फोट के
 साथ करता है।

चोंच बनाम जूते का बाप
 दक्षिणी-पश्चिमी सूडान, यूगाण्डा और
 कांगो के दलदली विस्तारों में पाये जाने वाले
 बगुले पाँच फुट ऊँचे हैं। इनकी चोंच की
 विचित्रता से अरब निवासियों ने इन्हें 'जूते
 का बाप' (Abumarkub) उपनाम दे रखा
 है। चोंच दूर से एक बृहदाकार जूता ही
 देखती है।



आदश आदान-प्रदान

यह प्रमाण सिद्ध है कि चींटियों और
 तितलियों में गूढ़ और प्रगाढ़ मैत्री है। फूलों
 से मधु चूसी हुई तितली का नन्हा लार्वा
 स्वयं भी मधुपूर्ण होता है। चींटी उसे



सावधानी पूर्वक अपने घर में ले आती है
 और उसके परिचित अंग को सहला-सहलाकर
 उसका मधु अपने परिवार के लिए जुटा
 लेती है। इतने से वह लार्वा मरता तो नहीं,
 वेदम अवश्य हो जाता है। तब उसे रुग्णालय
 में पहुँचा दिया जाता है, जहाँ वही चींटी जो
 उसे प्रारम्भ में लाई थी, उसकी सेवासुश्रूषा
 करती है। कुछ दिन बाद स्वस्थ होने पर वह
 लार्वा भी पूर्ण तितली बन जाती है और
 अपने आतिथेय के घर से विदा ले लेती है।

मछलियों का तैरता हुआ कारखाना

चार सौ मल्लाहों तथा विविध यन्त्र-
 सज्जायुक्त एक अति विशाल जहाज जर्मनी
 के कील बन्दरगाह पर तैयार हो रहा है।
 जब इसे तैराया जाएगा तब मालूम होगा
 मानो एक विशाल कारखाना ही तैर रहा है
 जिसमें मछली फँसी नहीं कि कटाई, छिलाई
 सफाई और पैकिंग तक के सारे कार्य वहीं
 के वहीं सम्पन्न हो जाएँगे। ब्लाडीवोस्टक
 नामक यह विशाल जहाज रूस के आर्डर
 पर जर्मनी तैयार कर रहा है। इसमें कई
 हजार टन मछलियाँ प्रतिदिन तैयार की जा
 सकेंगी। इस जहाज में ही सिनेमा, लाण्डी,
 छोटा-सा मार्केट और हेलिकाप्टर के लिए
 भी आवश्यक स्थान-सुविधा है।

अव्यक्त के निवासियों से बातचीत

डा. शिवगोपाल मिश्र

पृथ्वी पर आरूढ़ होकर आज का मानव स्वयं को सिरताज मान बैठा है। वह यह मानने के लिए तैयार नहीं कि अन्य लोकों में भी सभ्य प्राणी हो सकते हैं। हमारी पृथ्वी आकाशगंगा कहलाने वाले उन लाखों नक्षत्रपुंजों में से केवल एक पुंज का अंग मात्र ही तो है ! अतः क्या यह सम्भव नहीं कि इस पृथ्वी का मनुष्य एक न एक दिन उन अन्य लोकों के वासियों से भेंट करे ?

मैरिनर द्वितीय द्वारा शुक्रग्रह के विवरण प्राप्त होने के पश्चात् तो यह आशा बल पकड़ने लगी है। अमरीकी नोबुल पुरस्कार विजेता मुलर तथा शेपले का मत भी इसी की पुष्टि करता है। तो आखिर हम उन अन्य लोकवासियों की वाणी क्यों नहीं सुन पाते ? सम्भव है आज से बीस या बीस हजार वर्ष बाद वे वाणियाँ सुनने को मिलें। तब अन्तरिक्ष की वेधशालाओं में रखे हुए विविध यंत्रों द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के रूप में टेप पर संकेत होने लगेंगे। उन

वेधशालाओं के निरीक्षक चकित हो जायेंगे कि देखेंगे कि दूसरे स्टेशन पर भी रेखाएँ खिंच रही हैं। घण्टे भर में संसार को पता चल जाएगा कि लोक के वासी ने हमसे कुछ बातें वह ध्वनि उसी की हो सकती है।

वे प्राणी कौन होंगे, यह अभी कल्पना में भी नहीं है। अभी तो विश्वास भी न करेगा कि वे बोल होंगे। जब उस प्रकार की होकर जमा होंगी तब हमारी के लिए काफी सामग्री मिल यह कल्पना सत्य ठहरी तो को नया, अनोखा ही मोड़ दे होगी। तब उस काल का आश्चर्य होगा कि अब तक उन वासियों से बातचीत तत्पश्चात् इस पृथ्वी के निवासी परस्पर सम्बन्ध प्रयत्न करेंगे। उस फ्रेडरिक गौस तथा नक्षत्रविद्

पूर्वदृष्टा सिद्ध होंगे, क्योंकि उन्होंने अन्य
 कों में प्राणियों के होने की सर्वप्रथम
 पना की थी। इसी प्रकार चार्ल्स क्रॉस
 प्रशंसा का पात्र बन जाएगा जिसने
 पृथ्वी का गणित-ज्ञान नक्षत्र लोक के
 सियों को सिखाने का विचित्र सुझाव रखा
 । उसका सुभाव था कि एक बहुत लम्बी
 डी चिता साइबेरिया अथवा सहारा जैसे
 सीम मरुविस्तार में तैयार की जाए ताकि
 कट के प्रदेशों को अग्नि की लपटों से
 ई हानि न पहुँचे। वह चिता पाइथो-
 रस के प्रमेय के रूप में बनायी जाए।
 भी उस लोक के वासी यह जानेंगे कि
 ध्वनिवासी गणित में ही सोचते हैं। तभी
 डियो-सौरविज्ञान के प्रवर्तकों कार्ल जेंस्की,
 लीप मारिसन तथा फ्रेंक ड्रेक आदि के
 म पर सड़कों के नामकरण हो जाएँगे,
 क्योंकि इन्हीं ने तो १९६० में उन दो नक्षत्रों
 साथ पृथ्वी का सम्पर्क स्थापित करने का
 यास किया था जो पृथ्वी से ग्यारह प्रकाश-
 की दूरी पर स्थित हैं !
 १९६० के प्रारम्भ में पश्चिमी वर्जी-
 या की ग्रीनबैंक स्थित वेधशाला में नक्षत्रों
 रेडियो-सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास
 तो किये गये थे। तब उन्हें बीच ही में यह
 र स्थगित कर देना पड़ा था कि न तो
 कुछ सुनायी ही पड़ रहा है, न कुछ रिकार्ड
 जा सका है। जो संकेत प्रेषित किये
 गये हैं वे १९७१ तक तो लक्ष्य के नक्षत्र
 पहुँच पाएँगे और यदि उनका कुछ
 मिला भी तो १९८२ से पूर्व यहाँ
 न हो सकेगा। इस निराशावादी
 कोण की आलोचना करते हुए सोवियत
 विद् जोसेफ श्लोव्स्की ने कहा है कि
 परीक्षणों को यों स्थगित न कर देना
 चाहिए, क्योंकि जिन निकटतम नक्षत्रों पर
 संकेत मिलने की आशा रखी जा

सकती है, वे ११ नहीं सैकड़ों प्रकाशवर्ष की
 दूरी पर स्थित हैं। अतः हमें अपने रेडियो
 संकेत बराबर भेजते ही रहना चाहिए। न
 जाने कितनी शताब्दियों से वहाँ के निवासी
 हमसे सम्पर्क स्थापित करने को उत्सुक
 होंगे !

ऐसा एक लघु प्रयास ब्रिटेन में भी
 किया जाने वाला है, किन्तु उस योजना को
 अभी प्रकाशित नहीं किया गया है। डा. आर.
 सी. जेनीसान का मत है कि नक्षत्रवासियों
 के द्वारा प्रेषित संकेत हमें अभी तक इसलिए
 नहीं मिल पाये हैं कि हमारी पृथ्वी के
 वायुमण्डल की ऊपरी परतें वहाँ से आने
 वाली समस्त ध्वनि-लहरों को ऊपर ही
 ऊपर परावर्तित करती रहती हैं। अतः
 ब्रिटिश वैज्ञानिक ऐसे रिसीवरों और ट्रान्स-
 मीटरों को अपने कृत्रिम उपग्रहों पर स्थापित
 करना चाहते हैं जो विशिष्ट आवृत्तियों पर
 कार्य कर सकें। सम्भव है कि अमरीकी
 वैज्ञानिक मैमान द्वारा १९६० में सर्वप्रथम
 प्रयुक्त लेसर विधि के उपयोग से एक नवीन
 दिशा प्राप्त हो सके और कुछ नवीन लोकों
 की भाँकी मिल सके। अनेक प्रयोगशालाएँ
 इसी लेसर विधि पर कार्य कर रही हैं।
 अब तो १०० करोड़ वाट प्रति वर्ग सेंटी-
 मीटर की तीव्रता का प्रकाश उत्पन्न करना
 सम्भव हो गया है। यह प्रकाश सूर्य के
 प्रकाश से दस लाख गुना अधिक तीव्र है !

इन उपकरणों के बल पर आशा है कि
 मानव उन अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त
 कर सकेगा जो अब तक उसे अन्य लोक-
 वासियों से बात करने में रुकावट डालती
 थीं; लेकिन तब भी मानव क्या इस प्रयास
 में सचमुच सफल हो सकेगा ? इसी आशय
 का प्रश्न अमरीकी लेखक ब्रेडबरी ने भी
 रखा है कि यदि यहाँ का मानव प्रथम बार

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

डीजल इंजन का आविष्कार

इडोल्फ डाजल्

केदारनाथ



‘शाड नाइट दोस्तो, सुबह फिर मिलेंगे !’

लेकिन उसके लिए वह सुबह आयी ही नहीं। २६ सितम्बर १९१३ की वह रात उसके लिए कालरात्रि बनकर रह गयी। जितनी बड़ी वस्तु उसने संसार को परिवहन और यातायात के क्षेत्र में दी, मृत्यु का उतना ही बड़ा रहस्य छिपाये हुए वह महान् व्यक्ति अदृश्य भी हो गया। खोज-खोजकर हारे हुए पुलिस गुप्तचर और समाचारपत्रों ने भी आखिर चुप्पी साध ली। काल की सतह पर दिनों और वर्षों के कितने ही पानी बह गये। संसार उसे एक प्रकार से भूल-सा चला। तभी उसकी महान् उपलब्धि ने करवट बदली और उसके आविष्कार की विलक्षण उपयोगिता ने उसके नाम पर जमी हुई विस्मृति की धूल उड़ा फेंकी। वह था, जर्मन वैज्ञानिक डीजल—आज के सर्वाधिक उपयोगी डीजल इंजन का आविष्कारक—रुडोल्फ डीजल।

डीजल का जन्म १८५८ की १८ मार्च को पेरिस नगर में हुआ था। उसके माता-पिता जर्मन थे। प्रारम्भिक शिक्षा पेरिस में ही चल रही थी कि १८७० में फ्रांस और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ गया। १२ वर्ष के

रुडोल्फ को लेकर उसके माता-पिता इंग्लैण्ड में शरण ली। वहाँ घर से दूर पैदल ही स्कूल जाना पड़ता। रुडोल्फ बचपन से ही मेधावी था। की आयात में वह म्यूनिख टेक्निकल का स्नातक इंजीनियर बन अध्ययनकाल में वह प्रो. वान सम्पर्क में आया। वान लिन्दे उस प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे जिन्हें वायु को द्रवित करने का श्रेय प्राप्त था। एक दिन कक्षा में सहज ही एक छात्रों को नोट करायी। उस पर ध्यान दिया, न दिया; किन्तु लिए तो काफी के हाशिये पर व्याख्या एक विकट प्रश्न चिह्न बन वह व्याख्या थी—‘स्टीम इंजन की कुल मात्रा का केवल १२% ऊर्जा में परिणत कर पाता है।’ कि शेष ८८% ताप का व्यर्थ बड़ा अपव्यय था।

बड़ा अपव्यय था ।
 इस प्रश्न चिह्न ने रुडोल्फ को
 नहीं बैठने दिया । १२ वर्ष का
 इसी में बीत गया कि इसका
 किया जा सके । इस बीच वह

रेफ्रिजरेटर निर्माता के प्रश्न का हल खोजने में भी रहा और अपने प्रश्न का हल खोजने में भी लगा रहा। १८६३ में उसने डीजल इंजन का प्रथम माडल तैयार किया और अपने अध्ययन का संक्षिप्त सार Theory and Construction of a Rational Heat Motor के नाम से एक पत्र के रूप में प्रकाशित कराया। उसी पत्र ने डीजल इंजन के सिद्धान्तों का सूत्रपात किया और डीजल को प्रसिद्धि दिला दी।

संयोगवश उसका प्रथम प्रदर्शन पूर्णतः सफल न हो सका। चालू होते ही इंजन तप्त वायु का विस्फोट सहन न कर सका और टूट-फूट गया, किन्तु रुडोल्फ निराश नहीं हुआ। उसने दर्शक-वैज्ञानिकों का इस तथ्य द्वारा समाधान कर दिया कि भले ही इंजन वह धक्का न सह सका परन्तु सिद्धान्त तो अपनी जगह अक्राट्य ही था। उस सिद्धान्त के अनुसार कम्प्रेसन इग्नीशन इंजन को कार्य करना ही चाहिए। रुडोल्फ के समाधान से क्रप (Krupp) तथा आग्सबर्ग (Augsburg) नामक दो प्रसिद्ध इंजन-निर्माता आश्वस्त हो गये और उन्होंने भरपूर सहयोग दिया। सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप चार वर्ष पश्चात् १८६७ में २६ हार्स पावर के डीजल इंजन का सफल प्रदर्शन हुआ।

डीजल इंजन में ऐसी क्या विशेषता थी जिसने रुडोल्फ को वह प्रसिद्धि दिलायी? इसकी मूल कल्पना में उसके पुरोगामी एक ब्रिटिश वैज्ञानिक हर्बर्ट एक्राइड स्टुअर्ट का भी भाग है। दोनों का लक्ष्य एक ही रहा कि इंजनों के लिए रिफाईंड पेट्रोल बहुत महंगा पड़ता है। अतः उसके स्थान पर सस्ता बनाया जाए जिसमें घटिया, भारी और सस्ता तेल उपयोग में लाया जा सके। उस आविष्कृत डीजल इंजन में वह

यह भी थी कि पेट्रोल इंजन में लगने वाली इग्नीशन-व्यवस्था (ignition device) उसमें आवश्यक न थी। कम्प्रेस्ड वायु का ही ताप इतना बढ़ाया जा सकता था कि कम्प्रेसन स्ट्रोक लगते ही ऊर्जा उत्पन्न हो जाए। दूसरी विशेषता यह थी कि पेट्रोल इंजन में तो तेल को ज्वलनशील गैस में परिणत करने तथा वायु से मिश्रित करने के लिए कारब्यूरेटर आवश्यक है जबकि डीजल इंजन में वह भी आवश्यक नहीं। इसमें तो भारी, मोटा, हलका, सस्ता तेल काम आ जाता है। होता केवल यह है कि सिलिण्डर में पिस्टन सादा हवा खींचकर उसे ३५ वायुचाप तक दबाता है। फलतः उस संकुचित वायु का ताप 500°C तक पहुँच जाता है। इससे पूर्व कि पिस्टन चरम बिन्दु पर पहुँचे, उस तप्त वायु में तेल की एक निश्चित फुहार आ मिलती है, तभी विस्फोट के साथ उत्पन्न ऊर्जा पिस्टन को नीचे धकेल देती है।

इस प्रकार रुडोल्फ के उस संक्षिप्त नोट ने जिस विराट् प्रश्न चिह्न का रूप धारण कर लिया था वह प्रश्न बारह वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् एक ऐसा जबर्दस्त समाधान बन गया जिसने विज्ञान-जगत में क्रान्ति मचा दी। जहाँ स्टीम इंजन ईंधन से उत्पन्न ताप का केवल १२% और पेट्रोल इंजन २८% भाग ऊर्जा में बदल सकते हैं, वहाँ डीजल इंजन ३५% तक बदल सकता है। इसी विशेषता के कारण डीजल इंजन को आज सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त है। बड़ी बसें, बड़े रेलवे इंजन, भारी ट्रैक्टर, विशाल स्टीमर तथा वायुयान आदि के लिए डीजल इंजन वरदान है।

अपने प्रयोगों की सफलता से प्रोत्साहित होकर रुडोल्फ डीजल ने एक विशाल कम्पनी खोल दी जिसका केन्द्रीय कार्यालय

म्यूनिंक में रखकर देश-विदेशों में फैलाया
का जाल बिछा दिया। रुडोल्फ का भाग्य
सदैव उसके साथ रहा। धन और प्रसिद्धि
उसके दायें-बायें रहीं। जहाँ भी वह गया,
लोगों ने उसका खुलकर स्वागत, सम्मान
किया। अत्यन्त प्रवृत्तिमय जीवन ने रुडोल्फ
को व्यस्त ही व्यस्त रखा। अफसोस केवल
यही रहा कि ४२ वर्ष की ही अल्पायु में
उसका अन्त एक ऐसी पहेली बन गयी जो
सुलभाये न सुलभी और केवल अनुमानों का
ही सहारा लेना पड़ा। १९१३ के सितम्बर
में घेण्ट नगर में आयोजित विश्व-प्रदर्शनी के
संचालकों ने रुडोल्फ को विशेषतः आमन्त्रित
किया। वहाँ रुडोल्फ का सार्वजनिक सम्मान
किया गया। १ अक्टूबर को इंग्लैण्ड में होने
वाली डीजल-इंजन निर्माताओं की बैठक में
सम्मिलित होने के लिए रुडोल्फ ने २९
सितम्बर को जहाज द्वारा एण्टवर्प से प्रस्थान
किया। दिन भर की समुद्री यात्रा की थकान
रात को अपने सुसज्जित केबिन में मित्रों के
साथ उतार रहा था। वातावरण स्वस्थ
और उल्लासपूर्ण था। यात्रा में एक ही दिन
शेष था। उसी रात को.....

‘गुड नाइट दोस्तो, सुबह फिर मिलेंगे’—
कहकर रुडोल्फ ने मित्रों को विदा दी।
सुबह हुई और नाश्ते पर मित्रों का जमघट
लग गया। रुडोल्फ की ही प्रतीक्षा थी।
देर होती चली गयी और काफी देर के बाद
भी जब रुडोल्फ का केबिन न खुला तो
मित्रों ने चिन्ता-मिश्रित उत्सुकतावश रोशन-
दान में से भाँका। देखा तो रुडोल्फ केबिन
में था ही नहीं! केबिन का दरवाजा तोड़कर
अन्दर खोजा-देखा तो पाया कि बिस्तरे पर
एक भी शिकन नहीं पड़ी थी और सोने की
पोशाक भी तहबन्द रखी थी। घड़ी, चैन,
सूटकेस, सब कुछ अधखुला ज्यों का त्यों
पड़ा था, केवल रुडोल्फ वहाँ नहीं था। जहाज
का कोना-कोना छान डाला गया लेकिन
कुछ भी पता न चला।

जिसने भी सुना स्तब्ध रह गया। वह
हत्या थी या आत्महत्या, कुछ भी समझ में

जबकि ४२ वर्ष का युवा रुडोल्फ,
जीवन के चरम पर था। हत्या की बात
न जमी, क्योंकि रुडोल्फ कभी अपने
बड़ी रकम लेकर नहीं चलता था।
की भी संभावना नहीं आँकी जा रही
क्योंकि आधुनिक सज्जायुक्त स्टीमर
केबिन में उसकी कोई गुंजाइश ही नहीं
आखिर हुआ क्या?

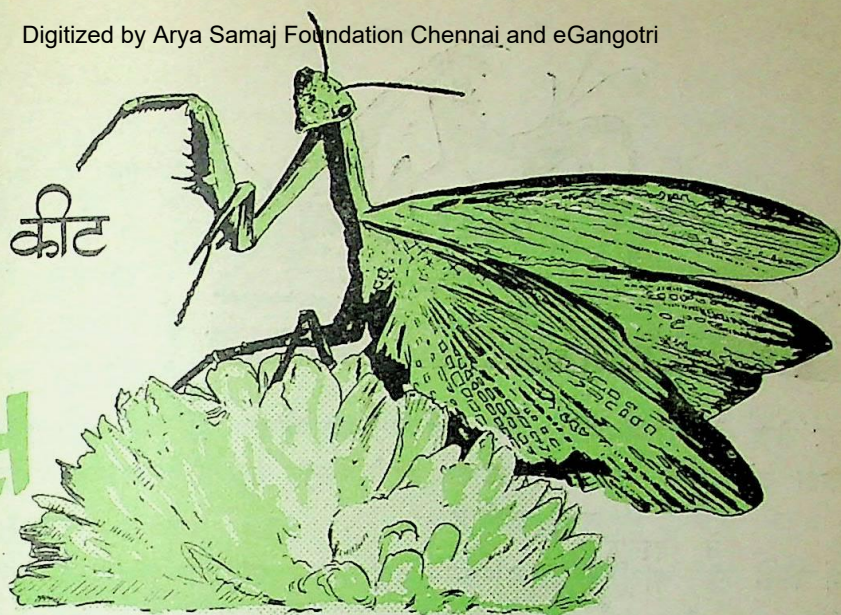
यह समस्या तब और भी जटिल
गयी जब म्यूनिंक-स्थित रुडोल्फ के
परिवार को लन्दन से यह तार मिला
‘अफवाहें गलत, रुडोल्फ लन्दन में
लेकिन अफसोस, वह अफवाह गलत
तार ही गलत था। कुछ दिन बाद हा
के फ्लिशिंग बन्दरगाह के किनारे
द्वारा पटका हुआ डीजल का शव
हुआ। शव की पहचान के लिए
उसकी जेब की वस्तुएँ उसके पुत्र को
दी गयीं। वस्तुएँ पहचान ली
वे रुडोल्फ डीजल की ही थीं। अधिकांश
ने जाँच-पड़ताल की अधिक छीछा
में न पड़कर शव को सागर-समाधि
दे दी।

इस दुःखद आश्चर्य में एक लहर
भी आ मिली। डीजल के कागजात
पर उसके दिवालिया होने का रहस्य
गया। अपने उद्योग-व्यापार के लिए
लाखों का ऐसा कर्ज ले रखा था जो
ज्ञात था। संभव है वही आर्थिक विपत्ति
उसे मृत्यु के अंध कूप की ओर धकेल
हो और वह इस रहस्य को सीने में
ही चल दिया हो जो सहज ही
सके!

कुछ भी हो, डीजल इंजन आज
वहन उद्योग की रीढ़ है और इसका
रुडोल्फ डीजल को है जिसके मरने
कहीं समाधि बनी, न मृत्यु रागिनी
बस, मृत्यु से भी अधिक दुःसह नीरवता
शून्यता को लेकर वह नर-वीर अन्त
में समा गया!

आश्चर्यजनक करबद्ध कीट

मेन्टिस



डा. त्रिलोक मज्जपुरिया

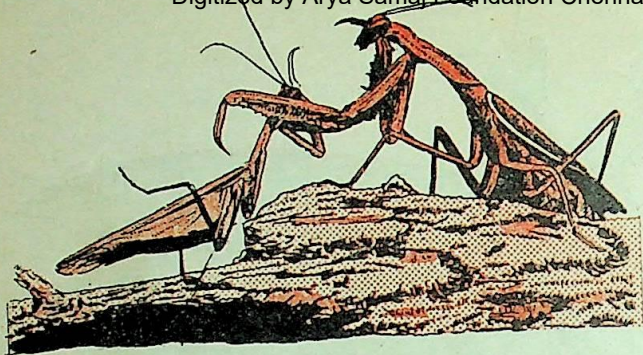
मेन्टिस कीड़े के विषय में विचित्र परम्परा-
गत धारणाएँ तथा भ्रम प्रचलित थे।
बहुत समय पहले सर्वप्रथम यूनान के कृषकों
ने इसे सूखी हुई घास पर मानो प्रार्थनारत
मुद्रा में हाथ जोड़े हुए देखा था। रंग-विरंगे
पारदर्शी वस्त्रों जैसे पंखोंयुक्त इस प्रकार
हाथ जोड़े देखकर उन्होंने इसे प्रार्थनारत
कोई देवदूत ही समझा और तभी से इसका
नाम बद्धहस्त कीट अर्थात् प्रार्थनारत मेन्टिस
(praying mantis) पड़ गया।

वास्तव में यह बड़ा खूंखार और बगुले
जैसा घूर्त कीट है। बगुला कैसी कुटिलता
मछलियों की ताक में किन्तु ध्यानमग्न सा
एक ही टाँग पर खड़ा रहता है और मछली
ताक में आते ही भगतपना भुलाकर अपना
शिकार झपट लेता है! ठीक वैसे ही यह
मेन्टिस भी प्रार्थना का ढाँग रचकर दोनों
हाथ जोड़े हुए अपने शिकार की टोह में
ध्यानमग्न बैठा रहता है। शिकार पहुँच में
जाते ही प्रार्थना वाले हाथ उसे दबोचने
लाला शिकंजा बन जाते हैं। अतः इसका
व्यभाव देखते हुए इसका नाम उच्चारण के
हिसाब से तो 'प्रेयिंग' ठीक है, किन्तु प्रार्थना-

रत (praying) न कहकर शिकार-रत
(preying) ही कहना अधिक उपयुक्त
रहेगा।

टिड्डी वर्ग का यह कीड़ा सुन्दरता में
भी किसी से कम नहीं। इसका फुर्तीला,
छरहरा शरीर रंग-विरंगे, पारदर्शी पंखों से
सुसज्जित रहता है। यह कीट-जगत के उन
दुर्लभ कीटों में से है जो अपनी गर्दन पीछे
की ओर भी घुमा सकते हैं। आरी जैसे इसके
पाँव, इसके घातक अस्त्र हैं। दोनों पार्श्व की
इसकी आँखें मानो अनेकों लेंस के समूह
हैं। सिर के बीचोबीच दोनों शृंगतन्तुओं
(antennae) के मध्य तीन सादा नेत्र
होते हैं। नन्हीं टिड्डीयाँ, मक्खी, मच्छर,
ततैया आदि इसके प्रिय आहार हैं।

मकड़ी, मछली तथा कुछेक रेप्टाइल्स
जैसे जन्तुओं की भाँति इस वर्ग में भी मादा
ही अधिक विशालकाय तथा शक्तिशाली
होती है। इसमें भी नर ही पूर्णतः मादा के
वश में रहता है और मादा के निकट इस
प्रकार आतंकित होकर जाता है जैसे अधिक
के समक्ष कोई अपराधी। इनकी विभिन्न
जातियों के अन्तर्गत पूर्वी एशिया के प्रदेशों



नर थोड़ा और साहस करके ज्योंही मादा के निकट पहुँचता है, मादा उसे कम से कम दस मिनट तक अपने मजबूत पंजों में जकड़े रहती है

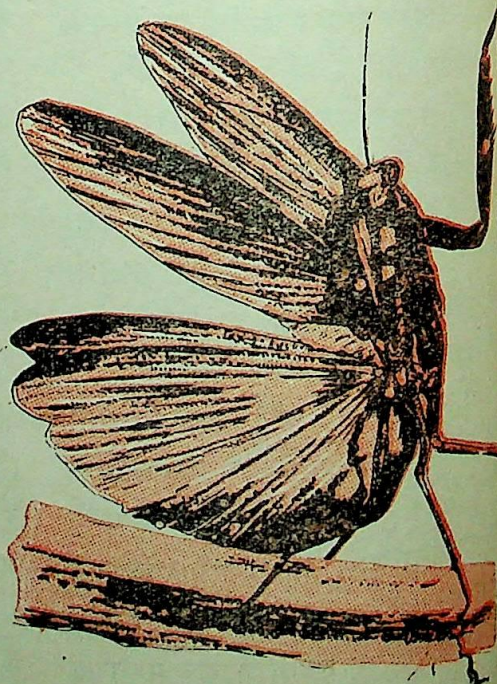
में पायी जाने वाली मादा मेन्टिस की जीवन-क्रिया बड़ी रोचक होती है। इनके नर-मादा का सहवास-प्रसंग बड़ा मनोरंजक होता है। किसी डाल पर बैठी हुई मादा से मिलने के लिए ज्योंही नर मेन्टिस कुछ दूरी पर किन्तु उसी डाल पर टिकता है, मादा गर्दन घुमा कर एक नजर देखती है। मादा की स्वीकृति मिलने पर ही नर सहमता हुआ उसके निकट रेंगता-रेंगता पहुँचता है। निकट पहुँचने पर अपना सिर बिलकुल नीचे झुकाकर सतह से छुआ देता है मानो सचमुच ही प्रेयिंग (praying) अर्थात् वन्दना कर रहा हो। पर्याप्त बल और साहस एकत्र करके वह और निकट सरकता है। तभी मादा उसे कसकर पकड़ लेती है और लगभग दस मिनट तक नर मानो किसी संडासी में जकड़ा रहता है। तब एक बार मादा उसे ढीला छोड़ देती है। उतनी देर में नर अपना और भी निर्णय कर लेता है। यदि वह भाग जाना चाहता है तो पलक मारते ही फुर्र से उड़ जाता है अन्यथा मादा को आत्म-समर्पण कर देता है। समागम के पश्चात् हारी-थकी मादा उस नन्हें नर को चट करके अपनी भूख और थकान मिटाती है !

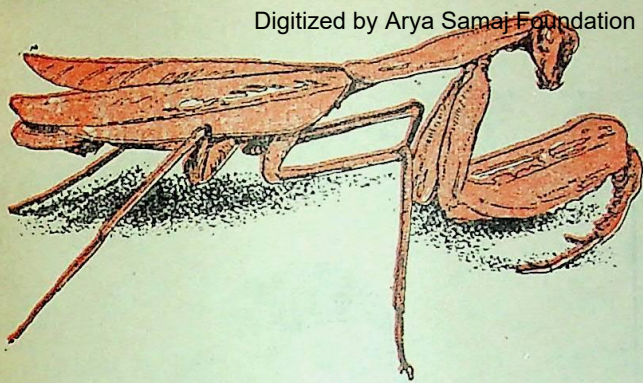
एक ही मादा के लिए कभी दो नर मेन्टिस आपस में जाते हैं तब उनका वह खूँख्वा एक की मृत्यु और दूसरे की जिंदा में ही समाप्त होता है। भय-अवस्था में मेन्टिस ऊपर के पंजों को फुला लेता है और नीचे के पंजों को पेट पर तेजी से फड़फड़ाता जिसके फलस्वरूप तीव्र ध्वनि का स्वर उत्पन्न होता है।

मादा मेन्टिस गर्भाधान

पश्चात् पहले ही बनाये हुए सुन्दर, घोंसले में अण्डे देती है। ऋतु-काल में से स्रवित चिपचिपे द्रव द्वारा घोंसले मजबूती से बनाया जाता है। अण्डे देने के समय मादा इस बात का ध्यान रखती है कि उन सबका मुँह घोंसले के निचले द्वार की ओर ही रहे जिससे बच्चे बाहर निकलने में सुविधा रहे। अण्डे देने के बाद मादा बच्चों को देख पाना मादा मेन्टिस के लिए

भयभीत होने पर मेन्टिस ऊपर के पंजों को पेट से घिसकर घरघराहट उत्पन्न करता है।





प्रार्थना की मुद्रा में (praying) किन्तु शिकार की ताक में (preying) : बगुला भगत मेन्टिस

में नहीं होता । अण्डे देने के एक या दो सप्ताह तक ही मादा जीवित रह पाती है ।

बिना माता-पिता के वे अण्डे सुरक्षित रूप से अन्दर ही अन्दर तैयार होते रहें इस हेतु मादा बड़े मनोयोग से सुदृढ़ घोंसला बनाती है । अतः संघर्ष-प्रवृत्ति तो उन वच्चों को मानो गर्भ में ही मिल जाती है । बाहर आने पर छिपकली, चिड़िया, चील जैसे इनके शत्रु इनकी प्रतीक्षा में ही रहते हैं । घोंसले से निकलते समय ये असंख्य शिशु मेन्टिस रेशमी धागे में लिपटे निकलते हैं किन्तु शीघ्र

प्रायः लोग इन्हें पालते हैं । ये सहज ही पल भी जाते हैं । पाल लेने के पश्चात् इनके कँटीले पाँवों और नुकीले डंक आदि का भय नहीं रहता । मेन्टिस का बहुरूपियापन भी बड़ा वैज्ञानिक तथा सार्थक है । अधिकतर यह पत्तियों से मिलते-जुलते रंग धारण करके अपने शत्रुओं से बच जाता है । जिस पूर्व

एशियाई मेन्टिस का यहाँ उल्लेख किया गया है, वह अपने बहुरूपियापन में प्रसिद्ध है । इसका शरीर हूबहू दो जुड़ी हुई पत्तियों सरीखा दिखता है । शरीर की तसों भी पत्तियों की शिराओं जैसी दिखती हैं । हवा के साथ यह भी ठीक पत्तियों की तरह अपना शरीर हिलाता रहता है । इसके शत्रु इसे पहचान नहीं पाते और अति निकट से गुजर जाते हैं ।

ऐसा कुशल बहुरूपिया, बगुला भगत और शिकारी मेन्टिस, टिड्डी-परिवार ही नहीं, कीट-जगत में भी अनोखा ही है । ●

अन्य लोक के निवासियों से बातचीत

[पृष्ठ ४१ का शेष]

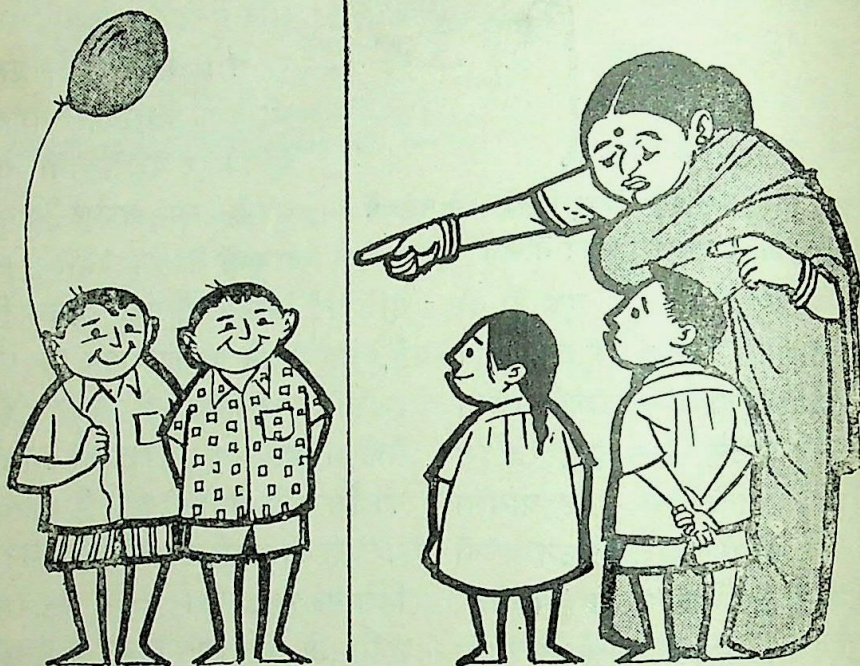
वहाँ के निवासी से साक्षात्कार करे तो दोनों की प्रतिक्रिया क्या होगी ? मान लें, वे प्राणी मकड़ों के रूप में हों तो क्या मनुष्य उन्हें देखते ही मारने को प्रेरित होगा अथवा उन्हें समझने का प्रयास करेगा ? ए. सी. क्लार्क नामक एक अंग्रेज आलोचक का कहना है कि हमारी बर्बरता के कारण ही वहाँ के निवासी आज तक हमें दृष्टि-गोचर नहीं हुए । सोवियत गणितज्ञ एम. एग्नेस्ट ने एक रोचक प्रश्न यह भी उठाया है कि प्रागैतिहासिक काल में पृथ्वी के निवासियों की भेंट नक्षत्रवासियों से नहीं

हुई होगी क्या ? उन्होंने अपने अनुमान के समर्थन में सहारा रेगिस्तान की गुफाओं में सन् १९५६ में प्राप्त कलाकृतियों और चित्रावलियों का उल्लेख किया है जिनमें आकाश में उड़ते हुए चित्र-विचित्र प्राणी उड़ते और अन्तर्ध्यान होते दिखाये गये हैं ।

इस प्रकार के विवरण मानवता के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे । विज्ञान इस दिशा में हमें मानो दिखा रहा है कि मानव का इतिहास एक सर्वथा नए अध्याय के प्रथम चरण पर है । ●

मार्च १९६३

एक वैज्ञानिक बात . . .



मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है। यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है। नन्हे मुन्नों (और मेट्रिक बाटों) के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये।

मेट्रिक तोल का जोड़-तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा।

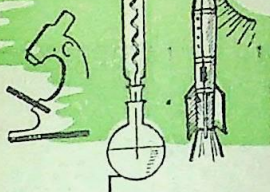
सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

डी.ए. ६२/५४७

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



सफलता छप्पर से टपकी

उजवेक के नियाज कैलगीनवायेव ऐसे ही वैज्ञानिक हैं जिन्हें सफलता छप्पर फाड़ कर नहीं तो छप्पर पर पड़ी अवश्य मिली। दोगबेन नामक सदाबहार के पौधों का एक गट्टर उन्होंने मध्य एशिया से मँगाया। हृदय रोग के लिए उपयोगी ओपधि स्ट्रोफेथिन की उन्हें तलाश थी। अब तक यह ओपधि अफ्रीका के उष्ण कटिबन्धीय जंगलों में स्ट्रोफेण्ट नामक वनस्पति से बनायी जाती थी। उसी से इसका यह नाम भी पड़ा था। नियाज ने इस नयी किस्म के कम से कम १००० पौधों पर अपने प्रयोग किये। सफलता न मिली तो भुँभलाकर गट्टर को छप्पर के ऊपर फिकवा दिया और इस प्रकार उन पौधों से छप्पर छवाने का ही काम लिया। कुछ दिनों बाद पुनः प्रयोग करने की इच्छा से २-४ डालें उठायीं तो वे यह देखकर चकित रह गये कि इस बार उन्हें स्ट्रोफेथिन आसानी से मिल गया। इसका कारण यह समझ में आया कि उन पत्तियों को आग आदि अन्य साधनों से सुखाने पर यह तत्त्व नष्ट हो जाता था जबकि खुली धूप में ज्यों का त्यों बना रहता था और उभर भी आता था।

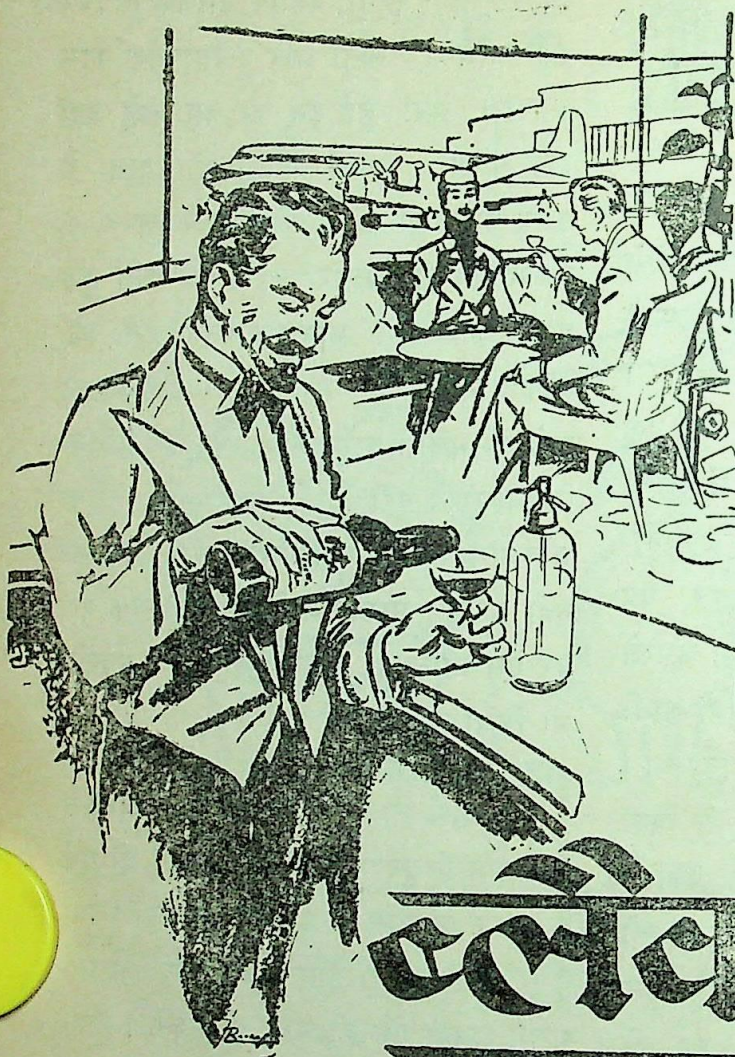
इंजन ड्राइवरों की नौकरी खतरे में!

सोवियत इंजीनियरों ने एक यान्त्रिक ड्राइवर बनाने का सफल प्रयोग किया है।

इंजन ड्राइवरों की जरूरत न रहेगी, क्योंकि यान्त्रिक ड्राइवर कहीं अधिक योग्यता और दक्षतापूर्वक काम करेगा। भरी हुई ट्रेन को वह चाहे जहाँ रोक सकेगा। उसके द्वारा यातायात के समय पालन में टाइम टेबुल से केवल ४-५ सेकण्ड का ही अन्तर रहेगा जो अति शुद्ध माना जाएगा। मानव-चालित ट्रेनों तो, आप जानते ही हैं, समय का कोई महत्त्व नहीं समझतीं। यान्त्रिक ड्राइवर इन अनियमितताओं से पूरी तरह बहरा-गूंगा रहेगा और समय-पालन में किंचित् भी रियायत नहीं करेगा। मास्को में बिजली की एक ट्रेन पर ऐसे यान्त्रिक ड्राइवर का सफल प्रदर्शन भी किया जा चुका है।

बहु उद्देशीय स्टेथोस्कोप

न्यूयार्क की बेल एरोसिस्टम्स कम्पनी ने एक नया विद्युदाणविक स्टेथोस्कोप दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् तैयार किया है। इसके द्वारा तीन मुख्य कार्य अलग-अलग अथवा एक ही साथ हो सकेंगे। हृदय की धड़कन को सामान्य ईयरफोन अथवा लाउडस्पीकर की सहायता से स्पष्ट सुना जा सकेगा, उस धड़कन को आसिलोस्कोप द्वारा पर्दे पर देखा जा सकेगा और इलेक्ट्रोकार्डियो-ग्राफ द्वारा स्थायी रूप से अंकित भी किया जा सकेगा। इसमें यह भी विशेषता रहेगी कि जिस खास अंग की ध्वनि को सुनना चाहेंगे उसे अन्य ध्वनियों से पृथक् करके सूक्ष्मतापूर्वक सुन सकेंगे। वजन में लगभग ७०० ग्राम का यह स्टेथोस्कोप, इसमें लगी मर्करी बैटरियों के कारण काफी समय तक काम दे सकेगा।



प्लैक नाइट टिहर-की

असली माल्ट टिहस्कियों का बेस्ट १००% शुद्ध मिश्रण

डायर मीकिन ब्रूयरीज लि०

स्थापित १८५५

गोलन ब्रूयरी, कसौली डिस्टिलरी, लखनऊ डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रूयरी तथा ग्लाड्ड इन्डस्ट्रीज (उ. प्र.)
गोल डिस्टी ब्यूटर्स - मे० एन्पेन्सर एन्ड कं० लि०

हर एक
अवसर
उपयुक्त



संस्कृत
पर्व
सुन्दर
ही कये
हाल है
लीजिए
दिखाई
यदि अ
ले
उसे दे
तो ला
कर र
तो नह
देखा है
चर्चा व
को देख
ने दूर
बात
१६०
में विव
दशिये
का जा
कारी

यदि सूर्य को निकट से देखें

कुलदीप चड्ढा

संस्कृत में कहावत प्रसिद्ध है, 'दूरात् हि पर्वता रम्याः' अर्थात् पहाड़ दूर से ही सुन्दर दिखाई देते हैं। और, केवल पहाड़ ही क्यों, अनेक छोटे-बड़े पदार्थों का भी यही हाल है। हमारे चिर-परिचित सूर्य को ही लीजिए। दूर से कितना सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देता है, मानो सोने का थाल ! और यदि आप नजदीक से देखें तो.....?

लेकिन ठहरिए, सूर्य के निकट जाकर उसे देखने का साहस कहाँ से आएगा ? वह तो लाखों मील दूर से ही सब कुछ भुलसा कर रख देगा ! निकट जाने की जरूरत भी तो नहीं। जिन लोगों ने सूर्य को निकट से देखा है, उन्होंने इसके रूप-रंग की काफी चर्चा की है। आइए, उन्हीं की दृष्टि से सूर्य को देख लें। सूर्य को निकट से देखने वालों ने दूरदर्शी की सहायता ली है। संयोग की बात है कि दूरदर्शी का आविष्कार सन् १६०८ में हुआ, तभी से सूर्य के बिम्ब में विकार दिखाई देने लगे। ज्यों-ज्यों दूर-दर्शियों की क्षमता और अवलोकनकर्ताओं का ज्ञान बढ़ता गया, सूर्य-बिम्ब की जानकारी भी बढ़ती गयी।

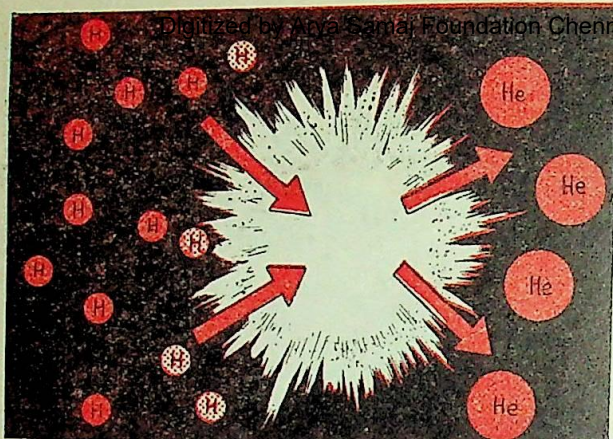
कणिकाओं से बना बिम्ब

सूर्य का बिम्ब परस्पर सटी हुई कणिकाओं (granules) से बना है। ऐसे ही समझिए जैसे पुरानी सड़कों-गलियों के फर्श पत्थर के रोड़ों को सटाकर बनाये जाते हैं। सूर्य की इन कणिकाओं का व्यास लगभग ६०० से १४०० कि.मी. तक का है। इनका आकार लगभग गोल या समकोण भी होता है। इनमें से किसी एक पर ध्यान केन्द्रित करें तो कभी वह बहुत चमकदार दिखाई देगी, और कभी चमक कम दिखने लगेगी और निकट की दूसरी कणिका चमक उठेगी। अतः परस्पर सटी हुई इन कणिकाओं के द्वारा निरन्तर झिलमिलाहट होती रहती है।

सूर्य कलंक

जब कोई कणिका बिलकुल लुप्त हो जाती है तो उसका स्थान छोटा-सा काला धब्बा ले लेता है। उस धब्बे के कारण निकटवर्ती क्षेत्र भी काला होने लगता है और बढ़ते-बढ़ते हजारों मील के व्यास का हो जाता है। उसका आकार अनियमित और परिवर्तनशील होता है। सूर्य के उन

मार्च १९६३



हाइड्रोजन के परमाणु परस्पर टकराकर हीलियम में परिवर्तित होते हुए तीव्र ताप और प्रकाश उत्पन्न करते हैं। काले धब्बों को सूर्य-कलंक (sun-spots) कहते हैं। दूरदर्शी की सहायता से सत्रहवीं शताब्दी में जब ये सर्वप्रथम दिखलाई देने लगे तब एकाएक तो लोगों को विश्वास न हुआ। अतः इनकी घोषणा करने वाले नक्षत्र-विदों—गैलीलियो और पादरी क्रिस्ताफ शाइनर—की लोगों ने काफी खिल्ली उड़ाई। शीघ्र ही शक्तिशाली दूरदर्शी के आगे वह अविश्वास ठहर न सका। विश्वास स्थापित होते ही सूर्य के इस विचित्र लक्षण के बारे में लोगों की रुचि बढ़ने लगी। न केवल वैज्ञानिकों में, बल्कि सर्वसाधारण में भी दूरदर्शी द्वारा सूर्य का अवलोकन एक फैशन बन गया। अतः सूर्य कलंकों की जानकारी जल्दी ही स्पष्ट होती गयी। पहले कुछ लोगों का मत था कि ये कलंक सूर्य से अलग ही कोई पदार्थ हैं—सूर्य के गैसीय मण्डल के कोई काले बादल, अथवा पृथ्वी और सूर्य के बीच मँडराने वाले वृहत्काय उकाव पक्षी। पादरी शाइनर ने सिद्ध किया कि वे सूर्यमंडल के ही भाग हैं और उसके परिभ्रमण में भाग लेते हैं। प्रायः सूर्य के घूमने के कारण कोई कलंक सूर्य के परोक्ष भाग में पहुँच जाता है। किन्तु $13\frac{1}{2}$ दिन के बाद वह फिर सूर्य के दूसरे सिरे पर प्रकट हो

जाता है। इसी बीच वह कलंक सूर्य की मध्य रेखा की ओर सरकता है। कई बार एक बड़ा कलंक छोटे भागों में बँट जाता है। छोटे कलंक मिलकर एक बड़े कलंक सृजन भी करते हैं।

ग्यारह वर्षीय चक्र

सूर्य कलंक सूर्य-विम्ब के स्थिर परिवर्तनशील लक्षण हैं। फिर भी प्रकट और विलीन होना एक क्रम में बँधा है। इस क्रम के सूर्य की मध्य रेखा के उत्तर दक्षिण में 40° के लगभग छोटे-छोटे उत्पन्न होते हैं। समय के साथ संख्या और विस्तार बढ़ते जाते हैं। आरम्भ से चार-पाँच वर्ष व्यापकता अधिकतम होती है। अवस्था में नंगी आँखों ही काजल लगे शीशे द्वारा इन्हें देखा सकता है। निकट अतीत में ऐसी १६५६-६० में हुई थी। इसे अधिकतम सक्रियता कहते हैं। इसके कलंकों की संख्या और व्यापकता लगती है। साथ ही सूर्य-केंद्र इनका सरकना भी जारी रहता है। 5° उत्तर और दक्षिण के लगभग यह क्रम समाप्त होता है। इसमें लगते हैं। अतः इसे ग्यारह वर्षीय चक्र कहा जाता है। यह ११ वर्ष की सर्वथा निश्चित नहीं। ६ और १२ मध्य भी यह परिवर्तन-क्रम गया है। औसत ११ वर्षों का ही

वुल्फ संख्या

सूर्य कलंकों के ग्यारह वर्षीय खोज १८४३ के लगभग वुल्फ नामक निक ने की थी। इनके बारे में सिद्धान्त बनाने का अधिकांश

कलंकों की संख्या का अनुमान लगाने के लिए सौर-सक्रियता का अनुमान लगाने का सूत्र भी निर्धारित किया। वास्तव में केवल सूर्य कलंकों की संख्या का उल्लेख इस सक्रियता का अनुमान नहीं दे सकता क्योंकि भिन्न-भिन्न कलंकों के क्षेत्रफल में बहुत अन्तर होता है। अतः इन दोनों वैज्ञानिकों ने वुल्फ संख्या की परम्परा को चलाई। इसे निर्धारित करने के लिए बड़े कलंकों को दस से गुणा करके छोटे कलंकों की संख्या में जमा कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए वैज्ञानिकों के मतानुसार सौर-सक्रियता का यह तरीका सही नहीं। फिर भी इसी के अनुसार गत बीसियों वर्षों की सक्रियता के आँकड़े उपलब्ध हैं। अतः आज भी यही विधि प्रचलन में है।

यद्यपि वुल्फ संख्या का प्रतिपादन १८४१ के लगभग हुआ, उससे सैकड़ों वर्ष पहले की कलंक संख्या के अनुमान उपलब्ध हैं। पुराने पेड़ों के तनों का निरीक्षण भी इस विधि में सम्मिलित है। इसे इस प्रकार समझें : सवा नौ करोड़ मील की दूरी के अंतर पर सूर्य के कलंकों का पृथ्वी पर अनेक विधियों से प्रभाव पड़ता है। यह तो स्पष्ट है कि एक साल में पेड़ के तने में वृद्धि होती है। यदि पुराने पेड़ के तने को काटकर उसका निरीक्षण किया जाए तो प्रति वर्ष की वृद्धि अलग-अलग वलयों के रूप में दिखती है। इन्हीं वलयों की मोटाई नापकर डगलस नामक अमरीकी वैज्ञानिक ने सूर्य कलंकों की सहस्रों वर्ष पुरानी संख्याओं का अनुमान लगाया है।

एक ग्यारह वर्षीय चक्र में अनेक कलंक उत्पन्न होते हैं। एक-एक सूर्य कलंक की अवधि की तुलना में बहुत कम होता है। कुछ कलंक तो केवल घण्टों के ही अवधि के होते हैं, जबकि कुछ सप्ताहों तक

रहते हैं। सूर्य कलंकों की संख्या १८४० में प्रकट हुआ था जो १८ मास तक दिखाई दिया।

कलंकों के चुम्बकीय क्षेत्र

अमरीकी नक्षत्रविद् हेल के अध्ययन द्वारा सूर्य कलंकों में चुम्बकीय क्षेत्रों के लक्षण भी मिले हैं। अनेक बार उन क्षेत्रों का चुम्बकत्व, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से १०-१५ हजार गुना अधिक पाया गया है। इस दृष्टि से कलंकों के अनेक भेद और लक्षणों का निर्धारण किया गया है। प्रायः कलंकों की अनुपस्थिति में भी क्षीण चुम्बकत्व प्रदर्शित होता रहता है। तत्पश्चात् वहाँ भी एक कलंक प्रकट हो जाता है। ऐसे स्थलों को अदृश्य कलंक कहते हैं।

तप्त गैसों के बादल

अदृश्य कलंकों का आभास एक अन्य विधि से भी मिलता है। सूर्य कलंकों के आसपास तप्त गैसों के बादल रहते ही हैं। इन्हें फैक्यूले (faculae) कहते हैं। कलंकों के प्रकट होने से पहले भी स्थल विशेष पर ये बादल देखे जाते हैं। इस प्रकार ये आगामी कलंकों की सूचना दे देते हैं। सूर्य कलंक लुप्त होते हैं, तब भी फैक्यूले कुछ देर तक बने रहते हैं। इनका रूप और तेजस्विता प्रायः कलंकों के विकास को प्रकट करते हैं।

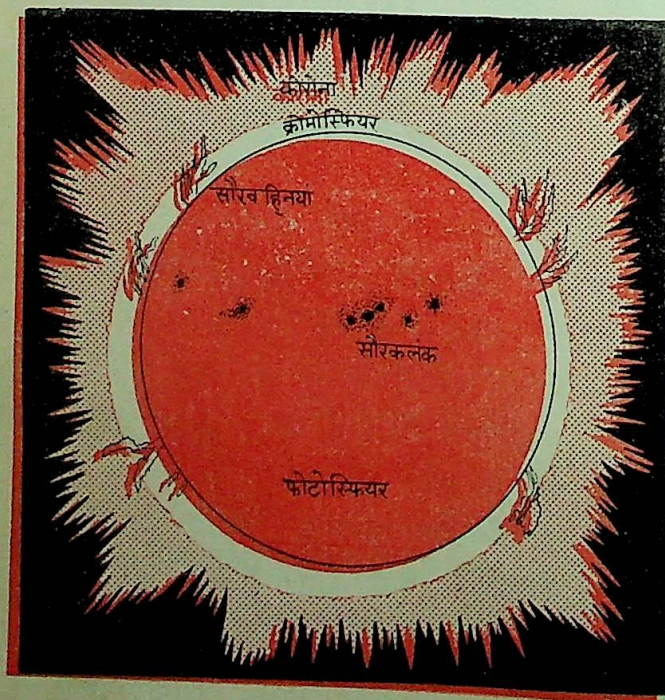
सौर वह्नियाँ

प्राचीन काल से हम सूर्य को आग का गोला कहते आये हैं, परन्तु दूरदर्शी द्वारा देखने पर इसमें से यज्ञ-कुण्ड की तरह ज्वालाएँ नहीं निकलतीं। कुछेक शिखाएँ अवश्य आग की लपटों जैसी हैं। सूर्य कलंक तथा अन्यान्य क्रियाएँ दो विशेष कारणों से पैदा होती हैं—सूर्य का उच्च ताप और ध्रुवों पर तथा मध्य में सूर्य की भ्रमण-गति में अन्तर। उच्च ताप के कारण

सूर्य के तत्त्व ^{Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri} गैस-स्वरूप में रहते हैं और परिभ्रमण-गति का अन्तर उनमें बवण्डर पैदा कर देता है। गैस-स्वरूप तत्त्वों में स्वच्छन्द इलेक्ट्रान के भी अम्बार होते हैं, जो वर्तुल गति के कारण चुम्बकत्व के विशाल क्षेत्रों को जन्म देते हैं। वे क्षेत्र ही सूर्य के विभिन्न विकारों के आकार हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी के वायुमण्डल में बादलों से विद्युत पैदा होती है, जिसकी कौंध मीलों तक दिखाई देती है, उसी प्रकार सूर्य-मंडल में ये व्यापार विशाल पैमाने पर होते हैं। वहाँ सूर्य कलकों के विद्युत-क्षेत्रों से जो कौंध पैदा होती है, उसे सवा नौ करोड़ मील की दूरी से, अपनी पृथ्वी पर, दूरदर्शी द्वारा अच्छी तरह देखा जा सकता है। इन सौर वह्नियों (Solar flares) का हमारी पृथ्वी पर काफी प्रभाव पड़ता है। विशेषतः दूर देशों के रेडियो प्रोग्राम सुनने में कठिनाई होती है। वास्तव में ये प्रोग्राम क्षुद्र-तरंगों पर प्रसारित किये जाते हैं, जो अपने लक्ष्य पर पहुँचने से पहले वायुमण्डल की कुछ परतों से गुजरते हैं। सौर वह्नियों से

सूर्य का प्रभामण्डल



प्रसारित विशेष प्रकार के कण कुछ दिनों से लेकर ४८ घण्टों तक पृथ्वी पर पहुँचते हैं। फलतः परतों में गड़बड़ पैदा करते हैं। फलतः पर प्रोग्राम सुनना कठिन हो जाता। अमरीका, फ्रांस, रूस, जर्मनी, इंग्लैंड, जापान और इटली में इन वह्नियों के लेने के स्वचालित कैमरे लगे हुए हैं। संग्रहीत विवरणों का विश्लेषण अन्तरिक्ष स्तर पर किया जाता है।

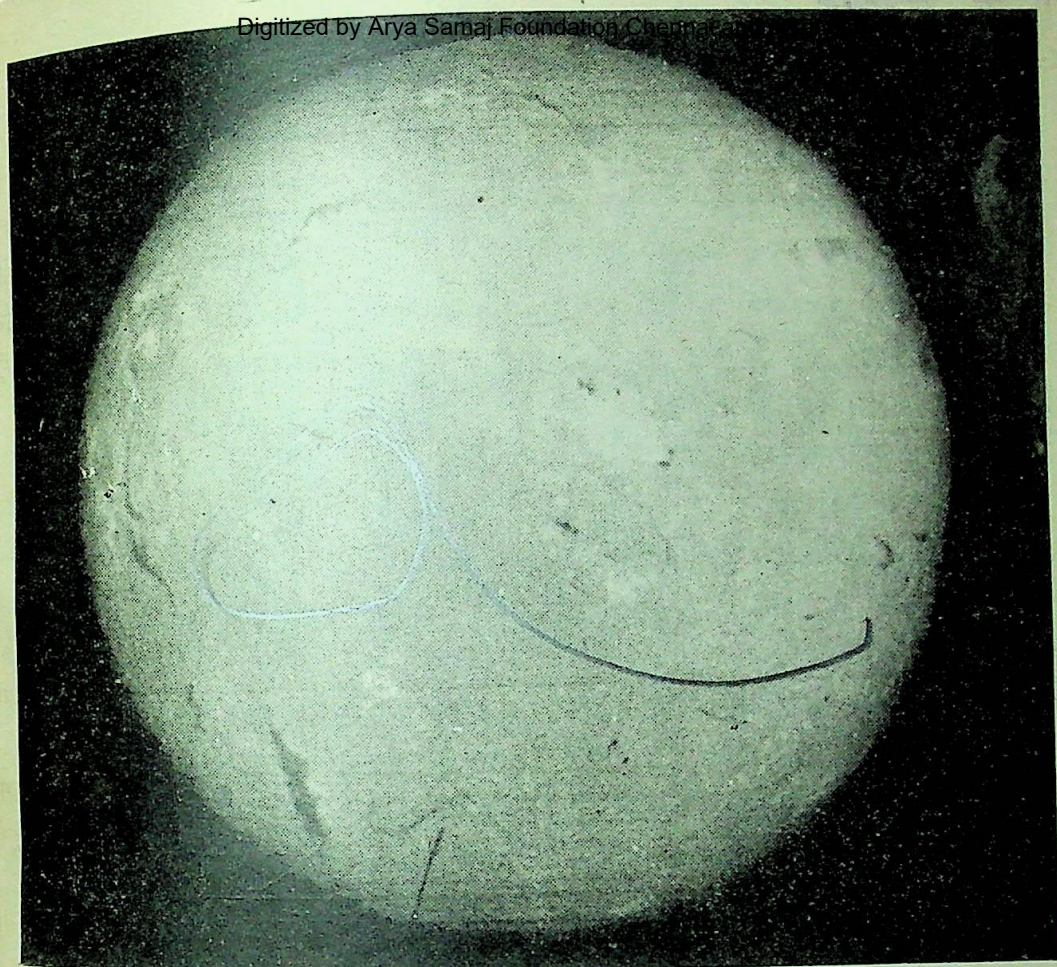
उज्जवालाएँ

जब सूर्य के घूमने के कारण सूर्य विम्ब के एक सिरे पर पहुँच जाते हैं दूरदर्शी द्वारा देखने पर उनके ऊपर लाल रंग की ज्वालाएँ दिखाई देती हैं। विशाल ज्वालाएँ उज्जवालाएँ (prominences) कहलाती हैं।

सूर्य के घूमने के साथ जब ये पृष्ठभूमि पर दिखाई देती हैं तब उनका रूप बिलकुल बदल जाता है। अन्तर्निहित धूमिल पृष्ठभूमि पर लाल दिखाई देने वाली उज्जवालाएँ सूर्य की चमकीली पृष्ठभूमि लम्बे, पतले सर्पो-सी लगती हैं। बहुत

तक दोनों को अलग-अलग देखा जाता था और उन्हें तंतु (filaments) का नाम दिया गया था। जब इन तंतुओं को समझने के लिए इनका सूर्य के निकट तक अवलोकन किया गया तब दूर हुआ।

ये उज्जवालाएँ प्रायः कलकों के क्षेत्र में ही देखी जाती हैं। उज्जवाला का आकार बदलता रहता है। विकास के दौर में इसकी मोटाई में खास फर्क पड़ता। ऊँचाई भी उतनी ही होती है, पर लम्बाई बढ़ती जाती है। कभी-कभी उज्जवाला



उठती है और कुछ ही घण्टे बाद उछल कर तीव्र वेग से (२४ लाख कि.मी. प्रति घण्टा तक) अन्तरिक्ष में लीन हो जाती है। कुछ दिन बाद उसके स्थान पर नयी उज्ज्वाला वननी प्रारम्भ हो जाती है। कभी-कभी अन्तरिक्ष में लीन होने की अपेक्षा वही उज्ज्वाला पुनः सूर्य में घुल-मिल जाती है।

उज्ज्वालाओं का पथ प्रायः शृंगार होता है। अनुमान है कि यह पथ कलंकों के बीच चुम्बकीय बल-रेखाओं का अनुकरण करता है। उज्ज्वालाओं का यह आकार-भेद तथा विकलता आदि चुम्बकीय क्षेत्र में होते रहने वाले परिवर्तनों के सूचक हैं।

सौर-किरीट

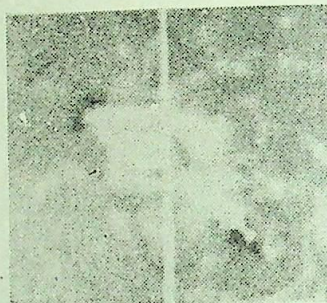
सूर्य के सिरे के निकट की लाल उज्ज्वालाओं का रूप उस समय विलक्षण

होता है, जब पूर्ण ग्रहण के कारण सूर्य का बिम्ब काला हो जाता है। ऐसे समय सूर्य का एक दूसरा प्रभा-रूप भी दिखाई देता है जिसे सौर किरीट (corona) कहते हैं। यह सूर्य के चारों ओर प्रकाश-चक्र सा दीखता है। सूर्य का यह अंग अत्यन्त भव्य होते हुए भी इतना क्षीण है कि विशेष शक्तिशाली यन्त्रों द्वारा अथवा पूर्ण सूर्य ग्रहण पर ही देखा जा सकता है।

परिस्थिति के अनुसार और प्रायः सूर्य कलंकों की संख्या के अनुसार ही किरीट अपना रूप बदलता रहता है। इसी की पृष्ठभूमि पर उज्ज्वालाएँ प्रकट होती हैं। माना जाता है कि वे किरीट के पदार्थ से ही पैदा होती हैं, क्योंकि उनके निकट किरीट अत्यन्त क्षीण दिखता है।

मार्च १९६३

सूर्य-मण्डल पर अनेक विकार दिखाई देते हैं। ये विकार ११ वर्षीय चक्र के साथ-साथ कम या तीव्र होते रहते हैं। नंगी आँखों से देखे गये कलंक तो सूर्य के उज्ज्वल मुख पर काले तिल से लगते हैं पर उन्हीं को शक्तिशाली दूरदर्शी से देखा जाए तो विशेष प्रकार की बनावट प्रकट होती है। सूर्य कलंक के बीचोबीच गहरा काला भाग होता है जिसे प्रच्छाया (umbra) कहते



हैं। उसके चारों ओर का भाग कम गहरा होता है। उसे उपच्छाया (penumbra) कहते हैं। छोटे से छोटा सूर्य कलंक तो कुछ सौ कि.मी. व्यास का होता है, किन्तु

बड़े कलंकों में से अनेक तो पृथ्वी से भी बड़े होते हैं। सबसे बड़ा कलंक १९४७ में प्रकट हुआ था। तब अनुमान लगाया गया था कि उसमें १०० पृथ्वियाँ समा सकती थीं।

समाचार पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून, १९५६ के आठवें नियम के साथ पढ़ी जाने वाली प्रेस तथा पुस्तक-पंजीयन कानून की धारा १६ 'डी' उपधारा 'बी' के अन्तर्गत अपेक्षित 'विज्ञान-लोका' नामक समाचार-पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का व्यौरा—

प्रपत्र ४

१. प्रकाशन का स्थान :	आगरा
२. प्रकाशन की आवृत्तिता :	मासिक
३. मुद्रक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा
४. प्रकाशक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा
५. संपादक का नाम :	शंकर मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा

६. कुल पूँजी के एक से अधिक शेयर वाले भागीदार :

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

मैं, जगदीश मेहरा, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

दिनांक : २८ फरवरी, १९६३

जगदीश मेहरा
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)



**विज्ञान
कल्याण**



प्यारे बच्चों,

इस बार अहमदाबाद के तुम्हारे पाठक-मित्रों में से ठाकर्स हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने एक महत्त्वपूर्ण विवरण भेजा है। आशा है, तुम सब के लिए वह प्रेरक रहेगा।

लिखा है, विगत दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हैदराबाद में एक विज्ञान-स्पर्धा का आयोजन किया गया था। केन्द्रीय सांस्कृतिक मंत्री श्री हुमायूँ कबीर द्वारा उद्घाटित अखिल भारतीय शिक्षक मण्डल के सातवें वार्षिक अधिवेशन के अन्तर्गत वह आयोजन था। विज्ञान-स्पर्धा में सामूहिक रूप से इस स्कूल को प्रथम पुरस्कार तथा वैयक्तिक रूप से भी अनेक उच्च पुरस्कार इसी स्कूल के छात्रों को मिले हैं।

स्कूल के आचार्य के कुशल निर्देशन में ११वीं श्रेणी के रसिकभाई पटेल को प्रथम पुरस्कार मिला है जिसने बहु उद्देशीय पम्प, प्यूजवाहक हीटर तथा स्वेटर बुनने के यंत्रों का निर्माण और सफल प्रदर्शन किया। इसी स्कूल से सम्बन्धित प्रकाश कालेज के प्रो. प्रह्लादभाई पटेल को भी अक्षांश-देशांश सिखाने वाले 'पीलोला' गोले के लिए पुरस्कार मिला है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नूतन प्रयोगों में से परिवहन का इतिहास, सैन्य व्यूह रचना तथा शस्त्रास्त्रों के सफल प्रदर्शन खिलौनों-माडलों द्वारा किये गये थे।

ये उपलब्धियाँ विशेष रूप से अभिनन्दनीय हैं। अन्य अनेक पाठक बन्धु भी

ऐसे छुट-पुट प्रयास करते रहते हैं। यह उनके पत्रों से जब-तब ज्ञात होता है। क्या वे भी अपने निर्माणों को कुशल निरीक्षण के अन्तर्गत शुद्ध वैज्ञानिक स्वरूप देकर यह दिखाना न चाहेंगे कि निर्माण किसी व्यक्ति, समाज अथवा देश विशेष का एकाधिकार नहीं?

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३६ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

विजय (२४०) आगरा, सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा, गोपाल माधव (२३७६) मेरठ, वृजेश्वर शर्मा (३६७२) ललितपुर, प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, गोपी शाहानी (८४८६) राँची।

द्वितीय पुरस्कार

चाँदस्वरूप कपूर (५३८) आगरा, अरविन्द राणा (२६०६) कुरुक्षेत्र, मदनलाल कपूर (२८३३) कुरुक्षेत्र, जगदीशपाल पुरी (३२६४) कुरुक्षेत्र, सुशीलप्रकाश (३२६४) कुरुक्षेत्र, आनन्दनारायण (७५७२) बिलासपुर, मोहिनी शाहानी (७८२७) राँची, गोपालसहाय (६३७४) बेगूसराय।

तृतीय पुरस्कार

अरुणकुमार जाजू (१७) कानपुर, रमेशदत्त (१०७०) जबलपुर, अशोक गुप्ता (२७०१) लखनऊ, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, विजयकुमार (३२२३) बलरामपुर, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, गोपालराव (५१७२) सोनेगाँव, देवेन्द्रकुमार (६१४३) मेरठ, शान्तिलाल (६४७४) उदयपुर, दिलीपकुमार (६७३२) बम्बई, धरमीचन्द (७२५६) अजमेर, वीरेन्द्रप्रताप (७३०५) इलाहाबाद, सज्जनसिंह (७६८५) उदयपुर, शोभाराम (८०४८) तुमसर, वृजनिश शाह (८१५६) सोनगढ़, अशोककुमार (८४०४) बम्बई, आदित्यकुमार (८६२०) जबलपुर, हरिवल्लभ (८८४५) खंभालिया।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ३८

नाम



याहया हाजी
(स. सं. ३८४४)



श्यामसुन्दर
(स. सं. ३९९३)



आशिषकुमार
(स. सं. ४१३४)



जोरावरसिंह
(स. सं. ४२०५)



प्रेमचन्द्र
(स. सं. ४९१६)

५७१६ परमेश्वर शरण (१५) गया, १७ पुरुषोत्तम (१५) खरगोन, १८ गोपालदास (१६) कलकत्ता, १९ बलदेव प्रसाद (१५) पीलीभीत, २० सुभाष (१४) मोतीनगर, २१ रमेशकुमार (१७) लुधियाना, २२ रामराज्य (१५) व्यावर, २३ विष्णु भगवान (१६) रामनगर, २४ राजेन्द्र प्रसाद (१२) पूर्णियाँ, २५ राजेन्द्रसिंह (१२) लश्कर, २६ जीतेन्द्रनाथ (१६) लुधियाना, २७ फेलिक्स जूवेल (१४) राँची, २८ ज्ञानचन्द्र (१८) सागर, २९ नामदेव (१५) अकोला, ३० अरुण कुमार (१५) हिवरखेड़ा, ३१ कु. स्नेहलता (१६) आसींद, ३२ अयोध्या प्रसाद (१५) कानपुर, ३३ उमानाथ (१५) तेलिया कलाँ, ३४ रामकृष्ण (१६) मुबारकपुर, ३५ शहीद (१९) शाजापुर, ३६ हनुमान सिंह (१९) कोटा, ३७ वीरेन्द्र सिंह (११) आगरा, ३८ दिलबहादुर (१३) डिगबोई, ३९ कु. उषा (१०) बीकानेर, ४० राधेप्रसाद (१५) कटिहार, ४१ तिलकराज (१७) सागर, ४२ महावीर प्रसाद (१५) जमशेदपुर, ४३ रामबाबू (१५) अलवर, ४४ अर्जुन कुमार (१३) नूरसराय, ४५ भागचन्द्र (१२) जोधपुर, ४६ विजय कुमार (१६) कटनी, ४७ सत्येन्द्रनाथ (१६) तीलरा, ४८ सुदर्शन (१५) कानपुर, ४९ केवलराम (२१) जोधपुर, ५० श्यामसुन्दर (१६) बहराइच, ५१ श्यामकुमार (१५) गोरखपुर, ५२ आत्माराम (१६) ग्रामभारती, ५३ ओमप्रकाश (१४) लश्कर, ५४ राजकिशोर (१९) गौहाटी, ५५ देवकिशन (१३) इन्दौर, ५६ पुरुषोत्तम (१४) नासिक, ५७ अजय कुमार (१२) सरता, ५८ रामानुज प्रसाद (१६) गया, ५९ तारणी प्रसाद (९) शाहाबाद, ६० सतीशकुमार (१५) नासिक, ६१ सुभाषचन्द्र (१७) नासिक, ६२ अयोध्या (१५) तीलरा, ६३ युगेश्वर राम (१५) पलामू, ६४ नवलकिशोर (१५) राँची, ६५ विनोद कुमार (१४) राँची, ६६ इन्द्रसेन (१७) लश्कर, ६७ लक्ष्मीनारायण (१४) व्यावर, ६८ गोपालकृष्ण (७) व्यावर, ६९ कुमारी प्रियम्बदा (१४) गोहनूरी, ७० अरुण स्वरूप (१०) वाराणसी, ७१ आदित्य स्वरूप (१३) वाराणसी, ७२ महादेवराव (१७) बोड़खी, ७३ कु. वचनकौर (१६) एकतियासाल, ७४ श्यामाकान्त (१५) चम्पारन, ७५ पारसमल (१२) व्यावर, ७६ धीरेन्द्रनाथ (१६) चक्रधरपुर, ७७ राजकिशोर (१५) इलाहाबाद, ७८ शतीन्द्रनाथ (१३) गया, ७९ ओमप्रकाश (१७) दूधवाखरा, ८० रमाकान्त (१४) प्रयाग, ८१ नारायण (१५) बम्बई, ८२ बुचुनजी (९) असनी, ८३ पूरनलाल (१७) मेरठ, ८४ वेदानन्द (१२) नेतरहाट, ८५ सरशचन्द्र (१५) राजनन्दगाँव, ८६ परमानन्द (१४) जमशेदपुर, ८७ अजयकुमार (११) शिकोहाबाद, ८८ कौस्तुभानन्द (१३) मेरठ, ८९ निर्मलकुमार (१२) विहिया, ९० अरुणकुमार (१३) लखनऊ, ९१ हेमनाथ सिंह (१०) दरभंगा, ९२ अभिराम (२२) नयागाँव, ९३ कृष्णेश्वर (२२) नयागाँव, ९४ गुलामअब्बास (१४) रायपुर, ९५ सत्यप्रकाश (१३) व्यावर, ९६ सुरेशचन्द्र (१३) हातोद, ९७ कृष्णकुमार (१६) हरद्वार, ९८ देवलराम (१७) हरद्वार, ९९ रामनन्दन (१४) पंडितगंज, ५८०० भुवनेशचन्द्र (१३) चूरू, १ मुरारीलाल (१६) कलकत्ता, २ महेन्द्रकुमार (१७) जबलपुर, ३ कृष्णदेव (१७) चाँदपीपर, ४ सूर्यनारायण (१६) दरभंगा, ५ शिवशंकर (१५) मोतिहारी, ६ दलपत (१८) रायपुर,



ओमप्रकाश
(स. सं. ५११)



शशिकान्त
(स. सं. ५२३)



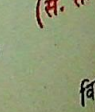
मंगरज
(स. सं. ५३५)



रममोहन
(स. सं. ५४७)



सत्येन्द्र
(स. सं. ५५९)



सुभाष
(स. सं. ५६१)

७ हफीज मोहम्मद (१६) आसींद, ८ कालूराम (१७) व्यावर,
 ९ आर. ए. देवदत्त (१८) अरविन्दपुर, १० सुधीरसिंह (१९)
 लुधियाना, ११ दयानन्द (१४) जमशेदपुर, १२ थामस कुरियन
 (१५) इटारसी, १३ मोहन धुरी (१५) राँची, १४ रमेशचन्द्र
 (१४) झ्योपुरकलां, १५ कु. रेगुवाला (१५) मोतिहारी, १६
 लोकेश (१३) गया, १७ मदनगोपाल (१५) दिल्ली, १८ राजेन्द्र-
 कुमार (१५) नई दिल्ली, १९ पदमचन्द्र (१६) भुंभनू, २०
 नरेन्द्रकुमार (१५) डिग्घी, २१ प्रभूजी (१७) थराद, २२
 सुरेन्द्रकुमार (१८) कुल्हड़िया, २३ शंभूभाई बी. पटेल (१५)
 मालपरा, २४ जीवाभाई जे. विराणी (१४) मालपरा, २५
 ओंकारनाथ (१६) ढखवा बाजार, २६ जगन्नाथ (१५) भगवानपुर,
 २७ रामचन्द्र (१५) सहजनवाँ, २८ अरुणकुमार (१४) मुजफ्फरपुर
 २९ प्रकाशचन्द्र (१६) खरगोन, ३० महेन्द्रमणि (१५) बैतालपुर,
 ३१ नवीनकुमार (७) वाराणसी, ३२ शिवानन्द (१३) मुजफ्फर-
 पुर, ३३ ओमप्रकाश (१४) चूरू, ३४ जुगराज (१३) चूरू,
 ३५ नन्दकिशोर प्रसाद (२०) वीरपुर, ३६ सुभाषचन्द्र (१६)
 आगरा, ३७ देवेन्द्रमोहन (१५) लुधियाना, ३८ योगेन्द्र नारायण
 (१३) बाँकीपुर, ३९ सुबीर कुमार (१५) राँची, ४० सी. विद्या-
 सागर (१३) वाराणसी, ४१ कृष्णचन्द्र (१४) लखनऊ, ४२
 धनराज (१४) पटियाला, ४३ सुभाषचन्द्र (१६) दिल्ली, ४४
 विजेन्द्रकुमार (१३) इलाहाबाद, ४५ श्रीप्रकाश (२०) भाँसी, ४६
 प्रदीपकुमार (११) ललितपुर, ४७ आनन्दीलाल (१४) हरदा,
 ४८ सुशीलकुमार (१४) नई दिल्ली, ४९ शामकान्त (१५)
 चोपड़ा, ५० गुलाबचन्द्र (१६) छिन्दवाड़ा, ५१ राजेन्द्र प्रसाद
 (१३) समस्तीपुर, ५२ धीरजमल (१७) जबलपुर, ५३ जिनेश
 कुमार (१६) चिरमिरी, ५४ सुभाषचन्द्र (१३) बरेली, ५५
 वीरेन्द्र (१८) नई दिल्ली, ५६ वृजकिशोर (८) सहसराम, ५७
 इन्द्रसेन (१७) लश्कर, ५८ कु. सन्ध्या (१५) फारविसगंज, ५९
 सन्तोषकुमार (१३) फारविसगंज, ६० भास्कर प्रकाश (१६)
 आगरा, ६१ जगदीशचन्द्र (१६) धार, ६२ दलगंजन (१६)
 बोहानी, ६३ अरुण कुमार (१४) माँझी, ६४ सुभाषचन्द्र (१४)
 तुलसीपुर, ६५ निशिकान्त (१६) पांजिपाड़ा, ६६ पारसनाथ (२०)
 गहमर, ६७ देवेन्द्रकुमार (१४) बरेली, ६८ खुशालचन्द्र (१४)
 कटनी, ६९ रामकिशन (१८) बाहरली, ७० रवीन्द्रस्वरूप (१५)
 बरेली, ७१ किशोरीलाल (१३) मुरादनगर, ७२ दुलीचन्द्र (१३)
 मुरादनगर, ७३ महेन्द्रकुमार (१३) उज्जैन, ७४ चयनसिंह (१७)
 जमशेदपुर, ७५ चन्द्र धुमाल (१२) लश्कर, ७६ विजयकुमार
 (१५) जोधपुर, ७७ योगेन्द्र बहादुर (१४) मेहदावल, ७८ सत्येन्द्र
 कुमार (१४) कटनी, ७९ हरिनारायण (१९) नई दिल्ली, ८०
 नन्दकिशोर (१८) सूरत, ८१ कपिलदेव प्रसाद (१७) मुरगाँव,
 ८२ जगदीश (१७) दिल्ली, ८३ चन्दुभाई (१४) तारापुर, ८४
 आशीषकुमार (१०) वाराणसी, ८५ वीरेन्द्रकुमार (११) रूही
 सैदपुर, ८६ विद्यानन्द (१५) रतैठा, ८७ गौरीशंकर (१६)
 चौसाबाजार, ८८ यशपाल (१६) जबलपुर, ८९ सुभाषचन्द्र (११)
 देवरिया, ९० भूमरमल (१७) कुनौली बाजार, ९१ महेन्द्रपाल
 (१५) गोरखपुर, ९२ राजगृही राम (१७) रघुनाथपुर, ९३
 दीपनारायण (१४) जामताड़ा, ९४ विजयकुमार (१६) लुधियाना,
 ९५ प्रेमकुमार (१६) जयपुर, ९६ सन्तोषकुमार (१३) नासिक,
 ९७ ओंकारसिंह (१३) सिवनी, ९८ कमलसिंह (१३) सिवनी ।



रवीन्द्रस्वरूप

(स. सं. ५८७०)



उमाशंकर

(स. सं. ५९०८)



हरजिन्द्र

(स. सं. ५९४८)



विजयमल

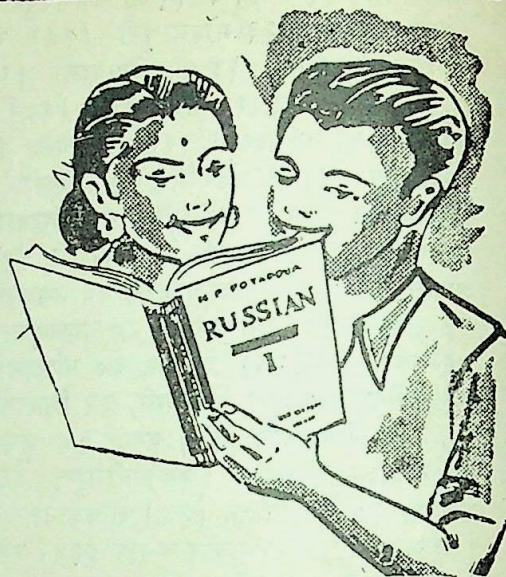
(स. सं. ६२६९)



अशोककुमार

(स. सं. ६२७७)

हम बिना
शिक्षक के
भी रूसी भाषा
सीख गए ।



जी हाँ, रूसी भाषा इतनी ही आसान
है अगर आप मैडम पोटापोवा की
प्रसिद्ध पुस्तक के दोनों भागों द्वारा
सीखेंगे । मैडम पोटापोवा की पुस्तकें
भाषा को आसान बनाकर आप
को सीखने में सहायता देती हैं ।

मूल्य हिन्दी संस्करण
भाग १ : रु. २.१२
भाग २ : रु. २.७५

अंग्रेजी संस्करण भी उपलब्ध हैं
पहला भाग मूल्य २
दूसरा भाग मूल्य २.७५

रूसी भाषा पढ़ने के लिए हिन्दी में अन्य सहायक भी

हिन्दी-रूसी शब्दकोष (४००० शब्द)
हिन्दी-रूसी बातचीत
रूसी-हिन्दी शब्दकोष (२३००० शब्द)
रूसी-हिन्दी शब्दकोष (८००० शब्द)
रूसी व्याकरण की संक्षिप्त व्याख्या (लेखक इ. म. पुलिकना)

डाक व रजिस्ट्री-व्यय अतिमित

अपने पुस्तक-विक्रेता से लीजिए अथवा इनसे मँगाइए :

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.

रानी भाँसी रोड, नई दिल्ली

(शो-रूम : मेरिना आरकेड, कनाट सर्कस, नई दिल्ली)

नेशनल बुक एजेन्सी (प्रा.) लि.

— १२-बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता

पी. पी. एच. बुकस्टाल

— १६०-बी. खेतवाड़ी, मेन रोड, बम्बई

(शो-रूम, प्रार्थना समाज, बम्बई-४ तथा कावसजी पटेल स्ट्रीट, बम्बई-१)

राजकमल प्रकाशन—दरियागंज, दिल्ली;

पीपुल्स बुक हाउस—२७८-७९, लक्ष्मी रोड, बम्बई

नया किताब-घर—एम. यू मार्केट, अलीगढ़

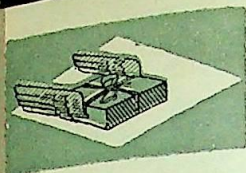
पीपुल्स बुक हाउस—प्रार्थना समाज, अहमदाबाद

आत्माराम एण्ड सन्स—काश्मीरी गेट, दिल्ली

पीपुल्स बुक हाउस—ग्राण्ड होटल बिल्डिंग, बम्बई

एस. चन्द एण्ड कम्पनी—फव्वारा, दिल्ली

पीपुल्स बुक हाउस—बी. एच. यू. गेट, बम्बई



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तकें
२० रु. की पुस्तकें
१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ मार्च

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३८ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ मार्च तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३८ के प्रश्न

१. एशिया से बाहर, सबसे ऊँचा पर्वतशिखर कौन-सा, कहाँ, कितने मीटर ऊँचा है ?
२. लीनोटाइप का आविष्कार किसने, कब किया ?
३. मिट्टी के बिना पौधे उगाने की कला का वैज्ञानिक नाम क्या है ?
४. सर्वप्रथम किस वैज्ञानिक ने अणु और परमाणु का स्पष्ट अन्तर प्रदर्शित किया ?
५. मगरमच्छ के अण्डे कौन से कर तैयार करता है ?
६. रेस का घोड़ा और शुतुरमुर्ग में कौन तेज दौड़ेगा ? दोनों का तीव्रतम वेग लगभग क्या है ?
७. सबसे कोमल वस्तु कौन-सी है जो छूने से पहले, नाम लेते ही टूट जाती है ?
८. फूल की पत्ती सूखने से पहले किस प्रकार हथौड़ी से चूर-चूर हो जाएगी ?
९. अमरीका की खोज सर्वप्रथम किसने की और कब ?
१०. स्वेज नहर पूरी करने का श्रेय किसको है और उसका उद्घाटन कब हुआ ?

प्रतियोगिता संख्या ३८ के प्रश्नों के उत्तर

१. ताप तथा शीत के प्रभाव से धातुओं के प्रसारण तथा संकोचन (expansion and contraction) के नियमानुसार लाल तप्त रिबिटों को ऊपर-तले की प्लेटों के एक ही सीध में बने सूराखों में फिट कर देते हैं तो ठण्डे पड़ जाने पर वे संकुचित होकर प्लेटों को अधिकतम खिचाव द्वारा सही रूप में जकड़े रहते हैं।
२. $Al_2O_3 \cdot 2H_2O$ सूत्रयुक्त धातु के आक्साइड को Bauxite कहते हैं। इसी से अल्युमिनियम बनाया जाता है। फ्रांस में आर्ले (Arles) के निकट बानों (Les Baux) नामक स्थान पर स्थित खानों से वह मूल धातु प्राप्त की जाती है। उसी धातु को Bauxite नाम पड़ा है।
३. किवी (Kiwi) जो न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है। एमु (Emu), कैंसोवरी (Cassowary), शुतुरमुर्ग (Ostrich) और रेही (Rhea) में भी यही विशेषता पायी जाती है।
४. पृथ्वी के उत्तर को नहीं, चुम्बकीय उत्तर ध्रुव इंगित करती है जो पृथ्वी के उत्तर से लगभग ६०० किलोमीटर दूर है।
५. कुल छः गतियाँ हैं : १. अपनी धुरी पर घूर्णन, २. सूर्य के गिर्द, ३. पृथ्वी और चन्द्रमा के गिर्द, ४. अभिजित (वेगा) नक्षत्र की सीध में, ५. आकाशगंगा के गुरुत्वकेन्द्र के गिर्द तथा ६. इसके ध्रुवीय अक्ष का उत्तरी सिरा भी आकाश में २६०० वर्षों में एक वृत्ताकार चक्कर लगा लेता है।
६. मोनोट्रेमेटा (monotremata) समूह का इकिडना (echidna) प्राणी जिसका प्रचलित नाम चींटीखोर (ant-eater) है। यह उत्तरी आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमरीका में अधिक पाया जाता है। प्रागैतिहासिक काल के इस समूह में केवल २-३ जातियाँ ही शेष बची हैं जिनमें से यह एक है।
७. ये खरगोश की भाँति एक रोयेदार प्राणी के रोयें हैं। उत्तम कोटि के लेडीज फर कोट इन्हीं से बनाये जाते हैं।
८. शहर में मुख्य मार्ग से अलग, रोड़ों और पत्थरों से बनाया गया तंग मार्ग जिस पर से कोयले की ट्रालियाँ धकेलकर ले जायी जा सकें।
९. हेरवेल (Harewell) स्थित जेटा (Zeta) नामक परमाणु-विभंजक रीएक्टर के संस्थान में। पूरा नाम है—Zero Energy Thermonuclear Assembly.
१०. शुष्क और आर्द्र, दोनों बलबयुक्त, स्लिंग साइक्रोमीटर (Sling Psychrometer) नामक यन्त्र द्वारा।

बड़े इनामों के लिए नये प्रीमियम इनामी बाण्ड

हर मूल्य के बिके प्रति १ करोड़ रुपये के बाण्डों पर दोनों में से
प्रत्येक निकासी (ड्रा) में इनाम इस प्रकार दिए जाएंगे :

१०० रु० वाले बाण्डों पर

१ इनाम	५०,००० रु०
२ इनाम	प्रत्येक २५,००० रु० का
५ इनाम	प्रत्येक १०,००० रु० का
१० इनाम	प्रत्येक ५,००० रु० का
७५ इनाम	प्रत्येक २,००० रु० का
१५० इनाम	प्रत्येक १,००० रु० का

कुल २४३ इनाम

५ रु० वाले बाण्डों पर

१ इनाम	१५,००० रु०
२ इनाम	प्रत्येक १०,००० रु० का
१० इनाम	प्रत्येक ५,००० रु० का
२५ इनाम	प्रत्येक २,००० रु० का
२०० इनाम	प्रत्येक १,००० रु० का
३३० इनाम	प्रत्येक ५०० रु० का

कुल ५६८ इनाम

जिन लोगों के पास ये बाण्ड होंगे वे १९६४ में होने वाली इनामों की दो निकालियों
में भाग लेने के हकदार होंगे।

अनबिके बाण्ड पर इनाम नहीं दिया जायगा।

५ वर्ष बाद बाण्ड के पकने पर १० प्रतिशत लाभ (प्रीमियम)।
इनाम की रकम और लाभ दोनों पर ही आयकर नहीं लगेगा।

प्रीमियम इनामी बाण्ड खरीदिये

भारत की रक्षा-शक्ति को सुदृढ़ कीजिये



राष्ट्रीय बचत संगठन

आपके प्रश्न



राजेन्द्रनाथ गोयल (५५६०) जयपुर

प्रश्न—वर्णान्धता क्या है, क्यों हो जाती है ?

उत्तर—इसे Achromatopsia अर्थात् कलर ब्लाइण्डनेस (colour blindness) कहते हैं। सामान्य अवस्था में तो इसका रोगी लाल, हरे और पीले में भेद नहीं जान पाता। रोग बढ़ने पर सभी कुछ भूरा ही भूरा दिखायी पड़ता है। नेत्रपटल की संरचना में तथा मस्तिष्क की दृष्टिवाहक तन्तु-व्यवस्था में विकृति आ जाने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके लिए कुशल नेत्र-सर्जन की सहायता लेनी चाहिए।

रेवाशंकर भट्ट (५१८५) खडगदा

प्रश्न—यूरेनियम का हीलियम में परिवर्तित होना क्या सिद्ध करता है ?

उत्तर—भू-वेत्ताओं तथा भू-रसायनज्ञों का यह प्रिय विषय है। भूमिगत तत्त्वों के अणु-परमाणु निश्चित क्रम पूर्वक विभिन्न पदार्थों में परिवर्तित होते रहते हैं और उस क्रम में किंचित् भी अन्तर नहीं पड़ता। इसी आधार पर पृथ्वी की आयु का तथा प्रत्येक तत्त्व का निर्माण-काल निर्धारित किया जाता है। रीएक्टर जैसे अनेक जटिल यन्त्रों द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

शशिकान्त श्रीवास्तव (५६५८) फीरोजाबाद

प्रश्न—इन्द्रधनुष अर्द्धगोल ही क्यों दिखता है ? पूर्ण गोलाकार दिख सकता है क्या ?

उत्तर—गोलाकार सूर्य की ही तो रश्मियों का आवर्तन होता है यह ! पृथ्वी के अनुपात में हमारी दृष्टि अत्यन्त सीमित होने के कारण पूर्ण गोलाकार नहीं दिखता। हाँ, पहाड़ की चोटी पर, खुले क्षितिज की ओर पड़ता हो तो गोलाकार अवश्य दिखेगा।

चिमनलाल हंसराजभाई (८६०८) नांदेड

प्रश्न—एन्टीसेप्टिक सर्जरी का प्रारम्भ किसने किया ?

उत्तर—ब्रिटिश सर्जन लार्ड लिस्टर (Lord Lister) ने।

मार्च १९६३

सुशीला चौधरी (७२३१) रांची

प्रश्न—किसी एक ही प्राणी में दाँतों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच सकती है क्या ?

उत्तर—सैकड़ों की क्या बात, हजारों तक भी पहुँचती है ! पोखरों, तालाबों में पाये जाने वाले सामान्य घोंघे के मुँह में १४१७५ दाँत होते हैं !

किशनलाल गोयल (६३१४) रायगढ़

प्रश्न—लेविसाइट (lewisite) क्या है ? इसका सर्वप्रथम प्रयोग कब किया गया ?

उत्तर—मस्टर्ड गैस की भाँति ही युद्धोपयोगी जहरीली गैस है। प्रथम विश्व-युद्ध के मध्यकाल में, सर्वप्रथम जर्मनी ने इसका प्रयोग किया था।

रवीन्द्रकुमार मेहरा (३८४७) अजमेर

प्रश्न—सोपियों से विविध खिलौने बनाने के लिए कौनसा मसाला काम में लाया जाए जो उन्हें मजबूती से चिपका सके ?

उत्तर—खर साल्यूशन जैसा कोई भी बढ़िया पेस्ट काम दे जाएगा।

नत्थूलाल शर्मा (२४६८) बिसौली

प्रश्न—राइफल से छूटी गोली का वेग क्या होगा ?

उत्तर—राइफल से छूटते समय उसका वेग २६४० कि.मी. प्रति घण्टा से भी अधिक होता है, किन्तु उसी अनुपात में वायु-अवरोध भी काम करता है। अतः प्रायः ७४० मीटर प्रति सेकण्ड के वेग से प्रथम सेकण्ड में केवल ५५० मीटर तय करती है, दूसरे सेकण्ड में ३७० और तीसरे में केवल २७० ही। करीब दो मील के फासले पर यों जा गिरेगी मानो जेब से टपक पड़ी हो !

चन्द्रेशचन्द्र (४१२) करगी रोड

प्रश्न—कभी-कभी नाक से रक्त क्यों बहने लगता है ? ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए ?

उत्तर—इसके कई कारण हैं। तात्कालिक कारण चोट जैसा भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रायः रक्त की शिथिलता तथा जननांगों के रोग भी यह लक्षण प्रकट करते हैं। बहता रक्त रोकने के लिए चेहरे तथा गर्दन के पीछे पृष्ठ भाग पर ठण्डे पानी के छीटे देने चाहिए। फिर भी बन्द न हो तो हलका हाइड्रोजन पराक्साइड सुँघाना चाहिए।

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

Book II.....Price : Re.1*00

Book III.....Price : Re.1*20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

प्रश्न—पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध पड़-
पौधों में ऊँची पत्तियों तक पानी कैसे पहुँच जाता है ?

उत्तर—जिसे पानी समझा जाता है, वह पौधे का जीवद्रव्य है, रस है। पौधे की जड़ों में घुले हुए द्रव्य और ऊपर से दिये गये पानी के घनत्व में अन्तर होने से रसाकर्षण (osmosis) क्रिया द्वारा रस सबसे ऊपर की फुनगी तक पहुँचता रहता है।

मेनालउद्दीन (७४८१) भागलपुर

प्रश्न—संगीत का प्राण, हारमोनियम का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—पेरिस के एलेक्जण्डर डेविन (Alexandre Debin) ने १९वीं शताब्दी में।

परमानन्द गुप्ता (६२३२) रायगढ़

प्रश्न—नाइट्रोमीटर किस काम आता है ?

उत्तर—कार्बनिक यौगिकों में नाइट्रोजन की मात्रा ज्ञात करने के लिए, विशेषतः ड्यूमा की सूचित विधि (Duma's Absolute Method) के अन्तर्गत अन्य उपकरणों के साथ काम आता है।

सतीशचन्द्र सिंह (६१५७) लखनऊ

प्रश्न—सर्कस का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ ?

उत्तर—आज से २३०० वर्ष पहले ! ईसा से ४०० वर्ष पूर्व रोमन सम्राट टारकिनिस (Tarquinis) ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में घुड़दौड़ और मुक्केबाजी का सर्वप्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन कराया था। तब से विजयपर्वों की राजसी परम्परा बहुत कुछ ऐसी ही चलती आई है। आधुनिक सर्कस का जन्मदाता घुड़सवारी का करिश्माकार फिलिप एस्टले (Philip Astley) माना जाता है जिसने १७६६ में लन्दन में सर्कस प्रदर्शन की नींव डाली थी।

उपेन्द्रमोहन (३५५६) मुजफ्फरपुर

प्रश्न—आँख के रेटिना पर उलटा बिम्ब पड़ता है फिर भी वस्तु हमें सीधी क्यों दिखती है ?

उत्तर—बिम्ब अवश्य उलटा पड़ता है किन्तु खने का आभास पाना तो मस्तिष्क का काम है। रेटिना से संयुक्त मस्तिष्क का तंत्रिका-तंत्र वस्तु के चित्र का संदेश सीधा करके ही मस्तिष्क तक पहुँचाता है।

वर्ष १९६३

प्रश्न—काबन मोनोक्साइड का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—यह अत्यन्त जहरीली गैस है। चिमनियों और ज्वालामुखी की गैसों में तथा कोयले की खानों में यह अधिकता से पायी जाती है। १८०० में विलियम कूकशंक की घोषणा से पूर्व यह हाइड्रोजन ही समझी जाती थी क्योंकि ये दोनों गैसें नीली ज्वाला से जलती हैं। रक्तोष्ण कोक के ऊपर इसे हाइड्रोजन से संयुक्त करके प्रवाहित करने पर बहुमूल्य वाटर-गैस प्राप्त होती है जो बड़े उद्योगों में ईंधन का काम देती है।

रामदयाल शर्मा (४८७५) विदिशा

प्रश्न—६ अगस्त १९४५ विज्ञान के इतिहास में क्यों प्रसिद्ध है ?

उत्तर—हिरोशिमा पर एटम बम गिराने की वह निन्दनीय कहानी युग-युगों तक भुलायी जा सकेगी क्या, जिसमें उस महाकाल की सुबह ८ बजे चार मील के विस्तार में शहर के ३॥ लाख निवासियों पर कयामत ढा दी गयी थी ? उनमें से आधे तो तत्क्षण ही समाप्त हो गये और शेष आधे मर-मरकर जीने के लिए रह गये।

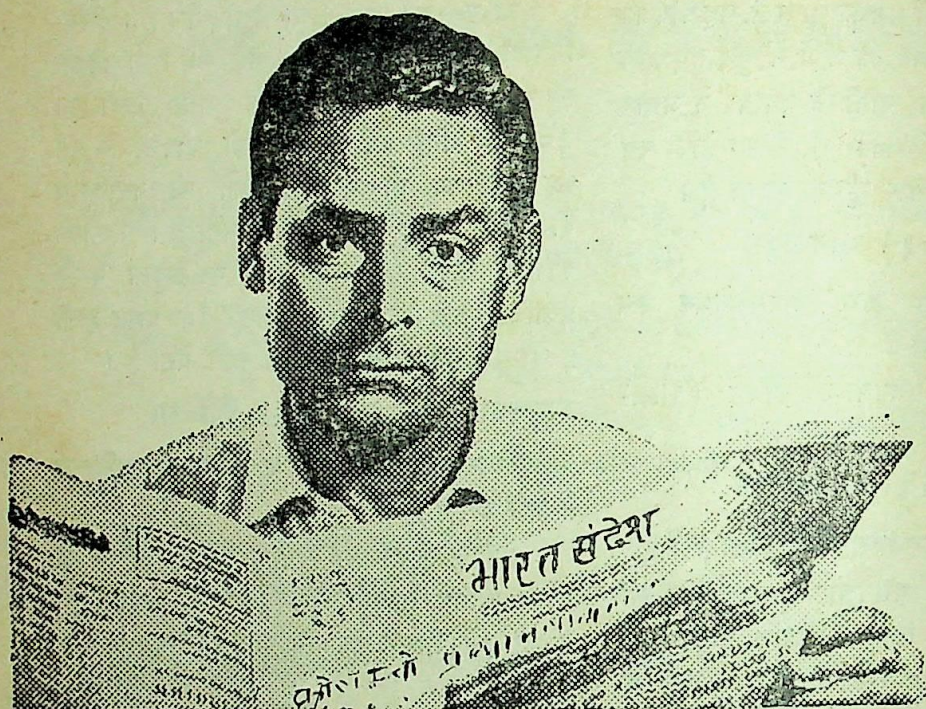
प्रेमचन्द अग्रवाल (३७६७) गंगानगर

प्रश्न—मनुष्य पर आकाशीय बिजली किन कारणों से पड़ती है ? मनुष्य बिजली का सुचालक है फिर भी बिजली बिना हानि पहुँचाए सीधे ही धरती में प्रवेश क्यों नहीं कर जाती ?

उत्तर—आकाशीय विद्युत के समय ऊँचे वृक्ष या मीनार आदि के पास खड़े होने अथवा छाता खोले रहने से बिजली गिरने की सर्वाधिक संभावना रहती है। मनुष्य कैसा भी सुचालक हो, मन्द बैटरियों की धारा तो सह लेगा, किन्तु जब घरेलू बिजली का ही धक्का नहीं सह पाता तब आकाशीय बिजली की तो बात ही क्या ?

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

क्या अब भी कुछ करना है ?



जी हां ! अब भी बहुत कुछ करना है । देश भर में अपूर्व एकता और असीम उत्साह की जो लहर फैली है, अपना लक्ष्य प्राप्त करने की जो दृढ़ता और प्रबल भावना जागृत हुई है, उसमें हमारी उदासीनता अथवा ढिलाई के कारण कोई कमी न आए, इसका हमें पक्का इंतजाम करना है । राष्ट्र के प्रति समर्पण, कर्तव्य-निष्ठा तथा अनुशासन से काम करने के दृढ़ निश्चय को हमें दोहराना है ।

- अनावश्यक खर्च बंद करें, ठाट-वाट छोड़ दें ।
- कुछ भी जाया न करें—दफ्तर हो या घर, कहीं भी, किसी भी समय ।
- अपने काम पर डटे रहें, फुर्ती और कुशलता से पूरा किया गया हर काम राष्ट्र को अधिक सबल बनाता है ।
- अपना सोना राष्ट्र की सेवा में अर्पित करें, ढिलाई छोड़ें और मुस्तैदी से काम में जुटे रहें ।

चौकस रहें

—राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें ।

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्र-

[मुखपृष्ठ बजवासी फाइन आर्ट ओफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

नीहारिका केवल २) में

तृतीय वर्ष प्रवेश के उपलक्ष्य में

नी हा रि का

की

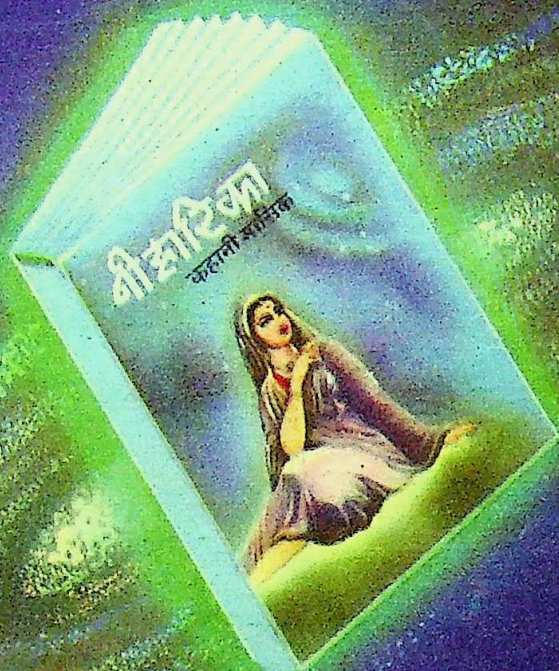
नवीन आकर्षक योजना

- नीहारिका का वार्षिक शुल्क ७ रु. अर्थात् तीन वर्ष का २१ रु. है ।
- इस योजना के अनुसार केवल १६ रु. भेजकर ही आप तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं ।
- इस योजना के अन्तर्गत आपको नीहारिका अप्रैल १९६३ से मार्च १९६६ तक भेजी जाएगी ।
- इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत आपको नीहारिका के अप्रैल १९६५ से मार्च १९६६ तक के बारह अंक केवल २ रु. में प्राप्त होंगे ।
- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि ३१ मार्च १९६३ है ।

विक्रय व्यवस्थापक, नीहारिका, हास्पिटल रोड, आगरा
को आज ही मनीआर्डर द्वारा १६ रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ ।

Price: Rs. 12/-
कहानी जगत में नया नक्षत्र

Digitized by Anva Samra Foundation Chennai and eGangotri



गीटारिका

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उप

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७८

एक प्रति ६८

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विज्ञान-लोक



गुलाब	३
—कीर्तिमोहन	
जुगनू	८
—सुरेशसिंह	
उछलते-उबलते फव्वारे	११
—वीरेन्द्रकुमार सेठ	
भविष्य की अन्तरिक्ष यात्राएँ	१६
—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा	
पहिये का विकास	२०
—शिवचन्द्र श्रीवास्तव	
पंख	२३
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल	
डा. के. एस. कृष्णन्	२६
—श्यामनारायण कपूर	
कार्बन डाइआक्साइड	२८
—आदित्यगोपाल भिंगरन	
कृषि-सुधार में विज्ञान	३१
—महेन्द्रसिंह	
चन्द्रलोक का शासक	३८
—एच. बी. ग्रेगरी	
मदिरा रसायन	५१
—सत्यकुमार	
स्थायी स्तम्भ	
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	३१
विचित्र संसार	४८
विज्ञान क्लब	५५
इनाम लो	५८
आपके प्रश्न	६०
तुम्हारी कलम से	६३

वर्ष ४

अंक ४



मूल्य

प्रति : ७५ नये पैसे

षिक : ६ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सम्पादक : शंकर मेहरा

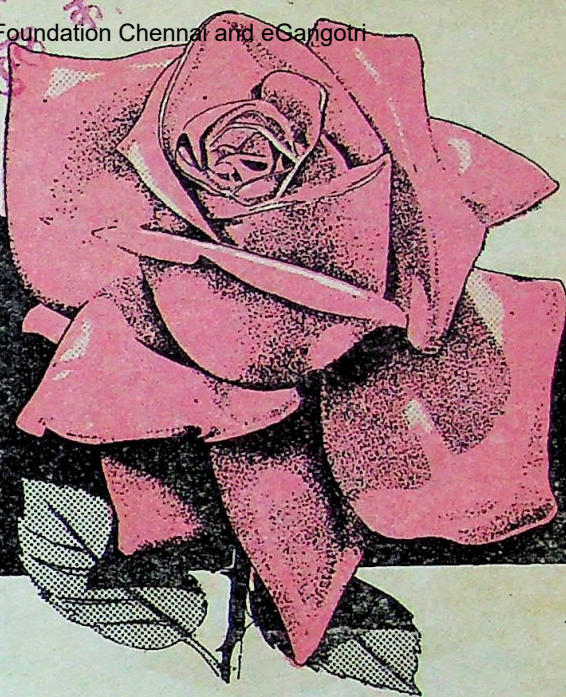
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

अपराध, निदान और औषधि सम्बन्ध विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के विज्ञानिकों का तृतीय अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन लंदन में अप्रैल १६ से २२ तक आयोजित किया गया सम्मेलन अत्यन्त सफल रहा।

प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए अधिवेशन के अध्यक्ष, प्रसिद्ध ब्रिटिश पैथॉलॉजिस्ट डा. फ्रान्सिस ई. कैम्प्स ने कहा था—‘पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा ही नित्य बढ़ते हुए अपराधों के अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वास्तविक परीक्षण तथा उचित न्यायीकरण सम्भव है।’

३६ देशों से आये हुए ५०० से भी अधिक प्रतिनिधियों के मध्य भारत के भी चार प्रतिनिधियों ने उल्लेखनीय रूप से भाग लिया था। कलकत्ता के डा. ए. बी. रायचौधरी ने ‘रक्त-रंजन से रक्त-समूह का निर्धारण’, कलकत्ता के ही डा. एन. आर. आर्य ने ‘विधि-औषधि की समस्याएँ’, ‘सर्पदंश से मृत्यु’; बम्बई के श्री एच. एस. मल्ल ने ‘मानव में विष-प्रेषण’ तथा मद्रास के श्री ए. नटराजन ने ‘विष के आधुनिक घरेलू उपचार’ विषयों पर अपने-अपने प्रबन्ध पढ़े थे।

गुलाब



कीर्तिमोहन

'गुलाब' शब्द से ही सौन्दर्य और शुभ्रता का सहज बोध होता है। इसका इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। जन-जीवन के निकटतम रहने का जितना सौभाग्य इसे प्राप्त होता रहा है, उतना अन्य किसी पुष्प को नहीं। इसकी अद्वितीय मोहकता से ही मुग्ध होकर ग्रीक कवयित्री सैफो (Sappho) ने इसे 'फूलों की रानी' कहा है। संसार के प्रायः सभी प्रमुख देशों की प्राचीन तथा वर्तमान संस्कृतियों से इसका गहरा सम्बन्ध रहा है। ५००० वर्ष पूर्व भी गुलाब था, संसार प्रसिद्ध बेबीलोन के झूलते उद्यानों (Hanging Gardens of Babylon) में गुलाब था और आज भी हमारे अति निकट गुलाब है।

तरह तरह के गुलाब

गुलाब का वृहत् परिवार संसार भर में फैला हुआ है। रोजा (Rosa) वंश के रोजेसी (Rosaceae) परिवार से इसकी असंख्य शाखा-प्रशाखाएँ विभाजित हुई हैं। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में सुदूर पूर्व से गुलाब

ने पश्चिमी प्रदेशों में प्रवेश किया था। पूर्व एशिया में उन दिनों उत्पन्न होने वाली टी रोज (Tea rose) गुलाब की प्रसिद्ध जाति थी और सैकड़ों वर्ष पहले से वहाँ उगायी जाती थी। आज तक यद्यपि गुलाब की लगभग २०० जातियाँ निर्धारित की जा चुकी हैं, उनके नामों की संख्या हजारों तक पहुँच चुकी है।

गुलाब को वन्य (wild) तथा कृष्ट (cultivated) दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। वन्य गुलाब में कोई विशेषता नहीं होती। सामान्य फूलों की भाँति वे इकहरे फूल होते हैं जिनमें पाँच बाह्यदल (sepals); पाँच दल (petals) तथा अनिश्चित संख्या में पुंकेसर (stamens) और स्त्रीकेसर (carpels) होते हैं। ये सभी अंग नीचे की एक धानी (receptacle) में जुड़े रहते हैं। कुछेक वन्य गुलाबों में पाँच पंखुरियों के अतिरिक्त भी पंखुरियाँ होती हैं। आज गुलाब को जो महत्त्व प्राप्त है वह कृषि और उद्यान के लिए उसकी उपयोगिता के कारण है।

मई १९६३



डेन्टीमेड—गुच्छाकार गुलाब

पूर्व एशिया के टी रोज के अतिरिक्त फ्रान्स का फ्रेन्च रोज और ईरान, यूनान तथा इटली के मस्क रोज उद्यानयोग्य गुलाबों में अति प्रसिद्ध हैं। टी रोज बारहों महीने उगाया जा सकता है। शेष उद्यानयोग्य जातियों में कुछ तो वर्ष में केवल एक बार—ग्रीष्म के प्रारम्भ में तथा कुछ दो बार—ग्रीष्म और शरद में उगायी जा सकती हैं। गुलाब कहीं तो ठिगनी भाड़ी (bush rose) के रूप में, कहीं मध्यमवृक्ष (standards) के रूप में तो कहीं लम्बी बेल (ramblers) के रूप में होते हैं।

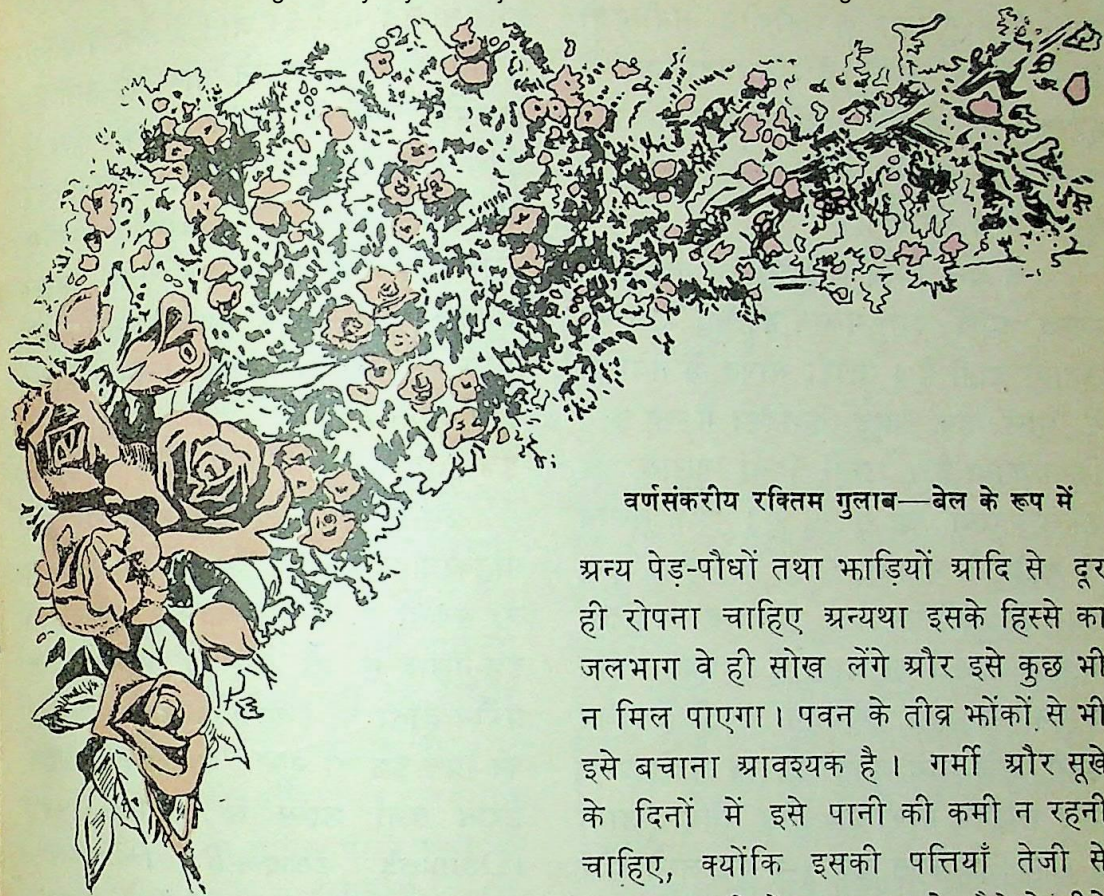
गुलाब के फूल का रंग कहीं श्वेत होता है तो कहीं पीली आभा लिये हुए; कहीं चमकीला पीला तो कहीं खुलता गुलाबी और कहीं क्रमशः गहरा होता हुआ लाल सुर्ख और मैरून तक पहुँच जाता है। अब तो आसमानी, नीला, काला तथा अनोखे रंगों में भी गुलाब उगाना सम्भव है। आकार में भी गुलाब आधा इंच से लेकर

कुछ अनोखे गुलाब

गुलाब के लिए यह अनिवार्य नहीं कि वह काँटों से घिरा ही हो। बगैर काँटों के गुलाब अब आश्चर्य की वस्तु नहीं रहे। चिकना गुलाब अर्थात् (smooth rose—*Blanda*) लगभग तीन इंच चौड़ा होता है। यह उत्तरी अमरीका के न्यूजर्सी तथा मिसौरी के विस्तारों में और न्यूफाउण्डलैण्ड में उगाया जाता है। प्रायरी रोज (prairie rose—*R. setigera*) जाति का गुलाब एक बेल के रूप में उगता है। इसके फूल कुछ समय तक ही गुलाबी रहते हैं, तत्पश्चात् मनोहारी श्वेत रंग में परिणत हो जाते हैं। यह उत्तरी अमरीका के ओन्टारियो, फ्लोरिडा तथा टेक्सास में पाया जाता है। इंग्लैंड तथा फ्रान्स के भी कुछ गुलाब प्रसिद्ध हैं। बड़ा गुलाब (*R. pomifera*) अपने आकार तथा तीखे लाल रंग के कारण बहुत प्रसिद्ध है। बंगाल रोज (Bengal rose) एशिया में प्रसिद्ध टी रोज (Tea rose) की भाँति बारहमासा गुलाब है।

गुलाबी गुलाब—दो डाक्टर





वर्णसंकरीय रक्तिम गुलाब—बेल के रूप में

अन्य पेड़-पौधों तथा भाड़ियों आदि से दूर ही रोपना चाहिए अन्यथा इसके हिस्से का जलभाग वे ही सोख लेंगे और इसे कुछ भी न मिल पाएगा। पवन के तीव्र झोंकों से भी इसे बचाना आवश्यक है। गर्मी और सूखे के दिनों में इसे पानी की कमी न रहनी चाहिए, क्योंकि इसकी पत्तियाँ तेजी से वाष्पन करती हैं। अतः इसके पौधे के नीचे की भूमि ७-८ इंच तक गीली रहनी चाहिए।

गुलाब को किसी भी अनुकूल विधि द्वारा रोपा जा सकता है। बीजों द्वारा, डाल के टुकड़ों द्वारा तथा कलमें लगाकर गुलाब उगाया जा सकता है। कलम लगाकर अधिक उत्तम पौधा प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि जिस विशिष्ट जाति का पौधा उगाना हो, उसकी एक नवांकुरित डाली दूसरे गुलाब की डाली से जोड़ दी जाए। इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि दोनों डालियों के तंतु परस्पर सही रूप में संयुक्त हो जाएँ।

परागकणों (pollen) के स्थानान्तरण द्वारा भी उत्तम जाति प्राप्त की जा सकती है। यह एक कठिन कला है जिसमें पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता है। इस क्रिया में बड़ी कुशलता से एक गुलाब का पुंकेसर दूसरे गुलाब के स्त्रीकेसर में स्थापित किया

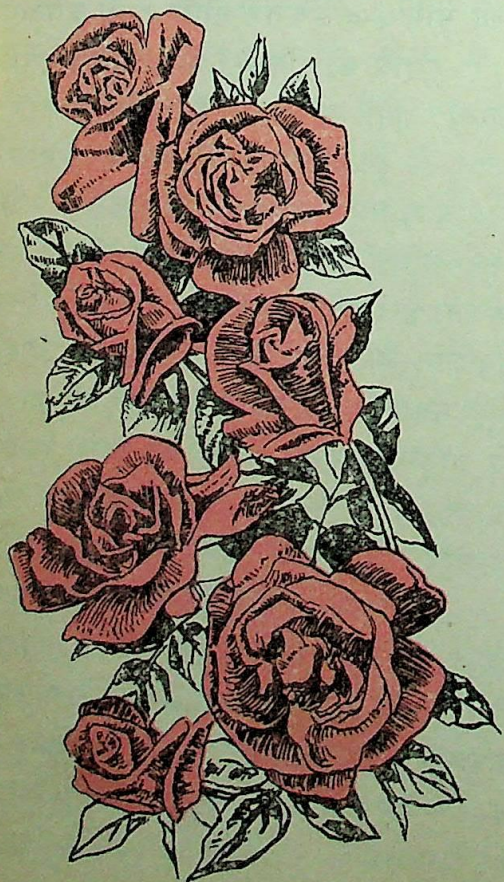
बागवानी में गुलाब

गुलाब की बागवानी प्रत्येक देश की प्रिय कला है। सैकड़ों वर्षों से विकसित होती हुई यह कला आज खेती के रूप में एक उद्योग बनी हुई है। वनस्पति विशेषज्ञों की कुशल देख-रेख में गुलाबों की खेती आय का एक अच्छा साधन है। इसका कारण केवल इसकी मनमोहकता ही नहीं, उपयोगिता भी है। लगभग ३२ प्रकार के उपचारों में गुलाब काम आता है।

गुलाब उगाने के लिए उपयुक्त भूमि तथा जलवायु का सही चुनाव आवश्यक है। इसे अधिकतमः समशीतोष्ण और अंशतः शीतल जलवायु चाहिए। खुली, हलकी धूप भी इसे बहुत लाभदायक रहती है। तेज गरमी के दिनों में इसे छाँह चाहिए। भरे हुए पानी के गड्ढे की अपेक्षा बहते हुए पानी वाली भूमि अनुकूल रहती है। इसे

जाता है। गुलाबों के शौकीन नयी-नयी क्रिस्में तैयार करते हैं और प्रदर्शनियों में पुरस्कृत होने पर उन्हें पेटेंट करा लेते हैं। उनके नाम भी वे अपने प्रिय पात्रों में से चुनकर रख देते हैं।

एक अन्य विधि में विलायती गुलाब की स्वस्थ आँख देशी गुलाब की नई डाल पर लगायी जाती है। उत्तरी भारत में नवम्बर से मार्च तक जाड़े के दिनों में यह कार्य किया जाता है। उन्हीं दिनों गुलाब की फसल बढ़ायी जा सकती है। देशी गुलाब की दतौन के बराबर कलमें काटकर १-१ इंच की दूरी पर उन्हें आधी लम्बाई तक भूमि में डाल दिया जाता है। एक महीने में उनमें से जड़ें निकलने लगती हैं। जब उनमें कल्ले आने लगते हैं तब अच्छे-अच्छे २-३ छाँटकर बाकी को छोड़ दिया जाता है। वे ही कल्ले जब १-२ फुट लम्बे और पौधे का लाल गुलाब—फ्रेन्चम (विदेशी)



पेन्सिल जैसे मोटे हो जाते हैं तक वे बड़ी गुलाब की आँखें लगाने योग्य हो जाते हैं। क्रिस्मस ग्लोरी (Christmas Glory), ईडन रोज (Eden Rose), गोल्डन मास्टर पीस (Golden Masterpeice), स्पेक्स येलो (Specks Yellow) तथा गोल्डन डीलक्स (Golden Deluxe) प्रमुख विदेशी गुलाब हैं जिनकी आँखें कलमें लगाने का काम आती हैं।

इत्र-गुलाब

इत्र-गुलाब की लोकप्रियता तथा मोहकता का अनुमान इस दंतकथा से लगा जा सकता है कि मुगलकालीन रनिवासों में इत्र-गुलाब से ही बसे हुए स्नानकुण्डों में प्रयोग होता था। आज भी इत्र के शौकीनों का प्रिय इत्र तो गुलाब का ही है। भारत, ईरान तथा फ्रान्स में दमिश्क गुलाब (Damask rose—*R. Damascena*) अधिकतर इत्र के उत्पादन के लिए ही उगाया जाता है।

इत्र निकालने के लिए फूलों को सामान्य किन्तु शोधित (refined) तेल या चर्बी ५०°F के ताप तक गर्म किया जाता है। उस ताप पर वह तेल फूलों के तेल को अवशोषित करता है। तत्पश्चात् इत्र को सोख लेता है। तत्पश्चात् आसवन क्रिया (distillation) द्वारा इत्र अलग निकाल लिया जाता है। विदेशों में इत्र-गुलाब लगभग ७००-८०० रुपये प्रति औंस (३० ग्राम) तक बिकता है। ३० औंस इत्र के लिए लगभग १२० किलोग्राम फूल आवश्यक हैं, अर्थात् लगभग ४०० फूल चाहिए !

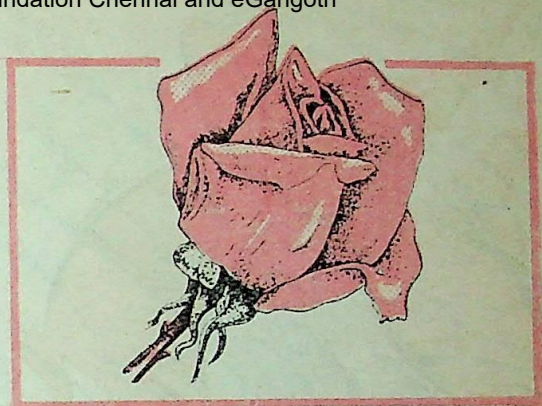
रोगोपचारों में गुलाब

गुलाब के औषधीय गुण भी अनेक हैं। इसकी शीतल प्रकृति का उपयोग शरीर के रोगों में किया जाता है। शरीर का ताप बढ़ जाने पर बर्फ में ठण्डा किया जाता है।

गुलाबजल तथा गुलरोगन का उपयोग किया जाता है। पेट की गर्मी बढ जाने पर गुल-कन्द खिलाया जाता है। गर्मियों में ठण्डाई का नित्यप्रति प्रयोग करने वालों के लिए बादाम तथा अन्य मसालों के साथ गुलाब की पत्ती एक अनिवार्य वस्तु है।

गुलाब को रोगों से बचाइए

गुलाब का पौधा फन्जाई की परजीवी वनस्पतियों के रोगाणुओं से सहज ही आक्रान्त हो उठता है। भूरी, सफेद, पतली सतह नर्म डालियों, पत्तों और कलियों पर दिखाई देने लगती हैं। पानी की अधिकता में भी काली चित्तियाँ उभर आती हैं। इनके प्रति पूरी सावधानी न बरती गयी तो ये रोग पत्तियों का सफाया कर देते हैं और पौधा बेकार हो जाता है। इनके सूक्ष्माणु नजर तो आते नहीं, पत्तियों पर या पौधे के नीचे ४-६ घण्टे से अधिक पानी रुका रहे तो वहीं अपना अड्डा जमा लेते हैं। इसके लिए कापर तथा सल्फर निर्मित फन्जाई-नाशक दवाएँ (Ferbam तथा Captan)



वर्णसंकरीय गुलाब

आदि पौधों पर छिड़कते रहना चाहिए। इन रोगों का आक्रमण सामान्यतः वसन्त से ग्रीष्म के प्रारम्भ तक होता है। फन्जाई के अतिरिक्त अन्य अनेक कीटाणु, गिराड़ें तथा नन्हे कीड़े भी गुलाब को अपना शिकार बनाते रहते हैं। उनके लिए निकोटीन तथा डी. डी. टी. जैसी तीव्र कीटाणुनाशक दवाएँ उपयोग में लानी चाहिए।

गुलाब की नई अनोखी किस्में उगाना एक मनोरंजक कला तो है ही, आर्थिक दृष्टि से लाभकारी बागबानी भी है।

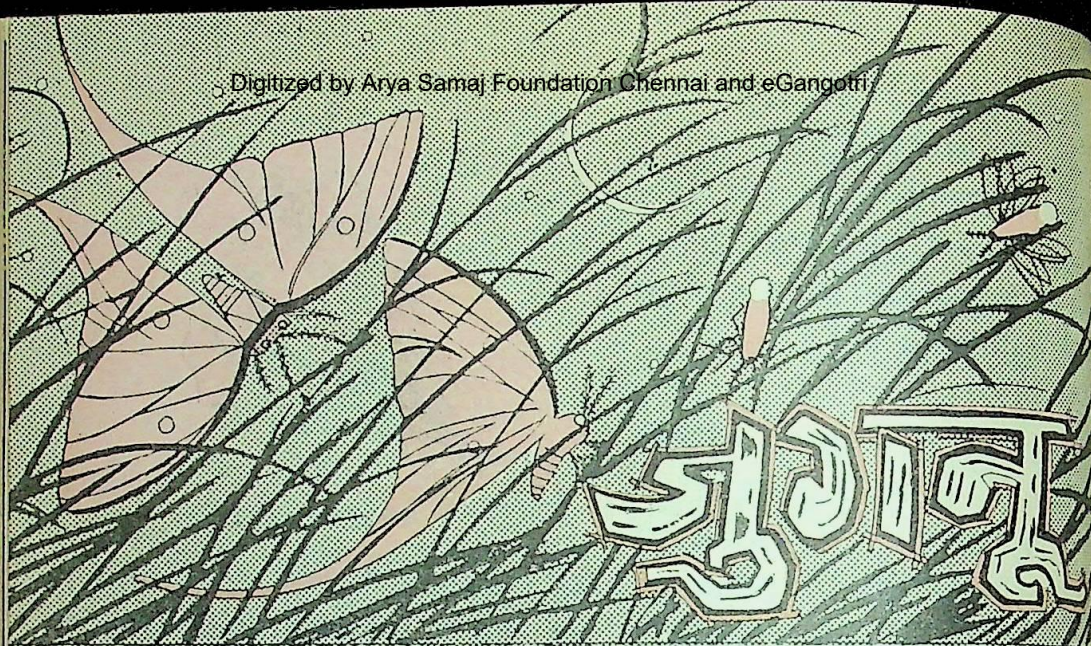
रेलवे समय-सारिणी में भी कम्प्यूटर

ब्रिटेन में एक लाख पौण्ड की लागत से ऐसा कम्प्यूटर यंत्र तैयार किया गया है जो ब्रिटिश रेलवे-तंत्र की समय-सारिणियाँ बनाकर बहुमूल्य सेवा करेगा। इस कार्य के लिए यह यंत्र संसार में सर्व-प्रथम है। इसकी सहायता से दो व्यक्ति ३० घण्टे में एक समय-सारिणी बनाकर तैयार कर सकेंगे जो अन्यथा पाँच व्यक्तियों द्वारा २००० घण्टों में बन पाती !

फ्लेमिंग-कोष की भारत को सहायता

नोबेल पुरस्कार विजेता, पेनिसिलिन-आविष्कारक, ब्रिटिश बैक्टीरियोलॉजिस्ट सर एलेक्जान्डर फ्लेमिंग (मृत्यु १९५५) की स्मृति में स्थापित 'फ्लेमिंग स्मृति कोष समिति' विगत पन्द्रह मास में १,२०,००० पौण्ड के अनुदान दे चुकी है। उससे सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाओं में भारत की कोढ़ अनुसन्धानक संस्था बेलोर स्थित क्रिश्चियन मेडिकल कालेज भी है।

मई १९६३



सुरेशसिंह

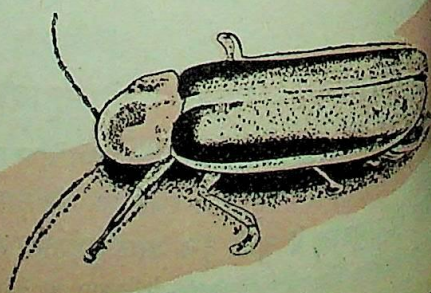
जुगनू से हम सभी परिचित हैं। गरमियों में रात के समय किसी जलाशय के निकट इन्हें टिमटिमाते, उड़ते देखकर लगता है मानो आकाश के तारे पृथ्वी पर उतर कर आंखमिचौनी खेल रहे हैं। ये कीट वास्तव में गुबरीले के निकट सम्बन्धी हैं। गुबरीले का अर्थ यहाँ केवल उनसे नहीं जो गोवर या लीद के गोले लुढ़काते हुए दिखते हैं। बीटल (beetle) भी गुबरीला है। बीटल वर्ग के कीटों की असंख्य जातियाँ हैं। उन्हीं में से जुगनू भी है। इसे ग्लो-वर्म (glow-worm) कहते हैं।

अन्य कीटों की तरह जुगनू छः टाँगों वाला छोटा-सा कीट है। गाढ़े भूरे रंग का इसका शरीर कई खण्डों में बँटा रहता है। शरीर के दोनों किनारों पर एक-एक लाल बिन्दी रहती है। नर-जुगनू तो प्रौढ़ होने पर पंख युक्त हो जाता है किन्तु मादा आजीवन पंखरहित ही रहती है। मादा के शरीर के अन्तिम तीन खण्डों के नीचे प्रकाश फँकने वाले अवयव रहते हैं। वे दो खण्डों में एक पट्टी और अन्तिम खण्ड में दो बिन्दुओं की तरह होते हैं। यह पट्टी नीचे की ओर एक

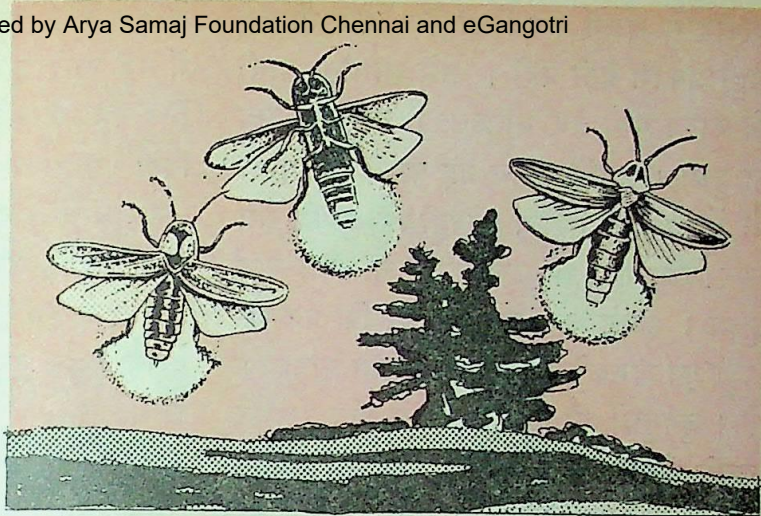
प्रकार का ठण्डा निलछौंहा प्रकाश फँकता है। वहीं अन्तिम खण्ड में दोनों प्रकाश बिन्दु शरीर के नीचे और ऊपर दोनों ओर चमकते रहते हैं। नर-जुगनू के शरीर के अन्तिम खण्ड पर केवल दो प्रकाश बिन्दु रहते हैं। मादा की तरह उसमें प्रकाश की पट्टी नहीं होती।

मादा के शरीर का प्रकाश फँकने वाला पट्टी जैसा यह अद्भुत अंग निकट से देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे शरीर के नीचे एक चौड़ी सफेद रेखा खिंची हो। पट्टी के निकटवर्ती एक वायुनलिका चली जाती है जिसमें से अनेक पतली नलिकाएँ निकलती हैं। जुगनू श्वास लेते समय आवश्यक है प्रकाश की इस पट्टी पर पहुँचा देता है जिसके कारण शरीर का निचला हिस्सा उसकी इच्छानुसार चमक उठता है।

फायर-पलाई

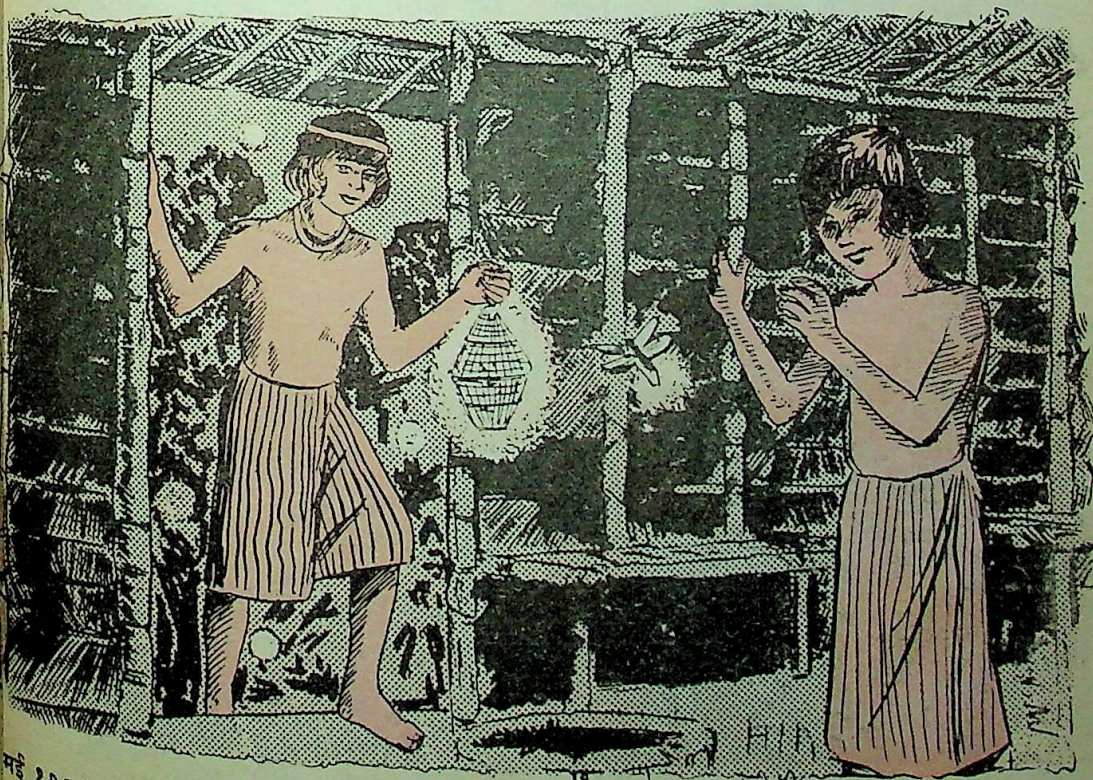


कुछ लोगों का खयाल है कि जुगनू के चमकने वाले पदार्थ में फास्फोरस रहता है लेकिन ऐसी बात नहीं है। फास्फोरस तो हवा के आक्सीजन से जलकर तप्त प्रकाश देता है जो जुगनू के शीतल प्रकाश से सर्वथा भिन्न है। जुगनू का प्रकाश तो उसके शरीर के दोनों श्वेत बिन्दुओं पर लगे हुए पदार्थ



पर श्वसन क्रिया के समय हवा के संयोग से उत्पन्न होता है। जुगनू चाहता है तो श्वास बढ़ाकर उसे अधिक चमका देता है अथवा घटाकर उसे मन्द भी कर देता है। यही कारण है कि जब हम उसे पकड़ने का उद्योग करते हैं तो वह संकट को निकट देखकर श्वास रोक लेता है और अँधेरे में छिप जाता है। वैज्ञानिकों ने इस प्रकाश को बुझाने के अब भी कुछ आदिवासियों में जुगनुओं को एक लैम्प में बन्द करके उसके प्रकाश का आनन्द लेने की प्रथा है

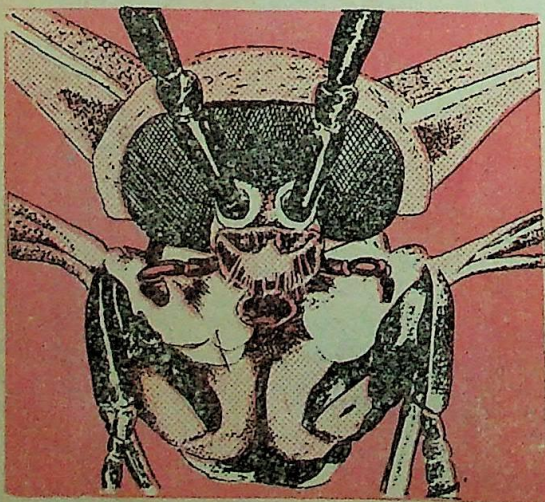
धरती के इन सितारों की जगमगाहट को विज्ञान ने ठण्डी आग कहा है लिए भाँति-भाँति के प्रयोग किये, धमाके किये और पानी की बौछार भी डाली; परन्तु प्रकाश बन्द न हुआ। एक प्रयोग में तो ५०० जुगनुओं की इस चमकने वाली पट्टी को उनके शरीर से अलग करके सुखाकर रखा गया; फिर भी वर्षों बाद उस पर पानी का छींटा देने पर वह चमकने लगा! चमकने वाली पट्टी को काटकर जुगनू के



शरीर से अलग होकर निकलती है। उसे सामान्य पानी में डाला गया तब भी उसका चमकना बन्द न हुआ। आखिर जब वह पट्टी ऐसे पानी में डाली गयी जिसमें आक्सीजन काफी कम कर दिया गया था, तब कहीं चमकना बन्द हुआ। इससे यह स्पष्ट हुआ कि प्रकाश-पट्टी को चमकाने के लिए आक्सीजन आवश्यक है। जुगनुओं को एक बोतल में बन्द रखकर उनसे लैम्प का काम लेते सुना है, किन्तु उसके द्वारा पढ़ना सम्भव नहीं। जुगनू को यदि पुस्तक पर रख दें, तो उसके पास के कुछेक अक्षरों को कदाचित् पहचान लें किन्तु साफ पढ़ नहीं सकते।

अधिकांश कीटों की भाँति जुगनू की मादा भी अपने बच्चों से विशेष लगाव नहीं रखती। ग्रीष्म के प्रारम्भ में भूमि अथवा किसी पौधे की पत्ती पर मादा जुगनू अंडे देकर समस्त उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाती है। ये अंडे भी अँधेरे में चमकते हैं। २०-२२ दिन बाद उनसे चमकीले कीट निकल आते हैं, जिन्हें जोराई कहते हैं। कुछ दिनों

एक पटबोजने का निकट क्लोज अप, माडल के रूप में। मुँह, आँखें और स्पर्श तन्तुओं की रचना इस माडल में प्रदर्शित है



वे मक-कीट या प्यपा में बदलकर पिंड में पड़े रहते हैं। उसी अवस्था में उनके निकलते हैं और प्रकाश देने वाला विकसित होता है। नर कीट तो पूर्ण रूप से जुगनू बनकर उड़ जाते हैं किन्तु मादा विकसित ही रह जाती है।

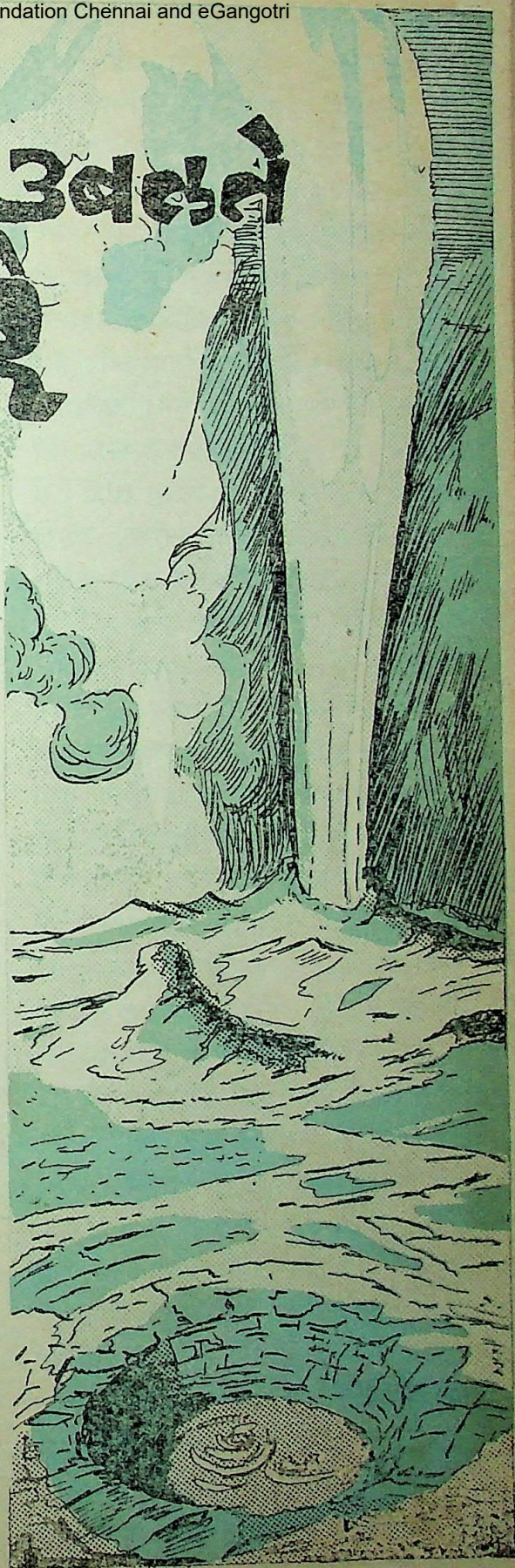
इन्हें हम सीलनभरी जगहों पर इसी तरह देखते हैं कि वहाँ इन्हें घोंघे और कटुए मिल जाते हैं। उन्हीं की तलाश रातों को मँडराते हैं। कटुआ दिखने पर उसके निकट पहुँच जाते हैं। यद्यपि कटुआ का कोमल शरीर कड़ी खोल से ढका होता है फिर भी उसकी मूँछ या स्पर्श तंतु तो बाहर से बाहर निकलते ही रहते हैं। उन्हीं जुगनू धीरे-धीरे ठुकठुकाता है। शीघ्र ही कटुआ का शरीर सुन्न पड़ जाता है मानो क्लोरोफॉर्म में डूबा दिया गया। जुगनू की बारीक मूँछें सिर से साँप के विष-दन्त की तरह पोले जाते हैं और प्रत्येक चोट पर उसमें से विष निकलता है। वही विष उसे अचेत कर देता है। शंका हो सकती है कि जुगनू के इस प्रकार डंक मारने से कदाचित् कटुआ मर जाता हो किन्तु वह केवल चेतनाहीन होकर पड़ा रहता है। यदि उसे जुगनुओं के पंजे से छुड़ाकर पर थोड़ी-थोड़ी देर बाद पानी के छींटे में डालें तो उसकी चेतना लौट आणीगी वह पूर्ववत् स्वस्थ हो जाएगा।

जुगनू को चमकाने से क्या लाभ मिलेगा, इसका निश्चय नहीं हो पाया। अनुमान है कि यह चमक मादा को आकर्षित करने में सहायक होती है। मादा की चमक नर की अपेक्षा तीव्र होना भी आवश्यक नहीं। मादा पंखहीन होने के कारण उड़ नहीं पाती। अतः इसकी खोज में मँडराने वाले नर जुगनू इसके तीव्र प्रकाश से ही अपनी उपस्थिति ज्ञात कर लेता है।

उद्धर्त-उवलते कच्चा रे

वीरेन्द्रकुमार सेठ

‘धन्यवाद; हम कल्पित बातें प्रकाशित नहीं करते’—इस टिप्पणी के साथ अपना वैज्ञानिक लेख लिपिनकाट पत्रिका (Lippincott's Magazine) से वापस पाकर डेविड फॉलसम (David Folsum) को तनिक भी रंज नहीं हुआ। उसे आश्चर्य अवश्य हुआ कि एक बड़ी पत्रिका का सम्पादक एक इतने बड़े भौगोलिक तथ्य से कितना अनभिज्ञ है! वह तथ्य वर्षों से पश्चिम के लोगों को चमत्कृत किये हुए था और उस विषय में पर्याप्त विवरण भी संग्रहीत किये जा चुके थे। यह तो १८६६ की बात थी किन्तु उससे भी ६० वर्ष पूर्व जहाँन कोल्टर (John Colter) अपने यात्रिक दल के साथ उत्तरी अमरीका के यलोस्टोन (Yellowstone) विस्तार में घूमते-घूमते यह देखकर चकित रह गया था कि अचानक ही एक प्रारम्भिक सन-सनाहट और तदनन्तर कर्णभेदी गूँज के साथ जैसे कोई ज्वालामुखी फट पड़ा हो, न जाने कहाँ से उबलते-



मई १९६३

उछलते पानी का विशाल फव्वारा (Geyser) भरने के बीच से उठा और १००-१५० फुट ऊँचा उड़कर घनघोर वर्षा के रूप में बरस पड़ा ! १८०७ में गर्म फव्वारे से मानव की वह प्रथम भेंट थी ।

तब से अनेक अभियानों द्वारा अन्य जगहों पर भी ऐसे फव्वारों की खोज की गयी तो पाया गया कि सामान्यतः ज्वाला-मुखीय विस्तारों में ही वे पाये जाते हैं । तिब्बत, जापान, मलाया तथा अलास्का आदि में पाये जाने वाले ये फव्वारे अति सामान्य होते हैं । विशेषता केवल तीन देशों के हिस्से में आयी है । आइसलैण्ड, उत्तरी अमरीका का यलोस्टोन प्रदेश तथा न्यूजी-लैण्ड के फव्वारे विश्व-प्रसिद्ध हैं ।

घड़ी जैसी अचूकता

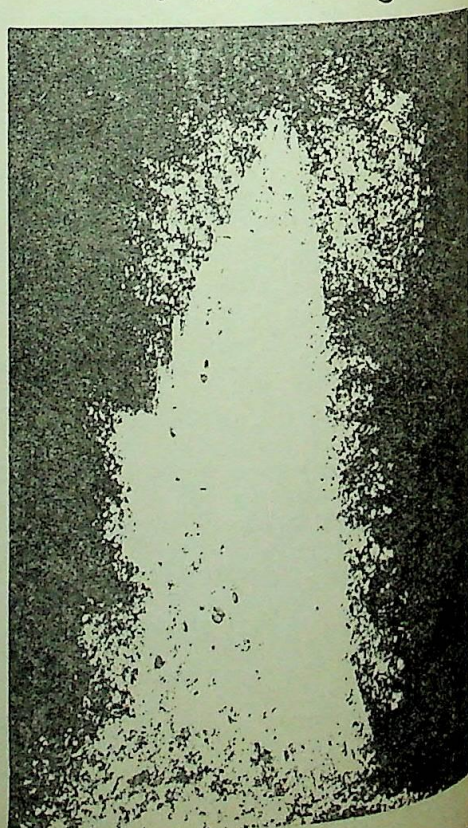
यलोस्टोन नेशनल पार्क अब तो राज्य द्वारा संरक्षित स्थल घोषित कर दिया गया है ताकि दर्शकगण प्रकृति के अप्रतिम दृश्य को देख भर लें और सम्पत्ति को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ । वहाँ पाये जाने वाले १००० से भी अधिक फव्वारों में से अभी केवल ५०० का ही नामकरण हो पाया है । इनमें ओल्ड फेथफुल (Old Faithful) और जाइन्टेस (Giantess) अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । जहाँ सामान्य फव्वारे ४०-५० फुट से अधिक ऊँचे नहीं उड़ते, ओल्ड फेथफुल १५० और जाइन्टेस २५० फुट तक पहुँचते हैं ।

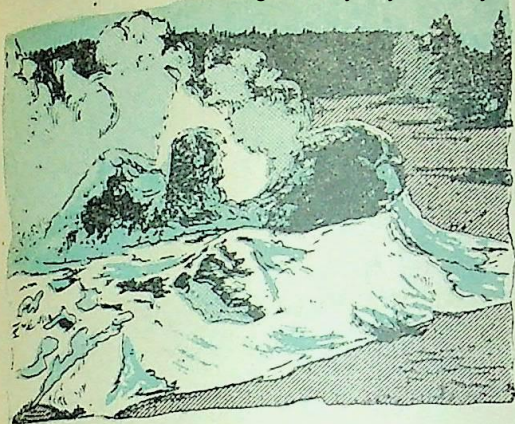
ओल्ड फेथफुल की नियमितता तो घड़ी को भी मात करती है । प्रति ६५ मिनट के अन्तर से ५ मिनट तक के लिए उछलने की इसकी क्रिया में ७० वर्षों में औसत केवल ६ सेकण्ड का ही अन्तर आ पाया है ! अप-वाद-स्वरूप केवल दो बार इसका नियम भंग हुआ था जबकि १९४१ में एक बार ३३ मिनट के अन्तर से और १९४८ में ९१

मिनट के अन्तर से यह उछला था । पानी के प्रमाण के बारे में भी काफी अति-योक्तियाँ प्रचलित थीं कि यह एक बार की उछाल में लगभग ७॥ लाख गैलन पानी फेंकता है; किन्तु २० वर्ष पूर्व डा. फिक्स (Dr. Fix) के अध्ययन ने यह घोषित किया कि केवल १०-१२ हजार गैलन पानी एक बार में उछालता है । इसकी नियमितता इतनी अचूक है कि दर्शकगण अपनी घड़ियाँ देखकर कहते हैं—‘अब यह जगने ही वाला है’……और कैमरे हाथों में सध जाते हैं । ठीक जिस प्रकार मानो कोई ट्रेन नियम समय पर प्लेटफार्म में प्रवेश कर रही हो, एक लम्बी सनसनाहट और फिर तीव्र गर्ज के साथ ओल्ड फेथफुल अपना नाम साधक कर देता है ।

इन्हें गेसर कहते हैं

यलोस्टोन का क्षेत्र तो काफी विस्तृत अमरीका के यलोस्टोन नेशनल पार्क का संतत प्रसिद्ध गेसर—ओल्ड फेथफुल





ग्रोटो गेसर

से प्रसिद्धि में आया है। इससे पहले हिमाच्छादित आइसलैण्ड के फव्वारे लोक-प्रसिद्ध हो चुके थे। वहाँ वेग से इनके फूट निकलने (eruption) के कारण गेसिर (geysir) अर्थात् चमकीली वाष्पयुक्त एक तप्त जल-स्तम्भ कहते थे। सृष्टि का यह एक चमत्कारिक विरोधाभास ही है कि आइसलैण्ड में जहाँ हिम, बर्फ और शीत के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं, वहीं उछलते-उबलते फव्वारे उपलब्ध हैं। वहाँ ये इतनी अधिकता से हैं कि कहीं-कहीं तो एक वर्ग मील के विस्तार में १०० तक की संख्या में हैं! अवश्य उनमें कुछेक दिन-दो-दिन के अल्पजीवी और कुछ वर्षों पुराने दीर्घजीवी हैं। ग्रेट गेसर और स्ट्रोकर उनमें प्रसिद्ध हैं। युवाकाल में ग्रेट गेसर का मुहाना १० फुट व्यास का और ७४ फुट गहरा था। उस समय वह १५० फुट ऊँचा पानी फेंकता था। अब वह ऊँचाई घटकर ७०-८० फुट रह गयी है। उछलते समय इसका शोर समुद्र के गर्जन जैसा होता है।

स्ट्रोकर गेसर अपेक्षाकृत छोटा है किन्तु उसमें एक विचित्रता है। उसे कभी भी इच्छानुसार उछाला जा सकता है। उसके मुहाने में कोई भी वस्तु डाल दीजिए, शीघ्र ही उफन आएगा। यही विचित्रता चाइनामेन गेसर में पायी गयी थी। एक चाइनामेन

उस गेसर के किनारे गर्म पानी में साबुन से कपड़े धो रहा था। संयोगवश एक तौलिया और साबुन की टिकिया हाथ से छिटककर उस गेसर के मुहाने में जा गिरी। कुछ ही क्षण बाद वह यह देखकर स्तम्भित रह गया कि गेसर में से फुफकारता हुआ जल-स्तम्भ निकला और उसके तौलिया और साबुन को ४० फुट ऊँचा उछाल फेंका। तभी से उसका नाम 'चाइनामेन गेसर' पड़ा। इसके कारण की खोज करने पर ज्ञात हुआ कि उन वस्तुओं ने मुहाने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था जिसके कारण नीचे के गर्म पानी का ताप एकाएक बढ़ गया और वह वाष्प में परिणत होकर फूट निकला।

इन आश्चर्यजनक गेसरों का तीसरा क्रीडास्थल न्यूजीलैण्ड है। वहाँ भी उत्तरी द्वीप का व्यामंगु (Wiamangu) अपने समय में संसार का सबसे बड़ा गेसर था। १६०० से १६०४ तक जब वह सक्रिय रहा तब उसकी उछाल १५०० फुट तक पहुँचती थी! इस ऊँचाई पर आज तक अन्य कोई भी गेसर नहीं पहुँच सका है।

गेसर क्या है, कैसे बनते हैं?

गेसर मुख्यतः ज्वालामुखी की उपज हैं। जैसे ज्वालामुखी धरती की सतह के अन्दर अनन्त अन्तराल तक ऐसी दरार है जिसमें से दहकते लावा के रूप में तप्त, पिघली धातुएँ, चट्टानें, मिट्टी, राख आदि भयंकर विस्फोट के साथ निकलती हैं, उसी प्रकार गेसर भी एक ऐसी दरार या तंग कुएँ जैसी सुरंग है जो भूमिगत गर्म जलस्रोतों से जा मिलती है। इसी के द्वारा मानो पृथ्वी की अवरुद्ध उसांस, अर्थात् वाष्प को छूट निकलने का मार्ग मिलता है। तेजी से उठती हुई वह वाष्प ही अपने साथ उबलता हुआ पानी भी फव्वारे के रूप में ले उठती है। ज्वालामुखीय क्रियाओं के फलस्वरूप ही गेसरों का

निर्माण होता है। कहीं नये बनते हैं तो कहीं पुराने बन्द हो जाते हैं। अकेले न्यूजीलैण्ड में तारावेरा (Tarawera) के निकट ज्वालामुखीय विस्फोट के फलस्वरूप सात बड़े गेसर उत्पन्न हो गये थे। उस विस्फोट में पानी, मिट्टी, कीचड़ तथा पत्थर आदि ८०० फुट ऊँचे उछले थे !

गेसरों से फव्वारे उठने की क्रिया का सूक्ष्म अध्ययन जर्मन रसायनज्ञ राबर्ट बुन्सेन (Robert Bunsen) ने किया था, जिसका आविष्कृत बुन्सेन-लैम्प आज भी प्रयोगशालाओं में प्रचलित है। कुछ अपवादों को छोड़कर बुन्सेन-सिद्धान्त ही गेसरों के लिए सर्वमान्य है। उनका सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि दाब को घटा या बढ़ा करके पानी का क्वथनांक घटाया-बढ़ाया जा सकता है। नियमतः समुद्री सतह पर पानी का क्वथनांक 212°F है जहाँ कि वायुदाब लगभग 14.7 पौण्ड प्रति वर्ग इंच होता है। यही पानी धरती में 33 फुट की गहराई पर दुगुनी दाब (लगभग 28.4 पौण्ड) पाकर 245°F पर उबलता है और 70 फुट की गहराई पर इसका क्वथनांक 265°F पहुँच जाता है !

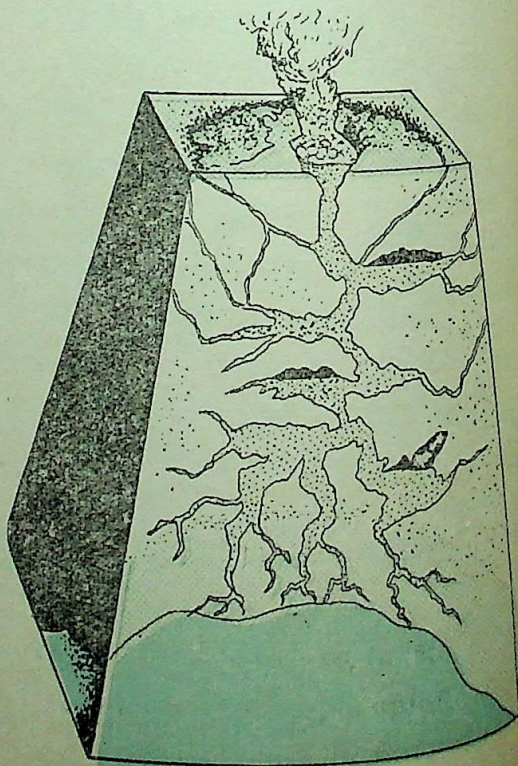
गेसर की सँकरी सुरंग द्वारा तथा अन्यान्य दरारों से धरती का पानी जब रिसता-रिसता अन्दर गहराइयों में पहुँचकर तप्त चट्टानों के संसर्ग में आता है तब वहाँ के भीषण ताप द्वारा अपने क्वथनांक 212°F से कहीं अधिक ताप पर तप्त हो जाता है। इतने पर भी खोल उठने के चरम तक नहीं पहुँच पाता, क्योंकि चारों ओर का और सुरंग के पानी का दाब उसे खोलने से रोके रहता है। और भी अधिक ताप बढ़ने से पानी वाष्प का रूप धारण करता जाता है। ज्यों-ज्यों वाष्प सुरंग के रास्ते बाहर उठती है, नीचे के पानी पर दबाव घटता जाता

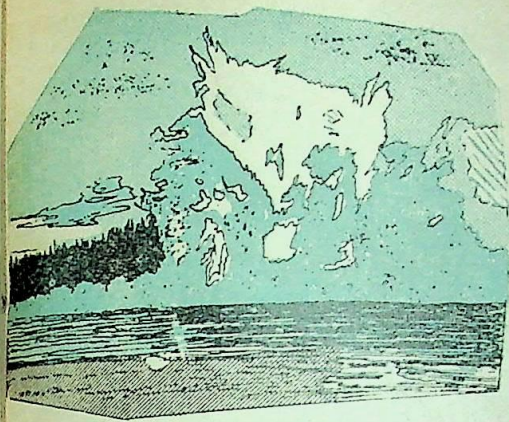
है। गरम वाष्प पानी भी तेजी से वाष्प में बदलता जाता है। अन्ततः मुहाने तक पहुँची हुई वाष्प एक विस्फोट के साथ ऊपर उछलती है और अपने साथ उबलता हुआ पानी, मिट्टी, कीचड़ आदि भी खींचती चलती है।

बहुमूल्य रसायनोंयुक्त पानी

बहुधा विशेष प्रकार के रोगियों को सलाह दी जाती है कि अमुक स्थल (किसी हिल स्टेशन) पर वायु परिवर्तन के लिए कुछ दिन रहें और वहाँ प्राकृतिक गर्म झरनों में स्नान अवश्य करें। कुछ गर्म झरने, जिन्हें गंधक के झरने कहते हैं, चर्म रोग के लिए अकसीर माने जाते हैं। उनका रहस्य यह है कि धरती की गर्भस्थ विविध चट्टानों, धातुओं, खनिज तत्त्वों तथा रसायनों आदि से प्रभावित उन गर्म झरनों के पानी अनमोल औषधीय गुणोंयुक्त होते हैं।

निर्माणावस्था में गेसर—पृथ्वी की भीतरी दरारों द्वारा ऊपर का पानी रिस-रिसकर गहराइयों में उतरता जाता है। क्रमशः अत्यधिक ताप पाकर वाष्प बनते ही फुफकारकर निकलना चाहता है।





यलोस्टोन नेशनल पार्क का दूसरा प्रसिद्ध गेसर—
एक्सेलेशियर

इसी प्रकार गेसर-जलों में भी अनेक पदार्थ आधे, पूरे अथवा अधुलनशील अवस्था में रहते हैं। सैकड़ों फुट ऊँचा उठा हुआ गेसर-जल एक घनी वर्षा के रूप में बरस पड़ता है और चारों ओर के क्षेत्र को ऐसे जल-मग्न कर देता है मानो कहीं से बाढ़ आ गयी हो। वह पानी बहता रहता है और खरिया तथा रंग-बिरंगी मिट्टी की तहों पर तहें जमती जाती हैं। इनके अनेक ऐसे मनोरम दृश्य मिलते हैं मानो कोई रंग-बिरंगी फुलवारी खिली हो अथवा कोई इन्द्रधनुषी रंगों का भरना ही जमकर रह गया हो। वह पानी क्वार्ट्ज को भी घुला देने में समर्थ है। क्वार्ट्ज की ऐसी चमकीली सतहें गेसरों के मुहाने पर दिखायी दे जाती हैं।

आधुनिक विज्ञान ने इस प्राकृतिक शक्ति को भी कैद करके अपनी आज्ञाकारिणी बना लिया है। आइसलैण्ड में गेसरों तथा गर्म झरनों की भरमार है ही। अतः वहाँ पाइपलाइनें बिछाकर यन्त्रों द्वारा जहाँ चाहें, गर्म पानी पहुँचाया जाता है। वह पानी अनेक घरेलू उपयोगों में आने के साथ-साथ वनस्पति उगाने के लिए बनाये गये विशेष प्रकार के उद्यान कक्षों (green houses) में भी बहुत काम आता है। वहाँ ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं कि आप बैठे ही बैठे बायीं ओर बर्फ में गड्ढा करके मछली पकड़ लीजिए और दायीं ओर दूसरा गड्ढा करके उसमें बह रहे गर्म झरने के उबलते हुए पानी में उसे पका भी लीजिए!

न्यूजीलैण्ड और भी कुछ कदम आगे है। वहाँ उत्तरी द्वीप के वेराकाई (Wairakei) क्षेत्र में पग-पग पर गेसरों तथा झरनों के स्रोत हैं। वहाँ प्रकृति की इस भूमिगत ऊर्जा को अधिक उपयोगी कार्यों में लिया जाता है। भूमि में गेसर मिलने योग्य गहराई तक बड़े-बड़े पाइप उतार दिये जाते हैं। उन पाइपों में वेग से फुफकारती आती वाष्प के द्वारा वे बड़े-बड़े टर्बाइन चलाकर बिजली पैदा कर लेते हैं। ऐसे प्रकृति-चालित बिजलीघर वहाँ दिनोदिन बढ़ाये जा रहे हैं।

टेलीफोन पर ही रोग-निदान

खाँसी, सर्दी, जुकाम, न्यूमोनिया आदि बीमारियाँ जब बच्चों को उलझा लेती हैं तब उचित उपचार के अभाव में घातक भी सिद्ध होती हैं। कभी-कभी सुविधाजनक नहीं होता कि आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर डाक्टर तुरन्त ही उपस्थित हो सके। इसके लिए इलीनॉय (अमरीका) के डा. सर्वे क्रैवोज ने सफल प्रयोगों द्वारा यह संभव किया है कि बीमार बच्चे का मुँह टेलीफोन के चोंगे पर रखवा कर उसकी श्वसन-क्रिया तथा स्वर-तंत्र का ज्ञान दूर बैठा डाक्टर कर सकेगा। उसी से वह कह सकेगा कि बच्चे को तात्कालिक किस चिकित्सा पर रखा जाए ताकि रोग और भी उग्र रूप धारण न कर ले।

मई १९६३



मनुष्य अब वायुमण्डल में ही नहीं, उससे भी ऊपर उड़ानें भरने लगा है। मनुष्य की अन्तरिक्ष उड़ानों ने आज संसार को अचम्भे में डाल रखा है। यदि सोचें कि यह सब क्यों किया जा रहा है, कृत्रिम उपग्रहों को बनाने तथा उन्हें अन्तरिक्ष में विभिन्न कक्षा-पथों पर छोड़ने में क्यों विपुल धन व्यय किया जा रहा है, तो इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना कठिन न होगा। वैज्ञानिक सदैव ही नवीनता की खोज में लगे रहते हैं। प्रकृति के क्रिया-कलापों तथा वायुमण्डल की विलक्षणताओं की खोज और अध्ययन, आज उनका प्रमुख विषय है। वैसे तो पदार्थों की गतिविधियों के नियम जैसे विश्व की प्रत्येक वस्तु के लिए बन्धनकर्ता हैं, वैसे ही अनन्त अन्तरिक्ष के लिए भी हैं, किन्तु सामान्यतः वे दृष्टिगोचर नहीं होते। उन्हें समझने के लिए विविध उपकरणों द्वारा तथा अन्तरिक्ष-यात्राओं द्वारा उनका अध्ययन आवश्यक है।

अन्तरिक्ष में क्या है

अन्तरिक्ष में असीम ऊर्जा वाले मूलकण व्याप्त हैं। प्रत्येक वस्तु का परमाणु जिन मूलकणों का बना हुआ है, उनमें इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन तथा प्रोटॉन आदि मुख्य हैं। साथ ही इनके विपरीत परमाणुओं के होने का भी अनुमान है जिन्हें, एन्टीप्रोटॉन, एन्टीन्यूट्रॉन आदि कहा जा सकता है। अन्तरिक्ष के कुछ आकाशीय पिण्डों में एक ऐसे पदार्थ का भी होना अनुमानित है जिसका घनत्व अत्यधिक हो। इन सबके अतिरिक्त यह जानना आवश्यक है कि ग्रहों पर जीवन की सम्भावनाएँ क्या हैं। उस अवस्था में प्रत्येक राष्ट्र में यह स्पर्धा जागृत होगी कि सबसे पहले कौन अमुक ग्रह पर पहुँचकर अपना स्वामित्व स्थापित कर दे। इन सबके अध्ययन के लिए आज अन्तरिक्ष-यात्रा अत्यन्त

आवश्यक बन गयी है और इसीलिए बड़े राष्ट्रों में यह होड़ लगी है।

मंगल तथा शुक्र-यात्रा की तैयारियाँ

अमरीकी वैज्ञानिक इस ओर अति व्यस्त हैं कि १९७० तक मंगल तथा शुक्र के लिए एक वृहत् अन्तरिक्ष उड़ान सम्पन्न की जा सके जिसमें दोनों ग्रहों की यात्रा करके पुनः पृथ्वी पर लौटा जा सके। उनकी योजना है कि प्रारम्भ में पृथ्वी के चारों ओर एक ही कक्ष पर अनेक अन्तरिक्ष-यान भेज दिये जाएँ। वहाँ पहुँचकर वे एक दूसरे से संयुक्त होकर एक अन्तरिक्ष प्लेटफार्म बना लें। उस प्लेटफार्म से उड़कर वे मंगल तथा शुक्र की यात्रा करके पृथ्वी पर लौट आएँ। ऐसे यानों में मुख्यतः तीन इंजन विभाग रखे जाएँगे—(१) चालक की केबिन के लिए, (२) ग्रहों पर उतरने के लिए तथा (३) पृथ्वी पर लौटने के लिए। एक छोटा राकेट भी यान में जोड़ दिया जाएगा ताकि कक्ष को छोड़ने तथा नयी उड़ानें भरने के लिए यान को आवश्यक वेग मिल सके।

अनुमान है कि ऐसी लम्बी यात्रा में लगभग १॥ वर्ष लगेगा। उस काल तक यात्री को भारहीनता की स्थिति में रहना पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक होगा कि यान में कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण बनाये रखा जाए। यह तभी सम्भव होगा जब कि यान अपने ही कक्ष पर घूमता रहे। अन्तरिक्ष में पहुँचकर विभिन्न यान संयुक्त होने के पश्चात् जिस पृथक यान को खड़ा करेंगे उसका भार लगभग ३० लाख पौण्ड होगा। उसे पूरी यात्रा पर भेजने के लिए ईंधन की भी अत्यधिक मात्रा आवश्यक होगी।

अनुमान है कि १९७० में सौर-तूफान भी असामान्य रूप से अधिक संख्या में उठेंगे। सूर्य से विकराल अग्नि-शिखाएँ निकलेंगी जो अन्तरिक्ष में लाखों मील इधर-उधर फैलेंगी।

उनसे बचने के लिए यान का कवच अग्नि-रोधक तथा अत्यन्त सुदृढ़ बनाना पड़ेगा। उसमें यह भी क्षमता होनी चाहिए कि उल्काओं की चोट सहन कर सके। सूर्य के निकट पहुँचने पर उसका ताप तथा मंगल के निकट उल्काएँ अधिक कठिनाई प्रस्तुत कर सकती हैं। मंगल ग्रह पर किंचित पानी तथा वायुमण्डल तो सम्भव है किन्तु आक्सीजन का अभाव हो सकता है। अतः आक्सीजन की निजी व्यवस्था करके ही यात्री वहाँ उतर सकेगा। इस योजना पर कई अरब डालर खर्च होने का अनुमान है। इतना ही खर्च चन्द्र-यात्रा के लिए भी आवश्यक होगा।

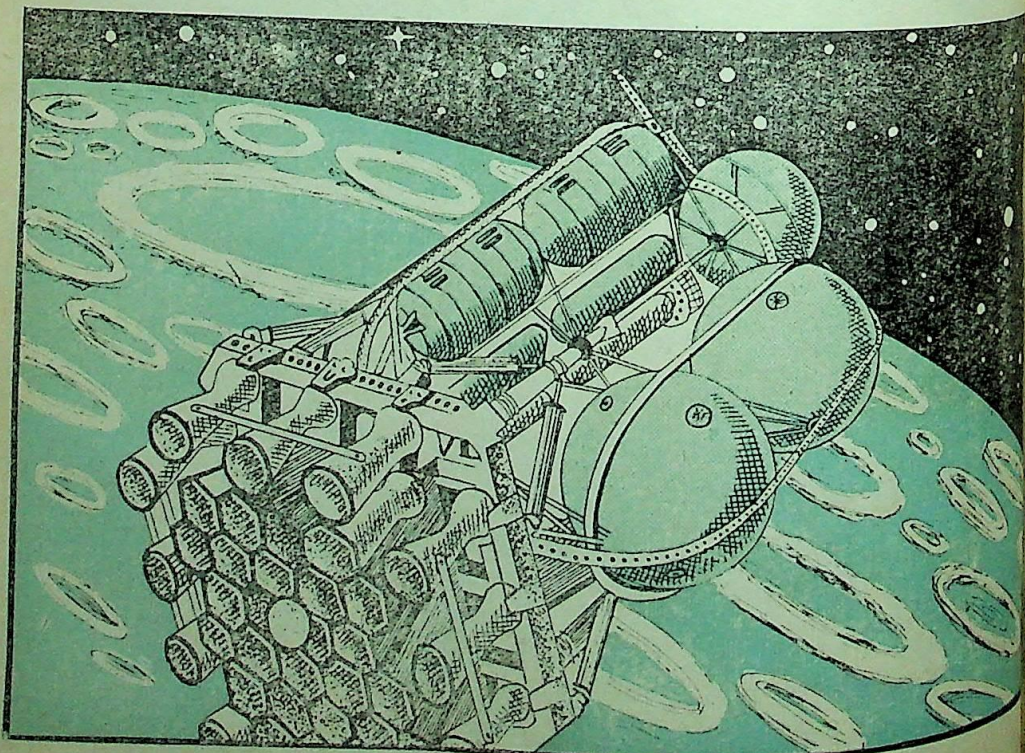
चन्द्र यात्रा की तैयारियाँ

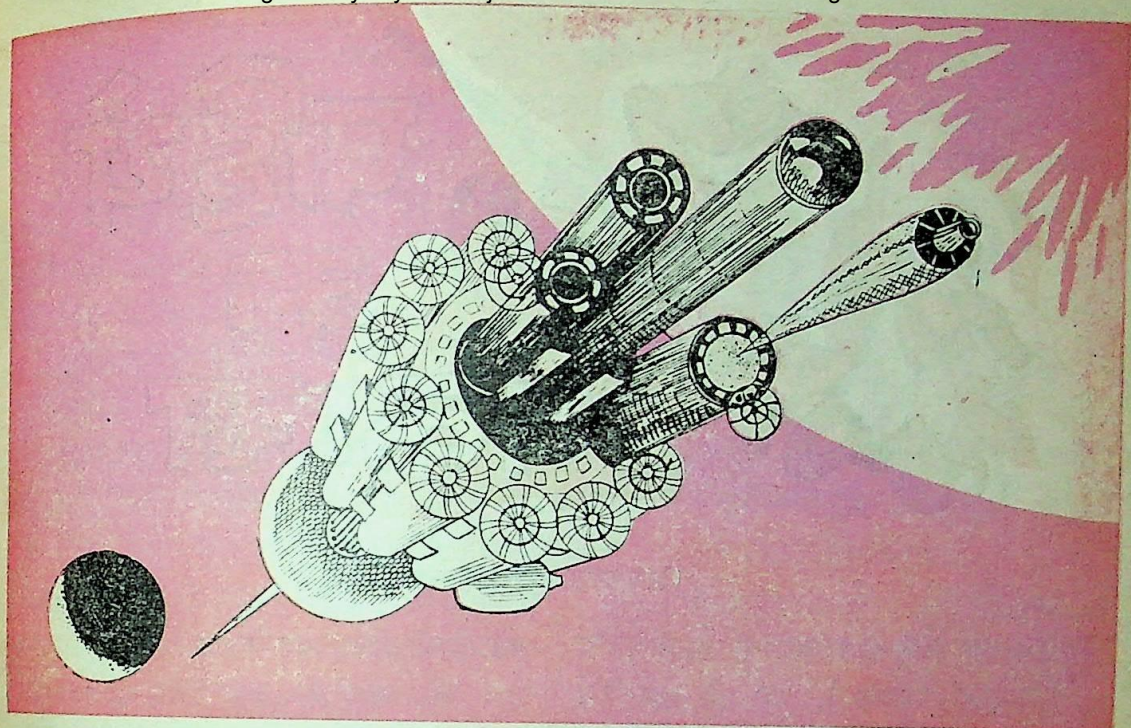
सोवियत वैज्ञानिक चन्द्र-यात्रा के लिए ऐसे यान के निर्माण की योजना बना रहे हैं जो चन्द्रमा पर सुगमता से उतर सके और पुनः वायुमण्डल की परतों को पार करता हुआ सकुशल पृथ्वी पर आ सके। वह यान

भी लगभग १०० टन भारी होगा और भी अन्तरिक्ष में अनेक यानों की सहायता जोड़कर अन्तरिक्ष प्लेटफार्म से चन्द्रमा ओर भेजा जाएगा।

इसके विकल्प में एक विचार यह कि कई हजार टन भारी एक ही रॉकेट बनाया जाए जो सीधे पृथ्वी से चन्द्रमा के लिए यान को प्रक्षेपित कर दे। उस यान को मास्टोडोन नाम दिया जाए। प्रकृति में यही अधिक सुविधाजनक होता है कि बजाय अन्तरिक्ष में प्लेटफार्म बनाने के, पृथ्वी से सीधे चन्द्रमा को भेजा जाए, किन्तु इसमें कठिनाईयों का पार न होगा। मुख्य कठिनाई तो यही कि उस रॉकेट मास्टोडोन के लिए ईंधन की लगभग १०० टंकियाँ आवश्यक होंगी साथ ही, उस रॉकेट को दागने के अलावा कितने विशाल यंत्र की व्यवस्था करनी होगी वह अभी कल्पना से बाहर की वस्तु है।

वर्नर वान ब्रान द्वारा कल्पित इस अन्तरिक्ष-यान में चन्द्रमा पर सकुशल उतरने के लिए रॉकेटों का प्रबन्ध है जो चन्द्रमा के आकर्षण-बल का प्रतिरोध करते हुए यान को तेजी से सतह पर टकराने से





एलेक्जेंडर स्टर्नफील्ड द्वारा प्रस्तावित भिन्न प्रकार का अन्तरिक्ष-यान । योजना थी कि इस प्रकार का यान मंगल तथा शुक्र की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के भी निकट से गुजरता रहेगा

चन्द्र-यात्रा की तैयारी में अमरीका भी अथक रूप से कार्यरत है । पूर्व तैयारी स्वरूप १६ नवम्बर, १९६२ को उसने अपना राकेट सैटर्न भेजकर वायुमण्डलीय सीधी उड़ान सम्पन्न भी की थीं । उसे आशा है कि १९७० से पूर्व ही चन्द्रमा पर पहुँचा जा सकेगा । चन्द्रमा पर भोजन, आवसीजन तथा अन्यान्य सामग्री उतारने योग्य विशेष प्रकार के राकेट बनाने की योजना जारी है ।

चन्द्रमा पर बिजलीघर भी

गणना है कि चन्द्रमा पर वायुमण्डल

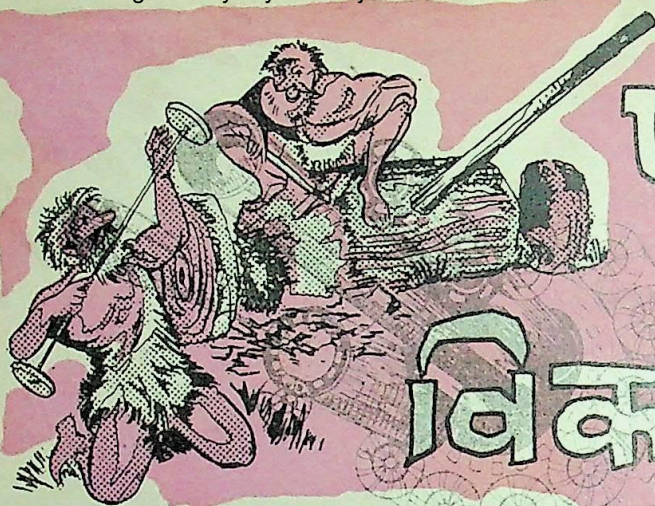
होने के कारण सौर-विकिरण प्रचुर मात्रा में पड़ता है । वहाँ पृथ्वी से लगभग तिगुनी तेज धूप पड़ने का अनुमान है । अतः यदि वहाँ फोटोसेल का जाल बिछा दिया जाए तो काफी मात्रा में बिजली प्राप्त की जा सकेगी । यों चन्द्रमा पर एक विशाल बिजली-घर भी खड़ा किया जा सकेगा ।

अन्तरिक्ष विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास और वैज्ञानिकों के अनवरत प्रयास देखते हुए ग्रहों की यात्रा का भविष्य काफी आशा-प्रद कहा जा सकता है ।

जब आकाश से हीरे बरसे !

बात भारत की है । जिक्र पिछली शताब्दी का—सन् १८७२ का है । एम. ई. लिपशूज (M. E. Lipschutz) ने १८७२ में आकाश से गिरे एक उत्का-खण्ड का निरीक्षण किया तो उसमें तन्हें हीरक कण भी पाये थे । अनुमान है कि उत्का के ग्रेफाइट (शुद्ध कार्बन) के कुछ कण अन्तरिक्ष में टकराहट से उत्पन्न अति उच्च दाब के कारण हीरे में परिणत हो गये थे ।

मई १९६३



पहिये का विकास

शिवचन्द्र श्रीवास्तव

पहिया घूम रहा है। जब से इसने घूमना प्रारम्भ किया है, घूम ही रहा है। जब हम बड़ी शान से किसी सवारी पर बैठते हैं तब पहियों की धरती पर लुढ़कते, दौड़ते देखकर उन्हें तनिक भी महत्त्व देना आवश्यक नहीं समझते। ऊँची सवारी की चमक-दमक में पहिये जैसी निम्न कोटि की वस्तु पर भला क्या दृष्टि डालनी! हम मान लेते हैं कि सृष्टि में जैसे अन्य अनेक वस्तुएँ स्वतः सहज उपलब्ध हैं वैसे ही पहिये भी हैं। लेकिन वे दिन भी थे जब पहिया अस्तित्व में था ही नहीं। आदिमानव का वह जीवन कैसा रहा होगा, जिसमें पहिया नहीं था? किसने पहिये की कल्पना से प्रथम साक्षात् किया होगा और कैसे पहिये का पहला चक्कर घूमा होगा, यह खोज का एक मनोरंजक विषय हो सकता है।

पहिया न हो तो ?

आज हम चमचमाती और सरसराती कार में अथवा रेलवे की एयरकन्डीशण्ड कोच में सवार हुए सैकड़ों-हजारों मील नापते चले जाते पहियों को भुले ही नगम्य समझ लेते हैं। किन्तु वह नगम्य वस्तु यदि एक ही बार असहयोग कर दे तो हमारा

क्या हाल होगा, वह केवल कल्पना की कल्पना है। जो जहाँ है, वहीं पड़ा रह जाएगा खान-पान और माल ढोने वाली गाड़ियाँ रुक जाएंगी, कारखाने बन्द हो जाएंगे और गजित जीवन निस्पन्द हो जाएगा। तो और, घड़ियाँ भी काम करना छोड़ देंगी।

पहियों का सपना

अधिक समय नहीं हुआ जब तक धरती पर पहियों का सरपट दौड़ना अधिक प्रचलित नहीं हो पाया था। यातायात का प्रारम्भ-काल था। उससे पहले तक लकड़वा यात्रा तभी सुखद और सहज समझी थी जबकि सवारी के लिए घोड़ा और बोगी ढोने के लिए टट्ट या लट्टू खच्चर लब्ध हो। वह प्राचीन साधन आज भी जंगल क्षेत्रों में प्रचलित हैं जहाँ रेल, बस या कार नहीं पहुँच सकतीं।

पहियों ने मानव को न केवल सुविधा बल्कि संगीत भी दिया है। रेल के चक्करों के बारे में यह सत्य अधिक स्पष्ट आपने प्रायः ही अनुभव किया होगा। चलती रेल में पहियों की घर्षणशक्ति ताल और लय पाकर एक स्वरबद्ध ध्वनि उत्पन्न करती है जो नींद लेने में बड़ी सहायता

सिद्ध होती है। तब पहियों को पहिने हेतु
 उस तिरिचक्र सोते रहो। मार्ग के आंधी-
 अधः, तूफान-वर्षा और धूल-धूप से बचाते
 हुए हम तुम्हें मंजिल पर पहुँचा देंगे। ऐसे
 रोचक पहियों का इतिहास क्या कम रोचक
 होगा ?
 देखा जाए तो पहिये भी किसी के तो
 कृणी हैं ही। यदि गाड़ी के पहिये धुरे
 और अन्य भागों में विवाद खड़ा हो जाए
 कि उन सबमें अधिक महत्त्वपूर्ण कौन है
 तो निश्चय है कि पहियों को पीछे हटना
 होगा और धुरा बाजी मार ले जाएगा।
 अतः यह कल्पना की जा सकती है कि
 पहिये का प्रारम्भिक रूप आज के धुरे
 अर्थात् एक लट्ठे जैसा रहा होगा। वस्तुतः
 था भी ऐसा ही। आदिकाल का मानव
 भारी बोझें ढोता-ढोता जब थक चला तब
 प्रथम प्रयोगस्वरूप उसने एक पेड़ के तने को
 काट गिराया। उसके २-४ लट्ठे बना लिये
 और भार के नीचे एक के बाद दूसरा लट्ठा
 रखता हुआ सरका-सरकाकर अपनी गुफा
 तक ले जाने में सफल हुआ था। पहिये की
 कल्पना का वही सूत्रपात था। फिर तो
 उसने काठ की ही गोल थालियाँ जैसी काट-
 काटकर टेढ़ी-मेढ़ी गाड़ी के दानों और
 लगानों प्रारम्भ किया। काठ जल्द घिसने
 लगा तो वह पत्थर के पहिये बनाने लगा।
 खुदाई में प्राप्त प्रागैतिहासिक पहियों के कुछ
 अवशेषों में ताँबे की कीलों का मिलना यह
 सिद्ध करता है कि ताम्रयुग में भी पहियों का
 प्रचलन हो चुका होगा।
 गैर की भी लगाने !
 रथा को घोड़े ही हाँक इसमें भी अप-
 वाद रहे हैं। अनुमान है कि अश्वपालन का
 प्रारम्भ लगभग १० हजार वर्ष पूर्व हुआ
 था। तभी से घोड़े का उपयोग मुख्यतः तो

सैन्यीक और सामान्यतः कृषि आदि
 अर्थकार्य के इलिये किया जाता रहा है।
 एशिया माइनर में की समी खुदाई के जहाँ
 होता है कि ई. पू. १००० वर्ष पूर्व एसी स्था
 बेबीलोन के सम्राट् अकके रथों में नर्सल का
 राजा शेरो को जीतते थे। ताँबे द्वारा
 धातुओं के प्रसारण तथा शीत द्वारा संकोचन
 का ज्ञान उन्हें भी था। अतः पहियों पर वे
 धातु का घेरा आज की भाँति पहले गरम
 करके, बाद में शीत द्वारा जकड़ करके
 चढ़ाते थे। घेरे की ताँबे की पट्टियों तथा
 कीलों से जड़ा भी जाता था।

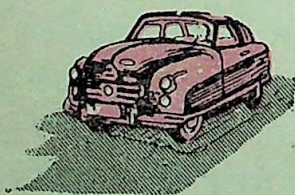
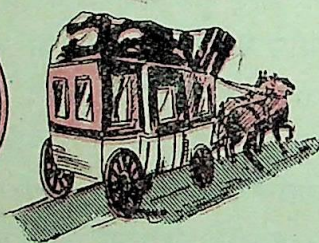
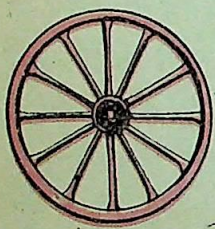
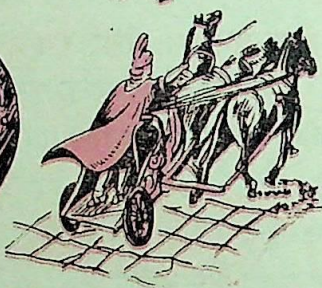
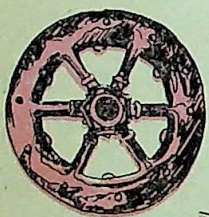
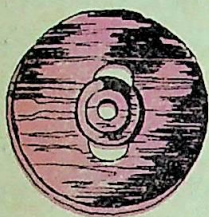
जैसा समय वैसा रथ

उस काल में तरह-तरह के रथ बनाये
 जाते थे। सामान्यतः सभी रथ दो पहियों
 के बने होते थे। दौड़ की स्पर्धा के लिए मजबूत
 किन्तु वजन में हलके और तीव्रगामी, युद्ध
 के लिए कुछ सँकरे तथा अभेद्य आवरण के
 और भारवाहक गाड़ियाँ भारी तथा बड़ी
 बनती थीं जिनमें चारों को जोता जाता
 था। मिस्रवासियों ने पहिये की रचना में
 क्रान्तिकारी परिवर्तन और संशोधन करके
 तत्कालीन (लगभग ४००० वर्ष पूर्व) पहियों
 का स्वरूप ही बदल दिया था। ठोस तथा
 गोल थाली जैसी पहियों के स्थान पर ४-६
 तानों (spokes) युक्त पहियों का प्रचलन
 प्रारम्भ किया। आज के पहियों का यथार्थ
 प्रारम्भिक स्वरूप वही था।

संयोग नहीं, एक साधना

मानव से पहिये का मिलन एक संयोग
 नहीं, मानव की युगों लम्बी साधना का फल
 है। पेड़ के तने के लट्ठे स्वरूप उस प्रथम
 पहिये से लेकर आज के अधुनातन बाल-
 बेयरिंग तथा रोलर-बेयरिंग युक्त पहियों तक
 मानव ने कितने परिश्रम और कितनी साधना
 से पहिये को सुधार-सँभाला है। लोगों के

बड़ा भाग रहा है। अनेक अवसरों पर लोगों ने भारी-भरकम गाड़ी की अपेक्षा पहिये की चार क्रमिक अवस्थाएँ तथा विभिन्न उपयोग—(बायें से दायें) आदिकालीन काष्ठ की गाड़ी; रोमनकाल का राजकीय रथ; १८वीं शताब्दी का अश्वकोच तथा आधुनिक कार।



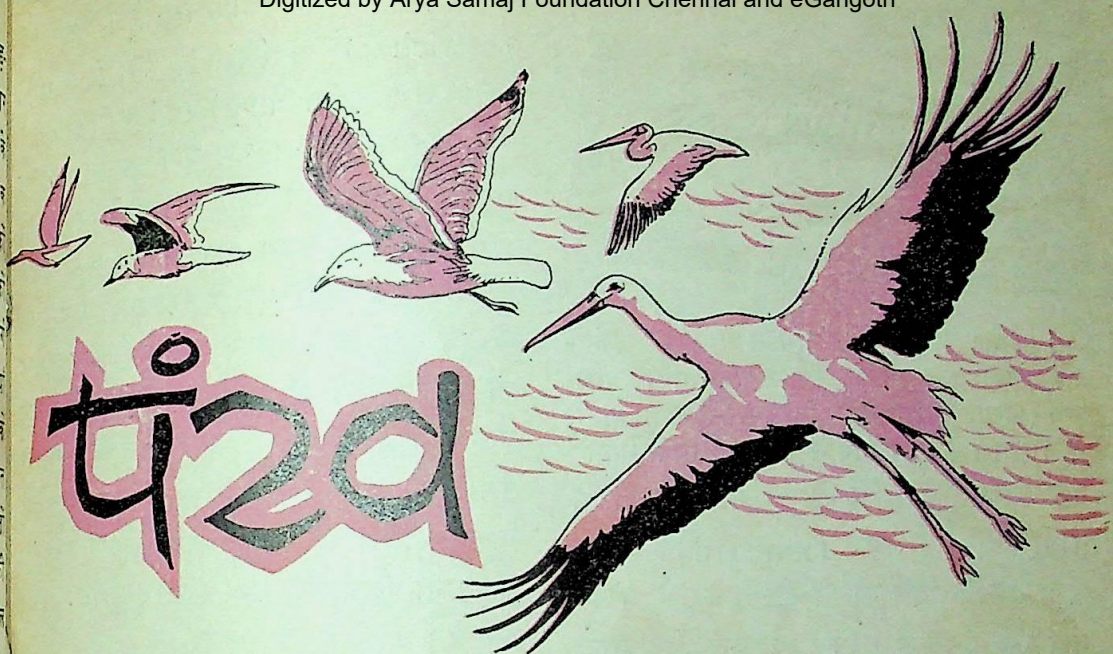
खुदसवारी को इसलिए चुना है कि ऊबड़-खाबड़ सड़कों और दलदल से भरे मार्गों पर गाड़ियाँ अटकती रह जाती थीं। सड़कों के निर्माण में नयी सूझ-बूझ तो आधुनिक विज्ञान की देन है अन्यथा पहले तो सड़कों के नाम पर बस यही था कि पत्थरों, ढोले को मिट्टी-पानी से जमा दिया। वैसे मार्ग जल्दी ही घिस-पिट जाते थे और गाड़ियाँ क्षत-विक्षत हो जाती थीं। ज्यों-ज्यों सड़कें सुधरती गयीं, गाड़ियों द्वारा यातायात बढ़ता गया। मीलों लम्बी सड़कों को दोनों ओर से घने वृक्षों और हरित खेतों की पंक्तियों द्वारा सजाया गया। मील-प्रति-मील पत्थर लगाये गये।

रेलवे लाइनें बिछ जाने से धरती और पहियों की मित्रता और भी घनिष्ट हो गयी। लोहे की पटरियों पर लोहे के पहिये ने जिस दिन से अपना लयबद्ध संगीत छेड़ा उसी दिन से मानव उस लय द्वारा सम्मोहित होता आया है। पटरियों पर पहियों की ध्वनि मील-दो-मील दूर से सुनाई देती है।

वायुयान हो अथवा जलयान, रेल हो वाहन मोटर, घोड़ागाड़ी हो या बैलगाड़ी, नन्हीं रिस्टवाच ही सही, बगैर पहिये के चलने इनके अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इनके पहिये घूम रहे हैं तभी तो सृष्टि-रथ का भी पहिया घूम रहा है!

साँप के काटे का नया इलाज

अब तक सपदंश के अंग को काटने और खून चूसकर फेंक देने का इलाज प्रचलित था। अमरीका की टेक्सास यूनिवर्सिटी के डा. जे. एफ. मुलिन्स ने एक नये सफल प्रयोग की घोषणा की है। तदनुसार सर्प के काटे हुए अंग (प्रायः हाथ या पाँव ही) को बर्फ के पानी में डुबोये रखिए अथवा प्लास्टिक की थैलियों में कुटी हुई बारीक बर्फ भरकर चारों ओर लपेट दीजिए। कम से कम ३० मिनट तक इसी प्रकार रहने दीजिए। इतने समय में शरीर की रोगनिरोधक शक्तियाँ अपना कार्य करने में समर्थ हो जाएँगी और सर्प विष निष्क्रिय हो जाएगा।



जगदीशप्रसाद अग्रवाल

पक्षियों की सुन्दरता उनके रंग-विरंगे पंखों पर निर्भर होती है। अनेक पक्षियों के पंख समय-समय पर मानव के लिए मनोरंजन और आमोद-प्रमोद के साधन जुटाते रहे हैं। पंखों के आकर्षण ने ही मानव को मनोरंजन की सीमा लाँघकर पक्षियों का शिकार तक करने को विवश किया है। पंखविहीन पक्षी वस्त्रविहीन मनुष्य से भी अधिक अनाकर्षक लगता है। पक्षी अपने पंखों की सफाई चोंच द्वारा करते रहते हैं। शरद के आरम्भ में इनके पंख पतझड़ की भाँति झड़ जाते हैं। वसन्त ऋतु में वे पंखों का नया सिंगार सजाते हैं। तब उनके पंखों के रंग और भी गहरे तथा चमकीले निखर आते हैं।

मानव का पंख-विलास

झड़े पंखों का उपयोग फरकोट बनाने तथा उन्हें गद्दों, तकियों में भरने के लिए किया जाता है। मोर के पंखों का उपयोग सजावट के लिए अधिक होता है। उन पंखों की झाड़न भी बनायी जाती है। सुखी और शुतुरमुर्ग के पंख भी सजावट

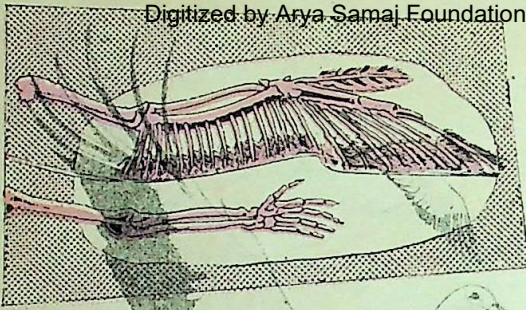
में काम आते हैं। शुतुरमुर्ग के पंख टोपी और हैट पर भी लगाये जाते हैं। आदिवासियों जैसी पिछड़ी जातियों में पक्षियों के पंखों की मालाएँ बनाकर पहनने की प्रथा है। कुछ समय पूर्व पंखों का उपयोग लेखनी के लिए भी होता था।

पक्षियों को पंखों की उपयोगिता

पक्षियों को वायु-विहार के लिए पंख अनिवार्यतः आवश्यक हैं। ऊँचे आकाश पर वायु को चीरकर पंख ही उन्हें गति प्रदान करते हैं। शीत, ताप तथा वर्षा की बौछार से भी शरीर की रक्षा करते हैं। पक्षी अपने पंखों से सन्तुलन का भी काम लेते हैं। प्रणय-लीला में भी पंखों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये ही पंख वातावरण से मिलकर पक्षियों को शत्रु की दृष्टि से बचाते हैं। बर्फीले क्षेत्रों में पंखों का रंग श्वेत तथा हरे-भरे वातावरण में तोते जैसा हरा होता है।

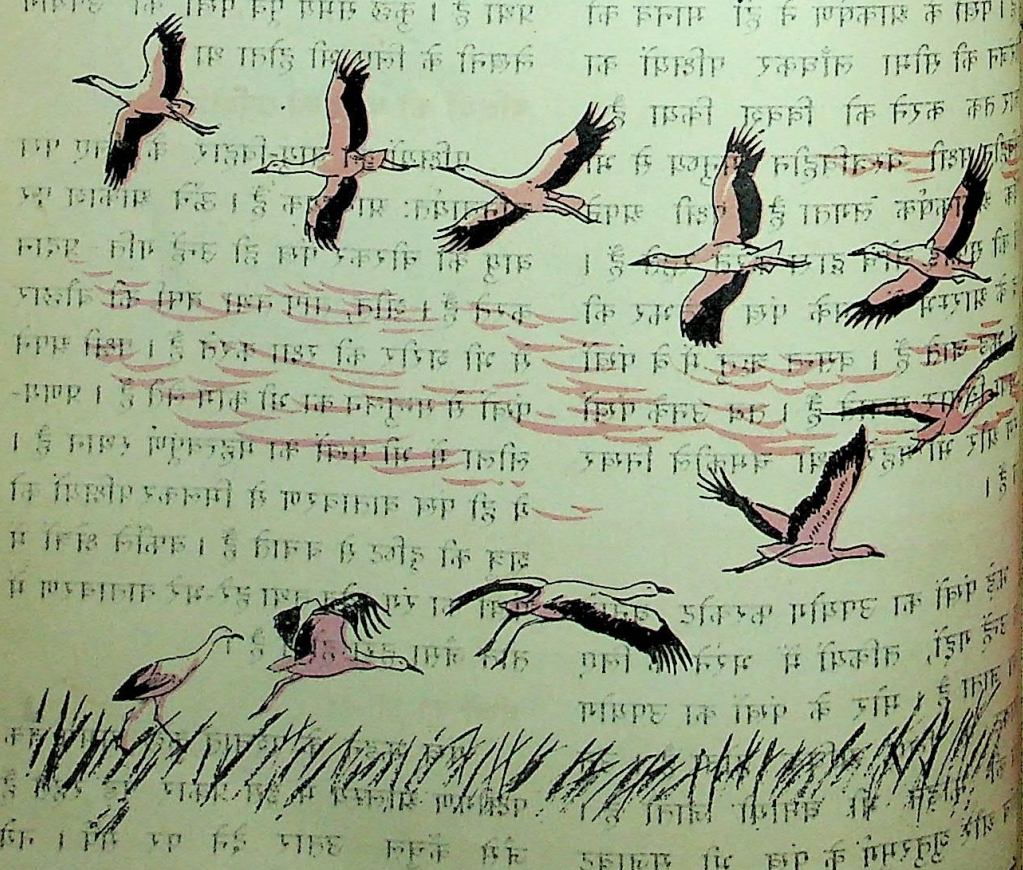
पंखों का पतझड़

पंख झड़ने के पश्चात् कुछ समय तक पक्षीगण आलस्य में इस प्रकार पड़े रहते हैं जैसे केंचुल उतार देने पर सर्प। नये



पक्षी के पंख की मानव के हाथ से तुलना—स्कंध-अस्थि के पश्चात् पक्षियों में हाथ के स्थान पर मणि-बन्ध (कलाई), पंजा तथा अंगुलियाँ अदृश्य हो जाती हैं। अस्थि के पृष्ठ भाग में परों का ताना-बाना पंख आने तक पक्षी उड़ने में भी असमर्थ होता है। नीलसर (mallard) के तो अंडा देने के दिन बीतते-बीतते नर के पुराने पंख झड़ जाते हैं। फिर नये पंख ठीक मादा जैसे निकल आते हैं। जाड़े के प्रारम्भ में वे पंख पुनः झड़ जाते हैं। तब उसके अपने जैसे पंख निकलते हैं।

कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जिन्होंने पृथ्वी को पक्षी के उड़ान की क्रमिक अवस्थाएँ



ही अपना आवास बना लिया है। सुगन्ध (ostrich), किवी (kiwi), एमु (emu) केसावरी (cassowary) एवं रिही (rhea) ऐसे पक्षियों के उदाहरण हैं। अपने देश भी मोर ऐसा ही पक्षी है जिसके पंखों का नाम अधिक है, काम बहुत कम। एक से दूसरे मुंडेर, या एक पेड़ से दूसरे पेड़ ही उड़ लेते हैं। लम्बी उड़ान इनकी की बात नहीं। हाँ, घनघोर छाया में जब ये नाच उठते हैं तब इनकी उड़ान संसार में कहीं नहीं मिलती। समुद्र निकट भविष्य में मोर तथा मुर्गा नाम कहलाना ही पसन्द न करें और पूर्णतः चर बन जाएँ।

पंख की आन्तर रचना

पंख का प्रादुर्भाव त्वचा के नीचे हुए एक अस्फुटित कोष समूह से होता है। उन कोषों द्वारा पंख को बढ़ने के पोषण मिलता रहता है। पंख के पक्षी क्रमिक अवस्थाएँ

एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ होता है। जिसके पंख (scapus) अथवा पंख का है जिसे स्केपस (scapus) अथवा पंख का कोटर (stem) कहते हैं। वह धारी दो भागों में विभाजित रहती है। निचला भाग खोखला और अपेक्षाकृत मोटा तथा अर्ध-पारदर्शी होता है। उसे कैलमस (calamus) कहते हैं। ऊपर का पतला और ठोस भाग शाफ्ट (shaft) कहलाता है। कैलमस वेलनाकार तथा अंशतः त्वचा में गड़ा रहता है। बढ़ते हुए पंख के वाहिनी-ग्रंथुर (vascular papillae) भी इसी में रहते हैं। इसके निकट के सिरे पर एक छोटा-सा छिद्र (inferior umbilicus) तथा दूसरे सिरे पर कुछ बड़ा छिद्र (superior umbilicus) होता है। बीच की ठोस और चौकोर धारी-सी लम्बी शाखाएँ (barbs) तथा उपशाखाएँ (barbules) निकलती हैं। इनके ताने-बाने से पंख की पताका (vanillum) बनती है। ये शाखाएँ मुड़े हुए कांटों की तरह एक-दूसरे से दृढ़तापूर्वक जुड़ी हुई एक सुदृढ़ वायु-विरोधक पताका जैसी बनाती हैं। डंडी और शाखाओं के आकार पर पंखों को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। परिधि रेखा-पंख (contour feathers) में डंडी सख्त और दल सुदृढ़ होता है। निचले पंख (down feathers) नरम डंडी वाले और बूँडे विहीन होते हैं। केशी पंखों (filoplumes) में बारीक बाल की तरह डंडी होती है। इनमें शाखा-प्रशाखाएँ नहीं होती। परिधि रेखा-पंख बाहर की ओर सतह पर स्थित होते हैं। उन पंखों के नीचे निचले पंख और पक्षी की उड़ान में अन्तर-यान के निचले भाग में प्रक्षेपित वायु दबाव द्वारा यान को ऊपर उठाये रहती है जबकि पक्षी अपने पंखों की फड़फड़ाहट से ही गति तथा उठाव दोनों काम ले लेता है।



उड़ान के मध्य ब्रेक भी लगा लेते हैं पंखों की एक दूसरी मोटी तह होती है जो शरीर की गर्मी को बनाये रखने में सहायक होती है। पाउडर डाउन पंख (powder down) निचले पंखों की तरह होते हैं। इनकी डंडियों के सिरे टूटकर चूर्ण हो जाते हैं। ऐसे पंख तोते और बगुल में भी देखे जा सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह पक्षी ही क्या जिसमें पंख नहीं। यदि पक्षियों की शोभा पंखों से है तो पंखों की भी शोभा पक्षियों से है।

पक्षी की उड़ान में अन्तर-यान के निचले भाग में प्रक्षेपित वायु दबाव द्वारा यान को ऊपर उठाये रहती है जबकि पक्षी अपने पंखों की फड़फड़ाहट से ही गति तथा उठाव दोनों काम ले लेता है।

डॉ. के. एस. कृष्णन



श्यामनारायण कपूर

डा के. एस. कृष्णन, नोबेल पुरस्कार विजेता सर सी. वी. रमन के शिष्य थे। इन्होंने बहुत छोटी अवस्था से ही विज्ञान की साधना प्रारम्भ की थी। तेईस वर्ष की आयु में तो ये कलकत्ता में विज्ञान की उच्च शिक्षा समाप्त करके अनुसन्धान कार्य में लग गये थे।

वहाँ इन्हें डा. रमन के अतिरिक्त देश के अन्य श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। फलस्वरूप विज्ञान के प्रति इनका अनुराग बढ़ता ही गया। विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक कार्य करने की लालसा जागृत हुई। डा. रमन के सम्पर्क में रहने से ये भौतिक विज्ञान की ओर विशेष आकृष्ट हुए। उनके साथ इन्होंने कलकत्ते की सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था Association for Cultivation of Science में अपना कार्य प्रारम्भ किया। कई वर्ष तक उस संस्था में ये रिसर्च स्कालर और रिसर्च एसोशिएट के पद पर कार्य करते रहे। तत्पश्चात् वहाँ के अन्वेषण कार्यों का

निर्देशन भी करते रहे।

उस काल में डा. रमन के अनेक महत्त्वपूर्ण अन्वेषण कार्यों में इन्होंने उनके सहकारियों के रूप से काम किया। उनके साथ इनके प्रकाश के परिक्षेपण तथा तत्सम्बन्धी मौलिक निबन्ध प्रकाशित किये। डा. रमन के विश्वविख्यात आविष्कार 'रमन प्रभाव' के अन्वेषण कार्य में भी उनके सहकारी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। फलस्वरूप कृष्णन की ख्याति भी विज्ञान जगत में फैलने लगी। शीघ्र ही इनके मौलिक वैज्ञानिक निबन्ध एवं स्वतन्त्र अनुसन्धान कार्यों के विवरण अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व की वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। इन्होंने रसायन और भौतिक विज्ञान की स्फटिक और चुम्बक शाखा पर भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये। मृत्यु के भग तीन मास पूर्व, २४ मार्च १९६१ को विज्ञान के क्षेत्र में इनके कार्यों के लिए नेहरू ने वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् के अध्यक्ष पद से एक विज्ञान

समारोह में इन्हें 'डा. शान्तिस्वरूप भटनागर विधासभ्य अनुदान आयोग का भी सदस्य स्मारक पुरस्कार' प्रदान किया था।

स्फटिक सम्बन्धी तथा धातुओं और अर्धचालकों सम्बन्धी इनके कार्य उल्लेखनीय हैं। निर्वात में विजली से गरम किये गये तन्तुओं और नलिकाओं के सहारे ताप के वितरण पर किये गये इनके कार्यों द्वारा इस जटिल विषय के विचारों में भी नियमितता आयी और इस क्षेत्र में प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विधियों का सुयोग ही इनके अनुसन्धानों की विशिष्टता है। 'भटनागर पुरस्कार' से पूर्व भी भारत सरकार इन्हें अन्य अनेक अवसरों पर सम्मानित कर चुकी थी। स्वाधीनता के पश्चात् जब देश में विभिन्न राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओं की स्थापना का क्रम आरम्भ हुआ तो १९५० में नयी दिल्ली में स्थापित होने वाली प्रथम राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला—नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी के आप निर्देशक नियुक्त किये गये थे। उस पद पर आप अन्तिम समय तक सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। आपकी देखरेख में उस संस्था ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये और भारत में भौतिक विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान की परम्परा स्थापित की।

१९५४ में राष्ट्रपति ने इन्हें पद्म-भूषण की उपाधि से सम्मानित किया। १९५८ में 'राष्ट्रीय प्रोफेसर' की नियुक्ति द्वारा उन्हें पुनः सम्मानित किया गया। उससे पूर्व यह सम्मान इनके आचार्य सी. वी. रमन को ही प्रदान किया गया था। इस नियुक्ति के द्वारा इन्हें अपनी इच्छानुसार वैज्ञानिक शोधकार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। भारत सरकार की ओर से इन्हें जीवनपर्यन्त मासिक वृत्ति देने की भी व्यवस्था की गयी। इनकी शिक्षा सम्बन्धी सेवाओं को देखते हुए इन्हें विश्व-

विधासभ्य अनुदान आयोग का भी सदस्य नियुक्त किया गया था। आप परमाणु ऊर्जा आयोग के भी सदस्य थे।

राष्ट्रीय गौरव का सरकारी सम्मान प्राप्त करने से पूर्व डा. कृष्णन अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व की भारतीय तथा विदेशी अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किये जा चुके थे। ये भारतीय साइंस कांग्रेस, नेशनल एकेडेमी आफ साइंस और नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज के सभापति रह चुके थे। १९५६ में इन्हें अमरीका की नेशनल एकेडेमी आफ साइंसेज का सम्मानित सदस्य (विदेशी) मनोनीत किया गया था। अन्तरराष्ट्रीय भूभौतिकीय वर्ष मनाने के लिए भारत में जो इण्डियन नेशनल कमेटी संगठित हुई उसके आप सभापति थे।

इनकी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति का वास्तविक क्रम १९३६ से आरम्भ होता है। उस वर्ष वारसा (पोलैंड) में होने वाली वैज्ञानिकों की अन्तरराष्ट्रीय कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए ये आमंत्रित किये गये। १९३७ में केम्ब्रिज की केवेण्डिश विज्ञानशाला तथा लन्दन की रायल सोसाइटी और लीज की भौतिक विज्ञानशाला में इन्हें अपने अन्वेषणों के सम्बन्ध में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया था। १९३६ में तत्कालीन राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) की ओर से आयोजित इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ इन्टेलेक्चुअल कोऑपरेशन में भाग लेने के लिए यूरोप बुलाया गया था। उसी वर्ष स्ट्रासबर्ग में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय चुम्बकत्व पर आयोजित गोष्ठी में इन्होंने भाग लिया था। मार्च १९४० में रायल सोसाइटी ने इन्हें अपना सदस्य मनोनीत किया। वह सम्मान प्राप्त करने वाले ये छठे भारतीय थे।

[शेष पृष्ठ ३० पर]

मई १९६३

कार्बन डाइआक्साइड

की

उपयोगिता

आदित्यगोपाल भिंगरन

शा यद ही कोई व्यक्ति होगा जिसे कार्बन डाइआक्साइड गैस से काम न पड़ता हो ! केक या डबल रोटी का उपयोग कौन नहीं करता ? जब बेकिंग पाउडर को पकाया जाता है तब इसी गैस के कारण केक, रोटी आदि फूलती हैं। बेकिंग पाउडर में अम्लीय कैल्सियम फास्फेट तथा सोडियम बाइकार्बोनेट का मिश्रण होता है जिनसे कार्बन डाइआक्साइड बनती है। इसी प्रकार जब बेकिंग सोडा (NaOHCO_3) तथा दूध का उपयोग किया जाता है तो कार्बन डाइआक्साइड के लिए नीबू के रस अथवा सिरके का मिश्रण किया जाता है। कार्बन डाइआक्साइड वायुमण्डल में तथा पृथ्वी के जल स्रोतों में भी पायी जाती है। यह ज्वाला-मुखीय गैसों में भी रहती है। यह कार्बन के आक्सीकरण से प्राप्त होती है, अतः कोयले की खानों में भी पायी जाती है। प्रत्येक प्राणी में प्रश्वास के रूप में यही गैस शरीर

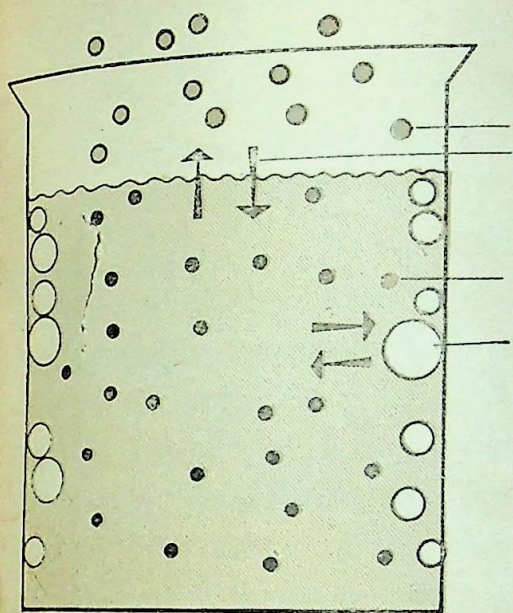
से बाहर निकलती है। वनस्पतियों के लिए यह जीवनाधार है। प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में यह गैस पेड़-पौधों के भीतर पहुँच कर कार्बोहाइड्रेट बनाती है।

मृदु पेय बनाने में

औद्योगिक पैमाने पर उत्पादित कार्बन डाइआक्साइड की लगभग ४० प्रतिशत मात्रा मृदु पेय (सोडावाटर, लेमन, आरंज क्रश आदि) बनाने में काम आती है। इस गैस की विलेयता साधारण दाब पर कम होती है परन्तु अधिक दाब पर काफी बढ़ा जा सकती है। इसीलिए सोडावाटर तथा ऐसे अन्य पेयों की बोतलों को खोला जाता है तो यह गैस एक आवाज के साथ बाहर निकलती है। इन पेय पदार्थों का उपयोग बढ़ने के साथ-साथ उत्पादन भी दिनोदिन बढ़ रहा है।

अग्नि-शामक के रूप में

कार्बन डाइआक्साइड वायु से भारी



सोडावाटर से उठती हुई कार्बन डाइआक्साइड गैस के बुलबुले

तथा अधिक स्थायी गैस है। अतः जब यह अग्नि के सम्पर्क में आती है तो मानो अग्नि पर कम्बल सा पड़ जाता है। फलतः आक्सीजन न मिलने के कारण अग्नि बुझ जाती है। अनेक प्रकार के अग्नि-शामक उपकरणों में इसका उपयोग किया जाता है। एक सामान्य अग्नि-शामक में एक छोटी टंकी जैसे पात्र में सोडियम बाइकार्बोनेट का सान्द्र घोल भरा रखते हैं। उसी में काँच के कार्क वाली एक बोतल सान्द्र गंधक का अम्ल भरकर उतार देते हैं। उस कार्क को तोड़ने के लिए एक खूँटी उस पर फिट कर दी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर बाहर ही से उसे तोड़ा जा सकता है। फलतः दोनों घोलों की रासायनिक क्रिया से कार्बन डाइआक्साइड गैस बनती है जो टॉंटी के मार्ग से अग्नि के ऊपर बरसायी जा सकती है। इससे अग्नि बढ़ने नहीं पाती और छोटी अग्नि तो बुझ ही जाती है।

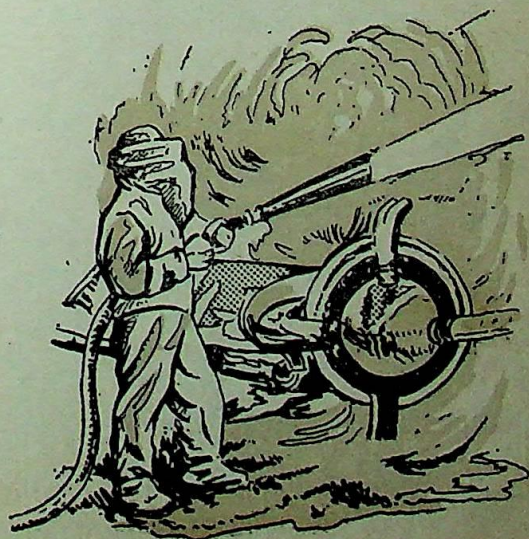
दूसरे प्रकार के अग्नि-शामक को फोमाइट (foamite) अग्नि-शामक कहते हैं। उसमें एक पात्र में सोडियम बाइ-

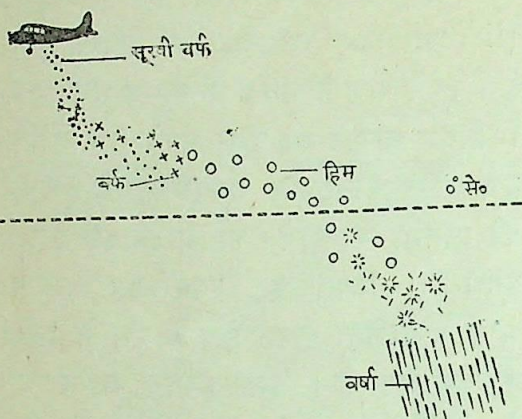
कार्बोनेट तथा लिसोराइट रूट एक्सट्रैक्ट (licorite root extract) का मिश्रण होता है। दूसरे पात्र में गंधक के स्थान पर एल्यूमिनियम सल्फेट का घोल भरते हैं। सोडियम बाइकार्बोनेट पर एल्यूमिनियम सल्फेट की प्रक्रिया से कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न होती है। लिसोराइट स्वयं इस क्रिया में भाग नहीं लेता केवल फेन के रूप में अग्नि को ढक लेता है। इस प्रकार अग्नि को रोकने में सहायक होता है। तेल की आग को बुझाने में ऐसा ही अग्नि-शामक उत्तम रहता है। तीसरे प्रकार के अग्नि-शामक में द्रव कार्बन डाइआक्साइड काम आती है। यह अधिक सुविधापूर्ण रहती है। द्रव कार्बन डाइआक्साइड को टंकी की टॉंटी से बरसाना ही पर्याप्त है। अग्नि तुरन्त बुझ जाती है।

सूखी बर्फ के रूप में

कार्बन डाइआक्साइड गैस को सरलता से ठोस रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। यही सूखी बर्फ कहलाती है। सामान्य बर्फ की अपेक्षा इस सूखी बर्फ में अनेक सुविधाएँ हैं। सामान्य बर्फ को तो पिघलकर पानी बन जाने पर हटाने की आवश्यकता पड़ती है। सूखी बर्फ में यह लाभ है कि यह ठोस अवस्था से सीधे ही

फोमाइट अग्नि-शामक





सूखी बर्फ द्वारा पानी भरे बादलों को चाहे जहाँ
बरसाया जा सकता है

गैस अवस्था में परिवर्तित हो जाती है।
अतः इसके उपयोग के बाद कुछ भी शेष
नहीं रहता। इसके अतिरिक्त सामान्य बर्फ
की अपेक्षा सूखी बर्फ से ताप काफी गिराया
जा सकता है। इसलिए प्रशीतन (रेफ्रिज-
रेशन) में इसके द्वारा खाद्य वस्तुओं को
अधिक समय तक स्वस्थ अवस्था में रखा

जा सकता है। सामान्य बर्फ की अपेक्षा सूखी
बर्फ की आधी ही मात्रा उतना काम
सकती है।

ओषधियों में कार्बन डाइऑक्साइड

श्वास लेने में कार्बन डाइऑक्साइड
की अल्प मात्रा एक उत्प्रेरक का भी काम
करती है। श्वास खींचते समय इसकी
स्थिति से श्वसन तन्त्र उत्तेजित हो उठता
है जिसके कारण अधिक गहरी साँस लेना
सम्भव हो जाता है। इसीलिए इस गैस की
अल्प मात्रा आक्सीजन के साथ मिलकर
शल्यक्रिया के अन्तर्गत रोगी को उचित
संज्ञा-शून्य अवस्था में दी जाती है ताकि
उसका श्वसन कहीं रुक न जाए। इस
प्रकार इसका उपयोग न्यूमोनिया तथा श्वास
अवरोध के लिए भी किया जाता है। इस
अतिरिक्त सोडियम बाइकार्बोनेट का उपयोग
पेट में बढ़ी अम्लीयता को कम करने के लिए
ओषधि के रूप में किया जाता है।

डा. के. एस. कृष्णन

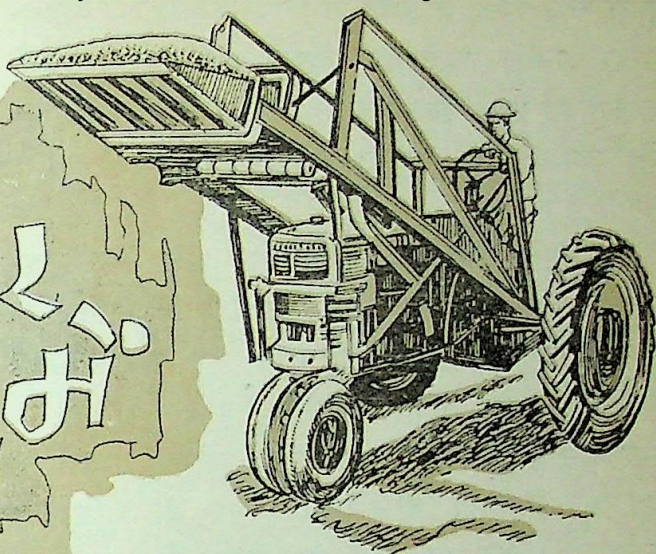
[पृष्ठ २७ का शेष]

डा. कृष्णन विज्ञान के अतिरिक्त
धार्मिक और साहित्यिक विषयों में भी रुचि
लेते थे। संस्कृत साहित्य के ये अच्छे
विद्वान थे। धर्म और दर्शन का इन्हें बहुत
अच्छा ज्ञान था। दिल्ली तामिल संगम
और नई दिल्ली की वैष्णव सिद्धान्त सभा
के ये सभापति थे। वैज्ञानिक कार्यों में
अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी ये सांस्कृतिक
समारोहों में सक्रिय भाग लेते थे। आचार
तथा व्यवहार में ये पूर्ण भारतीय थे।
दिखावे से इन्हें घृणा थी। बड़ा सादा जीवन

व्यतीत करते थे। विदेश यात्राओं में
इनके रहन-सहन में कोई अन्तर नहीं
था। विदेशों में ये भारतीय वेशभूषा
रहते थे।

डा. कृष्णन का जीवन घोर परिश्रम
तथा सफलताओं का ज्वलन्त उदाहरण है।
एक मध्यम वर्गीय परिवार में जन्मे हुए
प्रतिभा, अदम्य उत्साह, कर्तव्यनिष्ठा
विज्ञान की साधना द्वारा सफलता
शिखर पर पहुँचकर इन्होंने एक अनुकरणीय
उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कृषि सुधार में विस्तार



सहेन्द्रसिंह

किसान धरती की माँग सँवारता है।
बरसता बादल उस माँग को भरता है।
धरती लहलहा उठती है, फलती और फूलती
है। इसी धरती से हमें भोजन, महकते फूल,
रसीले फल और सब्जियाँ मिलती हैं। हमारे
वस्त्रों का प्रबन्ध भी धरती ही करती है।
ऐसी है यह रत्नगर्भा, वसुन्धरा, धरती।

धरती की उपजाऊ परत उजड़ रही है

इस धरती के शत्रुओं की भी कमी
नहीं। अनियमित ऋतुएँ, तेज सरदी-गरमी
और मूसलाधार वर्षा, धरती के मुख्य शत्रु
हैं जो इसे क्षति पहुँचाते रहते हैं। समय
और हवा-पानी के विभिन्न प्रभाव कितने
प्रबल हैं यह दो दृष्टान्तों से स्पष्ट हो
जाएगा। प्रथम है—मध्य एशियाई प्रदेश।
यह वह प्रदेश है जहाँ की फसल पर युगों
पहले दूर-दूर के देश अपना पेट भरने के
लिए निर्भर रहते थे। आज वहीं पर बंजर
भूमि-खण्ड और रेगिस्तान फैले पड़े हैं।
दूसरा है—सहारा रेगिस्तान। विशेषज्ञों का
कहना है कि किसी-किसी जगह तो यह
रेगिस्तान प्रति वर्ष ५० वर्ग किलोमीटर तक
के विस्तार में बढ़ता जा रहा है !

धरती के इस हास के प्रति यदि सजग
न रहें और इसे यों ही चलने दें तो परिणाम
की भयंकरता से कल्पना चकरा जाएगी।
परिस्थिति आज भी निरापद नहीं कही जा
सकती।

धरती को बचाना बहुत आवश्यक

इसके लिए आवश्यक है कि ऐसे प्रयत्न
किये जाएँ जिनसे धरती का बंजर बनना
रुके और पहले के बंजर हुए भाग धीरे-धीरे
उपजाऊ होते चलें। सर्वप्रथम तो वर्षा के
पानी का लाभ कैसे लिया जाए, यह ज्ञात
होना चाहिए। इस ओर ध्यान न देने से न
केवल वर्षा का अनमोल पानी व्यर्थ बह
जाता है बल्कि वह पानी अपने साथ धरती
की उपजाऊ मिट्टी भी ले जाता है। वही
पानी यदि उचित साधनों द्वारा रोक लिया
जाए तो वनस्पति की जड़ें भीतर ही भीतर
फैलकर धरती को जकड़े रहेंगी और बिखरने
या टूटने न देंगी।

ढलान वाली जगहों पर वर्षा के पानी
की रोकथाम के लिए कण्टूर रेखाओं
(contour lines) के हिसाब से क्यारियाँ
बनायी जाती हैं। इन क्यारियों के बीच में

पानी रुका रहता है और पौधे वगैरहों के अन्दर पनपते रहते हैं। विशेष ढंग पर बनायी हुई ऐसी ढलान वाली क्यारियों से वह जमीन एक कण्टूर नक्शे के समान लगती है।

पानी का साधन कुछ भी हो, आवश्यकता इस बात की रहती आयी है कि उस पानी को खेतों तक पहुँचाया जाए। सिचाई के कुछेक उपयोगी साधन प्राचीन मिस्त्रवासियों ने बनाये थे। उनका जीवन वहाँ की महानदी नील (Nile) पर ही निर्भर था। जब-जब उसमें बाढ़ आती थी तो उस पानी को वे तालाबों, कुण्डों, पोखरों आदि में जमा कर लेते थे और बाद में आवश्यकतानुसार उसे काम में लेते रहते थे।

पानी को ऊँची सतहों पर भी पहुँचाने के उनके अपने अनोखे तरीके थे। ४००० वर्ष पूर्व के शिलालेखों तथा चित्रों द्वारा उन साधनों को समझा जा सकता है। शदूफ (Shadoof), साकिया (Sakia) तथा आर्कमिडीज स्कू (Archimedes' Screw)

जैसे प्राचीन साधन आज पिछड़े हुए प्रदेशों में काम में आते हैं। सम्पन्न देशों में तो अब आधुनिक मशीनों का उपयोग में आती हैं।

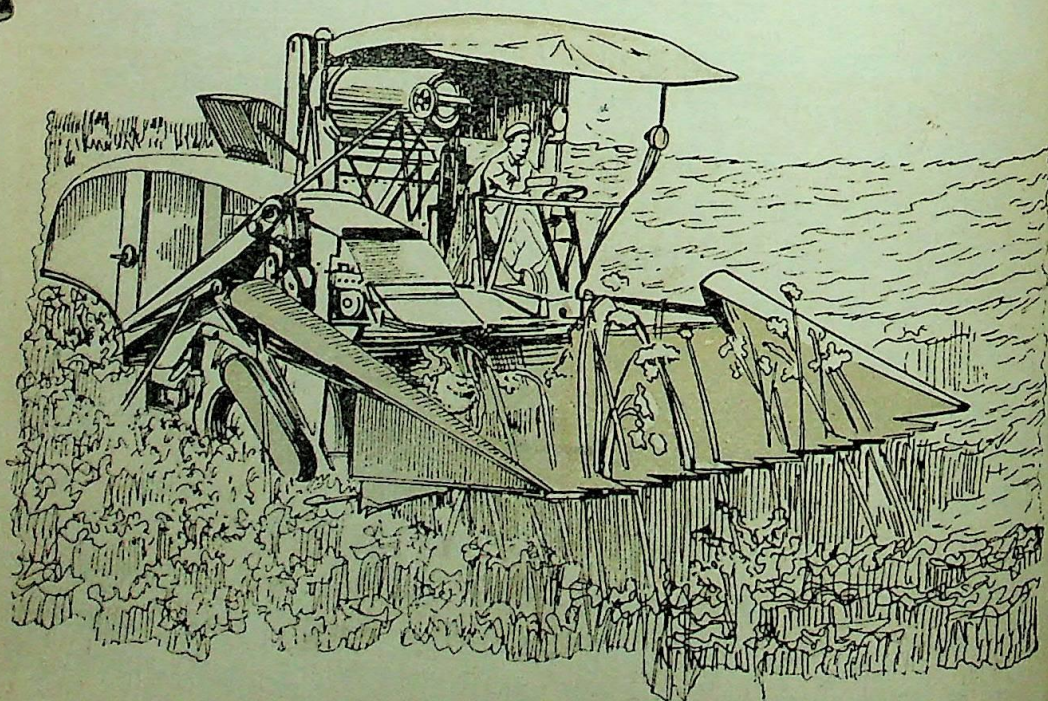
आज लाखों बीघे जमीन की सिचाई इसलिए सम्भव है कि विज्ञान के बल मानव ने बड़े-बड़े बाँध बनाकर नदियों को बाँध दिया है और उनकी धाराएँ मोड़ दी हैं। बाँधों से सिचाई के लिए आवश्यकतानुसार जल तो उपलब्ध होता ही है, बिजली भी मिल जाती है। जेम्बेजी नदी पर किस प्रसिद्ध करीबा बाँध (Kariba Dam) तथा भारत का भाखरा नंगल बाँध ऐसे ही विज्ञान निर्माणों में हैं।

खेतों और बगीचों में हर वक्त एक समान पानी पहुँचाने का एक नया तरीका फव्वारे का भी है। जमीन पर बिछे हुए सूराखदार पाइपों का जाल फव्वारे की तरह पौधों पर पानी बरसाता रहता है।

जब चाहें, बादल बरसा लें

ऐसे प्रदेशों की भी कमी नहीं जिनमें

फूलों और बीजों को चुनने वाला यंत्र



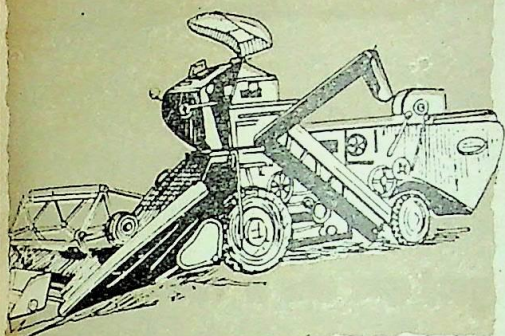
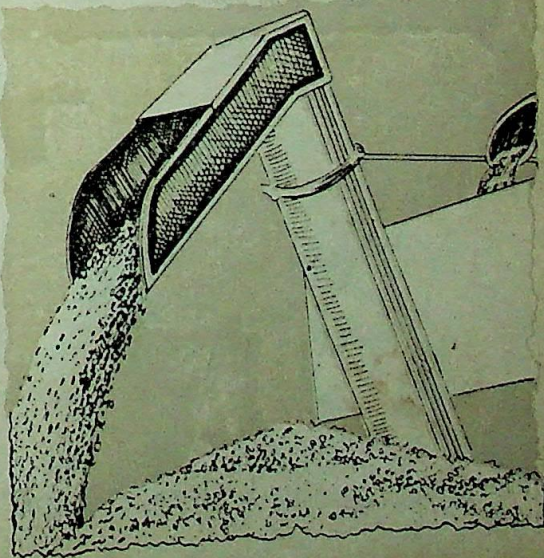
कृषि योग्य भूमि उपलब्ध नहीं ।

मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए

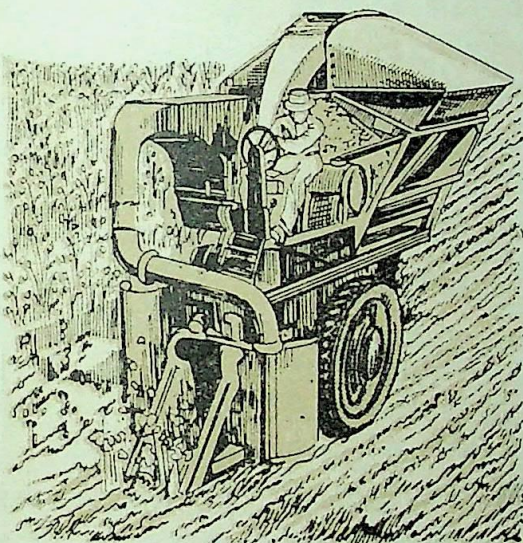
धरती की मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए तरह-तरह के उर्वरक, खादें तथा रसायन आदि बराबर प्रयोग में लाये जा रहे हैं। फलस्वरूप पहले के मुकाबले आज कृषि योग्य भूमि के विस्तार आश्चर्यजनक रूप से बढ़ाये जा सके हैं। जहाँ की मिट्टी उपजाऊ है, वहाँ उपयोगी पौधों के साथ-

साथ अनेक परजीवी वनस्पतियाँ भी उग आती हैं। वे धरती का तमाम रस सोख-कर मुख्य पौधों को निर्बल कर देती हैं और खुद बढ़ती रहती हैं। उन्हें खोज-खोज-कर नष्ट करना पड़ता है। ऐसे भी रसायन बनाये जा रहे हैं जिनके द्वारा हानि-कारक पौधों को नष्ट

इस मशीन द्वारा अधिक से अधिक फूलों और बीजों को कम से कम समय और श्रम लगाकर एकत्र किया जा सकता है



बहुउद्देशीय सोवियत कृषि-यंत्र



कपास चुनने के लिए अनेक श्रमिकों का काम यह एक ही मशीन पूरा कर देती है

उपर होकर भरे-भरे बादल बिना बरसे ही चले जाते हैं। उन प्रदेशों के किसानों की सहायता के लिए विज्ञान ने अपना हाथ बढ़ाया है। हवाई जहाज से बादलों पर सूखी बर्फ तथा अन्य रसायनों की बौछार करने से बादल वहीं ठण्डे होकर वर्षा कर देते हैं। अभी यह आविष्कार प्रयोगावस्था में ही है।

छोटी फसलें मिट्टी-पानी पर ही निर्भर नहीं

इस दिशा में जो भी सफल प्रयोग किये गये हैं उनसे यह सम्भव है कि चार प्राणियों के एक छोटे से परिवार के लिए वर्ष भर बराबर शाक-भाजी मिलती रहे। इसके लिए $1\frac{1}{2} \times 1\frac{1}{2}$ मीटर लम्बे-चौड़े एक घेरे से काम चल जाएगा। उसमें न मिट्टी की जरूरत रहेगी, न पानी की। कुछ रासायनिक घोलों से शाक-भाजियों का वह बगीचा फलता-फूलता रहेगा। यह तरीका उन जगहों के लिए वरदान सिद्ध होगा जहाँ की मिट्टी कम उपजाऊ है और जनसंख्या अधिक होने के कारण

मई १९६३

करने के साथ-साथ उपयोगी पौधों को बचाया जा सके।

कीटाणुओं से रक्षा

इस दिशा में भी विज्ञान निरन्तर प्रयत्नशील है। कुछ समय पहले खलिहानों में भरे हुए अनाज को एक ही स्थान पर रखे रहने से कीड़ा लग जाने के डर से बीच-बीच में उलटते-पलटते और जगह बदलते रहते थे। उससे विशेष लाभ नहीं होता था। अब तो ऐसी दवाएँ बनायी गयी हैं जिनसे न केवल कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, बल्कि पौधों में उनसे लड़ने की शक्ति भी आ जाती है। पौधों को यदि उचित मात्रा में पोषक तत्त्व न मिलें तो वे निर्बल रह जाते हैं। अतः समय-समय पर उन्हें पोषक तत्त्व भी दिये जाते हैं। फसल को टिड्डी से बचाने के लिए हवाई जहाज से टिड्डी-विनाशक गैसों बरसायी जाती हैं।

ट्रैक्टर सबसे बड़ा वरदान

कृषि-क्षेत्र में विज्ञान की सबसे बड़ी देन ट्रैक्टर है। जहाँ मजबूत हल-बैल की जोड़ी काम न कर सके वहाँ ट्रैक्टर काम आते हैं। दो नये प्रकार के ट्रैक्टर तो

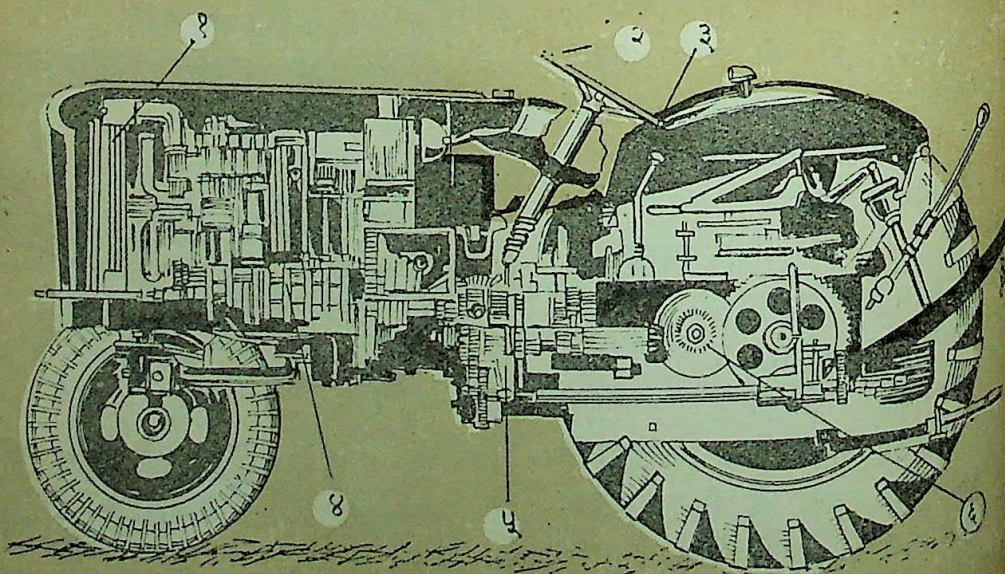
सचमुच आश्चर्यजनक हैं। एक ऐसा है दल-दल और कीचड़ में सरलता से सकता है जहाँ अन्य वाहन बेकार हो जाते हैं। दूसरा ऐसा है जो सख्त से सख्त पक्की जमीन और चट्टानों को तोड़-फोड़कर भुरका बना देता है। ट्रैक्टरों को यह श्रेय है लाखों बीघे जमीन सरलता से जोत जाती है।

बुवाई और शीत से रक्षण

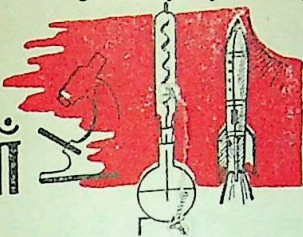
बीजों की बुवाई में—विशेषतः आधुनिकों की एक-एक गड़ाई में बहुत परिश्रम होता है; परन्तु मशीन द्वारा आलुओं की गड़ाई सरलता, सफाई और तेजी से सम्भव हो जाती है। सन्तरे, मौसमी, माल्टा तथा नीबू आदि पेड़-पौधों को अत्यधिक शीत से बचाने के लिए ऐसे हीटर बनाये गये हैं जो ताप विकिरण करके वातावरण को गरम रखते हैं।

विज्ञान की छत्रछाया में कृषि की बहुत आगे बढ़ना है। शीघ्र ही यह भी आश्चर्य का विषय न रहेगा कि आणविक विकिरण (atomic radiation) द्वारा फलों को महीनों तक पूर्ण प्राकृतिक और ताजा अवस्था में रखा जा सकेगा।

फॉर्डसन ट्रैक्टर के कुछेक प्रमुख पुर्जें—१. रेडियेटर; २. स्टीयरिंग व्हील; ३. गीयर लीवर; ४. डिफरेंशियल; ५. गीयर बाक्स; ६. डीजल इंजन



वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



अन्तरिक्ष-यान बीच ही में बिगड़ जाए...

ता सामान्य वायुयान से कूदने में काम आने वाले पैराशूट से तो काम चलेगा नहीं। यह समस्या किसी भी घड़ी सामने आ सकती है। अमरीका के वैज्ञानिक पहले से ही इसकी पूर्व व्यवस्था कर लेने में संलग्न हैं। विभिन्न प्रयोगों के पश्चात् वहाँ की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (GEC) ने एक ऐसी रक्षक-मंजूषा बनायी है जिसे बनाने की योजना को Moose (Man out of Space Easiest) अर्थात् अन्तरिक्ष से सहज मुक्ति का नाम दिया है। अभी उसकी क्षमता धरातल से ४५० मील की ऊँचाई के प्रयोग तक ही सीमित है। केवल ३२२ पौण्ड भारी उस मंजूषा की कार्य प्रणाली निम्न प्रकार रहेगी।

संकट उपस्थित होने पर अन्तरिक्ष-यात्री अपने अन्तरिक्ष-परिधान तथा आक्सीजन सिलिण्डर सहित दोहरी दीवार के बने प्लास्टिक के एक वृहत् थैले में प्रवेश कर लेगा। तदनन्तर वह स्वयं को धकेलकर यान से बाहर लटका लेगा और यान के साथ ही किन्तु बाहर, अपने कक्ष का चक्कर लगाएगा। जिस बिन्दु पर उसे पृथ्वी की ओर लौटना चाहिए उसकी गणना उसे रेडियो द्वारा पहले से मिल जाएगी। चक्कर पूरा होने पर निश्चित बिन्दु आते ही वह पृथ्वी की ओर मुँह करके एक नन्हा राकेट दाग देगा। साथ ही वह एक ऐसा आवरण भी खोल लेगा जो ज्यों-ज्यों वायुमण्डल के भीषण ताप को सोखकर उसे वाष्प रूप में उड़ाता जाएगा, त्यों-त्यों उसमें प्लास्टिक-फोम अर्थात् भाग भरता जाएगा। उससे

यात्री को नीचे उतरने में दबके भी नहीं लगेंगे। जब धरातल केवल ३०००० फुट रह जाएगा तब वह अपना पैराशूट भी खोल लेगा। उस पैराशूट में निर्धारित प्रकाश भलकने लगेंगे जिन्हें देखकर रक्षादल तुरन्त सक्रिय हो जाएगा और यात्री को सकुशल उतारा जा सकेगा।

कृत्रिम सागर के निर्माण में मानव

मानव अपने विज्ञान बल से एक बीहड़ वन-प्रदेश को लहराते सागर में बदल देने के लिए सन्नद्ध है। सोवियत वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कदम उठा लिया है। साइबेरिया की उत्स और इलिम नदियों के किनारे-किनारे ६०० कि. मी. लम्बा सागर बनाने की योजना है। उसी के साथ ४२ लाख किलोवाट की क्षमता का पन-बिजली-घर भी बनाया जाएगा। इस समय वह विस्तार जंगल ही जंगल है और उसमें लगभग १२० लाख घनमीटर काष्ठ प्राप्त हो सकता है। सर्वप्रथम उस लकड़ी को काटने और औद्योगिक स्थलों पर भेजने की योजना बनायी गयी है।

कारखाना तैर कर पहुँचा !

३००० मील समुद्र ही समुद्र पर तिरा कर एक विशाल तेल-शोधक कारखाना बेल्जियम से उत्तरी अफ्रीका पहुँचाया गया है। स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी की लीबिया (उ. अफ्रीका) स्थित शाखा के लिए न्यूयार्क की एक कम्पनी द्वारा दिये गये आर्डर तथा विवरणों पर एण्टवर्प (बेल्जियम) के जहाजी यार्ड में यह विशाल तेल-शोधक कारखाना तैयार किया गया था। तैयार हो जाने पर शक्तिशाली स्टीमरों द्वारा रस्सों से जोड़कर उसे समुद्री यात्रा से लीबिया पहुँचाया गया। यह कारखाना किरासन, गैसोलीन तथा डीजल आयल आदि अन्यान्य ज्वलनशील तेल के ८००० पीपे प्रति दिन तैयार कर सकेगा।

उत्तर रेलवे

सूचना

समय सारिणी में १-४-६३ से निम्न महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं :

(१) गाड़ियों का नया सम्बन्ध जोड़ा गया

१. २ एल. एफ. फीरोजपुर-लुधियाना-पैसैंजर का १ ए. एल. जे. अमृतसर-लुधियाना-जाखल-पैसैंजर के साथ लुधियाना पर ।
२. २ एस. एफ. शिकोहाबाद-फरुखाबाद पैसैंजर का १७ अप कानपुर सेण्ट्रल कासगंज पैसैंजर (एन. ई. रेलवे) के साथ फरुखाबाद पर ।
३. २ एस. एफ. शिकोहाबाद-फरुखाबाद पैसैंजर का १६ डाउन आगरा कानपुर सेण्ट्रल पैसैंजर (एन. ई. रेलवे) के साथ फरुखाबाद पर ।
४. १ ए. जी. ए. इलाहाबाद-आगरा पैसैंजर का २ ए. टी. एफ. आगरा-टूंडला-फरुखाबाद के साथ शिकोहाबाद पर ।
५. ४ एस. एस. शाहजहाँपुर-सीतापुर पैसैंजर का ३७५ अप इलाहाबाद-दिल्ली पैसैंजर के साथ रोजा पर ।

(२) नयी गाड़ियाँ चालू की गयीं

- १ के. एस. बी. डीजल रेल कार दिल्ली किशनगंज और शकूरबस्ती के मध्य

(३) गाड़ियाँ जो आगे को बढ़ायी गयीं

- १ बी. आर. एच./२-बी. आर. एच. जो रिवाड़ी और हिसार के बीच चली रही है सिरसा तक बढ़ा दी गयी है और उसका नम्बर बदलकर १ बी. आर. एस./२. बी. आर. एस. कर दिया गया है ।

(४) गाड़ियों के समय में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन

१. १२ डाउन दिल्ली-हावड़ा एक्सप्रेस दिल्ली से २१-४० बजे के बजाय २२-१० बजे छूटेगी ।
२. २१४/१४ डाउन अजमेर-दिल्ली पैसैंजर ६-२५ बजे के बजाय ७-१० बजे दिल्ली पहुँचेगी ।
३. २३२/३२ डाउन अहमदाबाद-दिल्ली जनता एक्सप्रेस ४-५२ बजे के बजाय ६-०५ बजे दिल्ली पहुँचेगी ।
४. २०१/१ अप दिल्ली-अहमदाबाद मेल दिल्ली से २२-०५ बजे के बजाय २२-२० बजे छूटेगी ।
५. ६१ अप दिल्ली-बीकानेर मेल ६-३० बजे के बजाय ६-०५ बजे बीकानेर पहुँचेगी ।
६. ६५ अप बीकानेर-मारवाड़ मेल बीकानेर से २०-०५ बजे के बजाय २०-२० बजे छूटेगी ।

७. ६६ डाउन साउथ बीकानेर मेल ८१५ बजे के बजाय ७-४५ बजे बीकानेर पहुँचेगी ।
८. १ जे. एम. बी. बीकानेर-मेडता रोड पैसेंजर बीकानेर से ३-०० बजे के बजाय ३-४५ बजे छूटेगी ।
९. ३ जे. जे. पी. पोकरन-जोधपुर पैसेंजर २३-४० बजे के बजाय २२-३५ बजे पोकरन से छूटेगी और ७-०० बजे के बजाय ५-३० बजे जोधपुर पहुँचेगी ।

(५) (अ) गाड़ियों में वातानुकूलित स्थान

१. १ अप/२ डाउन मेल (दिल्ली-कालका) में आंशिक वातानुकूलित डिब्बा सप्ताह में तीन बार के बजाय प्रतिदिन चलेगा ।
२. ४१ अप/४२ डाउन मसूरी एक्सप्रेस में दिल्ली और देहरादून के मध्य एक पूरा वातानुकूलित डिब्बा चलेगा (१५-७-६३ तक) ।
३. ६१ अप/६२ डाउन बीकानेर मेल में दिल्ली और बीकानेर के मध्य निम्न प्रकार से एक आंशिक वातानुकूलित डिब्बा सप्ताह में तीन बार चलेगा :
दिल्ली से—सोमवार-बृहस्पतिवार और शनिवार को ।
बीकानेर से—रविवार-मंगलवार और शुक्रवार को ।

(ब) थ्रू/सेक्शनल डिब्बे जारी किये गये

स्टेशनों के मध्य	ट्रेन नं.	किस श्रेणी का स्थान	बोगियों की संख्या
१. बम्बई सेन्ट्रल-पठानकोट	३/३३ और ३४/४ मेल	ए सी सी प्रथम द्वितीय तृतीय (स्लीपर) तीन टायर	एक एक एक एक
२. दिल्ली-बरेली	३७६/३७५ पैस.	प्रथम, तृतीय	एक
३. दिल्ली-कोटद्वारा	४१/५२/३ के. एन. और ६ के. एन./५१/४२	संयुक्त प्रथम, तृतीय वाइस तृतीय	एक

(स) थ्रू/सेक्शनल डिब्बे निरस्त किये गये

स्टेशनों के मध्य	ट्रेन नं.	किस श्रेणी का स्थान	बोगियों की संख्या
१. दिल्ली-गांधीधाम	२३१/६१ और ६६/२३२	तृतीय	एक

गाड़ियों के समय, बढ़ाये अथवा निरस्त किये हुए थ्रू डिब्बे, गाड़ियों में श्रेणियों के स्थानों के समंजन के लिए टिकट घरों, आरक्षण और पूछताछ कार्यालय एवं प्रमुख स्टेशनों के बुक स्टालों पर प्राप्य अप्रैल १९६३ की समय सारिणी देखें ।

—चीफ आपरेटिंग सुपरिंटेंडेंट

मई १९६३



एच. वी. ग्रेगरी

स न दो हजार ग्यारह ।

कवच से सुरक्षित अपनी मुट्ठी में मोटे तार के रस्से को पकड़कर जयन्त पुरी अपने कनटोप के काँच के सामने तक ले गया और सहसा विस्मय से चीख पड़ा, “अरे, प्रकाश ! देखो, रस्सा तो कटा हुआ है । हमारे जाने के बाद यहाँ कोई आया प्रतीत होता है ।”

प्रकाशचन्द्र इस द्वितीय भारतीय चन्द्र अभियान का प्रथम नेता था । अपने शिरस्त्राण के रेडियो के माध्यम से उसने बड़े सहज भाव से कहा, “मैं तो पहले ही समझ गया था । मुझे विश्वास ही नहीं होता था कि ये सौर बैटरियाँ भी काम करना बन्द कर सकती हैं । फिर भी, यहाँ आकर देखना जरूरी था ।”

दोनों व्यक्ति चन्द्रमा पर जमे हुए लावा की एक पहाड़ी पर खड़े थे । वह पहाड़ी ज्वालामुखी पर्वत के मुँह पर पड़ी राख और पत्थरों-ढेलों से बनी लगभग बीस फुट ऊँची थी । लगभग तीन मास पूर्व ये दोनों वहाँ एक स्वचालित ट्रांसमीटर लगा गये थे । उसी से धरती पर उन्हें नियमित रूप से चन्द्रमा के विषय में जानकारी प्राप्त होती रहती थी । अब तो वहाँ चट्टान में धँसा हुआ शंकु ही रह

गया था और उसमें अटका कुछ फुट तार का लटक रहा था ।

जयन्त ने रस्से को छोड़ दिया और अपने चारों ओर के विचित्र दृश्य को देखा । आसपास दूर तक ज्वालामुखी पर्वत की लहरदार परतें दिखाई देती थीं । उनमें से नुकीली चोटियाँ सर उठाये देती थीं । वायुमण्डल तथा हवा में उड़ने वाली धूलिपूर्ण अभाव में दूर-दूर तक की चोटियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं । उनके ऊपर, अन्धकारमय, नक्षत्रहीन आकाश से नीली-सफेद-सी तेज चमक रही थी । उनके भारी-भरकम जूतों के नीचे जो चट्टान थी, वह खौलते हुए पानी से भी चमक रही थी । यदि उन लोगों के प्रेशर-सूटों के भीतर कोई नियन्त्रित करने की अदभुत व्यवस्था न होती तो कुछ ही क्षणों में वे जलकर राख हो गये होते ।

वहाँ से लगभग आधा मील की दूरी पर एक राकेट ‘चन्द्र-विजय’ की चाँदी-सी शुभ्र और चमकती जैसी आकृति दिखाई दे रही थी । राकेट के भीतर इस अभियान के दो अन्य सदस्य रेडियो से उनका वार्तालाप सुन रहे थे । उनमें एक था रेडिएटिंग ऑपरटर मुहम्मद इस्माइल तथा दूसरा था राकेट चालक वीरेन्द्रकुमार ।

प्रकाश ने जयन्त से पूछा, "क्यों इतने प्रसन्न हो रहे हो?" जयन्त ने मुड़कर उस कन्दरा की ओर देखा जो एक बीभत्स जन्तु की तरह मुँह बाँधे पड़ी थी। प्रथम अभियान में जब ये लोग यहाँ उतरे थे, तो सबसे पहले जयन्त ही साहसपूर्वक इस कन्दरा में उतर गया था और वहाँ फँसे हुए अपने साथियों को निकाल लाया था। तब उसकी अवस्था केवल १५ वर्ष की थी। अतः उसकी निडरता देख कर सबों ने दाँतों तले उँगली दबा ली थी।

जयन्त ने कहा, "हाँ, प्रकाश। इसीलिए तो हम फिर यहाँ आये हैं! आखिर हमें यह तो पता लगाना ही है कि इस कन्दरा के अन्दर क्या है, जिसके कारण पिछली बार हमारे साथी इसमें फँस गये थे!"

अपने कवचों और उपकरणों के बोझ से नीचे दबे हुए दोनों धीरे-धीरे पग उठाकर आगे बढ़े, तो उनका रोयां-रोयां सिहर उठा। फिर भी उन्होंने राकेट के साथ अपने सम्पर्क की पुनः जाँच की और उस ठण्डे अँधियारे गह्वर में उतर गये। लगभग पाँच सौ फुट नीचे कन्दरा के तल तक वे बिना किसी दुर्घटना के पहुँच गये। जयन्त ने वहाँ मैग्नीशियम जलाकर प्रकाश किया। तीव्र प्रकाश में कुछ क्षण तक उनकी आँखें चौंधियाई रहीं। प्रकृतिस्थ होने पर जो कुछ उन्होंने वहाँ देखा, वह विश्वास करने योग्य नहीं था। कन्दरा बिलकुल खाली थी और

नहीं था।

सबसे पहले जयन्त ने ही मुँह खोला, "असम्भव, बिलकुल असम्भव! यह हो ही नहीं सकता। ट्रांसमीटर इतना बड़ा था कि उसे उठाकर ले जाया ही नहीं जा सकता!"

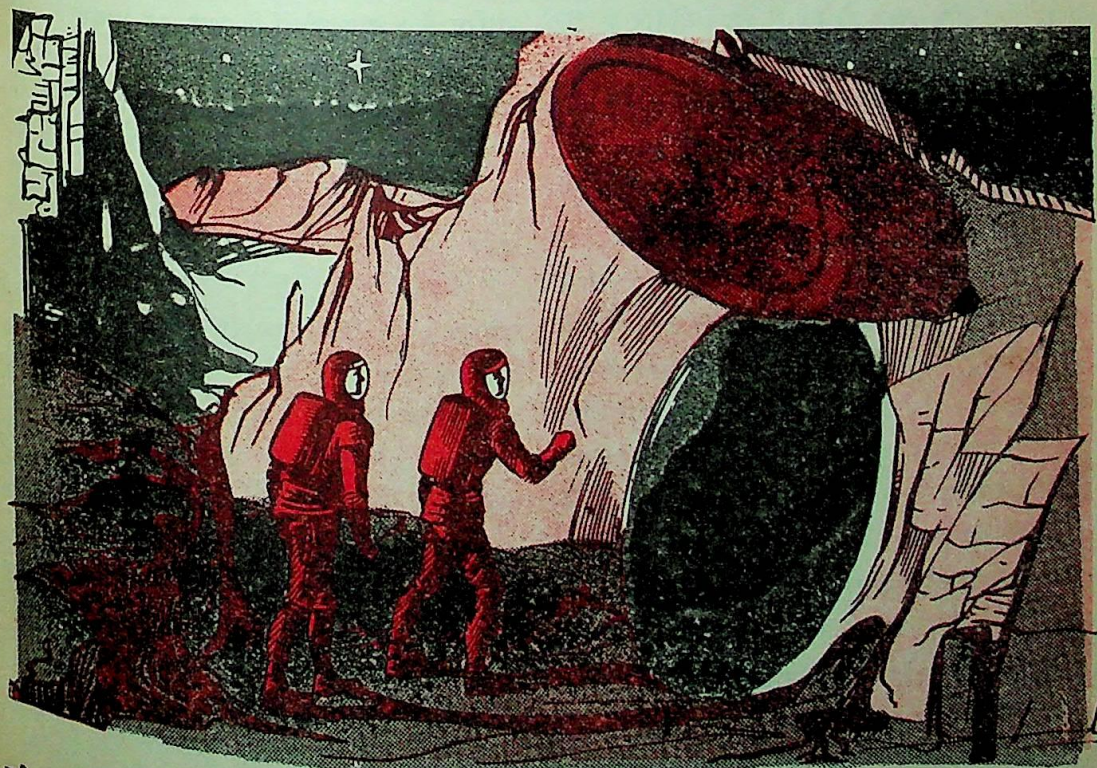
प्रकाश ने कहा, "पर यह तो सम्भव है कि उसके पुरजे उखाड़कर उसे तोड़ दिया गया हो! और, यह भी सम्भव है कि कम गुरुत्वाकर्षण के कारण वे उसे समूचा ही उठाकर ले गये हों!"

मैग्नीशियम का प्रकाश बुझ गया था। उन्होंने अपने लैम्प जला लिये और उनके तेज प्रकाश में आसपास दृष्टि दौड़ायी। एकाएक प्रकाश ने एक तश्तरी की-सी आकृति की तरफ संकेत करके कहा, "जयन्त, देखो! वह क्या है?"

जयन्त ने उसे पाँव से दबाकर कहा, "लंगता है, कोई गुप्त द्वार है। इसे खोलने की कोशिश की जाए?"

ये शब्द उसके मुँह में ही थे कि तश्तरी हिली और धीरे-धीरे ऊपर उठने लगी। जब वह पूरी तरह ऊपर उठ गयी, तो उसके नीचे एक शंकु दिखाई दिया जिस पर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं।

उसमें उतरकर वे संकट मोल नहीं लेना चाहते थे, परन्तु जयन्त के आग्रह पर प्रकाश मना भी न



मई १९६३

कर सका। दोनों करीब बीस फुट उतरकर सीढ़ियाँ एक कमरे में समाप्त होती थीं। फर्श पर पाँव रखते ही एक खटके से चौंककर प्रकाश ने अपने लैम्प की रोशनी ऊपर दरवाजे की तरफ फेंकी। दरवाजा एकाएक बन्द हो गया था। साथ ही, राकेट के साथ उनका सम्पर्क भी टूट गया था।

जयन्त ने फिर कहा, “देखो, सामने एक और दरवाजा है।”

इन शब्दों के साथ ही कमरा एक हलकी नीली रोशनी से भर गया। उसी के साथ ही फुफकार-सी सुनकर दोनों एकबारगी काँप गये। प्रकाश ने अपने हाथ से भारी-भरकम दस्ताना उतारकर हाथ बाहर निकाला तो उस पर गरम हवा के झोंके को अनुभव किया। तभी वे दोनों लुढ़ककर गिर पड़े। क्षण-प्रति-क्षण उनके कवच और उपकरण बोझिल होते जा रहे थे।

प्रकाश ने कहा, “जयन्त, पृथ्वी जैसा गुरुत्वाकर्षण यहाँ भी है, पर कृत्रिम लगता है। यहाँ वायुमण्डल है, आक्सीजन है, सामान्य ताप और दबाव भी है। लगता है, हम किसी एयर-टाइट कमरे में पहुँच गये हैं।”

उस वातावरण में भारी सूटों और कनटोपों की आवश्यकता नहीं थी। दोनों ने तुरन्त उन्हें उतारा और फिर सीधे खड़े हो गये। तभी दीवार में एक द्वार खुला और उसमें से एक आकृति प्रकट हुई। दोनों पहले तो भयभीत हुए, परन्तु जब उसे अपनी ही भाषा में बोलते सुना, तो उनका डर कुछ कम हुआ। कोई कह रहा था—“आइए, आप लोगों का स्वागत है।”

उसका स्वर महीन था और काँप रहा था। उसका कद लम्बा और शरीर भारी था। उसने सिर से पाँव तक किसी धातु से निर्मित वस्त्र धारण कर रखे थे। उसका सिर बहुत बड़ा था। पर बाल एक भी नहीं था। मुँह पीला था और उस पर फीकी-सी मुस्कराहट फैली हुई थी। उसकी आँखें कुछ-कुछ नीली थीं। वह एक कदम आगे आया और अपना हाथ बढ़ाकर बोला, “आप लोगों से मिलकर मुझे खुशी हुई। मुद्दत से मैं अपने जैसे प्राणियों से बात करने और उनके साथ मिल बैठने को लालायित था। आज मेरी साध पूरी हुई।”

जयन्त ने उससे हाथ मिलाया। हाथ काफी

साहस करके प्रकाश बोला, “हमने सोचा न था कि चन्द्रमा पर कोई मनुष्य भी दिखाई देगा। आगन्तुक ने खीसों निपोर दीं, “अरे, सच मनु का ही तो वंशज हूँ! मेरे पूर्वज पृथ्वी पर रहते थे।”

जयन्त को बड़ा विस्मय हुआ। बोला, “विचित्र बात है! पृथ्वी के लोग यहाँ कैसे आये?”

“आज से हजारों क्या, लाखों साल पहले उसी तरह आये, जिस तरह आप लोग आये। विज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने बहुत अधिक प्रगति ली थी। दुर्भाग्यवश, आकाश से गिरने वाली आँक और जलप्रलय से पृथ्वी पर सब कुछ नष्ट हो गया। पर यह लम्बी कहानी है। गुरुत्वाकर्षण के अभाव आप लोग इस वातावरण में असुविधा अनुभव कर रहे होंगे। चलिए, मेरे कमरे में चलिए।”

वह विचित्र मानव उन्हें अपने कमरे में ले गया। वहाँ गद्देदार चौकियाँ रखी थीं। जयन्त को प्रकाश आराम से उन पर बैठ गये। उसने गिलास में कोई अद्भुत पेय डालकर उन्हें दिया। वह कदमधुर और स्वादिष्ट था। पीने से उनकी थकान कम हुई। थोड़ी देर बाद वह फिर बोला—“आज मेरे बारे में कुछ जानने को उत्सुक होंगे। मेरा नाम वारिद है। आप लोगों के नाम मुझे मालूम हैं। क्या कहेंगे? जब से आप चन्द्रमा पर उतरे हैं, तब से मैं चोरी-छिपे आपकी सब बातें सुनता रहा हूँ। मैं यह जानने को उत्सुक था कि आप लोग हमारे ही हैं या किसी भिन्न जाति के, किसी अन्य ग्रह से आये हैं।” उसने कहना जारी रखा—

“सबसे पहले हमीं ने चन्द्रमा पर यह उपनिवेश बसाया। उन दिनों हमारी संख्या हजारों की थी। यहाँ पहुँचकर हमारे पूर्वजों ने दूसरे ग्रहों पर जाने की कल्पना की, जैसी शायद आप लोग भी योजनाएँ बना रहे हैं। यदि आप लोगों ने हम जैसी मूर्खता न की, तो अवश्य ही एक दिन आप लोग सफल हो जाएँगे। हमने यहाँ एक बहुत बड़ा अड्डा बनाकर ग्रह-यानों का निर्माण करना आरम्भ किया था। बीच ही में हमारा शासक पृथ्वी वालों से झगड़ पड़ा और चन्द्रमा पर उसने अपने एक छत्र शासन की घोषणा कर दी। फलतः पृथ्वी और चन्द्रमा में ठन गयी। पृथ्वी वालों ने चाँद पर अपने

परमाणु-चालित प्रक्षेपणास्त्र मारने शुरू किये । हमने भी प्रक्षेपणास्त्रों से ही जवाब दिया और अपनी रक्षा के लिए अपने गुप्त शरण-स्थलों में छिपते रहे ।

यहाँ हमारी एक-एक चीज नष्ट हो गयी । हमारे यान, ईंधन और खाद्य-भण्डार सब कुछ तबाह हो गये । केवल हमारे गुप्त शरण-स्थलों को कोई क्षति नहीं पहुँची । उनमें हमारे आक्सीजन उत्पादक जनरेटर लगे हुए थे और करीब पाँच सौ स्त्री-पुरुष निवास कर रहे थे । जो लोग वृद्ध थे वे क्रमशः मृत्यु के मुख में समाते गये । फिर उनकी सन्तानें और सन्तानों की सन्तानें आती रहीं, सदियाँ बीतती रहीं । तब कहीं पृथ्वी से छोड़े गये प्रक्षेपणास्त्रों के विभिन्न विकिरणों का प्रभाव समाप्त हुआ और यहाँ का जीवन निरापद बना ।

पृथ्वी के निवासी हमसे भाग्यवान निकले । हमारे पास उनके मुकाबले प्रक्षेपणास्त्र कम थे और पृथ्वी बहुत बड़ी थी । तत्पश्चात् पुनः जलप्रलय हुआ । धीरे-धीरे पृथ्वी जल से फिर बाहर निकली और उस पर पुनः जीवन संचार होने लगा । हमारे बारे में पृथ्वी पर किसी को ज्ञात नहीं था । अतः हम यहीं रह गये ।

“आप अब भी तो यान बना सकते होंगे ?” प्रकाश ने पूछा ।

वारिद फीकी हँसी हँसकर बोला, “हमारे पास ईंधन या अन्य किसी प्रकार की कोई ऊर्जा तो थी नहीं । हमारी अर्थ-व्यवस्था बिलकुल डावाँडोल हो गयी थी । हमारी भूगर्भस्थ मशीनें, सीलबन्द रिएक्टर आदि अब भी चल रहे हैं, पर उन्हें खोलकर हम देखने का साहस नहीं कर सकते, क्योंकि जब तक वे चालू रहेंगे, तभी तक हम लोग जीवित रहेंगे ।

“धीरे-धीरे हमारी संख्या कम होती गयी । जब पृथ्वी के लोगों ने रेडियो का पुनः आविष्कार कर लिया, तो हमारे हर्ष की सीमा न रही । आपके रेडियो कार्यक्रमों को सुन-सुनकर ही हमने आपकी भाषा भी सीख ली ।”

“आप लोग हमसे बात भी तो कर सकते थे ? आपने प्रयास क्यों नहीं किया ?” प्रकाश ने पूछा ।

“हम ऐसा दुःसाहस कैसे करते ? तब तो आप भयभीत होकर चन्द्रमा की ओर मुँह ही न करते । हाँ, हमने चन्द्रमा पर लाल प्रकाश करके आप लोगों को बुलाने के प्रयास अवश्य किये । उसे देखकर

आपके खगोलशास्त्रियों ने अनुमान लगाया कि चन्द्रमा पर जीवित ज्वालामुखी होगा । आखिर प्रलोभन में फँसकर आप लोग यहाँ आ ही पहुँचे; पर आये काफी विलम्ब से ।”

“क्यों, क्या आप……?”

“हाँ, मैं यहाँ अकेला ही हूँ । मेरा बड़ा भाई पिछले साल चल बसा । अब यहाँ मेरे सिवा और कोई नहीं है ।”

एक क्षण तक दोनों मानो जड़ हो गये इस बात को सुनकर । फिर जयन्त ने पूछा, “अब आपकी क्या योजना है ?”

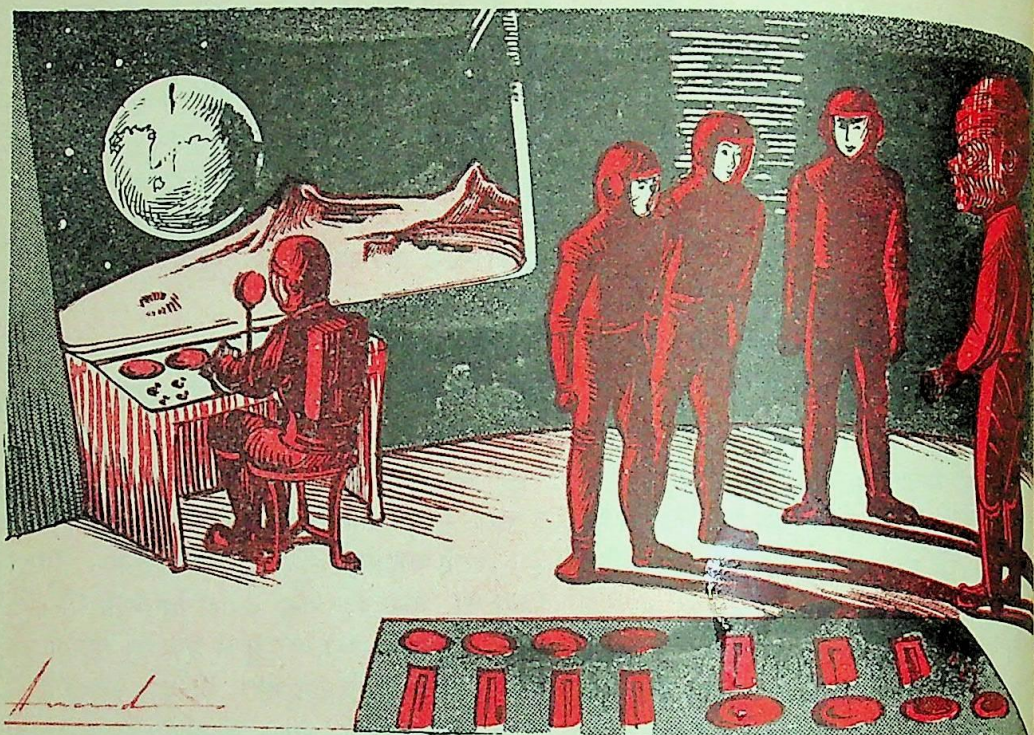
“आप लोग मुझे पृथ्वी पर ले चलिए ।” वारिद ने कहा—“मुझे अपनी चिन्ता नहीं । यह मेरा घर है । किसी वक्त यहाँ मेरे प्रियजन रहते थे । जिस पृथ्वी को मैंने देखा तक नहीं, वहाँ जाने को मैं इतना उत्सुक भी नहीं, पर अपने वंश के लोगों के प्रति, आप लोगों के प्रति मेरा भी कुछ कर्तव्य है । पृथ्वी पर आज भी मनुष्य परमाणु शस्त्रास्त्रों से खिलवाड़ कर रहा है । इसी के कारण इससे पूर्व कितना विनाश हो चुका है, यह सब मैं स्वयं जाकर पृथ्वी के लोगों को बताना चाहता हूँ । इतिहास में यह घटना दोहरायी नहीं जानी चाहिए ।”

प्रकाश उठकर खड़ा हो गया और बोला, “आपके विचार बड़े शुभ हैं । आइए, चलें अपने राकेट में ।”

वहाँ से चलकर तीनों पुनः एयर-टाइट कमरे में पहुँचे । प्रकाश और जयन्त ने अपने-अपने सूट और कनटोप धारण कर लिये । वारिद ने भी एक अलमारी से अपना सूट और कनटोप निकालकर पहन लिया । उस कमरे से निकलकर वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ से वारिद उन्हें एक चक्करदार सीढ़ी के रास्ते गढ़वर के मुख पर ले आया । वहाँ से राकेट ‘चन्द्र-विजय’ अधिक दूर नहीं था ।

रेडियो सम्पर्क टूट जाने के बाद ‘चन्द्र विजय’ में बैठे मुहम्मद इस्माइल और वीरेन्द्र चिन्तित हो उठे थे । अब जब उन्होंने जयन्त और प्रकाश को आते देखा, तो उनके हर्ष की सीमा न रही । फिर उनके साथ एक अन्य विचित्र मानव को देखकर उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ ।

शीघ्र ही जयन्त और प्रकाश वारिद के साथ वहाँ पहुँच गये । वारिद ने अपनी कहानी उनके आगे पुनः कही । मुहम्मद इस्माइल ने इस खोज की



खबर तुरन्त वहाँ से करीब दो-ढाई लाख मील नीचे पृथ्वी पर पहुँचा दी। पृथ्वी से उन्हें आदेश मिला कि वे वारिद को नीचे उतार लाएँ। उन्हें यह भी आदेश दिया गया कि वे वारिद को सुरक्षित रूप से नीचे लाएँ, चाहे ऐसा करने में उन्हें अपना बहुमूल्य सामान भी क्यों न फेंक देना पड़े।

सब के सब तुरन्त धरती पर जाने की तैयारी में जुट गये। सबसे पहले उन्होंने राकेट में से नया ट्रांसमीटर उतारा। उसे देखकर वारिद ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि वास्तव में पहला ट्रांसमीटर वही उठवाकर ले गया था। मुहम्मद इस्माइल, प्रकाश और वीरेन्द्र नये ट्रांसमीटर को उठाकर उसे पहले वाले स्थान पर स्थापित करने के लिए चल पड़े।

उनके जाने के बाद जयन्त, वारिद को राकेट के रहस्यों से परिचित कराने लगा। वारिद में बारी-कियाँ समझने की अपूर्व क्षमता थी। सब बातें जान लेने के बाद वह बोला, “लगता है, पृथ्वी पर रहने वालों का विज्ञान अब भी बहुत पिछड़ा है।”

इस्माइल, प्रकाश और वीरेन्द्र के आने में विलम्ब होते देखकर जयन्त ने राकेट की खिड़की में से देखा। पहाड़ी पर ट्रांसमीटर तो रखा था, पर उसके पास न इस्माइल था, न प्रकाश और न वीरेन्द्र। जयन्त ने मुड़कर देखा तो वारिद के चेहरे पर उसे एक कुटिल मुस्कराहट दिखाई दी। संदेहपूर्ण स्वर में

उसने पूछा—“इस्माइल, प्रकाश और वीरेन्द्र हैं, जानते हो?” जयन्त यों एकाएक ‘आप’ से ‘तुम’ पर उतर आया था, यह अनुभव करके एक क्षण उसे स्वयं भी बड़ी ग्लानि हुई। साथ ही वारिद की अर्थ-पूर्ण दृष्टि देखकर वह सहम भी गया।

वारिद ने खीसें निपोरकर कहा, “चिन्ता करो। वे बिल्कुल सुरक्षित हैं। मेरे सेवक उनसे सेवा कर रहे हैं।”

“तुम्हारे सेवक?” जयन्त बुरी तरह घबरा गया, “तुम तो कहते थे कि तुम यहाँ अकेले हो?”

“मेरे नादान दोस्त, अभी नहीं समझोगे। कच्ची उम्र के हो। मैंने यही नहीं, और भी कितनी बातें कही थीं। तुमने उन सबको सच ही मान लिया क्या?”

जयन्त का कलेजा धक् से रह गया। इस व्यक्ति की बातों में आकर उसने उसे राकेट के रहस्य भी बता दिया! कितना मूर्ख था वह?

वारिद फिर बोला, “अब पश्चात्ताप करने क्या होगा? तुम लोगों से हमारी बुद्धि कहीं तीव्र है। अब तुम्हारी पृथ्वी पर भी अधिकार करने हमें अधिक समय नहीं लगेगा।”

पता नहीं कैसे, उस भयंकर मानव से वारिद की बात सुनकर भी जयन्त अपने ही

हवास ठिकाने रख सका ! वह बोला, "तुम हम पृथ्वी वालों से जीत न सकोगे । हम लोग बड़े विकट हैं हमारी संख्या बहुत अधिक बढ़ चुकी है और हमने युद्ध का भी पर्याप्त अभ्यास कर लिया है ।"

इस पर वारिद ठहाका मारकर हँस पड़ा । बोला, "सच है कि हम लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है, पर हमारे पास अरबों-खरबों की संख्या में ऐसे मित्र हैं, जो हमारा संकेत पाते ही सारी पृथ्वी को नष्ट कर सकेंगे ।"

"तुम्हारा मतलब ?"

"हमारे नियन्त्रण में असंख्य जीवाणु हैं, ऐसे जीवाणु जो पल भर में सारी पृथ्वी पर फैलकर प्रलय मचा देंगे । हम इसी राकेट में उन जीवाणुओं को भरकर पृथ्वी पर भेज देंगे । यह राकेट तब तक वायुमण्डल में चक्कर लगाता रहेगा, जब तक धरती के सारे जीव नष्ट नहीं हो जाते । जो बच रहेंगे, वे इतने भीरु और अशक्त हो चुके होंगे कि वे सहज ही हमारा आधिपत्य स्वीकार कर लेंगे । इसके बाद हम अपनी शेष जनसंख्या को पृथ्वी पर उतारने का प्रयास करेंगे । पर अब बातों में समय नष्ट करने का वक्त नहीं है । चलो, मेरे आगे-आगे ।"

जयन्त लाचार था । उसने अपना कनटोप पहना और आगे हो लिया । राकेट के दरवाजे से झाँककर नीचे देखा, तो सीढ़ी के साथ चन्द्रमा के

धरातल पर दो आकृतियाँ खड़ी दिखाई दीं । उन्हें देखकर कोई भी सहज अनुमान लगा सकता था कि वे मानव आकृतियाँ नहीं थीं । दोनों ने एक पेटी उठा रखी थी ।

वारिद ने कहा, "ये हैं मेरे पुतले, जो मेरे इशारों पर नाचते हैं । इनके हाथ में जो पेटी है, उसमें विपैले जीवाणुओं के सिलेंडर लाखों लोगों के प्राण लेने के लिए काफी हैं ।"

कहते-कहते वारिद आकर राकेट के द्वार के बीच में खड़ा हो गया और नीचे झाँककर उन आकृतियों को कुछ संकेत करने लगा । इससे अच्छा अवसर जयन्त को नहीं मिल सकता था । उसने धीरे से बटन दबा दिया और ज्योंही खटाक से राकेट का दरवाजा बन्द हुआ, वारिद का शरीर उसमें फँसकर दो टुकड़े हो गया ।

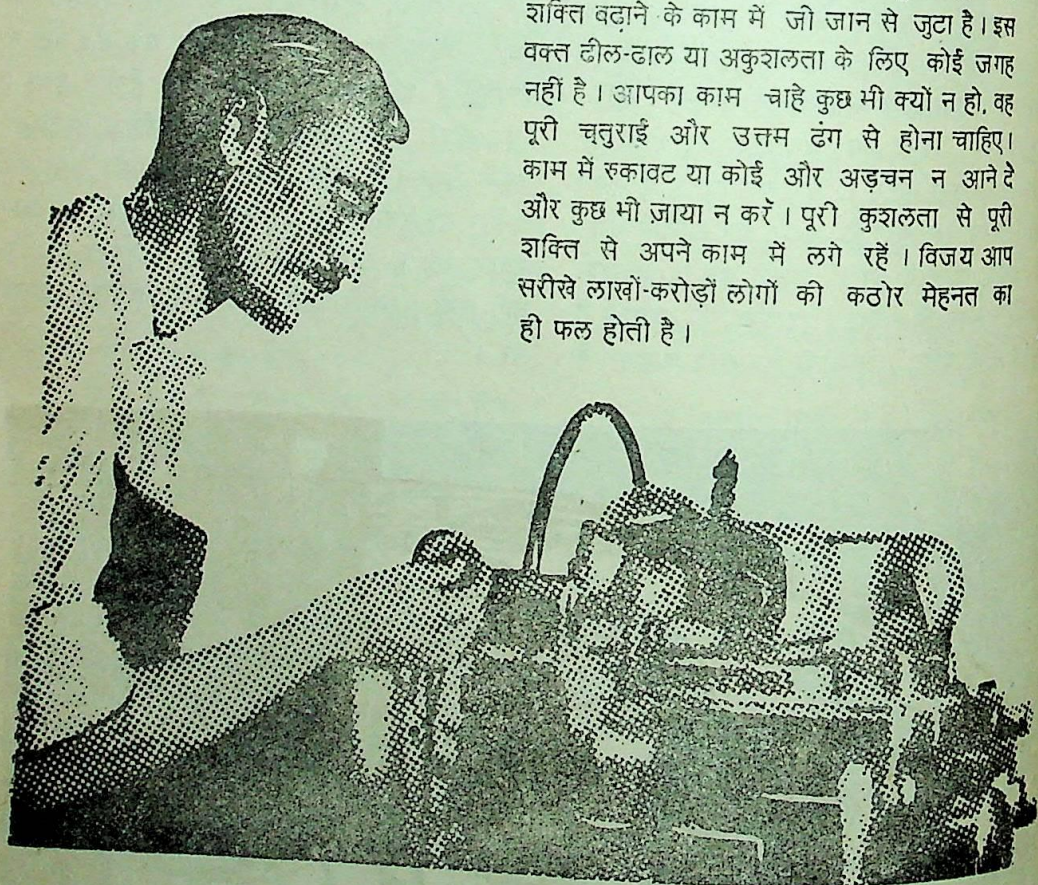
वारिद के शरीर का एक हिस्सा जयन्त के पैरों में आ गिरा । उससे रक्त की एक बूंद तक न निकली । यह देखकर जयन्त बड़ा हैरान हुआ । फिर साहस करके उसने पैर से उसे ठोकर मारी तो उसके लुढ़कने के साथ उसमें से काँच और धातु की झंकारें-सी सुनायी दीं । फिर उसमें से धुँएँ का एक गुबार उठा । सारी बात समझने में जयन्त को देर नहीं लगी । वारिद भी लोह-काँच निर्मित पुतला था ।



आप चाहे कुछ भी काम क्यों न करते हों...

आपका काम
देश के लिए
किया गया काम है ।

आप, आपका काम, आपका जीवन सभी कुछ उस भारत के अभिन्न अंग हैं जो आज कुशलता तथा शक्ति बढ़ाने के काम में जी जान से जुटा है। इस वक्त ढील-ढाल या अकुशलता के लिए कोई जगह नहीं है। आपका काम चाहे कुछ भी क्यों न हो, वह पूरी चतुराई और उत्तम ढंग से होना चाहिए। काम में रुकावट या कोई और अड़चन न आने दे और कुछ भी जाया न करें। पूरी कुशलता से पूरी शक्ति से अपने काम में लगे रहें। विजय आप सरीखे लाखों-करोड़ों लोगों की कठोर मेहनत का ही फल होती है।



जी तोड़ मेहनत करें
अधिक उत्पादन और सुदृढ़ रक्षा के लिए

बड़ी
देखा। न
खड़े थे, हि
हिस्सा उ
से उतरा
समीप ज
दिया। दे
ने समझ
थे और व
करना व
जय
नहीं थे
पहुँचा।
दिखायी
उन्हें घस
के बाद
था। वह
हुए रास
पहुँचा।
उतारकर
मूसल
निकलक
वहाँ से
में पहुँच
था। उ
वह उस
आप बन
थोड़ी दे
शटर आ
आया।
ही नील
तरफ द
खिड़की
गया औ
देखा।
के सेवक
था कि
प्राणी व
था।
वारिद
थे पर
कि उन
सई १

बड़ी सतर्कता से उसने दरवाजा खोलकर बाहर देखा। नीचे दोनों पुतले अब भी अपने स्थान पर खड़े थे, निश्चेष्ट। वारिद का कटा हुआ दूसरा हिस्सा उनके पास पड़ा था। जयन्त धीरे-धीरे सीढ़ी से उतरा। पुतलों में कोई स्पन्दन न हुआ तो उनके समीप जाकर साहस करके जयन्त ने दोनों को धकेल दिया। वे पीछे गिर पड़े फिर भी हिले नहीं। जयन्त ने समझ लिया कि वे पुतले वारिद के नियन्त्रण में थे और वारिद के अन्त के साथ ही उन्होंने भी काम करना बन्द कर दिया था।

जयन्त ने दूर नजर दौड़ायी। उसके साथी वहाँ नहीं थे। वह जल्दी-जल्दी ट्रांसमीटर के पास पहुँचा। वहाँ की भूमि पर संघर्ष के स्पष्ट चिह्न दिखायी दे रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई उन्हें घसीटकर नीचे ले गया था। वारिद के अन्त के बाद जयन्त का भय एकदम अदृश्य हो गया था। वह कन्दरा में उतर गया और पहले देखे हुए रास्ते से उसी एयर-टाइट कमरे में जा पहुँचा। जयन्त ने अपना प्रेशर सूट और कनटोप उतारकर वहीं रखा और हाथ में एक हलका मूसल उठाकर आगे बढ़ा। उस कमरे से निकलकर वह वारिद के कमरे में गया और वहाँ से उस हलकी नीली रोशनी वाले बरामदे में पहुँचा। उसके अन्तिम छोर पर एक द्वार था। उसके अन्दर एक लिफ्ट लगा था। जब वह उसमें प्रविष्ट हुआ तो लिफ्ट का शटर अपने आप बन्द हो गया और लिफ्ट नीचे उतरने लगा। थोड़ी देर बाद एक भटके के साथ लिफ्ट रुक गया। शटर अपने आप खुला और जयन्त बाहर निकल आया। सामने एक लम्बी गैलरी थी। उसमें वैसी ही नीली रोशनी फैल रही थी। गैलरी के दोनों तरफ द्वारों की पंक्तियाँ थीं। प्रत्येक दरवाजे में एक खिड़की थी। दबे पाँव वह एक दरवाजे के पास गया और पारदर्शी खिड़की से झाँककर भीतर देखा। कमरे में दो प्राणी थे। एक प्राणी वारिद के सेवक जैसा था। दूसरा प्राणी इतना भयावह था कि जयन्त भयभीत होकर पीछे हट गया। उस प्राणी का सिर बहुत बड़ा और शरीर अत्यन्त क्षीण था। वह एक तख्त पर लेटा हुआ था। जैसा कि वारिद ने कहा था, वास्तव में ये पृथ्वी के ही जीव थे पर यहाँ आकर उनमें ऐसा परिवर्तन हो गया था कि उनकी आकृति मानव से बिलकुल भिन्न और

वीभत्स हो गयी थी। अब ये अपने पुतलों के माध्यम से ही चलते-फिरते थे। इनके सिर के परिमाण से स्पष्ट था कि इनकी मानसिक शक्ति अपार थी, पर पृथ्वी को जीतने की अपनी छिछोरी कल्पना से उनकी नैतिक शक्ति का मानो दिवाला ही निकल गया था।

साहस करके जयन्त गैलरी में चलने लगा। वह फिर किसी दरवाजे के आगे रुका नहीं। उसने अनुमान कर लिया कि उसके साथी इन कमरों में तो हरगिज न होंगे, क्योंकि वे इतने छोटे थे कि उनमें वहाँ के निवासियों के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश करना सम्भव नहीं था।

आखिर वह एक ऐसे द्वार के सामने जा खड़ा हुआ जो बाकी सब द्वारों से बड़ा था और उसमें पारदर्शी खिड़की भी नहीं थी। उस पर धातु की बनी एक विचित्र कल लगी थी। जयन्त ने हाथ बढ़ाकर उसका स्पर्श किया तो दरवाजा खुल गया। धीरे से वह उसकी देहरी में जा खड़ा हुआ। भीतर नीली रोशनी फैल रही थी। पर जब वह देहरी लाँघकर भीतर प्रविष्ट हुआ, तो एकदम मुँह के बल गिर पड़ा, क्योंकि वहाँ का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से काफी कम था।

जब उसकी आँखें उस रोशनी में देखने की अभ्यस्त हुईं, तो उसने देखा कि उसके तीनों साथी वहीं उसके पास पड़े थे जो अपने बोझिले प्रेशर सूटों के कारण उठ नहीं सकते थे। जयन्त ने सूट नहीं पहन रखा था। उसने धीरे से सिर उठाकर चारों तरफ देखा। उसकी दृष्टि सामने एक मंच पर गयी, जहाँ एक बहुत बड़े स्विचबोर्ड के पीछे एक बड़ी वीभत्स आकृति बैठी थी। उसने एक सुनहरा लबादा पहन रखा था। जब उसने उसके ऐंठे हुए चेहरे को और उसकी एकमात्र आँख को देखा, जो उसके माथे में थी, तो जयन्त भय-त्रस्त हो गया। इतनी भयंकर आकृति उसने इससे पहले नहीं देखी थी। उसे लगा मानो उसकी नसों का खून जम चला है। उसका सिर बहुत बड़ा था, जिस पर न बाल थे, न कान। उसके सिर पर मुकुट को देखकर जयन्त मन ही मन बुदबुदाया—“क्या यही चन्द्रलोक का शासक है?”

“हाँ, अब हमारी मानव आकृति नहीं रही,” एकाएक वह आकृति बोल उठी—“पृथ्वी से जो प्रक्षेपणास्त्र आये, उन्होंने हमारे गुप्त रक्षा-स्थलों

को भी दूषित कर दिया। वह सारा जल नष्ट हो गया। शायद उसकी सुनने की शक्ति नहीं थी या, नष्ट हो चुकी थी !

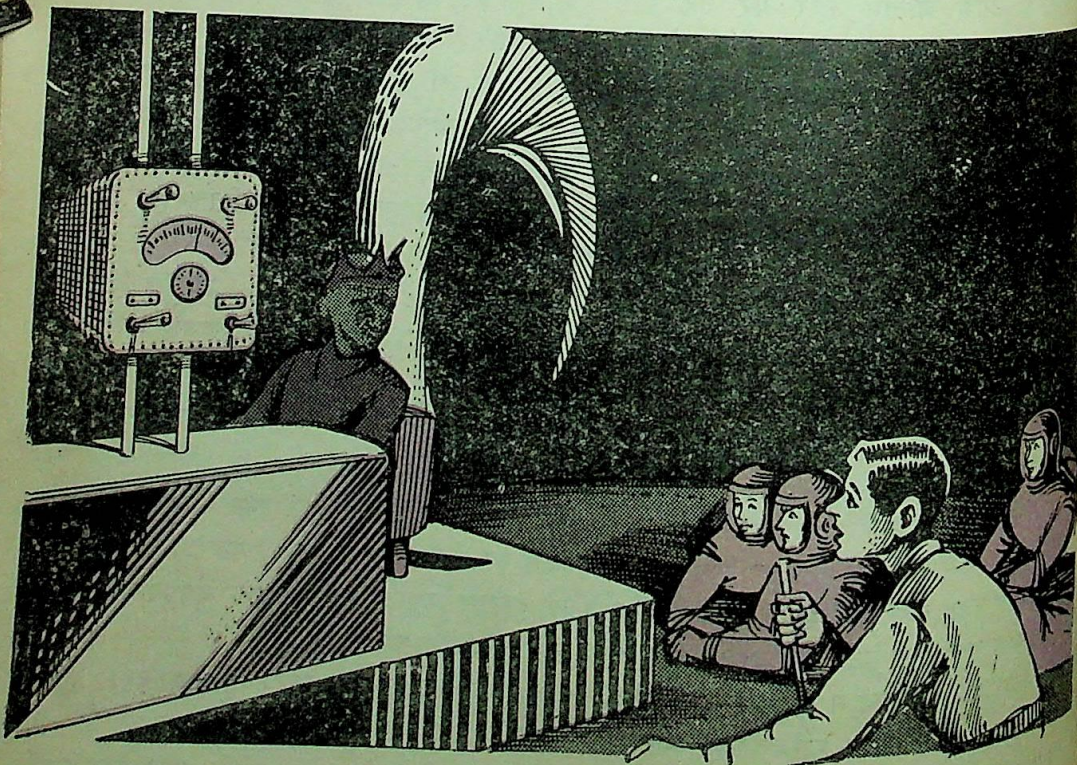
एक क्षण की भी देरी, जैसा कि उस क्षण आकृति ने कहा था, पृथ्वी के निवासियों पर बिजली टा सकती थी। इसलिए जयन्त ने आव देता ताव, अपने हाथ का मूसल सम्हाला और फिर उस शक्ति से चन्द्रलोक के शासक पर फेंका। चन्द्रलोक के शासक तो बच गया, पर मूसल सीधा जाकर फिरोज बोर्ड पर लगा। उससे जोर का धमाका हुआ और फिर आंखें चौंधिया देने वाली रोशनी निकली। इसके साथ ही वह चन्द्रलोक का शासक एंठ पर और अगले ही क्षण अग्नि-ज्वाला ने उसके शरीर को समेट लिया। कमरे की नीली रोशनी गायब हो गयी थी और कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण भी नष्ट हो गया था। जयन्त के तीनों साथी उछलकर खड़े हो गये और उन्होंने अपने लैम्प जलाये। सारे कमरे में धुआँ था और भुने हुए गोश्त की-सी गन्ध फैल गयी थी। चन्द्रलोक के शासक का झुलसा हुआ शरीर तख्तपोश पर पड़ा था और उसके सिर पर का मुँह लुढ़ककर उन लोगों के पैरों में आ गिरा था।

“पर, अभी मैं हारा नहीं हूँ। मेरे सामने यह स्विचबोर्ड है। इसमें एक ऐसा बटन है जिसको दबाते ही चन्द्रमा पर एक विस्फोट होगा और उसकी धूल जब पृथ्वी पर पहुँचेगी, तो वहाँ का एक-एक प्राणी नष्ट हो जाएगा। या जो बच रहेंगे, उनकी आकृति हम जैसी हो जाएगी।”

यह कहते-कहते उसने अपना हाथ स्विचबोर्ड की ओर बढ़ाया। यह देखकर जयन्त और उसके साथी एकदम भयभीत हो गये। प्रकाश एकदम चीख पड़ा, “जयन्त, कुछ करो, तुम्हीं कुछ कर सकते हो, हम तो बिलकुल असहाय पड़े हैं।”

प्रकाश की इस बात का उस शासक पर कोई

एक क्षण में क्या से क्या हो गया, यह जयन्त मुँह बाये खड़ा देख रहा था। फिर बोला, “असल में, मैंने वार तो इस आकृति पर किया था, स्विचबोर्ड पर नहीं।”



प्रकाश ने कहा, "जो कुछ भी हो, संयोग ने हमारे प्राण बचा लिये। यह मानव नहीं कोई प्राण जीव था। अब जल्दी से यहाँ से निकल चलो। लगता है जनरेटर बन्द हो गये हैं, तभी तो रोशनी बुझ गयी है। पता नहीं हवा भी इसी तरह कब समाप्त हो जाए! शायद शार्ट सर्किट से कोई धुँव उड़ गया है।"

तीनों तुरन्त बाहर भागे। गैलरी से निकलकर वे लिफ्ट तक आये। पर किसी ने उन्हें रोका नहीं। प्रकाश ने अपने लैम्प से एक कमरे के दरवाजे की खिड़की से अन्दर देखने की कोशिश की, पर अन्दर प्रकाश न होने से उसे कुछ दिखाई नहीं दिया।

वीरेन्द्र ने कहा, "लगता है इन पुतलों को परिचालित करने वाली शक्ति नष्ट हो चुकी है या इनका दूरस्थ रेडियो-नियन्त्रण समाप्त हो गया है।"

इस्माइल ने कहा, "जो कुछ भी हो, अब ये असहाय हो गये हैं।"

प्रकाश ने कहा, "यदि हवा भी न रही, तो शीघ्र ही इनका अन्त हो जाएगा। अच्छा है, जो न मानव हैं, न पशु, उनके जीवित रहने से लाभ ही क्या?"

लिफ्ट ने भी काम करना बन्द कर दिया था। पास ही उन्हें एक सीधी सीढ़ी दिखाई दी, जो अन्तहीन प्रतीत होती थी। उसी के सहारे वे भूगर्भस्थ नगर के कई हिस्सों से होते हुए आगे बढ़ते गये। पर कहीं रुककर देखने के लिए वे ठहरे नहीं।

प्रकाश ने कहा, "अब जो अगला अभियान आएगा वही इस नगर की खोज-बीन करेगा।"

वायुमण्डल में ठण्ड बढ़ती जा रही थी। एयर-टाइट कमरे में पहुँचने तक उन्हें साँस लेने में काफी कष्ट हो रहा था। भारी भरकम प्रेशर सूट न पहनने से जयन्त को इतनी असुविधा नहीं हो रही थी, पर ठण्ड के मारे उसका शरीर सिकुड़ा जा रहा था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि वे बिना किसी बाधा के अपने यान पर पहुँच गये और तुरन्त पृथ्वी पर उतरने की तैयारी करने लगे।

वीरेन्द्र ने कहा, "पृथ्वी पर पहुँचकर जब हम ये सब बातें अपने मित्रों को बतलाएँगे, तो क्या वे हम पर विश्वास करेंगे?"

जयन्त ने कहा, "वारिद के शरीर का अर्धांश हमारे पास है। यदि इसे हम सुरक्षित रूप से पृथ्वी पर ले गये और इसे वहाँ के वायुमण्डल से क्षति न पहुँची, तो उन्हें समझाने में हमें कोई दिक्कत न होगी।"

उसी समय अपने थैले में से प्रकाश ने चन्द्रमा के शासक का मुकुट निकाला और कहा, "और, यह भी तो एक प्रमाण है!"

सबने चौंककर उसकी तरफ देखा। चन्द्रलोक के शासक के कमरे में जब सब अपने प्राण बचाने की चिन्ता में थे, तब प्रकाश ने चुपके से वह पिचका हुआ मुकुट अपने थैले में रख लिया था।

[रूपान्तरकार—द्रोणवीर कोहली]

दूध-निर्माण में प्रकृति से होड़

प्राकृतिक दूध-निर्माण पर प्रकृति का एकाधिकार है। विज्ञान के लिए प्राकृतिक पदार्थों का पृथक्करण जितना सहज रहा है, उतना ही कठिन—बल्कि असम्भव—पुनः संयोजन रहा है। दूध से मक्खन निकालना और पाउडर दूध तैयार कर देना ही अब तक सहज था। अब हडसन (अमरीका) की जिफर्डवुड कम्पनी ने वर्षों के प्रयोगों तथा परिश्रम के बाद ऐसी मशीन तैयार की है जिसमें मक्खन और दूध का पाउडर डालने पर पुनः जो दूध प्राप्त होगा वह तत्त्वों, चिकनाई और स्वाद की दृष्टि से पूर्णतः प्राकृतिक दूध के समान होगा। अत्यधिक तीव्र गति से चलने वाली मोटरयुक्त यह मशीन एक बार में १६ लिटर दूध तैयार करती है।

विचित्र संसार

यह हिम-छेदक फूल

यूरोप के आल्प्स पर्वत पर उगने वाले इस फूल का नाम है ब्लू मूनवर्ट । पतझर के दिनों में इसकी पत्तियाँ हिम की पतों के नीचे दबी पड़ी रहती हैं और समूचा पौधा हिम-समाधिस्थ हो जाता है । वसन्ता-गमन पर ज्यों-ज्यों बर्फ पिघलती है और उसका पानी इसकी सोयी हुई जड़ों में पहुँचता है, त्यों-त्यों यह अपना आलस्य भटककर चैतन्य होता जाता है । अतः यह समझा जा सकता है कि हिम का आवरण एक उत्तम संरक्षक का काम करता है, ठीक ऐसे ही जैसे खाद्य-संरक्षण में रेफ्रिजरेशन । पुनर्जागृत होते ही यह फूल अपना रंग-विरंगा सौन्दर्य बिखेरकर मनोरम दृश्य उपस्थित करता है ।

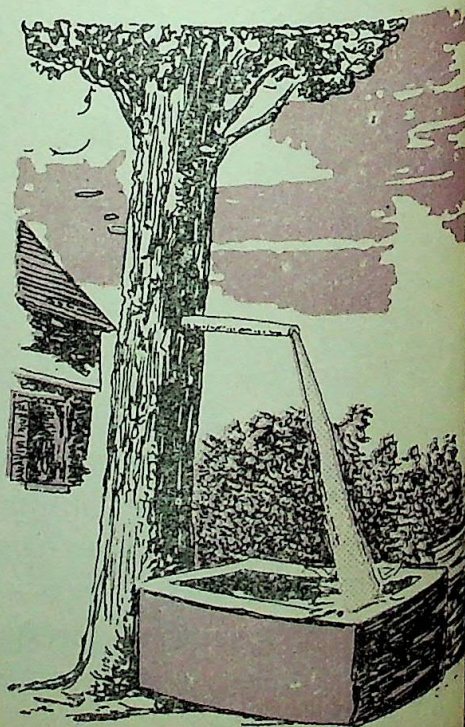
मत्स्यगंधा जलपरियाँ

मत्स्यरूपिणी अर्थात् मछलियों जैसे अंग (केवल निचला अर्द्धांश ही) वाली जल-परियों के उल्लेख कितने ही पौराणिक कथाओं में आते हैं । पहले इन्हें सरोवर की सुन्दरी के नाम दिये जाते थे क्योंकि माना जाता था कि ये सरोवरों, झीलों आदि में पायी जाती हैं । इसीलिए अंग्रेजी में इन्हें (Meremaid) अर्थात् सरोवर की सुन्दरी कहते थे । तत्पश्चात् इनका सम्बन्ध समुद्र से जोड़ा गया और इन्हें सागरपरी कहा जाने लगा । इनका ऊपर का अंग अप्रतिम रूप से सुन्दर और निचला अंग मछली जैसा माना जाता था । इनका दिखाई पड़ना बड़ा संकट-सूचक समझा जाता था और उसी मान्यतावश अनेक नाविक और समुद्री यात्री इनके फेर में जीवन तक से

आज का प्राणी-कि
व्हेल परिवार की पारपाइज (Porpoise)
को पूर्वकालीन सागरपरी का प्रे
मानता है ।

पेड़ के तने से जल का स्रोत

स्विट्जरलैण्ड के गुन्तेन (Guntlen) गाँव में यह विचित्र वृक्ष पिछले ६० वर्षों अजस्र जलधारा द्वारा गाँव के लोगों को मवेशियों को पानी दिये जा रहा है । इसका रहस्य ज्ञात नहीं उनके लिए यह बहुत बड़ा आश्चर्य है । वास्तविकता यह कि ६० वर्ष पूर्व इस गाँव में जब सब पहले नलों की पाइपलाइन डाली गयी तब नन्हे हरे तने के साथ भी एक पाइप कसकर टोंटी लगा दी गयी थी । प्रकृति का संयोग कि वह तना जड़ें पकड़ गया और कालान्तर में इस बड़े वृक्ष का रूप ले लिया वह पाइप पूरी तरह इस पेड़ के तने में बिग गया है । लोगों ने टोंटी के नीचे एक कुद्वारा बना दी है ताकि पानी सुविधापूर्वक काम लिया जाता रहे ।



माणो-कि
Porpoise
का प्र

(Gunter)

६० वर्षों

लोगों ने

है। कि

नए यह

कता यह

जब स

ली गयी

एक पा

प्रकृति

गया और

ले लिया

ने में कि

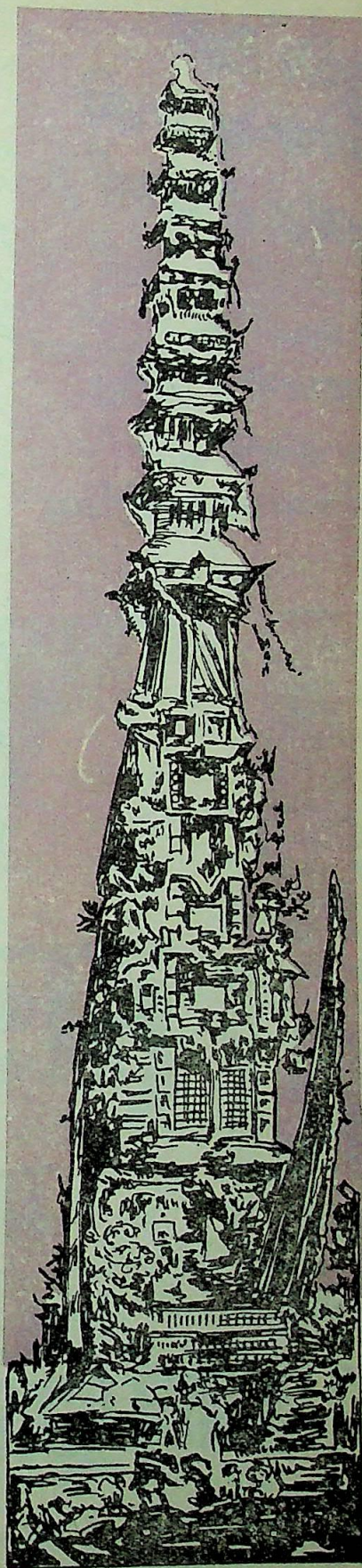
एक कु

क काम

अन्त्येष्टि क्रिया, एक आनन्दोत्सव
कितनी विचित्र बात है कि इण्डोनेशिया
की राजधानी वाली के निवासियों ने लाखों
रुपये खर्च करके अपने वयोवृद्ध सम्राट की
मृत्यु का समारोह अप्रतिम आनन्द और
धूमधाम से मनाया ! वहाँ यही मान्यता है
कि मृत्यु तो आत्मा के परलोक में प्रवेश पाने
का एक स्वर्ण अवसर है और खर्च में जितनी
कंजूसी की जाएगी, उतना ही डर रहेगा कि
आत्मा दुख पाकर पृथ्वी पर ही मँडराती
रहेगी। अतः राजा की मृत्यु पर अन्त्येष्टि भी
राजसी खर्च द्वारा की जानी चाहिए। चित्र
में प्रदर्शित ७० फुट ऊँची मीनार लगभग
२० हजार की लागत से बनायी गयी थी।
एक लाख दर्शकों की उपस्थिति में राजा की
मृतक देह मीनार से निकालकर एक विशाल-
काय सांड की मूर्ति में रखी गयी। आत्मा के
प्रतीक स्वरूप एक सुसज्जित विशाल नाग मूर्ति
जिसे वहाँ नाग बन्दा कहते हैं, उस सांड के
आस-पार्श्व स्थापित करके राजा की पूर्वमृत पटरानी
तथा अनेक उपरानियों के भी अवशेष अग्नि
को समर्पित कर दिये गये। समारोह पर
कुल १ लाख १० हजार रुपये खर्च हुए थे।
मानव ने प्रकृति को ठगा है

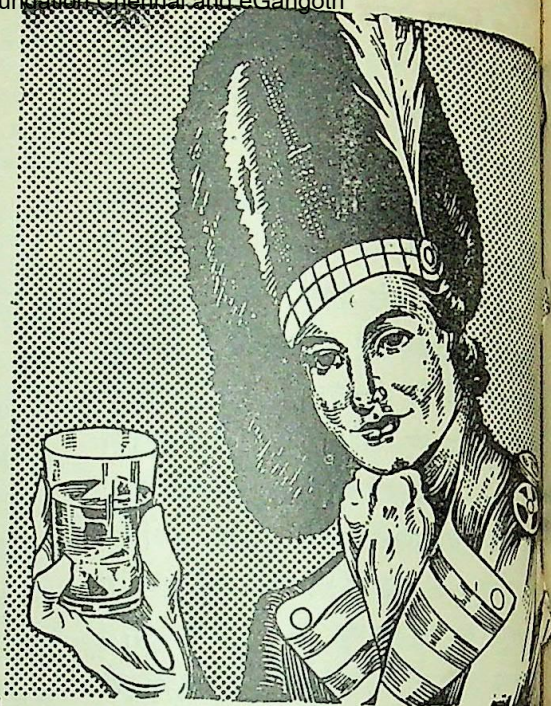
मच्छरों की भनभनाहट एक प्राकृतिक
क्रिया है। प्रकृति की प्रत्येक क्रिया की भाँति
इसमें भी यह उद्देश्य है कि मादा की भन-
भनाहट नर की अपेक्षा कुछ तीव्रतर और
सुरीली (मच्छर के लिए ही) होती है, जिसे
सुनकर नर आकर्षित होता है। एक इंजी-
नियर ने मच्छरों से छुटकारा पाने के लिए
मादा के स्वर से मिलता-जुलता स्वर अपने
वाइमों में उत्पन्न किया और उसे निकट के
एक ऐसे यंत्र से जोड़ दिया जिससे तीव्र
समूह उस यंत्र की ओर आकर्षित होते रहे
और प्रवाहित बिजली से नष्ट भी होते रहे।

मई १९६३

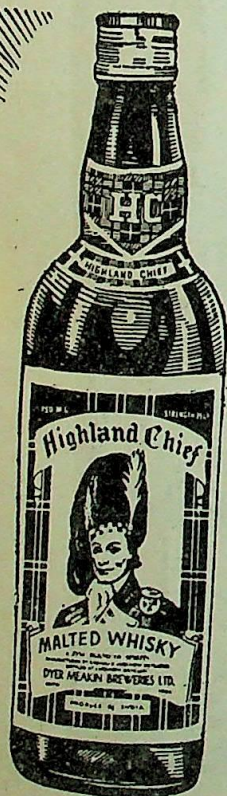


मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
याद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित
जब अतिथि आएं
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए



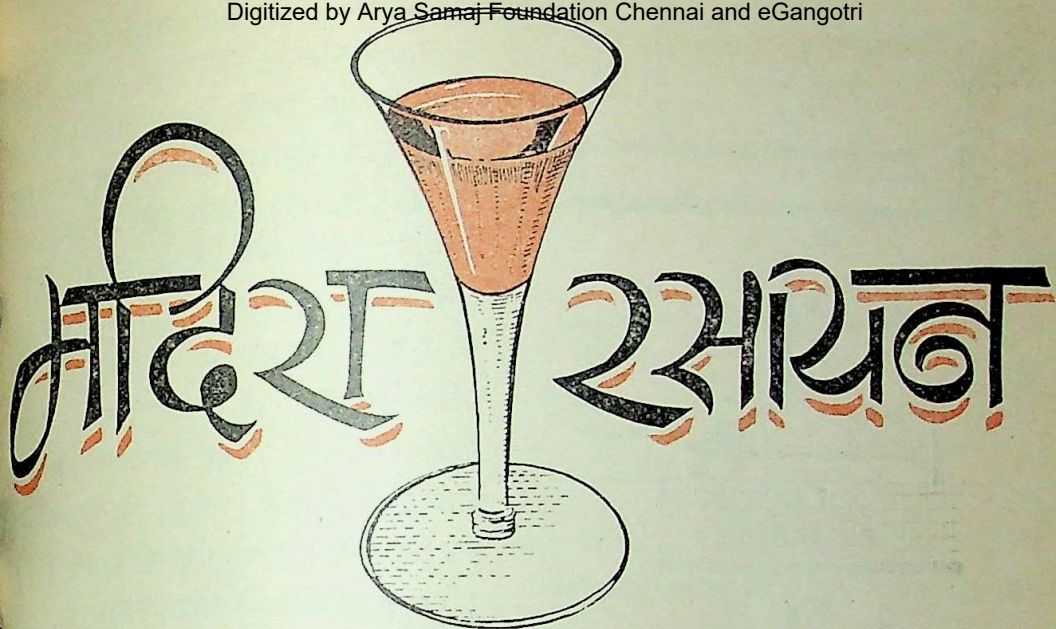
प्रस्तुत कीजिए



हाईलैंड चीफ माल्टेड हिस्की

जार्ज मीकिंग ब्रूअरीज लि० स्थापित १८८०

बोतलों में लखनऊ डिस्टिलरी एवं सोलन ब्रूअरी द्वारा भरा गया



सत्यकुमार

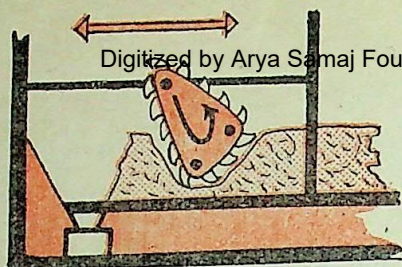
रासायनशास्त्र की दृष्टि से मदिरा के गुणों के लिए उत्तरदायी पदार्थ है—एथिल अलकोहल। इस अत्यन्त सरल संरचना वाले यौगिक के अणु में केवल २ परमाणु कार्बन के, ६ परमाणु हाइड्रोजन के व एक परमाणु ऑक्सीजन (C_2H_6O) होता है। अलकोहल तो और भी अनेक हैं किन्तु एथिल अलकोहल इतना महत्वपूर्ण है कि यदि हम साधारणतया केवल अलकोहल कहें तो उसका तात्पर्य एथिल अलकोहल ही होगा। यह एक रंगहीन द्रव है। इसमें विशिष्ट गंध और तीव्र तीखा स्वाद है। विभिन्न मदिराओं का यह आवश्यक अंग है।

मदिराएँ दो श्रेणी में बाँटी जा सकती हैं—स्रवित (distilled) और अस्रवित (undistilled)। स्रवित मदिराओं में अलकोहल की मात्रा अधिक होती है। रंग, स्वाद तथा गंध इस बात पर अधिक निर्भर करते हैं कि मदिरा किस पदार्थ से और किस विधि से बनायी गयी है तथा कितनी पुरानी है। कुछ प्रसिद्ध मदिराओं में निर्धारित अलकोहल की मात्रा इस प्रकार रहती है :

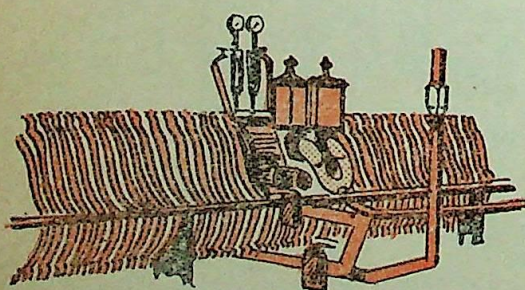
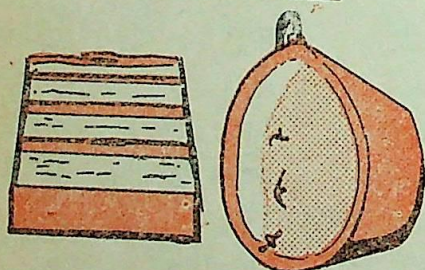
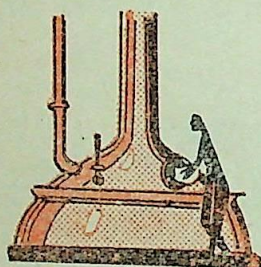
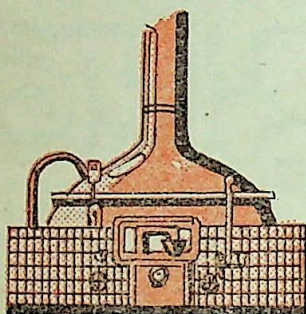
नाम	साधन	अलकोहल की प्रतिशत मात्रा
ब्राण्डी	अंगूर	४०-५०
रम	सीरा	४०-५०
व्हिस्की	माल्ट, जौ	३५-४५
जिन	मक्का, जौ	३५-४०
शैरी	अंगूर	१५-२०
	(अस्रवित)	
पोर्ट	अंगूर	१४-१८
शैम्पेन	अंगूर	८-१०
क्लैरेट	अंगूर	७-१३
बीयर	माल्ट, जौ	३-६
सिडर	सेव	२-६

उत्पादन विधि

मानव को मदिरा का ज्ञान आदिकाल से रहा है। वेदों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में सोमरस के सेवन का उल्लेख आता है। बाइबिल में भी अंगूर से शराब बनाये जाने का वर्णन है। आदिपुरुष को मदिरा बनाने का ज्ञान सहज ही हो गया था। इसमें कुछ भी तकनीकी रहस्य नहीं है। फल या फलों के



Digitized by Arya Samaj Foundation



मदिरा तैयार करने की विभिन्न अवस्थाएँ

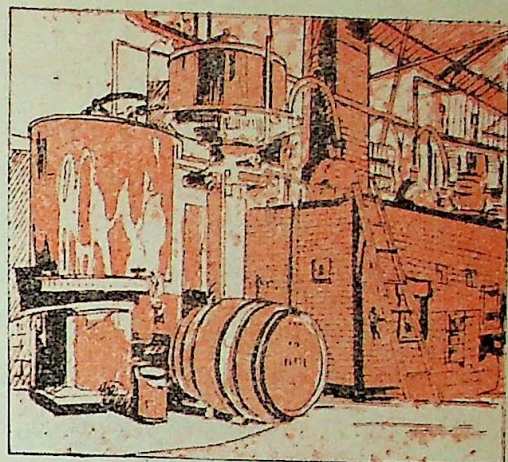
अनाज को कुटा-छोटा कर दिया जाए तो वायुमण्डल में सदा उपस्थित रहने वाले असंख्य जीवाणु (bacteria) उसके सम्पर्क में आएँगे। अति सूक्ष्म जीवाणु फलों के रस की शक्कर को अपना भोजन बनाएँगे और इस प्रकार रस विकसित होंगे तथा अपने परिवार में तेजी से वृद्धि करेंगे। इन्हीं जीवाणुओं की कोशिकाएँ शक्कर को एथिल अलकोहल में परिवर्तित करती हैं। इस परिवर्तन में कुछ ऊर्जा (energy) भी निकलती है जिसे जीवाणु ले लेते हैं। फलों के उस रखे हुए रस में, इस प्रकार धीरे-धीरे किण्वीकरण (fermentation) हो जाता है। इस परिवर्तित पेय को मनुष्य ने पसन्द किया होगा, जिससे फिर ठीक-ठीक किण्वीकरण करने की विधि निकाली गयी। प्रारम्भिक सभ्यताओं में सोमरस का पर्याप्त प्रचलन इस बात का संकेत करता है कि किण्वीकरण की विधि उस समय भी ज्ञात थी।

फलों के रस के अतिरिक्त अनाज से भी मदिरा बनायी जाती है। अनाज में मण्ड (starch) होता है जो किण्वीकृत होकर शक्कर में बदल जाता है। अनाज भी भिगोने जाने पर फूल जाता है और रखे-रखे उसमें भी किण्वीकरण प्रारम्भ हो जाता है। नमी और गरमी में अनाज के दानों का जो अंकुरण होता है वही माल्ट कहलाता है। अश्विनी दश में इससे बीयर और खट्टा करके व्हिस्की बनायी जाती है। अनाज से शराब बनाना बहुत सस्ता और सरल है इसीलिए इसका उत्पादन विश्वव्यापी हो गया है।

शक्कर का अणु तुरन्त एथिल अलकोहल व कार्बन डाइआक्साइड में विच्छेदित नहीं हो जाता। वैसे भी शक्कर का अणु पर्याप्त जटिल होता है। यह क्रिया ११ पदों में ११ विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा पूरी की जाती है।

वास्तव में सूक्ष्मतर जीवाणु से लेकर विशाल-
तम पशु तक, सबके अन्दर शक्कर का
किण्वीकरण होता रहता है। इन क्रियाओं
से प्राप्त शक्ति द्वारा समस्त जीवों का गति-
संचालन होता रहता है। अन्तर केवल इतना
है कि इस प्रकार अन्त में ११वें पद में
बनने वाला यौगिक जीवाणुओं में एथिल
अलकोहल होता है तथा पशुओं में लैक्टिक
अम्ल।

अन्य रासायनिक पदार्थ



एथिल अलकोहल के अतिरिक्त मदिरा
में अन्य रासायनिक पदार्थ भी उपस्थित
रहते हैं। यदि किण्वीकरण को रोका न
जाए तो अलकोहल का अम्लीकरण होकर
ऐसीटिक अम्ल बन सकता है। यदि मदिरा
ठीक प्रकार से नहीं बनायी जाती तो उसमें
ऐसीटिक अम्ल (सिरके) के कारण खटास
आ जाती है। ऐसी मदिरा बेस्वाद हो जाती
है, किन्तु कितनी भी सावधानी बरती
जाए, ऐसीटिक अम्ल की थोड़ी-बहुत मात्रा
मदिरा में आ ही जाती है। मदिरा में
उपस्थित अन्य पदार्थ टार्टरिक, साइट्रिक
मैलिक, सक्सिनिक व लैक्टिक अम्ल हैं।
मदिरा को स्रवित करने पर ऐसीटिक अम्ल
तो निकल जाता है किन्तु ये अन्य अम्ल
विद्यमान रहते हैं। मदिरा के किसी नमूने
में ऐसीटिक अम्ल की मात्रा इसी प्रकार
आवसन द्वारा ज्ञात की जाती है।

स्वाद की दृष्टि से टार्टरिक अम्ल की
उपस्थिति बहुत आवश्यक है। विभिन्न
प्रकार की मदिराओं में इसकी मात्रा अलग-
अलग होती है। अंगूर से बनायी जाने वाली
मदिराओं में यह पर्याप्त होता है, क्योंकि
टार्टरिक अम्ल अंगूर का एक भाग है। रखी
हुई मदिराओं में जो रवे नीचे बैठ जाते हैं,
वे टार्टरिक अम्ल के ही होते हैं। मदिरा में
कुछ मिठास भी होती है। कुछ तो शक्कर

दक्षिणी अमरीका के अर्जेंटाइना प्रदेश में अंगूरों से
मदिरा का आसवन बड़े पैमाने पर किया जाता है

ही बच रहती है और कुछ किण्वीकरण में
थोड़ा-बहुत अन्य मीठा पदार्थ ग्लायसरोल
(ग्लिसरीन) भी बनता है। अम्लीयता पर
भी मिठास निर्भर करती है। अम्ल खटास
पैदा करते हैं, क्योंकि वे स्वयं खट्टे होते
हैं। अतः यदि मदिरा की अम्लीयता अधिक
है तो मिठास कम होगी।

मदिरा में एथिल अलकोहल की १५
प्रतिशत से अधिक मात्रा होने से किण्वीकरण
स्वयं रुक जाता है। जीवाणु इस सान्द्रता में
जीवित नहीं रह सकते। आपने देखा होगा
कि जब डाक्टर इंजेक्शन लगाता है तो पहले
रुई में अलकोहल लगाकर उस स्थान को
पोछ लेता है जिससे इंजेक्शन की सुई के
साथ शरीर के ऊपर के उस स्थान के
कीटाणु शरीर के भीतर न पहुँच जाएँ।
अलकोहल कीटाणुनाशक होता है। इसीलिए
मदिराओं को बहुत दिनों तक रखा जा
सकता है। उन पर जीवाणुओं का प्रभाव भी
नहीं होता। दूसरी बात यह है कि मदिरा में
थोड़ा टैनिन भी आ जाता है। यह पदार्थ
मदिरा को दीर्घ आयु प्रदान करता है।

बढ़िया और घटिया की पहचान

रासायनशास्त्र के दृष्टिकोण से बढ़िया

से बढ़िया विदेशी शराब और घटिया से प्रयोग मोटे पैमाने के लिए किया जाता है। ईंधन के तौर पर इसका प्रयोग स्पिरिट लैम्प में होता है। रंग, वानिश् आदि के अतिरिक्त पारदर्शी साबुन, शैम्पू, टिक्चर व अनेक औषधियों में अलकोहल का उपयोग होता है। ईथर, क्लोरोफार्म, आइडोफार्म, ऐसीटिक अम्ल तथा कृत्रिम सुगन्ध के लिए एथिल एस्टर इसी से बनते हैं। शीतकाल में मोटर के इंजनों में पानी जम न जाए इसके लिए उसमें अलकोहल मिला लिया जाता है।

हमारे देश में सबसे अधिक अलकोहल उत्तर प्रदेश में बनता है—लगभग १ करोड़ गैलन प्रति वर्ष ! भारत में विभिन्न प्रकार की शराबों के सबसे बड़े निर्माता मेसर्स डायर मीकिन ब्रूएरीज लिमिटेड हैं।

अलकोहल के परिमाणन की रासायनिक विधि को अलकोहलमिति कहते हैं। अलकोहलीय पेयों व विभिन्न औषधियों में अलकोहल के परिमाणन की आवश्यकता होती है। हाइड्रोमीटर द्वारा मिश्रण का आपेक्षिक घनत्व निकाल लेना परिमाणन की सरल विधि है। फिर तालिकाओं में मिलाकर अलकोहल के वास्तविक प्रतिशत की गणना कर लेते हैं। अन्य विधियों में समय अधिक लगता है।

प्राचीनकाल में शराब को बारूद पर गिराकर तथा आग लगाकर अलकोहल की मात्रा मालूम की जाती थी। यदि शराब में जल अधिक होगा तो गीला हो जाने के कारण बारूद नहीं जलेगी। न्यूनतम सांद्रता का वह अलकोहल जिसकी उपस्थिति बारूद में आग लग जाए प्रामाणिक स्पिरिट कहलाता था।

अलकोहल का औद्योगिक स्वरूप भी है। जनता उसका दुरुपयोग न करे इस हेतु उसमें विषैले व दुर्गन्धयुक्त पदार्थ मेथिल अलकोहल, पिरीडीन इत्यादि मिला दिये जाते हैं। उसे स्पिरिट अथवा विकृत अलकोहल कहते हैं। आपने यह सुना भी होगा कि अनेक लोग मदिरा के अभाव में स्पिरिट पी लेते हैं। स्पिरिट नशा अवश्य करती है परन्तु उसका प्रभाव विषैला है। उसे तो बनाया ही अपेय है। पेट्रोल और बेंजीन के साथ मिलाकर अलकोहल का



**विज्ञान
कल्याण**



छुट्टियों के समय को विज्ञान की रचना-
त्मक प्रवृत्तियों में लगाने की तुम में जो
स्पर्धा जागृत हुई है, यह अति शुभ संकेत है
और तुम्हारी विविध उपलब्धियों के समा-
चारों की मुझ में आकुल प्रतीक्षा जगा
गयी है।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्यारे बच्चों !

छुट्टियों के इस आगमन ने तुम्हारे
अनेक सदस्य-मित्रों में यह जिज्ञासा तथा
चेष्टा जगायी है कि विज्ञान विषयक कुछ न
कुछ नया इन दिनों कर लिया जाए। ३-४
पत्र तो उल्लेखनीय होने के साथ-साथ अभि-
नन्दनीय भी हैं। इलाहाबाद से सुबोधशंकर
ने लिखा है कि 'करो और देखो' में दी गयी
विधि के अनुसार इनके बनाये हुए बैरोमीटर
ने सभी को प्रभावित किया है और काफी
हद तक वायुमण्डल की भविष्यवाणी
सत्य सिद्ध होती है। ऐसे अन्य अनेक
प्रयास विज्ञान-लोक की लोकप्रियता एवं
'करो और देखो' की सार्थकता के सबल
प्रमाण हैं।

भागलपुर से अशोककुमार तथा मदन-
गंज (किशनगढ़-राजस्थान) से कन्हैयालाल
ने पूछा है कि वे अपने विज्ञानप्रिय मित्रों
के संगठन और प्रयोगशाला आदि के
साधनों से सम्पन्न हैं; अतः छुट्टियों में क्या
कार्य किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर इस
एक प्रश्न से ही दिया जा सकता है कि
विज्ञान-लोक में अब तक के प्रकाशित 'करो
और देखो' के संग्रह से क्या बनाना तुम्हारे
लिए सहज और सम्भव है? जो कुछ
भी प्रस्तुत कर दोगे, वही मेरे लिए प्रसन्नता
का साधन बन जाएगा।

मई १९६३

प्रतियोगिता संख्या ३८ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

अरुण कुमार (१७) कानपुर, विजय (२८०)
आगरा, चांद स्वरूप (५३८) आगरा, श्रवण कुमार
(१३००) दिल्ली, गजेन्द्र सिंह (१६०५) मेरठ,
गोपाल माधव (२३७६) मेरठ, प्रकाश जोशी
(६११३) अजमेर।

द्वितीय पुरस्कार

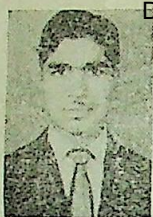
गिरीश चन्द्र (११५७) आगरा, आनन्द नारा-
यण (२५२७) लखनऊ, रणजीत सिंह (४७२४)
नई दिल्ली, नरेन्द्र (७८२८) आगरा, मंजु (८१७६)
इलाहाबाद, हरीशचन्द्र (६६७०) सहारनपुर, मुन्ना
लाल (६६७५) खैरागढ़।

तृतीय पुरस्कार

विजय रस्तोगी (१००८) भाँसी, सुधीर कुमार
(१६१६) आगरा, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ,
ब्रजेश्वर प्रसाद (३६७२) ललितपुर, प्रभात कुमार
(४५३०) जमशेदपुर, मंधाराम एम. हरवानी (५२५७)
जोधपुर, जागेश्वर प्रसाद (५३३६) ललितपुर,
कौशल किशोर (६५७३) नेतरहाट, धर्मीचन्द
गंगवाल (७२५३) अजमेर, कुलदीप सिंह (७८०७)
चन्दौसी, मोहिनी शहानी (७८२७) रांची, शोभा-
राम मढेवार (८०४८) तुमसर, माया देवी (८६०४)
कानपुर, शोभा बंसल (६३४३) बाँदा, ओमप्रकाश
(६५१५) मेरठ।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४०

नाम
सदस्य संख्या शहर



हरवंशलाल
(स. सं. २६६६)



शंकर
(स. सं. २७५०)



वीरेन्द्र
(स. सं. २७६७)



रामसिंह
(स. सं. ४४१३)



पन्नाराम
(स. सं. ४६५४)

६०८० लक्ष्मी शर्मा (१८) आगरा, ८१ जयप्रकाश (१७) शिकोहाबाद, ८२ दीनदयाल (१०) चूरू, ८३ कुमारी निर्मला (१४) हरदोई, ८४ निरेन्द्रसिंह (१६) राजनन्दगाँव, ८५ सुरजीत (११) कानपुर, ८६ वेणुधर (१७) छिचोर उमरिया, ८७ अमरजीत ६) कानपुर, ८८ आनन्द मोहन (१६) लखी सराय, ८९ मंगल (१३) वाराणसी, ९० विजय शंकर (१४) उसरी खुर्द, ९१ नरेश कुमार (१२) पलामू, ९२ कुमारी गंगाबाई (१६) छिन्दवाड़ा, ९३ लक्ष्मी नारायण (१६) गया, ९४ जवाहरलाल (१८) शाजापुर, ९५ योगेशचन्द्र (१७) पटना, ९६ श्याम सुन्दर (१४) बीकानेर, ९७ दिनेश चन्द्र (१३) व्यावर, ९८ शिवचरण लाल (१४) जमशेदपुर, ९९ कृष्ण कुमार (१७) पिपरिया, ६१०० रवीन्द्र तिवारी (१२) नैनीताल, १ उमाकान्त (१२) पिपरिया, २ राजेन्द्र तिवारी (१५) नैनीताल, ३ रामप्रकाश (१५) अलीगढ़, ४ माणिक राव (१५) आमला, ५ खुशालचन्द्र (१७) पिपरिया, ६ राजकिशोर (१२) सहरसा, ७ सूर्यप्रकाश (१५) इलाहाबाद, ८ कृष्ण मुरारी (१३) हसनपुरा, ९ एम. वेंकट राव (१५) आदरा, १० शरद चन्द्र (१५) देवलाही, ११ विश्वामित्र (१६) सक्ती, १२ विजय कुमार (१४) बेलहा, १३ प्रकाशविष्णु (१३) अजमेर, १४ आत्माराम (१५) बडम बाजार १५ चारलेस नाग (१४) एग्रीको, १६ महेशचन्द्र (१७) बुलन्दशहर, १७ प्रकाश जोशी (१३) अजमेर, १८ सुरेन्द्रसिंह (१५) मेरठ, १९ त्रिलोचनसिंह (१६) मुराद नगर, २० भगवती प्रसाद (१२) अजमेर, २१ वी. रामन (१६) कदमा, २२ विनोद कुमार (१४) मुराद नगर, २३ देवेन्द्र प्रताप (१३) कदमा, २४ शंकर प्रसाद (१२) कदमा, २५ सम्पथ कुमार (१३) कदमा, २६ स्वतन्त्र कुमार (१४) हरीपुरा, २७ रमेशचन्द्र (१६) देहरादून, २८ सन्तोष कुमार (१८) इटारसी, २९ प्रदीप कुमार (१२) कटिहार, ३० विजय शंकर (१४) गोण्डा, ३१ सी. विद्या सागर (१३) वाराणसी, ३२ विजयकुमार (१६) शाजापुर, ३३ अविनाश चन्द्र (११) वाराणसी, ३४ अरविन्द कुमार (१५) नीमचकैट, ३५ जवाहर कृष्ण (१४) कानपुर, ३६ वीरेन्द्र प्रसाद (१५) छपरा, ३७ भगवान दास (१५) लखनऊ, ३८ अरविन्द कुमार (१०) मद्रास, ३९ कु. प्रेमलता (१३) सुलतानपुर, ४० आनन्दीलाल (१५) हरदा, ४१ प्रमोद कुमार (१७) बिलारी, ४२ नवलकिशोर (१३) इटावा, ४३ देवेन्द्रकुमार (१६) मेरठ, ४४ सत्यपाल (१६) कानपुर, ४५ रमणीरमण (१३) पटना, ४६ राजेन्द्रनाथ (१८) फ्रीलैण्ड गंज, ४७ कृष्ण चन्द्र (१६) गोरखपुर, ४८ कु. मधुवाला (१४) इटारसी, ४९ रामजीदास (११) रतलाम, ५० तिलकराज (१६) इलाहाबाद, ५१ दिनेश कुमार (१३) बरिगवाँ, ५२ वीरेन्द्र सिंह (१२) इटारसी, ५३ चन्द्रभानु कुमार (१२) पटना, ५४ पुष्पकुमार (१५) बालोद, ५५ नरेशचन्द्र (१६) मोदीनगर, ५६ गणेश (१३) उज्जैन, ५७ कुमारी सिम्में (१४) इटारसी, ५८ राजेन्द्र प्रसाद (१३) मीरजापुर, ५९ रुमेन्द्र सिंह (१६) इटारसी, ६० अरुण कुमार (१५) उज्जैन, ६१ जसवन्त सिंह (१६) राजनन्दगाँव, ६२ सुभाषचन्द्र (१०) डीडवाना, ६३ कु. अहिंसा शर्मा (१३) महीलपुर, ६४ सीताराम (१५) राँची, ६५ परेशकुमार (१५) राँची, ६६ जगदीश (१४) पिछोर, ६७ हसमुख (१३) राँची, ६८ चन्द्र कुमार (१७) शिकोहाबाद,



देवकरान
(स. सं. ५०००)



जागेद्वरप्रसाद
(स. सं. ५३००)



कृष्णदेव
(स. सं. ५८००)



शिवशंकर
(स. सं. ५८००)



धर्मेंद्र
(स. सं. ५६६०)



देवकृष्ण

सं. ५०४



गोविन्दप्रसाद

सं. ५३०४



कृष्णदेव

सं. ५००५



देवशंकर

सं. ५००५



धर्मचन्द्र

सं. ५६६०

वैजान्तिक



निर्मलकुमार

(सं. सं. ६२५८)



बोखेला

(सं. सं. ६४२२)



पौरमुहम्मद

(सं. सं. ६४३४)



सतीश

(सं. सं. ६६३६)

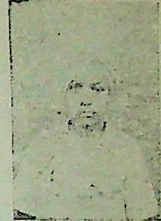


राजेन्द्रकुमार

(सं. सं. ६६७१)

मई १९६३

६६ हरिनन्दन प्रसाद (१६) मुरैना, ७२ उमाकान्त (१३) रायपुर, ७१ प्रेम नारायण (१६) मुर्ना, ७२ उमाकान्त (१३) रायपुर, ७३ राजीव (१२) अम्बाला, ७४ सुरेश कुमार (१४) इटारसी, ७५ कुमारी शशिबाला (१२) इलाहाबाद, ७६ गोविन्द नारायण (१२) अलीगढ़, ७७ उमाशंकर प्रसाद (१५) सिलीगुड़ी, ७८ हरीशचन्द्र (१५) राँची, ७९ चरणजीत लाल (१८) बम्बई, ८० सुरेन्द्र सिंह (१३) जबलपुर, ८१ हेमन्तकुमार (६) इन्दौर, ८२ सुभाषचन्द्र (१६) देहरादून, ८३ रमेशचन्द्र (१२) कटिहार, ८४ सुशील कुमार (१२) आदरा, ८५ रामकुमार (१०) संडउर, ८६ दलजीतसिंह (१४) नई दिल्ली, ८७ दिलीपकुमार (१४) मुरादनगर, ८८ शिवकरण (१६) हजारीबाग, ८९ अतुलकृष्ण (१५) बस्ती, ९० तुलसीराम (१७) बस्ती, ९१ कुलदीप सिंह (१४) रोहतक, ९२ अशोक कुमार (१६) आगरा, ९३ मोतीलाल (२०) पहाड़गढ़, ९४ पद्म मंगल (१२) वाराणसी, ९५ जीवनलाल (१६) आगरा, ९६ उपेन्द्रकुमार (१२) पटना, ९७ रवीन्द्र प्रसाद (१४) लुधियाना, ९८ लादुराम (१४) छोटी खाद, ९९ शम्भू भाई (१६) मालपरा, १०० कुमारी सुमन (१३) शाहजहाँपुर, १ परमानन्द (१५) पुतई, २ फतेराम ठाकरसी भाई (१६) भाभर, ३ वनवारीलाल (१६) मथुरा, ४ अशोक कुमार (१३) कानपुर, ५ जगदीश प्रसाद (१६) टिहरी, ६ सतीश चन्द्र (१४) सीहोर, ७ अनिल कुमार (१२) गोरखपुर, ८ सतीशचन्द्र (१२) वाराणसी, ९ आनन्द प्रसाद (१५) जमशेदपुर, १० ओमप्रकाश (१३) अलीगढ़, ११ कमल (१५) जयपुर, १२ रमेशचन्द्र (१६) श्रीगंगानगर, १३ भगवान दास (१६) हरद्वार, १४ नरेन्द्रकुमार (१५) सहारनपुर, १५ श्यामसुन्दर (१४) कटरासगढ़, १६ त्रिलोकचन्द्र (१३) जयपुर, १७ लालमोहन दास (१४) मुरादनगर, १८ सुधीर कुमार (९) आरा, २९ कु. तेज कौर (१४) जमशेदपुर, २० प्रेमकृष्ण (१३) वाराणसी, २१ देवेन्द्र नारायण (१६) एटा, २२ भागीरथ (१४) हातोद, २३ रघुवर नारायण (१३) मनीगाछी, २४ रामनारायण (१६) सहरसा, २५ परशुराम (१६) डिब्रूगढ़, २६ रवीन्द्र प्रसाद (१४) गिरिडीह, २७ कृष्ण मुरारी (१३) कानपुर, २८ जीतेन्द्र (१४) डालटन गंज, २९ राजेश्वर प्रसाद (१३) गया, ३० दीनदयाल (२२) सीकर, ३१ परमानन्द (१५) रायगढ़, ३२ कमलकिशोर (१६) चाईबासा, ३३ मोतीलाल (१७) चाईबासा, ३४ भूपेन्द्रनाथ (१३) डीग, ३५ रमाशंकर (२०) कुर्की बाजार, ३६ कु. शोभा (१३) रामपुर, ३७ नन्दकिशोर (१८) मुजफ्फरपुर, ३८ राधेशकुमार (१४) पचरूखी, ३९ मदन प्रसाद (१४) सिपाया फार्म, ४० श्रीमन् नारायण (१५) मुजफ्फरपुर, ४१ हरीशकुमार (१६) भीखनपुर, ४२ वीरेन्द्रकुमार (१७) वासदेवपुर, ४३ श्रवण कुमार (१३) ग्वालियर, ४४ अवधेश नारायण (१३) वाराणसी, ४५ खुशाल चन्द (१५) रायपुर, ४६ प्रकाश चन्द्र (१४) मन्दसौर, ४७ शिवयत्न प्रसाद (१७) महेन्द्र, ४८ राजकुमार (१६) महेन्द्र, ४९ के. श्रीनिवास (१४) आदरा, ५० बलदेवराव (१८) जगदलपुर, ५१ रजनीकान्त (१५) शारदाग्राम, ५२ अशोककुमार (१२) मेनपुरी, ५३ देवाशीष (१५) वाराणसी, ५४ कु. आशिमा (१४) जबलपुर, ५५ कु. अनिमा (१७) जबलपुर, ५६ गोपीचन्द्र (१५) कटनी, ५७ अनुपम राय (१४) लखनऊ ।



प्रकाशसिंह

(सं. सं. ६७४४)



किशोरलाल

(सं. सं. ६७५५)



शिवयत्नकुमार

(सं. सं. ६७६६)



विजयकुमार

(सं. सं. ६६४८)



अनवारखालम

(सं. सं. ६६८४)



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुरस्कार
२० रु. की पुरस्कार
१५ रु. की पुरस्कार

अन्तिम तिथि : ३१ मई

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

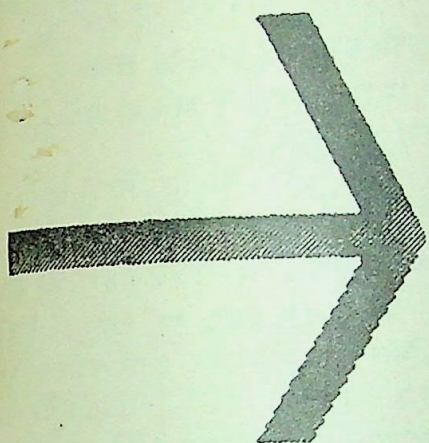
लिफाफे पर "विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४० का उत्तर" लिखना आवश्यक है। ३१ मई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४० के प्रश्न

- वायरलेस संवाद-प्रेषण में सन् १९०१ में किसे श्रेय दिया गया है ?
- Pb_3O_4 का रासायनिक और व्यावसायिक नाम क्या है ? यह किस उपयोग में आता है ?
- एक गेंद टेनिस की और एक इस्पात की यदि भूमि पर फेंकी जाए तो उछाल और वेग किसका अधिक होगा ? सकारण उत्तर दीजिए।
- हिम-अन्धता (snow blindness) क्या है, किस कारण हो जाती है ?
- २११-३ फुट लम्बे और आकर्षक चटकीले लाल, पीले तथा नीले रंग के तोते कहाँ पाये जाते हैं ? उन्हें क्या कहते हैं ?
- बृहस्पति की परिक्रमा करने वाले किसे श्रेय दिया गया है ?
- उपग्रह सर्वप्रथम ज्ञात किये गये थे ? उनके नाम बताइए।
- 'प्लाज्मा-पिच' क्या है ? इसकी व्याख्या कीजिए।
- रायल सोसाइटी ऑफ लन्दन किस क्षेत्र में, किन दो प्रमुख वैज्ञानिकों के सहयोग से स्थापित की गयी थी ?
- विश्व का विशालतम बाँध किस नाम से जाना जाता है ?
- विश्व का विशालतम बाँध किस स्थल पर बनाया जा रहा है ?

प्रतियोगिता संख्या ३८ के प्रश्नों के उत्तर

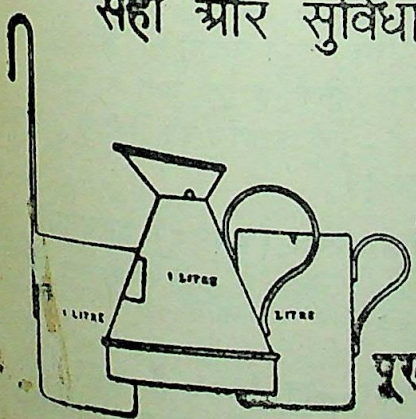
- दक्षिण अमरीका में एकनकागवा (Acon-cagua); ऊँचाई लगभग ७००० मीटर।
- ओटमार मर्गन्थालेर ने, १८८५ में।
- हाइड्रोपानिक्स।
- ट्यूरिन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर आवोगाड्रो ने।
- मगरमच्छ अपने अण्डे रेत में गाड़ देते हैं जिन्हें सूर्य के ताप से तप्त रेत सेकर तैयार कर देती है।
- शुतुरमुर्ग तेज दौड़ेगा। इसका वेग लगभग ६० मी. प्र. घ. तथा घोड़े का ३८ तक है।
- वह मौन है जो नाम लेने अर्थात् केवल बोलने मात्र से टूट जाता है।
- द्रवित की हुई वायु (liquefied air) दुबोने से ताजे फूल की पत्तियाँ शीघ्र जंसी सख्त हो जाएंगी जो हथौड़े की चोट से चूर-चूर हो जाएंगी।
- लगभग सन् १००० में लिफे एरिक्स नाम के एक व्यक्ति ने अमरीका के नार्थ से चलकर उत्तरी अमरीका तक पहुँचा जिसका नाम उन दिनों विनलैण्ड था। तत्पश्चात् अन्य लोगों द्वारा उसका अनुसरण न किया जाने लगा।
- फ्रेंच इंजीनियर फर्डिनेण्ड-डी-लेसेप्स ने १८६९ में सुइज कैनल का निर्माण पूरा किया। उद्घाटन १७ नवम्बर, १८६९ को किया गया।



अब लिटर अनिवार्य

देश भर के व्यापार में अब तरल पदार्थ मापने के मेट्रिक पैमानों का प्रयोग अनिवार्य हो गया है • किलोग्राम और मीटर पिछले वर्ष से ही अनिवार्य हो गए हैं, इस प्रकार अब माप-तौल की मेट्रिक प्रणाली ही भारत में एक मात्र कानूनी प्रणाली है • मेट्रिक प्रणाली की सरलता का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए इसकी इकाइयों (लिटर, मीटर और किलो) को उनके आन्तरिक मूल्य के अनुसार ज्यों का त्यों इस्तेमाल कीजिए • मेट्रिक पैमानों की पुराने माप-तौल जैसे सेर वगैरह से तुलना न कीजिए ।

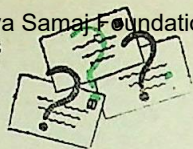
सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए



मेट्रिक इकाइयों का पूर्ण अंकों में प्रयोग कीजिए

DA 62/519

आपके प्रश्न



किशोरकुमार अग्रवाल (२०४) पटना

प्रश्न—स्टोव जलने के बाद उसमें से कौन-सी गैस निकलती है जो जरा-सी भी लौ से प्रज्वलित हो उठती है ?

उत्तर—अत्यन्त तप्त किरासन गैस ।

श्यामसुन्दर तुलस्यान (६१६२) सहरसा

प्रश्न—सूर्य की ओर देखने से प्रायः छींक क्यों आ जाती है ?

उत्तर—नाक के अन्दर की श्लेष्म झिल्ली में असंख्य संवेदी तंत्रिकाएँ हैं जो अनेक कारणों से सहज ही उत्तेजित हो उठती हैं। सुंघनी सूँघते समय अथवा बाहरी किसी वस्तु के प्रवेश करने पर तथा तीव्र प्रकाश पड़ने पर भी वे तंत्रिकाएँ उत्तेजित हो उठती हैं। परागज-ज्वर (hay fever) में तो छींकने की शृंखला ही बँध जाती है।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२६१) ग्वालियर

प्रश्न—सुना है काठ चीरने वाली आरियों के भी दूटे दाँतों की जगह नकली दाँत लगाये जा सकते हैं ?

उत्तर—ठीक ही सुना है। वे दाँत नकली ही क्यों, असली, नये ही लगाये जाते हैं। नयी गोलाकार आरियों में दाँत टूटने के कारण उपस्थित होने वाली कठिनाइयों के हल स्वरूप उनके दाँतों का पूरा चौकठा उस गोल थाली की किनारी पर पेच द्वारा जड़ित रहता है। जहाँ कोई दाँत टूटा, दूसरा नया दाँत नये पेच द्वारा बिठा दिया जाता है।

पन्नालाल (६४२७) आरा

प्रश्न—लालटेन में तेल इतना कम है कि बत्ती तक नहीं पहुँचता और घर में तेल भी नहीं है। काम कैसे चलाया जाए ?

उत्तर—पहले तेल को अलग बर्तन में निकाल लीजिए। बाद में लालटेन में पहले पानी भरिए तब ऊपर से किरासन डाल दीजिए। किरासन हलका होने से पानी पर तैरता रहेगा और बत्ती में चढ़ता भी रहेगा।

चन्द्रकुमार जैन (५३८८) वाराणसी

प्रश्न—सवाक् चलचित्र में ध्वनि किस प्रकार भरी जाती है ?

उत्तर—विज्ञान-लोक, नवम्बर १९६१ के पृष्ठ ६ पर विस्तृत विधि प्रकाशित है।

विनोदकुमार (७२६२) सागर

प्रश्न—मकड़ी के जाले का तार पारदर्शी होता है या अपारदर्शी ?

उत्तर—जाले का तार मकड़ी अपनी लार से बनाती है, अतः पारदर्शी होने का प्रश्न ही नहीं।

लालताप्रसाद श्रीवास्तव (६१२४) नागदा

प्रश्न—इस शहर का ताप 55°C है और थर्मामीटर से नापने पर हमारे शरीर का ताप 37.5°C आता है। 55°C — 55°C ताप पर तो पानी उबलना प्रारम्भ हो जाता है, तो हमारे शरीर का जल-भाग भी क्यों नहीं उबलता ?

उत्तर—अवश्य उबलेगा, यदि ताप सचमुचे 55°C तक पहुँच सका तो ! वास्तविकता यह है कि ये सारे ताप आपके लिखे अनुसार सेंटीग्रेड न होकर फारेनहाइट हैं जो 35° — 40°C के लगभग होते हैं।

परमानन्द पटेल (५६६) सक्ती

प्रश्न—राकेट को चन्द्रमा तक जाने के लिए पृथ्वी के आकर्षण बल से छूटना पड़ता है। इसके सिद्ध होता है कि पृथ्वी का आकर्षण बल चन्द्रमा तक नहीं है। फिर क्यों चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है ?

उत्तर—स्वयं चन्द्रमा का आकर्षण बल कहा जाएगा जिसके कारण पृथ्वी के सागरों में ज्वार आते हैं ? यही आकर्षण उसे पृथ्वी के गिर्द परिक्रमा कराता है।

जितेन्द्र रावल (६२२८) डाल्टनगंज

प्रश्न—संसार में सबसे लम्बा पुल कौन-सा है कहाँ है ?

उत्तर—सन् १९३६ में तैयार किया गया अमरीका का सानफ्रान्सिसको पुल सबसे लम्बा है। सानफ्रान्सिसको और ओकलैण्ड को जोड़ने वाला यह पुल बीच की खाड़ी को पार करता हुआ ८१ मील लम्बा है। इस पर लगभग ४० करोड़ रुपया खर्च हुआ था।

रमेशकुमार (६३६६) पेण्ड्रा रोड

प्रश्न—काठ की हांडी तो आग पर नहीं चढ़ सकती, कागज की चढ़ सकती है क्या ?

एक मजबूत कागज की ट्रे बना लीजिए जिसमें लटकाने के लिए हैन्डिलनुमा फीता भी बस लीजिए। उसमें पानी भर लीजिए और मद्धिम आग (लौ ऊपर न उठनी चाहिए) पर अवरलटकाये रहिए। ताप के विकिरण-सिद्धान्त के अनुसार अन्दर का पानी बाहर के कागज को जलने न देगा और स्वयं तो तप्त होते-होते उबलने भी तगेगा।

अरुणकुमार (३६८८) कलकत्ता

प्रश्न—बच्चों की शिक्षण-प्रणाली, किण्डरगार्टन (Kindergarten) का आविष्कार किसने, किस श्रेय से किया ?

उत्तर—इसका श्रेय जर्मनी के फ्रेड्रिक फ्रीबेल (Fredrick Froebel, 1782-1852) को है। उसका मत था कि नन्हें बच्चे नवांकुरित पौधे के समान होते हैं जिन्हें एक बागवान की कुशलता ही सँवार सकती है। अतः खेल-खेल में सिखा देने की अपनी प्रणाली को उसने किण्डरगार्टन अर्थात् बच्चों की फुलवारी का नाम दिया था।

प्रविनाश माधव (३१०३) पूना

प्रश्न—कहते हैं, किसी विस्फोट के धसाके से इमारतों को दोहरी हानि होती है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—विस्फोट के प्रथम चरण में प्रबल वायु-तरंगों के वेग से इमारतें कुछ गिर जाती हैं, कुछ हिल उठती हैं। उस विस्फोट के स्थल पर उत्पन्न निर्वात क्षेत्र को भरने के लिए उसी वेग से वायु पुनः दौड़ती है और बाकी कसर पूरी कर देती है।

परशुरामसिंह (७५६५) धनबाद

प्रश्न—रेडियो वायु-तरंगों से ध्वनि ग्रहण करता है तो हमारी भी ध्वनियाँ जो वायुमण्डल में व्याप्त रहती हैं, क्यों नहीं ग्रहण कर लेता ?

उत्तर—सामान्य तरंगों रेडियो कदापि ग्रहण न कर सकेगा अन्यथा वायुमण्डल के शोरगुल में कुछ भी फल्ले नहीं पड़ेगा। रेडियो में ध्वनि के संग्रहण तथा प्रसारण के लिए ध्वनि-तरंगों का विद्युतावेशित होना अनिवार्य है और हमारी सामान्य ध्वनियाँ विद्युतावेशित नहीं होतीं।

प्रश्न—डाक-व्यवस्था पोस्टकार्ड, लिफाफों के रूप में सर्वप्रथम किसने और कब प्रारम्भ की ?

उत्तर—१८वीं शताब्दी में प्रचलित ब्रिटेन की पेनी-पोस्ट प्रथा के संशोधन के रूप में रोलैण्ड हिल ने ६ मई, १८४० को प्रथम पोस्टकार्ड जारी किया था।

निर्मलकुमार (७६२२) बदवासी

प्रश्न—जीव-विज्ञान का अध्ययन मेंढक से ही क्यों प्रारम्भ कराते हैं ?

उत्तर—इसकी शरीर-रचना मानव शरीर से काफी मिलती-जुलती है तथा मेंढक ही अत्यधिक सरलता तथा बहुलता से प्राप्त किये जा सकते हैं।

त्रिलोकीप्रसाद (७४५६) चूरू

प्रश्न—एक ही पौधे में भिन्न-भिन्न फूल लगाना तो विज्ञान ने सम्भव कर दिया है किन्तु एक ही बीज से भिन्न-भिन्न पौधे क्यों नहीं उगा सकते ?

उत्तर—एक ही पौधे पर भिन्न-भिन्न फूल लगाना तो कलम आदि अनेक बागवानी क्रियाओं द्वारा सम्भव है किन्तु एक बीज स्वयं में ही परिपूर्ण है। अतः उसमें विभिन्नता सम्भव नहीं।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—मोनल (Monel) धातु क्या है एवं उसके उपयोग क्या हैं ?

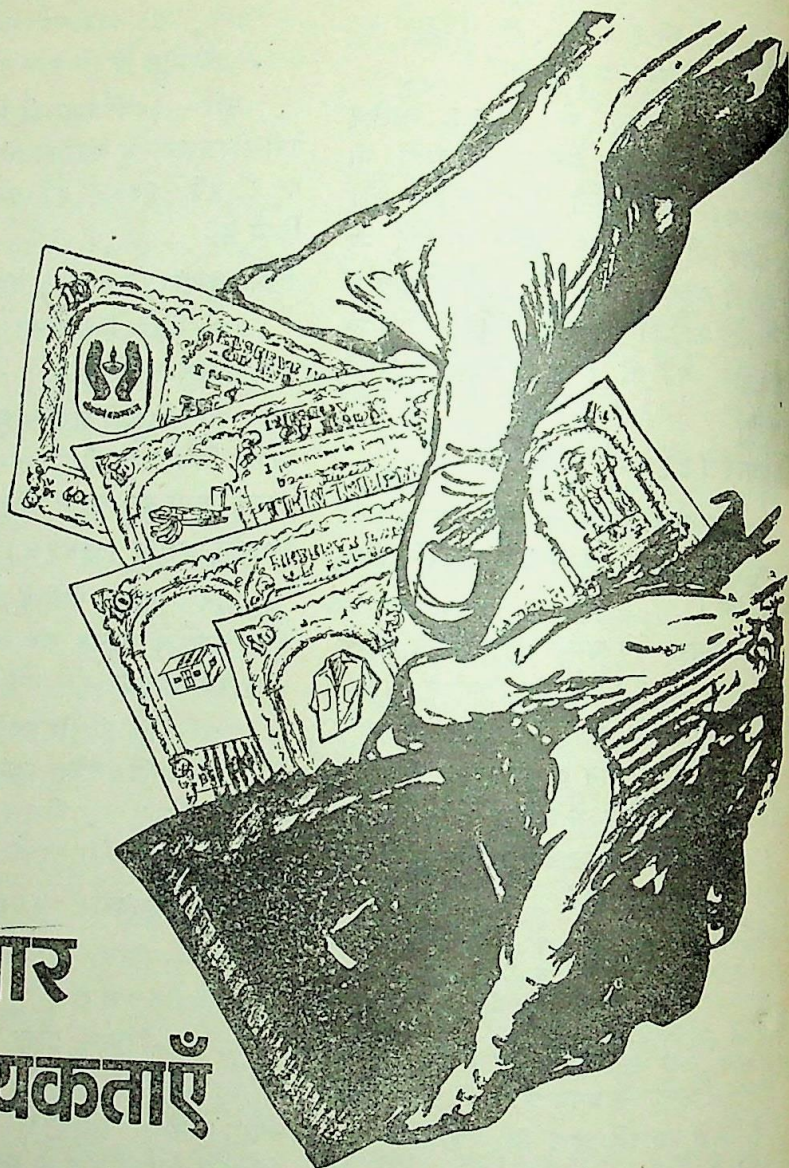
उत्तर—निकिल, ताँबा, मैंगनीज तथा लोहा-मिश्रित यह संकर धातु है। इस पर जंग कभी नहीं लगता। फैंसी स्नानघरों के विभिन्न उपकरण (fittings) इसी धातु के बनाये जाते हैं।

कृष्णकुमार शर्मा (८६६०) चौमू

प्रश्न—यदि छोटे बच्चे को जन्म से ही कड़वी वस्तुएँ खाने को दी जाएँ तो क्या बाद में उसे कड़वी वस्तु मीठी और मीठी वस्तु कड़वी लगने लगेगी ?

उत्तर—स्वाद का यह अन्तर तो नहीं पड़ेगा; हाँ, कड़वी वस्तु के प्रति उसे अरुचि न रहेगी।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।



चार आवश्यकताएँ

भोजन, वस्त्र और घर ये जीवन की सब से ज़रूरी तीन चीज़ें हैं। —और उतनी ही महत्त्व की चीज़ है जीवन बीमा। घर के कर्ताधर्ता के चले जाने पर, जीवन बीमा, उसके आश्रितों को भोजन, वस्त्र और घर का आश्वासन देता है। अतः आप उन्हें भाग्य पर न छोड़िए। अपने घरेलू खर्च में जीवन बीमे को प्रथम स्थान दीजिए। याद रखिए, बीमा कराने से टालमटोल करना अपने लाइलों की उपेक्षा करना है।

आज ही बीमा एजेंट से मिलिए।



जीवन बीमा

सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

ASP/LIC. 98 HIN

स्पीडोमीटर

विज्ञान मन्दिर, कानपुर

स्पीडोमीटर अर्थात् चाल-मापी आज प्रत्येक वाहन के लिए अनिवार्य है। कार तथा बस आदि में ड्राइवर के सामने वाले बोर्ड पर कितने ही घड़ियों जैसे डायल लगे रहते हैं। उन्हीं में एक वह भी होता है जिसकी सुई ० से ८०-१००-१२० तक घूमती है। ज्यों-ज्यों गाड़ी तेज दौड़ेगी, वह सुई भी बढ़े-चढ़े अंक बताएगी। वही स्पीडोमीटर का डायल है। सारी करामात तो उस डायल में छिपे यन्त्र की है जिसे चाल-मापी कहते हैं।

यह यन्त्र अत्यन्त सुग्राही होता है। चलती गाड़ी की गति के सूक्ष्म परिवर्तनों को प्रदर्शित कर देता है। साथ ही, यह सुदृढ़ भी होता है ताकि गाड़ी के झटके सह सके। यों तो चाल-मापी अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु सबमें चुम्बकीय यन्त्र उत्तम माना जाता है। उस यन्त्र में एक शक्तिशाली चुम्बक लगा रहता है। इसीलिए उसे चुम्बकीय चाल-मापी कहते हैं।

कार में गीयरबाक्स वह यन्त्र-संजाल है जिसमें कई गीयर-व्हील अर्थात् दाँतेदार पहिये रहते हैं। स्टीयरिंग के पास लगे हुए गीयर-लीवर द्वारा उन दाँतेदार पहियों का

परस्पर संयोग अथवा वियोग कराके गाड़ी को चलाया अथवा खड़ा किया जा सकता है। उसी गीयरबाक्स से एक तार द्वारा यह चाल-मापी पीछे की ओर सम्बन्धित रहता है। ज्यों-ज्यों दाँतेदार पहिये घूमते हैं, वह तार भी घूमता है। तार का एक सिरा एक शक्तिशाली चुम्बक से जुड़ा रहता है। तार के साथ ही वह चुम्बक भी घूमने लगता है। चुम्बक के आगे एल्यूमिनियम की एक कपनुमा प्लेट इस तरह लगी रहती है कि उसे छूती तो नहीं किन्तु ढके रहती है। चुम्बक के प्रभाव से उस एल्यूमिनियम के कप में भी प्रेरित विद्युत उत्पन्न हो जाती है, फलतः वह कप भी चुम्बक की भाँति घूमने का प्रयत्न करता है; किन्तु स्वयं एक बारीक स्प्रिंग (hair spring) से जुड़ा होने के कारण उसी वेग से न घूमकर अत्यन्त मन्द मन्द घूमता है। ताप परिवर्तन द्वारा उस कप के प्रतिरोधन में भी अन्तर आ जाने की सम्भावना रहती है। अतः उस दोष को दूर करने के लिए मिश्रित धातु (alloy) की पत्तियाँ चुम्बक में लगायी जाती हैं।

एल्यूमिनियम के कप के सामने लोहे का एक स्टेटर (stator) रहता है जो

रक्षा और विकास के अभिन्न पथ पर....

देश के एक छोर से दूसरे छोर तक, खेतों और कारखानों का उत्पादन लाने-लेजाने तथा विराट परियोजनाओं के लिए आवश्यक साज-सामान पहुंचाने वाली भारतीय रेलें देश के आर्थिक विकास की गति तेज करने में सदा से महत्वपूर्ण योग देती रही हैं। दूर-दूर के क्षेत्रों में रहने वाले भारतीयों को परस्पर मिला कर, ये रेलें राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ करने का पुनीत कार्य भी पूरा कर रही हैं।

वर्तमान संकट के प्रसंग में, सैनिकों और युद्ध-सामग्री का शीघ्रता से परिवहन करके, भारतीय रेलें रक्षा सम्बन्धी तैयारी में सम्पूर्ण योग दे रही हैं। हमारी रेलों को इनके ११० वर्षीय सर्वोपयोगी जीवन में यह महानतम चुनौती है।

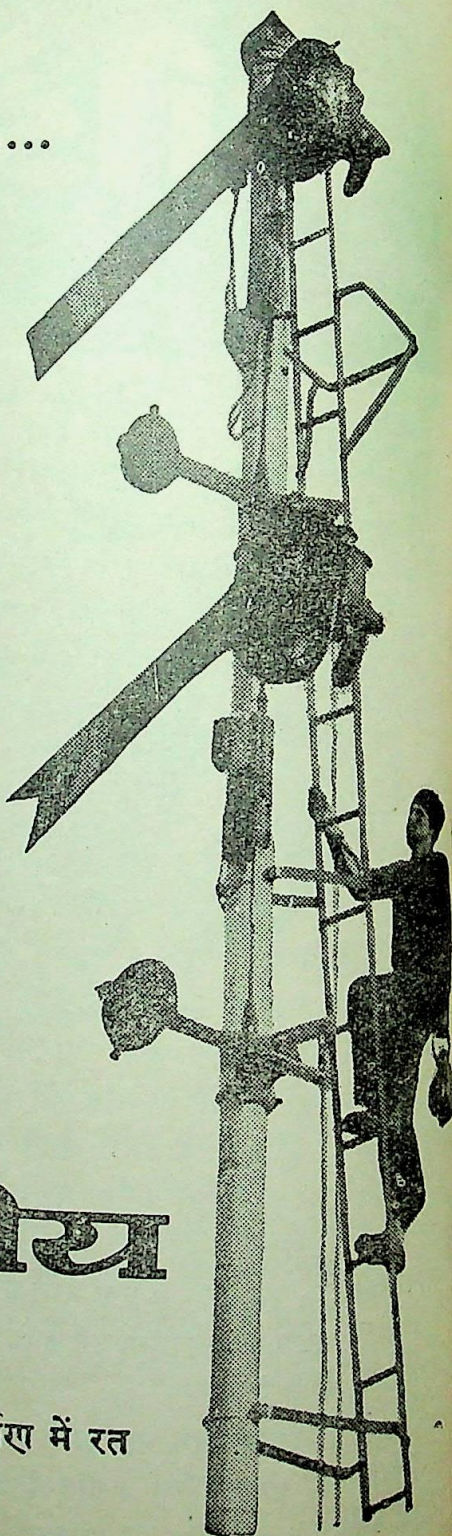
१० लाख से भी अधिक रेल-कर्मचारी, देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत होकर, रक्षा और विकास दोनों के लिए आवश्यक यातायात के संचलन में, एक दूसरे से होड़ लगा कर नये-नये रिकार्ड स्थापित कर रहे हैं।

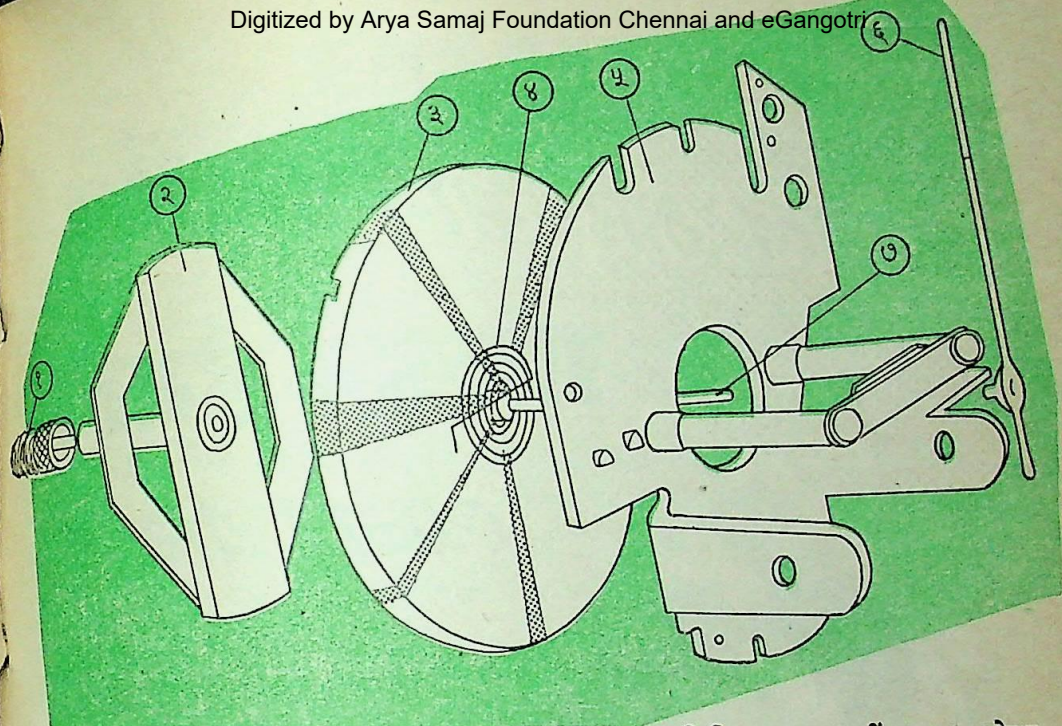


राष्ट्र सेवा
के
११० वर्ष

भारतीय रेल्वें

व्यक्ति-सेवा और राष्ट्र-निर्माण में रत





सीडोमीटर के मुख्य पुर्जे—१. घूमनेवाला तार; २. चुम्बक; ३. एल्यूमिनियम कप; ४. स्प्रिंग; ५. स्टेटर
६. सुई; ७. धुरा

स्थिर होता है। वास्तव में उसका सम्बन्ध जो अंकों को बताती है। कप से सम्बन्धित इस कप से नहीं होता। उस स्टेटर पर ही वह सुई कप की गति के अनुसार ही घूमती है। उसी से गाड़ी की गति ज्ञात हो जाती है। उसी में गतिसूचक एक सुई रहती है जाती है।

यहाँ से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन _____ आयु _____

नाम _____

घर का पता _____

स्कूल का नाम _____

शिक्षा _____ रुचि _____

यहाँ से काटिए

शतिल और आनन्द दायक गोल्डन ईगल लागर बीयर



डायर मीकिन ब्रयरीज लि.

स्थापित १८५५

सोलन ब्रेयरी कार्मेली डिस्टिलरी लावनक डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रेयरी तथा एलाइड इन्डस्ट्रीज (उ प्र)

सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स : ट्रेड लिक्स प्राइवेट लिमिटेड, ४६ पूसा रोड, नई दिल्ली

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
[सुखपुष्प वृजवासी फाउंडेशन ग्रैंट प्रोफिटेड वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

Book II.....Price : Re.1'00

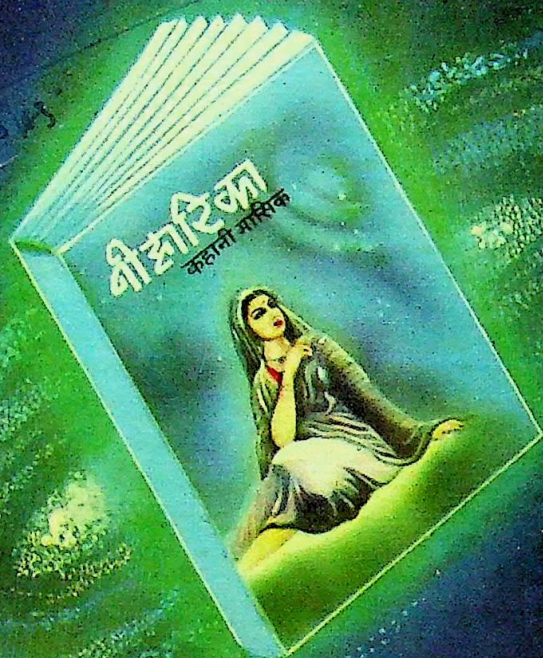
Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price: Rs. 12/- May 1963
कहानी जगत में नया नक्षत्र



गीटाटिका

• रोचक कहानियाँ

• नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रुपये

एक प्रति ६० पैसे

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



खगोलीय महत्त्व के स्थल	३
—डा. महेन्द्रकुमार	
पारमैत्यर और आलू	७
—श्यामलाल श्रीवास्तव	
घातक रेडियो-विकिरण	११
—एस. पी. मिश्र	
मोनोरेल	१४
—नरेन्द्रमोहन माहेश्वरी	
हीरे की कहानी	१७
—विनोदकुमार सक्सेना	
अन्तरिक्ष उड़ान और वैज्ञानिक अनुसंधान	२३
—रेमण्ड एल. विस्पलिगोफ	
तारे की कहानी	२८
—जगदीशचन्द्र गोविल	
धातु और संकर धातु	३३
—सत्यकुमार	
तरह-तरह की पत्तियाँ	३८
—कुमारी रेखा टंडन	
द्रव द्वारा यंत्र-संचालन	४२
—राजेन्द्रप्रसाद गर्ग	
मुझे सीपी कहते हैं	४५
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल	
प्राचीन मित्र के शव—भमी	४६
—दीनानाथ भार्गव	
आइसक्रीम की बहार—वेनीला	५४
—वाँकेविहारीलाल	
स्थायी स्तम्भ	
विचित्र संसार	३६
विज्ञान दलब	५७
इनाम लो	६०
आपके प्रश्न	६१
करो और देखो	६२
तुम्हारी कलम से	६४

वर्ष ४

अंक ५



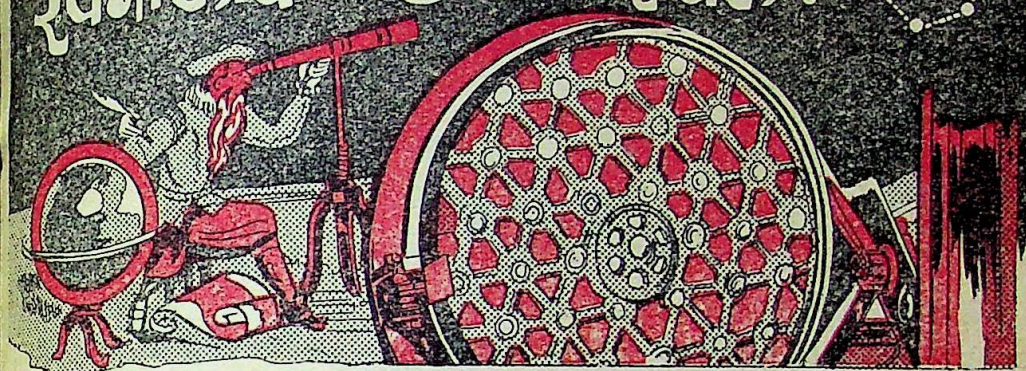
मूल्य

प्रति : ७५ नये पैसे
पिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीमान विष्णु वरुण्ड कम्पनी, आगरा

खगोलीय महत्व के रहस्य



डा. महेन्द्रकुमार

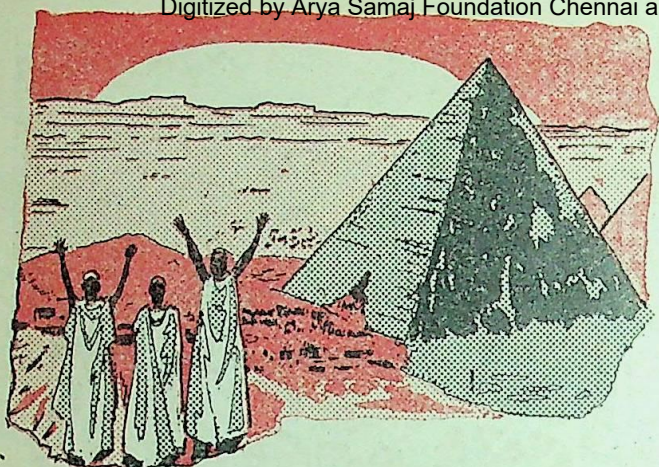
खगोल-ज्ञान के ये स्रोत

एक जिज्ञासु यात्री को खगोल-ज्ञान की प्राप्ति के लिए आकाश के अतिरिक्त पृथ्वी पर भी अनेक साधन उपलब्ध हैं। नक्षत्रावलोकन के लिए वेधशालाएँ हैं, ऐतिहासिक इमारतें हैं और प्रागैतिहासिक निमाणों के भग्नावशेष हैं तथा दूरदर्शी एवं अन्य विविध उपकरण हैं।

इंग्लैण्ड की सैर करने वालों को वहाँ संसार-प्रसिद्ध प्रस्तर-स्तम्भों (Stonehenge) के भग्नावशेष स्वरूप ८०-१० स्तम्भ तथा शिलाखण्ड देखने को मिलेंगे। गोलाकार में खड़े ये स्तम्भ लगभग १०० फुट व्यास की परिधि घेरे हुए हैं। दो खड़े स्तम्भों पर लेटा हुआ एक शिलाखण्ड मानो उनका प्रवेश द्वार है। अनुमान है कि प्राचीन काल के नक्षत्र-विद् इन्हीं स्तम्भों पर खड़े होकर सूर्य का निरीक्षण करते रहे होंगे। इन स्तम्भों के खड़े करने में यह विशेषता है कि आज भी सूर्य के सांक्रान्तिक गति-परिवर्तनों को स्पष्टतः प्रदर्शित करते हैं।

मैक्सिको पहुँचने पर यात्री को Teotihuacan नामक प्रसिद्ध सूर्योपासक पिरामिड मिलेगा। उस पिरामिड के चारों

प्राचीनकाल के साहसिक यात्री और नाविक आज जैसे वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न होते हुए भी तारक और नक्षत्रीय गणनाओं के आधार पर लम्बी यात्राएँ तथा पृथ्वी की परिक्षणा कर लेते थे। आकाश में उड़ते पक्षियों तथा मेघ समूहों को देखकर ही वे दिशा-ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। आइसलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, उत्तरी साइबेरिया आदि उत्तरी ध्रुवीय प्रदेशों के निवासी अन्य स्थानों के निवासियों की अपेक्षा सूर्य की गतिविधि से अधिक परिचित रहते हैं। उन्हें सूर्य के लक्षणों द्वारा पहले ही से ज्ञात हो जाता है कि कब वे लम्बी रातें आने वाली हैं जब महीनों तक सूर्य के दर्शन न होंगे। इसी प्रकार चाँद-सितारे भी समय से पूर्व ही यह संकेत दे देते हैं कि पुनः कब सूर्योदय होगा। एशिया के एक सिरे को दूसरे सिरे से मिलाने वाली संसार की सबसे लम्बी ट्रान्स साइबेरियन रेलवे में बैठकर यदि समूची यात्रा की जाए तो व्योम मण्डल के उत्तरी प्रकाश-पुंजों की वे दुर्लभ भाँकियाँ देखने को मिलेंगी जो अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं। वे भाँकियाँ भी यदि सूर्य-कलकों के प्रवृत्तिकाल में देखने को मिलें तो कहना ही क्या!



प्राचीन मिस्र के निवासी सूर्य तथा चन्द्र की गति से दिशा और समय का ज्ञान कर लेते थे

और, प्रत्येक पार्श्व पर ६१ सीढ़ियाँ हैं। अतः चारों ओर की सीढ़ियाँ तथा सर्वोच्च प्लेटफार्म मिलाकर ३६५ की संख्या बनती है। वर्ष में दिन भी ३६५ ही होते हैं! वहीं नेशनल म्यूजियम भी है जहाँ पूर्वकालीन जन्त्री (calendar) युक्त शिलालेख सुरक्षित हैं। उनसे विदित होता है कि वर्ष को उन्होंने २० दिन के १८ मास में और ५ दिन के एक लघु मास में विभाजित कर रखा था। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा तथा शुक्र की गति प्रदर्शित करते हुए १-१ शिलालेख और भी हैं। ये तीनों जन्त्रियाँ आश्चर्यजनक रूप से खगोल एवं गणित की शुद्ध गणनाएँ प्रदर्शित करती हैं। वहीं पर सूर्य तथा चन्द्र के विभिन्न ग्रहणों के भी शिलालेख सुरक्षित हैं। इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वकालीन लोगों का खगोल-ज्ञान कितना विलक्षण था।

दक्षिणी मैक्सिको में लुप्तप्राय नगर मान्टे आल्बन की खुदाई में अनेक ऐसी इमारतें निकली हैं जिनके असंख्य झरोखों से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे झरोखे खगोलीय निरीक्षण में काम आते होंगे। इसी प्रकार पेरू में सूर्य और चन्द्र के दो प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें सूर्य के

सोने का और चन्द्र के लिए चाँदी का थाल लटकाया जाता था। यद्यपि वर्षों हुए वे सोने चाँदी के थाल लुटेरों की भेंट चुके हैं किन्तु आज भी मन्दिर खण्डहरों में विशाल प्रस्तम्भों के मध्य खड़े होना रोमांचक नहीं। निकट पहाड़ियों पर स्थित Machu Pischu नगर के सूर्य मन्दिर देखकर भी दंग रह जाना पड़ता है। वहाँ प्रस्तर-निर्मित

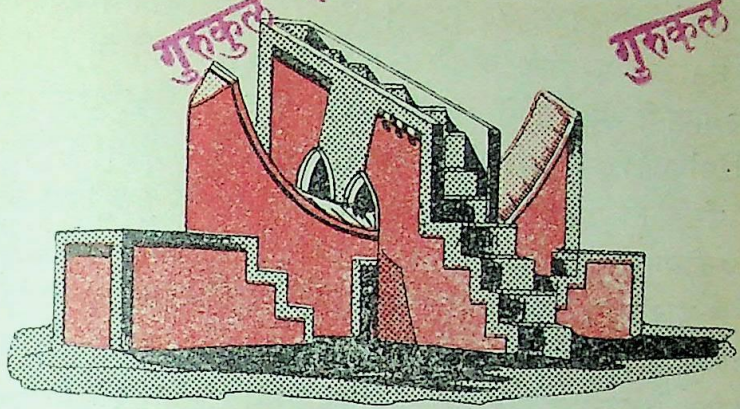
विशाल थाल अन्य निर्माणों से कहीं अधिक प्रभावशाली है।

मिस्र के पिरामिडों का आकर्षण यात्री को बहुत दूर से खींच लाता है। हजारों वर्ष पूर्व का काहिरा के निकट गीजा में निर्मित पिरामिड एक वेधशाला के समान ही है। उसकी मध्यरेखा पर निश्चित कांस्य-युग के प्रतीक, स्टोनहेन्ज (Stonehenge) नामक प्रस्तर-मन्दिर के ये अवशेष आज भी दर्शकों को रोमांचित करते हैं



चन्द्र के तारों का प्रकाश पड़ता
काया जगत् है। शुद्ध रूप में जन्त्री
हुए वे सो अर्थात् कलेण्डर बनाने के
की भेंट लिए आज का युग प्राचीन
मीनवासियों का ऋणी है;
ल प्रस्तुत क्योंकि अन्य लोग चन्द्रमा
इ होना की अनिश्चित गति विधि से
निकट वर्ष की गणना करते थे,
Mach जबकि मिस्रवासियों ने सूर्य
मीनवासियों की ही गति को आधार मान
जाना पड़ा था।

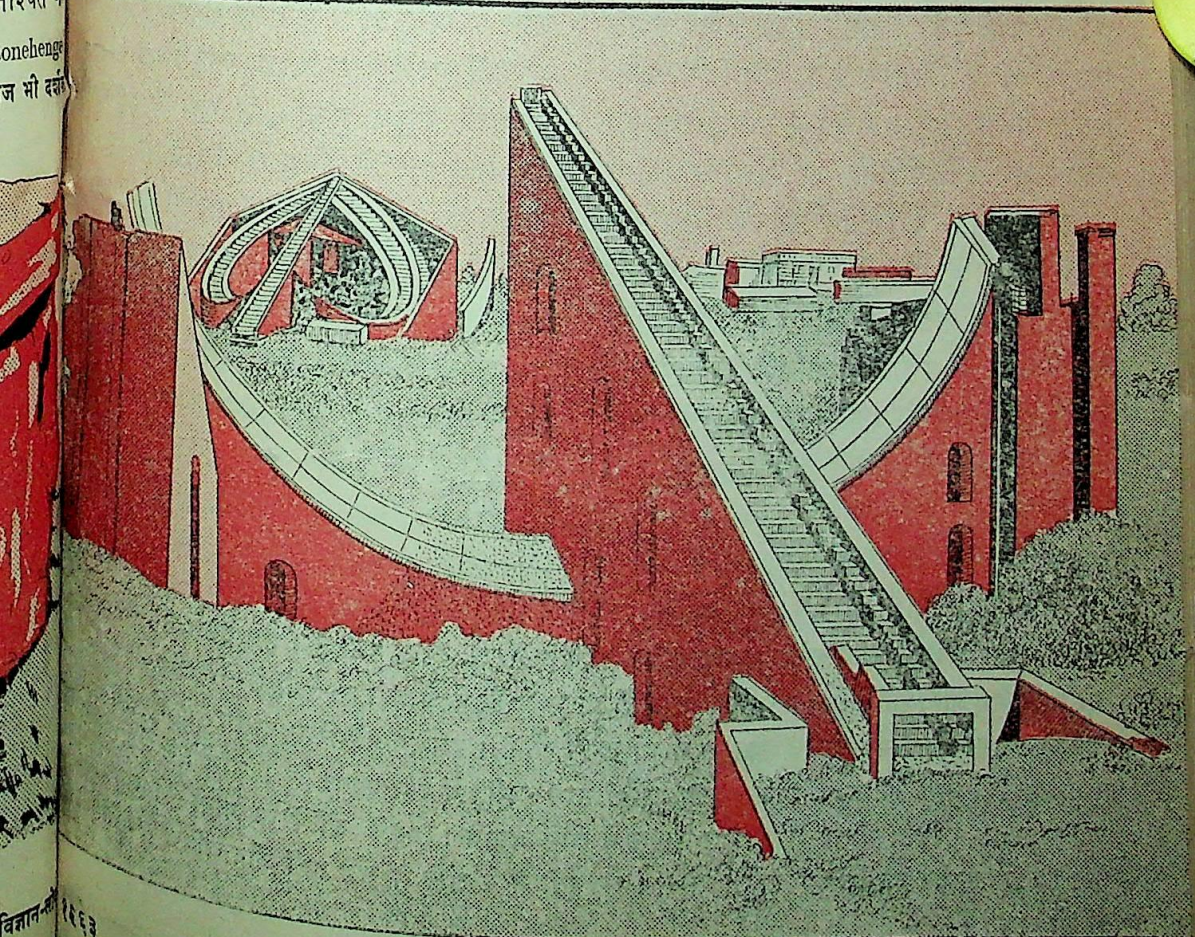
एरिजोना, साइबेरिया और एस्टोनिया
खगोलीय घटना-दुर्घटनाओं के स्मारक
हैं। वहाँ की धरती अनेक बार आकाश
को निर्मम चोटें सहती आयी है। चोटों
के निशान वहाँ आज भी देखने को मिलते



प्राचीन ईरानियों द्वारा निर्मित, ये ज्यामितीय आकृतियाँ
सौर-निरीक्षण में काम आती थीं

हैं। एरिजोना का लगभग एक मील चौड़ा
और ५०० फुट गहरा गड्ढा संसार-प्रसिद्ध
है। वह गड्ढा कब बना होगा इसका
कोई लेखा सुरक्षित नहीं है। उससे छोटा
किन्तु वैसा ही विकट गड्ढा प्रलयंकरी

जन्त-मन्तर का एक हृदय



प्रकृति के कोपस्वरूप ४० वर्ष पूर्व साइबेरिया में बना था। इसके अतिरिक्त अब तक के उल्कापातों में सबसे बृहत् होवा वेस्ट (Hoba West) दक्षिणी अफ्रीका में भूमि में धँसा हुआ देखा जा सकता है। उसका वजन अनुमानतः ६० टन है।

भारत की भी जयपुर वेधशाला तथा दिल्ली का जंतर-मंतर बहुत प्रसिद्ध हैं। जयपुर में प्राचीन काल का १०० फुट लम्बा चौड़ा सौर-थाल अपने ढंग का अतोखा है। आज वह केवल विचित्रालय की एक दर्शनीय वस्तु रह गया है, किन्तु जब यह बनकर तैयार हुआ था तब हजारों व्यक्ति रात-दिन इसी पर अपने खगोल-अध्ययन करते थे। इसी प्रकार दिल्ली का जंतर-मंतर भी मात्र दर्शनीय वस्तु रह गया है।

आधुनिक वेधशालाएँ

केपटाउन स्थित रायल ऑब्जरवेट्री १०० वर्ष पूर्व जहाँन हर्शल के कुशल निरीक्षणों की प्रतीक है। ग्रीनविच वेधशाला अन्तरराष्ट्रीय समय-मान का केन्द्र है। संसार भर की घड़ियों का संचालन इसी के द्वारा होता है। मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी बृहत् रेडियो-दूरदर्शी है जिसके एरियल का व्यास २०० फुट है। पेरिस की वेधशाला विशेषतः शनि तथा मंगल ग्रहों के निरीक्षण के लिए है। इसकी पुलकोवा वेधशाला अपने

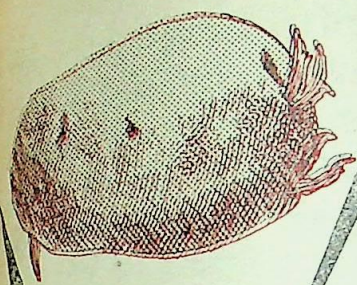
स्थापना काल में संसार में सर्वोत्तम मानी जाती थी।

संयुक्त राज्य अमरीका में खगोल-अध्ययन के सबसे अधिक साधन उपलब्ध हैं। संसार के कुछ विशालतम दूरदर्शी यहीं हैं। कैलिफोर्निया में ही दो विशालतम दूरदर्शी हैं। माऊंट पालोमर का दो सौ इंच, माऊंट विलसन का सौ इंच और पासाडेना का साठ इंच व्यास का दूरदर्शी संसार प्रसिद्ध है। पालोमर के दूरदर्शी ने तो अभूतपूर्व उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। इस दूरदर्शी द्वारा अब तक की निरीक्षण-दूरियों से दूनी दूरी करके अवलोकन के अनेक रोचक तथ्य प्राप्त किए जा सके हैं।

किसी भी वेधशाला का निरीक्षण अलभ्य जानकारी का विषय है। वेधशाला के कमरे की छत रंगमंच के परदे की तरह यों खुलती है मानो उस कमरे ने आकाश की ओर आँख उठायी है तथा सैकड़ों टन भारी दूरदर्शी चाहे जिस दिशा, चाहे जिस कोण में निःशब्द सहज घुमाव ले रहा है, दूरदर्शी की सहायता से विशाल व्योम के अनन्त क्रिया-कलापों को देखकर यह सोचना पड़ता है कि कहाँ तो अनन्त ब्रह्माण्ड और कहीं अति क्षुद्र मानव, तथापि मानव की इतनी महान् उपलब्धियों का लोहा मानना पड़ता है।

प्लास्टिक-कांच के पाइप... स्टील की बड़ी बचत

पाइप शब्द के साथ लोहा अथवा स्टील का नाम स्वतः आता रहा है। अब इसमें भी क्रांति ला दी गयी है। सोवियत-निर्मित प्लास्टिक-कांच के पाइप, लोहे के पाइपों को तेजी से पीछे छोड़े जा रहे हैं। लोहे के पाइपों में सबसे बड़ी शिकायत मोर्चा लगने की है। इसके अतिरिक्त, संसार के लिए अधिकतम उपयोगी धातु, स्टील के उत्पादन का दसवाँ भाग इन्हीं में खप जाता है। मास्को में तैयार किए गए ये पाइप मुख्यतः मीलों लम्बी तेल-लाइन में काम आयेंगे। इसके अतिरिक्त पानी की लाइनों में भी इनका उपयोग अधिक सुविधापूर्ण रहेगा। मजबूती में ये लोहे से कम नहीं और अधिक लचीले होते हैं सो अलग।



पारमेन्त्येर और आलू

इयामलाल श्रीवास्तव

आलू की उपयोगिता आज गेहूँ के बाद है।

३-४ शताब्दियों पूर्व यह इतना प्रचलित नहीं था। उससे पूर्व तो यह अमरीका के अतिरिक्त कहीं परिचित भी नहीं था। १६वीं शताब्दी के उत्तरकाल में इसने सर्वप्रथम ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड में प्रवेश पाया। वहाँ से फ्रांस तक पहुँचने का इसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। इस धरती की सौगात (Earth's Apple) अर्थात् *Pommes de terre* से परिचय पाने के लिए फ्रांस अपने यहाँ के एक राज्य-चिकित्सक, पारमेन्त्येर के प्रति कृतज्ञ है।

कत का दुर्भाग्य, आज का सौभाग्य

पारमेन्त्येर तत्कालीन फ्रेंच सम्राट लुई का सैन्य-चिकित्सक था। उन दिनों इंग्लैण्ड तथा फ्रांस में लड़ाइयाँ बराबर चल रही थीं। संयोगवश एक अवसर पर पारमेन्त्येर युद्धबन्दी बनाकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया। फ्रांस को पारमेन्त्येर का चले जाना एक दुर्भाग्य प्रतीत हुआ किन्तु कालान्तर में वह सौभाग्य ही सिद्ध होकर रहा। कारागार से मुक्त होकर पारमेन्त्येर एक नयी वस्तु लेकर स्वदेश लौटा।

वह स्वदेश के लिए भेंट स्वरूप आलू की

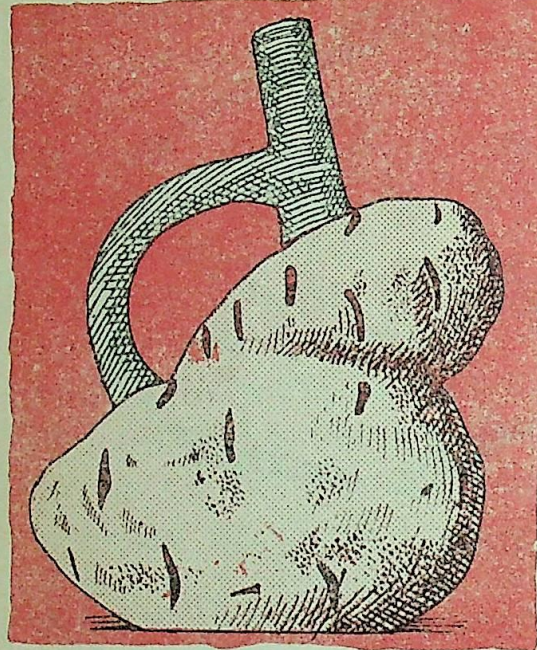
सौगात लाया। इंग्लैण्ड में बन्दी अवस्था में उसने अपने मधुर स्वभाव से समस्त अधिकारियों का मन जीत लिया था। अपनी कुशाग्र बुद्धि और सूझ-बूझ से नित नयी वस्तुओं का अध्ययन करता रहा। वहाँ उसने अनेक बार आलू को बड़े स्वाद से खाया और खेतों में उपजाने के ढंग का अध्ययन किया।

पारमेन्त्येर फ्रांस में आलू लाया तो सही किन्तु यहाँ भी उसने सूझबूझ से काम लिया। चिकित्सक होने के नाते वह लोकमानस का बड़ा पारखी था। आलू जैसी नवीन किन्तु अति साधारण वस्तु की यों ही घोषणा कर देना उसने उचित नहीं समझी। पहले उसने सम्राट लुई को प्रसन्न कर लिया और एक नयी वस्तु उपजाने के लिए कहकर पचास एकड़ भूमि पुरस्कार में प्राप्त कर ली। परन्तु उसने आलू का नमूना सम्राट या अन्य किसी को दिखाया नहीं। समय पाकर आलू के पौधों ने ज्यों ही फूल देने प्रारम्भ किये, वह सम्राट के समक्ष जा पहुँचा।

“महाराज, वह जो भूमि आपने मुझे

“हाँ, हाँ; तुमने किसी प्रयोग के लिए

पहले उत्सुकता, फिर चोरी



स्वभावतः लोगों की उत्सुकता फूट पड़ी। कुछ दिनों बाद पहरा शिथिल पड़ता देखकर उसमें से आलू चोरी भी जाने लगे। वास्तव में पारमेन्त्यर चाहता भी यही था कि लोगों की उत्सुकता उस फल के प्रति होने लगे। तभी तो आलू का महत्व बढ़ेगा !

चोरी जाने वाले पौधे क्रमशः फ्रांस में जगह-जगह उपजने और फैलने लगे। पारमेन्त्यर ने लोगों को खाने-पकाने की विधि भी बता दी थी। तब तक भी उस अद्भुत फल का उचित नाम नहीं सोचा जा सका था। अतः एक बार जो *Pommes de tene* नाम रख दिया गया उसी नाम ने पारमेन्त्यर का नाम फ्रांस वालों के लिए आलू-प्रवर्तक के रूप में अमर कर दिया।

आलू का प्रचलन कहाँ से ?

निकट अतीत के आलेखों में इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता। कुछेक प्राच्याव-शेषों से अनुमान लगाया जाता है कि लगभग ४००० वर्ष पूर्व यह दक्षिणी अमरीका में उगाया जाता होगा। आज भी यह वहाँ समुद्री सतह से ६००० से १५००० फुट की ऊँचाई के मध्य उगाया जाता है। वहाँ से लामा नामक खच्चरों पर लाद-लादकर निचले सागरतटीय प्रदेशों तक पहुँचाया जाता है। सन् २०० के मध्यकालीन अवशेषों में से कुछ सुराहियों पर आलू के चित्रों तथा कन्नो से प्राप्त आलुओं द्वारा यह भी अनुमान लगाया जाता है कि उन दिनों आलू का उपयोग खाद्य-संरक्षण के रूप में भी किया जाता होगा। इसके लिए वे इसके गूदे को विशिष्ट विधियों द्वारा सुखाकर चौकोर रूप में बना लेते थे जिन्हें चूनो (chuno) कहते थे। आलू का प्राचीन नाम पॅपस (papas) है। १६वीं शताब्दी में यूरोप में

पेरू देश में खुदाई से प्राप्त, लगभग ३००० वर्ष प्राचीन सुराही का यह नमूना दो आलुओं के रूप में बनाया गया है

ली थी न ! कहो, उसमें क्या अनाज उगाया है ?”

“पोटैटो, महाराज।”

“पो...टै...टो ! क्या अटपटा-सा नाम है। यह भी कोई दवा है क्या ?”

“जी, दवा तो नहीं; फल बड़ा स्वादिष्ट लगता है उसमें। आज फूलों की बहार देखने चलिएगा ?”

“क्यों नहीं ? अवश्य चलेंगे”.....और पारमेन्त्यर की कारियों में लगे आलुओं के फूल विशेष आकर्षण तथा मोहक सुगन्धयुक्त न होते हुए भी सम्राट लुई के अँगरे पर सजकर अद्वितीय गौरव पाने लगे। पारमेन्त्यर ने एक विनती और भी की :

“महाराज, अब फल लगने ही वाले हैं।”

“बड़ी खुशी है। कहो, क्या चाहते हो ?”

“मेरी कारियों पर फौजी पहरा होना चाहिए वरना लोग मेरी फसल को लूट ले जाएँगे।”

और, पहरा बिठा दिया गया।

आकर वहाँ के पूर्व-प्रचलित *Sweet Potato* से संयुक्त होकर इसका नाम 'पैपस' से 'पोटैटो' बन गया।

विस्तृत वंशधारी आलू

आलू उन वनस्पतियों में है जिसकी संकड़ों उपजातियाँ हैं। भूमि के अन्दर उगने वाला यह फल अन्यान्य कन्दमूलों से सर्वथा भिन्न है। कन्दमूलों में तो उनके मूल अर्थात् जड़ों के उभार (tumors) लगते हैं जबकि इसके भूमिगत तनों में उभार लगते हैं। अतः आलू का वर्गीकरण ट्यूबरसम (tubersum) जाति की, सोलेनम (Solanum) श्रेणी में किया गया है। इसमें जाति-भेद के अनुसार ही उपज-काल, बाह्यावरण के रंग-रूप, गूदे के प्रकार, स्वाद तथा व्यावसायिक उपयोगिता में पर्याप्त भिन्नता है। कहीं गूदा हलका पीला है, कहीं विलकुल सख्त। आयरलैण्ड का सफेद गूदे का आलू यूरोप में अत्यन्त लोकप्रिय है। आलू के कुल उत्पादन का ८०% भाग यूरोपीय देशों से प्राप्त होता है।

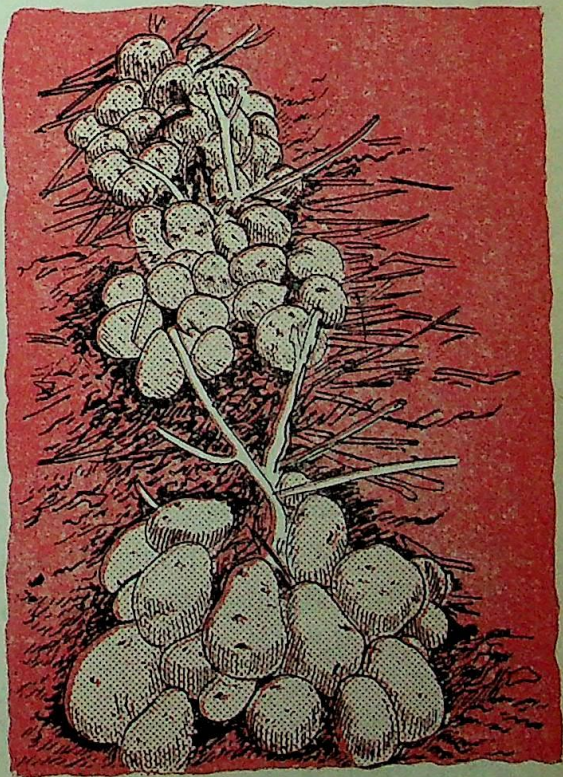
जाति जाति के आलू,

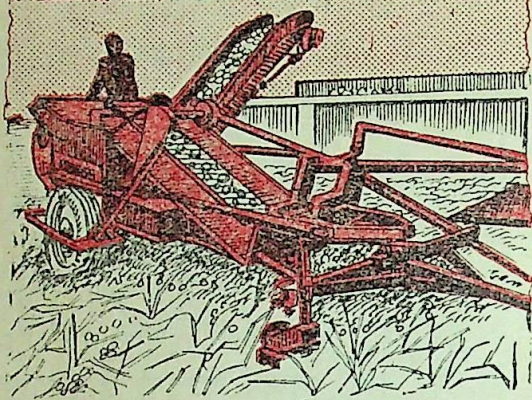
आलू की लोकप्रियता अप्रतिम है। हमारे देश में पहाड़ी आलू, फरखावादी आलू, देशी आलू; कहीं छोटे टेंटों जैसे, तो कहीं बड़ी गेंद जैसे; कहीं भूरे, पीले, ललछौंहे, तो कहीं सफेद नजर आते हैं। कड़े छिलके के आलू की अपेक्षा अँगुली से छूट जाने वाले कागजी छिलके के आलू अधिक पसन्द किये जाते हैं। आलू पहले ही से ठण्डे, अँधेरे कक्षों तथा कोल्ड स्टोरेज में सुरक्षित भी रखे जाते हैं जिससे अभाव के दिनों में इनका उपयोग हो सके।

आलू का पौधा

आलू का पौधा भूमि से लगभग १-१½ फुट ऊँचा होता है। यह बीजों द्वारा नहीं उगाया जाता। आलू की गाँठ में जो आँखें होती हैं, वहीं से जड़ें फूटती हैं। अतः

आलू ही भूमि में उगता है। इसके कुछ हरे, कुछ ललछौंहे हरे तने कम या अधिक शाखाओंयुक्त रहते हैं। तनों के रंगों में जो भिन्नता होती है, वह उन पर छाये हुए रोंयों के कारण रहती है। आलू का सम्बन्ध तीव्र विषैली वनस्पति नाइटशेड (nightshade) से भी है। अतः इसमें यह विचित्रता है कि इसका भूमिगत भाग तो प्रिय तथा पौष्टिक खाद्य है और ऊपर का हरा भाग, विशेषतः कच्ची बेरियों जैसे फल का भाग विषैला है। इसी कारण यूरोप में प्रवेश पा जाने के भी १००-२०० वर्षों तक तो जर्मनी तथा अन्य देशों में यह लोकप्रिय न हो सका। वे लोग इसकी हरी बेरियों को फल समझकर चखते थे और कड़वे होने से थू-थू कर देते थे। कुछ लोग खा लेने पर बीमार भी पड़ जाते थे क्योंकि हरे भाग में सोलेनिन (Solanine) नामक विषैला पदार्थ रहता है। अतः आलू लॉग कीपर (Long Keeper) नामक यूरोपीय आलू की एक उत्तम जाति





आलू खोदने का यह आधुनिक यन्त्र एक-साथ बीस आदमियों का काम करता है

में भी जहाँ हरा भाग दिखाई पड़े, काटकर फेंक देना चाहिए।

आलुओं की बुवाई (गड़ाई) वर्ष में प्रायः ६ महीने की जाती है। सर्दियों की फसल उगाने के लिए अक्टूबर-नवम्बर और गर्मियों के लिए मार्च-अप्रैल में बोये जाते हैं। ये प्रायः दो महीने में तैयार हो जाते हैं। इनके लिए सामान्यतः भुरभुरी मिट्टी उपयुक्त रहती है। इन्हें चिकनी मिट्टी नहीं चाहिए। किंचित् अम्लीय, कार्बनिक तथा खनिज द्रव्यों युक्त रेतीली और दलदली भूमि अधिक अनुकूल रहती है। इन्हें गाड़ने के लिए भूमि की गहराई इनके स्थान विशेष तथा जलवायु पर आधारित रहती है। यह गहराई २ से ८ इंच तक की होती है।

भूमिगत गांठी को सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचाता है। अतः सूर्य से इनका बचाव आवश्यक है।

तत्त्व रचना

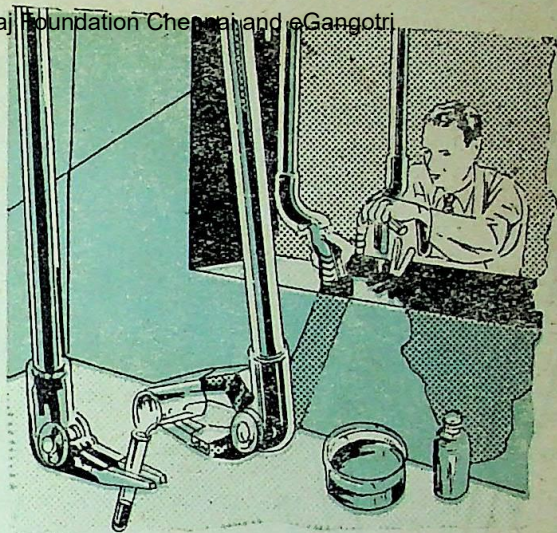
आलू में $\frac{1}{4}$ भाग घनत्वपूर्ण और दो भाग जलपूर्ण होता है। घन भाग में श्वेतसार का ८०% से ८८% होता है। शेष में शर्करा ३% से ८।% तथा नाइट्रोजन तत्त्वों में भी आधा भाग प्रोटीन का तथा आधा एमिनो अम्लों का होता है। आलू में वसा अथवा तैल भाग बिल्कुल नहीं होता। इसमें फास्फोरस, कैल्शियम, पोटैशियम तथा सूक्ष्मांशों में लौह, सोडियम, क्लोरीन तथा गंधक रहती है। इसमें एस्कोबिक अम्ल अर्थात् विटामिन सी और विटामिन बी२ काम्प्लेक्स प्रचुरता से रहते हैं। इसमें विटामिन ए और डी का अभाव रहता है। विज्ञान के बल पर मनुष्य को आलू को रोगों से बचाना सीख लिया है।

आलू का औद्योगिक महत्त्व भी है। इस पर लाभकारी बैक्टीरिया की प्रक्रिया करके आसवन-क्रिया द्वारा अलकोहल तथा अन्य नशीले पेय बनाने के बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हैं। इसके श्वेतसार को भी अनेक उपयोगों के लिए पृथक् निकाला जाता है।

रद्दी से समृद्धि

पश्चिम जर्मनी में शहर की यांत्रिक सफाई का ऐसा नया सफल प्रयोग किया गया है जिससे फलस्वरूप न शहर में कूड़ा मिलेगा और न ही कूड़े में कूड़ा मिलेगा। इस नये प्रयोग में शहर भर का कचरा, कारखानों का मलबा, मनों रद्दी, नालियों, गटरों का मल, कीचड़... सभी कुछ मशीनों के एक कक्ष में से गुजरता जायगा। उसमें लगा शक्तिशाली चुम्बक समस्त लोहे की रद्दी खींच लेगा। दूसरे कक्ष में सब कुछ पिसकर, घुल-मिलकर लुगदी जैसा बन जायगा। उसकी ईंटें बनाकर सुखा लेते पर उनमें से दुर्गन्ध भी अदृश्य हो जायगी। उन्हीं ईंटों को कृषि तथा बागवानी में पुनः पूर्ण बनावट खाद को भी काम में लिया जा सकेगा।

घातक



एस. पी. मिश्र

इस लेख के छपने के बहुत पूर्व ही शायद श्रीमती बी. का देहान्त हो चुका होगा और जब उनकी मृत्यु का प्रमाणपत्र पढ़ा जाएगा तो कारण में लिखा होगा, 'रेडियम-विष प्रयोग'। यों वह घटना घातक रेडियो विकिरण की घटनाओं में एक की वृद्धि करेगी।

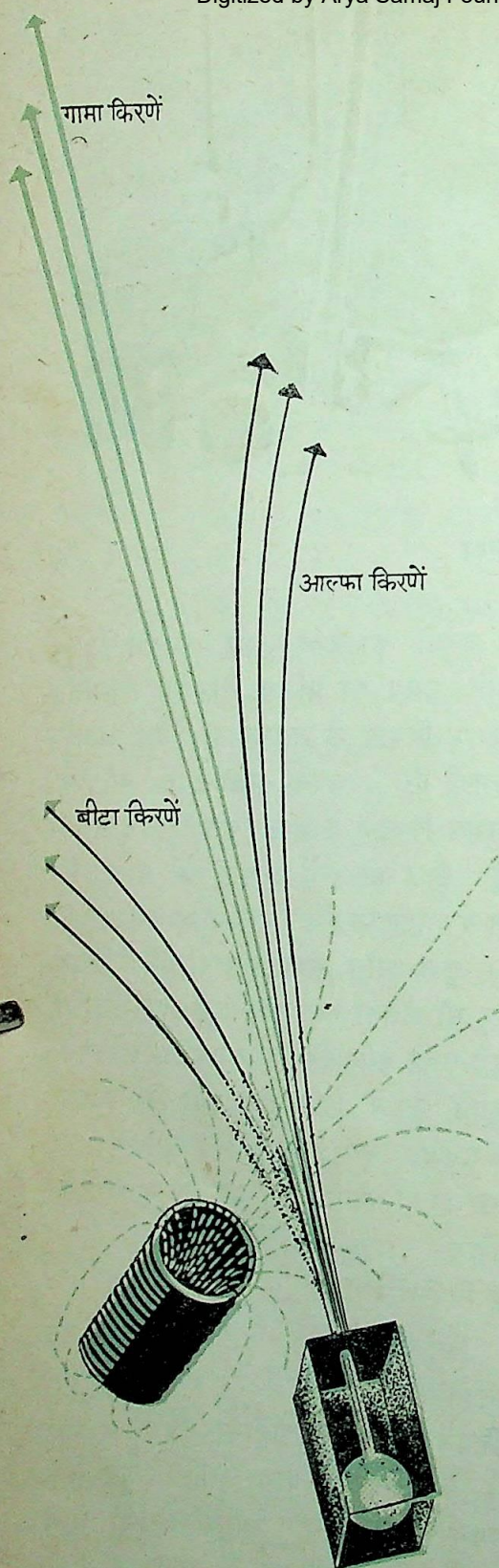
वात प्रथम विश्वयुद्ध के आसपास की है। उन दिनों श्रीमती बी. न्यूजर्सी की एक रेडियम डायल रंगसाजी के कारखाने में महीनों से कार्यरत थीं। वे रेडियम के घातक प्रभाव से अनभिज्ञ थीं। सदैव ही वे एक छोटे बर्तन में रखे रेडियम का अपने पेंटब्रश से खुला उपयोग करती रहीं। एक रात फर्श पर रेडियम की हरी चमक से कारखाने के मैनेजर का ध्यान आकर्षित हुआ और उसने श्रीमती बी. से कहा कि उनकी लापरवाही से रेडियम फर्श पर बिखर गया है। श्रीमती बी. को कल्पना भी नहीं थी कि वही रेडियम उनकी हड्डियों तक पहुँच सकता है।

युद्धोपरान्त श्रीमती बी. ने एक अध्यापक से विवाह कर लिया था। कालान्तर में

दो बच्चों का जन्म हुआ, जिनमें से एक अपने समय का प्रसिद्ध रेडियम वैज्ञानिक हुआ। विवाह के लगभग छः वर्ष पश्चात् श्रीमती बी. ने अपने जबड़ों में दर्द का अनुभव किया। वे कण्ट को बराबर सहती रहीं; फिर भी उन्हें कल्पना तक न हुई कि उन पर रेडिएशन का घातक आक्रमण हुआ है। कुछ मास पश्चात् शरीर में रेडियम और भी फैलता गया और एक दिन सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते बगैर किसी वस्तु की ठोकर लगे, उन्होंने अपनी जाँघ की हड्डी के चटखने का अनुभव किया। शरीर की परीक्षा द्वारा ज्ञात किया गया कि वह सूक्ष्म रेडियो-विकिरण का एक नया केस था।

यह विषैला क्यों ?

विषैला कहलाने के लिए रेडियम की बहुत ही थोड़ी मात्रा पर्याप्त है। उदाहरणार्थ, सोडियम क्लोराइड (चूहामार विष) मानव-मृत्यु के लिए १ ग्राम चाहिए जब कि रेडियम के एक ग्राम का पाँच लाखवाँ भाग ही पर्याप्त है। रेडियम से तत्काल मृत्यु नहीं होती है। इसकी अल्फा किरणें अन्दर ही अन्दर हड्डियों को गलाकर बोन-कैंसर-



चुम्बक की सहायता से चौकोर बक्से में रखे रेडियम द्वारा विकीरित अल्फा, बीटा तथा गामा किरणों की उपस्थिति ज्ञात की जाती है

जैसा प्राणघातक रोग उत्पन्न करती हैं और रोगी धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर होता रहता है।

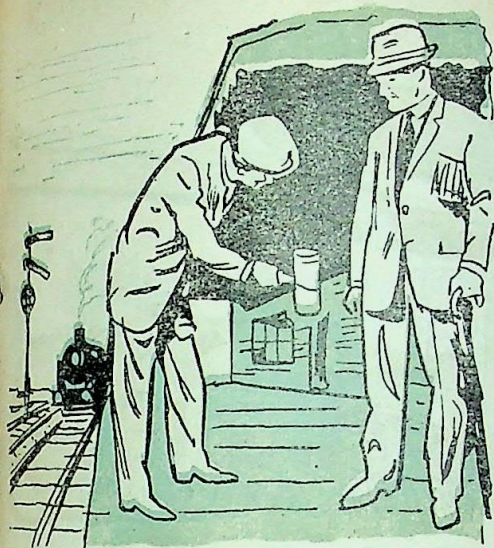
रेडियो-सक्रिय वस्तुएँ अल्फा (Alpha) तथा बीटा (Beta) नाम की दो विपरीत किरणें विकीरित करती हैं। अल्फा किरणों द्वारा शरीर के अंग पर कोई क्षति नहीं पहुँचती; क्योंकि ये किरणें लगभग ५ माइक्रोन (१ माइक्रोन = 10^{-6} मीटर) से अधिक अन्दर नहीं घुस पातीं। इसके विपरीत, बीटा किरणें काफी अन्दर तक प्रवेश करके अंगों को जला सकती हैं। जब रेडियो-सक्रिय वस्तु शरीर के अन्दर ले ली जाती है, तो दोनों ही किरणें प्रत्यक्ष हानि पहुँचा सकती है। भारी अल्फा किरणें बीटा किरणों की अपेक्षा अधिक हानिकारक होती हैं। यदि कोशिकाओं में स्वयं मरम्मत की क्षमता न हो तो इन किरणों के प्रभाव से वे निष्प्राण ही हो जाएँ अथवा कैंसर उत्पादक कोशिका उत्पन्न हो जाएँ।

पहली मानवीय मौत

रेडियो-सक्रिय विष द्वारा पहली मानवीय मौत की रिपोर्ट सन् १९१२ की वैद्य में दी गयी। उसके अनुसार एक ५८ वर्षीय वृद्धा जोड़ों के सूजन से पीड़ित थी। उसका इलाज थोरियम (रेडियम का एक आइसोटोप) के इंजेक्शन से हो रहा था। एक मास के अन्दर ही उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय उसमें विकिरण रोग, हेमरेज तथा डायरिया के लक्षण पाये गये थे।

ये किरणें अमृत भी हैं

इन्हीं किरणों का अमृत-रूप भी है। सन् १९१५ से १९३० के मध्य अमरीका के हजारों धनिकों ने रेडियम का किसी किसी रूप में पान किया था। धनिक लोग ही उन रेडियोसक्रिय दवाओं के लिए खर्च कर सकते थे। रेडियम के पानी तथा



शरीर के वस्त्रों पर रेडियो-किरणों के प्रभाव का परीक्षण किया जा रहा है

इन्जेक्शन का उपयोग अधिकांश बीमारियों में किया गया था। एक चिकित्सक ने तो ५ हजार रोगों में रेडियम-साल्ट के इन्जेक्शन दिये थे! एक दुर्बल ५२ वर्षीय रोगी ने बताया कि उसने २ माइक्रोग्राम रेडियम युक्त ग्राँस बोतल पानी प्रतिदिन के हिसाब से करीब ५ वर्षों तक लिया है, अर्थात् वह १४०० बोतल पानी (रेडियम युक्त) ले चुका था। उसकी पोस्टमार्टम रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि उसके शरीर में ७४ माइक्रोग्राम रेडियम की मात्रा तब भी विद्यमान थी।

वैज्ञानिक लेखों में बराबर प्रकाशित होते रहते रेडियम के विपैलेपन के बावजूद

सन् १९१६ में 'रेडियम' पत्रिका में रेडियम की प्रशंसा भी लिखी थी कि रेडियम से कोई विपैला प्रभाव नहीं होता। यह मनुष्य के लिए उसी प्रकार है जैसे पौधों के लिए सूर्य का प्रकाश। यह मत भी तत्पश्चात् दस वर्षों पूर्व ही खण्डित होने लगा; क्योंकि तब तक रेडियम-डायल रंगसाजी द्वारा रेडियम का विपैलापन प्रकाश में आ चुका था।

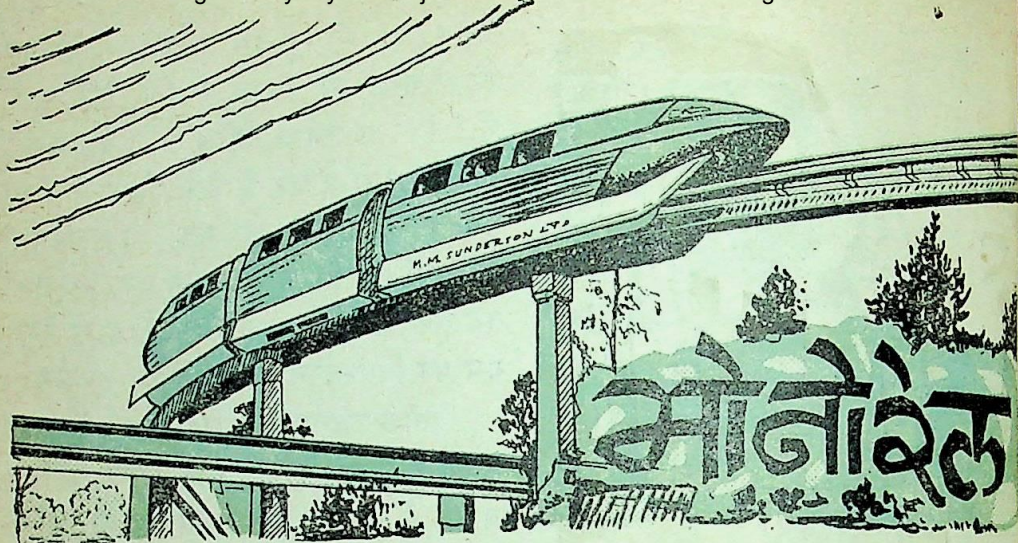
अनेक घटनाओं के उदाहरण से स्पष्ट है कि रेडियम का उपयोग मनुष्य के लिए घातक है। अतः रेडियो-सक्रिय वस्तुओं के उपयोग में सुरक्षा साधनों का प्रबन्ध अनिवार्यतः होना चाहिए।

साइकिल-सवार के भी परीक्षण की आवश्यकता है



कूड़े से कमाई

अल्बाना, कैलिफोर्निया (अमरीका) के होटलों में अब मुर्गियों के परों के ढेर कूड़े की तरह पड़े हुए न मिला करेंगे। अब तक ऐसे ढेरों की सफाई एक सिरदर्द बना रहता था किन्तु वहाँ के कृषि-विभाग ने उसी सिरदर्द को अतुल कमाई का एक साधन बना दिया है। नयी योजनानुसार उन परों को साफ करके, प्रेशर-कुकर द्वारा भून कर, तत्पश्चात् पीस कर और उसमें प्रोटीन तथा अन्य पोषक पदार्थ मिला कर एक ऐसा उपयोगी खाद्य बनाया जाता है जो मुर्गियों, बत्तखों के नन्हे चूजों को पुष्टिकारक सिद्ध हुआ है। इस उद्योग से लाखों रुपये महीने की आमदनी होने लगी है।



नरेन्द्रमोहन माहेश्वरी

मो नोरेल की सुरू नयी नहीं है। बड़े-बड़े कारखानों में इधर से उधर माल ढोने के लिए ऐसे छोटे वैननों का उपयोग बहुत पहले से होता आया है। इन्हें यात्रियों के योग्य आकर्षक डब्बों का रूप देने की सुरू अवश्य इस शताब्दी के प्रारम्भ की है। कारखानों के अलावा धरती पर दौड़ने वाली रेलों के मुकाबले धरती से ऊपर, अधर ही अधर नन्हें आकर्षक कोच दौड़ाने के प्रयोगों की शृंखला १८८८ से चली आ रही है।

बड़े शहरों की गगनचुम्बी इमारतें, वाहनमार्गों की संकीर्णता, खुले स्थानों का अभाव और जीवन की चतुर्दिक् तीव्रतर गति के मध्य यातायात सम्बन्धी नित नयी आवश्यकताओं की पूर्ति एक बड़ी समस्या प्रस्तुत किये हुए है। अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी तथा जापान जैसे बड़े देश इस दिशा में वर्षों से प्रयत्नशील हैं और उन्होंने नयी रेलें बनाने के अनेक सफल प्रयोग किये भी हैं।

य धरती पर नहीं चलती

खुले स्थानों का तीव्र अभाव होने के कारण इनकी पटरियाँ ट्राम अथवा ट्रेन की भाँति धरती पर नहीं, खम्भों के आधार

पर बिछायी जाती हैं। इनमें अधिक सुविधा दो पटरियों से ही होती है किन्तु दोनों पटरियाँ स्टील अथवा सीमेण्ट के एक ही शहतीर (beam) के अन्दर ढंकी रखी जाती हैं जिसके कारण वह शहतीर एक ही पटरी जैसी दिखती है इसीलिए इसे मोनोरेल कहते हैं।

इन रेलों को हलंका तथा एल्यूमिनियम निर्मित १-२ डिब्बोंयुक्त बनाया जाता है ६०-७० यात्रियों को लिये हुए ये हलंके रेलें ४०-५० कि. मी. प्रति घण्टे के वेग से व्यस्त मार्गों के ऊपर ही ऊपर सरसराती रहती हैं और दिन भर में ५०-६० हजार यात्रियों को लाती, ले जाती हैं। इन रेलों भी दो भिन्न प्रकार हैं: एक तो वे जो पटरी के ऊपर चलती हैं और दूसरी वे जो पटरी से लटके हुए चलती हैं।

दोनों का रचना-भेद

पटरी के ऊपर चलने वाली रेलों संतुलन की समस्या प्रमुख थी। प्रारम्भिक प्रयोग स्वरूप जब एक गाय को उसमें बिठाकर ले जाया गया तब संतुलन के लिए दूसरी ओर दो बछड़ों को भी साथ में ले जाया पड़ा। गाय को निर्दिष्ट स्थान पर उतारा

प्रति घण्टे के वेग की रही थी।

कर वापसी यात्रा में दोनों बड़े कोड़ों को जोड़ने के लिए दो ६० कि. मी. प्रति घण्टे के वेग की रही थी।

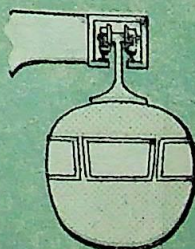
मोनोरेल को और भी लोकप्रिय बनाने के प्रयास बराबर जारी हैं। एक शहर से दूसरे शहर को इनके द्वारा जोड़ने का प्रश्न तो बहुत दूर है। अभी तो शहरों में ही इनके विकास पर बल दिया जा रहा है। इनके लिए बीच-बीच में स्टेशन, प्लेटफार्म आदि भी रखना आवश्यक होता है। वे स्टेशन भी खम्भों के सहारे अधर ही बनाये जाते हैं। वहाँ भी स्थान की कमी के कारण अधिक चौड़ी जगह नहीं मिल सकती। इसलिए रेल से उतरते समय सँकरे प्लेटफार्म से गिरने जैसी कोई दुर्घटना न हो इसकी बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। इसके लिए सर्कस जैसा एक मजबूत जाल स्टेशन से जरा ही नीचा उस समय फैला दिया जाता है जब गाड़ी रुकने को होती है। इससे यह लाभ रहता है कि संयोगवश यदि कोई व्यक्ति अथवा वस्तु प्लेटफार्म से गिर भी जाए तो जाल में अटकी रहे और नीचे चल रहे यातायात के कारण कोई संकट उपस्थित न हो। इसी प्रकार यदि बीच ही में बगैर स्टेशन के उतरना पड़ जाए तो एक सुरक्षा-सीढ़ी की भी

इसकी अपेक्षा पटरी से लटकने वाली रेलें अधिक सुरक्षित पायी गयीं। इनके पहिये जिन पटरियों से सटे रहते हैं वे परियाँ शहतीर में बन्द रहती हैं। इसका प्रसिद्ध एल्वेग (Alweg) डिजाइन बनाने का श्रेय स्वीडिश मेकेनिक एक्सेल वेनर ग्रेन (Axel Wenner Gren) को है जिसके नाम का संक्षिप्त शब्द ही एल्वेग है। यह रेल अपने हवा भरे टायरों युक्त पहियों के सहारे शहतीर से लटकती हुई चलती है और दोनों ओर के अतिरिक्त पहिये शहतीर को मजबूती से पकड़े रहते हैं। लगभग एक ही किलोमीटर की इसकी

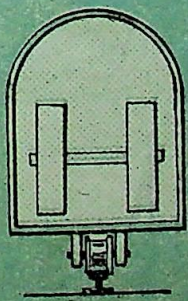
दो भिन्न प्रकार से (१, २ पटरी से लटक कर) तथा (३, ४ पटरी के ऊपर) चलने वाली मोनोरेलें। इनमें भी पारस्परिक अन्तर है १. एक ही पटरी वाली २. दोहरी पटरी वाली; ३. जाइरोस्कोप द्वारा सन्तुलन ४. जाइरोस्कोप का काम दोनों ओर के पहियों से लिया जाता है



१



२



३



४

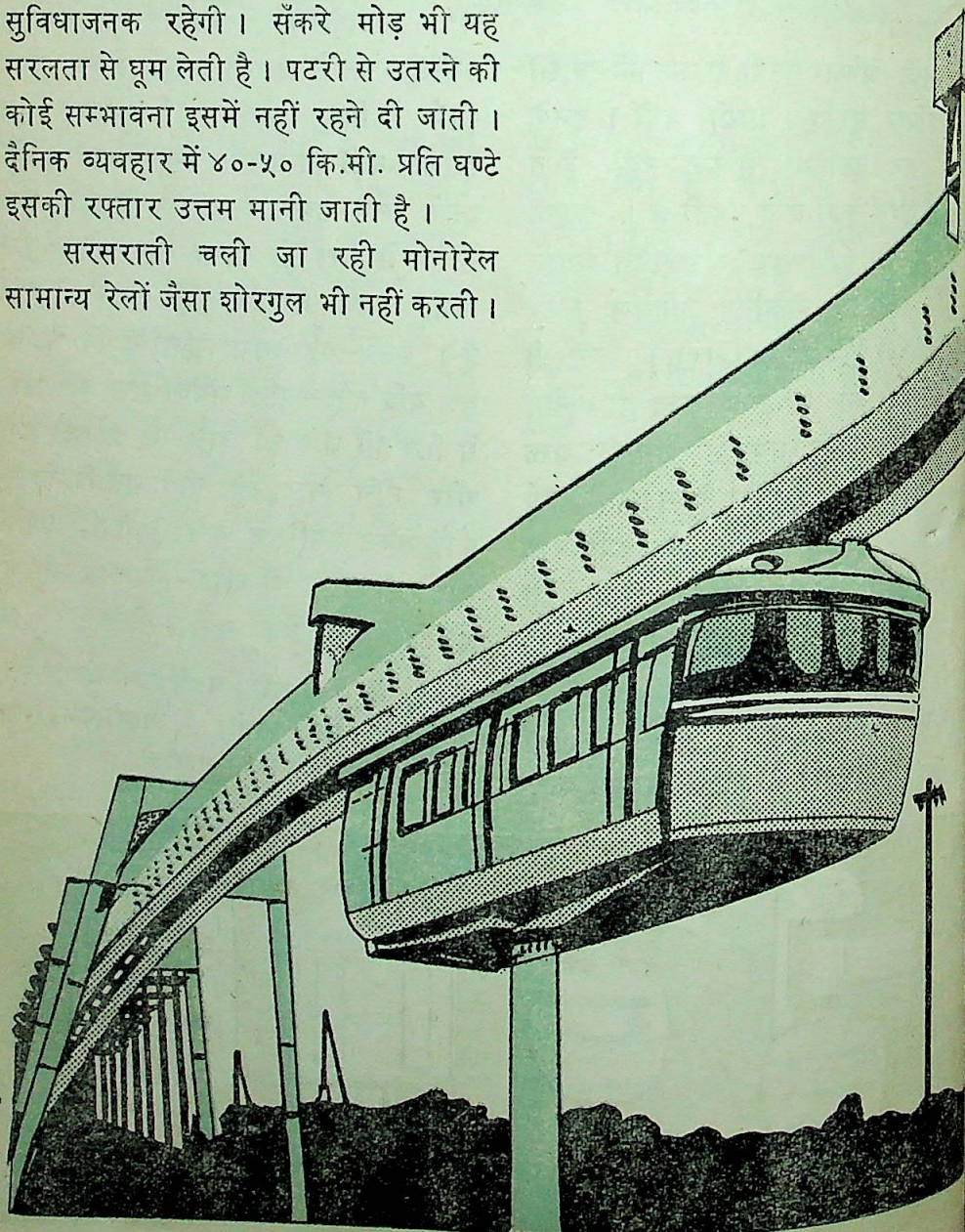
व्यवस्था रहती है जिसके सहारे नीचे उतरा जा सके।

मोनोरेल का भविष्य

ऊपर कहा गया है कि मोनोरेल द्वारा एक शहर को दूसरे शहर से जोड़ने का प्रश्न अभी काफी दूर है। व्यावसायिक दृष्टि से भी वह लाभप्रद सिद्ध न होगी क्योंकि इसकी प्रति कि. मी. की औसत लागत भूमिगत पटरियों से कहीं अधिक बैठती है। यह केवल उपनगरीय ट्रेनों तथा बसों की भाँति ४०-५० कि. मी. की दूरियाँ जोड़ने के लिए ही सुविधाजनक रहेगी। सँकरे मोड़ भी यह सरलता से घूम लेती है। पटरी से उतरने की कोई सम्भावना इसमें नहीं रहने दी जाती। दैनिक व्यवहार में ४०-५० कि.मी. प्रति घण्टे इसकी रफ्तार उत्तम मानी जाती है।

सरसराती चली जा रही मोनोरेल सामान्य रेलों जैसा शोरगुल भी नहीं करती।

धरती से ऊपर हो ऊपर चलने वाली मोनोरेल की लोकप्रियता बढ़ने की सम्भावना बहुत हैं। इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। सब प्रकार से सुरक्षित, सुखदायक, तीव्रगामी होने के लिए इसे अभी और समय तथा धैर्य की आवश्यकता है। आने वाले अधिकाधिक व्यस्त जीवन के लिए निस्संदेह मोनोरेल आधुनिक विज्ञान की बहुत बड़ी देन सिद्ध होगी।





हीरे की कहानी

विनोदकुमार सक्सेना

क र्वन जैसी एक अति नगण्य और बहु-प्राप्य वस्तु से हीरे जैसी अद्भुत और दुष्प्राप्य वस्तु बना देना प्रकृति के ही लिए सम्भव है। यद्यपि वर्षों के अनवरत प्रयासों तथा लाखों की लागत से यांत्रिक साधनों द्वारा अमरीका की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी (GEC) कृत्रिम हीरा बनाने में सफल हुई है।

आभूषणों के क्षेत्र में हीरे को रतन, मणि, लाल, गौहर, कुछ भी कह लीजिए। हीरे को डायमण्ड (diamond) नाम दिये जाने का भी एक इतिहास है। प्राचीन युग के लोग हीरे से परिचित तो थे नहीं। हीरे के पश्चात् द्वितीय स्थान पर तत्कालीन सबसे अधिक कठोर खनिज पदार्थ चमकीले कोरुण्डम (corundum) को वे एडेमास (adamas) कहते थे। भारत इस विषय में प्रारम्भ से ही अग्रणी रहा है। रोमन साहित्यकारों ने भारत की नदियों में प्रायः ही बहकर किनारे आने वाले कठोर मणियों को एडमण्ट (adamant) भी कहा है। उसी adamant शब्द का अपभ्रंश होते-होते

diamount अन्ततः diamant पर आकर ठहर गया।

हीरे की खोज में

१६वीं शताब्दी के मध्य तक हीरा प्राप्त होने वाले देशों में ब्राजील का नाम भारत से जोड़ा जाता था। १८६६ में दक्षिणी अफ्रीका का हीरे से सर्वप्रथम परिचय तब हुआ जब एक बालक को चमकीले पत्थर से खेलते हुए देखा गया। वह पत्थर हीरा ही था। उस अबोध बालक के लिए हीरा एक रंगीन चमकीले पत्थर अथवा काँच के अतिरिक्त कुछ नहीं था। आज हीरा-उत्पादन में अफ्रीका का प्रथम स्थान है।

ज्वालामुखी क्षेत्र ही प्रकृति के अधिकांश हीरा-उत्पादक स्थल हैं। अनन्त काल से भूगर्भ में बनते चले आ रहे नन्हे-मोटे हीरे एक स्थल पर रह भी नहीं पाते। जहाँ किसी ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ, उसके तप्त, तरल लावा का कुछ भाग पृथ्वी के अन्तराल में अन्दर ही अन्दर एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक पहुँच गया। भारत में पाया जाने वाला हीरा न जाने किस

ज्वालामुखी की मिट्टी में बना होता है। ऐसे ही भारत में बना हीरा दक्षिणी अफ्रीका पहुँच सकता है तो कभी दक्षिणी अमरीका भी।

हीरे की खोज करने वाला दल किसी निष्क्रिय तथा शान्त ज्वालामुखी का क्षेत्र चुन लेता है। ऐसे दल को प्रास्पेक्टर (prospectors) कहते हैं। उन क्षेत्रों में तंग और गहरे गड्ढे पाइप्स (pipes) कहलाते हैं। ऐसे गड्ढों में दक्षिणी अफ्रीका के किम्बरले पाइप संसार में प्रसिद्ध हैं। उनमें अब तक लगभग ३००० फुट गहरी खुदाई की जा चुकी है और २५ करोड़ टन तक मिट्टी बाहर निकाली जा चुकी है। गणना है कि उसकी प्रति ५००० टन मिट्टी से केवल १२ औंस हीरा प्राप्त होता रहा है। उस मिट्टी को ब्लू ग्राउण्ड (blue ground) कहते हैं। हीरा कितना दुष्प्राप्य और अनमोल है, यह इसी से स्पष्ट है कि २५० वैगनभरी ५००० टन ब्लू ग्राउण्ड से केवल १२ औंस हीरा प्राप्त होता है।

विभिन्न किस्में

हीरे की चार प्रमुख किस्में हैं : विशिष्ट, बोर्ट (Boart), बैलस (Ballas) और कार्बोनेडो (Carbonado)। विशिष्ट हीरा सुगठित, पूर्ण स्फटिक, पारदर्शी और बहुमूल्य होता है। आभूषणों में यही काम आता है। शेष तीनों किस्में कठोरता में तो विशिष्ट हीरे जैसी ही होती हैं किन्तु रंग में बदरंग, कुछ हलकी, कुछ गहरी, टेढ़ी-मेढ़ी भी होती हैं। अतः वे आभूषणों में काम नहीं आती। उनका उपयोग औजारों और यंत्रोद्योग में होता है। खान से निकलने वाले हीरों में अधिक मात्रा इन्हीं घटिया रत्नों की होती है। लगभग पौन से भी अधिक मात्रा में निकलने वाले इन हीरों का उपयोग विभिन्न उद्योगों में होता है और अत्यन्त अल्प मात्रा में पाये जाने वाले हीरे

आते हैं। हीरे का माप कैरट (carat) में मापा जाता है। समय पूर्व तक कैरट के माप में विभिन्नता रही होने से अनेक प्रसिद्ध हीरों में भारों में आज भिन्नता प्रतीत होती है। एक कैरट की माप ०.२०० ग्राम अर्थात् २०० मिलीग्राम संसार भर में मानी जाने लगी है।

संसार-प्रसिद्ध हीरे

अनेक संसार-प्रसिद्ध हीरों के साथ इतिहास जुड़े हुए हैं। निम्नांकित नाम प्रसिद्ध हीरों के हैं : कलिनन (Cullinan), कोहिनूर (Kohinoor), ओरलोफ (Orloff), अकबरशाह (Akbarshah)

विभिन्न पहलुओं पर जगमगाते हीरे



(Great Mogul) by Arjeeb Majid Fundat कौर Chahवाया है Gange हीरा ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट का सिरमौर नगीना है।
 ग्रेट मुगल (Regent), डडले (Dudley) तथा स्टार (Star of the South)।
 आरलाफ दि साउथ (Star of the South)।
 कलिनन १६०५ में दक्षिणी अफ्रीका की प्रीमियर खान में पाया गया था। यह आज नवसे बड़ा हीरा है। इसका मूल भार ११०६ कैरट (लगभग १ १/३ पौण्ड) था। प्रथम यह ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम को भेंट किया गया था। तत्पश्चात् इसे काट बनारकर ९ खण्डों में किया गया जिनमें से ४ बड़े खण्ड ब्रिटिश राजमुकुट की शोभा बढ़ा रहे हैं।

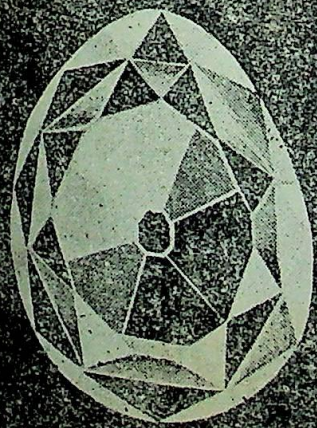
कोहिनूर के अस्तित्व का १३०४ से पूर्व कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस हीरे के साथ अनेक रक्तंजित इतिहास जुड़े हैं। ५००-६०० वर्षों के मध्य अनेक हाथों से गुजरता हुआ यह हीरा अन्ततः ब्रिटिश सम्राट के अधीन १८४९ में पहुँच गया। अनुमान है कि १३०४ में मालवा के राजा से सुलतान अहमदशाह ने इसे प्राप्त किया था। उन दिनों इसका भार १८१ कैरट था जो अब इसके सबसे बड़े हीरे 'कलिनन'—काट-छाँट कर संवार कर बनाये गए अनेक नगीनों में से एक बड़ा नगीना

आरलाफ हीरा किसी मूर्ति के नेत्रों से एक फ्रेंच सैनिक द्वारा चुराया गया था। लगभग २०० कैरट के उस हीरे को उसने प्रिन्स आरलाफ के हाथों १॥ लाख रुपये में बेच दिया था। प्रिन्स ने उसे रूस की तत्कालीन साम्राज्य कैथेरीन को भेंट कर दिया था।

अकबरशाह हीरा प्रारम्भ में ११६ कैरट का था। इस पर अरबी लिपि में शाह अकबर और शाहे दो आलम नामक मुद्रांकन हो रहे थे जो क्रमशः १६५० और १६६१ के काल के माने जाते हैं। १८६६ में इसे लन्दन ले जाकर तराशा गया और नये आकार में ७१.७ कैरट भार का बनाकर भारत के महाराजा गायकवाड़ को सात लाख रुपये में बेच दिया गया।

ग्रेट मुगल हीरा ७८.७ कैरट भार का था। १६५० में इसे गोलकुण्डा खान से प्राप्त किया गया था। १६६५ में एक फ्रेंच यात्री ने इसे मुगल सम्राट औरंगजेब के खजाने में देखा था।

रीजेण्ट हीरा भारत से प्राप्त बड़े हीरों की अन्तिम शृंखला में माना जाता है। १७०१ में जब इसे प्राप्त किया गया, तब इसका भार ४१० कैरट था। मद्रास के तत्कालीन गवर्नर थामस पिट ने इसे चार लाख रुपये में खरीदा था। तत्पश्चात् इसे काट-छाँटकर तथा सजा-सँवारकर १४०.५ कैरट भार का बना दिया गया। इसे फ्रांस के रीजेण्ट, ड्यूक आफ ओरलियन्स के हाथ बेच दिया गया। वहाँ एक बार तो यह अन्य हीरों के साथ चुरा लिया गया किन्तु तुरन्त खोज भी लिया गया। इस हीरे को जमानत के रूप में



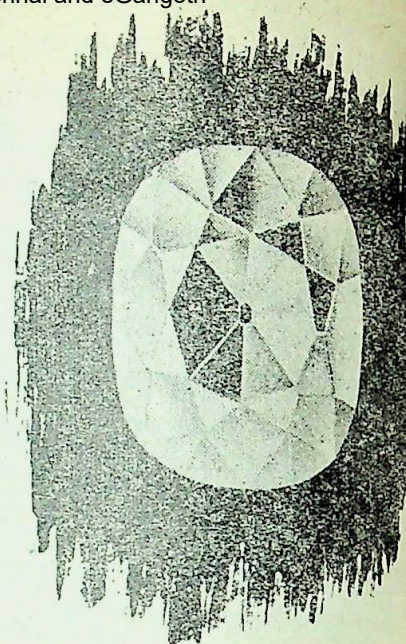
रखकर नेपोलियन को सहायता प्राप्त करने में बड़ी मदद मिली थी।

प्रेसीडेंट वारगस तथा स्टार आफ दि साउथ दक्षिणी अमरीका के ब्राजील प्रदेश में पाये जाने वाले हीरों में सबसे प्रसिद्ध हैं। ७२६ कैरट का वारगस हीरा १९३८ में एक निर्धन राहगीर ने पाया था। उसने इसे एक दलाल के हाथ केवल ४० हजार रुपये में बेच दिया। उस दलाल ने उसे बयालीस गुना अधिक मूल्य में एक निर्यात व्यापारी को बेच दिया।

प्रमुख प्राप्ति-स्रोत

संसार में केवल तीन ही देशों से हीरा प्राप्त होता है। कालक्रम के अनुसार भारत प्रथम स्थान पर है जहाँ प्राचीन काल से हीरा प्राप्त किया जा रहा है। द्वितीय स्थान दक्षिणी अमरीका का है जहाँ १८वीं शताब्दी से हीरा प्राप्त होने लगा है। शेषतः दक्षिणी अफ्रीका में यद्यपि यह अत्यधिक विलम्ब से (१८७०) प्राप्त किया जाने लगा है, तथापि उत्पादन की दृष्टि से आज यह सर्वोपरि है। विगत १०-१२ वर्षों से वहाँ का वार्षिक हीरक उत्पादन दो करोड़ कैरट तक पहुँच चुका है।

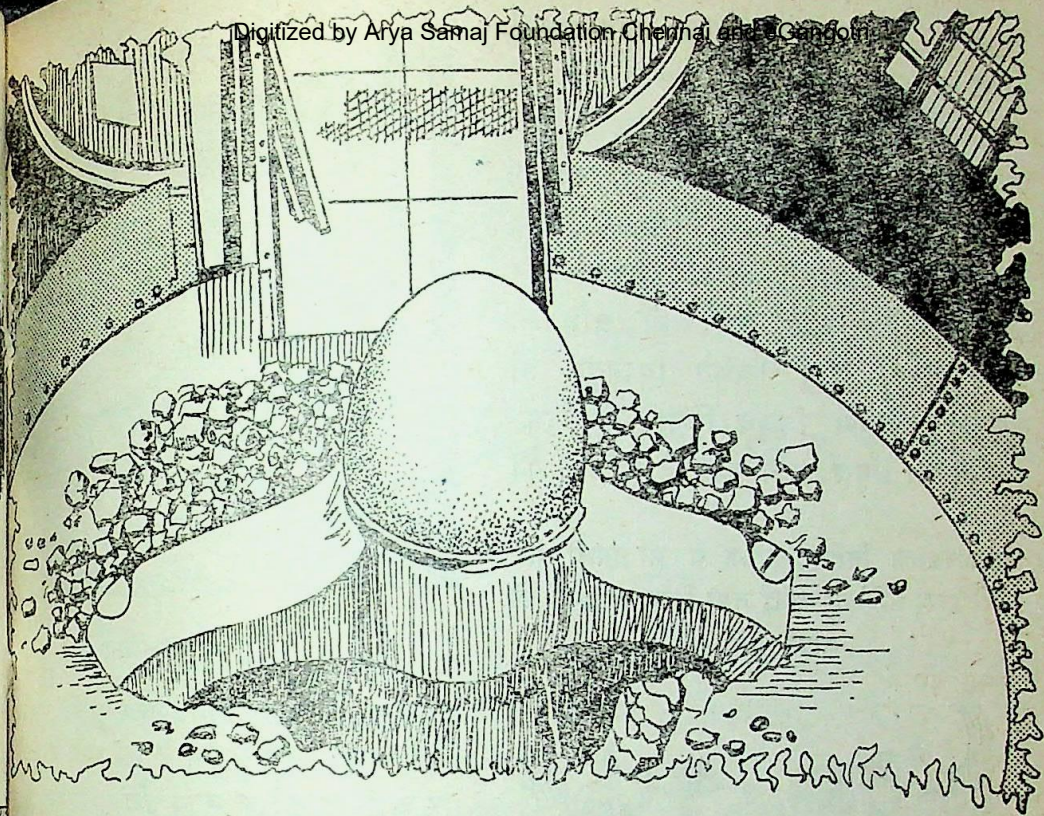
भारत में मद्रास, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल हीरक उत्पादन में प्रमुख हैं। इनमें भी मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में भुजगावन क्षेत्र से हीरे की सर्वाधिक (लगभग ९५%) मात्रा प्राप्त होती है। दक्षिणी अमरीका में यह ब्राजील, ब्रिटिश गाइना तथा वेनेजुएला प्रदेशों से प्राप्त होता है। दक्षिणी अफ्रीका से संसार भर का ९७% हीरा प्राप्त होता है। वहाँ मुख्यतः यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, बेल्जियन कांगो, घाना, अंगोला, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका तथा टांगानिका आदि प्रदेशों से हीरा प्राप्त होता है। टांगानिका



संसार-प्रसिद्ध हीरा कोहेनूर

की खान १९४१ में पायी गयी थी। हीरे की सबसे बड़ी खान मानी जाती है अंधेरी खान से आभूषण तक

खान से निकला हीरा जितना वेड़ा और अनाकर्षक होता है, तनीने के रूप उतना ही आबदार और आकर्षक रूप निखर आता है। इसके लिए इसे निम्न प्रमुख क्रियाओं से गुजरना पड़ता है: विदारण (cleavage), कटाई (cutting), पॉलिश (polishing) तथा जड़ाई (setting) इनमें विदारण अर्थात् विदीर्ण करने की क्रिया में बड़ी दक्षता की आवश्यकता यह सावधानी रखनी पड़ती है कि प्राप्त के एक ब्लाक में से बड़े से बड़ा सँवारा जा सके। कुशल निरीक्षक निरीक्षण द्वारा सर्वप्रथम यह देखते हैं कि को उसके रेशों की सीध में ही काट जाए। तभी रवा सफाई से कट कर इस प्रकार चारों ओर से ठीक कर पश्चात् अपेक्षित पहल अर्थात् पार्श्व (face) काटने के लिए रेशों के विपरीत भी



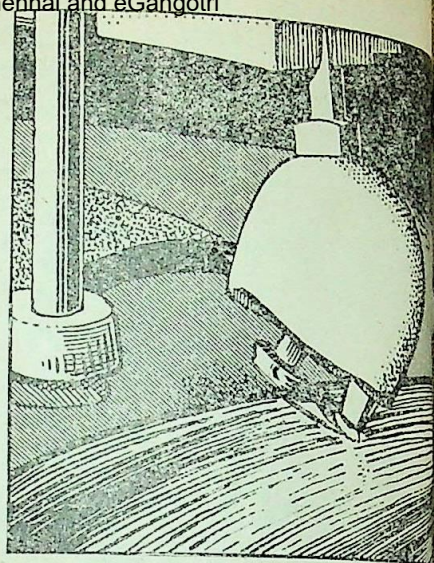
थी। कान से निकली हुई मिट्टी ब्लूग्राउण्ड इस रोलर से गुजरती है और छोटे-मोटे हीरे अलग होते जाते हैं जाती है। करने की आवश्यकता पड़ जाती है। उसके लिए फास्फोर ब्रान्ज (phosphor bronze) ओवनी एक छोटी-सी गोल आररी से काम लेना पड़ता है। उस आररी के दाँतों पर डायमंड-डस्ट (diamond-dust) का ओलिव आयल से लेप चढ़ाना पड़ता है, क्योंकि हीरे को हीरा ही काट सकता है। इसी प्रकार विदरण की प्रारम्भिक क्रिया में भी हीरे की नोक से निशान तथा खोंच लगाकर ही कटाई की जाती है। इस क्रिया में धैर्य की आवश्यकता होती है क्योंकि कभी-कभी तो एक ही रवे को काटने में हफ्तों लग जाते हैं। यदि किसी रवे को गोलानकार बनाना हो तो वह भी इसी क्रिया की अन्तर्गत खराद मशीन पर हीरे की कनी सहायता से गोल कर लिया जाता है। पालिशिंग की क्रिया इस उद्योग का अन्तिम चरण है। इसमें भी ओलिव आयल मिश्रित रज-रज काम में लायी जाती है। वह रज

दो पहियों के बीच लेप के रूप में चढ़ा दी जाती है। पहियों की गति कभी-कभी २००० चक्कर प्रति मिनट तक भी कर देनी पड़ती है। उन पहियों को स्काइव (skives) कहते हैं। हीरे को डाप (dop) नामक एक होल्डर में फिट करके घिसाई के लिए इन पहियों के निकट जमाया जाता है। इस क्रिया में एक के बाद दूसरा करते-करते जितने अधिक पहल (पार्व) तैयार होते हैं, उतनी ही इसकी आभा और चमक-दमक बढ़ती है। सामान्यतः कम से कम ५७ पहलवाला हीरा उत्तम माना जाता है। आभूषणों में कम, उद्योगों में अधिक

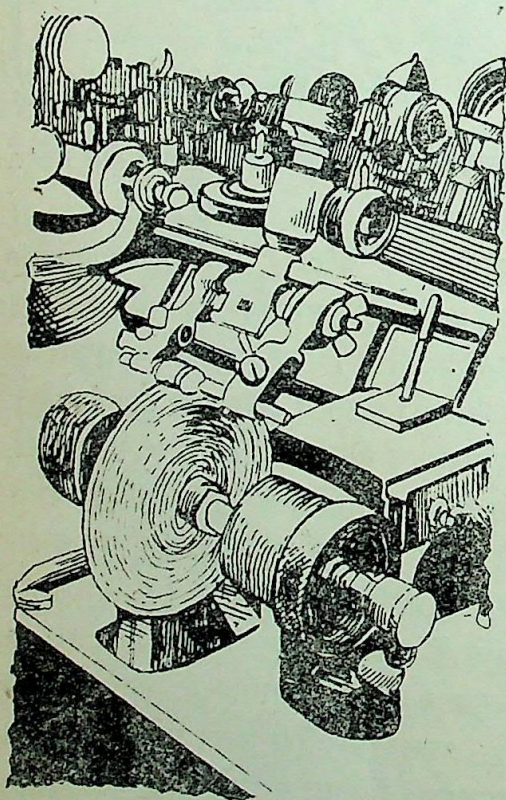
हीरे की बहुमूल्यता के कारण आभूषणों में तो इसका उपयोग अत्यन्त सीमित तथा अल्प है। अत्यधिक धनी व्यक्ति ही इसका शौक कर सकते हैं। हीरक-उत्पादन का चौथाई से भी कम भाग आभूषणों के काम आता है। इसका बहुत बड़ा भाग उद्योगों

में खपता है। इसीलिए हीरे की कटाई तथा छिदाई के विशिष्ट औजार हीरे की नोक के ही बनाने पड़ते हैं। हीरा अकाट्य पदार्थ है। अतः हीरे की नोकयुक्त औजार कड़ी से कड़ी धातु को काटने में समर्थ है। प्रारम्भ में गिनायी गयी इसकी चार जातियों में से बोट जाति ही अधिकतः काम आती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में मित्र-राष्ट्रों को विजय दिलाने में हीरक-उद्योग का प्रमुख हाथ रहा है। इसी की

फास्फोरब्रान्ज निर्मित, कागज से भी पतली गोल आरी द्वारा हीरे की कटाई तथा विभिन्न पहलों की कटाई होती है



हीरे की पालिशिंग



सहायता से युद्धोपयोगी यन्त्र आदि तत्पर और सरलतापूर्वक बनाये जा सके थे। पर आश्रित कुछेक मुख्य उद्योग निम्न प्रकार गिनाये जा सकते हैं : १. चश्मे तथा दूरदर्शियों के लेंस के पालिशिंग में; २. बारीक तार खींचने की डाइयाँ बनाने में; ३. भू-निर्माण के लिए पत्थर के विशाल स्तंभ काटने में; भूमि तथा सुरंगों की खुद में और ५. सानचक्र (emerywheel) बनाने में।

मनुष्य को प्रकृति की सबसे मूल्यवान् देन हीरा है। लाखों वर्षों से पृथ्वी अन्तराल में, उसकी अनन्त गहराइयों जिन विधियों से प्रकृति हीरे का निर्माण करती आयी है, उसकी नकल करना समानगुणी हीरा बना लेना मनुष्य के लिए अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है।

पाँच मंजिल का आतिशबाजी स्तूप

न्यूयार्क की मोबिलकलर कार्पोरेशन कम्पनी ने एक ऐसा इलेक्ट्रानिक आतिशबाजी का स्तूप बनाया है जो पाँच मंजिलों तक विभिन्न आधुनिक आतिशबाजी तथा रंग-बिरंगे राकेटों से सज्जित है। पूरे छः मिनट तक आतिशबाजी का एक दौर चलता है, तब दूसरा प्रारम्भ होता है। उस आतिशबाजी रंग-रंगीली आतिशबाजी के साथ ही टेप-रिकार्डिंग किया हुआ संगीत भी चलता है।

अन्तरिक्ष उड़ान

और

वैज्ञानिक अनुसंधान

रेमण्ड एल. बिस्पलिंगोफ

१९५६ में अमरीका की सरकार ने वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं विकास कार्यों पर ३ अरब ५० करोड़ डालर की धन-राशि व्यय की थी। आज १९६३ में इन कार्यों पर होने वाले वार्षिक व्यय का अनुमान १२ अरब ५० करोड़ तक पहुँच चुका है।

वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं विकास कार्यों पर सात वर्षों में ८ अरब डालर की जो वृद्धि हुई है, उसका आधे से अधिक भाग अन्तरिक्ष अनुसन्धान कार्यों पर व्यय हो रहा है। इनके लिए निर्धारित धन-राशि में से अधिकांश का उपयोग राष्ट्रीय अन्तरिक्ष प्रशासन (NESA) द्वारा किया जा रहा है। शेष धन परमाणुशक्ति कमीशन, प्रतिरक्षा विभाग, मौसम व्यूरो तथा राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान खर्च कर रहे हैं।

‘नेसा’ का मुख्य कार्य पृथ्वी की कक्षागत परिक्रमा करने वाले उपग्रह छोड़ना, अन्तरिक्ष में विद्यमान परिस्थितियों के बारे में अनुसन्धान करना तथा समानव अन्तरिक्ष उड़ानों के लिए प्रयास करना है। समानव अन्तरिक्ष उड़ानों के क्षेत्र में ‘प्रोजेक्ट मर्करी’ के अन्तर्गत उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त की जा चुकी हैं। अब, प्रोजेक्ट एपॉलो के अन्त-

र्गत समानव चन्द्र-यात्रा को सम्भव कर दिखाने के लिए ‘नेसा’ प्रयत्नशील है। आशा है कि इस दशाब्दि के अन्त तक अमरीका चन्द्रमा पर मनुष्य को उतारने और उसे सकुशल पृथ्वी पर वापस लाने में सफल हो जाएगा।

‘नेसा’ इसके अतिरिक्त एक और भी कार्य कर रहा है, जिसके बारे में लोगों को कम जानकारी है। यह कार्य है विज्ञान के क्षेत्र में और भी अधिक उच्चकोटि का अनुसन्धान।

प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान की क्या आवश्यकता है? वास्तविकता यह है कि किसी भी टेक्ना-लोजी के दो पहलू होते हैं—एक आधारभूत अनुसन्धान और दूसरा आधारभूत अनुसन्धान से प्राप्त जानकारी का मानव-कल्याण के लिए व्यावहारिक उपयोग। आज ‘नेसा’ अन्तरिक्ष में उपग्रह प्रक्षिप्त करने और समानव उड़ानें भरने के लिए जो प्रयास और परीक्षण कर रहा है, वे वस्तुतः भूतकाल में वैज्ञानिकों द्वारा किये गए सैद्धान्तिक अनुसन्धान और मनन पर आधारित हैं। यदि आगामी दशाब्दि (१९७०-८०) में

अमरीका को उड़्डयन एवं अन्तरिक्ष-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करनी है तो उसे इन वर्षों (१९६०-७०) में संचालन शक्ति, ईंधन, धातुएँ, नियन्त्रण और पथ-निर्देशन प्रणालियाँ, संचार-प्रणाली, अन्तरिक्ष-विज्ञान और अन्तरिक्ष में विद्यमान परिस्थितियों के बारे में वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य पूरी क्षमता से जारी रखना पड़ेगा।

इन क्षेत्रों में सबसे कठिन चुनौती का सामना वैज्ञानिकों को शक्ति-संचालन एवं परिवर्तन के क्षेत्र में करना पड़ रहा है।

आधुनिक उड़्डयन विज्ञान और अन्तरिक्ष वाहन सम्बन्धी विज्ञान के क्षेत्र में हमारी रुचि केवल दो प्रकार के शक्ति-परिवर्तकों में है—पहली, वह संचालन प्रणाली, जो धक्का देने की शक्ति प्रदान करती है, दूसरी वह जो अन्तरिक्ष में विचरण कर रहे अन्तरिक्ष यान को शक्ति सुलभ कराती है। इन शक्तियों में रसायन शक्ति, सौर-शक्ति तथा परमाणु-शक्ति मुख्य हैं। अमरीका के अन्तरिक्ष अनुसन्धान कार्यक्रम में इन शक्तियों के बारे में विस्तृत अनुसन्धान किया जा रहा है।

आज के विशालतम राकेटों में द्रव-आक्सीजन और मिट्टी का तेल ईंधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनके लिए अधिक शक्तिशाली रासायनिक ईंधनों की खोज करने पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

यह अनुभव किया जा रहा है कि राकेट के ऊपरी खण्डों के अधिक विश्वसनीय संचालन के लिए परमाणुशक्ति सर्वाधिक उपयुक्त होगी। अतः परमाणुशक्ति चालित राकेटों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ३० नवम्बर, १९६२ को नेवादा के परीक्षण स्थल पर एक आणविक राकेट इंजन का भूमि पर सफल परीक्षण भी किया जा

गया है। कुछ वर्षों में आकाश में परमाणुशक्ति संचालित राकेट का प्रथम परीक्षण होने वाला है।

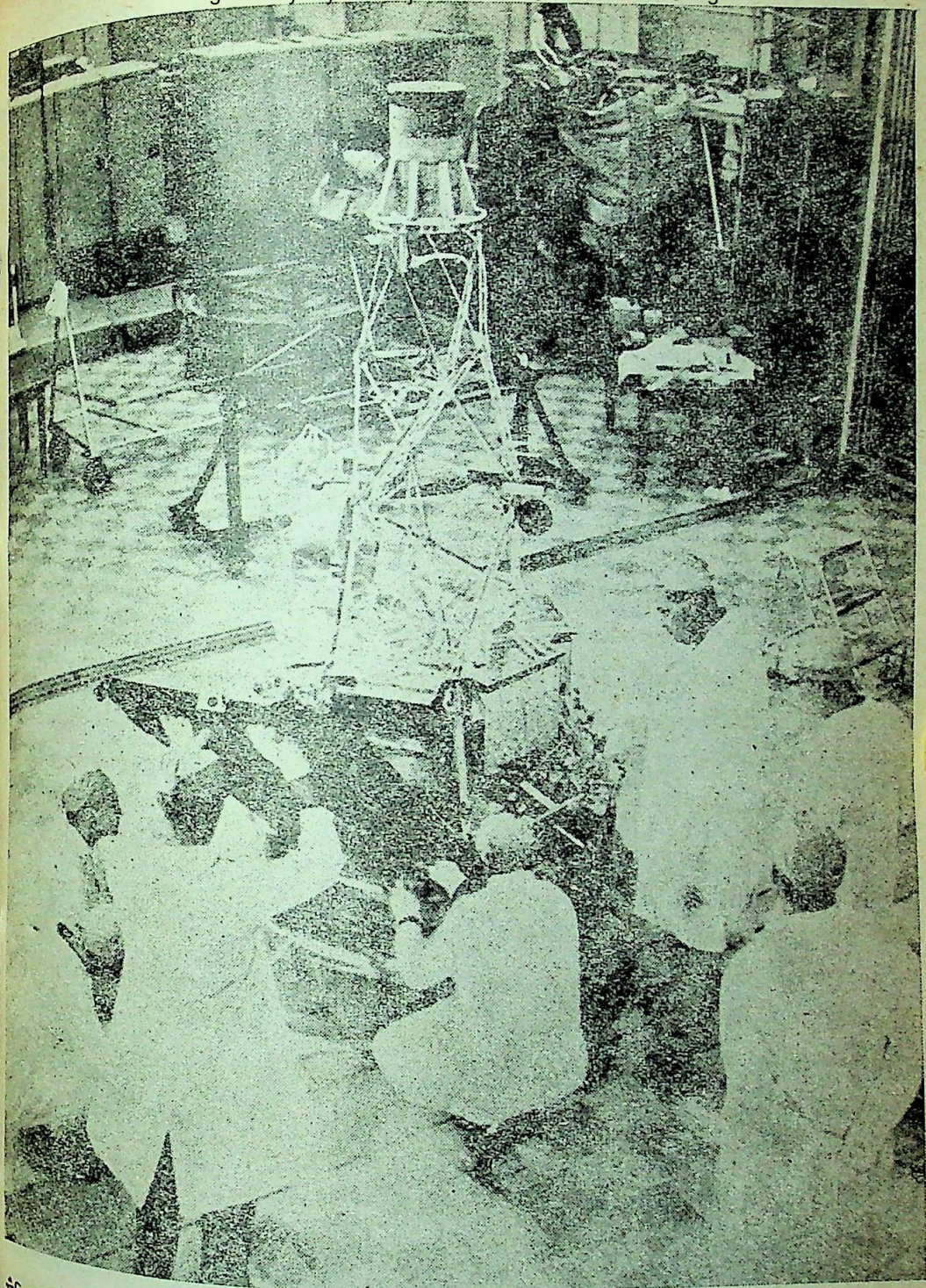
अमरीका के अन्तरिक्ष-कार्यक्रम में संचालन-शक्ति के रूप में विद्युतशक्ति का उपयोग करने की सम्भावना को भी बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया जा रहा है। इस प्रकार की प्रणालियों का वजन २० पौण्ड प्रति किलोवाट से अधिक नहीं होना चाहिए साथ ही वे इतनी विश्वसनीय भी होनी चाहिए कि वर्षों तक अन्तरिक्ष यान सफलतापूर्वक कार्य कर सके।

इस क्षेत्र में अपनी बुद्धि और क्षमता का परिचय देने के लिए वैज्ञानिकों को असीमित अवसर सुलभ हैं। उदाहरण के लिए 'पयुएल सेल' को ले लीजिए। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक गम्भीरता के साथ अनुसन्धान कर रहे हैं।

मनुष्य की इंजीनियरिंग क्षमता और कौशल सदैव से इस बात पर निर्भर रही है कि उसमें प्रकृति द्वारा सुलभ पदार्थों का उपयोग करने की कितनी सूझ-बूझ है। अन्तरिक्ष वाहन और अतिस्वन् विमानों के प्रादुर्भाव के कारण अनेक नए प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगी है।

अन्तर्ग्रही यात्रा एवं पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश की दृष्टि से पदार्थों की उपयोगिता के सम्बन्ध में आगे अनुसन्धान करना बहुत आवश्यक हो गया है। वैज्ञानिकों को ऐसी धातुओं की आवश्यकता है जो अत्यधिक ताप को सहन कर सकें और उन प्रति-कूल तत्त्वों से प्रभावित न हों जिनका सामना अन्तरिक्ष में और पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते समय अन्तरिक्ष वाहन को करना पड़ेगा। इस प्रकार की धातु और पदार्थों का निर्माण करना सम्भव भी हो गया है।

अत्यन्त ठण्डे रासायनिक द्रवों को



पेंटिलर-२ में सौर पट्टियाँ (solarapenels) लगायी जा रही हैं जिसमें ६८०६ सौर बैटरियाँ २२२ वाट विद्युत उत्पादित करेंगी

अन्तरिक्ष-यान में एकत्र करने की दृष्टि से भी इस सम्बन्ध में आगे अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। अत्यन्त निम्न ताप पर टैंकों में द्रव आक्सीजन रखने से विस्फोट

की सम्भावना हो सकती है।

एक उत्तम अन्तरिक्ष वाहन उस समय तक बेकार रहेगा, जब तक उसे अन्तरिक्ष में पूरी तरह नियन्त्रित न किया जा सके।

जून १९९३

यह भी आवश्यक है कि वह उत्तम मैग्निट्यूड की जानकारी प्राप्त करने में बहुत सहायक सिद्ध हुई है।

और संचार-प्रणालियों से युक्त हो। नियंत्रण और मार्गदर्शन प्रणाली का हृदय 'जाइरोस्कोप' नामक यंत्र होता है। पिछले दस वर्षों में इस यन्त्र में महत्वपूर्ण सुधार किये गये हैं।

'क्रायोगोनिक जाइरोस्कोप' में उच्च वैज्ञानिक श्री ओन्स द्वारा १९११ में आविष्कृत उत्तम विद्युत प्रवाह सिद्धान्त का उपयोग किया गया है। उन्होंने यह खोज की थी कि बहुत अधिक ठण्डे (-४६०° फा.) किये जाने पर कुछ पदार्थों की विद्युत-प्रतिरोधक क्षमता विलकुल नष्ट हो जाती है। अब वैज्ञानिक नये जाइरोस्कोप में इस सिद्धान्त का समावेश करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

कर्नल जॉन ग्लेन तथा अन्य अमरीकी अन्तरिक्ष यात्रियों की ऐतिहासिक अन्तरिक्ष यात्राओं के अन्तर्गत पृथ्वी में पुनः प्रवेश करते समय संचार-सम्बन्ध पूर्णतः भंग हो जाते थे। अमरीकी वैज्ञानिक इसका कारण खोजने और इसे दूर करने में प्रयत्नशील हैं।

अपने अस्तित्व के प्रथम ४ वर्षों में 'नेसा' ने १५७ ध्वनि राकेट और ५५ उपग्रह छोड़े हैं। इन सबका उद्देश्य अन्तरिक्ष और ग्रहों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना था। इन परीक्षणों के फलस्वरूप पृथ्वी के बाह्य वायुमण्डल की घनता और रचना के सम्बन्ध में हमें अधिक जानकारी प्राप्त हुई है।

उपग्रहों और ध्वनि-राकेटों के माध्यम से किये गये परीक्षणों द्वारा यह ज्ञात कर लिया गया है कि १ हजार किलोमीटर की ऊँचाई तक विद्यमान वायुमण्डल में क्या-क्या तत्त्व मौजूद हैं तथा इतनी ऊँचाई तक वायुमण्डल का स्वरूप कैसा है? यह सूचना हमारे वायुमण्डल पर सूर्य के प्रभावों को समझाने और इस प्रकार निचले वायुमण्डल में होने वाले मौसम के परिवर्तनों के कारणों

सिद्ध हुई है।

पृथ्वी के कक्षागत दूरदर्शियों द्वारा पृथ्वी के वायुमण्डल के बाहर अन्तरिक्ष में स्थित नक्षत्रों और ग्रहों और आकाशगंगाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने में बड़ी सहायता मिलने की सम्भावना है।

इधर ही मैं अन्तर्ग्रही अन्तरिक्ष के बारे में वैज्ञानिकों ने पर्याप्त जानकारी प्राप्त की है। 'नेसा' ने भी बाह्य अन्तरिक्ष के अनुसन्धान के अन्तर्गत ६ प्रयास किये हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मैरिनर-२ का प्रक्षेपण था। मैरिनर-२ १४ दिसम्बर १९६२ को शुक्र ग्रह के पार्श्व से गुज़रा था।

इन परीक्षणों के द्वारा चुम्बकीय क्षेत्रों, अन्तर्ग्रही अन्तरिक्ष तत्त्वों तथा उल्कापिण्डों और कणों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

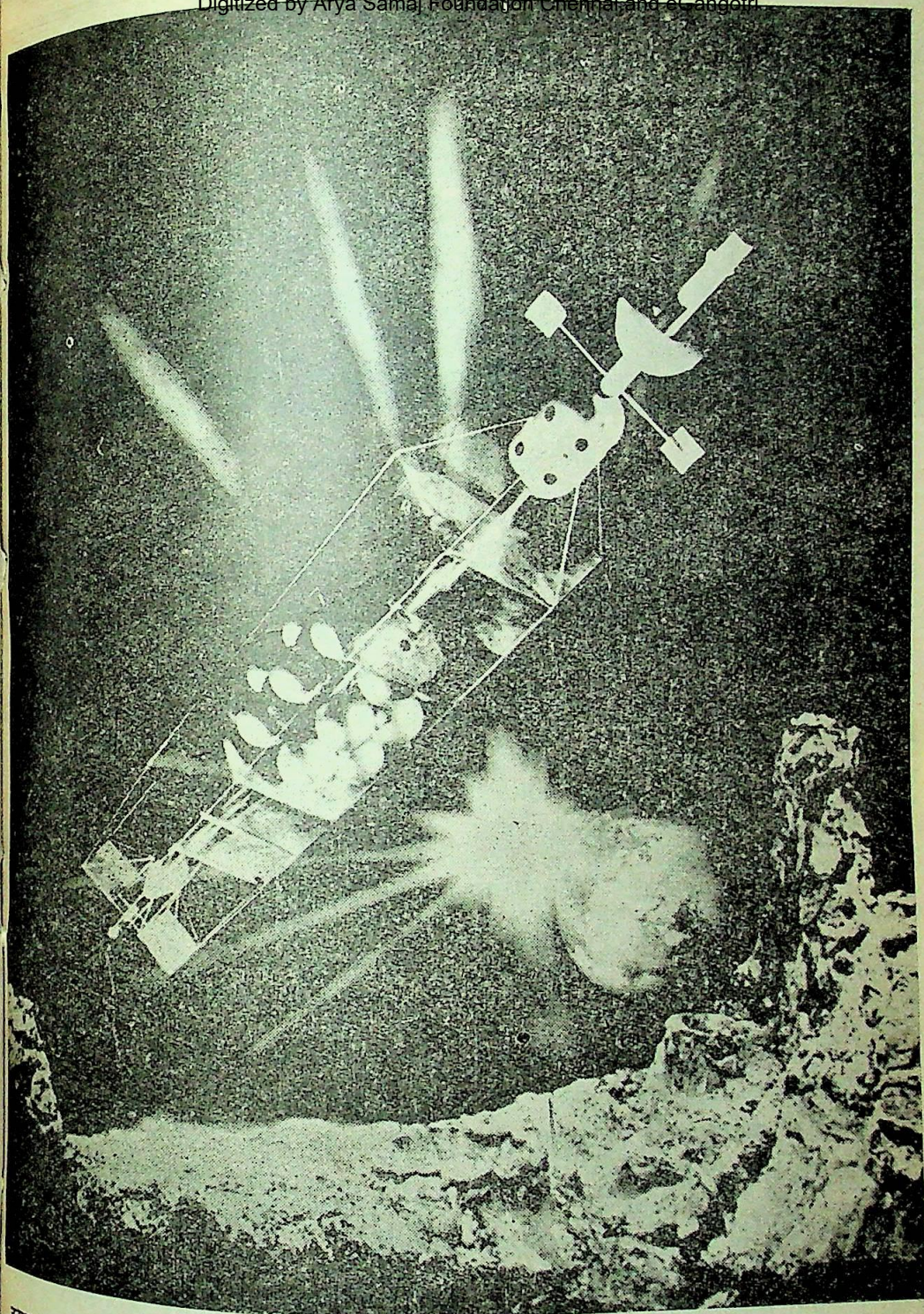
पिछले कुछ वर्षों में अन्तरिक्ष-विज्ञान ने उल्लेखनीय प्रगति की है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अन्तरिक्ष का अनुसन्धान करने के लिए वैज्ञानिकों ने अनेक प्रभावशाली साधन—उपग्रह, ध्वनि-राकेट और अन्तर्ग्रही-राकेट—बना लिए हैं।

इस प्रकार के अनुसन्धान कार्यों के लिए सुशिक्षित और सृजनात्मक क्षमतायुक्त वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की परम आवश्यकता है। इस आवश्यकता का अनुभव करते हुए 'नेसा' ने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक छात्रों को अन्तरिक्ष विज्ञान और टेक्नोलोजी में उच्च प्रशिक्षण प्रदान करने के हेतु विश्व-विद्यालयों की आर्थिक सहायता करने के लिए एक नया कार्यक्रम बनाया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उक्त कार्य के लिए अमरीकी विश्वविद्यालयों को अनेक अनुदान प्रदान किये गए हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत

12 JUN 1963

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

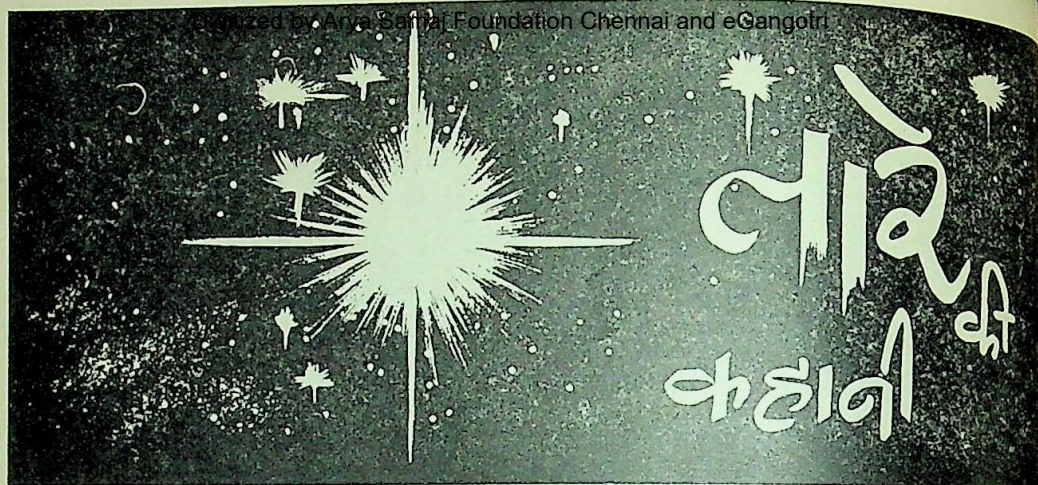
सहायक
यों द्वारा
न्तरिक्ष में
शगुनाओं
सहायता
क्ष के वा
प्राप्त की
के अनु
किये हैं।
-२ का
दिसम्बर
से गुजरा
य क्षेत्रों
ल्कार्पि
जानकारी
हा है।
वज्ञान ने
प्रमुख
नुसन्धान
प्रभाव-
ट और
के लिए
मतायुक्त
म आव-
अनुभव
वैज्ञानिक
नोलोजी
विश्व-
करने के
है। इस
के लिए
अनुदान
के अन्तर्गत
ज्ञान-स्रोत



रसायन-चालित राकेटों से कहीं अधिक शक्तिशाली परमाणु-चालित राकेटों युक्त प्रस्तावित नये अन्तरिक्ष यान का एक नमूना

पहले १०० प्रतिभाशाली छात्र उच्च वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे हैं। १० चुने हुए विश्वविद्यालयों में से हर विश्वविद्यालय के १० छात्र इस दल में लिए गये हैं। आशा है कि भविष्य में इस कार्यक्रम का और भी विस्तार होगा ताकि अमरीका उड़डयन एवं अन्तरिक्ष अनुसन्धान के क्षेत्र में और भी अधिक प्रगति कर सके।

जून १९६३



जगदीशचन्द्र गोविल

आकाश में टिमटिमाते करोड़ों तारों में साधारणतः कोई विशेषता नजर नहीं आती। इतना अवश्य प्रतीत होता है कि कुछ तारे अधिक चमकीले तथा कुछ मन्द प्रकाश के हैं। तारों की चमक में यह अन्तर इस कारण दिखायी पड़ता है कि उनमें ताप की विभिन्नता है और पृथ्वी से प्रत्येक की दूरी भी समान नहीं है। तनिक ध्यान से देखने पर कुछ तारों के रंगों में भी अन्तर दिखता है। कुछ ललछाँहें रंग के होते हैं, कुछ पीले, कुछ हलके नीले तो कुछ श्वेत वर्ण के। रंगों की यह भिन्नता उनकी सतह के ताप की भिन्नता के कारण दिखती है। उदाहरणार्थ ललछाँहें तारों का ताप नीलवर्णी तारों की अपेक्षा कहीं कम होता है।

साधारणतया तो किसी तारे को बरसों तक देखते रहने पर भी उसके रंग-रूप में कोई स्पष्ट परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। किन्तु वास्तविकता यह है कि आयु बढ़ने के साथ तारों के आकार, चमक और रंगों में परिवर्तन होते रहते हैं। तारे जन्म लेते हैं, उनका विकास होता है और एक दिन उनका अन्त भी हो जाता है। आधुनिक ज्योतिषीय गणना के अनुसार

औसत तारे का जीवन-काल लगभग आठ अरब वर्ष आँका गया है। स्पष्ट है कि हमारा जीवन-काल तारे की तुलना में इतना कम है कि अपने अति अल्प जीवन-काल में हम तारे के विकास-क्रम की विभिन्न अवस्थाओं को नहीं देख सकते। तारों से आने वाले प्रकाश का आधुनिक उपकरणों द्वारा विश्लेषण करने पर हम उनकी भौतिक एवं रासायनिक रचना के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं। साथ ही, उनकी गति, ताप तथा आकर्षण आदि का भी अनुमान लगाया जा सकता है। तारों के प्रकाश से प्राप्त वर्णपटों के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा ज्ञात किया जा सका है कि तारों में हीलियम, हाइड्रोजन, आक्सीजन, सोडियम, लोहा आदि वे सभी मूल तत्त्व उपस्थित हैं जो प्रायः हमारी पृथ्वी पर भी पाये जाते हैं। कुछ तारों ने अपना जीवन-क्रम प्रारम्भ ही किया है तो कुछ अपनी प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था तक भी पहुँच चुके हैं।

तारे का जन्म

आधुनिक विज्ञान का अध्ययन गुरुत्वाकर्षण, विकिरण तथा पदार्थों की अन्तः रचना आदि से सम्बन्धित नियमों पर

आधारित है। उन्हीं के आधार पर गणित द्वारा तारों की रचना तथा विकासक्रम के विषय में उपयोगी निष्कर्ष निकले हैं। उनके आधार पर माना जाता है कि आकाशीय पिण्डों की रचना से पूर्व अखिल ब्रह्माण्ड में समस्त पदार्थ एक अत्यन्त ही विरल (लगभग शून्य जैसी) गैस के रूप में फैला हुआ होगा। पानी की तुलना में वह गैस (१०)^{२२} गुना हलकी रही होगी और उसका ताप अत्यधिक रहा होगा। अनुमानतः २-४ अरब वर्ष पहले उस सर्वव्यापी विरल गैस में किसी कारणवश कुछ हलचल पैदा होने से गैस का वह वृहत समुदाय घना हो गया। तत्पश्चात् गुरुत्वाकर्षण के कारण वह गैस सिमटकर कई समूहों में बँट गयी। वैसे प्रत्येक समूह एक-एक नीहारिका बन गया। उन समूहों का भी आकार आरम्भ में अत्यन्त विशाल रहा होगा। विख्यात जोतिर्विद् सर जेम्स जीन्स की गणनाओं के अनुसार प्रत्येक समूह का व्यास कम से कम २-३ प्रकाश वर्ष का रहा होगा, अन्यथा वे बहुरंगी तारे हैं जिनके रंगों से इनकी संरचना तथा ताप आदि का अनुमान लगाया जा सकता है : १. अल्फा वर्गली; २. वनराज, ३. उत्तरा भाद्र तथा ४. ज्येष्ठ

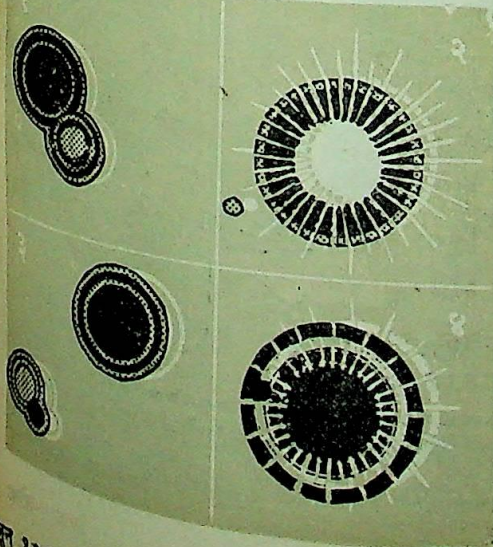
गैस नियमों के अनुसार इससे छोटे आकार के गैस पिण्ड से नीहारिका नहीं बन सकती। प्रत्येक समूह का सिमटना बराबर जारी रहा जिसके कारण उसका घनत्व और ताप बढ़ता गया। साथ ही, समूहों के मध्य पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण के बावजूद अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए नीहारिकाएँ नाचने भी लगीं। उनके घूमने का वेग बढ़ता गया। फलतः घने गैसीय पदार्थ ने छिटक-छिटककर तारों का रूप धारण कर लिया। तब भी वे तारे इतने तप्त नहीं थे कि स्वयं प्रकाश उत्पन्न कर सकें। यद्यपि आज नये-नये तारे अन्तरिक्ष में जन्म ले रहे हैं किन्तु स्वयं प्रदीप्त न होने के कारण वे हमें दिखलायी नहीं पड़ते।

शिशु-तारा

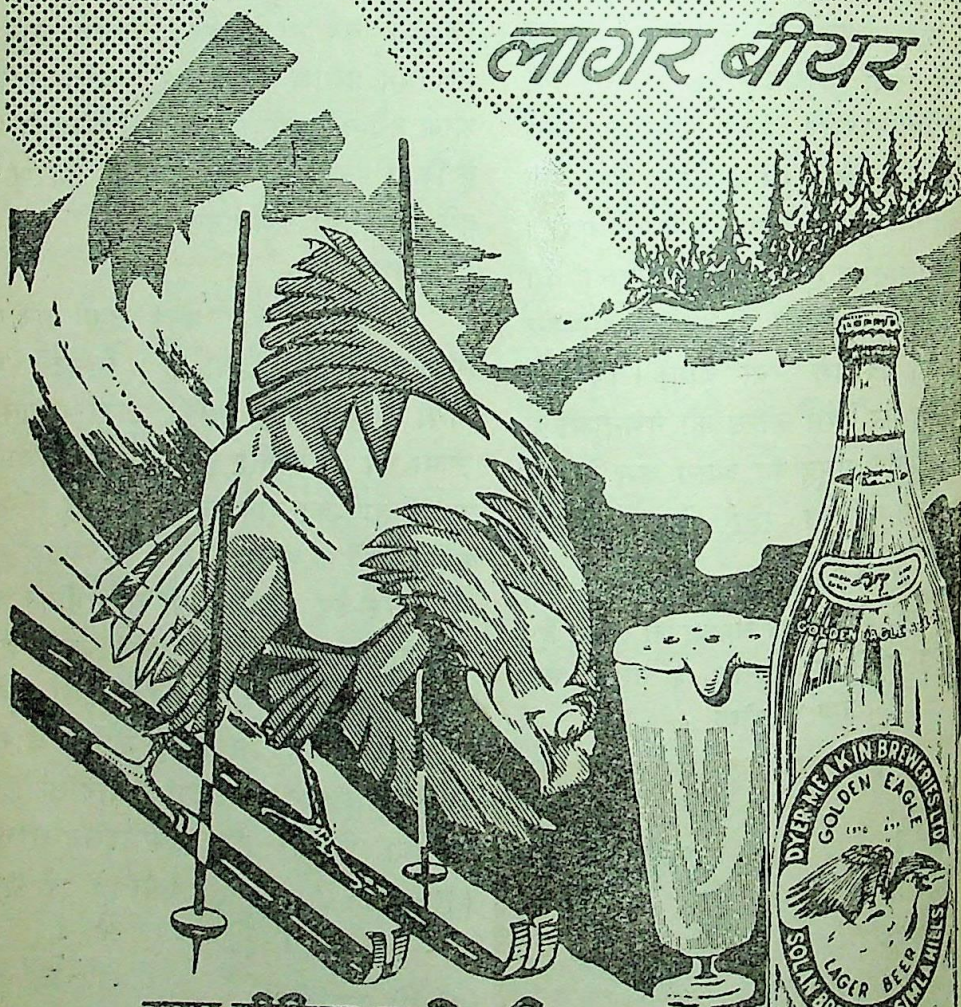
जन्म से लेकर अन्त तक तारे का सिमटना जारी रहता है। सिमटने की क्रिया के अन्तर्गत उसकी ऊर्जा लगातार उष्मा में परिवर्तित होती रहती है जिसके कारण तारे का ताप बढ़ता जाता है। कई करोड़ वर्षों के पश्चात् तारे की सतह का ताप एक-डेढ़ हजार डिग्री और भीतर का ताप दस लाख डिग्री तक पहुँच जाता है। तारे का आकार यद्यपि बहुत फैला हुआ रहता है, तथापि ताप बढ़ जाने के कारण तारा प्रकाशमान हो उठता है और ललछौंहे रंग का दिखता है। एपसाइलन आरगी (Epsilon Aurigae) ऐसा ही एक अल्प वयस्क तारा है।

तारे की युवावस्था

ताप की ओर बढ़ते-बढ़ते तारा अपनी युवावस्था पर पहुँच जाता है। तभी शक्ति उत्पादन का एक नया साधन इसके हाथ लग जाता है। तारों में हाइड्रोजन, ड्यूट्रियम, लीथियम, बेरीलियम और बोरन आदि तत्त्व अधिक मात्रा में होते हैं और ताप ऊँचा होने



शतिल और आनन्द दायक गोल्डन ईगल लागर बीयर

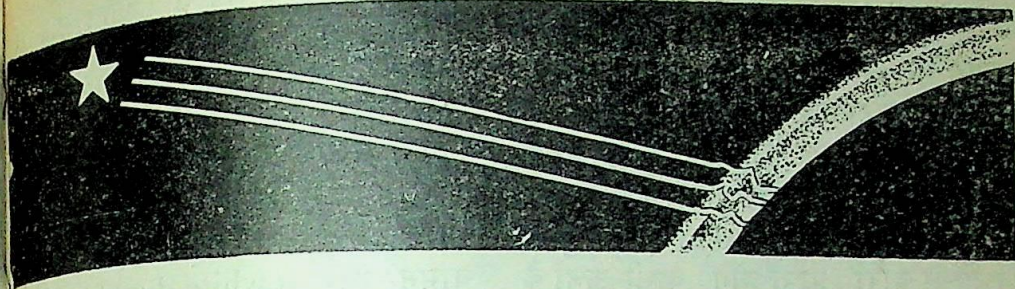


डायर मीकिन ब्रूयरीज लि.

स्थापित १८५५

गोल्डन ब्रेयरी करौली डिस्टिलरी लखनऊ डिस्टिलरी
मोहन नगर ब्रेयरी तथा एलाइड इन्डस्ट्रीज (५ प्र)

सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स : ट्रेड लिक्स प्राइवेट लिमिटेड, ४६ पूसा रोड, नई दिल्ली



तारे की झिलमिलाहट उसकी प्रकाश-किरणों वायुमण्डल को भेद कर आने के कारण है

के कारण इनमें परस्पर ताप-नाभिकीय अभिक्रियाएँ (thermo-nuclear reactions) प्रारम्भ हो जाती हैं जिसमें अकल्पनीय ऊर्जा का उत्पादन होता है। यौवन के प्रारम्भ में २५ लाख डिग्री ताप पर ड्यूट्रियम परमाणु के नाभिक अर्थात् ड्यूट्रान तथा हाइड्रोजन नाभिक के मध्य अग्निक्रियाएँ होती हैं। इसमें अपार ऊर्जा विमुक्त होने के कारण तारों का ताप लगभग ३० लाख डिग्री तक पहुँच जाता है। इस क्रिया में ड्यूट्रान के समाप्त हो जाने पर लीथियम-हाइड्रोजन के मध्य अभिक्रिया हो जाती है जो ताप को ४० लाख डिग्री तक ऊँचा पहुँचा देती है। तत्पश्चात् ४० लाख डिग्री ताप पर लीथियम-हाइड्रोजन की तथा ६० लाख पर सोडियम-हाइड्रोजन अभिक्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। इनके फलस्वरूप समस्त पदार्थ हीलियम में परिवर्तित हो जाते हैं और ताप ७० लाख डिग्री तक पहुँच जाता है। इस युवावस्था में तारा क्रमशः दीर्घकालीन, सीफियाइड और सुपरगिगान्ट की अवस्थाओं में परिवर्तित हो जाता है। इसका दीर्घकालीन परिवर्तन तारे के रूप में आकाश में दिखायी पड़ता है। इसकी चमक की घटा-बढ़ी तथा गुरुत्वाकर्षण में परिवर्तन उपरोक्त क्रियाओं के कारण ही होते हैं। यौवन के चरम पर पहुँचते-पहुँचते तारे की पदार्थ-मात्रा अधिकांशतः समाप्त हो चुकी होती है। हाइड्रोजन अवश्य प्रचुर मात्रा में बची रहती है। अतः तारे को निरन्तर ऊर्जा प्राप्त करने का एक दीर्घजीवी साधन प्राप्त हो जाता है।

प्रौढ़ावस्था में तारा

तारा अब प्रौढ़ावस्था में पदार्पण करता है। ७० लाख डिग्री के विकटतम ताप पर हाइड्रोजन के परमाणुओं का विघटन हो जाता है और प्रोटान तथा इलेक्ट्रान पृथक् हो जाते हैं। फिर चार प्रोटान परस्पर संश्लेषण करके हीलियम परमाणु का नाभिक बनाते हैं। हीलियम नाभिक का द्रव्यमान चार प्रोटानों के द्रव्यमान से तनिक कम होता है। वास्तव में संश्लेषण की इस क्रिया में शेष पदार्थ सीधे ही ऊर्जा में परिणत हो जाता है। इस क्रिया में इंच मात्र के पदार्थ से बहुत ही अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है।

हाइड्रोजन की ताप-नाभिकीय अभिक्रिया के कारण तारे का ताप तथा चमक और भी अधिक हो जाती है। भारी भरकम तारों के आन्तरिक भाग का ताप तो दो करोड़ डिग्री से भी अधिक हो जाता है। ताप के बढ़ने के साथ ही विघटन तथा संश्लेषण की क्रियाएँ तेजी से होने लगती हैं। फलतः आयु बढ़ने पर तारा अपनी हाइड्रोजन तेजी के साथ गंवाता है। फिर भी हाइड्रोजन की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह उसे करोड़ों वर्षों तक तप्त बनाये रखने के लिए काफी होती है।

तारा, वृद्धावस्था में

जब तक हाइड्रोजन-क्रिया जारी रहती है तब तक तारे का ताप और उसकी चमक

दोनों ही बढ़ता जाता है। एक दिन ऐसा आता है जब तारे की समस्त हाइड्रोजन समाप्त हो जाती है। वही तारे की वृद्धावस्था का आरम्भ होता है। उसकी ऊर्जा का महान स्रोत सूख जाता है, और चमक मन्द होने लगती है। गुरुत्वाकर्षण के कारण तारे का सिकुड़ना जारी रहता है। सिकुड़ने की क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाली ऊर्जा के कारण तारे की चमक अचानक ही नहीं बुझ जाती, बल्कि तारा धीरे-धीरे ठण्डा पड़ता जाता है। साथ ही इसका पदार्थ भी अत्यन्त घना होता जाता है। अत्यधिक दबाव बढ़ जाने के कारण पदार्थ के परमाणुओं का एक प्रकार से चूर्ण बन जाता है, और, परमाणु के नाभिक के चारों ओर चक्कर काटने वाले सभी इलेक्ट्रान अपने पथ से हटकर अलग हो जाते हैं। पदार्थ की वह दशा कुछ विचित्र हो जाती है। ताप की अधिकता के कारण वह अवस्था न तो ठोस रह सकती है, न द्रव ही। पदार्थ के परमाणु टूट जाते हैं। नाभिक एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ जाते हैं तथा उनका घनत्व बढ़ता जाता है। वास्तव में इसका

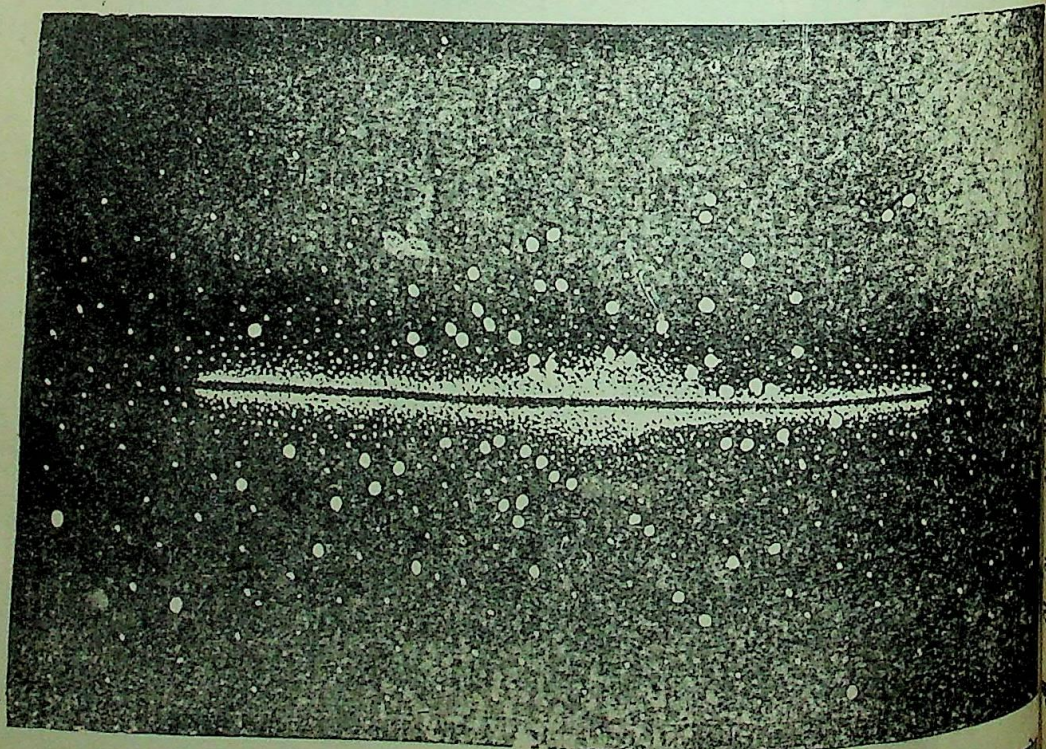
घनत्व पृथ्वी पर पाये जाने वाले ठोस पदार्थ के घनत्व से भी हजारों गुना अधिक होता है। उस पदार्थ को यदि दियासलाई की डिबिया में भरें तो उठाना असम्भव हो जाएगा।

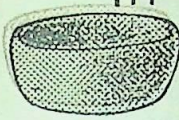
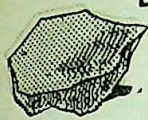
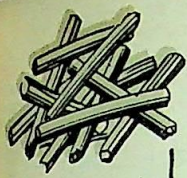
सिकुड़ने के कारण तारे का आकार भी छोटा हो जाता है और श्वेत वर्ण के वामन तारे (white dwarf) के रूप में यह आकाश में चमकता है। लुप्त तारा छोटा साथी इसी प्रकार का वामन तारा है।

जीवन का अन्त

कालान्तर में सिकुड़ने की क्रिया समाप्त हो जाती है और तारे को शक्ति प्रदान करने वाला अन्तिम सहारा भी दूर जाता है। इस कारण तारा तेजी के साथ ठण्डा होने लगता है। मन्द होते-होते अन्ततः यह प्रकाश देना बिल्कुल ही बन्द कर देता है। इस प्रकार गगन मण्डल के अनगिनत तारों की बस्ती का एक सदस्य सदैव के लिए लुप्त हो जाता है तथापि उसका स्थान लेने के लिए कहीं न कहीं किसी नये तारे का जन्म अवश्य ही हो रहता है।

आकाश गंगा का एक दुर्लभ दृश्य





धातु और संकर धातु

सत्यकुमार

कृति में पाये जाने वाले तत्त्वों में दो-
तिहाई धातु हैं। लोहा, ताँवा, जस्ता,
एल्युमिनियम, सोना, चाँदी आदि अधिक
काम आने वाली धातुएँ हैं। इनके अतिरिक्त
भी अनेक धातुएँ हैं जिनके अद्भुत उपयोग हैं।
मैंगनीशियम कम ताप पर ही जलने
लगता है। इसके जलने से एकटीनिक किरणें
निकलती हैं जिनमें तीव्र चकाचौंध पैदा करने
वाली चमक होती है। उन किरणों का
उपयोग फोटोग्राफी, आतिशबाजी तथा
अन्य प्रकार के प्रतिक्रियाएँ प्रारम्भ कराने में
आता है। यह धातु हलकी होने के कारण
एल्युमिनियम के साथ वायुयान के विभिन्न
भाग बनाने में काम आती है।

सोडियम पर जल की क्रिया द्वारा
हाइड्रोजन बनाने की विधि से सभी परिचित
हैं। इस क्रिया में इतना ताप निकलता है
कि सोडियम जलने लगता है। पोटेशियम
इसी का साथी है। इसे किरासन तेल
में डुबोकर रखकर खुली वायु तथा जल
के संसर्ग से बचाया जाता है। द्रवित सोडि-
यम का परमाणु-शक्ति में विशेष महत्त्व है।
साधारणतः आक्सीजन को ही जलने
की क्रिया में सहायक माना जाता है, किन्तु
हाइड्रोजन, जर्कोनियम व हैफनियम धातुएँ

नाइट्रोजन में भी जलती हैं। वायु से
इन धातुओं की रक्षा करने के लिए हीलि-
यम जैसी अक्रिय गैसों का उपयोग किया
जाता है। शुद्ध अवस्था में इन तीनों धातुओं
पर अम्ल, वायु व खारे जल का कोई प्रभाव
नहीं होता। जर्कोनियम के अधिकांश खनिज
बहुमूल्य पत्थरों की श्रेणी में आते हैं। हीरे-
जवाहरातों की जगह प्रायः उन पत्थरों का
प्रयोग होता है। परमाणु-शक्ति संस्थानों
में भी जर्कोनियम की बहुत माँग रहती है।

शुद्ध टाइटेनियम ताँबे की तरह नरम
होता है। यदि इसमें थोड़ा मैंगनीज, क्रोमि-
यम व लोहा मिला दिया जाए तो वह अपने
भार से दूने इस्पात के बराबर मजबूत हो
जाएगा। अतः बड़ी मशीनों के भार को
कम करने में यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। सैन्य-
इंजीनियरिंग में इस धातु की बहुत माँग
रहती है। इस धातु के उपयोग से टैंक तथा
वायुयान के भार में ३०-४०% तक कमी
की जा सकती है। टाइटेनियम के उस्तरे
बहुत मजबूत होते हैं। नाइट्रिक अम्ल का
भी इस धातु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सीरियम धातु लोहे जैसी दिखती है।
रगड़ लगने से इसमें चिनगारी पैदा होती
है। लोहे के साथ इसे मिलाकर चकमक

पत्थर बनाते हैं जो शिपिंग के लिए उपयोग में आता है। इस धातु का उपयोग गैस बत्तियों के मेण्टिल बनाने में भी होता है।

सोडियम परिवार की लीथियम धातु सबसे हलकी है—पानी के भार से लगभग आधी। इस परिवार में सबसे भारी धातु सोडियम है—पानी के भार से $22\frac{1}{2}$ गुना भारी। इरीडियम के साथ ओस्मियम मिला कर फाउन्टेन पेनों के निब की नोक बनाने में काम आता है।

घनवर्द्धता में सोना सबसे आगे है। $3" \times 3" \times 3"$ सोने के टुकड़े को पीटकर एक वर्ग एकड़ पत्तरे में बदला जा सकता है। सोने के वर्क की मोटाई एक इंच के ४० लाखवें भाग से भी कम होती है। एक ग्राम सोने से लगभग डेढ़ मील लम्बा तार खींचा जा सकता है।

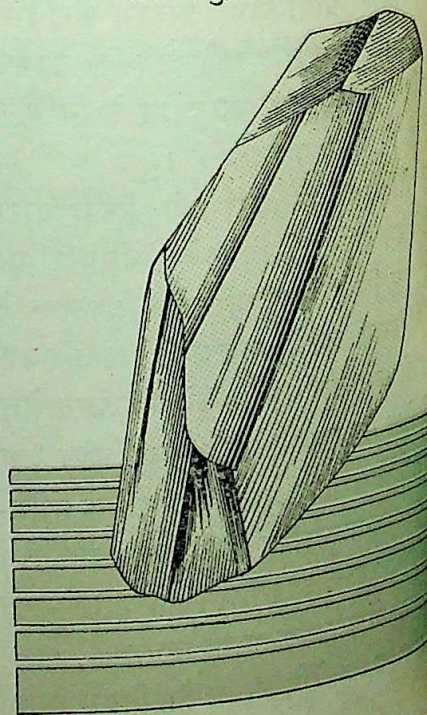
ताँबे का अधिकांश उपयोग विद्युत्वाहक तार बनाने में होता है। वैसे विद्युत् और ताप की श्रेष्ठ सुचालक चाँदी होती है परन्तु आभूषणों तथा साज-सज्जा के अन्य सामान में चाँदी का अधिक उपयोग होने के कारण, विद्युत् वाहक उपकरणों में उसका उपयोग नहीं होता। प्लेटिनम भी अत्यन्त उत्तम धातु है। सोने और चाँदी की भाँति इसका भी उपयोग आभूषणों में विशेषतः होता है। इसका मूल्य सोने से लगभग दुगुना रहता है। इस पर अम्ल आदि का प्रभाव न होने के कारण प्रयोगशाला के कुछ उपकरण बनाने में इसका उपयोग होता है। प्लेटिनम एक उत्तम उत्प्रेरक भी है, अतः गंधक का अम्ल बनाने में इसका उपयोग होता है। युद्धकाल में प्लेटिनम का महत्त्व बढ़ जाता है। अतः उन दिनों आभूषणों के लिए प्लेटिनम के स्थान पर पैलेडियम नामक एक अन्य श्रेष्ठ धातु उपयोग किया जाता है। पैलेडियम और किसी उपयोग में नहीं आता।

विजली के तारों में टंगस्टन तार उपयोग होता है। इस धातु का द्रवांक 3370°C है। युद्ध के प्रतिरक्षा-साधनों में इसका विशेष महत्त्व है। कवच और मिस्त्राण बनाने में यह काम आता है। टंगस्टन को पिघलाना सहज नहीं। यदि इसके द्रवांक को दुगुना कर दिया जाए तो सूर्य की सतह की गरमी का किंचित् आभास हो सकता है।

इसके विपरीत, पारा धातु ऐसी है जिसे पिघलाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। सामान्य ताप ही नहीं, शून्य के 32°F नीचे तक यह द्रव ही बना रहता है। इसमें यदि थोड़ा थैलियम मिला दिया जाए तो शून्य से 65°C नीचे तक भी यह द्रव्य बना रहेगा। इस गुण के कारण इसका उपयोग ठण्डे प्रदेशों में काम आने वाले विद्युत् उपकरणों में किया जाता है।

थैलियम धातु सीसे जैसी होती है। सीसे में मिलाने से इसका द्रवांक बहुत कम होता है। थैलियम विषैला है। इसके लक्षणों की टाणुनाशक के रूप में काम आते हैं।

पारा धातु, केलास के रूप में



विज्ञान

कुछेक ओषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। असावधानी से किया गया इसका प्रयोग घातक सिद्ध हो सकता है। यह अनेक धातुओं से मिलकर उपयोगी संकर धातु (alloys) बनाता है। इसके विपरीत स्वभाव के कारण उन संकर धातुओं का उपयोग खाने के बर्तन बनाने में नहीं करता चाहिए। चश्मे के लेन्स बनाने में भी कैलियम काम आता है। कैलियम के लवण जलने पर हरे रंग का प्रकाश देते हैं।

टेलुरियम के यौगिक दुर्गन्धयुक्त होते हैं। टेलुरियम से काम करने वालों की श्वास में दुर्गन्ध आती है। इसका महत्वपूर्ण गुण यह है कि इसे इस्पात में मिलाने पर इस्पात काटने योग्य नर्म हो जाता है। कलई (टिन) में टेलुरियम मिलाने से मजबूती आ जाती है। ताँबा व एल्यूमिनियम से मिलकर टेलुरियम मशीनें बनाने में काम आता है। चाँदी और सोने के साथ मिलाकर टेलुरियम को नकली दाँत बनाने या दाँतों की पोल करने के काम में लेते हैं। काँच-उद्योग और फोटोग्राफी में भी इसका उपयोग होता है।

इण्डियम धातु की भी अपनी विशेषता है। यह धातु अन्य धातुओं से शीघ्र ही निष्कृत जम जाती है। इण्डियम के ही दो टुकड़ों को यदि मिलाकर दबा दिया जाए तो पुनः उन्हें काटकर ही अलग किया जा सकता है। मोम की तरह इसे भी गरम करके चाहे जिस आकार में ढाला जा सकता

बेरिलियम का असाधारण बड़ा धातु-खण्ड



है। विस्मथ के साथ मिलाने पर इसका द्रवांक 85°C हो जाता है। कल्पना कीजिए, आपने किसी मित्र को चाय पर बुलाया और विस्मथ-इण्डियम मिश्रित धातु को उसके आगे रख दिया। मित्र यह देखकर हैरान रह जाएगा कि चाय के प्याले में चीनी चलाते-चलाते चम्मच न जाने कहाँ गुम हो गया! करेण्ट शाट होने पर अथवा चारों ओर आग लग जाने पर इसके बने फ्यूज तुरन्त पिघल जाते हैं। इसका रंग चाँदी जैसा होता है। नर्म होने के कारण चाहे जिस धातु में इसका टाँका लगाया जा सकता है। प्लास्टर आफ पेरिस की तरह इण्डियम मिश्रित धातुओं के भी खिलौने, मूर्तियाँ आदि बनाये जाते हैं।

गैलियम का द्रवांक 30°C है। इसे हथेली पर रखकर मसल दिया जाए तो यह द्रव्य हो जाएगा। इसका क्वथनांक बहुत ऊँचा 2070°C है। अतः अति उच्च ताप मापने के थर्मामीटर बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। कम ताप पर पिघलने वाली कई संकर धातुएँ गैलियम मिलाकर बनायी जाती हैं।

क्रोमियम अत्यधिक कठोर धातु है। कठोरता में हीरे और कीटोन के बाद इसी का स्थान है। स्टेनलेस स्टील में २०% तक क्रोमियम होता है। इसीलिए उन पात्रों में अम्ल गरम कर लिए जाते हैं। कुछ समय पूर्व इस्पात को काटने वाले यन्त्र प्रायः टंगस्टन-कार्बाइड के बनाये जाते थे, अब क्रोमियम, कार्बन व निकिल मिश्रित संकर धातु से बनते हैं।

थोरियम भी एक उपयोगी धातु है। एक्स-रे तथा वैकुअम ट्यूब आदि में इसका कम उपयोग नहीं। रेडियोधर्मी होने के कारण यह कैंसर जैसे रोगों में तथा घड़ी

[शेष पृष्ठ ५३ पर]

विश्व संसार



ये जेबी-टट्ट

ये टट्टू घोड़ा परिवार के ही सदस्य हैं किन्तु हैं बिलकुल पाकेट-एडीशन—सवा दो फुट से भी कम ऊँचे ! ब्रिटेन के ससेक्स (Sussex) स्थित बोडियम (Bodiam) के निकट साउथ पार्क (South Park) ऐसा ही प्रदेश है जहाँ के शेटलैण्ड टट्टू (Shetland ponies) अपने ठिगने कद के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं । इनकी ऊँचाई २६ से ४२ इंच तक की रहती है ।

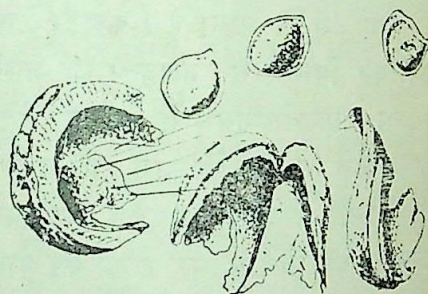
कुत्ते के शौकीनों की तरह इन जेबी-टट्टू के भी शौकीनों की कमी नहीं । मालिक-मालकिन की गोद में गर्मी लेते हुए, कार की खिड़की से मुँह निकालकर ये सैर का आनन्द लेते हैं तथा बाग-बगीचों में बच्चों का मनोरंजन भी करते हैं ।

ये टट्टू छोटे होते हुए भी पूर्ण स्वस्थ, सशक्त और अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ होते हैं । इनके लम्बे-लम्बे बाल शीत से रक्षा करते हैं । अन्य घोड़ों जैसा तबेला इन्हें नहीं चाहिए । आपके दिये हुए किसी भी अलग कोने में मस्त खड़े रहेंगे !



बन्दरों के लिए खाने की घण्टी

अमरीका के उष्ण प्रदेशों में पाये जाने वाले कुछ वृक्ष ऐसे हैं जिनके फल बन्दरों के लिए खाने की घण्टी का काम देते हैं । पर कर तैयार होने पर अपने मिगी जैसे सुन्वद बीजों को छितराने के लिए फल एक विस्फोट के साथ फूट पड़ता है और बीज पुनः पराग के लिए दूर तक बिखर जाते हैं । वह विस्फोट इतना स्पष्ट होता है कि दूर-पास के पेड़ों पर रहते हुए बन्दर उस आवाहन को सुन लेते हैं और खोजबीन कर बीजों को बचाव से खाते हैं ।



आपकी आयु.....१५८ वर्ष !

आपसे मिलिये, आप हैं शेरअली । अजर बेजान के एक ऊँचे पहाड़ पर बसा छोटा सा गाँव आपका खानदानी घर है । पिछले मास ही आपने अपनी १५८वीं वर्षगांठ मनायी है ! फरफराती दाढ़ी, चाँदी जैसी चमकीली है, दाँत कुछेक ही गिरे हैं आँखें जरा ही कमजोर हैं—फिर भी प्रसन्न बहुत हैं ।

इस आयु में भी और कुछ नहीं तो परपोतों और उनके नन्हें परपोतों की देखभाल करते रहते हैं । बारह महीने खुले सोते हैं और डाक्टर की चिकित्सा में आपका विश्वास नहीं !

सुपारी तोड़ चट्टानें

सियाम की खाड़ी से सटी हुई दो पहाड़ी चट्टानें ऐसी हैं मानों सुपारी काटने का सरौता। खाड़ी में जब तक समुद्री भाटा रहता है उसमें से छोटी-सी नाव गुजर सकती है।

ज्वार आते ही पानी विकट वेग से दोनों को टकरा देता है। अनेक बार दोनों के मध्य छोटे-छोटे शिलाखण्ड रखकर देखा गया है जिन्हें उन चट्टानों ने सरौते के बीच रखी सुपारी की तरह तोड़कर रख दिया है। ज्वार उतर जाने पर पुनः दोनों दस फुट का अन्तर छोड़ देती हैं।

प्रखर सूर्य-ताप में भी शीत से मृत्यु

भूमध्यरेखा पर सूर्य-ताप की प्रखरता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जिस पर भी शीत से जमकर २० व्यक्तियों की मृत्यु को विचित्र ही कहा जाएगा। मध्य अफ्रीका की बिरंगा पर्वत श्रेणियों के मुखसिद्ध माउन्ट केरिसिम्बी (१४५०० फुट) के निकट ब्रेन्का नामक ज्वालामुखी का निरीक्षण करने गये हुए ४० व्यक्तियों के अभियानदल की यह कहानी है।

१२००० फुट ऊँचे पहुँचने पर अचानक तूफान ने उन्हें घेर लिया। ठीक दोपहर का वक्त था और सूर्य अपने चरम पर था। सभी अपनी-अपनी नेत्र रक्षक ऐनोंस पहने हुए थे। उस तूफान ने तम्बूओं के पाँव ही उखाड़ दिये। मारे सर्दी के आरोही दल का ठहरना असंभव हो गया। वे न तो वहाँ ठहर ही सकते और न आगे-पीछे जाना संभव था। अतः दल के व्यक्ति एक दूसरे से इस प्रकार सटकर—अँग सिकोड़े, चिपके बैठे रहे मानों अनाज के कोठे में बोरे चुन दिये गये हों। शारीरिक ताप

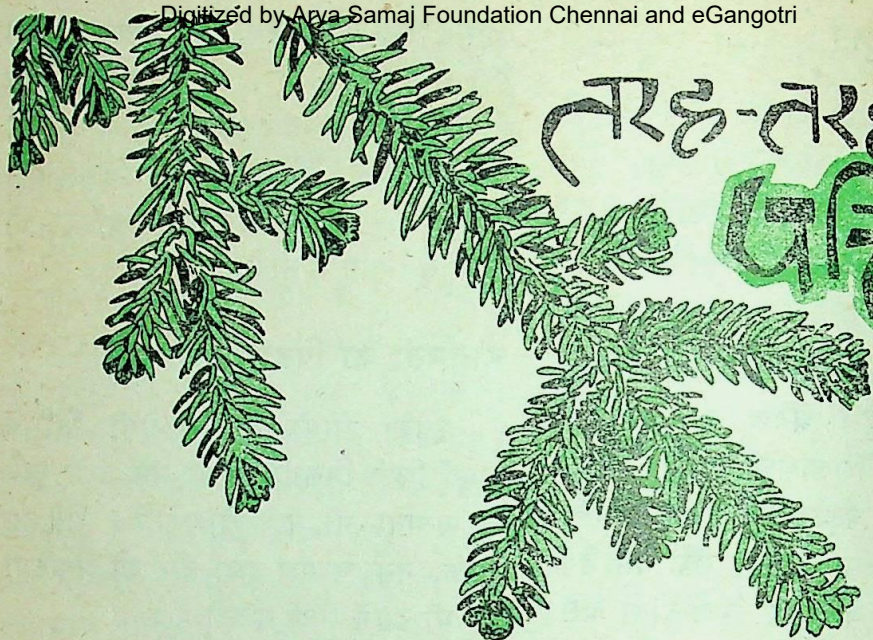
बर्नादे रेलवे को प्रत्येक प्रयत्न विफल होता रहा और पवन में हिम की शीतलता सीमा को लाँघ गयी। केवल छः घण्टे के अन्दर दल का आधा बल, २० व्यक्ति जमकर निष्प्राण हो चुके थे—उस भूमध्यरेखा पर, दोपहर को प्रखर सूर्य-ताप के नीचे !

भानमती का पिटारा

इनके घोंसले में ऐसी-ऐसी विचित्र वस्तुएँ छिपी मिलेंगी जिनके उस जगह होने की कल्पना भी नहीं हो सकती। खोये हुए सिकके, नन्हे चम्मच तथा हीरे की अँगूठियाँ तक भी इसमें मिल सकती हैं।

कौए के भाई-भतीजे, ये पक्षी नीलकण्ठ-परिवार के हैं। चोंच खोले हुए ये नन्हे, इस प्रतीक्षा में हैं कि कब माँ आये और अपना चबाया हुआ नर्म निवाला इनकी चोंच में उतार दे। इन्हें पाल कर बातें करना भी सिखाया जा सकता है। जैसे प्राणियों में प्रायः बुद्धि होती है, वैसे ये आपकी सिखायी बातों को तोते की रट की तरह सुना अवश्य देंगे, किन्तु सोचकर बात का जवाब न दे सकेंगे।





तरह-तरह की पत्तियाँ

कुमारी रेखा टंडन

सुबह की सैर इन दिनों कैसी ताजगी देती है ! इस सैर का सदुपयोग पेड़-पौधों से मित्रता बढ़ाने में भी किया जा सकता है। इस कार्य में पत्तियाँ आपको कुशल परिचायकों का काम देंगी। भिन्न-भिन्न वृक्षों की पत्तियाँ आकार-प्रकार, रंग-रूप और व्यवस्था-क्रम में विभिन्नता प्रदर्शित करती हैं। पत्तियों के बाह्य लक्षणों से ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक वृक्ष किस परिवार का है।

जैसे पेड़, वैसी पत्तियाँ

केले के पेड़ की शोभा लम्बे-लम्बे सूप जैसे इसके पत्ते हैं। नव-पल्लवित अवस्था में ये पत्ते साबूत ही रहते हैं। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ फटते-चिरते जाते हैं। बड़े से बड़े ये पत्ते १० फुट लम्बे और २ फुट चौड़े भी पाये जाते हैं। खम्भे जैसा इसका मोटा तना तथा पत्ते मांगलिक अवसरों पर काम आते हैं।

चीड़, देवदार तथा अनन्नास की श्रेणी के वृक्ष अपने विचित्र जटा-जूटधारी पत्तों से पहचाने जा सकेंगे। कहीं तो लम्बे रेशे

जैसे और कहीं सुई-सूये जैसे इनके पत्ते १८ से १८ इंच तक लम्बे होते हैं। मोर पंखों के नन्हे पंखे जैसे पत्ते ऐसे लगते हैं जैसे किसी मोर ने पंख फैलाये हों।

ताड़-परिवार भी विविधतापूर्ण और विस्तृत है। इनके पत्ते चटाई उद्योग की रीढ़ हैं। लाखों परिवार इसी उद्योग पर निर्भर हैं। इनमें ब्राजील देश का *Raphia taedi gera* नामक ताड़ का वृक्ष तो अपनी श्रेणी के वृक्षों में सबसे बड़े पत्तों का है। इसके पत्ते का डंठल १३ फुट होता है। इसका पत्ता ३० फुट चौड़ाई और ६५ फुट तक लम्बाई प्राप्त करता है।

जल-कमल भी पत्तों में अनोखापन बिखेर चुका है। कमल जल ही में उगता है, जल ही में रहता है फिर भी जल से अलिप्त रहता है। इन कमलपत्रों में भी विशालकाय पत्ते प्रकृति में हैं। विक्टोरिया रेजिया के पत्ते ६ फुट व्यास के बड़े थाल जैसे दिखते हैं। हलके-फुलके बालक तो उस पर बैठकर तालाब की सैर भी कर लेते हैं।

मेडागास्कर में पाये जाने वाले जाली

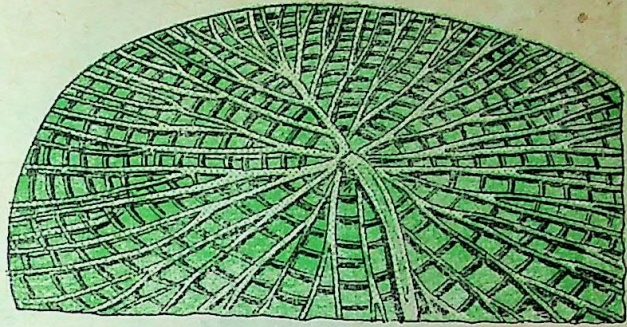
दार समुद्री पौधे (lattice plant) का पत्ता अप्रतिम है। यह पत्ता १८ इंच लम्बा होता है और समूची सतह रेशों-शिराओं से बनी जाली सरीखी होती है।

Pitcher plant रेगिस्तानी न होते हुए भी जल-संग्राहक है और जलाशय के निकट ही रहता है। इसमें दो प्रकार के पत्ते रहते हैं—नन्हे हरे पत्ते और पानी भरे घड़े

जैसी फलियों के आकार के पत्ते। यह पौधा परजीवी वनस्पतियों की तरह अपने आतिथेय वृक्ष के सहारे टिका अवश्य रहता है, अपने आतिथेय को हानि नहीं पहुँचाता। अपने लिए जल का संग्रह इन घड़ों में ही कर लेता है। अधिकांश जल तो उन फलियों में फँस जाने वाले कीटों द्वारा ही मिल जाता है।

गहतूत-परिवार में कई जातियाँ हैं। तदनुसार ही उनकी पत्तियों में विभिन्नता है। गहरे कटथई, लाल, काले और हरे, रंग-बिरंगे इनके पत्ते दो-दो तथा तीन-तीन के जोड़ों में होते हैं। मेडागास्कर का दूसरा

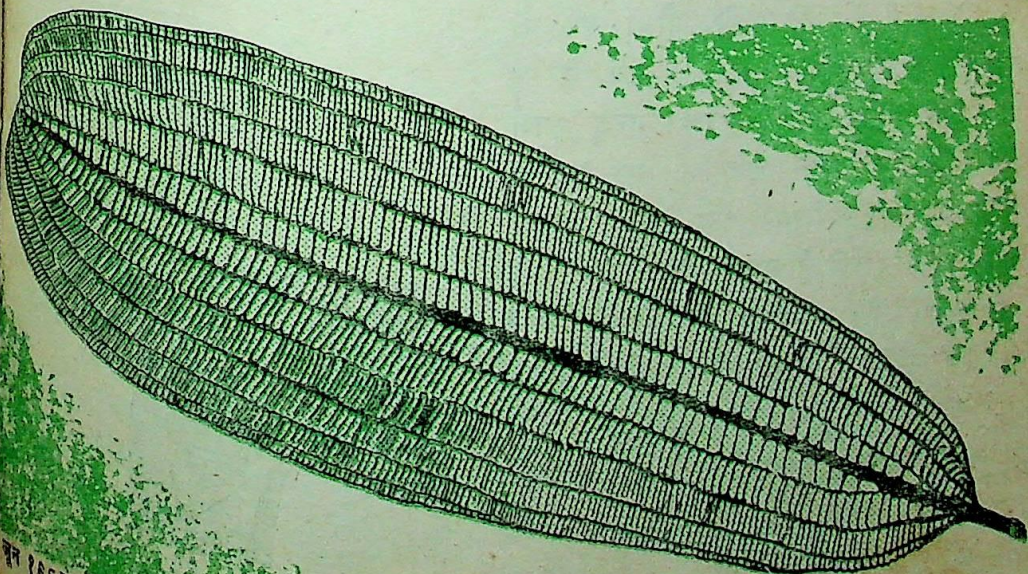
मेडागास्कर में पाये जाने वाले एक जलीय पौधे की दुर्लभ पत्ती। १८ इंच तक की बड़ी, यह पत्ती केवल शिराओं का ही एक जाल जैसी दिखती है

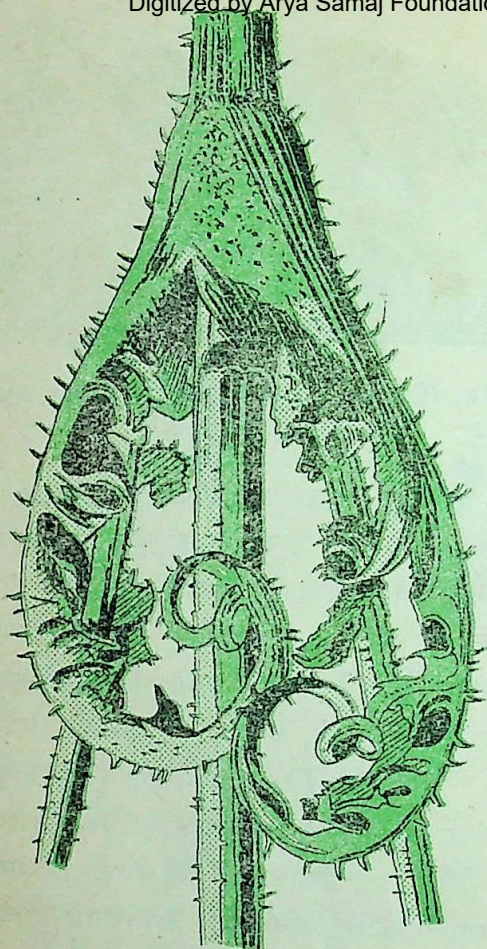


विक्टोरिया रेजिया (*Victoria Regia*) के विशाल, गोल-पत्ते का निचला दृश्य

वृक्ष, जिसे पथिक वृक्ष (Traveller's tree) कहते हैं, आधा केला, आधा ताड़ है। इसके पत्ते केले के वृक्ष जैसे हैं और पत्रनाल ताड़ के एक बड़े पत्ते के समान है। इनमें पानी भरा रहता है जो थके-प्यासे पथिकों को बड़ा सहारा देता है।

टीजेल (Teasel) नामक वृक्ष प्यासा वृक्ष कहलाता है। इसके पत्ते पत्रनाल पर नीचे से इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि एक प्याला सरीखा बन जाता है। उसमें पानी भरा रहता है। सूखे के दिनों में वृक्ष का जीवन इसी पानी पर निर्भर रहता है।





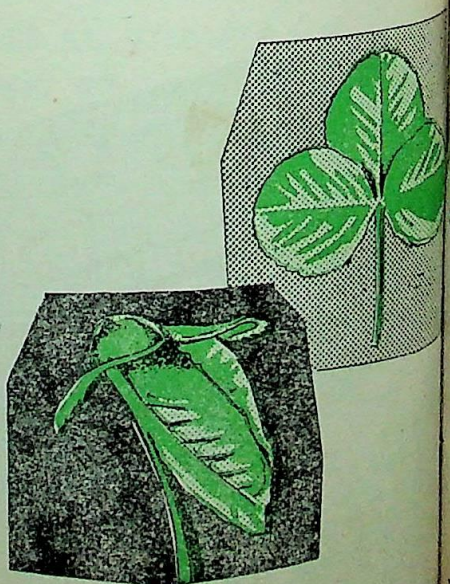
डिप्सेकस (Dipsacus) नामक प्यासे पौधे की ये पत्तियाँ आमने-सामने, नीचे की ओर जुड़ी रह कर एक कप सरीखा बना लेती हैं जिसमें वर्षा का जल एकत्रित रहता है

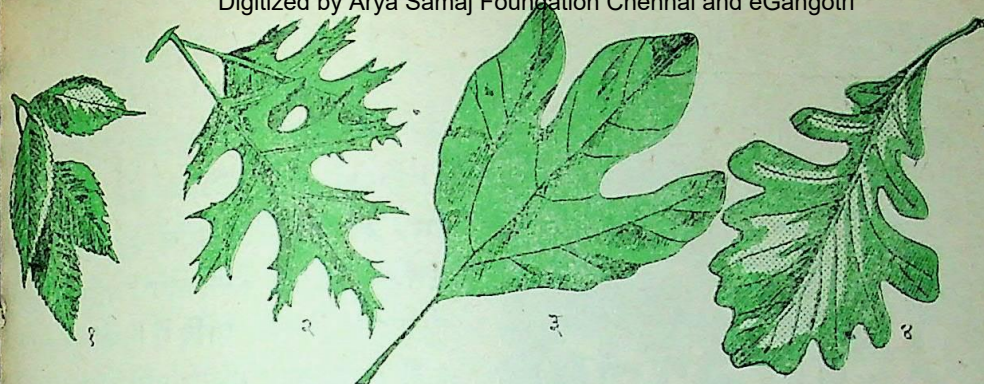
छुईमुई जैसे संवेदनशील पौधों की भी पत्तियाँ बड़ी मनोरंजक हैं। हाथ से छू जाने पर अथवा कोई भी नन्हों वस्तु स्पर्श कर जाने पर, यहाँ तक कि तेज वायु के झोंके से भी पत्तियाँ इस तरह मूँदकर झुकी-झुकी पड़ती हैं मानो लज्जा से गड़ी जा रही हों। वीनस फ्लाइ ट्रैप जैसे परजीवी पौधे की पत्तियाँ तो बड़ी निष्ठुर और घातक हैं। इन पत्तियों पर तो कोई भी कीट, मक्खी, पतंगा आदि के बैठने की देर है; ये तुरन्त बन्द हो जाएँगी और कीट को कैद कर लेंगी।

अनेक पत्तियाँ खाने, पीने तथा के काम में आती हैं। तम्बाकू खाने धूम्रपान के शौकीनों की तो अति प्रिय है। खाने योग्य पत्तियों में पालक, मूली, बथुआ, सलाद तथा बन्दगोभी गिनायी जा सकती हैं। सूँघने के लिए लिप्टस की पत्तियाँ प्रमुख हैं। जरा मसलने पर यूकेलिप्टस आयल की सुगंध देती हैं। रंग जमाने वाली पत्ती मेंहदी है। इसकी पिसाई-घुटाई जितनी बाँधी होगी, रंग उतना ही गहरा निखरेगा। इसकी भी सुगन्ध बड़ी मोहक है।

कुछेक पत्तियों का औषधीय महत्त्व बहुत होता है। नीम की पत्ती तीव्र कीटाणुनाशक है। अतः इसका उपयोग पत्तियों को छाया में सुखाकर गर्म तथा अनाज को सुरक्षित रखने के लिए होता है। इसकी ताजा पत्तियाँ उबालकर उस पानी से नहाने पर चर्मरोग दूर जाता है। तुलसी की पत्ती सर्दी, जुकाम तथा पेट के रोगों में काम आती है।

तीन-पतिया घास की ये पत्तियाँ मुँदकर रात विश्राम तो करती ही हैं, ओसकणों को मोच करके अपनी आर्द्रता अधिक देर तक बनाये रखती





कुछ अनोखी पत्तियाँ : १. अमरीकन ऐल्म; २. रक्तिम ओक; ३. सासाफ्रास; तथा ४. बर ओक

बटे की पत्ती मुँहबन्द फोड़े तथा लिसौड़े की पत्ती मुँह के छालों में काम आती हैं।

पत्तियों का परिचय प्राप्त कर लेने पर विभिन्न जातों को प्रथम दृष्टि में ही पहिचान का उपदेश सरल हो जाता है। विभिन्न जाति के पत्तियों की आकार-प्रकार में, रंग-रस में तथा तने से संयुक्त होने के क्रम में विभिन्नता लिये हुए होती हैं। किसी पत्ती को देखिए तो कोई नन्ही सुई जैसी तो कोई ऐसी विशाल, मानो कोठी का छप्पर ही हो! किसी को किनारी रेशम जैसी फिस-फिस, तो किसी की दाँतेदार आरी जैसी, वह कहीं-कहीं इतनी पैनी कि घिस्सा लगे तो टूटकर ही रख दे!

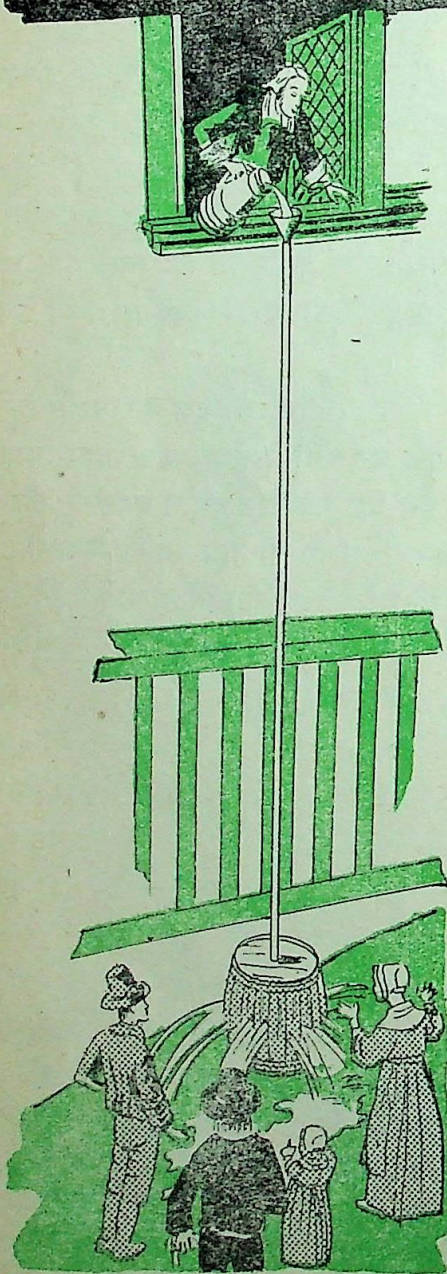
सामान्यतः एक वृक्ष में एक ही प्रकार की पत्तियाँ होनी चाहिए किन्तु सुगन्ध तथा औषधीय गुणों से युक्त सासाफ्रास (Sassafras) ऐसा वृक्ष है जिसमें पत्ते एक नहीं, दो-तीन प्रकार के मिलेंगे। शहतूत का वृक्ष भी प्रायः ऐसी ही विचित्रता लिये हुए होता है।

जिन्गो (ginkgo) वृक्ष की पत्ती खुले हुए पंखे जैसी चौड़ी तथा कटावदार होती है। इस वृक्ष की विलक्षणता वनस्पति-जगत में अन्य किसी में भी नहीं क्योंकि केवल यही वृक्ष ऐसा है जो प्रागैतिहासिक काल में भी था और आज भी है। इसीलिए इसे सजीवाश्म (living fossil) कहते हैं।

समुद्र में तैरते प्लेटफार्म

अमरीका की आगामी अन्तरिक्ष योजनाओं में तैरते हुए प्लेटफार्म बहुत उपयोगी रहेंगे। अमरीका के जनरल डिनेमिक्स कार्पोरेशन ने घोषित किया है कि ऐसे प्लेटफार्म वह कम्पनी बना सकेगी जो एक प्रकार से चलते-फिरते द्वीप का काम दे सकेंगे। स्टेबल ओशन प्लेटफार्म नामक ये चल-जा सकेंगे। अभी तक इन कार्यों के लिए बड़े-बड़े जलपोत ही काम आते थे, किन्तु प्रायः ही उनके संतुलन बिगड़ जाते थे। वह कठिनाई इन प्लेटफार्मों में न होगी तथा ये सुरक्षित और कम खर्चीले भी रहेंगे।

दूब दूरा थंन्त्र - संचालन



राजेन्द्रप्रसाद गर्ग

“थोड़ा पानी और दीजिए, मैं लगे भरें पीपे को तोड़कर दिखा दूंगा। फ्रेन्च वैज्ञानिक और प्रसिद्ध दार्शनिक पास्कल (Pascal 1623-62) ने जब अपने सहयोगी अन्य वैज्ञानिकों के बीच यह कहा तब उसका उपहास करने लगे। पास्कल ऐसे उपहास और विरोध आदि से विचलित होने का नहीं था। उसने अपना प्रयोग दिखाने के निश्चित दिन और समय पर सबों को निन्वित कर लिया। लकड़ी का एक मजबूत पीपा पानी से भरकर अपने मकान की दीवार से सटाकर ऊँची खिड़की के नीचे रख दिया। ढक्कन के बीचोबीच एक इंच मोटा १२ फुट लम्बा पाइप का एक सिरा प्रकट करा दिया। पीपे और ढक्कन को चाँदी और ठीक से सीलबन्द कर दिया। तत्पश्चात् खिड़की पर से पाइप के दूसरे सिरे में एक जग से थोड़ा ही पानी डाला कि पीपा तड़ाक से फट गया और पानी बह निकला।

हाइड्रालिक्स

पास्कल ने जल-शक्ति के इस विज्ञान का नाम हाइड्रालिक्स रखा। ग्रीक शब्द हाइड्रा (hydras) अर्थात् जल और आलस (aulas) अर्थात् नली शब्दों से हाइड्रालिक्स शब्द बना है। इसका सिद्धान्त पास्कल ने इस प्रकार प्रस्तुत किया।

‘चारों ओर से बन्द, एक पात्र में पानी की सतह के किसी भी भाग पर दबाव लगाया गया दबाव पूरी सतह पर समान भाग में बँट जाएगा।’

इसे ‘पास्कल-सिद्धान्त’ कहा गया। और भी सरलता से इस प्रकार समझा सकता है।

सामान्यतः किसी भी तरल पदार्थ को किसी बन्द पात्र में तब तक चापित किया जा सकता जब तक उस पर दबाव

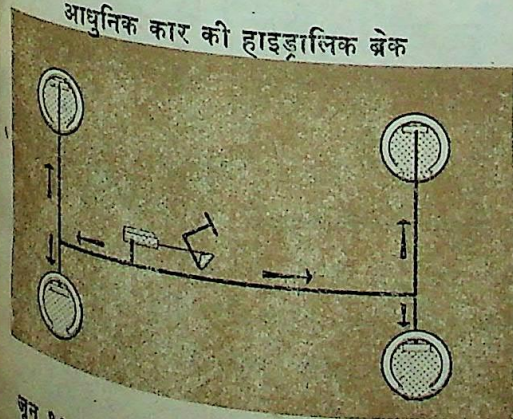
धारण दाब न दी जाए; क्योंकि किसी भी अत्यधिक अवस्था की अपेक्षा केवल द्रवावस्था में ही पदार्थ के अणु अधिक से अधिक संयोजित रहते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक नली को पानी से भरते ही जाएँ तो वह समस्त भाग बाहर निकल जाएगा जो अतिरिक्त रूप से उसमें भरा गया था। इसी का परिवर्तित रूप निम्न उदाहरण में देखें।

U के आकार की दो समान भुजाओं युक्त पानी से भरी नली के एक सिरे पर यदि १० इंच पानी और डालें तो दूसरे सिरे से १० इंच ही पानी बाहर निकल जाएगा। उसी पानी को यदि एक पम्प द्वारा १० पौण्ड दाब देकर दबाया जाए तो दूसरे सिरे पर रखे हुए १० पौण्ड वजन को वह पानी ऊँचा उठा देगा। उसी दूसरे सिरे को यदि दो समान भुजाओं में बाँटकर उन पर १०-१० पौण्ड वजन रखे जाएँ तो पहले की ही भाँति चापित किया हुआ १० पौण्ड दाब का पानी इस बार दोनों वजनों को अर्थात् २० पौण्ड वजन को १० इंच नहीं, केवल १ इंच ऊपर उठाएगा। इसी प्रकार दो के स्थान पर चार वजन रख दिये जाएँ तो १ इंच नहीं, २ १/२ इंच ही ऊँचा उठाएगा।

द्रव-संचालित मशीनें

यह सिद्धान्त आज के यंत्र युग में बड़ा लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। जहाँ बड़े भार होने के कार्य हों वहाँ इसी का सहारा लिया

आधुनिक कार की हाइड्रालिक ब्रेक



जाता है। मिलो में कपड़ा तथा सूत की गाँठें बाँधने के भारी-भरकम प्रेस, वर्कशाप में कारों तथा ट्रकों को अधर उठाना, माल-वाहक ट्रक के पिछले भाग को उलटकर ट्रक खाली कर देना आदि ऐसे ही कार्य हैं जिनमें अत्यधिक दाब तथा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे कार्यों को थोड़ी ही शक्ति के व्यय से सम्पन्न करने में हाइड्रालिक्स का सिद्धान्त काम आता है।

मोटर कार की ब्रेकें

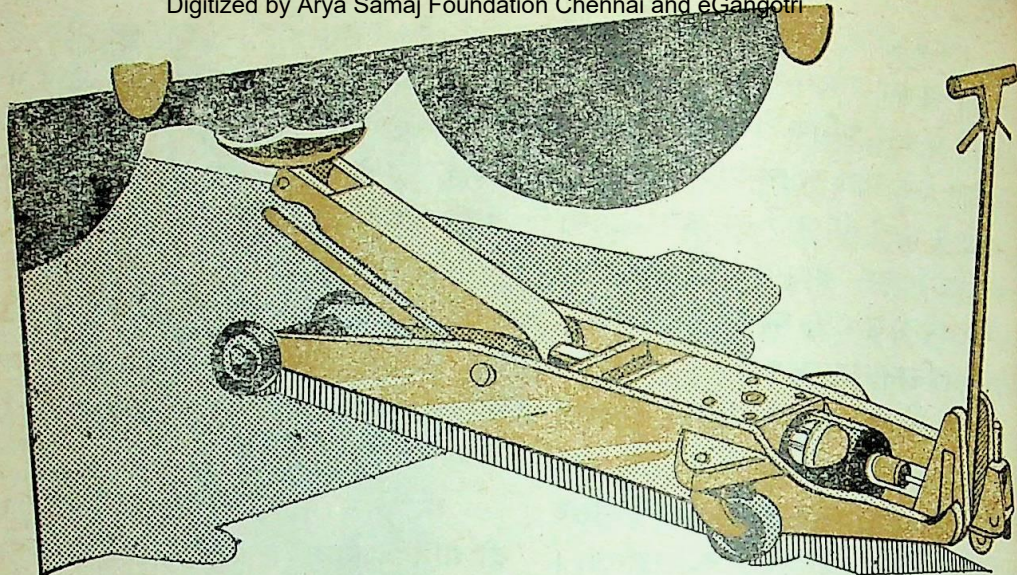
आधुनिक कारों में द्रव-संचालित ब्रेकें ही अधिक क्षमतायुक्त पायी गयी हैं। ब्रेक-पैडिल का सम्पर्क तेल की एक छोटी-सी टंकी से रहता है। ब्रेक के दबते ही टंकी से तेल निकलकर पाइपों द्वारा चारों पहियों में बँट जाता है। वह दाबयुक्त तेल पहियों में लगी ब्रेक-लाइनिंग को फैला देता है। फलस्वरूप ब्रेक-ड्रम पहियों से स्पर्श करते, दबाते हुए पहियों की गति को रोक देते हैं। ब्रेक-पैडिल छोड़ देने पर वही तेल पुनः टंकी में लौट आता है और पहिये पुनः घूमने को स्वतंत्र हो जाते हैं।

द्रव-संचालित जैक

इसी प्रकार कार तथा ट्रक आदि को उठाने के लिए जैक बनाये जाते हैं। तेल एक बड़े सिलिण्डर में एक पम्प द्वारा चापित किया जाता है। वह निर्धारित दाबयुक्त तेल सिलिण्डर में भर जाता है तभी उससे सम्बन्धित हैण्डिल ऊँचा उठकर अपने ऊपर रखे भार को उठा देता है।

जल-संचालित एलीवेटर

भवन-निर्माण में कहीं-कहीं लिफ्ट भी इसी सिद्धान्त पर बनाये जाते हैं। भवन के तहखाने में एक कुआँ उस गहराई तक खोदते हैं जिस ऊँचाई तक लिफ्ट ले जाना हो। उस कुएँ में पिस्टनयुक्त एक सिलिण्डर बिठाया जाता है। सिलिण्डर के ऊपर लिफ्ट



हस्तचालित, छोटा हाइड्रालिक जैक

रखी जाती है। ज्यों-ज्यों पिस्टन के जोर से सिलिण्डर में पानी भरता जाता है, वह लिफ्ट को ऊपर उठाता जाता है। इसी प्रकार लिफ्ट को नीचे उतारने के समय पानी की मात्रा घटाते जाते हैं।

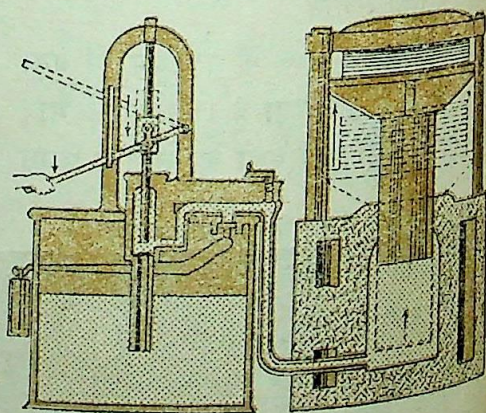
हाइड्रालिक प्रेस

यह प्रेस भी अत्यन्त उपयोगी है। चित्रांकित उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा कि पिस्टन का १ वर्ग इंच का प्लन्जर १०० पौण्ड दाब सहित पानी को नीचे दबाता है। वह सिलिण्डर नीचे की ओर से दूसरे ऐसे सिलिण्डर से संयुक्त रहता है जिसका प्लन्जर ६०० वर्ग इंच का है। पानी की दाब दोनों प्लन्जरों पर एक समान अर्थात् १०० पौण्ड प्रति वर्ग इंच की होने के कारण बड़ा प्लन्जर जो ६०० गुना अधिक विस्तार का है, ६००० पौण्ड की दाब उत्पन्न कर सकेगा, अर्थात् इतना भारी वजन उठा सकेगा।

ऐसा ही एक अन्य हाइड्रालिक प्रेस

धातुओं की भारी, मोटी चद्दरों को विभिन्न आकारों में मोड़ने के लिए काम आता है। इस प्रकार हाइड्रालिक्स के आधार पर बनाये जा रहे यंत्रों की शृंखला काफी लम्बी है और उस शृंखला में नित नयी कड़ियाँ जुड़ती ही जा रही हैं।

हाइड्रालिक प्रेस : बायीं ओर के बड़े पिस्टन को नीचे के पानी द्वारा उठाया जाता है। इसी के ऊपर दबने वाली वस्तु रखी जाती है। बायीं ओर छोटे पिस्टन द्वारा पानी चापित किया जाता है।



मुझे सीपि कहते हैं

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

आज मेरी आपसे पहली मुलाकात नहीं। पहले भी मुझसे आपकी भेंट होती रही है। सुबह ही तो मन्दिर में आपने मेरी गोद से चन्दन लेकर माथे पर लगाया था ! आज नायलान के बटनों के आगे भले ही आप मुझे भूल चले हों, परन्तु उससे पहले तो मेरे ही बने बटन आपके वस्त्रों की शोभा बढ़ाते थे ! आपके कमरों के फर्श पर मेरा ही चूरा चमकता है और वैद्यराज भी मुझी को पीसकर दवा के रूप में रोगियों को देते हैं। ललित कला-प्रेमी सज्जन भी मेरा बहुत आदर करते हैं। मेरे ऊपर सुंदर-सुंदर रंगों की कूची फेरकर अपने डाइंग रूम में सजाकर रखते हैं।”

मैंने कहा—“यह सब तो तुम्हारे कठोर कवच की करामात है।”

“यही तो,—” वह बोली। “ऊपर से हम जितने कठोर हैं, अन्दर से उतने ही कोमल भी हैं। सच पूछो तो तीन परत का यह कोट हमने शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए ही पहन रखा है। वैसे भी पक्षी और अन्य जल-जन्तु हमें टिकने नहीं देते। चूने से बनाया हुआ यह बाना भी यदि हम छतार फेंकें तो आये दिन सर्दी-गर्मी और

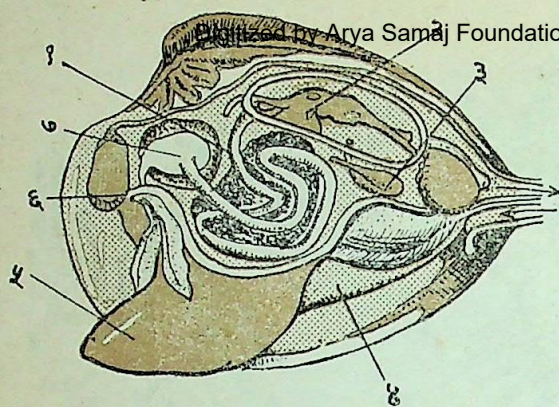
हवा-पानी के झोंके हमारा जीना ही मुश्किल कर दें।”

मैंने बीच ही में कहा—“कुछ कीड़े-मकोड़ों के कवच तुम्हारे कवच से कहीं लचकदार होते हैं।”

“यह तो ठीक है, पर हमारे कवच जैसी सुन्दरता उनके खोल में कहाँ !” सीपी गर्व से बोली—“हमारे कवच के चमकदार अस्तर जैसा उनके पास कुछ भी नहीं है। पानी में घुले ह्यूमिक (humic) और कार्बनिक (carbonic) अम्लों से हम अपने कवच की बाहरी परत में भी चमक पैदा कर लेते हैं। शिशु अवस्था से ही हम इसे शरीर पर मढ़ना शुरू कर देते हैं ज्यों-ज्यों शरीर बढ़ता है, पानी में घुले हुए चूने की मदद से कवच और नीचे का अस्तर (mantle) बढ़ता रहता है। कवच के बाहर की धारियाँ इसकी आयु के चिह्न हैं।”

“सीपी रानी, तुम रहती कहाँ हो ?” मैंने पूछा।

“अरे, यह तो बताना भूल ही गयी ! नदी, ताले और बहते हुए जल में भी मुझे पा सकोगे। मेरे अनेक कुटुम्बीजन समुद्र के खारे जल को भी पसन्द करते हैं। मुझे पोखर-



द्वि-कोशीय सीपी के आन्तरिक भाग : १. आँतें; २. हृदय; ३. गुर्दा; ४. खोल; ५. पाँव; ६. मुँह; ७. पेट

तालाब का रुका हुआ पानी नहीं सुहाता । वहाँ तो मेरा दम घुटने लगता है ।”

“खाती-पीती क्या हो ?”

“पानी की सूक्ष्म वनस्पतियाँ और जन्तु जिन्हें आप सूक्ष्मदर्शी के बगैर नहीं देख सकते, उन्हें मैं अपना भोजन बनाती हूँ । इधर देखिये, दो दरवाजे नजर आते होंगे !”

“हाँ, निचले दरवाजे पर तो सुन्दर भालर-सी भी दिखाई दे रही है ।”

“ठीक है, मैं इसी के द्वारा पानी पीती हूँ और ऊपर वाले दरवाजे से निकालती रहती हूँ । जरा रुकना, बड़ी प्यास लगी है । कभी-कभी तो लगता है मानो प्यास बुझेगी ही नहीं ।”

मुझे शरारत सूझी । हलकी नोक की तरह का माँस का टुकड़ा जो कवच के बाहर निकल रहा था, उसे छूकर पूछा—“यह क्या है ?”

“यही तो शरारत है !” कहकर सीपी ने उसे झटके से भीतर कर लिया । खुले हुए कवच का मुँह कसकर बन्द हो गया । फिर झुंझलाती हुई बोली—“यह हमें पसन्द नहीं । यह हमारा पाँव है । आज तुमने पाँव को हाथ लगाया इसलिए छोड़े देती हूँ । इस

पाँव की सहायता से कीचड़ और दलदल में हम अपना रास्ता तय करते हैं । यह हमारे शरीर का सबसे सुदृढ़ भाग है । संकट पड़े पर कछुए की तरह हम अपने अंगों को न सिकोड़ें तो कैसे काम चले ? जब तक खतरा दूर नहीं हो जाता, हम अपने खोल में ही दुबके रहते हैं । इस कवच को खोलने और बन्द करने के लिए सुदृढ़ तन्तु भी हैं ।”

मैंने कहा—“तुम्हारा जीवन बड़ा संकटमय है ।”

“फिर भी तो तुम हमें नहीं छोड़ते ! हम तुम्हारे लिए क्या नहीं करते ? तुम्हारे नदियों के पानी को जन्तुरहित करके साफ रखते हैं । तुम्हारे उपभोग के लिए सर्वस्व बलिदान करते हैं । सबसे बढ़कर तो तुम्हें मोती हमीं से मिलते हैं । और, तुम हो कि अपनी तो अपनी, मछलियों तक की भूख मिटाने के लिए उनके मुँह में हमें पकड़ पकड़ कर भोंक देते हो !”

“यह तो तुम ठीक कहती हो”—सलज्ज मैंने स्वीकार किया ।

“तुम्हें शायद पता नहीं, मोती पैदा करना हमारे लिए कितनी कष्ट-साध्य साधना है । जब हमारे शरीर में कोई परोपकारी जीवी साधारणतः फ्ल्यूक (fluke) के विकासक्रम की कोई अवस्था प्रवेश कर जाती है तो उसकी जलन और कुरेद से हमारा शरीर परेशान हो जाता है ! वहीं मोती बनना शुरू हो जाता है । यदि तुम्हारे शरीर के कोष-समूह (tissue) में इस प्रकार की कुरेद-बुन शुरू हो जाए तो तुम्हें चैन ही न पड़े और कैंसर तक के लक्षण शुरू हो जाएँ ।”

मैंने फिर कहा—“यह तो प्राकृतिक बात है । हम जानबूझ.....”

“.....क्या नहीं करते ? कल्चर मोती बनाने वालों को नहीं देखा आपने ? वे हमारे शरीर में तरह-तरह के जीवों को प्रवेश कराते हैं ।”

दलदल कर हमें मोती उगलने को बाध्य करते हैं।
 यह हमारे कंठ पड़ने के लिए मोती के लिए हमें ३-४ वर्ष तक कष्ट
 भोगों को भोगने पड़ते हैं। बड़े मोती के लिए तो कभी-
 कभी ६-७ वर्ष भी लग जाते हैं।”
 “सुना है, मोती तो आपके मुँह में
 स्वाति नक्षत्र में वर्षा की बूंद से बनता है।”
 “आपके कवियों को और सूझता ही
 क्या है? इसी वजहाने आप हमारे प्रति अपनी
 कृता को छिपाने के लिए जो न करें वह
 बोझ ही है।”
 मैं कुछ न बोल सका। सीपी ने ही बात
 को बढ़ायी—“एक घण्टे में हम करीब ढाई
 लिटर पानी सोख लेते हैं। पानी में घुला
 हुआ आक्सीजन हमारे श्वसन में काम आता
 है। शरीर के दोनों ओर जुड़ी चार थैलियाँ
 अपने छिद्रों से पानी सोख लेती हैं। छोटे-छोटे
 जंतु जो पानी के साथ शरीर में चले आते हैं,
 मुँह की ओर आगे ढकेल दिये जाते हैं। हम
 भी अच्छे-बुरे भोजन की पहिचान कर लेते
 हैं। हमारे पेट में छोटी आँत की ओर
 गतता हुआ एक टुकड़ा होता है जिसे
 क्रिस्टलाइन स्टाइल (crystalline style)
 कहते हैं। उससे हमें भोजन पचाने में
 सहायता मिलती है। हमारा हृदय
 (rectum) को चारों ओर
 घेरे हुए है। हमारे जननांग भी
 शरीर आँतों के कुण्डल में जमे रहते
 हैं। केवल बाहर देखकर हमारे नर
 मादा का अन्तर करना बड़ा कठिन
 है।”
 मैंने भिन्नककर पूछा—“मैं तो
 तुम्हें सीपी रानी कहता आया हूँ।
 आप.....?”
 सीपी इस अप्रत्याशित प्रश्न पर
 शरमा कर रह गयी।

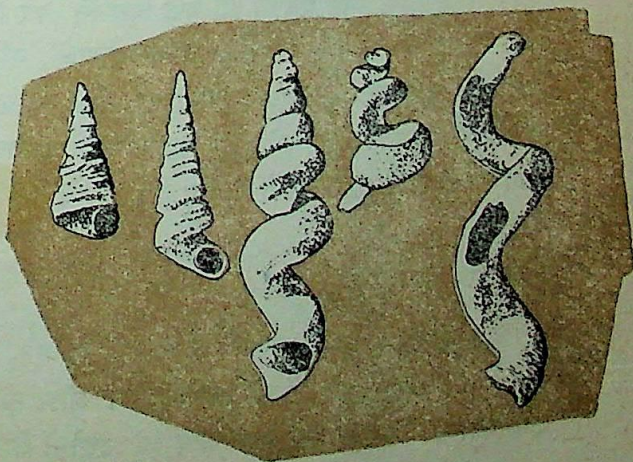
मैंने कहा “नर-मादा दोनों ही। अपना
 सिर ऊपर उठाइए, आँखें मिलाइए!”

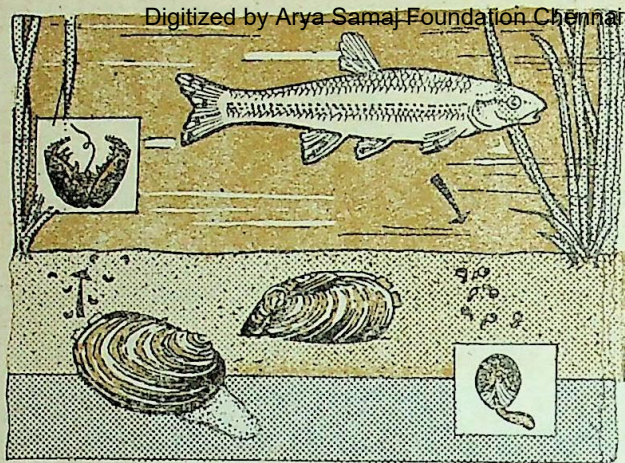
इस बार सीपी हँस पड़ी। कहने लगी—
 “आपने ठीक अन्दाजा लगाया है, मगर न
 तो मेरे सिर है और न आँख। मेरा रक्त भी
 रंगहीन है; नहीं तो शायद उसी की लाली
 देखकर आपको मेरी लज्जा का आभास
 होता! हाँ, कुछ कोष समूह अवश्य ऐसे हैं
 जो प्रकाश और अंधकार का भेद कर सकते
 हैं। आप चाहें तो उन्हीं को ज्ञानेन्द्रिय कह
 सकते हैं। यों तो शरीर के सन्तुलन और
 पानी में विजातीय द्रव्यों की पहचान के
 लिए भी मेरे पास ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।”

“मैंने सुना है कि आप एक बार में
 लाखों अण्डे देती हैं। इतनी बड़ी फौज खड़ी
 करके क्या आपने इनसान से बदला लेने की
 सोची है? क्या आपको भोजन की समस्या
 नहीं सताती?”

“सभी अण्डे कहाँ पनप पाते हैं!
 कितने ही तो लालची शत्रुओं का शिकार
 हो जाते हैं और बहुत से अण्डे पानी में डूब
 जाते हैं। हमारे सागरनिवासी साथियों में
 अण्डों का निषेचन अथाह जल में ही होता
 है। अतः वहाँ तो नर-बीजों के साथ अण्डों
 का संयोग केवल किस्मत की बात है। हम

सुन्दर आकृति पाने की जल्दबाजी में सीपी कभी-कभी
 असंतुलित होकर ऐसे विकृत आकार भी प्राप्त कर लेती है





ताजे पानी की सीपी (fresh-water clam) का जीवनक्रम

नदी-नालों में रहती हैं। हमें निषेचन क्रिया को शरीर के अन्दर ही सम्पन्न करनी पड़ती है। अगस्त में हम अपने अण्डों को साँस लेने वाली थैलियों के बीच टिकाये रखते हैं और सर्दी भर उन्हें बाहर नहीं निकलने देते। जब अण्डों से गिराड़ (larvae) बन जाते हैं तब वे अपने कवच के दोनों टुकड़ों से तैरने लायक हो जाते हैं। उनके तन्तु विकसित हो जाते हैं और कवच के कोनों पर लम्बे-लम्बे काँटे निकल आते हैं। उन

और बुराई भाना है। अतः वे बच्चों का लालन-पालन अपने शरीर के अन्दर ही कर लेते हैं।”

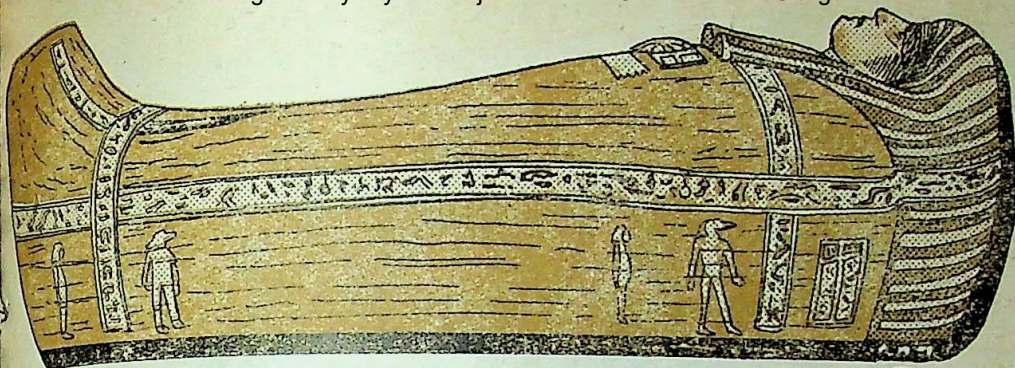
सीपी को इतनी देर तक पानी के बातें करते देख, एक नन्हे पक्षी के पानी भर आया। चोंच खोलकर उसने वह सीपी को पकड़ने के लिए झपटा, रानी उसकी चोंच को अपने कवच के टुकड़ों में चिमटे की तरह पकड़कर पानी नीचे गायब हो गयी !

बर्फ की चट्टान में कितना पानी ?

सर्दियों के बाद पहाड़ों की बर्फ पिघलने पर कितना पानी मिलेगा, इसका पूर्व अनुमान अत्यन्त सहस्रव का है। मौसम के भविष्यवक्ताओं, नदियों के यातायात उद्योग-संस्थानों तथा किसानों के लिए इस पूर्वज्ञान की बड़ी उपयोगिता है। सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत गामा स्नो-मीटर ३ मीटर तक मोटी बर्फ की परत गामा किरणें प्रविष्ट करके उससे प्राप्त होने वाले जल का पूर्वमान तुरन्त और सही रूप में दे देता है।

जंगल में संगल

सोवियत मध्य-एशिया की चू नदी के किनारे, मीलों लम्बे-चौड़े जंगल ही जंगल में मनुष्य श्रम से संगल-मोद ला देने को कटिबद्ध है। शीघ्र ही किसी समय का वह बीहड़ जंगल, एक लाख जनसंख्या का और सीमेण्ट तथा अन्य बड़े उद्योगों से गुंजरित नगर बन जाएगा।



प्राचीन मिस्र के शव.... ममी

दीनानाथ भार्गव

प्राचीन मिस्रवासियों द्वारा ममी का उपयोग मृत शरीरों के लिए किया जाता था जिन्हें वे लेप आदि लगाकर सुरक्षित रखते थे। ऐसी असंख्य ममियाँ मेम्फिस (Memphis) के निकट सकारा (Saccara) के मैदान में मिली हैं। अतः इस मैदान को 'ममियों का मैदान' भी कहा जाता है। वहाँ पायी जाने वाली ममियाँ केवल मनुष्यों की ही नहीं, बैल, लंगूर, सारस, मछलियों तक की भी अनुमान है कि ईसा से ३००० वर्ष से रोमनकाल तक लगभग ७३ करोड़ ममियों की ममियाँ बनायी गयी होंगी। सम्राट फेरोह (Pharaoh) की कब्र १६२२ में 'राजाओं की घाटी' में मिली थी। उसकी ममी एक के अन्दर से तीन पेटियों के भीतर पायी गयी। सबसे अन्दर की पेटी ठोस सोने की बनी हुई थी जिसे आठ आदमी बड़ी कठिनाई से उठा सकते थे। शव के सिर और कंधों पर सोने का पतरा चढ़ा हुआ था जिसमें मूल्यवान् मणि-मुक्ता जड़ी हुई थीं। शव के साथ नित्यप्रति काम में आने वाली वस्तुएँ, पलंग, कुर्सियाँ, रथ,

सोने की अँगूठियाँ, कपड़े, चित्र और मूर्तियों आदि का असमूल्य संग्रह भी उस कब्र में मिला था।

प्रश्न हो सकता है कि वे इस प्रकार के कब्रों से प्राप्त वस्तुओं में यह दर्पण भी सम्मिलित है





आदि-मानव, शव को जानवरों की खाल में लपेटकर धरती में गाड़ देता था

विचित्र तरीके क्यों अपनाते थे ? क्यों वे मृतक देह पर लेप इत्यादि करके उसे उसके दैनिक उपयोग की वस्तुओं के साथ ममी बनाकर दफना देते थे ? कदाचित इसका कारण शरीर की अनश्वरता के प्रति उनका विश्वास था ।

प्रागैतिहासिक काल में मृतक व्यक्ति को खाल आदि में लपेटकर उथले और छोटे गड्ढे में गाड़ दिया जाता था । सूर्य का ताप और तप्त शुष्क रेत शव को गलने और सड़ने से रोकते थे । प्रायः केश, त्वचा तथा शरीर के अन्य कोमल भाग सुरक्षित भी रह जाते थे । मिस्त्रवासियों को प्रकृति द्वारा शव-संरक्षण का पता उन शवों को देखने से लगा जिनको कब्र के लुटेरे खोदकर बाहर छोड़

जाते थे । शव के इस संरक्षण ने ही कदाचित् उन्हें यह मानने को प्रेरित किया कि मृतक के पश्चात् भी भौतिक जीवन शेष रहता है । शव के साथ बर्तन, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं को भी इसी मान्यतावश रख दिया जाता था कि वह उन वस्तुओं का उपयोग उस नये लोक में उपभोग कर सके । ज्यों वस्तुओं की संख्या बढ़ती गयी त्यों बड़ी बनावटें बनाने जाना पड़ा । उन कब्रों में शवों को शुष्क रखने के लिये तप्त रेत सम्पर्क में नहीं आ पाती थी । शीघ्र ही शव गलने और सड़ने लग जाते थे । फलतः उनका उद्देश्य नष्ट हो जाता था, क्योंकि मृत व्यक्ति उन वस्तुओं का उपयोग कर ही नहीं पाता था । इसलिये

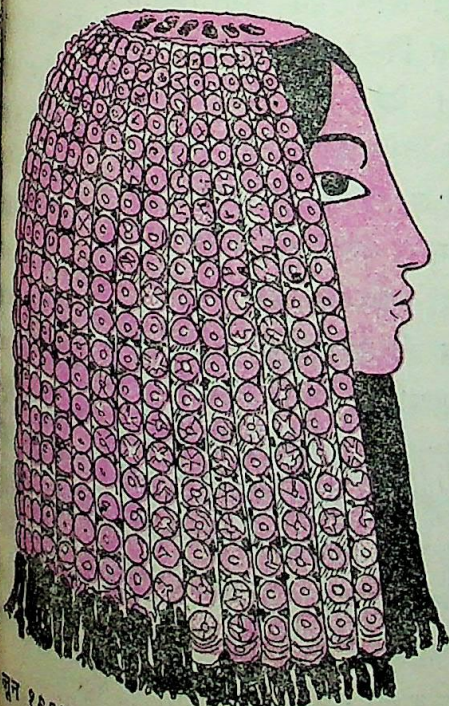
देह सुरक्षित रखने के साधनों की खोज की जाने लगी। उन प्रयोगों के मध्य ही ममी बनाने की कला का जन्म हुआ। वन्य पशुओं और कब्र के लुटेरों से शवों को बचाने के लिए पिरामिड सरीखे दृढ़ और पक्के मकबरे बनाये जाने लगे।

आरम्भ में ममी बनाना केवल फेरोह राजवंश का ही जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता था। मृत व्यक्ति और मृत्यु के देवता के मध्य उसी राजवंश का व्यक्ति मध्यस्थ माना जाता था। उस राजवंश की पाँचवीं पीढ़ी तक लेपन द्वारा शव-संरक्षण की प्रथा समाज में फैल गयी। प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि शव-लेपन एक सम्मानित कला माना जाता था। यह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी वंशजों को मिलता रहता था। ममी बनाना काफी महंगा भी पड़ता था। अतः व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के अनुसार ममी बनाने की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं।

मृहो विधि

मृत देह को ओषधियों का इन्जेक्शन

प्राचीन मिस्र का परिधान



लगाकर धातु की एक मुड़ी हुई छड़ के द्वारा मस्तिष्क का भीतरी भाग निकाल लिया जाता था। तत्पश्चात् एक लिपिक शव के बायीं ओर बगल के नीचे लगभग चार इंच लम्बी एक रेखा स्याही से खींच देता था। दूसरा व्यक्ति फिलण्ट पत्थर की नोक से उस रेखा के सहारे चीरा लगा देता था। चीरे के मार्ग से हृदय को छोड़कर शेष समस्त भीतरी अंग बाहर निकाल लिये जाते थे और उन्हें चार कलशों में भर देते थे। प्रत्येक कलश एक-एक देवता को समर्पित करके कब्र में रख दिया जाता था। खोखली देह को नारियल के तेल से धोकर उसमें लोबान, दालचीनी आदि मसाले भर दिये जाते थे। एक बड़े बर्तन में नमक अथवा शोरे का घोल भरकर शव को इस प्रकार दोहरा रखा जाता था कि घोल की सतह से केवल सिर ऊपर निकला रहे। उस घोल में शव कई सप्ताह तक पड़ा रहता था। इस अवधि में चर्बी युक्त पदार्थ घुल जाता था और सिर को छोड़कर शरीर के शेष भाग से खाल उधड़ जाती थी। तत्पश्चात् देह को बाहर निकालकर सुगन्धित तेलों से धोया जाता था और उसे सीधा करके सुखा लिया जाता था। सूखने पर उसमें राल आदि में भिगोये हुए कपड़े तथा सुगन्धित लकड़ी का बुरादा भर दिया जाता था। मृतक के सिर का एक ढाँचा भी बनाया जाता था जिसे मृतक देह के साथ रालयुक्त पट्टियों द्वारा बाँध दिया जाता था। कुछ ममियों पर १२००-१५०० फुट लम्बी पट्टियाँ बँधी हुई पायी गयी हैं। उपरोक्त कार्यों में लगभग ७० दिन लगते थे। वह काल मृतक के सम्बन्धियों के लिए शोक मनाने का काल होता था। वे उन दिनों न तो स्नान करते थे और न मांस-मदिरा का सेवन ही करते थे।

सस्ती विधि



सुरक्षित ममी का एक नमूना

मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के लिए एक सस्ती विधि भी अपनायी जाती थी। उस विधि में शव को चीरा नहीं जाता था। इन्जेक्शन द्वारा पहुँचाया हुआ देवदार का तेल देह के मांस को गलाकर अस्थियों को वैसा ही छोड़ देता था। तत्पश्चात् देह को शोरे के घोल में नहलाकर पट्टियों से बाँध दिया जाता था। गरीबों के शवों को यों ही धोकर शोरे के घोल में डुबो दिया जाता था और बाद में निकालकर पट्टियों से बाँध दिया जाता था।

२२वें राजवंश तक ममी बनाने की कला में काफी सुधार हो चुके थे और उत्पत्ति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। शव को कई स्थान से चीरकर खोखला कर लिया जाता था। तब उसमें रेत या मिट्टी भर दी जाती थी। रेत को इस प्रकार भरते थे कि शरीर की सिकुड़नें इत्यादि दूर हो जाएँ। उस स्थिति में वह जीवित देह जैसी लगती थी। आँखों के गड्ढों में नकली आँखें लगा दी जाती थीं। और हाथ पाँव की अँगुलियों पर सोने अथवा अन्य किसी धातु के पतरे चढ़ा दिये जाते थे। देह को नीचे से ऊपर तक गेरु से रंग दिया जाता था तथा होंठों और गालों पर लाली लगा दी जाती थी। कालान्तर में ममी बनाने की कला का ह्रास होने लगा तथा कृत्रिमता और सस्तापन आने लगा। शव की सुरक्षा की अपेक्षा बाहरी टीप-टाप पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

कुछ ममियाँ हवा के सम्पर्क में आती ही खराब होने लगती हैं। ब्रिटिश म्यूजियम में रखी हुई एक ममी को कुछ वर्ष पहले पेनिसिलिन के इन्जेक्शन लगाकर सड़ने से रोका गया था। जो ममियाँ केवल नमक से तैयार की गयी थीं वे देखने में सफेद हैं तथा

ऐसा प्रतीत होता है जैसे जब ममी पर सोयी होती है तो उसकी शरीर की आकृति अपने सम्बन्धियों के शवों को सुरक्षित रखते थे। वे ममियाँ सूखी, हलके पीले रंग की और तीव्र गन्धयुक्त होती थीं। शवों को वे बकरे की खाल में लपेटकर बक्स में बन्द कर देते थे। ब्रेमेन के गिरजे की छत में जिसको 'सीसे की कोठरी' कहते हैं प्रकृति द्वारा सुरक्षित कुछ शव रखे हैं। इसी प्रकार सेन्ट बर्नार्ड के मठ में उन यात्रियों के शव रखे हुए हैं जो कभी बर्फ में दब गये थे।

धातु और संकर धातु

[पृष्ठ ३५ का शेष]

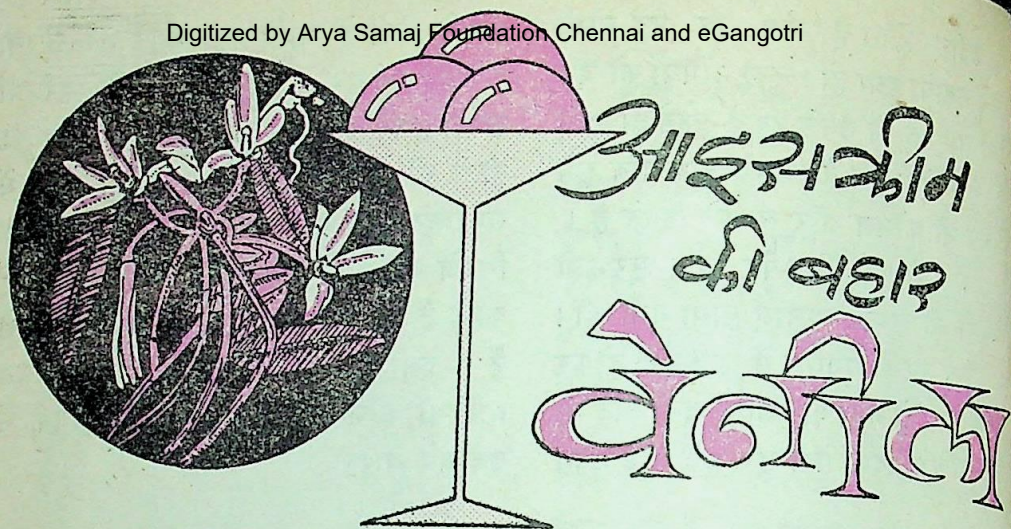
के डायलों को अँधेरे में चमकीला बनाने के लिए काम आता है।

बिजली के बल्बों में टेन्टेलम धातु के तारों का उपयोग टंगस्टन से पूर्व होता था। इस पर तीव्र से तीव्र अम्ल का भी प्रभाव नहीं होता, अतः इसके बने हुए बर्तन आदि मात्र तीव्र रासायनिक पदार्थ रखने के काम में आते हैं। यह धातु गैसों को भी पर्याप्त मात्रा में सोख लेती है।

वेनेडियम अत्यन्त उपयोगी धातु है। इस्पात से मिश्रित होकर यह उसे अत्यधिक मजबूत कर देता है। रेल के इंजन तथा अन्य भारी मशीनें बनाने के योग्य इस्पात में वेनेडियम होना आवश्यक है। वेनेडियम मिलाने से सोना भी कठोर हो जाता है।

अतः उस मिश्रित धातु की स्वर्ण मुद्राएँ सरलता से बनायी जाती हैं। वेनेडियम एक उत्तम उत्प्रेरक भी है, अतः अनेक ओषधियों में इसके लवण प्रयुक्त होते हैं।

ताँबे की कठोरता बढ़ाने के लिए बेरीलियम मिलाया जाता है। २.२५% बेरीलियम मिला देने से ताँबा पाँच गुना मजबूत हो जाता है। सामान्य पेट्रोल की टंकियों आदि की मरम्मत करते समय प्रायः दुर्घटनाएँ हो जाती थीं और लोहे की टंकियाँ फट जाती थीं। अब ताँबा और बेरीलियम युक्त धातु का उपयोग होता है। इसे सुरक्षित माना जाता है। टाइपराइटर तथा अन्य गणक यन्त्रों के स्प्रिंग इसी संकर धातु से बनाये जाते हैं।



बांकेबिहारीलाल

आइसक्रीम की बहार और चाकलेट, पेस्ट्री आदि का आधार वेनीला एक प्रिय उपादान बन चुका है। आज से ३००-४०० वर्ष पूर्व इससे परिचय हुआ था। उस समय इसका उत्पादन केवल उत्तरी अमरीका के मैक्सिको प्रदेश में होता था। इससे परिचय प्राप्त करने का श्रेय स्पेनिश सेनापति हरनन कोर्ज (Hernan Cortez) को है। पहली ही चुस्की में वेनीला ने हरनन को मोह लिया था।

फिलिप द्वितीय के शासनकाल में (१५७१-७७) वेनीला ने स्पेन में प्रवेश किया। अनेक सुगन्धी विक्रेता एक नवीनता के रूप में इसकी फलियों को रखने लगे थे। इसकी फलियाँ एक छोटी कटार के म्यान जैसी होती हैं। इसीलिए स्पेनवासियों ने इसका नाम वेयनिला (*Vainillia*) अर्थात् 'छोटी म्यान' रख दिया।

मैक्सिको ही क्यों ?

एलिजाबेथ प्रथम के एक राज्य-कर्मचारी क्लूसियस ने सोचा—'ऐसा अद्भुत पौधा अकेले मैक्सिको में ही क्यों पैदा हो? क्यों न दूसरे देशों में भी इसे उपजाकर एक अच्छी आय का साधन बनाया जाए?' इस

प्रकार स्पर्धा का बीजारोपण हो गया। लेकिन वेनीला के बीज न मिले और कलमें लगाने पर पौधे उगते, उनमें फूल लगते किन्तु फूलों का परागण न हो पाने के कारण सब मुर्झा जाते थे और मैक्सिको वासियों को यूरोपवासियों का उपहास करने का अवसर मिलता रहा। लगभग २०० वर्षों तक यही स्थिति बनी रही।

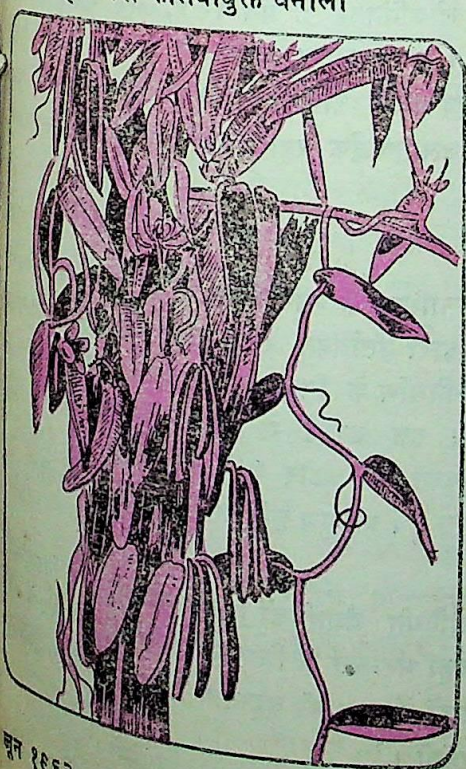
अन्ततः रहस्य का पता चल गया। फूलों को मैक्सिको में पायी जाने वाली डंकहीन मक्खियों तथा अन्य विशेष परिस्थितियों का अभाव रहता था। वे ही उनके परागण के मुख्य साधन थे। उन मक्खियों का प्राप्त करना सरल कार्य नहीं था। १८३६ में चार्ल्स मोरेन नामक एक व्यक्ति ने इसका भी हल खोज लिया। उसने वेनीला के एक पुष्प से परागकण लेकर दूसरे पुष्प के स्त्रीकेसर में स्थापित कर दिये। पुष्प-परागण सम्पन्न हो गया और छोटी बड़ी फलियाँ लगना प्रारम्भ हो गया। इसी ही इस सफलता का प्रसार अन्य देशों में होते-होते फ्रान्स, ईस्ट इण्डो, वेस्ट इण्डो, मेडागास्कर आदि में वेनीला उगाया जाने

लगा। कुछ वर्षों पश्चात् वेनीला-कृषि में काम करने वाले एडमण्ड आल्बियस नामक एक श्रमिक ने परागण-क्रिया का नया ही ढंग खोज निकाला। वह ढंग इतना लोक-प्रिय सिद्ध हुआ कि वेनीला प्रवर्तक मैक्सिको तक में अपनाया गया और उन्हें भी उस डंकहीन मक्खी की आवश्यकता न रही।

सुगन्धित फलियों की बेल

वेनीला प्लेनिफोलिया (*Vanilla Planifolia*) श्रेणी की ही बेलें अधिकतर उगायी जाती हैं। तंग और लम्बी क्यारियों में उगती इसकी बेलों में एक-एक कली पर १५-२० तक फलियाँ लगती हैं। पुष्प-परागण में बड़ी कोमलता और कुशलता की आवश्यकता रहती है। मैक्सिको में पायी जाने वाली डंकहीन मक्खियाँ अन्यत्र तो होती नहीं। अतः कृत्रिम परागण के लिए महिला कृषकों से नर्सों का काम लिया जाता है। ज्यों-ज्यों कलियों, फूलों की पंखुरियाँ खुलती हैं, इन नर्सों का काम आरम्भ हो जाता है। इनकी आन्तर-रचना

हरी-भरी फलियोंयुक्त वेनीला



में वाल्व सरीखी एक ऐसी रोक होती है जो स्वपरागण नहीं होने देती।

मुस्कराते फूलों की क्यारियों के बीच श्रमिक महिलाओं तथा बच्चों की टोलियाँ घूमती रहती हैं। बड़ी कोमलता से बाँस की तीली द्वारा एक फूल से कुछेक परागकण लेकर उसी फूल के स्त्रीकेसर में स्थापित कर देती हैं। वेनीला की बेल वर्ष में दो बार, लगातार दो मास तक फूल देती है। प्रत्येक फूल का जीवन केवल एक-एक दिन का होता है। अतः उपरोक्त विधि के अनुसार परागण उतनी ही अवधि में कर लेना आवश्यक है जब तक कि फूल ताजा-ताजा खिला रहे।

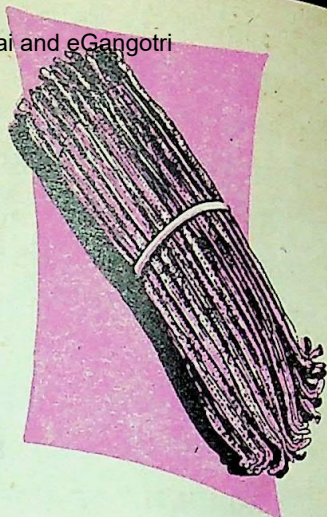
फलियाँ चुन ली जाती हैं

शरद के प्रारम्भ में जिन बेलों का पुष्प-परागण हो चुका हो उनमें मार्च आते-आते फलियाँ आने लगती हैं। एक-एक गुच्छे में ४ से २० तक फलियाँ लटकती हैं। ६ से १० इंच तक लम्बी ये फलियाँ किंचित् हरे वर्ण की होते ही उतार ली जाती हैं। नित्य ही इनके चुनने में यह देखा जाता है कि न तो ये कच्ची रहें और न फट जाने लायक ही पक जाएँ। फलियों को तने के कुछ भाग सहित ही तोड़ा जाता है क्योंकि फली का विलकुल साबूत और मुँह बन्द होना बहुत जरूरी है। कच्ची फली को चखने पर वेनीला जैसी सुगन्ध नहीं मिलेगी। सूर्य के ताप में पकी हुई फली वेनीला का आनन्द देगी, किन्तु उससे उत्तम सुगन्धयुक्त सत् प्राप्त न हो सकेगा। तम्बाकू की भाँति इसकी फलियों को भी बड़े धैर्य और सावधानी से पकाना (curing) पड़ता है।

सत्-वेनीला

बेल से उतारी हुई फली हलके हरे वर्ण की तथा अँगुली जैसी मोटी होती है। वही फली ३-४ महीनों की पकाई के पश्चात्

पेन्सिल जैसी पतली और कृथई रंग की हो जाती है। तभी वह वेनीला का सत् निकालने योग्य होती है। चाकू से फली के गोल चक्के काटकर उन्हें हलके, मद्धिम अलकोहल के घोल में नर्म होने तक गर्म करते हैं। तब उस घोल को पुनः कुछ दिन रखे रहते हैं। तब पूरी तरह रंग-रूप और सुगन्ध आदि से वह सत् परिपूर्ण हो जाता है। वही सत् सीलबन्द शीशियों में सत्-वेनीला (Vanilla Extract) के नाम से बिकता है।



वेनीला का उत्पादन

मेडागास्कर वेनीला के कुल उत्पादन का ६३% भाग उत्पादित करता है। मैक्सिको २१% उत्पादित करता है और शेष १६% अन्य देशों में उपजता है। उत्तमता

कई दिनों की मेहनत से तैयार किया गया वेनीला फलियों का यह गठुर बाहर जाने को तैयार है। के अनुसार वेनीला की पकी हुई फलियों का मूल्य लगभग ८ रु. से ८० रु. प्रति किलोग्राम तक रहता है।

फेफड़ा-बैंक भी

रक्त-बैंक काफी प्रचलित हो चुके हैं, नेत्र-बैंक लोकप्रियता के पथ पर हैं, अब फेफड़े भी बैंकों में मिल सकेंगे। प्रयोग अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। कूपर टाउन, न्यूयार्क के डाक्टरों ने कुछ कुत्तों के फेफड़ों को निकाला, प्लास्टिक की थैलियों में बन्द करके रेफ्रिजरेटर में सुरक्षित रखा और पुनः दूसरे रोगी कुत्तों में लगाया तो परिणाम अत्यन्त उत्साहवर्द्धक रहा। यही विज्ञान विकसित होकर भविष्य में मनुष्य के लिए भी कल्याणकारी होगा।

प्लास्टिक के भाग

रबर के भाग अब नयी वस्तु नहीं रहे। अब प्लास्टिक के भाग मैदान में आ चुके हैं। पश्चिमी जर्मनी के प्रसिद्ध रसायन-निर्माता बी. ए. एस. एफ. द्वारा उत्पादित स्टेरोपर नामक प्लास्टिक-भाग का यह पदार्थ अत्यन्त उपयोगी पाया गया है। भवन-निर्माण के लिए तो यह एक आकर्षक पदार्थ कोमल वस्तुओं के पैकिंग में भी यह काम आता है। इस पदार्थ में ६६ प्रतिशत वायु का भाग होने से यह तैरने में भी सहायक है। इसकी पतली परत को कठोर भूमि पर बिछा देने (मलिन करने) से यह मिट्टी को मुलायम तथा भुरभुरी बना देता है। यह गुण कृषि के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

गाड़ियाँ चलती रहीं, सुरंग बनती रही

रेलवे-सुरंगों की मरम्मत की नयी विधि जो सोवियत वैज्ञानिकों ने निकाली है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। सुरंगों में जहाँ कहीं दरारें पड़ जाएँ, वहाँ मरम्मत के लिए यातायात को बन्द रखने की आवश्यकता नहीं। पाइपों द्वारा कंक्रीट का घोल दरारों में पम्प की सहायता से पहुँचाया तथा उतारा जा सकता है, जब कि रेलें बराबर सुरंग में चलती रहेंगी।



विज्ञान क्लब



प्यारे बच्चो,

ये दिन सभी के लिए छुट्टियों के हैं।
कहीं, किसी को कोई बन्धन नहीं। छुट्टियों
के इस आनन्द को बढ़ाने के लिए तुम में से
मनेकों के परीक्षाफल आते जा रहे होंगे,
बाकी १५ जून तक आ जाएँगे। तुम इन
दिनों विभिन्न स्थानों की सैर कर रहे होगे।
नहीं यह नया विज्ञान-लोक तुम्हारा भरपूर
फनोरंजन करेगा।

कुछेक अधिक उत्साही और रचनात्मक
क्रियाओं में प्रवृत्त तुम्हारे मित्र-बन्धु अपने
छोटे-छोटे संगठन बनाते हुए भावी वैज्ञानिक
राने के पथ पर अग्रसर होंगे। उनके लिए
इन दिनों से अच्छा अवकाश और नहीं
मिलेगा। अतः वे 'राज रिसर्च लेबोरेटरी,
'इलाहाबाद' तथा 'रमन साइंस एसोसिएशन,
'गुलपुर' जैसे नव-स्थापित किशोर-संगठनों
में बल देने में लगे रहेंगे।

मेरे पिछले पत्र में दिये गये संकेतों को
मनेकों ने उमंग से उठा लिया है और करो
और देखो के अन्तर्गत जल्द ही से अपनी
लायी वस्तुओं की विधियाँ मेरे पास भेजेंगे।
उनके अतिरिक्त जो केवल लेखनकार्य में ही
लगे रहना चाहते हैं वे तुम्हारी कलम से
साम्भ के लिए अपनी रचनाएँ तैयार करने
में रहेंगे। इसमें तुम कहीं पीछे तो नहीं
हो, यह तुम्हीं को देखना है। इस अंक में
प्रकाशित 'अपनी टेस्ट-ट्यूब-तुला बनाइए'
तुम्हें अवश्य पसन्द आएगा।

बहुत दिनों बाद आज फिर ये सूचनाएँ
तुम्हारे की आवश्यकता है कि (१) फोटो

छपाने का काम देखते हुए ५०५ मास तक
अपने भेजे हुए फोटो की प्रतीक्षा करनी
चाहिए, (२) सदस्यता कूपन भेजने के बाद
प्रमाणपत्र की प्राप्ति के लिए कम से कम
१० दिन की प्रतीक्षा आवश्यक है तथा (३)
सदस्यता कूपन विज्ञान-लोक में समय-समय
पर छपता ही है। अतः वही भरकर भेजना
चाहिए। हाथ से बनाया हुआ अथवा प्रति-
योगिता कूपन सदस्यता के लिए न भेजना
चाहिए।

तुम सबके उत्तम परीक्षाफल के संवाद
सुनने की प्रतीक्षा में,

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३६ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गिरीशचन्द्र (११५७) आगरा, गजेन्द्रपाल
(१६०५) मेरठ, अशोक गुप्ता (२७०१) लखनऊ,
संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, कैलाशनाथ (३८३२)
इटारसी, कौशलकिशोर (६५७३) नेतरहाट, सुरेश-
कुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर, नरेन्द्र बंसल
(७८२८) आगरा, अनिरुद्ध (८१०२) नेतरहाट,
घनश्यामदास (६६६७) बीकानेर।

द्वितीय पुरस्कार

पारसमल (४४१) मद्रास, सुधीरकुमार
(१६१६) आगरा, गोपालमाधव (२३७६) मेरठ,
प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, चन्द्रमोहन
(४८४४) अजमेर, प्रकाश जोशी (६११३) अजमेर,
शान्तिलाल (६४७४) उदयपुर, सज्जनसिंह (७६८१)
उदयपुर, टीकाराम (७७७६) बुलन्दशहर, बेंकट-
लाल (६८६६) कटनी।

तृतीय पुरस्कार

विजय (२८०) आगरा, चाँदस्वरूप (५३८)
आगरा, रमेशचन्द्र (२७६८) कोटा, चन्द्रमोहन
(४३१६) इटारसी, अजीतसिंह (५७००) इटारसी,
विद्योतम कुमार (७२०६) जोधपुर, बाधूमल
(८६४७) कटनी।

विज्ञान क्लब के नये सदस्य



कन्हैयालाल
(स. सं. ३२२८)



सत्यप्रकाश
(स. सं. ३३८१)



सुबोधकुमार
(स. सं. ४२८०)



प्रकाशचन्द्र
(स. सं. ४४७१)



वीरेन्द्रकुमार
(स. सं. ४४६७)

६२५८ निर्मलकुमार (१३) मन्दसौर, ५६ कृष्णकुमार (१८) जबलपुर, ६० सेराज अजहर (१६) सीवान, ६१ जयचन्द्र प्रसाद (१५) सुन्दरगढ़, ६२ नीरजकुमार (१३) मैनपुरी, ६३ सुन्दर लाल (१७) बकानी, ६४ सत्यनारायण (१७) बकानी, ६५ गिरिजाशंकर (१४) देवरिया, ६६ अभयकुमार (१६) इन्दौर, ६७ जीवाभाई जूठाभाई पटेल (१५) मालपरा, ६८ राधेश्याम (१६) उतरौत, ६९ विजयमल (१६) जोधपुर, ७० एच. एन. रवि (१४) खमरिया, ७१ रेवाचन्द्र (१७) जयपुर, ७२ जवरी-लाल (१५) पाली, ७३ कमलाकान्त (१५) सुन्दरगढ़, ७४ नरेन्द्र-नारायण (१८) लालबाग, ७५ देवकुमार (१४) जैतपुर, ७६ गुरु इकबाल सिंह (१५) राँची, ७७ अशोककुमार (१७) रोहतक, ७८ धीरेन्द्रकुमार (१०) दरभंगा, ७९ सतीशचन्द्र (१५) विदिशा, ८० शिवाकान्त प्रसाद (१२) गया, ८१ दिनकर (१४) लखनऊ, ८२ नवीनकुमार (१५) माधवनगर, ८३ प्रदीपकुमार (१०) वाराणसी, ८४ कच्छेदी लाल (१६) भरतपुर, ८५ चिमन वीधानी (१७) अजमेर, ८६ राजकुमार (१७) कानपुर, ८७ सूर्यपाल (१७) एटा, ८८ रमेशचन्द्र (१६) थानेसर, ८९ विनोदानन्द (१६) मतलुपुर, ९० मदनमोहन (१७) नरही चाँदी, ९१ गोविंद राम (१६) पेण्डुवाँ, ९२ विजयकुमार (१५) आजमगढ़, ९३ कृष्ण-कुमार (१५) रायपुर, ९४ कृष्णमुरारी (१४) कटनी, ९५ यशवन्त कुमार (१४) खरसिया, ९६ रतनलाल (१६) पेण्डुवाँ, ९७ ईश्वर-दयाल (१६) धामपुर, ९८ श्रवणकुमार (१३) कुरुक्षेत्र, ९९ अनूपकुमार (१३) नेतरहाट, ६३०० विनोदकुमार (१३) आगरा, १ सुभाषचन्द्र (१२) छिदवाड़ा, २ प्रतापसिंह (१३) कटनी, ३ शिवप्रसाद (१४) वाराणसी, ४ हर्षवर्धन (१५) कुरुक्षेत्र, ५ ज्ञानचन्द्र (१४) कुरुक्षेत्र, ६ नीलमकुमार (१२) भागलपुर, ७ विनोदकुमार (१२) सोह-सराय, ८ वसंतकुमार (१३) कलकत्ता, ९ कु. मंजू (१३) गोलमुरी, १० कु. निर्मला (१३) जोधपुर, ११ नरेन्द्रपाल (१४) कलकत्ता, १२ प्रवासकुमार (१७) जबलपुर, १३ गुरुचरण सिंह (१४) कुरुक्षेत्र, १४ किशनलाल (१५) राय-गढ़, १५ सुबोधकुमार (९) मथुरा, १६ स्वर्णजीत (११) इलाहा-बाद, १७ सोहनलाल (१५) कुरुक्षेत्र, १८ यादवेन्द्र (१७) मैनपुरी, १९ बिहारीलाल (१६) कटनी, २० महेन्द्र सिंह (१४) राँची, २१ नित्यानन्द (१२) नेतरहाट, २२ सुरेशचन्द्र (१५) कुरुक्षेत्र, २३ कु. जुगिन्दर कौर (१४) जमशेदपुर, २४ मुनीशकुमार (१५) लखनऊ, २५ कृष्णोकर विनयकान्त (१३) वाराणसी, २६ नरेन्द्र-नाथ (१४) जोधपुर, २७ कृष्णचन्द्र (१४) गोरखपुर, २८ कृष्ण-मोहन (१५) गोरखपुर, २९ गोविन्द नारायण (१३) आसीद, ३० नरेन्द्रकुमार (१५) वर्धा, ३१ चन्द्रलाल (१६) वेलबाग, ३२ हरिगोविन्द (१५) बहराइच, ३३ विजयकुमार (१५) राँची, ३४ पीयूष (९) विजनौर, ३५ बबनसिंह (१३) बिहिया, ३६ शिरीश (१३) कानपुर, ३७ हंसराज (१४) बिलासपुर, ३८ कुमारी रानी (१३) थापर, ३९ निर्मलकुमार (१२) चित्तौड़गढ़, ४० कुमारी कालिन्दी (१३) हजारीबाग, ४१ सुभाष राव (१७) लशकर, ४२ विपिनबिहारी (१४) पटना, ४३ सुदर्शन प्रसाद (१५) लच्छी कैतुका, ४४ अनिरुद्ध प्रसाद (१६) गया, ४५ सन्तोष सिंह (१७) सहरसा, ४६ कानाभाई (१७) बिलोदरा, ४७ कुमारी रेणु (१०)



सीताराम
(स. सं. ४७३)



उमेशचन्द्र
(स. सं. ५६८)



सुदर्शन
(स. सं. ५७५)



राधेलाल
(स. सं. ६४३)



नरेन्द्रकुमार
(स. सं. ६४५)

सिवनी, ४८ वसन्त (१४) बुरहानपुर, ४९ अशोककुमार (१४)
 इन्दौर, ५० देवीलाल (१५) अजमेर, ५१ भगवती प्रसाद (१५)
 शाहजहाँनाबाद, ५२ विजयकुमार (१४) नेतरहाट, ५३ अश्विनी
 कुमार (१५) विजनौर, ५४ रामकुमार (१६) इन्दौर, ५५ उदय-
 तपन (१५) सोनपुर, ५६ रवीन्द्रकुमार (१७) लखनऊ, ५७ सत्य-
 नारायण (१६) दाउदपुर, ५८ ओमप्रकाश (१४) जयपुर, ५९
 वेदाकान्त (१२) नेतरहाट, ६० विजयकुमार (१४) सुल्तानपुर,
 ६१ उमेशचन्द्र (१५) रुद्रपुर, ६२ इन्दुपाल (१४) नयी दिल्ली,
 ६३ नन्दकिशोर (१३) गिरिडीह, ६४ मनोरंजन प्रसाद (१७)
 आरा, ६५ उदयनारायण (२२) इलाहाबाद, ६६ मोहम्मद
 आरीफ (१७) चम्पा, ६७ छेदूलाल (१५) दुर्ग, ६८ दिनेशचन्द्र
 (१५) मंदसौर, ६९ श्रीनिवास (११) सागर, ७० देवी प्रसाद
 (१५) डिगबोई, ७१ कुमारी आशा (१६) जबलपुर, ७२ जीतेन्द्र
 (१३) नेतरहाट, ७३ राधाकृष्ण (१६) खारगोन, ७४ गोपाल-
 कृष्ण (१२) वेगूसराय, ७५ आशुतोषकुमार (१०) लखनऊ, ७६
 बजरंगी (११) रहेला, ७७ विपिनकुमार (१५) सुपौल, ७८ राम-
 तीर्थ (१७) सोगा, ७९ कु. पुष्पलता (१५) व्यावर, ८० सोहन
 लाल (१५) कुक्षेत्र, ८१ कृष्णनन्दन (१३) नेतरहाट, ८२ मुरली-
 धर (१५) व्यावर, ८३ प्रफुल्लचन्द्र (१६) राजकोट, ८४ विजय-
 कृष्ण (११) गौहाटी, ८५ देवेन्द्रकुमार (१७) अलीगढ़, ८६ धर्मी
 चन्द (१५) अजमेर, ८७ विजयराज (१३) इन्दौर, ८८ मुकेश
 (१५) मुजफ्फरनगर, ८९ शंकरसिंह (१४) बंगरा, ९० इन्द्रचन्द्र
 (८) पाडलियां, ९१ प्रकाशचन्द्र (१२) नेतरहाट, ९२ भरत
 महतो (१३) दाउदपुर, ९३ केशवकुमार (१२) भागलपुर, ९४
 गुलाबचन्द्र (१६) पाडलियां, ९५ सुन्दरशान (१४) खड़गपुर, ९६
 गजेन्द्रनाथ (१६) रतनपुर, ९७ रमेशकुमार (१४) चम्पारण, ९८
 सूरज प्रसाद (१४) धनबाद, ९९ सुवेदार (१४) बौरवां, ९४००
 दीपककुमार (१२) सहारनपुर, १ मिथिलेशकुमार (९) तेलाड़ी,
 २ हरेश्वर प्रसाद (१५) सोनपुर, ३ पूर्णकुमार (१७) नयी दिल्ली
 ४ किरणकुमार (१२) नारलाई, ५ भरत प्रसाद (१५) फखरपुर
 ६ काविन्द्रकुमार (१४) मदनपुर, ७ वीरेन्द्र प्रसाद (२०) दावां,
 ८ चाँदकुमार (१४) जोधपुर, ९ बदरी प्रसाद (२५) दावां, १०
 बलराम सिंह (१५) अजमेर, ११ श्यामसुन्दर (१६) खरगोन,
 १२ सत्येन्द्र प्रसाद (१८) दावां, १३ आर. एस. रामचन्द्रन (१२)
 जमशेदपुर, १४ अशोककुमार (१५) सारन, १५ लालनारायण
 (१४) पीरो, १६ मदनगोपाल (१५) भटिण्डा, १७ आर. एस.
 राजागोपालन (१४) कदमा, १८ अरविन्दकरण (९) जोधपुर,
 १९ कान्तिलाल (१६) पाली, २० विजयकुमार (१४) गया, २१
 रामजी (१४) गया, २२ चोखेलाल (१५) गोंडा, २३ राधा-
 गोविन्द (१५) राँची, २४ सूर्यकुमार (१५) देहरादून, २५ सुभाष
 चन्द्र (१५) व्यावर, २६ अरुण (१३) सहारनपुर, २७ ओम-
 प्रकाश (१४) कलकत्ता, २८ चतुर्भुज प्रसाद (१५) बटियारपुर,
 २९ सुनीलकुमार (१३) छपरा, ३० कु. दमयन्ती (१३) अस्थावां
 ३१ निर्मलकुमार (१५) राणावास, ३२ मोहम्मद हुसेन (१८)
 भानपुरा, ३३ अरविन्दकुमार (१३) बेतिया, ३४ मासूम अली
 (१४) रायपुर, ३५ सुश्री सरितादेवी (३७) दिल्ली, ३६ सिद्धार्थ
 कुमार (१२) कोटा, ३७ राधेलाल (१३) बुलन्दशहर, ३८ एम.
 शंकर राव (१५) अदरा, ३९ जगदीशचन्द्र (२०) मुजफ्फर नगर,
 ४० रामअवध (१७) बड़हलगाँज, ४१ कु. विजय (१५) कानपुर।



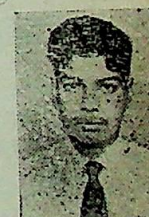
हर्षदराव
(स. सं. ७४००)



बृजबिहारीलाल
(स. सं. ७४३६)



हीरालाल
(स. सं. ७४६२)



सुनील
(स. सं. ७५१५)



रामअवतार
(स. सं. ७५६१)



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तक
२० रु. की पुस्तक
१५ रु. की पुस्तक

अन्तिम तिथि : ३० जून

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर "विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४१ का उत्तर" लिखना आवश्यक है। उत्तर ३० जून तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४१ के प्रश्न

- वर्णान्धता (colour blindness) का प्रथम परिचय किसने, कब कराया ?
- सामान्यतः रात में पेड़ काटना निषिद्ध है फिर भी कौन-सा ऐसा पेड़ है जो चांदनी रात में ही काटा जाता है ?
- शर्म से लाल हो उठने में कौन-सी शारीरिक क्रिया काम करती है ?
- हाइड्रोजन पराक्साइड कान में डालने से भाग क्यों उठते हैं ?
- अत्यधिक घनत्व किस धातु का है ? उसके एक घनफुट टुकड़े का भार क्या होगा ?
- एक कीड़ा ऐसा है जो दूसरे कीड़े के शरीर में ही जीवन बिता देता है। वह कौन है ?
- बीच-बीच में आँख की पलकें गिरती रहने का क्या प्रयोजन है ?
- संसार की द्वितीय विशालतम नदी किस स्थल पर नाली की तरह केवल उचककर पार की जा सकती है ?
- काले हंस कहाँ पाये जाते हैं ?
- कौन से वृक्ष पर मोमबत्तियाँ उग सकती हैं ?

प्रतियोगिता संख्या ३६ के प्रश्नों के उत्तर

- दक्षिण अफ्रीका, १९०५ में; वजन ३१०६ कैरट, कलिनन (Cullinan) हीरा।
- ग्रेगर (Gregor) द्वारा खोज की हुई टिटैनियम (Titanium); वायुयान-निर्माण तथा अन्य इंजीनियरिंग के कार्यों में इस्पात के स्थान पर अधिकतर काम आती है।
- क्लाइम्बिंग पर्च (Climbing Perch), लंगफिश (Lung Fish) तथा फाइटिंग फिश (Fighting Fish) मछलियाँ ऐसी हैं जो वायु से भी आक्सीजन ग्रहण कर लेती हैं और बीच-बीच में श्वास लेने पानी से बाहर आती रहती हैं।
- जर्दी में निहित गंधक अपनी प्रक्रिया से सिल्वर सल्फाइड (काला यौगिक) बना देता है।
- पटना, बम्बई, कलकत्ता, आगरा, लखनऊ
- बोकानेर, मद्रास तथा पूना में।
- वर्फ के ही चौकों की बनाते हैं, जिन्हें इगलू (igloo) कहते हैं।
- क्रूक्स (Crooks) ने; खुली धूप में सूखे की पराबैंगनी रश्मियों से आँखों की रक्षा के लिए।
- प्रोडक्शन सेक्रेटरी के आदेशानुसार विभिन्न दृश्यावलियों को जोड़ता है।
- कम से कम ५२ से. मी. मोटा होना आवश्यक है। युद्धस्थल पर रेंती की बोरियों की दीवारें इसी प्रयोजन से खड़ी की जाती हैं।
- पाइथागोरस के सिद्धान्तानुसार (३० + १२^२ + १८^२ = १३६६ का वर्गमूल) लगभग ३७ सें. मी. लम्बी।

आपके प्रश्न

सुरेशचन्द्र साहू (४७१५) बेगूसराय

प्रश्न—अवोगाड्रो का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—विभिन्न गैसों की एक समान मात्राओं में अणुओं की भी संख्या समान ही रहती है। परमाणु विज्ञान में इस सिद्धान्त का विशेष महत्व है।

कृष्णकुमार (८८७६) बम्बई

प्रश्न—तत्त्व सं० १०२ नोबेलियम के पश्चात् नया तत्व कौनसा, किसने, कब खोजा ?

उत्तर—तत्त्व सं० १०३ लॉरेन्सियम, घायोरसो (Ghiorso) तथा उसके साथियों ने, १९६१ में।

जिनेन्द्रकुमार जैन (८६१६) डोंगरगाँव

प्रश्न—खतरों के स्थान पर लाल चिह्न, लाल बत्ती का ही उपयोग क्यों होता है ?

उत्तर—यही ऐसा रंग है जिसकी किरणें वायु-मण्डल में कम से कम शोषित हो पाती हैं।

लक्ष्मीप्रकाश बिस्सा (१६६२) बीकानेर

प्रश्न—बर्फ को किस द्रव में अधुलनशील रख सकते हैं ?

उत्तर—अमोनिया-द्रव में।

मेशकुमार सोनी (९३६६) पण्डारोड

प्रश्न—चील या अन्य पक्षी आकाश में उड़ने के दम्यान कभी-कभी पंख चलाना बन्द कर देते हैं तो भी नीचे क्यों नहीं गिर जाते ?

उत्तर—एक बार गति पकड़ लेने पर उसका संवेग जो उत्पन्न हो जाता है ! गति घटाने, बढ़ाने अथवा बदलने के लिए उन्हें अवश्य पंख मारने पड़ेंगे।

चन्द्रनाथ सूद (९५३५) रायपुर

प्रश्न—स्याही का लिखा किस द्रव से मिटाया जा सकता है ?

उत्तर—व्हीचिंग पाउडर के हलके घोल की कूची फिराने से; किन्तु परीक्षक की कापी अथवा चेकबुक पर न आजमाना, वर्ना लिखावट तो मिट जाएगी, चोरी खुल जाएगी।

जून १९६३

आर. ए. वेंकटरमन (५८०६) जमशेदपुर

प्रश्न—रेफ्रिजरेटर का प्रारम्भ कब से हुआ ?

उत्तर—आज के यन्त्रचालित रेफ्रिजरेटर का प्रारम्भ १९१८ में अमरीका ने किया।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—सुना है, पानी आग बुझाने के अतिरिक्त बड़ी आग लगा भी सकता है, सच है ?

उत्तर—गलत नहीं। अमरीका के सान-फ्रान्सिस्को नगर में एक विनाशकारी आग पानी ने ही इस प्रकार लगायी थी। एक बाल्टी में भरे हुए पानी से सूर्य की किरणें परावर्तित होकर निकट के एक फूस के छप्पर पर ही तब तक केन्द्रित होती रहीं जब तक उससे लपटें न उठने लगीं।

कैलाशप्रसाद गुप्त (९४२३) करवी

प्रश्न—जब एक आँख को हम किनारे से जरा दबाते हैं तो एक ही वस्तु दो क्यों दिखती है ?

उत्तर—एक आँख को बन्द करके दूसरी आँख को इस तरह दबाइये तो आपका सवाल गलत हो जाएगा। एक स्टीरियोस्कोप दर्शकयन्त्र की भाँति हमारी दोनों आँखें अपने निर्धारित कोणों पर एक ही वस्तु का सजीव एवं मोटाई युक्त बिम्ब दिखाती हैं। इनमें एक आँख के खुले रहने और दूसरी आँख का कोण बदल जाने के कारण दो बिम्ब दिखते हैं।

एस. शेखर (१९२५) मुजफ्फरपुर

प्रश्न—बिजली के लौह-निर्मित खम्भों में ध्वनि की सनसनाहट क्यों सुनाई देती है ?

उत्तर—इसके लिए खम्भे का पोला होना आवश्यक है। किसी ठोस खम्भे पर कान लगा देखिए, कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। पोले खम्भे के अन्दर की वायु बाहर की वायु-तरंगों से प्रभावित होकर क्षीण ध्वनि-लहरें उत्पन्न करती है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

टेस्ट ट्यूब में टुला

पंकजशरण वर्मा

आप भी एक परखनली में तुला (scale) बना सकते हैं।

आवश्यक वस्तुएँ

१. एक परखनली (कांच की)। २. एक कार्क जो परखनली में फिट हो सके।
३. कांच की चौड़ी नली का १ इंच लम्बा टुकड़ा। ४. ताँबे या पीतल का २६ गेज का तार। ५. लोहे का मोटा तार या तीली जो परखनली से २ इंच लम्बी हो। ६. टीन की गोल चकरी जिसका व्यास परखनली के भीतरी व्यास से जरा ही कम हो।

बनाने की विधि

लोहे के तार को ठोक-पीट कर सीधा कर लीजिए। टीन की चकरी में बीचोबीच सूराख कर लीजिए। सूराख में लोहे के तार को पिरोकर सिरे पर थोड़ा-सा मोड़ दीजिए ताकि चकरी निकल न सके। तार के उस सिरे को चकरी के बीचोबीच सोल्डर भी कराया जा सकता है।

कार्क के बीचोबीच एक इंच लम्बी नली की मोटाई के बराबर सूराख कर लीजिए। उसमें नली फँसा दीजिए।

ताँबे के पतले तार को किसी बेलनाकार वस्तु पर जिसका व्यास गोल चकरी के व्यास से कुछ कम हो लपेटिये। तार को कुण्डली के रूप में दूर-दूर लपेटिये और लगभग ४ इंच लम्बी स्प्रिंग बना लीजिए। स्प्रिंग बहुत कड़ी न होनी चाहिए।

अब परखनली में तार जुड़ी हुई चकरी उतारिये। तार के बाहरी सिरे से वह ताँबे की स्प्रिंग पिरो दीजिए। बाद में नली सहित

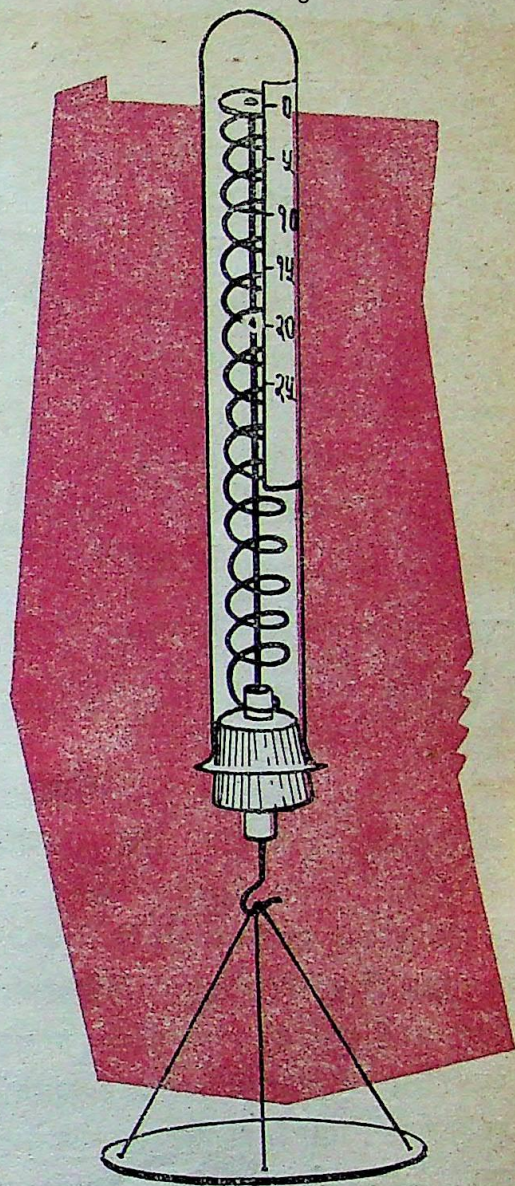
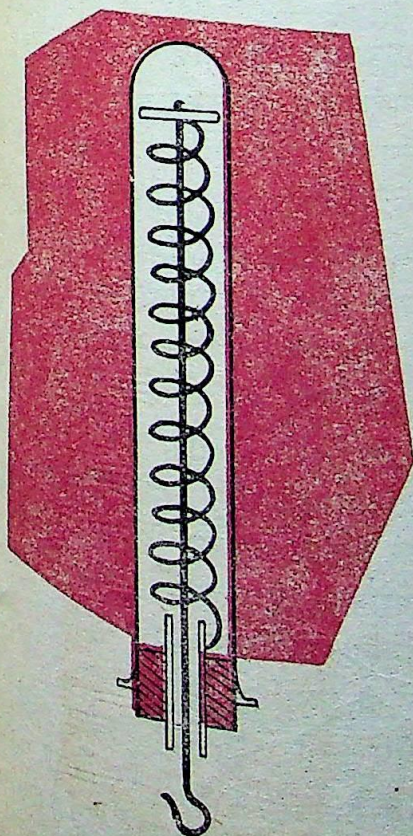


कार्क को फिट कर दीजिए । बाहर निकले हुए तार के सिरे को हुक की तरह मोड़ लीजिए । चित्र से यह सब स्पष्ट हो जाएगा ।

परखनली को उलटा कर लीजिए और तार के हुक में एक पलड़ा लटका लीजिए । परखनली पर कागज की एक सफेद पट्टी चिपका दीजिए । अब देखिये कि टीन की चकरी किस स्थान पर है । वहीं कागज की पट्टी पर एक चिह्न लगा दीजिए । पलड़े पर ५ ग्राम का बाँट या १० नये पैसे का सिक्का रख दीजिए । स्प्रिंग दब जाने के कारण चकरी कुछ नीचे खिसक आएगी । इस स्थान पर भी एक चिह्न लगा दीजिए । इन दोनों चिह्नों की दूरी को स्केल द्वारा ५ या १० सेन्टीमीटर के समान भागों में चिह्नित कर दीजिए ।

आपकी तुला तैयार है । आप इसे लकड़ी के स्टैंड पर भी लगा सकते हैं । पलड़े पर तौलने वाली वस्तु रख दीजिए । चकरी जिस

ई चकरी वह तौलनी सहित



चिह्न तक खिसक आये वही उस वस्तु की तौल होगी ।

ध्यान देने योग्य

१—तौल करते समय परखनली बिलकुल सीधी खड़ी होनी चाहिए ।

२—चकती परखनली को कहीं भी छूनी न चाहिए ।

३—स्प्रिंग इतनी हलकी व ढीली होनी चाहिए की १० नये पैसे का सिक्का रखने पर वह कम से कम लगभग १ सेन्टीमीटर दब जाए ।



पेट्रोल पम्प

शिमभूशरण (स. सं. १५०४)

मोटर कार के प्रारम्भिक युग में कार के साथ ही अतिरिक्त पेट्रोल भी ले जाना पड़ता था। जरा भी लम्बा सफर हुआ तो २-३ टिन पेट्रोल को लादकर चलना पड़ता जिससे मार्ग में ही मोटर का पेट्रोल समाप्त हो जाने पर कोई परेशानी न उठानी पड़े।

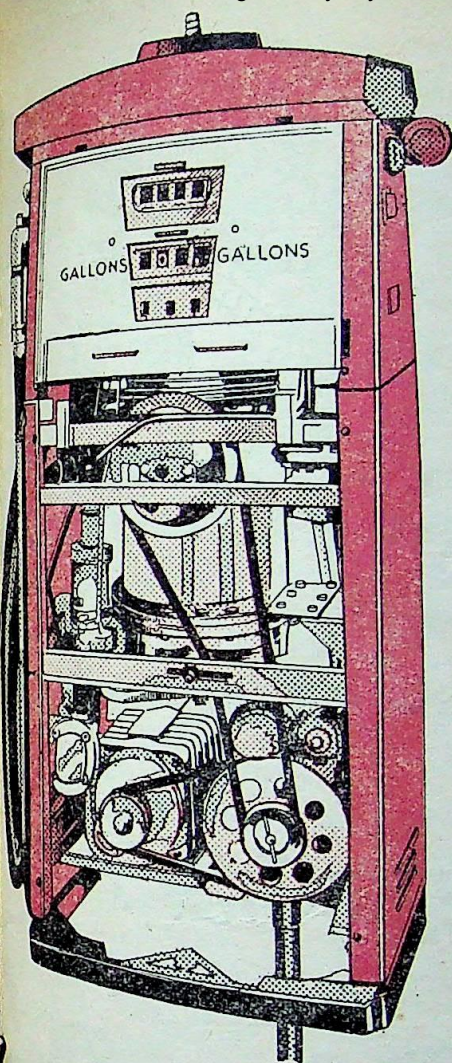
अब वे दिन दूर हो चुके हैं। अब तो किसी भी पेट्रोल-पम्प के आगे से निकलिये, ऐसा मालूम होगा कि थकी-हारी मोटरों के लिए कोई साफ-सुथरा विश्रामगृह बना खड़ा है। वहाँ मोटरों के लिए न केवल पेट्रोल बल्कि हवा का भी प्रबन्ध होता है।

आज मोटरकारों तथा ट्रकों का याता-यात वेग से बढ़ता जा रहा है। प्रायः ही पेट्रोल-पम्पों पर सुनाई पड़ता है, बीस लिटर, चार लिटर, दो लिटर इत्यादि।

जगह-जगह पेट्रोल-पम्प लगाने का प्रारम्भ अमरीका में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ही हो चुका था। तत्पश्चात् अन्य देशों में भी शीघ्र शनैः फैलता चला। प्रारम्भिक पेट्रोल-पम्प हैंड-पम्प द्वारा हाथ से चलाये जाते थे। उसमें काफी समय भी लगता था और हियाँ जोड़ने—पैसे लेने-देने—की भी समस्या थी। वह समस्या तो अधिकांशतः हल हो चुकी थी कि पेट्रोल का पीपा साथ ले चलिए, रात भर सम्हालते रहिए। वैसे हस्तचालित पेट्रोल पम्प द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ काल तक प्रचलन में रहे। तत्पश्चात् कम्प्यूटर सज्जित आधुनिक स्वचालित पम्पों का विकास हुआ।

ये आधुनिक पम्प एक स्विच के सहित पेट्रोल की अपेक्षित मात्रा मोटर पहुँचाते हैं और घड़ी पर दिखा भी हैं कि कितना पेट्रोल आपने ले लिया।

मूल्य देना है अर्थात् हिसाब लगाने की भी आवश्यकता न रही। ऐसे ही एक आधुनिक पेट्रोल-पम्प का भीतरी दृश्य चित्र में अंकित है। इसकी रचना इस प्रकार है :



एक पाइप के द्वारा भूमिगत टंकी से पेट्रोल ऊपर खिंचता है। यह पम्प इलेक्ट्रिक मोटर के द्वारा चलाया जाता है। पेट्रोल के सही माप के लिए आवश्यक है कि उसमें से वायु का भाग निकाल दिया जाए। यह कार्य ड्रेन-लाइन एलीमिनेटर के जिम्मे है। पेट्रोल कितना जा रहा है यह मापन द्वारा सम्पन्न होता है। इसमें अन्दर एक पहिया रहता है जो पेट्रोल की धार में वेग से घूमता रहता है। स्वयं घूमते हुए यह दूसरा पहिया भी घुमा देता है जो घड़ी पर यह बताता है कि आपने कितना पेट्रोल लिया। लिये हुए पेट्रोल का मूल्य निर्धारण इसमें होता है। इसके डायल पर आप पढ़ सकेंगे कि आपको कितना मूल्य देना है। पेट्रोल आ भी रहा है या बीच ही में रुक गया, यह पम्प का कार्यकर्ता खिड़की से देख सकता है।

दूसरा मोटर यह भी बता देता है कि क्या

आवाज आपकी, आपके बाद

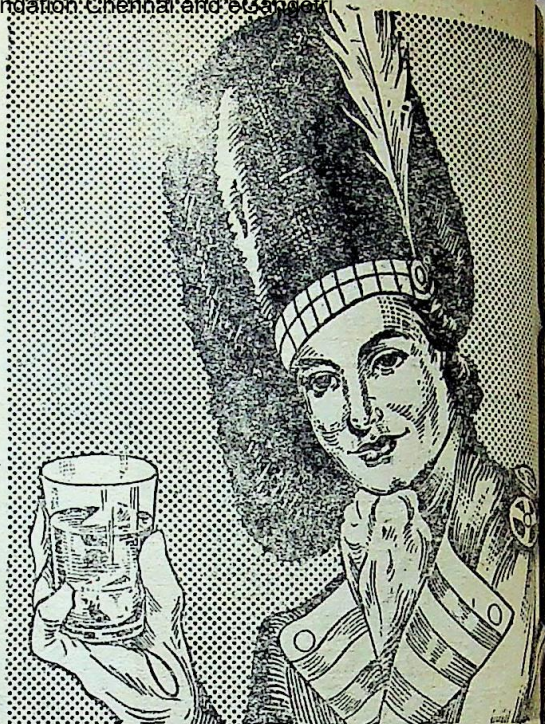
आनसा-फोन (Ansafone) 'फोन पर जवाब' नामक एक नया ही ट्रांजिस्टरयुक्त टेलीफोन ऐसा बना है जो पहले ही से भरी हुई आपकी आवाज में सामने वाले का फोन न सिर्फं रिस्वीव करेगा, बल्कि संवाद, संदेश और कामकाज भी नोट कर लेगा। आपही की आवाज में वह बोलेगा—'हाँ, कहिए; मैं ही बोल रहा हूँ, मगर घर से बाहर हूँ। आप काम नोट करा दीजिए, थोड़ी देर बाद मैं खुद आपको फोन कर लूँगा।'

नया पेचीदा पेचकस

चुम्बकीय नोक वाले पेचकस जिनसे लोहे के पेच खोलने-कसने में सुविधा रहती है, नयी वस्तु नहीं रहे। नयापन लेकर जो दूसरा पेचकस सामने आया है उसके द्वारा आप हाथ को हाथ न सभलने-बाले अंधेरे में भी चाहे जैसा पेच खोल सकेंगे। यह इसलिए सम्भव है कि छोटे-बड़े पेचों के लिए नयापन नोकों उस पेचकस के हैण्डिल में जिस जगह फिट की जाती हैं, वहाँ एक टार्च का बल्ब भी लगा रहता है। टार्च का सेल हैण्डिल के अन्दर रहता है और जलाने-बुझाने के लिए स्विच अँगूठे के निकट ही रहता है।

मुझे मेरी
जन्म-भूमि की
छाद दिलाती है!

सुन्दरता और
सावधानी से मिश्रित
जब अतिथि आये
सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत कीजिए



प्रस्तुत कीजिए

हाईलैंड चीफ
माल्टेड हिस्की

डायरमीकिन ब्रूअरीज लि० स्थापित १९००

बोतलों में लखनऊ डिस्टिलरी एवं सोलन ब्रूएरी द्वारा भरा गया

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
[मुखपृष्ठ ब्रजवासी फाइन आर्ट प्रोफेसट वर्क्स, नयुरा में मुद्रित]

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

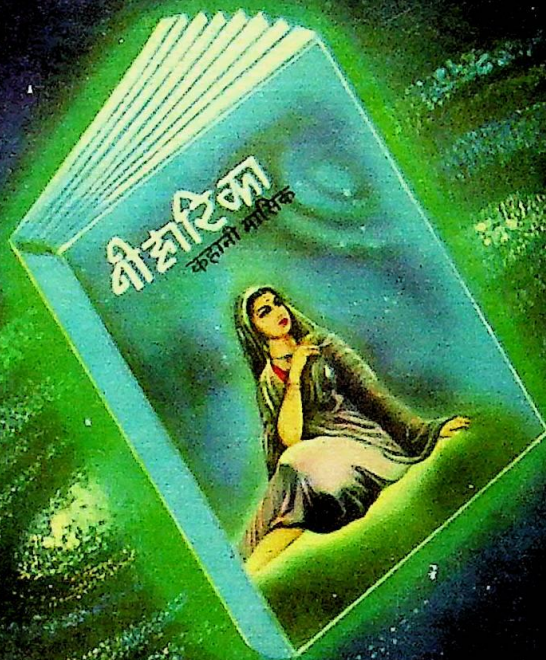
Book II.....Price : Re.1'00

Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

कहानी जगत में नया नक्षत्र



वीहाटिका

• रोचक कहानियाँ

• • नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेण्टों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रुपये

एक प्रति ६०

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



देश-देश के नाग	३
—नरेन्द्रसिंह माथुर	
विशाल ऊर्जा कणों का निर्माण	८
—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा	
पनडुब्बी	११
—राजेन्द्रकुमार	
भविष्य का खाद्य पदार्थ एलगी	१५
—डा. शिवगोपाल मिश्र	
स्ट्रीमलाइनिंग	१८
—प्रकाशचन्द्र अग्रवाल	
पनामा नहर	२२
—जुगलकिशोर बाण्य	
सेम्युअल मोर्स	२६
—रामसिंह	
मधु	२९
—जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव	
मेरिनर की शुक्यात्रा	३३
—प्रेमलाल टण्डन	
टेलीविजन	३७
—केशोशरन	
कोलायड	४१
—सत्यकुमार	
प्रशीतन द्वारा खाद्य-संरक्षण	४६
—ब्रनवारीलाल शर्मा	
जब चट्टान खिसकती है	५२
—भगवानदास गुप्त	
स्थायी स्तम्भ	
विचित्र संसार	५०
विज्ञान क्लब	५५
इनाम लो	५८
आपके प्रश्न	५९
करो और देखो	६१
तुम्हारी कलम से	६२

वर्ष ४

अंक ६



मूल्य

एक प्रति : ७५ नये पैसे

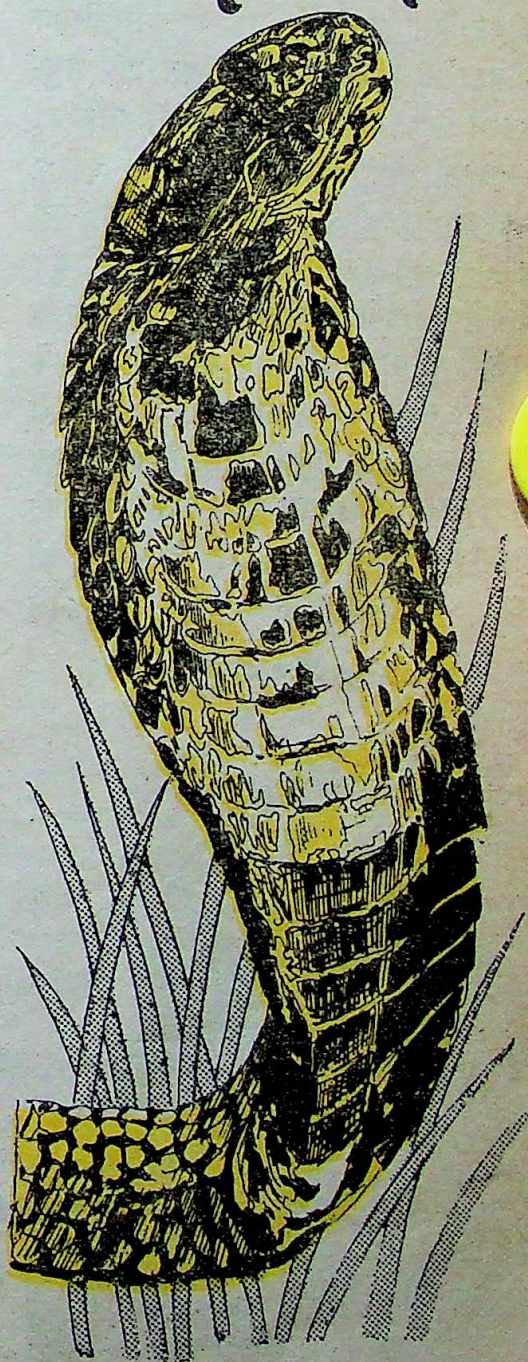
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

देश-देश के नाग



नरेन्द्रसिंह माथुर

छा हुआ तुम ने कहा और मखमली डब्बा खोलकर मखमली मौत को गले लगा लिया। मिस्र-वासी उस नन्हे कोबरा इजिप्शियन एस्प (Egyptian Asp) ने इतिहास-प्रसिद्ध क्लियोपेट्रा को चुपचाप ही जीवन से मुक्ति दिला दी। यही एक उल्लेखनीय उदाहरण मिलता है जिसमें मनुष्य ने स्वयं को डसवाकर भी नाग से लाभ उठाया हो।

बात अफ्रीकी नाग की चल रही है, वह भी खासकर इजिप्शियन एस्प की। संसार-प्रसिद्ध नागों में प्रथम स्थान भारत का है। भारत के पश्चात् द्वितीय स्थान अफ्रीका का है जहाँ नागवंश की मम्बा (mamba) शाखा प्रसिद्ध है। उसी शाखा में इजिप्शियन एस्प सबसे प्रमुख है। इसमें एक विशेषता है। इसका काटा हुआ व्यक्ति चीख-पुकार और हाय-हाय नहीं करता; बस, खामोशी से खामोश हो जाता है। इनके दंश में पीड़ा नहीं होती। इसीलिए तो क्लियोपेट्रा ने इसको चुना था और इसीलिए यही जाति वहाँ के पूर्वकालीन राजबन्दियों को कारागार की अमानुषीय यातनाओं से मुक्ति दिलाने का प्रिय साधन मानी जाती थी। मिस्र की प्राचीन शिल्प तथा वास्तुकला में ये ही नाग व्यापक रूप से देखने को मिलते हैं। नाग-समूह अन्यान्य सर्पों से सर्वथा भिन्न है। सर्पजाति में प्राणघातक फणिधर सर्प 'नाग' कहलाते हैं। ये चार परिवारों में बँटे रहते हैं। वे चारों परिवार भी दो-दो शाखाओं में विभाजित रहते हैं। एक शाखा का नाम प्रोटेरोग्लाइफा (Proteroglypha) है जिनके विषदन्त सामने के जबड़े में जुड़े रहते हैं। दूसरी का नाम सोलेनोग्लाइफा (Solenoglypha) है जिनके विषदन्त काफी बड़े होते हैं और जिनमें अवकाश के समय पीछे को मोड़कर

भी रखा जा सकता है। ऐसे सन्मुख-विष-
दन्तधारी नागों की ये दोनों शाखाएँ इलेपिडी
(Elapidae) कहलाती हैं। इनमें कोबरा,
कोरलस्नेक तथा मम्बा सम्मिलित हैं।
दूसरी शाखा हाइड्रोफिडी (Hydro-
phidae) कहलाती है जिसमें जल-सर्प
सम्मिलित हैं।

इलेपिडी परिवार में बड़े-बड़े विषधर
कोबरा हैं। इनमें १५ इंच का आस्ट्रेलियन
कोबरा भी है जिसके काटने पर एक मधु-
मक्खी से अधिक पीड़ा नहीं होती और जो
घातक भी नहीं होता। दूसरी ओर २०, २५
और २८ फुट तक के विशालकाय नाग ऐसे
कातिल होते हैं जिनके विष की एक ही बूंद
दर्जनों व्यक्तियों को पलक मारते ही मृत्यु के
मुख में पहुँचा देने के लिए काफी है। इनके
रंगों में भी काफी विविधता रहती है। कहीं
तो मरुस्थल की रेतीली भूमि से इनका रंग
बिल्कुल मिल जाता है, कहीं (अफ्रीकी
मम्बा) चमकीले हरित वर्ण के होते हैं तो
कहीं चटख लाल, काले, पीले, चमकीले

मरुस्थलीय कोबरा



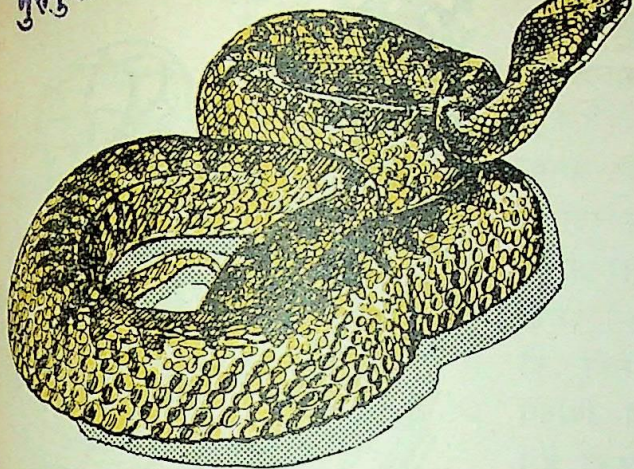
छल्ली को चित्रकारीयुक्त (कोरलस्नेक)
होते हैं।

‘कोबरा’ शब्द पुर्तगाली कोबरा-डी-
केपेलो (*cobra-de-capello*) शब्द से बना है
जिसका अर्थ है फणिधारी सर्प। पुर्तगालियों
ने भारत के नागों से सामना पड़ने पर
उन्हें यह नाम दिया था। एशिया, मलाया,
फिलिपाइन, अफ्रीका तथा संयुक्त राज्य
अमरीका में अधिकांश पाये जाने वाले समस्त
फणिधारी विषधरों को सामान्यतः कोबरा
कहा जाता है। छिपकली, मेंढक, नन्हे पक्षी,
छोटे-छोटे प्राणी, मछलियाँ तथा सर्प इनके
मुख्य आहार हैं।

अफ्रीकी नागों में कुछ छोटे फणिधर
ऐसे भी होते हैं जो विष की तीखी पिचकारी
का ३-४ फुट तक दूर खड़े शत्रु की आँखों
पर अचूक निशाना मारते हैं। दूसरे ही क्षण
आँख जलने लगती है और यदि तुरन्त ही
साफ पानी से धोने और दवा डालने का
प्रबन्ध न किया जाए तो आँखों को स्थायी
हानि पहुँच सकती है।

अफ्रीकी कोबरा बेहद चुस्त, चालाक
और तेज होते हैं। इनका विष अत्यन्त तीव्र
होता है। विस्कॉन्सिन (Wisconsin) के
डा. ईजेनबर्गर (Eigenberger) तो एक
बार इसके विष की अति अल्प मात्रा का
प्रयोग अपने ऊपर करते हुए मरते-मरते
बचे थे। एक विपरीत उदाहरण ऐसा भी
मिला है जिसमें सर्प द्वारा पूरा विषदन्त
गड़ा देने पर भी व्यक्ति जीवित बच गया।
जन्तुओं के प्रसिद्ध अमरीकी चित्रकार लुई
एगेसीज (Agassiz) को एबीसीनिया के
प्रदेशों में घूमते हुए एक नाग से पाला पड़ा
गया था। उसने तीतर-कबूतर मारने वाले
छर्रे कारतूस अपनी बन्दूक से दाग दिये
और सामान्य अमरीकी सर्प जानकर उन्हें
उठा लिया। संयोगवश नाग जीवित बच

भारत में नाग के प्रति प्रबल धार्मिक भावना प्रचलित है। इतिहासकारों ने तपस्यारत बुद्ध को प्रखर सूर्य के ताप में नागफन द्वारा ही रक्षित होना कहा है। भारतीय पुराणों में समुद्र-मन्थन के लिए वासुकि नाग का, पृथ्वी को धारण करने के लिए शेषनाग का तथा महाभारत में तक्षक नाग का विशेष महत्त्व दर्शाया गया है।



इजिप्शियन कोबरा-एस्प वाइपर

गया था और हाथ पड़ते ही उसने अपना दाँत उसकी अँगुली में गड़ा दिया था। किन्तु आश्चर्य! या तो विष ही समाप्त हो गया था या रेत आदि से दाँत का मुँह रुक गया था जो एक बूँद भी विष न टपका!

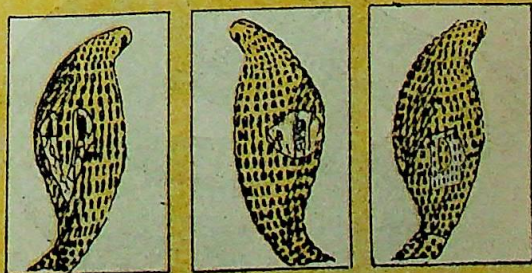
अफ्रीकी नागों में नन्हा इलेप्स (Elaps) भी है। इसके शरीर पर स्याह-सफेद पट्टियाँ होती हैं। सौ-सवा-सौ से भी अधिक वर्ष हो गये, तत्कालीन जैव-वैज्ञानिकों की अल्पज्ञता के फलस्वरूप इन इलेप्स को ही नाग जाति का प्रतीक मानकर समूची जाति को इलेपिडी (Elapidae) नाम दे दिया गया। तब से यही नाम चला आ रहा है।

संसार की कोई भी नाग जाति इतनी प्रसिद्ध नहीं, जितनी भारत की। यह जाति नाजा-नाजा-नाजा (naja-naja-naja) के नाम से प्रसिद्ध है। 'नाजा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'नाग' शब्द से हुई है।

इसके फन का फैलाव सबसे अधिक है। इसकी गर्दन के दोनों ओर अतिरिक्त फसलियाँ तथा भूलती हुई त्वचा रहती है। वही उत्तेजित अवस्था में फणाकार फैल जाती है। फैला हुआ फन एक गोल पंखे जैसा दिखता है और उसके मध्य में दो लेन्सयुक्त चयमे जैसी आकृति नजर आती है।

केवल छेड़े जाने पर अथवा पाँव के नीचे दब जाने पर अपनी सुरक्षा के लिए ही नाग फन फैलाकर काटने को उद्यत होता है। तब यह अपनी पूरी लम्बाई का एक तिहाई भाग एक रस्से की भाँति खड़ा कर लेता है। इसका वह काल रूप कैसे भी शूरवीर को भयभीत करने के लिए काफी है। भारत में अधिकतर ऐसी दुर्घटनाएँ पाँव के नीचे नाग आ जाने से ही होती हैं और नंगे पाँव चलने-फिरने का सर्वाधिक प्रचलन भी यहीं है। सर्पदंश से होने वाली मृत्यु का वार्षिक अंक भारत में जो पहले ३० हजार था, वह आज घटकर १० हजार रह जाने पर भी संसार के किसी भी देश के मुकाबले अति उच्च है। यहाँ की जनसंख्या के हिसाब से यह मृत्यु संख्या प्रति ३० हजार पर एक की

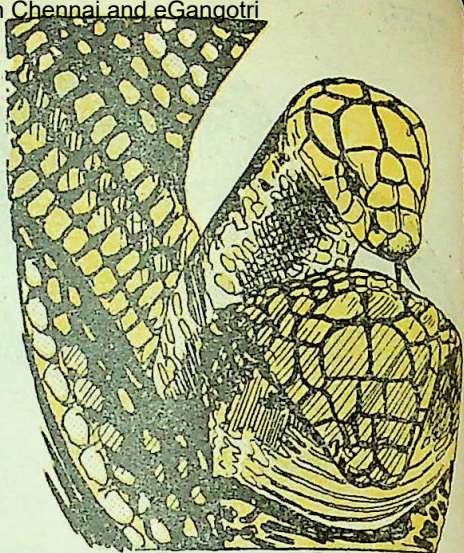
भारतीय कोबरा के फन पर क्रमशः उभरती हुई चश्माकार आकृति



है, जबकि ब्राजील में प्रति १० लाख पर एक का औसत है !

सामान्य श्रेणी के नाग भारत के मदारियों के प्रमुख जीवनाधार हैं। वे बड़ी कुशलता से इनके विषदन्त उखाड़कर अथवा विष निचोड़कर इन्हें अपनी टोकरियों में लिये-लिये बस्ती-बस्ती घूमते हैं और भावुक लोगों को केवल दर्शन कराकर तथा जिज्ञासुओं और विदेशी पर्यटकों को अपनी बीन के स्वरों पर इनकी विविध मुद्राएँ दिखाकर जीवनोपार्जन करते हैं। ज्योंही मदारी पिटारे का ढक्कन खोलता है, नाग अपना एक तिहाई शरीर खड़ा करके, फन फैलाये हुए मदारी को स्थिर दृष्टि से देखता रहता है। लोगों का खयाल है कि नाग बीन के स्वरों पर मोहित होता है किन्तु यथार्थ यह है कि सुनना इसके बस का नहीं। इसके कान ही नहीं होते ! यह

भारतीय नाग, सम्मुख दृश्य



प्रणयकीड़ा-रत नागाधिराज

केवल बीन तथा मदारी के शरीर को हिलता-डुलता देख-देखकर उसी की नक़ल करता है। दिन के प्रकाश में तो यह सहने निशाने पर चोट भी नहीं कर सकता।

इनमें भी प्रौढ़ की अपेक्षा अल्पवयस्क नाग अधिक उद्दण्ड, खतरनाक और फुर्तीले होते हैं। प्रौढ़ नाग तो बगैर आवश्यकता प्रायः वार नहीं करता, किन्तु नन्हे-मुन्हे हजरत तो अण्डे से पूरे बाहर निकल भी नहीं पाते कि आधे शरीर और फन से ही जिस-तिस पर चोट करते रहते हैं।

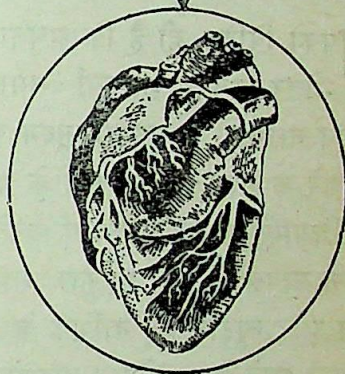
नागों में शिरोमणि नागाधिराज को किंग-कोबरा कहते हैं। आफियोफेगस (Ophiophagus) इनके पृथक् वंश का नाम है। यह नाम सूचित करता है कि ये सर्पभक्षी नाग हैं। डील-डौल में सबसे बड़े और रूप-स्वरूप में सबसे विकराल नागाधिराज अपने घोंसले के निकट किसी को नहीं आने देते। घोंसला बनाकर रहने इन्हीं की प्रकृति है। नागरानी जहाँ-तहाँ से सूखे पत्ते, घास, तिनके, टहनियाँ, कूड़ा-कचरा बटोर लाती है और दुर्गन्धित घोंसला बनाती है। नीचे की माँझ में अण्डे सहेजे रहती है और ऊपर

है। आस्ट्रेलिया के नागों में १२-१५ फुट लम्बे टाइगर स्नेक (Tiger Snake) और टाइपन स्नेक (Taipen Snake) प्रसिद्ध हैं। टाइपन स्नेक का काटा प्राणी २-३ मिनटों में ही समाप्त हो जाता है। टाइगर स्नेक की मादा नाग जाति में बहुत कम पायी जाने वाली उन जातियों में है जो अण्डे न देकर पूरे शिशु-नाग ही प्रसव करती हैं। ये एक बार में ७०-७२ बच्चे देती हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में विषधर नाग केवल कोरल स्नेक पाये जाते हैं। इनके शरीर पर काले, पीले और लाल छल्ले रहते हैं। इनकी थुथनी काली होती है। थुथनी तथा छल्लों के रंगों का विशिष्ट क्रम ही इन्हें पहचानने में सहायक होता है। सामान्य विषहीन कोरल स्नेक भी पाये जाते हैं।

जैसे जंगल का शासक सिंह है वैसे ही सर्पजगत का शासक नाग है जो अपनी दुनिया का एक छत्रधारी सम्राट् है।

चिन्ता और भय का
हृदय पर गहरा
प्रभाव होता
है



साफ़ी

पाचन-क्रिया को ठीक करती है, खून को साफ़ करती है और ताज़ा खून पैदा करके चेहरे पर ताज़गी लाती है।



देहली-कानपुर-पटना

मोर्स टेलीग्राफ की प्रथम सफलता

मोर्स-टेलीग्राफी को लोकप्रिय बनने में प्रारम्भिक काल की एक घटना से बहुत बल मिला था। टाबेल नामक एक व्यक्ति किसी अनवन पर अपनी प्रेयसी को विष देकर स्लफ स्टेशन से ट्रेन में सवार होकर लन्दन को भाग निकला। परन्तु पीछे से भेजे गये टेलीग्राफ संदेश की गति उसके भागने की गति से कहीं अधिक निकली और अघबोच में ही ट्रेनयात्रा के बदले जेलयात्रा उसके गले पड़ गयी।

जुलाई १८६३

विशाल ऊर्जा कणों

का

निर्माण

डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

आपको विदित ही है कि अणुनाभिक के भीतर प्रचण्ड शक्तियाँ समायी हुई हैं। इन नाभिकों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण जब एक-दूसरे के साथ इन शक्तियों के प्रभाव में अन्तरक्रियाएँ अर्थात् प्रक्रियाएँ करते हैं तब मूलकण उत्पन्न होते हैं। कुछ समय पूर्व प्रोटान और न्यूट्रान ही नाभिक के अन्तिम कण माने जाते थे। प्रोटान हाइड्रोजन अणु के नाभिक होते हैं तथा इनका भार एलेक्ट्रान के भार का १८३६.१ गुना होता है। न्यूनतम भार के तत्त्व हाइड्रोजन के नाभिक में एक प्रोटान तथा सबसे भारी तत्त्व मेंदे-लेयेवीत के नाभिक में १०१ प्रोटान होते हैं। प्रत्येक प्रोटान पर एक इकाई मात्रा का आवेश (चार्ज) होता है। न्यूट्रान कणों का भार प्रोटान कणों से कुछ अधिक होता है। एक न्यूट्रान का भार एक एलेक्ट्रान के भार का १८३८.६ गुना होता है, परन्तु न्यूट्रान पर कोई भी आवेश नहीं होता।

नाभिक के कणों के बीच कुछ विशेष शक्तियाँ होती हैं जो इन कणों को नाभिक के अन्दर बाँधे रखती हैं। यदि नाभिक में ये शक्तियाँ न होतीं तो ये प्रोटान कण एक-दूसरे से प्रतिकर्षण बल के कारण नाभिक के बाहर भागने और बिखरने का प्रयत्न करते। नाभिक के भीतर की इन प्रचण्ड शक्तियों के

स्वरूप को तो अभी तक पूरी तरह से खोज नहीं जा सका है, परन्तु इतना अवश्य है कि इन शक्तियों के कारण ही नाभिक कणों के आपस में तेजी से टकराने की अन्तरक्रियाओं के फलस्वरूप नवीन प्रकार के मूलकण उत्पन्न हो जाते हैं जिनकी ऊर्जा बहुत अधिक होती है। उदाहरणतः पाई-मेसान नामक कण एलेक्ट्रान से २७३ गुना तथा म्यू-मेसान कण २०७ गुना भारी होते हैं। यह मेसान धनात्मक, ऋणात्मक अथवा आवेश रहित सभी तरह के होते हैं। इनके अतिरिक्त इन अन्तरक्रियाओं में भारी मेसान भी जन्म लेते हैं जिनका भार एलेक्ट्रान के भार का लगभग ९६० गुना होता है। यह भी सभी आवेश के होते हैं। इतना ही नहीं, कुछ ऐसे मूलकण भी इन्हीं प्रक्रियाओं की देन हैं जिनका भार एक प्रोटान तथा दो प्रोटान वाले नाभिक ड्यूट्रान के बीच होता है। इन विशेष भारी कणों को हाइपेरान के नाम से पुकारते हैं तथा इनका भार एलेक्ट्रान के भार का लगभग २१०० से लेकर २५०० गुना होता है।

पदार्थ वैज्ञानिकों ने अब तक जितने मौलिक अथवा मूलकणों की खोज की है उनमें ये मूलकण मुख्य हैं: प्रोटान, न्यूट्रान, एलेक्ट्रान, प्रोजीट्रान, विभिन्न प्रकार के मेसान

तथा हाइड्रोजन । इनके अतिरिक्त विपरीत गति से चलने वाले कण होते होंगे ।
मूलकणों का भी एक अनोखा विश्व खोजा जा चुका है । मुख्य विपरीत मूलकण हैं :
एलेक्ट्रान का पोजीट्रान, प्रोटान का एन्टी-
प्रोटान, न्यूट्रिनो का एन्टीन्यूट्रिनो, न्यूट्रान
का एन्टीन्यूट्रान तथा मेसान के विपरीत
मूलकण एन्टीमेसान ।

अणु के राज्य में घटित प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए वैज्ञानिक आइन्स्टीन का साक्षेपतावाद सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है । इसके आधार पर अब द्रव्य और ऊर्जा में कोई भी अन्तर शेष नहीं रह गया है; क्योंकि वे एक ही मूल सामग्री के दो भिन्न पहलू हैं । इसमें यह सिद्ध किया गया है कि भार, गति, ऊर्जा और द्रव्य के अन्य गुण कितनी घनिष्ठता से परस्पर आधारित हैं । वैसे तो प्रत्येक मूलकण में अपने स्वयं के स्थिर भार के कारण एक निश्चित ऊर्जा होती ही है, फिर भी यह ऊर्जा उस समय विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है जबकि कोई कण अधिक से अधिक गति से दौड़ रहा हो । उदाहरणतः एक एलेक्ट्रान का स्थिर भार एक इकाई मात्रा माना जाता है जबकि स्थिर स्थिति में होता है परन्तु जब उसकी गति प्रकाश गति की ५० प्रतिशत कर दी जाती है तब एलेक्ट्रान का भार ११ प्रतिशत बढ़ जाता है और जब एलेक्ट्रान की गति प्रकाश गति की ९० प्रतिशत होती है उस समय एलेक्ट्रान का भार अपने स्थिर भार का सवा गुना हो जाता है । यहाँ तक कि यदि गति ९८ प्रतिशत कर दी जाए तो एलेक्ट्रान का भार स्थिर भार का ५ गुना हो जाएगा । गणित द्वारा आसानी से यह सिद्ध लगाया जा सकता है कि भार बढ़ने से एलेक्ट्रान की ऊर्जा में एक अनोखी बढ़ोतरी हो जाएगी । अतः यह स्पष्ट है कि विशाल ऊर्जा के कण अवश्य ही अधिकतम

विस्मय की बात है कि अब तक आकाश की ओर से आने वाली अंतरिक्ष किरणें ही इन मूलकणों की प्रधान स्रोत रही हैं । पदार्थ वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में गुब्बारे, हवाई जहाज, राकेट तथा कृत्रिम उपग्रह भेजकर अंतरिक्ष किरणों के इन मूलकणों का अनुपम शोध किया है तथा अणुनाभिक और अन्य जटिल नाभिक प्रक्रियाओं की रचना और गुणों पर विशेष प्रकाश डाला है । वैज्ञानिकों का कहना है कि कुछ मूलकण विविध आकाशगंगाओं के मध्य उपस्थित चुम्बकीय क्षेत्र में विशेष त्वरण पाकर काफी गति धारण कर लेते हैं और अन्तरिक्ष में आकर वायुमंडल की गैस के अणुओं से टकराकर विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा विशाल ऊर्जा के अनेक प्रकार के मूलकण उत्पन्न कर देते हैं । प्रकृति द्वारा उत्पन्न इन मूलकणों की बौछार हमारी पृथ्वी पर प्रतिक्षण ही होती रहती है । इन मूलकणों की ऊर्जा को आज-कल ऊर्जा की एक नयी इकाई एलेक्ट्रान वोल्ट में नापा जाता है । एक एलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा उस ऊर्जा के मान के बराबर होती है जो इकाई वोल्ट के ऊर्जा त्वरण क्षेत्र में एक एलेक्ट्रान के चलने में उस एलेक्ट्रान में आ जाती है । ऊर्जा की यह महत्वपूर्ण इकाई साधारण उपयोग के लिए बहुत ही छोटी होती है परन्तु अणु के राज्य में और नाभिक प्रक्रियाओं में यह एक बहुत सुभीते की इकाई है ।

मानव भी प्रकृति से पीछे नहीं

प्रकृति द्वारा उत्पन्न अन्तरिक्ष किरणों पर शोध करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । प्रथम, सभी प्रकार के मूलकणों की बौछार पृथ्वी की ओर होती रहती है, अतः उनकी अलग-अलग छाँट करने के पश्चात् ही उन पर शोध कार्य

किया जा सकता है। द्वितीय, औसतन केवल एक अंतरिक्ष-किरण-कण प्रति मिनट वायु के एक घन सेंटीमीटर आयतन में से होकर गुजरता है। इतना ही नहीं, वैज्ञानिकों को कभी-कभी तो महीनों प्रतीक्षा करने के पश्चात् कहीं किसी विशेष कण पर पुनः जाँच करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार की अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

परन्तु अब मानव ने आधुनिक आणविक यंत्रों द्वारा प्रत्येक प्रकार के मूलकणों के निर्माण करने का साधन प्राप्त कर लिया है ताकि इन मूलकणों पर शोध कार्य सुगमता से चल सके। मानव ने अब प्रकृति की अंतरिक्ष प्रक्रियाओं को पुनर्निर्मित करने वाले प्रतिष्ठानों को तैयार कर लिया है जिनको एक्सीलरेटर के नाम से पुकारते हैं। इन एक्सीलरेटर मशीनों द्वारा अधिक गति और विशाल ऊर्जा वाले मूलकण उत्पन्न कर लिये जाते हैं।

लगभग २८ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम कोक्राफ्ट वाल्टन नामक एक्सीलरेटर का निर्माण कोक्राफ्ट और वाल्टन नामक दो ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने किया था। इससे लगभग दस लाख एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा के कण उत्पन्न किये जा सकते थे। इसके बाद साइक्लोट्रान और बीटाट्रान ने स्थान ग्रहण किया। इन मशीनों द्वारा लगभग डेढ़ करोड़ एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा के कण निर्मित किये जा सकते हैं।

वैज्ञानिक एक ओर तो प्रकृति के अंतरिक्ष कणों का शोध करता रहा और साथ ही साथ दूसरी ओर वैसे ही कण स्वयं अपनी प्रयोगशाला में उत्पन्न करने का प्रयत्न करता रहा। इस प्रयत्न में प्रकृति से होड़ की भावना मानव के मस्तिष्क में अवश्य ही रही होगी। फलस्वरूप १९४४ में रूस के वेक्स्लेर तथा १९४५ में अमरीका के मैकमिलन नामक वैज्ञानिकों ने ऑटोफेजिंग

का एक नवान सिद्धान्त निकाला जिसके आधार पर सिंक्रोट्रान, सिंक्रोसाइक्लोट्रान तथा प्रोटान सिंक्रोट्रान नामक एक्सीलरेटर तैयार किये जा सके। इन यंत्रों द्वारा अधिक गति वाले विशाल ऊर्जायुक्त मूलकण तैयार किये जाते हैं। संसार का सबसे बड़ा सिंक्रोसाइक्लोट्रान रूसी वैज्ञानिकों द्वारा १९५० में बनाया गया था। इसके द्वारा प्रोटान कणों को ६८ करोड़ एलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा तक त्वरणशील बनाया जाता है।

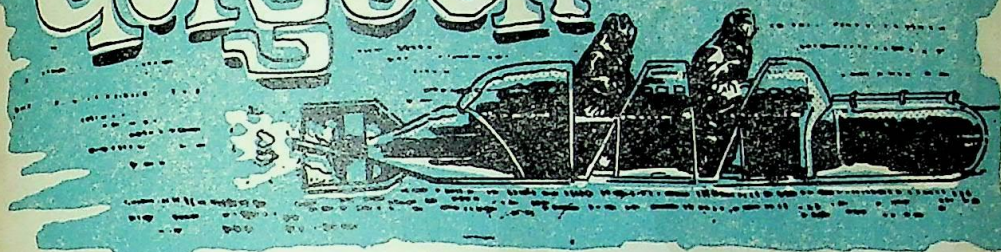
मनुष्य और प्रकृति की यह अनोखी होड़

वैज्ञानिक द्वारा विभिन्न प्रकार के एक्सीलरेटरों के निर्माण तथा उनसे उत्पन्न विशाल ऊर्जा के मूलकणों की बात केवल एक कहानी ही नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ अथवा अंतरिक्ष किरणों के साथ मनुष्य की यह एक अनोखी होड़ है।

वैज्ञानिक इन विशाल ऊर्जा के कणों को इसलिए पाना चाहता है ताकि वह इनको बहुत-सी नाभिक प्रक्रियाओं के शोध में काम ला सके। वह चाहता है कि उसे द्रव्य की स्पष्ट रचना तथा विवरणयुक्त कल्पना का पूरा ज्ञान हो जाए और उसके भीतरी गर्भ की अद्भुत प्रक्रियाओं का सही-सही विश्लेषण हो सके।

मनुष्य अपने ज्ञान को निरंतर बढ़ाना चाहता है। उसकी कल्पना है कि कहीं प्रोटान और न्यूट्रान कणों के भीतर भी ऐसी दुनियाएँ न निकल पड़ें जो आकाश गंगाओं की तरह जटिल व गूढ़ हों। वह अपनी जटिलता और अनन्तता का सही-सही ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। वैज्ञानिक प्रकृति में अगणित आश्चर्यजनक चीजें खोज रहा है। वह उनकी जानकारी अपनी प्रयोगशाला में तथा उससे बाहर जहाँ भी संभव हो सकता है प्राप्त करने का सदैव प्रयत्न करता रहता है।

पनडुब्बी



राजेन्द्रकुमार

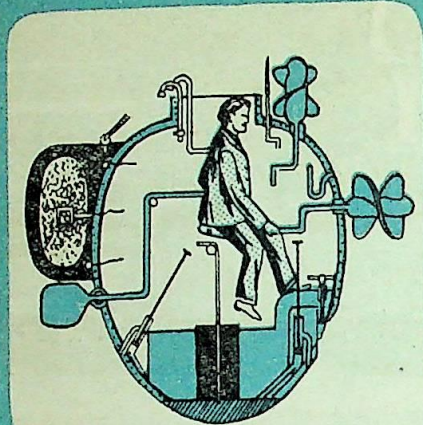
प्रकृति के अगम स्थलों तक पहुँचने और उसके अद्भुत रहस्यों को खोजने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभावगत है। महान् सिकन्दर ने भी सागर में गहरे उतरने की सोची थी और वह उतरा भी था। उल्लेख है कि उसने काँच के एक बन्द गोले में बैठकर गहरे सागर में डूबकी लगायी थी और व्हेल की भाँकी पाकर रोमांचित हो उठा था। यों एक प्रकार से पनडुब्बी की कल्पना का सूत्र ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जा सकता है।

प्रारम्भिक पनडुब्बियाँ

पनडुब्बी की कल्पना का वह बीज करीब २००० वर्ष तक दबा पड़ा रहा। १७वीं शताब्दी में उसमें पुनः अंकुर फूटने लगे और पनडुब्बी बनाने के प्रयोगों की शृंखला चल गयी। ब्रिटिश सम्राट् जेम्स प्रथम के राज्यकाल में १६२० से १६२६ तक हालैण्ड के एक चिकित्सक, डा. कर्नेलियस वान ड्रेबेल (Cornelius Van Drebbel) ने अनेक प्रयोगों के पश्चात् प्रथम माडल स्वरूप एक पनडुब्बी बनायी थी जिसमें बैठकर उसने टेम्स नदी में अनेक प्रदर्शन किये। १२ व्यक्तियों के बैठने योग्य वह पनडुब्बी अत्यन्त सामान्य नाव सरीखी थी। यह केवल चमड़े से मढ़ी हुई एक बड़ी मशक जैसी थी और

जिसके डांड भी जलरोधक थे। तत्पश्चात् अमरीकी आन्तर्विग्रह के वर्ष के मध्य १७७६ में डेविड बुशनेल (David Bushnell) ने टर्टल (Turtle) अर्थात् कछुआ नामक जो पनडुब्बी बनायी, वह बहुत कुछ आधुनिक पनडुब्बियों की प्रवर्तक मानी गयी। खड़े हुए एक बड़े अण्डे जैसी उस पनडुब्बी का ऊपरी ढक्कन खोलकर चालक उसमें बैठ सकता था। ऊपर की तरफ आठ रोशनदान लगे थे ताकि बाहरी दृश्य भी देखा जा सके। पनडुब्बी को गहरे उतारने के लिए एक पैडिल दबाकर उसमें पानी की जरूरी मात्रा प्रवेश करायी जा सकती थी। पुनः ऊँची उठाने के लिए एक हस्तचालित पम्प द्वारा उस पानी को बाहर निकाला जा सकता था। पनडुब्बी को आगे बढ़ाने तथा ऊपर उठाने के लिए १-१ हस्तचालित पंखा भी लगा हुआ था।

युद्ध के उन दिनों में पनडुब्बी द्वारा युद्धपोत डुबाने का प्रथम किन्तु असफल प्रयोग बुशनेल ने ही किया था। ईगल (Eagle) नामक ब्रिटिश जहाज के पेंदे तक तो वह अपनी टर्टल पनडुब्बी ले जाने में सफल हो गया किन्तु पेंदे में जड़ी हुई ताँबे की मोटी चद्दरो को छेदना और उसमें विस्फोटक रख देना सम्भव न हो सका। अतः विस्फोटक



डेविड बुशनेल-निर्मित हस्तचालित तथा एक व्यक्ति-
वाहक प्रारम्भिक पनडुब्बी

अपने निर्धारित समय पर व्यर्थ ही फट गया और शत्रुओं से बचकर भाग निकलने में बुशनेल की जान पर आ बनी थी।

तीसरा प्रयोग सम्राट् नेपोलियन के संरक्षण में स्टीमबोट के आविष्कर्ता राबर्ट फ्लटन ने किया। फ्लटन भी अमरीकी वैज्ञानिक था किन्तु बुशनेल की भाँति लम्बे समय से वह अपने प्रयोग फ्रांस में ही कर रहा था। १८०१ में अपनी 'नाटिलस' नामक पनडुब्बी से उसने अनेक प्रदर्शन किये थे। आज की परमाणुशक्ति-चालित नाटिलस पनडुब्बी और फ्लटन की नाटिलस में सिद्धान्ततः काफी समानता होने से दोनों के नाम में भी समानता है। फ्लटन के पास तो पोत-विध्वंसक पनडुब्बियों के अनेक नुस्खे थे, किन्तु फ्रांस अथवा इंग्लैण्ड कोई भी प्रोत्साहन देने को तैयार न हुआ।

प्रथम पोत-विध्वंसक पनडुब्बी

अमरीकी युद्धकाल के मध्य डेविड्स (Davids) नामक अनेक हस्तचालित पन-डुब्बियाँ बनायी गयीं जो जहाजों को डुबाने के काम आती थीं। उन में हनले (Hunley)

नामक जहाज को सफलतापूर्वक डुबाया था, किन्तु दुर्भाग्यवश उसे भी अनेक नाविकों समेत उसी के साथ जल-समाप्ति लेनी पड़ी थी। पायनीयर (Pioneer) पनडुब्बी भी ऐसे ही शिकार करते-करते शिकार हो गयी थी। उसे समुद्र की क้น से छुड़ाकर न्यू आरलियन्स के राजकोष अजायबघर में रखा गया है।

तब से पनडुब्बियाँ बनाने के प्रयासों में गति भी बढ़ती गयी। देश-विदेशों में नये-नये प्रयोग होते गये और नये-नये माडल सामने आते गये। अनेक संशोधनों और परिवर्तनों के पश्चात् पनडुब्बी का आधुनिक स्वरूप बन पाया है।

आधुनिक पनडुब्बी

पनडुब्बी का मुख्य आधार अन्तर्गत इंजन है। प्रारम्भिक स्टीम इंजन भारी भरकम तथा कम सुविधाजनक होते थे। उनके स्थान पर गैसोलीन-इंजन प्रारम्भ किये गये परन्तु उन्हें भी हानिकारक समझा जाता था। सामान्यतः पनडुब्बी में डीजल इंजन लगाये जाते हैं। वे डीजल इंजन जनरेटर को चलाते हैं। जनरेटर से बिजली उत्पन्न होती है। उस बिजली द्वारा चालित मोटरें पंखों को चलाती हैं। प्रारम्भ में यह कठिनाई अवश्य प्रतीत होती थी कि पानी के नीचे ही नीचे रहने से डीजल इंजनों को पर्याप्त मात्रा में बाहरी हवा मिलती थी।

बाद में इसका भी हल खोज लिया गया और बीच-बीच में पनडुब्बी को पानी से ऊपर लाया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के निकट, जर्मनी ने इस असुविधा को भी अपने नये आविष्कार से मिटा दिया। अब २५ फुट लम्बे स्नार्कल पाइप जिन्हें स्नार्कल (snorkel) कहते हैं

पनडुब्बियों में लगने लगे। पनडुब्बी नाटिलस २१ जनवरी १९५४ को सागर में उतारी। यद्यपि उसके प्रारम्भिक प्रयोगों में कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत हुईं फिर भी उसकी कार्यक्षमता इतनी अद्भुत थी कि उसे ज्यों का त्यों आधुनिक आणविक पनडुब्बी का सही प्रतीक मान लिया गया। अब अमरीका तथा अन्य देश और भी ऐसी आणविक पनडुब्बियाँ बनाने में लगे हुए हैं।

आधुनिक पनडुब्बी को काफी मजबूत बनाया जाता है ताकि वह पानी के अत्यधिक दबाव को सह सके। एक सिरे से दूसरे सिरे तक इसे अनेक वाटरटाइट कक्षों में बाँटा जाता है। वे कक्ष पानी, तेल, ईंधन आदि जमा करने के काम में आते हैं।

पनडुब्बी में बैठे हुए, पानी के अन्दर ही बाहर देखने के लिए पेरिस्कोप (periscope) नामक विशिष्ट दूरदर्शी रखना होता है। यह दूरदर्शी एक चिमनी जैसा, दोनों तथा दर्पणों की सरल सज्जायुक्त होता है। इसके ऊपर का सिरा पानी के बाहर निकला हुआ तथा समुद्री सतह के समानुपात मुड़ा हुआ रहता है। उस सिरे को चाहे किसी दिशा में घुमाया जा सकता है ताकि पानी और का दृश्य प्राप्त हो सके।

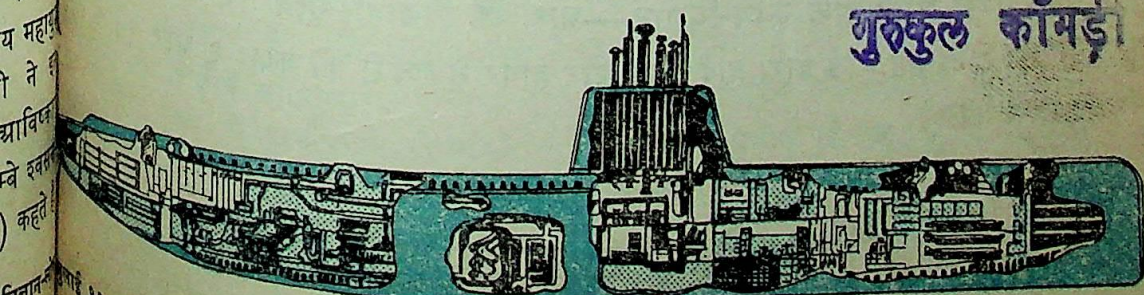
संयुक्त परमाणु-पनडुब्बी—नाटिलस
संयुक्त राज्य अमरीका के नौसेना विभाग के संसार की प्रथम परमाणुशक्ति-चालित

इस पनडुब्बी का वायु-नियंत्रण विलक्षण है। इसमें आक्सीजन का उत्पादन तथा कार्बन डाइआक्साइड का निष्कासन स्वतः होता है। इसे किसी भी लम्बे समय तक पानी के अन्दर ही रखा जाए तो भी इसके नाविकों तथा यात्रियों को कोई असुविधा न होगी। इसी में सोनार यंत्र भी रहता है जो मार्ग की रुकावटों का पूर्वाभास देता रहता है और पनडुब्बी को चाहे जिसकी टक्कर से बचा लेता है।

एक बार का ईंधन ६० हजार मील की यात्रा के लिए पर्याप्त है। पानी के अन्दर ही अन्दर लम्बे समय तक चलते रहने का इसका एक रिकार्ड यह है कि एक आणविक पनडुब्बी ६ अक्टूबर १९५८ को पूरे ६० दिन पानी में रहकर उभरी थी। इससे यह उपयोगी तथ्य प्राप्त हुआ है कि आक्सीजन की आवश्यक एवं उचित व्यवस्था हो तो मनुष्य अन्तरिक्ष में भी लम्बे समय तक रह सकता है।

संसार-प्रसिद्ध परमाणु-पनडुब्बी नाटिलस का भीतरी संरचना प्रदर्शक दृश्य

गुरुकुल कांगड़ी



उपयोगों की अनन्त सम्भावनाएँ

सामान्यतः पनडुब्बियों का एकमात्र उपयोग युद्धकाल में शत्रुपोतों को डुबाना माना जाता है। आणविक पनडुब्बी की उपयोगिता शान्तिकाल में अन्तरिक्ष-अभियानों से कम रोचक न होगी। इसके द्वारा संभव होगा कि लन्दन से टोकियो तक की दूरी आधी कर दी जाए क्योंकि यह उत्तरी ध्रुव की बर्फीली चादर (ice cap) के नीचे ही नीचे अपनी मंजिल तय कर लेगी। तभी यह भी होगा कि यात्रीगण समुद्री सतह के

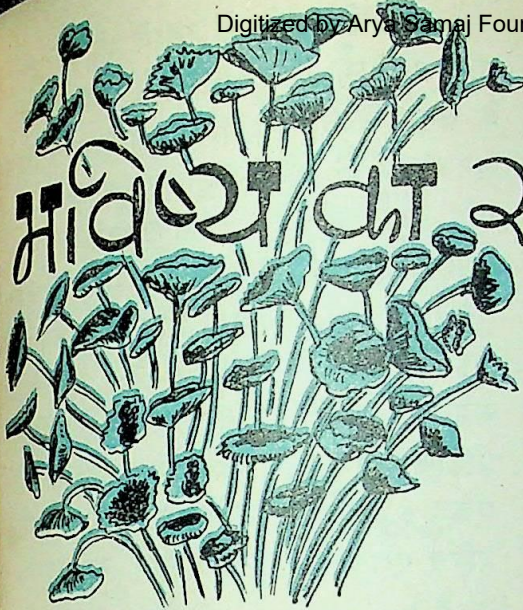
तूफानों से बचे रहेंगे क्योंकि जल की गहराई में तूफानों का प्रभाव नहीं होता। अतः यात्रीगण पानी के अन्दर की ही यात्रा अधिक पसन्द करेंगे।

आज प्रारम्भिक अवस्था में इन आणविक पनडुब्बियों का निर्माण बेहद महत्वपूर्ण अवश्य प्रतीत होता है किन्तु निकट भविष्य में इन्हीं के द्वारा व्यापारिक वस्तुओं का वहन-परिवहन अधिक प्रचलित होने पर समुद्री दूरियाँ आश्चर्यजनक रूप से घटाई जा सकेंगी।

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
२. वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
३. प्रारम्भिक भौतिकी—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३.५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
४. प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
५. प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
६. सामान्य विज्ञान—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६.२५
७. सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५.००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ६ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा



मलिनिका स्वाद्य पदार्थ एलगी

डा. शिवगोपाल मिश्र

अनुमान है कि २०वीं शताब्दी के अन्त तक संसार की जनसंख्या ५०० करोड़ हो जाएगी। तब उस वृहत् जन समुदाय के लिए खाद्य की व्यवस्था करना एक समस्या बन जाएगा। यदि अभी से हल न खोजा गया तो जीवनधारण कठिन हो जाएगा। पिछले वर्षों वैज्ञानिकों ने इस बारे में अनेक जल्लेखनीय प्रयास किये हैं और 'हरित एलगी' को एक नवीन खाद्यपदार्थ के रूप में प्रस्तावित किया है।

हरित एलगी अत्यन्त सूक्ष्म और एक-कोशीय वनस्पति है। इसकी अनेक किस्में नदियों, झीलों तथा तालाबों में उगायी जा सकती हैं। इनकी उचित उपज तथा विकास के लिए उपयुक्त ताप, पर्याप्त सूर्य प्रकाश तथा भोज्य तत्त्वों की उच्च सान्द्रता (जिसमें कार्बनिक अम्ल की अनवरत पूर्ति होती रहती है) आवश्यक हैं। ये भोज्य तत्त्व विलयन रूप में होने चाहिए।

हरित एलगी में पुनरुत्पादन की प्रक्रिया कोशविभाजन द्वारा होती है। समशीतोष्ण प्रदेशों में २४ घंटे में इसके कोश १ से १६ तक विभाजित हो जाते हैं। इस प्रकार जो नये

कोश बनते हैं वे 'ऑटोस्पोर्स' (autospores) कहलाते हैं। विशिष्ट परिस्थितियों में इनका उत्पादन दो-गुना से बढ़कर सैकड़ों हजारों-गुना तक बढ़ सकता है। एलगी में वसा, प्रोटीन, शर्करा तथा कुछेक उपयोगी विटामिन भी पाये जाते हैं।

कुछ समय पूर्व एलगी की खेती अधिक-तम वसा प्राप्त करने के लिए की जाती थी। अब इससे प्रोटीन भी प्राप्त करने का लक्ष्य है। एलगी का उत्पादन जो प्रयोगशाला तक सीमित था, अब खुले मैदानों में आ गया है। जर्मन डा. गुमर्ट कोक की भट्टी से गैस-उत्पादन के समय उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड के उपयोग का व्यावहारिक मार्ग खोजने में लगे थे तभी एलगी के विकास की ओर भी उनका ध्यान गया। मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट के न्यूट्रीशन फिजियोलॉजी विभाग के डा. हाइनरिच डार्टमुण्ड ने एलगी-उत्पादन की विधियाँ प्रस्तुत की हैं। ऐसे ही प्रयोग जापान, अमरीका तथा इजरायल में भी हो रहे हैं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एलगी का वृहत् उत्पादन सम्भव हो गया है और आहार

के रूप में उसका उपयोग किये जाने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाने लगा है।

मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट में हरित एलगी का विकास कार्य खुले वायुमण्डल के नीचे बड़े-बड़े तालाबों में होता है। प्रत्येक वर्ष प्रथम छमाही के प्रारम्भ में 'सेनेडेस्मस आब्लिक्स' नामक प्रजाति के संवर्ध तालाबों में डाल दिये जाते हैं। जल का ताप $25-30^{\circ}\text{C}$ तक रखा जाता है और उसमें पोषक तत्व भी मिलाये रखते हैं। उसी में कार्बन डाइआक्साइड भी प्रविष्ट करायी जाती है। प्रकाश की भी उचित व्यवस्था रखते हैं।

हरित एलगी के संवर्धों के विकसित होने के अनन्तर उन्हें एकत्रित करना पड़ता है। इसके लिए ५०-७५% जल को तालाबों में से पम्प द्वारा निकाल दिया जाता है और बचे हुए निलम्ब को (जिसमें हरित एलगी रहती है) सेंट्रीफ्यूजित करके छान लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सम्पूर्ण छनित को पुनः तालाबों में पहुँचाकर जल में आवश्यक पोषक तत्व मिला दिये जाते हैं। वाष्पीकरण से जितना जल कम हो जाता है, उसकी भी पूर्ति कर दी जाती है।

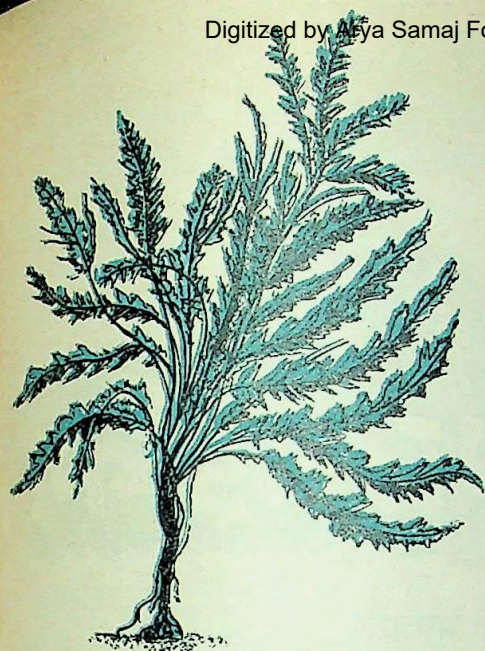
छानने से जो दलदल जैसा पदार्थ प्राप्त होता है उसे सुखाकर चूर्ण बना लिया जाता है। चूर्ण का रंग काई जैसा और जायका तीते पालक जैसा होता है। एक सप्ताह में २-३ बार करके एलगी को एकत्र किया जाता है। अनुमान है कि तालाब की १ वर्ग मीटर सतह से प्रतिदिन ८-१० ग्राम शुष्क एलगी प्राप्त हो सकती है। अधिक अनुकूल परिस्थितियों में यह मात्रा १०-१५ ग्राम तक भी हो सकती है। यदि इसे प्रति एकड़ के अनुसार कहें तो प्रतिवर्ष ७ टन से अधिक की उपज होगी।

जापानी पद्धति से उगाये गये ब्लोरेला तथा सेनेडेस्मस आब्लिक्स में शुष्क पदार्थ के अनुसार ५०-६० प्रतिशत प्रोटीन अर्थात् लगभग ४ टन प्रोटीन प्रति एकड़ रहता है। यदि उतने ही क्षेत्रफल में उपजने वाले गेहूँ तथा आलू से प्राप्त प्रोटीन से इस मात्रा की तुलना की जाए तो ज्ञात होगा कि एलगी में कई गुना अधिक प्रोटीन है। यूरोप की समस्त फसलों में चुकन्दर ही सर्वाधिक प्रोटीन देता है। चुकन्दर की फसलों से प्रति एकड़ ०.४४ टन प्रोटीन प्राप्त होता है जो हरित एलगी से प्राप्त प्रोटीन का नवमांस ही है।

प्रोटीन की प्रचुरता के कारण हरित एलगी एक उत्तम आहार सिद्ध होती है। यदि इसमें उपलब्ध एमिनो अम्लों की मात्रा को मूल्यांकन का आधार मानें तो ज्ञात होगा कि यह मटर में पाये जाने वाले वानस्पतिक प्रोटीन के समतुल्य है। एमिनो अम्लों की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति १०० ग्राम शुष्क हरित एलगी से सरलतापूर्वक हो सकती है। इसी मात्रा से विटामिन (विशेषतया बी-१२) की भी पूर्ति हो सकती है। केवल विटामिन 'सी' ऐसा है जो इसे सुखाते समय नष्ट हो जाता है।

चूहों तथा मुर्गियों पर किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि आमाशय के लिए हरित एलगी विशेष उपयुक्त है। वे प्रयोग मनुष्यों पर भी ठीक सिद्ध होते हैं। पशुओं को दिये जाने वाले आहार में पशु प्रोटीन (दुग्ध प्रोटीन) के स्थान पर एलगी प्रोटीन देने पर उनके भार में समान वृद्धि पायी गयी। इस प्रकार यह खमीर तथा आलू के प्रोटीन से भी श्रेष्ठ सिद्ध हुई है।

छछूंदरों के साथ कुछ विशिष्ट प्रयोग किये जाने पर छः मास के उपरान्त उनके भार में वृद्धि देखी गयी है। हरित एलगी



नोरोफाइटा जाति की समुद्री मॉस (sea moss)

देने से उनका भार ४० किलोग्राम से बढ़कर ११० किलोग्राम हो गया। जो आहार इन खरंदरों को दिया गया था, उसमें ७५% हरित एलगी प्रोटीन था। यों यह आहार उन आहारों के समान सिद्ध हुआ जिनमें गत-प्रतिशत पशु प्रोटीन अथवा ७५% गोयाबीन प्रोटीन तथा २५% पशु प्रोटीन मिला हो।

सैल्यूट का प्रारम्भ

सैन्यशिक्षण में सैल्यूट का विशेष महत्त्व है। सैल्यूट जितना चुस्त होगा उतना ही उत्तम माना जाएगा। यह प्रथा जब प्रारम्भ हुई तब इसका आशय कुछ और ही था। मध्य युगीन यूरोप में सैन्य सरदारों और नाइट्स में द्वन्द्व प्रतियोगिता बहुत प्रचलित थी और वह इतनी लोमहर्षक होती थी कि एक न एक का समाप्त हो जाना सामान्य बात थी। उस समय विजेता अपना पुरस्कार अपनी साम्राज्ञी के हाथों लेना सबसे बड़ा सम्मान समझता था। पुरस्कार लेते समय साम्राज्ञी का वेदीप्यमान सौन्दर्य नहीं बकाचौष न कर दे इस हेतु वह केवल आँखों की ओट करने के लिए अपनी हथेली आँखों के आगे कर लेता था। कालान्तर में वही प्रथा सैल्यूट में बदलते-बदलते आज के रूप में आ गयी है।

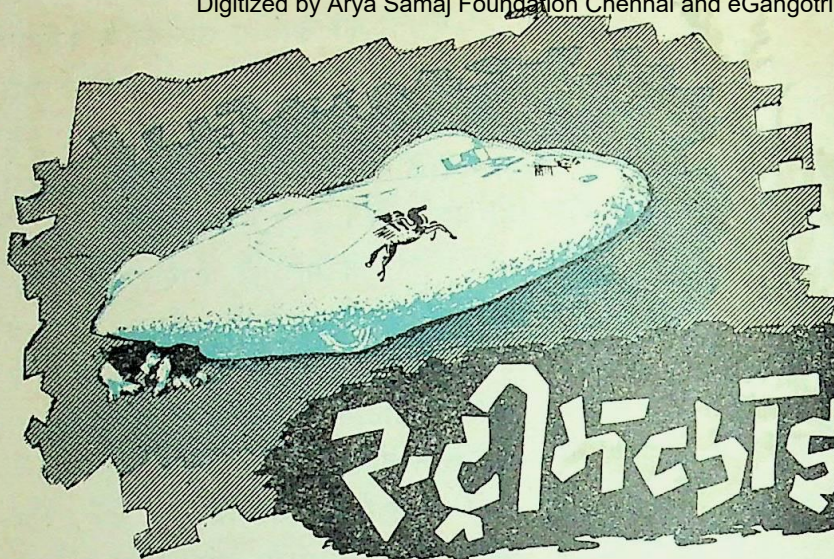
बारीक तार स्नायुओं का स्थान लेंगे

आँख, कान, चेहरे और मेरुदण्ड तक के स्नायुओं की क्षतिपूर्ति आवश्यकता पड़ने पर बारीक तारों द्वारा की जा सकेगी, ऐसी घोषणा मास्को के चिकित्सा विशेषज्ञों ने की है। प्रयोगस्वरूप एक कुत्ते में अक्रिय स्नायु को निकालकर ये नव-आविष्कृत तार बिठाये गये तो अल्प समय पश्चात् ही कुत्ता पूर्ववत् स्वस्थ हो गया।

जुलाई १९६३

एलगी का उपयोग अफ्रीका के कतिपय ऐसे रोगियों के इलाज में सहायक सिद्ध हुआ है जो प्रोटीन के अभाव से ग्रस्त थे। इस अभाव के कारण वहाँ बच्चों की मृत्यु तक हो जाती थी।

एलगी प्रोटीन की लागत, उत्पादन-विधि के अनुसार दोगुनी, तिगुनी तक हो सकती है। फिर भी दूध, अण्डा, मांस आदि से प्राप्त प्रोटीन की तुलना में इसकी लागत अधिक न होगी। हमारे देश में इस ओर अभी ध्यान नहीं दिया गया है। ४४ करोड़ जैसी वृहत् जनसंख्या को खाद्य पूर्ति के लिए प्रोटीनयुक्त आहार की प्रथम आवश्यकता है। इस दृष्टि से हरित एलगी अत्यन्त उपयोगी आहार सिद्ध होगा। अन्तरिक्ष-यात्रियों के लिए भी एलगी को आहार के रूप में प्रस्तावित किया गया है। कम मात्रा एवं उत्कृष्ट भोज्यमान के कारण यह अधिकाधिक उपयोगी है। अन्तरिक्षयानों में इसके उत्पादन की समस्याओं के निराकरण के प्रति भी वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। निकट भविष्य में आहार के रूप में एलगी के प्रयुक्त होने की सम्भावनाएँ उज्ज्वल हैं।



प्रकाशचन्द्र अग्रवाल

स्ट्रीमलाइनिंग तीव्र-वेग से दौड़ने वाली कारों, ट्रेनों, जलयानों तथा वायुयानों के लिए सर्वोपरि आवश्यक क्रिया है। इसका प्रारम्भ २-३ शताब्दियों पूर्व हुआ है। इस क्रिया को धारा-रेखांकन कहेंगे तो भी स्ट्रीमलाइनिंग कहने से सहज समझ में आ जाएगी। आधुनिकीकरण के अर्थ में यह शब्द इतना प्रचलित है कि जनता द्वारा अपनी सरकार का स्ट्रीमलाइनिंग और उद्योगपति द्वारा अपने कारखानों का स्ट्रीमलाइनिंग करने-कराने की बातें सुनाई पड़ती हैं। अनेक दैनिक उपयोग की वस्तुएँ भी स्ट्रीमलाइनिंग अर्थात् अधुनातन रूप में सजीव होने की विज्ञप्त की जाती हैं।

स्ट्रीमलाइनिंग भौतिक-विज्ञान की देन है। सामान्यतः हम हवा या पानी का न तो कुछ भार अनुभव करते हैं न प्रतिरोध ही, किन्तु वेग से दौड़ते या तैरते समय इनका प्रतिरोधन हमें प्रतीत होता है। वायु तथा जल की धाराओं, रेखाओं का वह प्रतिरोध ही गत्यावरोध उत्पन्न करता है। इसके अवरोध को न्यूनतम करने के लिए वाहनों, यानों आदि को चारों ओर से इस प्रकार

गोल, नुकीला तथा घुमावदार बनाया जाता है कि सपाट और चौकोर सतह वाला कोई भी भाग खुला न रहे। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा।

सिद्धान्त और दृष्टान्त

खेल-कूद के अन्तर्गत भाला-फेंक (javeline throw) देखा ही होगा। जेलेने व खिलाड़ी लम्बे भाले को साधकर नोक के सीध में १००-१२५ फुट दूर फेंक सकता है। वही खिलाड़ी उससे आधा लम्बा भाला खड़ी दशा में २०-३० फुट भी न फेंक सकेगा। इसी प्रकार पानी के प्रवाह में एक छड़ी को लेटी अवस्था में तैराना जितना सरल है खड़ी अवस्था में उतना ही कठिन। इसका कारण यह है कि वायु अथवा पानी के प्रवाह को वस्तु की लेटी अवस्था में उतनी सरलता का सामना नहीं करना पड़ता जितनी खड़ी अवस्था में। अतः मुकाबले में सतह जितनी अधिक होगी अर्थात् प्रवाह जितना अधिक छेड़ा जाएगा, प्रतिरोध उतना ही अधिक मिलेगा। साथ ही वस्तु का जितना अधिक होगा, प्रतिरोध भी उतना ही अधिक तीव्र होगा, अर्थात् दौड़ने का

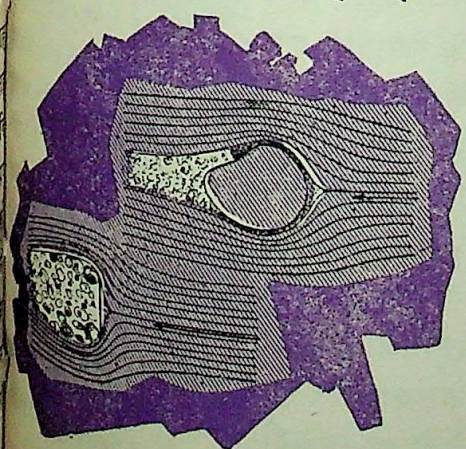
वस्तु को उतना ही अधिक बल लगाना बहुत जल्दी प्रभावित होकर हाँफ जाता है। चतुर धावक कभी भी आरम्भ से ही आगे निकलने की चेष्टा नहीं करता बल्कि पहले या दूसरे धावक के पीछे ही सटा हुआ रहता है। फलस्वरूप वायु का पूरा सामना आगे वाले को करना पड़ता है और पीछे वाला उतनी ही दूरी तय करने में अपेक्षाकृत बहुत कम थकता है। फलतः विजय-रेखा से कुछ ही पहले वह तीर की तरह झपटने में समर्थ होता है जबकि आगे वाला व्यक्ति परास्त हो जाता है।

पड़ता है।
प्रकृति में स्ट्रीमलाइनिंग

इस प्रतिरोध और इससे उत्पन्न गत्या-बोधों को न्यूनतम करने के लिए स्ट्रीमलाइनिंग का प्रभाव हमने तो अभी २०-३० वर्ष पूर्व ही समझा है, किन्तु प्रकृति ने स्ट्रीमलाइनिंग अनेक वस्तुओं में बहुत पहले से दे रखा है। तीव्रगामी पक्षियों की शरीर रचना स्ट्रीमलाइनिंग की हुई होती है। पानी में तेजी से दौड़ने वाली मछलियाँ स्ट्रीमलाइनिंगयुक्त होती हैं, तथा वर्षा की बूँदें भी बादल से स्ट्रीमलाइन होकर ही गिरती हैं।

यहाँ तक कि हमारे सिर के बाल तथा कानों की व्यवस्था इस प्रकार है जो दौड़ते समय वायु-प्रवाह का अवरोध न करके उसे गुजर जाने देते हैं। दौड़ने की प्रतियोगिता पैदल को हो या बाइसिकिल की, तेज दौड़ने वाला धावक सीना तानकर कभी नहीं दौड़ता, बल्कि जहाँ तक संभव होता है सिर तथा कंधे झुकाकर ही दौड़ता है। सीना तानकर दौड़ने वाला खिलाड़ी वायु के प्रतिरोध से

आगे गोल तथा (नीचे) चौकोर वस्तु का धारा-प्रतिकर्षण भेद। प्रत्येक रेखा वह कल्पित मार्ग प्रदर्शित करती है जो जल की धाराओं को अनुसरण करना पड़ता है। स्पष्ट है कि चौकोर वस्तु का प्रतिरोधन-बल गोल की अपेक्षा कहीं अधिक होता है



विज्ञान

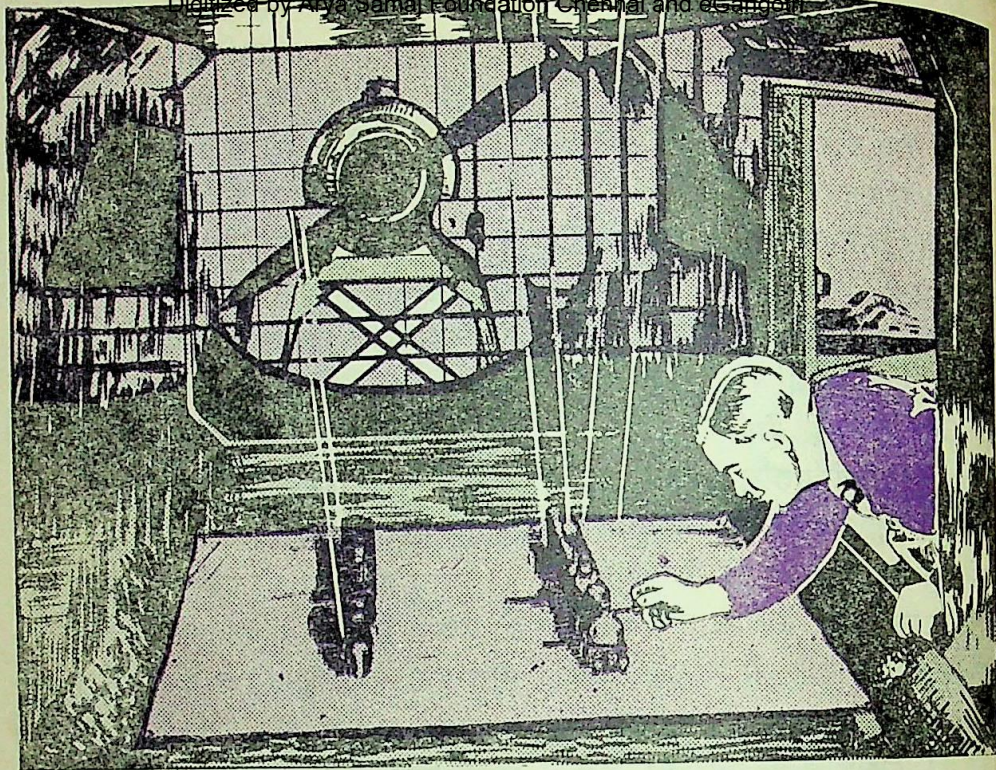
स्ट्रीमलाइनिंग अत्यावश्यक

वायु प्रतिरोध की प्रबलता इससे ज्ञात हो सकती है कि यदि एक यान को १० मील प्रति घण्टे की गति से दौड़ने में १००० अश्वबल चाहिए तो उसी यान को ५० मील प्रति घण्टे दौड़ने के लिए २४०० अश्वबल आवश्यक होगा। वह अतिरिक्त बल बढ़े हुए प्रतिरोध को जीतने में लग जाएगा। इसी को एक ट्रेन के उदाहरण से भी स्पष्ट किया गया। ४० मील प्रति घण्टे से चली जा रही ट्रेन की वही गति बनाये रखने के लिए इंजन को आधी ही शक्ति लगानी पड़ती थी और शेष आधी शक्ति गुरुत्वाकर्षण-बल तथा पटरियों के घर्षण-बल का सामना करने में लग जाती थी। उसी ट्रेन की गति जब ८० मील प्रति घण्टा कर दी तो देखा कि गुरुत्वाकर्षण और घर्षण-बल न जाने कहाँ शेष हो गये और इंजन को पौन से भी अधिक बल लगाना पड़ गया।

जिस प्रकार उस इंजन को अधिक बल लगाने के लिए अधिक ईंधन खपाना आवश्यक हो गया वैसे ही मोटरकारों में भी पेट्रोल की खपत अत्यधिक बढ़ जाती है। इस दृष्टि से स्ट्रीमलाइनिंग और भी आवश्यक है।

स्ट्रीमलाइन कारें

प्रारम्भिक कारों में सन् १९१० के



ट्रेनों (माडल-ट्रेन) के स्ट्रीमलाइनिंग का परीक्षण ऐसी विशिष्ट वायु-सुरंग की सहायता से किया जाता है

माडल की कार और आज की नयी कार को देखें तो स्ट्रीमलाइनिंग सहज समझ में आ जाएगा। पुरानी कारों के अग्रभाग में रेडियेटर, बॉनेट, विन्डस्क्रीन आदि चौकोर और खड़ी अवस्था में होते थे। दोनों ओर मडगार्ड से सटाकर अतिरिक्त पहिये लगे रहते थे। वह सब कुछ नयी कार में बदला हुआ रहता है। आगे का प्रत्येक भाग यथा-संभव एक मछली की तरह ढलानयुक्त रखा जाता है तथा अतिरिक्त पहिये सामने से हटाकर पीछे कैरियर की ओर रखे जाते हैं।

प्रारम्भ में स्ट्रीमलाइनिंग से यही समझा जाता था कि मोटरकारों का केवल सामने का ही भाग स्ट्रीमलाइन कर देना पर्याप्त है। जल्द ही प्रयोगों द्वारा यह भी समझ में आया कि केवल अग्र भाग को स्ट्रीमलाइन करके वायु काटने से काम पूरा नहीं होगा। वस्तुतः कार के पिछले भाग भी वायु-प्रतिरोधन में बड़ा हाथ बँटाते हैं। अतः न केवल

पिछले भागों को भी ढलानयुक्त तथा स्ट्रीमलाइन बनाया जाने लगा, बल्कि कार के चारों ओर से यथासंभव इस प्रकार ढाँचा बनाया जाने लगा कि हवा को टकराने भरने तथा प्रतिरोध बढ़ाने का अवकाश न मिले। यहाँ तक कि पहियों की तारें भी वायुरोधक मानी जाती हैं। संसारप्रसिद्ध मोटर-स्पीड चैम्पियन सर मालकम कैम्पबे तथा जहाँन कॉव की रेसिंग कारें वृहत् कारों के समान हैं जो ४०० मील प्रति घण्टे तक के वेग से दौड़ी चली जाती हैं। उस आकार की कार सतह पर वायु को अवसर ही नहीं मिलता कि कहीं भी अपना प्रतिरोध बल लगाये।

स्ट्रीमलाइन ट्रेन

आधुनिक ट्रेन भी यथासंभव अधिकांश स्ट्रीमलाइन बनायी जा रही है। स्ट्रीमलाइन के स्थान पर अब जो डीजल इंजन बन रहे हैं वे दूर से बड़ी ह्वेल जैसे दिखते हैं। इनका कोई भी पुर्जा, ऊँचा उठा हुआ नहीं

दिया जाता। जर्मनी की फ्लाइंग हेम्बर्ग स्टीमलाइन ट्रेन का अत्युत्तम उदाहरण है। कहते हैं कि ८० मील की गति से धड़धड़ाती हुई इस ट्रेन के आगे रूमाल खोलकर खड़े रहिये, रूमाल फरफराएगा भी नहीं। इसकी तुलना उस साधारण ट्रेन से की जा सकती है जो धुआँधार दौड़ती हुई, इर्द-गिर्द की वस्तुएँ उड़ाती चलती है।

स्टीमलाइन जलयान तथा वायुयान

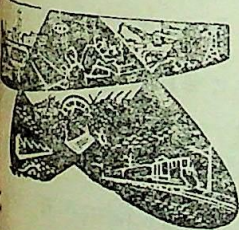
बड़े-बड़े स्टीमर बनाने में भी स्टीमलाइनिंग की दृष्टि से परिवर्तन होते आये हैं। न केवल पानी कटता रहे बल्कि स्टीमर के अन्य भागों से भी उसकी टकराहट तीव्र न हो, इस हेतु उनका अग्र भाग नुकीला, त्रिकोणाकार का होने के साथ ही पानी को स्पर्श करता हुआ भाग गोलाकार और उभरा हुआ रखा जाता है।

इसी प्रकार वायुयानों में भी आवश्यक परिवर्तन किये जा रहे हैं। आधुनिक जेट

विमान तो एक पतली रेखा जैसा ही दिखता है। पिछले पुराने यानों जैसे अग्र भाग में बड़े पंखे और दोनों ओर बड़े-बड़े ढाँचे जैसा कुछ नहीं होता। अन्तरिक्षयान, लम्बी पतली रेखा जैसे दिखते हैं, मानो धनुष से छूटा हुआ तीर आकाश को वेधने उड़ चला हो। अनेक आधुनिक वायुयान दूर से ऐसे लगते हैं मानो गगनगामी गरुड़ उड़े चले आ रहे हैं।

एक दृष्टि से स्टीमलाइनिंग ४० मील की गति से कम चलने वाले वाहनों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता। मान लीजिए आपकी कार को लगभग ३० मील की रफ्तार की वायु सामने ही मिले तब तो ४० मील की रफ्तार बनाये रखने में आपको ७० मील की रफ्तार जितना बल लगाना पड़ेगा। इसका अर्थ होगा अधिक ईंधन का खर्च। अतः व्यवसाय की दृष्टि से गतिशील वाहनों के लिए स्टीमलाइनिंग अनिवार्य है।

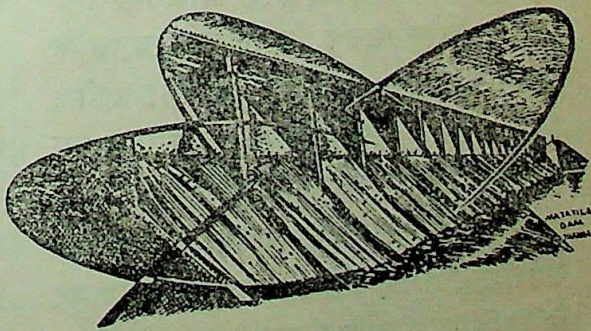
मातादीला बाँध



इस बांध में सिंचाई हेतु लगभग चार अरब घनफुट पानी संचय किया जा सकता है। इसके निर्माण से इस क्षेत्र में नहरों का जाल बिछता जा रहा है। इससे झांसी, जालौन और हमीरपुर जिलों की ढाई लाख एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएं मिली हैं।

इस बांध से २० हजार किलोवाट पनविजली भी तैयार होगी। इस बिजली से कानपुर की संस्था के लगभग एक तिहाई कारखाने चलाये जा सकते हैं।

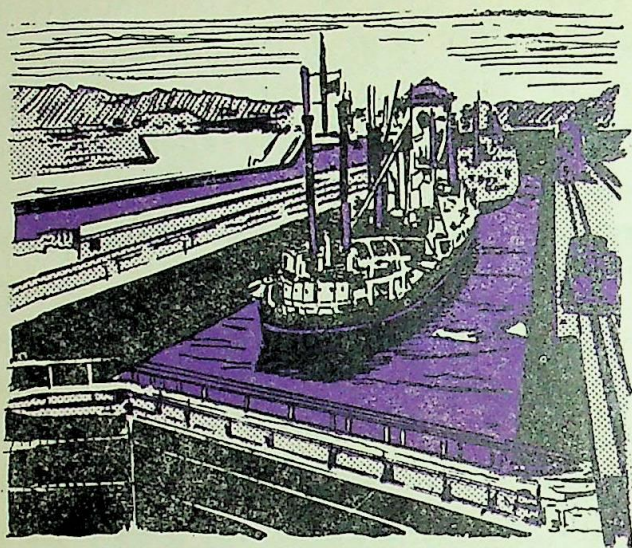
इससे आसपास के क्षेत्रों में लघु उद्योगों का विकास होगा। लोगों को नया रोजगार मिलेगा और खुशहाली बढ़ेगी।



यह बांध २०,६५० फुट लम्बा है और अपनी नींव से १५० फुट ऊंचा है। इसके निर्माण में १२ करोड़ रुपये खर्च हुए हैं।

देश में ऐसे अनेक बांध बन रहे हैं राष्ट्रीय वचन योजनाओं में धन जमा कर आप निर्माण के साक्षीदार बनें!

जपान बड़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!



प्रवासा नहर

जुगलकिशोर वाष्णैय

१९ वीं शताब्दी तक उत्तरी अमरीका और दक्षिणी अमरीका के महाद्वीप एक सँकरे भू-भाग से जुड़े हुए थे। इस कारण अतलांतिक महासागर से प्रशांत महासागर जाने वाले जहाजों को दक्षिणी अमरीका का पूरा चक्कर लगाना पड़ता था और १०,५०० मील की व्यर्थ यात्रा करनी पड़ती थी।

इन दोनों महासागरों को पनामा इस्थमस काटकर मिलाने का विचार सर्वप्रथम कोलम्बस को सूझा। सन् १५१३ में एक और व्यक्ति वास्को नूनेज बालबोआ ने अपने मित्र पिजारो के साथ पनामा इस्थमस की यात्रा की परन्तु वह कुलेब्रा पहाड़ पर आकर अटक गया। १५२९ में अलवारों द सावेद्रा सेरोन नामक व्यक्ति ने इस्थमस के आरपार नहर बनाने की योजना रखी। इसके पश्चात् लगभग २०० वर्ष तक इस विषय में कोई प्रगति नहीं हुई। १८२५ से १८४६ तक फ्रान्स ने पनामा इस्थमस के सर्वेक्षण के लिए कई दल भेजे जिन्होंने नहर के विभिन्न संभावित मार्गों का निरीक्षण किया।

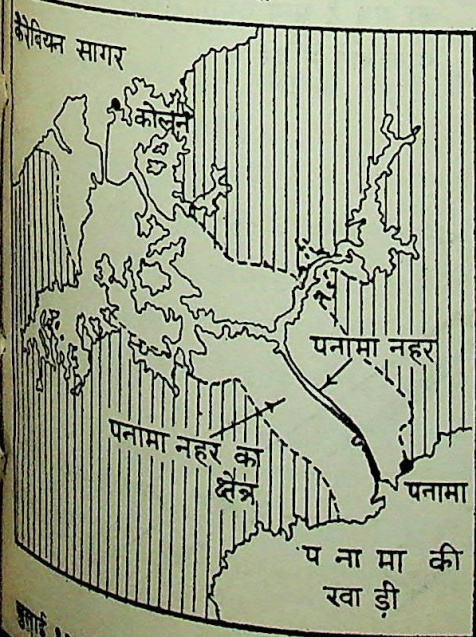
नवम्बर १८६९ में एक फ्रांसीसी,

फर्डिनेंड द लैसप्स ने स्वेज नहर बनाकर संसार को आश्चर्यचकित कर दिया था। अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर लैसप्स ने १८७५ में पेरिस की ज्योग्राफिकल सोसाइटी के सामने पनामा इस्थमस काटकर समुद्र तल पर एक नहर बनाने की योजना रखी। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए एक कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी के मुख्य इंजीनियर वाइस ने २० मार्च, १८७८ को कोलम्बिया सरकार से नहर बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। वाइस ने पनामा इस्थमस का भी विस्तृत अध्ययन किया। उसके विचार से नहर समुद्रतल पर न बनाकर ऊँचे तल पर बनाना अधिक सुविधाजनक था। यही सुझाव एडमंड और फ्रांसीसी इंजीनियर द लैपिने ने दिया था। उसने सुझाव दिया कि चैगर्स और अन्य नदियों पर बाँध बनाकर कृत्रिम झीलें बनानी चाहिए। इन झीलों को नहर द्वारा मिलाने के लिए कुलेब्रा पहाड़ में बहुत कम खुदाई करनी पड़ेगी। समुद्र से जहाजों को झील में लाने के लिए दोनों ओर जलपात (locks) की व्यवस्था रहेगी। परन्तु

सुभाषों पर लैसप्स ने कोई ध्यान नहीं दिया। १८७९ में लैसप्स ने पनामा केनाल कम्पनी की स्थापना की। इस समय उसकी आयु ७४ वर्ष की थी, फिर भी उसमें युवकों जैसा उत्साह और स्फूर्ति थी।

इस कम्पनी ने पनामा इस्थमस में नहर की खुदाई का काम शुरू किया परन्तु वहाँ की जलवायु बड़ी ही खराब थी। सैकड़ों व्यक्ति पीतज्वर तथा मलेरिया के शिकार हो गये। चैगर्स नदी में भयंकर बाढ़ें आयीं और कुलेब्रा पहाड़ की खुदाई में भूमि-फिसलन के कारण बड़ी हानि हुई। इधर फ्रान्स में कम्पनी के विरुद्ध भ्रष्टाचार के बड़े गम्भीर आरोप लगाये जा रहे थे और कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी। १८८७ में कम्पनी के इंजीनियरों ने लैसप्स को बताया कि समुद्र तल पर नहर बनाना बिल्कुल असम्भव होगा और लैपिने के सुभाव के अनुसार जलपाश वाली नहर ही लयबद्ध रहेगी। परन्तु कम्पनी की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि १८८९ में अम बन्द कर देना पड़ा। १८९४ में लैसप्स की मृत्यु हो गयी।

पनामा नहर की महत्त्वपूर्ण अवस्थिति



१८९९ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने ४ करोड़ डालर में पनामा केनाल कम्पनी को खरीद लिया। २२ जनवरी, १९०३ को अमरीका के विदेश मन्त्री जॉन हे ने कोलम्बिया के प्रतिनिधि से हे-हरन संधि पर हस्ताक्षर कराये, परन्तु कोलम्बिया की संसद ने यह संधि अस्वीकार कर दी। ३ नवम्बर, १९०३ को अमरीका की सहायता से पनामा में क्रांति हो गयी और पनामा ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। क्रांति के नेता बूनो बरीला ने एक संधि के अनुसार पनामा नहर का क्षेत्र अमरीका को दे दिया। बूनो बरीला पनामा नहर का बड़ा भारी समर्थक था और पनामा केनाल कम्पनी के साथ कुछ दिनों तक पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर भी रह चुका था।

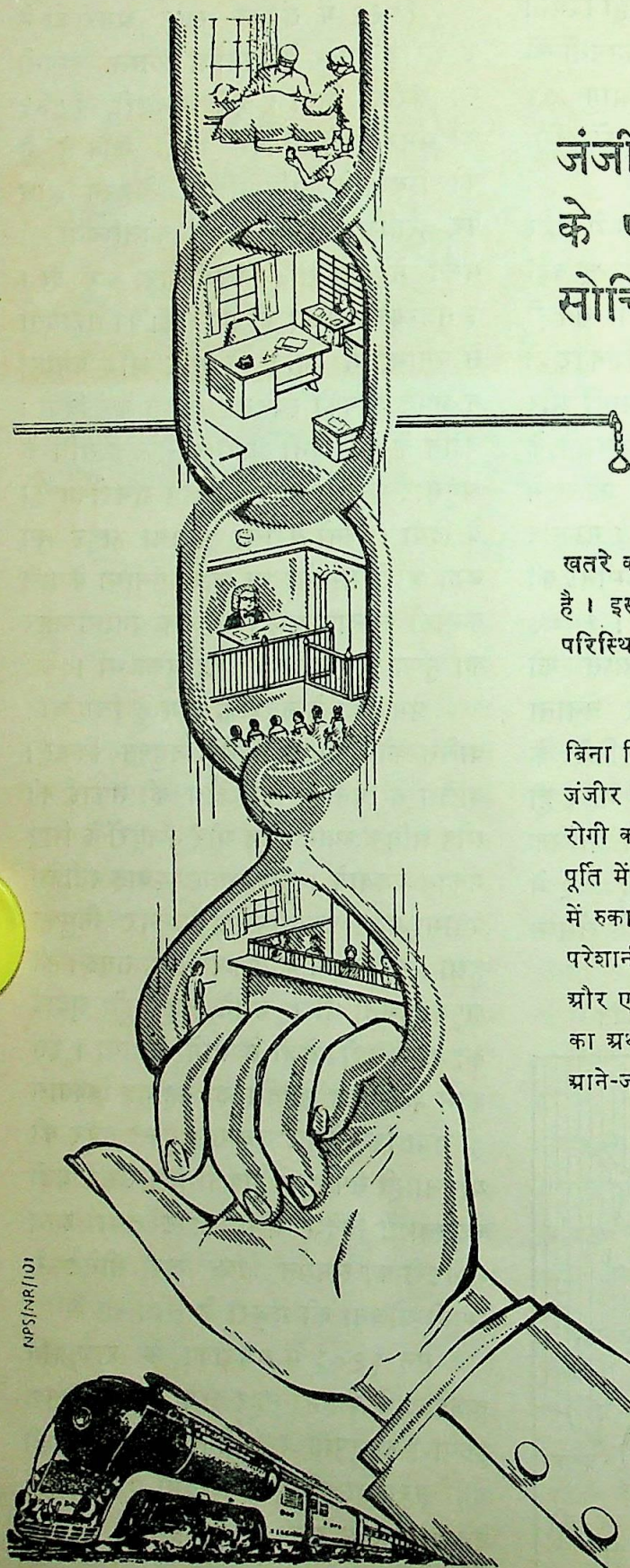
अमरीका ने नहर के काम के लिए जॉन वालेस को मुख्य इंजीनियर नियुक्त किया। वालेस ने पनामा नहर क्षेत्र की सफाई की और अधिक ध्यान दिया और मजदूरों के लिए मकान बनवाये। कुछ समय पश्चात् स्टीवेंस पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर नियुक्त हुआ। स्टीवेंस में कार्य करने तथा संगठन की अपूर्व क्षमता थी। उसने नहर की खुदाई का काम बड़ी तेजी से आगे बढ़ाया। इस काम के दौरान स्टीवेंस का यह दृढ़ विश्वास हो गया कि केवल जलपाश युक्त नहर की योजना ही सफल हो सकती है। उसने बड़ी चतुरता से विदेश मंत्री टाफ्ट तथा अन्य सीनेटरों का समर्थन प्राप्त कर सीनेट से अपनी योजना की मंजूरी ले ली।

सन् १९०६ में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पनामा नहर क्षेत्र का निरीक्षण किया। राष्ट्रपति ने स्टीवेंस के काम की बड़ी सराहना की। कुछ दिनों पश्चात् ठेके देने के बारे में कुछ मतभेद होने के कारण स्टीवेंस ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

जंजीर खींचने के पहले सोचिए

खतरे की जंजीर सुरक्षा का एक साधन है। इसका उपयोग केवल अत्यन्त आवश्यक परिस्थितियों में ही करना चाहिए।

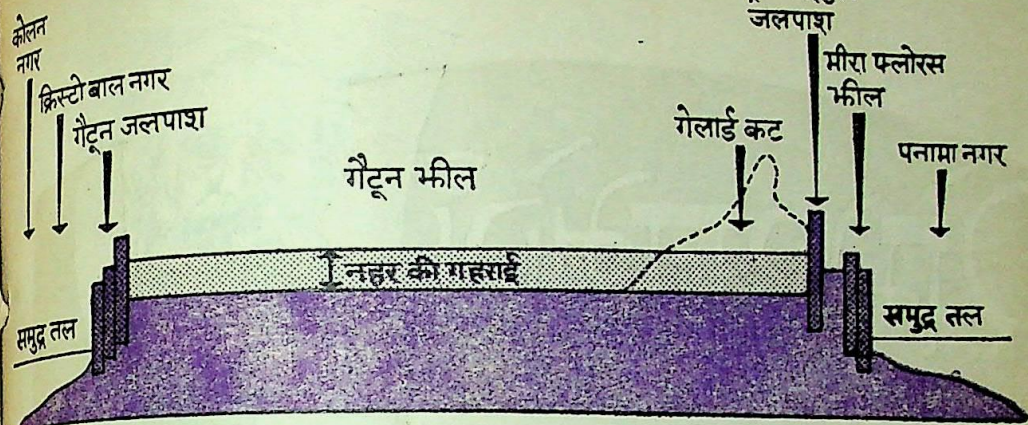
बिना विशेष कारण के खतरे की जंजीर खींचने का परिणाम होता है, किसी रोगी को निराशा, राष्ट्रीय योजनाओं की पूर्ति में विलम्ब, कर्मचारियों के काम पर पहुँच में रुकावट और उन अनेक सह-यात्रियों को परेशानी जिनमें बूढ़े और बीमार भी हैं। और एक ट्रेन को बिना कारण रोकने का अर्थ है अन्य तमाम सम्बन्धित ट्रेनों के आने-जाने में देरी।



NPS/NR/101



— उत्तर रेलवे द्वारा प्रयोज्य —



पनामा नहर

स्टीवेंस के त्यागपत्र देने के बाद १९०७ में अमरीकी सेना के जार्ज वाशिंगटन गोइथाल्स को पनामा नहर का मुख्य इंजीनियर नियुक्त किया गया। गोइथाल्स ने बड़ी लगन और दूरदर्शिता से स्टीवेंस के काम को आगे बढ़ाया। १९०६ में कुलेब्रा पहाड़ को काफी काट लिया गया था। २० मई, १९१३ को कुलेब्रा पहाड़ में नहर को खुदाई पूरी हो गयी। इस कटाई में कर्नल गेलार्ड ने बड़ा महत्वपूर्ण काम किया था। जो के नाम पर कुलेब्रा कट का नाम गेलार्ड कट रख दिया गया था। १५ अगस्त, १९१४ को पनामा नहर संसार के व्यापारिक जहाजों के लिए विधिवत खोल दी गयी। सबसे पहला जहाज जो पनामा नहर से निकला वह आनकन था।

पनामा नहर का विवरण

समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पनामा नहर की लम्बाई ४०.२७ मील और गहरे पानी से गहरे पानी तक ५०.७२ मील है। एक साधारण जहाज को नहर पार करने में लगभग ८ घंटे लगते हैं। अतलांतिक महासागर से प्रशांत महासागर में जाने के लिए जहाज पहले लीमन की खाड़ी में होकर गैटून जलपाश तक ६ $\frac{3}{4}$ मील का मार्ग तय

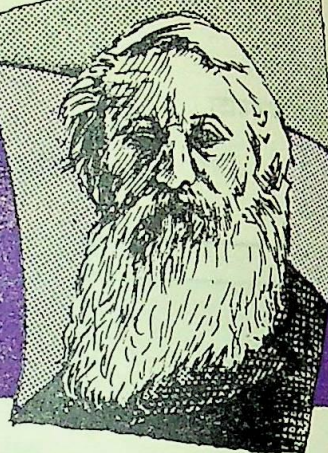
करता है। गैटून पर जहाज तीन जलपाशों में होकर गुजरता है जो इसे ८५ फुट ऊँचा उठा देते हैं। इसके बाद जहाज गैटून भील में २४ मील का मार्ग तय करता है। इसके बाद जहाज ८ मील लम्बे गेलार्ड कट में होकर पेड्रो माइगुल जलपाश पहुँचता है। गेलार्ड कट में नहर की चौड़ाई ३०० फुट और गहराई ४५ फुट है। पेड्रो माइगुल जलपाश जहाज को ३१ फुट नीचे उतारता है। इसके बाद जहाज मीराफ्लोरस जलपाशों के द्वारा समुद्र तल तक उतार दिया जाता है और ८ मील का मार्ग तय करके प्रशान्त महासागर में पहुँच जाता है।

जलपाश

पनामा नहर में १२ जलपाश हैं जो १००० फुट लम्बे और ११० फुट चौड़े हैं। ये जलपाश सीमेंट कंक्रीट के बने हैं। जलपाश द्वार दो किवाड़ों से बन्द होते हैं। प्रत्येक किवाड़ ६६ फुट चौड़े, ४७ फुट से ८२ फुट तक ऊँचे और ७ फुट मोटे हैं। इनका भार २६० से ७३० टन तक है। जलपाशों में जहाज अपनी शक्ति से नहीं चलते बल्कि बिजली के इंजनों द्वारा खींचे जाते हैं।

नहर के बनाने में लगभग ३७ करोड़ डालर व्यय हुए।

सेम्युअल मोर्स



रामसिंह

‘तीन हजार मील की दूरी से यह पत्र लिख रहा हूँ; काश, यह तुम्हें अभी ही मिल जाता !’

जहाज के केबिन में बैठे-बैठे प्रसिद्ध अमरीकी चित्रकार, प्रोफेसर सेम्युअल फिनले ब्रीज मोर्स ने जब यह पंक्ति लिखी, तब उसकी कल्पना में भी न होगा कि तीन वर्ष के अन्दर ही इस अनोखी आकांक्षापूर्ति की दिशा में उसका जीवन एक नया मोड़ ले लेगा। उसे इसकी भी कल्पना न होगी कि ‘भेरी गणना १५वीं शताब्दी के प्रसिद्ध चित्रकारों रफेल, माइकेल एन्जेलो तथा टिशेन आदि में होगी’ कहने वाले मोर्स को संसार एक चित्रकार नहीं, महान् आविष्कर्ता के रूप में याद करेगा। इस दिशा में उसने और भी तेजी से कार्य करना तब प्रारम्भ कर दिया जब उसने देखा कि उसकी परम स्नेहमयी पत्नी लुकेशिया का मृत्यु-संवाद केवल ४०० मील की दूरी से छः दिनों में उस तक पहुँच पाया था !

जीवन का प्रथम अध्याय

इंग्लैण्ड छोड़कर अमरीका में बसे हुए मोर्स-परिवार में २७ अप्रैल, १७६१ को चार्ल्सटाउन में सेम्युअल का जन्म हुआ। १६ वर्ष की आयु में येल कालेज से विद्युत्

विज्ञान में विशेष योग्यता सहित स्नातक होते-होते वहाँ के प्रसिद्ध चित्रकार, वाशिंगटन आल्स्टन के सम्पर्क से मोर्स में चित्रकला के प्रति प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी और चित्रकला ने मोर्स को एवं मोर्स ने चित्रकला को अपना बना लिया।

मोर्स की चित्रकला की छः वर्ष धूम रही। १८२५ में स्थापित नेशनल एकेडमी आफ डिजाइन्स के संस्थापकों में मोर्स भी थे। कला और प्रसिद्धि होते हुए मोर्स का जीवन बड़ा संघर्षमय रहा। प्रति चित्र केवल १५ डालर लेते हुए मोर्स ने शहर-शहर का प्रवास किया। वह खर्चों में कमी करके अपनी कला के विकास के लिए यूरोपीय यात्रा के लिए धन जुटाने लगा। उसी बीच, एक सम्पन्न परिवार की सुन्दर कन्या, लुकेशिया वाकर से उसकी भेंट हुई। वह भेंट, वह परिचय, परिणय में परिणत होना मोर्स के लिए सौभाग्यपूर्ण रहा, क्योंकि मोर्स को अभावों से मुक्ति मिल गयी। अब सम्पत्ति और सम्पत्ति उसे मुक्त रूप से मिमते रहे।

परन्तु मोर्स का सुख-सम्पन्न जीवन सात वर्ष से अधिक न रह सका। विवाह के सात वर्ष, लुकेशिया की आकस्मिक मृत्यु ने मोर्स को हिला दिया। जीवन के उस बहुत बड़े

अभाव को स्वयं कला में डूब रहे हुए मुझे ही हो कि विद्युत द्वारा संदेश-वहन भी किया जा सके ?

परिवर्तित जीवनधारा

१८३२, अक्टूबर की पहली तारीख को सले (Sully) जहाज अमरीका के लिए चार सप्ताह की यात्रा पर कुछ ही घण्टे पूर्व इंग्लैण्ड से प्रस्थान कर चुका था। जहाज के यात्रियों को वह महीना भर काटना निश्चय ही दूभर हो जाता, जिसमें उन्हें ऊपर नीला आकाश और नीचे नीला अत-सांतिक महासागर के अतिरिक्त तीसरा कुछ भी देखने को न मिलता। किन्तु संयोग इतना निष्ठुर नहीं था। जहाज में दो व्यक्ति अवश्य ऐसे थे जो यात्रियों का आकर्षण-केन्द्र थे। एक था, जादूगर डा. जैक्सन और दूसरा चित्रकार प्रो. मोर्स।

डा. जैक्सन ने अपने विभिन्न मनोरंजक प्रयोगों के अन्तर्गत एक घोड़ानाल-चुम्बक द्वारा लोहे की पिनें आदि आकर्षित होने के प्रयोगों की पहली बार दिखाकर दर्शकों को प्रमोहित कर दिया था। मोर्स अकेला ऐसा था जिसे वह वस्तु रोचक कम, उपयोगी अधिक प्रतीत हुई। वह नित्य ही उन प्रयोगों को बारीकी से देखता। चुम्बक का अध्ययन विद्यार्थी-जीवन से ही मोर्स का प्रिय विषय था। उस समय उसने ऐसे अनेक छोटे-मोटे प्रयोग किये भी थे।

वहीं से मोर्स की जीवनधारा ने अपेक्षित मोड़ ले लिया। चित्रकार मोर्स बन गया और वैज्ञानिक मोर्स आगे बढ़ा। जैक्सन के घोड़ानाल-चुम्बक को देखकर मोर्स ने सोचा—‘यदि चुम्बक की उपस्थिति प्रत्यक्ष प्रदर्शित की जा सकती है, तो यह भी संभव क्यों न

हो कि विद्युत द्वारा संदेश-वहन भी किया जा सके ?’

और, उसी शाम से मोर्स अपने कार्य में लग गया। जहाज के अपने केबिन से केवल खाने के समय ही निकलता और शेष समय, केबिन में बन्द ही बन्द, अपने प्रयोगों में जुटा रहता। उसने कल्पना के नेत्रों से देखा कि संसार उसी की ओर आशाभरी दृष्टि लगाये हुए है कि कब विद्युत द्वारा संदेश-वहन सम्भव हो। तब तक वाष्प-चालित वाहनों का प्रादुर्भाव हो चुका था। कारखाने और मशीनें हस्तोद्योग के कारीगरों और दस्त-कारों को घर बिठा चुकी थीं और विज्ञान ने नयी जागृति ला दी थी। कमी थी तो केवल त्वरित संदेश-वहन के साधनों की।

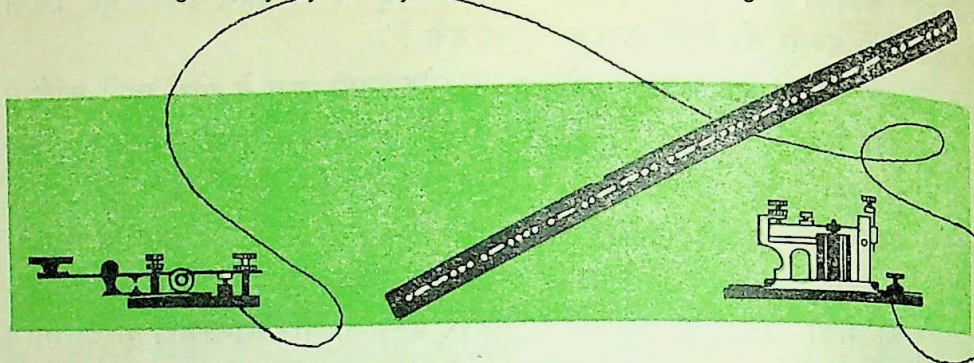
मोर्स अपने यूरोपीय प्रवास के अन्तर्गत देख आया था कि इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी में आण्टीकल टेलीग्राफी जैसे कुछेक प्रारम्भिक और सीधे-सादे यंत्रों पर त्वरित संदेश-वहन के प्रयोग किये जा रहे थे, किन्तु उनमें आवश्यक क्षमता का अभाव होने से मोर्स उनसे सन्तुष्ट नहीं था। जहाज अपनी यात्रा के अन्तिम दौर पर था लेकिन मोर्स अपने केबिन से बाहर आना ही नहीं चाहता था। किनारा आने से कुछ ही घंटे पूर्व कप्तान इसके पास आया और बोला—

“प्रोफेसर, अब तो शायद तुम बता सकोगे कि इतने दिनों बन्द केबिन में तुम क्या करते रहे ?”

“कैप्टन, अगर जल्द ही किसी दिन तुम सुनो कि संसार में विद्युतीय टेलीग्राफी का आश्चर्यजनक आविष्कार हो गया है, तो तुम मह याद करके खुश हो लेना कि वह महान् आविष्कारक तुम्हारे सले (Sully) जहाज के बन्द केबिन में ही जन्मा था।”

कठिन कसौटी, विकट धनाभाव

यूरोप की लम्बी यात्रा से लौटने पर



मोर्स टेलीग्राफी का वर्तमान यंत्र

मोर्स को धनाभाव का सामना करना पड़ा। अपने आविष्कार की धुन में नये चित्र बनाने के प्रति उसे न रुचि रही, न अवकाश। आखिर, पेट भरने के लिए चित्रकारी के कुछ ट्यूशन लगा लिये। ट्यूशन के भी पैसे कभी-कभी समय पर न मिल पाते तो विकट संकट खड़ा हो जाता। प्रायः ही मोर्स अपने किसी शिष्य से कहता सुनाई पड़ता :

“पैसा कल तो मिल जाएगा न ?”

“अगले हफ्ते तक जरूर ला दूंगा।”

“अगले हफ्ते ? अगर जिन्दा रह सका.....”

बात यहाँ तक आ पहुँची थी !

अन्ततः दुःख के बादल छँटे। मित्रों के सामूहिक प्रयास से मोर्स को सिटी यूनिवर्सिटी में ड्राइंग के प्रोफेसर की जगह मिल गयी। वेतन कुछ कम था, परन्तु अपने आविष्कार से सम्बन्धित उपकरण जुटाना तथा माडल बनाना उसके लिए सुविधापूर्ण हो गया।

सफलता और प्रसिद्धि

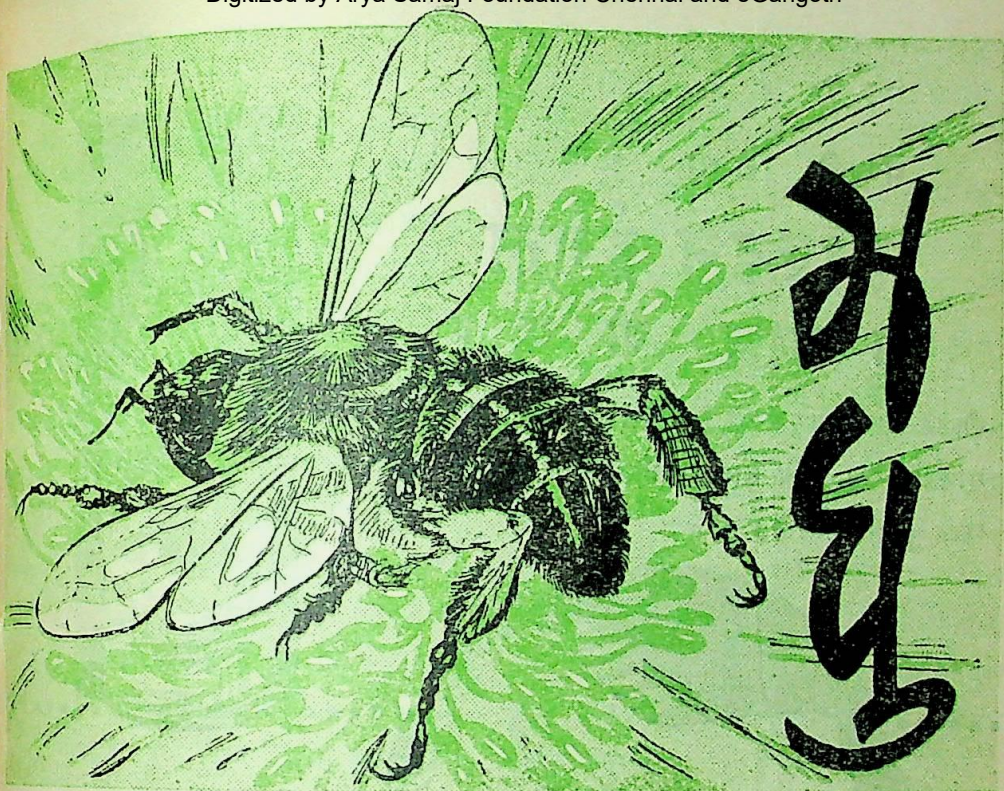
यद्यपि मोर्स का माडल १८३६ में ही बन चुका था, किन्तु उसके सफल प्रदर्शन की तिथि अभी दूर थी। ६-७ वर्ष बीत गये। अपना आविष्कार पेटेंट कराने तथा प्रदर्शन करने के लिए अमरीकी कांग्रेस से धन की सहायता स्वीकृत कराने में मोर्स को काफी प्रयत्न करना पड़ा। प्रदर्शन के लिए वाशिंगटन से बाल्टीमोर तक टेलीग्राफ लाइन डालने

की योजना में ३० हजार डालर की आवश्यकता थी। इसके लिए कांग्रेस के आगामी अधिवेशन तक ठहरना अनिवार्य था।

कांग्रेस के अधिवेशन के अंतिम दिन मोर्स-सहायता-बिल ८३ विरुद्ध ८६ के बहुमत से पास किया गया और अनुदान स्वीकृत हो गया। योजना के अनुसार वाशिंगटन और बाल्टीमोर के मध्य टेलीग्राफ लाइन डाली गयी। पहला प्रयोग भूमिगत तार डालने का असफल रहा, क्योंकि धरती में तार जल्द ही गल गये। तत्पश्चात् खंभों की सहायता पर, आठ हफ्तों में वह लाइन खींची गयी। प्रदर्शन की सफलता तब अभूतपूर्व रही जब प्रथम टेलीग्राफ-संदेश वाइविल की महान् उक्ति द्वारा प्रसारित किया गया—
‘ईश्वर का कैसा चमत्कार !’

मोर्स के माडल की सफलता के परिणामस्वरूप आल्फ्रेड नामक उसके मित्र का बहुत बड़ा हाथ था। वह अपना सब कुछ भुलाकर हाथ धोकर इसी जिद पर अड़ गया था कि मोर्स के माडल को सफल बनाना ही है। उसके सहयोग से मोर्स ने बिन्दु और रेखा (dots and dashes) प्रणाली का अपना संदेशवाहक यंत्र तैयार कर लिया।

संसार को ऐसा चमत्कार देखकर समय का चित्रकार प्रो. मोर्स और बाद में संसार-प्रसिद्ध आविष्कारक सेम्युअल न्यूयार्क में २ अप्रैल, १८७२ को चित्रित में लीन हो गया।



जगदीशचन्द्र श्रोवास्तव

मधु याने शहद की मिठास स्वयं एक उपमा है। उत्तम प्रकार का मधु एपिस मेलिफिका (*Apis mellifica*) नामक मधुमक्खियों से प्राप्त होता है। मक्खियाँ यह मधु विभिन्न पुष्पों से एकत्र करती हैं। ये अपने पेट में मधु-संचय करती रहती हैं। पेट में मधु अनेक जटिल प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ सुक्रोज (sucrose), डेक्स्ट्रोज (dextrose) तथा लेव्यूलोज (laevulose) आदि में परिवर्तित होता रहता है।

मक्खियों से मोम भी प्राप्त होता है। उनके गोलाकार पेट के निचले भाग में पतली परतों के रूप में मोम जमा रहता है। उसमें परागकणों की अनेक अशुद्धियाँ मरी रहती हैं जिन्हें रासायनिक विधियों द्वारा दूर किया जाता है।

एपिस मेलिफिका मधुमक्खी दक्षिण भारत में भी पायी जाती है। यह अपना छत्ता पेड़ों की टहनियों, चट्टानों की दरारों

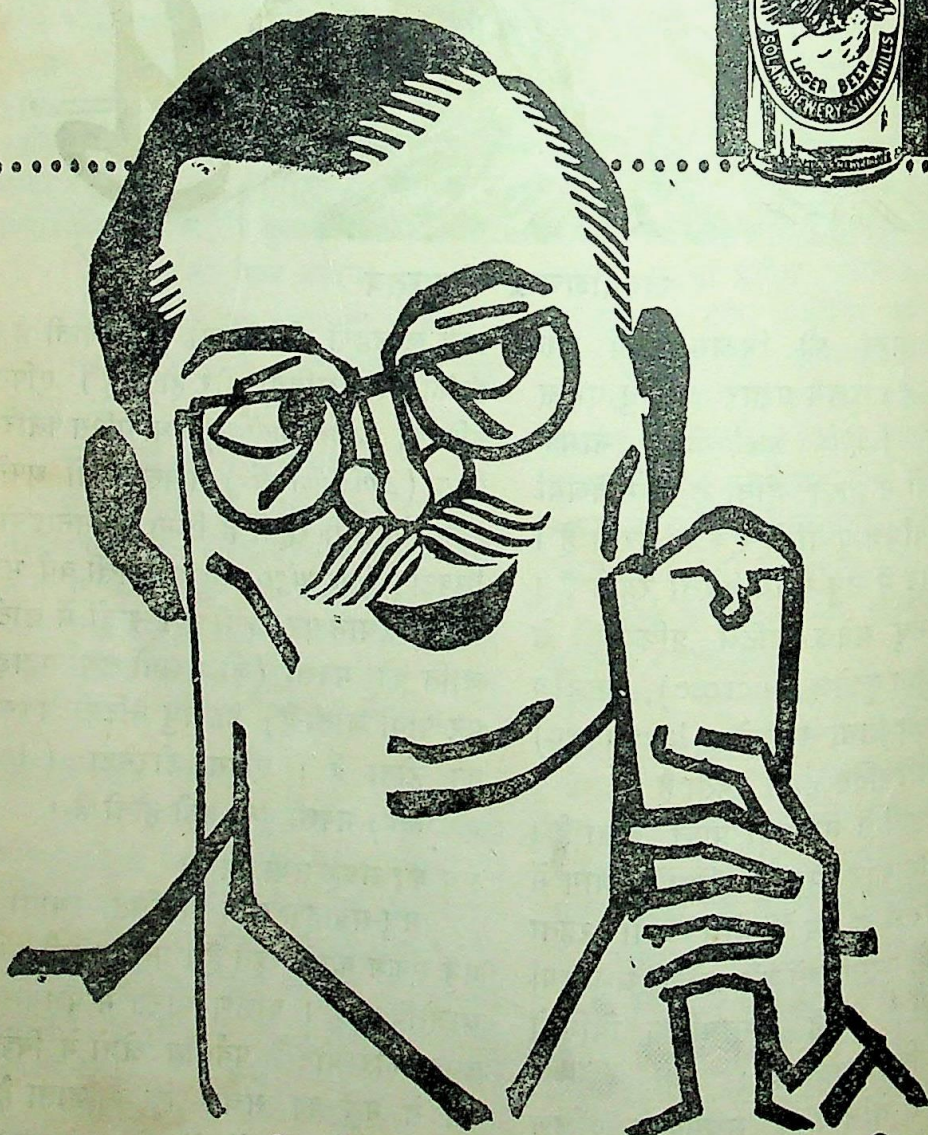
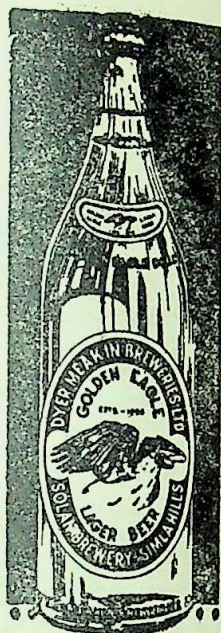
तथा खण्डहरों की दीवारों पर लगाती है। इनकी चार जातियाँ और होती हैं। एपिस इण्डिका (*Apis indica*) तथा एपिस फ्लोरेंसिस (*Apis floralis*) मक्खियाँ तो अपने स्थान बदलती रहती हैं किन्तु एपिस नाइग्रोसिक्टा (*Apis nigrocincta*) मक्खी वर्ष भर एक ही स्थान पर रहती है। इन्हीं में छोटी जाति की मक्खी (जो मैदानों तथा पहाड़ों पर पायी जाती है) का मधु घटिया किस्म का होता है। एपिस डोरसेटा (*Apis dorsata*) मक्खी दूनी बड़ी होती है।

मधु का संग्रह तथा विक्रय

मधु-संग्राहक लोग परिचित स्थानों से मधु एकत्र करते रहते हैं। यही उनकी मुख्य आजीविका है। दक्षिण भारत में पंचमलाई तथा कोरल्योर के पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से मधु का संचय किया जाता है। कोयम्बटूर के जंगलों में तीन प्रकार का मधु प्राप्त होता है। उनमें से एक प्रकार

प्रच्छी तथा श्रमहारी !
गोल्डन ईगल
लागरबीयर

गोल्डन ईगल बीयर अच्छी है क्योंकि यह ठण्डी, ताजी तथा
 साफ है—यह सर्वत्र लोकप्रिय बीयर गर्मियों में वास्तविक
 प्यास बुझाने वाली है ।



डा य र सी कि न अ श्र री ज लि०

DMB-NP-551

का मधु औषधीय उपयोगों में लिया जाता है।

मध्य प्रदेश में पाँच प्रकार का मधु पाया जाता है—कुराटेने, मूसरटेने, तोन्यूदीटेने, पिटवरटेने तथा बुनागोलटेने। इनमें प्रथम और अन्तिम जाति उत्तम मानी जाती है। वहाँ धानुक तथा नहाल जाति के लोग मधु और मोम का संचय बड़े पैमाने पर करते हैं।

मधु कई प्रकार से बिकता है। कुछ लोग छत्ते से निचोड़कर, तो कुछ लोग मधु समेत ही छत्ते के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर बेचते हैं। अब तो यह कार्य भी यन्त्रों द्वारा होने लग गया है। हनी एक्स्ट्रैक्टर (honey extractor) नामक यन्त्र से मधु निकाला जाता है।

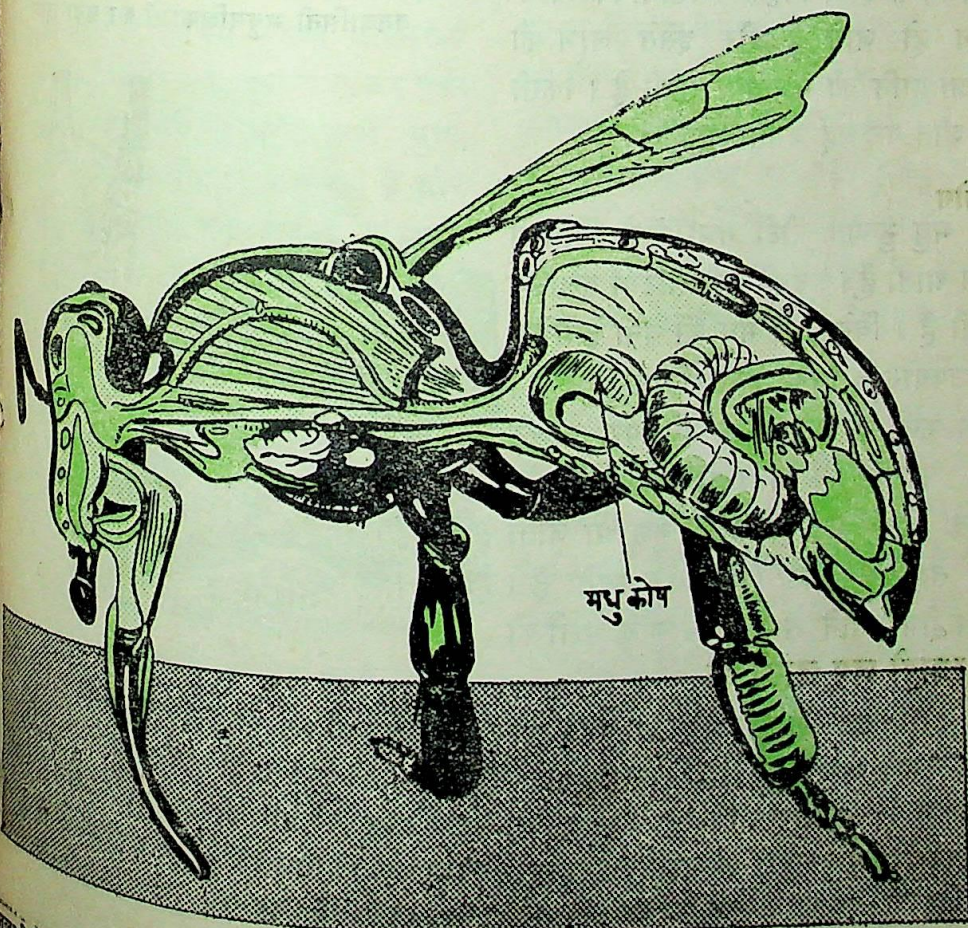
कुछ समय पहले यूरोप तथा अमरीका

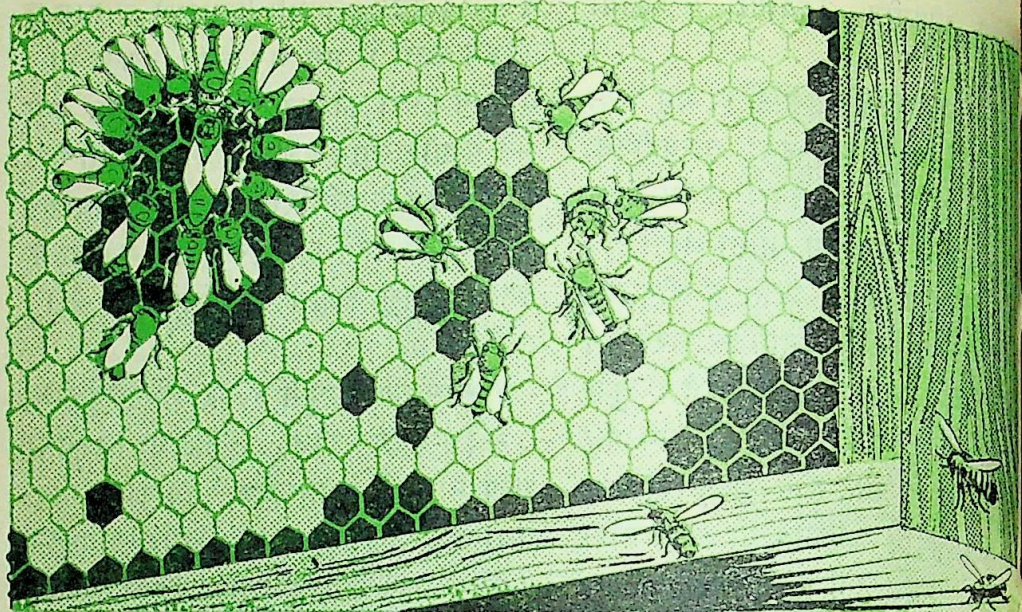
में कोम्ब-हनी (comb honey) के नाम से कृत्रिम छत्तों में मधु भर कर बिकता था। वे लोग ढाँचों की मदद से कृत्रिम छत्ते बना लेते थे और उनमें मधुमक्खियाँ पाल लेते थे। मधु को द्रव के अतिरिक्त दानेदार भी बनाकर बेचा जाता था। दानेदार बनाने में मधु के डेक्स्ट्रोज-अणु केलास रूप में हो जाते हैं।

तत्त्व रचना

सामान्यतः मधु में ४०-५०% लेव्यूलोज, ३२-३७% डेक्स्ट्रोज, २०% सुक्रोज तथा अल्प मात्राओं में माल्टोज, डेक्स्ट्रीन, गोंद, तथा इन्वर्टेज (invertase) और डायस्टेज (diastase) जैसे एन्जाइम (enzymes) भी पाये जाते हैं। इसमें इतने अधिक गुण होने के कारण ही इसे पंचामृत में सम्मिलित किया गया है।

मधुमक्खी की आन्तरिक शरीर-रचना





छत्ते की भीतरी दुनिया

मधु का आपेक्षिक भार 20°C ताप पर लगभग 1.45 से 1.46 रहता है। इसे उबालने से इसमें विकृत रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं और इससे लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना रहती है। किसी भी शीत पर यह जमता नहीं।

मुलायम रखने में भी मधु का उपयोग होता है।

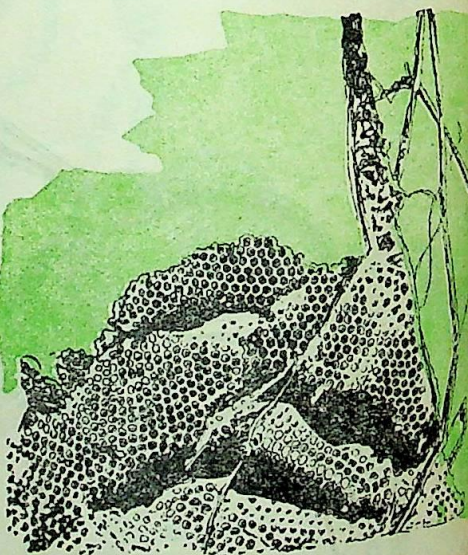
वनवासिनी मधुमक्षिकाओं का बड़ा छत्ता

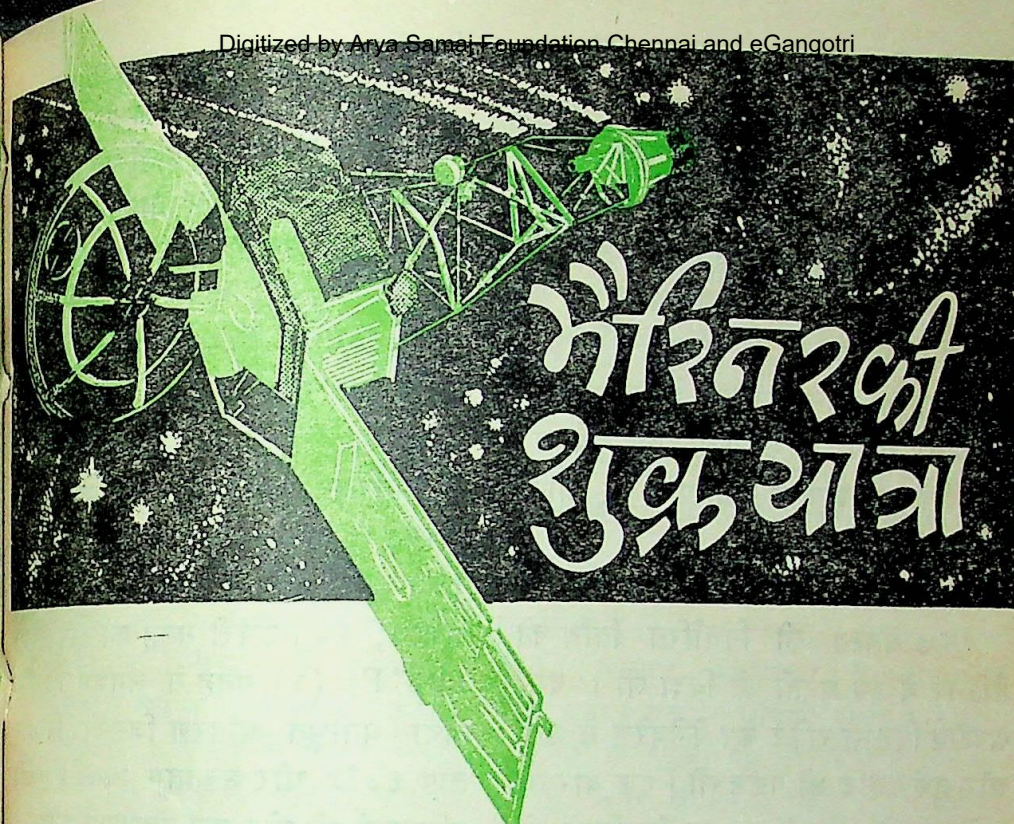
उपयोग

मधु मुख्यतः रोटी तथा केक बनाने में काम आता है। इसकी बनी रोटियाँ मुलायम रहती हैं। विदेशों में मधु की बनी हनीकेक का उपयोग धार्मिक अवसरों पर होता है। इसमें फलों का रस मिला देने पर नाइट्रेट तथा फास्फेट की मात्रा बढ़ जाती है और फलतः इसमें मद्य सरीखा गुण आ जाता है। तब इसे मीड (mead) कहते हैं। कुछेक पेय बनाने तथा तम्बाकू के पत्तों को

जब स्याही जम जाती थी

प्रसिद्ध नक्षत्रविद् विलियम (सर) हर्शेल नक्षत्रविद्या को अपनाने से पूर्व कुशल संगीतकार थे। सन्नाट् जार्ज तृतीय द्वारा राज्य-नक्षत्रशास्त्री बनाये जाने पर उन्होंने यंत्र-संयंत्रों से सुसज्जित वेधशाला बनाना प्रारम्भ किया। अपने पुत्र और पत्नी सहित वे रातों को आकाश-निरीक्षण में लग जाते। नये-नये दूरदर्शी बनाने में लगे रहते थे। महत्त्वपूर्ण विवरण आदि लिखने का कार्य पत्नी के जिम्मे था। वह ठिठुरती सर्दियों में खुली छत पर तब तक लिखती रहती थी, जब तक स्याही उस विकट शीत में जम न जाए !





मैरिनर की शुक्र यात्रा

प्रेमलाल टण्डन

नव-प्रक्षेपित कृत्रिम उपग्रह मैरिनर-२ अपना निर्धारित कार्य समाप्त कर चुका है। अब वह पृथ्वी के बन्धनों से मुक्त, विशाल व्योम में विहार कर रहा है और शुरु की भाँति सूर्य की अनन्त परिक्रमा में लग गया है। प्रसिद्ध ब्रिटिश नक्षत्रविद् सर बर्नार्ड लावेल के शब्दों में, 'मैरिनर-२ अंतरिक्ष में भेजे गये मानव निर्मित भू-उपग्रहों में विज्ञान की सर्वोपरि उपलब्धि है'। संसुत: यह उपग्रह मानव-निर्माण का ऐसा चमत्कार है जिसने अभी तक के अग्रगण्य शुरु की सीमा में केवल २१,७०० मील की निकटता से वहाँ का स्थित्यावलोकन ३६ लाख मील दूर इस पृथ्वी पर अपने निर्माणों तक प्रसारित किया है।

मैरिनर की तैयारी

१९६२ की २७ अगस्त का स्मरणीय दिवस था, जब मैरिनर ने अपने अनन्त पथ की ओर इस पृथ्वी से पग उठाया था।

इसका निर्माण केलिफोर्निया (अमरीका) की इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी के अन्तर्गत जेट प्रोपल्शन लेबोरेटरी ने किया है।

प्रयोग के लिए सवा दो करोड़ डालर के खर्चे से तीन मैरिनर बनाने पड़े थे। सही रूप में लाने के लिए मैरिनर-२ के कुल वजन को घटाकर एक तिहाई कर देना पड़ा था। २२ जुलाई, १९६२ के प्रारम्भिक प्रयोगों में मैरिनर-१ अपने राकेटों सहित जल कर खाक हो चुका था। उसमें ६० लाख डालर की हानि हुई थी। यह उल्लेखनीय है कि वह बड़ी हानि गणकयन्त्रों में केवल एक संकेत-चिह्न गलत लग जाने से हुई थी।

सबसे विलक्षण बात यह थी कि मैरिनर-२ का सर्वशुद्ध निर्माण सीमित समय में ही करके उसे ऊर्ध्वाकाश में छोड़ने की तिथि और घड़ी को चूकना नहीं था। २७ अगस्त, १९६२ इसलिए महत्वपूर्ण था कि अनन्त वर्षों के पश्चात् और आगे भी अनिश्चित

काल के लिए केवल १४ दिनों में १९६९ को शुक्र ग्रह इस अवस्था में आने को था कि गणनासिद्ध यात्रा के १०६वें दिन मैरिनर उसके निकटतम पहुँच सकता था। उस अवसर को चूकना एक अपूर्त क्षति प्रमाणित होता। इसके लिए मैरिनर को पृथ्वी की परिक्रमा दिशा के विपरीत ही छोड़ना आवश्यक था, अन्यथा पृथ्वी के आकर्षणबल से छूटना तथा उसके फलस्वरूप सूर्य की ओर खिंचकर शुक्र के कक्षा-पथ पर आना सम्भव न था।

सू-लोक से विदाई

२७ अगस्त की निर्धारित तिथि को मैरिनर ने इस धरती से विदा ली। दस-खण्डीय विशाल राकेट केप केनेवरेल से उठा और तुरंत गति भी पकड़ ली। एक बार तो राकेट ने गोल चकरी घूमकर वैज्ञानिकों को चिन्ता में डाल दिया किन्तु दूसरे ही क्षण सम्भल भी गया। विदाई देने वाले वैज्ञानिक-दल के एक सदस्य ने चैन की साँस ली और कहा—‘विफलताओं की कहानी खत्म हुई और सफलता का स्वर्णद्वार खुल गया।’

ठीक २७वें मिनट पर संवाद मिला कि मैरिनर ने सही कक्षा-पथ पकड़ लिया है और धरती की पकड़ के अन्तिम दौर से निकलने वाला है। एक घण्टा और व्यतीत होने पर संकेत मिला कि वह सूर्योन्मुख हो गया है, अर्थात् अपने १६॥ फुट लम्बे पंख सूर्य की ओर फैला दिये हैं ताकि उनमें लगे हुए सौर-संग्राहक (solar panels) सूर्य-रश्मियों से विद्युत् उत्पादन कर सकें।

उड़ानगत कठिनाइयाँ

निर्धारित १०८ दिन की यात्रा करके १०६वें दिन शुक्रग्रह से भेंट करने तक मैरिनर का मार्ग अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ था। इसे अन्तरिक्ष के कणों, रश्मियों, उल्काओं, वर्षण तथा ताप आदि अनेक

विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। उल्काओं के अतिरिक्त ५,००० मील प्रति सेकण्ड के प्रचण्ड वेग से सूर्य से आती हुई परमाणु की बौछार, अति उच्च ताप तथा सूर्य के विमुख भाग पर भयानक शीत आदि विपत्तियाँ कम भयावह नहीं थे। फिर भी मैरिनर समस्त बाधाओं को पार करता हुआ आगे बढ़ता चला गया।

रहस्य का पर्दा उठा

मैरिनर ने शुक्रग्रह के अवलोकनार्थ निम्न तथ्य मुख्यतः प्रसारित किये—
(१) शुक्रग्रह पर जीवन-लक्षणों का सर्वत्र अभाव; (२) ऊपरी सतह का ताप लगभग 500°F ; (३) सतह से लगभग ४५ मील ऊँचा घनीभूत आवरण जिसका निम्नतम ताप 60°F और उच्चतम 200°F ; (४) दक्षिणार्द्ध की ओर एक रहस्यपूर्ण शीत-भाग कदाचित् एवरेस्ट से भी ऊँचा कोई गिरि शिखर।

इन रहस्यों के अतिरिक्त निम्नान्वित अन्य विवरण भी प्राप्त हुए :

१. वायुमण्डल जीवनधारण के सर्वत्र अयोग्य है, क्योंकि उसमें कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता तथा आक्सीजन और आर्द्रता का अभाव है।

२. घना गैसीय आवरण १५-२० मील मोटा है किन्तु सतह ४५ मील की ऊँचाई के पश्चात् प्रारम्भ होती है। फलतः सूर्य का प्रचण्ड ताप तो शुक्र की धरती पर वेरोक-टोक उतर आता है, किन्तु परावर्तित नहीं हो पाता।

३. सतह तथा वातावरण अत्यन्त शुष्क है और वायुमण्डल का दबाव पृथ्वी की अपेक्षा १०-२० गुना अधिक होने के सूर्य के ताप का प्रसारण सहज हो जाता है।

४. वान एलन की चुम्बकीय पट्टी पृथ्वी को लपेटे हुए है, उसका वहाँ अभाव है।

५. वहाँ की सतह पर यदि खड़े होकर उस ग्रह को पृथ्वी की भाँति स्थिर मान लिया जाए तो एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का वहाँ एक दिन, यहाँ के २२५ दिनों के बराबर होगा।

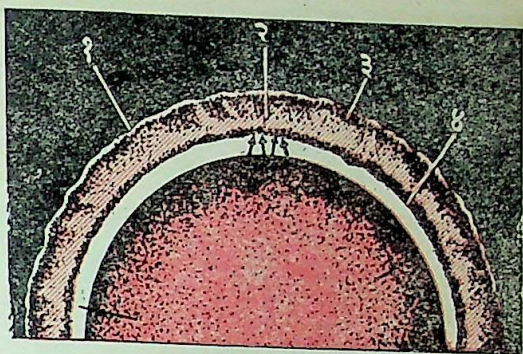
मुख्य उपकरण

मैरिनर के असंख्य उपकरणों में निम्न मुख्य थे। संकेतों और चिह्नों द्वारा विवरण प्रस्तुत करने के लिए टेलीटाइप तथा पंच-ग्रेम। अन्तरिक्ष की चुम्बकीय परिस्थिति ज्ञात करने के लिए चुम्बक-निरीक्षक प्लेटें। विशिष्ट धातु-निर्मित पाँच इंच लम्बी, तीन इंच चौड़ी ये प्लेटें मैरिनर के निचले भाग में लगायी गयी थीं। कास्मिक धूलि-कणों को बौछार को एक टेलीफोन के डायफ्राम की भाँति संवेदन रूप में ग्रहण करके ये प्लेटें प्रसंगित करती थीं। प्लेटों के निकट, तीन कुँदनीयों युक्त एक बक्से में गाइगर गणक स्थापित रखा गया था। वह यन्त्र अन्तरिक्ष-किरणों की जानकारी देता रहेगा।

विजय से पूर्व की रात

१३ दिसम्बर की रात विजय से पूर्व की रात थी। मैरिनर ने १०० दिन पूरे कर लिये थे। मैरिनर को प्रक्षेपित करने वाला बैलिस्टिक-दल पृथ्वी पर अपने कण्ट्रोल-रूम में खड़े पर नजर गड़ाये हुए था। समय रात के आधा था। सिगनल आने में देर हो रही थी।

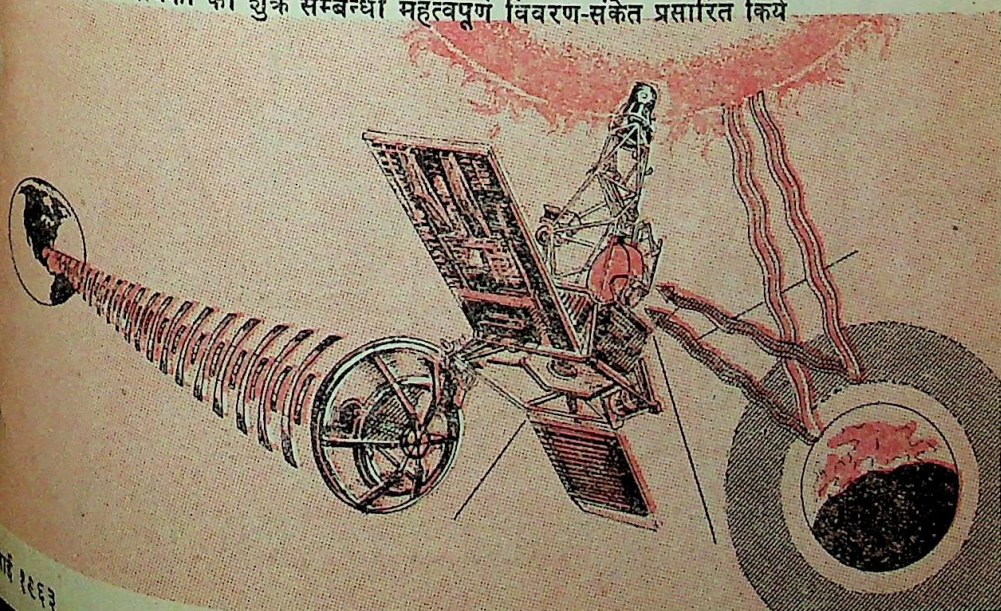
कालिं मैरिनर-२ ने शुक्र का रहस्यावरण भेद ही दिया और ३६ लाख मील दूर पृथ्वी पर अपने निमयिकों को शुक्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण विवरण-संकेत प्रसारित किये

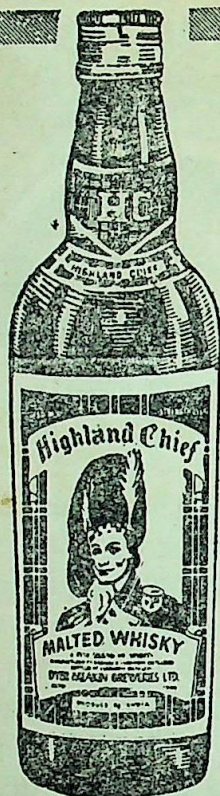


शुक्र के गिर्द काफी घनीभूत बादलों का आवरण है जो वहाँ के ताप को 500°F तक बनाये रखता है

तीन घण्टे और बीत गये। २-४० बजे नयी आशा बँधी कि ४-१६ पर तो संवाद अवश्य ही मिल जाएगा। कण्ट्रोल-रूम से नया संकेत भेजा गया। तब तक मैरिनर पृथ्वी से इतनी दूरी पर जा पहुँचा था कि प्रकाश-गति से गये हुए संकेत को मैरिनर का प्रत्युत्तर लेकर लौट आने में छः मिनट लग गये! उत्तर उत्साहवर्द्धक था। कण्ट्रोल-रूम तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

दूसरे दिन, १४ दिसम्बर की मध्यरात्रि को १२ बजकर ५० मिनट पर मैरिनर ने शुक्र की दुनिया में प्रवेश करके २१,७०० मील की दूरी से प्रथम भाँकी प्राप्त की और अपने निर्माताओं को ३६ लाख मील दूर, अपने शुक्र-अभियान की विजय-दुंदुभी सुना दी!





विशिष्ट वर्ग एकत्रित हों तो हाईलेण्ड चीफ

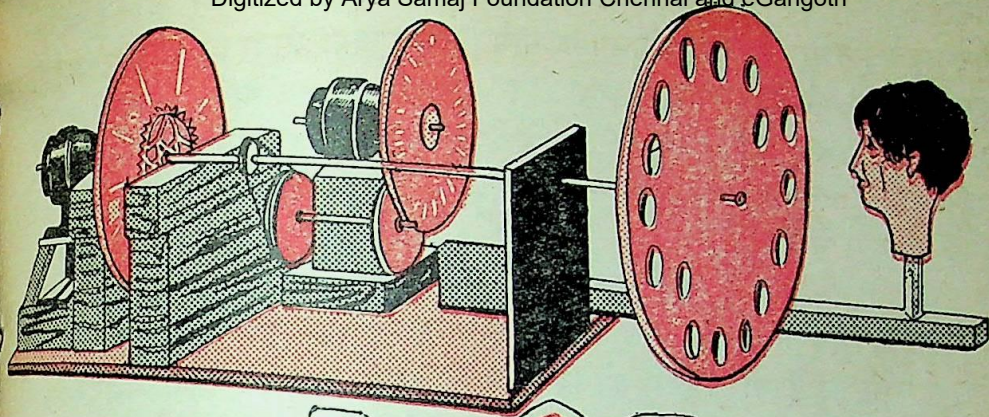
माल्टेड विहस्की

एक अरोध्य प्रलोभन है

जब कभी मित्रगण सम्मिलित होते हैं तो अच्छी विहस्की से अधिक सुखद और कुछ नहीं है। उस सभा को अविस्मरणीय बनाने के हेतु आप उत्तम विधि तथा सावधानी से मिश्रित हाईलेण्ड चीफ से अधिक अच्छा चुनाव नहीं कर सकते।



डायर मीकिन ब्रूअरीज लि० स्थापित १८५५



टेलीविजन

केशोराम

हकी से
रणीय
मिश्रित
सकते।

हकी वस्तुएँ देखने के तीन प्रमुख साधन हैं। दूरदर्शी की सहायता से तारों, नक्षत्रों को देखा जा सकता है; सिनेमा-फ़िल्म की सहायता से कहीं दूर पर किये गये कार्यक्रम को पर्दे पर देखा जा सकता है और तीसरा साधन टेलीविजन का ऐसा प्रभु है जो मीलों दूर चल रहे कार्यक्रम को रेडियो की भाँति हमें चलने के मध्य ही दिखाया जा सकता है। इसके द्वारा यह प्रभव है कि दिल्ली में निकल रही गणतंत्र प्रचारोह की भाँकियाँ मद्रास में उसी समय देखी जा सकती हैं और कराची में चल रहे क्रिकेट टेस्ट मैच को कलकत्ते में देखा जा सकता है। अभी प्रारम्भिक तथा प्रायोगिक अवस्था में इससे दिखने वाले दृश्यों की संख्या कुछ ही मीलों तक सीमित हैं।

हकी का धर्म और परिश्रम

अनेक आविष्कारों से टेलीविजन के आविष्कार में भिन्नता है। वायुयानों की भाँति इसका भी रूप और प्रकार वर्षों तक अनेक वैज्ञानिकों के परिश्रम द्वारा सुधरता रहा। यदि इसके आद्य प्रवर्तकों में पाल निकोव (जिसने सर्वप्रथम गोल चकरी वाला

यंत्र बनाया था) का नाम लिया जाए तो इस पर अनवरत परिश्रम, नये प्रयोग तथा आधुनिक रूप देने वालों में जहाँन बेयर्ड को भी न भुलाया जा सकेगा। बर्जीलियस का भी नाम लेना इसलिए आवश्यक होगा कि इसमें प्रयुक्त होने वाली धातु सैलेनियम की खोज उसी ने की थी। इनके साथ ही एक आपरेटर महाशय मि. मे को भी भुलाया न जा सकेगा; क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम यह ज्ञात किया था कि सूर्य के ताप तथा तीव्र प्रकाश में सैलेनियम धातु विद्युतावेशित हो जाती है। उसी सैलेनियम की सूक्ष्म कोशिकाओंयुक्त मोजेक (mosaic) बनाने के लिए जी. आर. कारे का भी आभार मानना आवश्यक होगा। टेलीविजन की कहानी विगत शताब्दी के उत्तरकाल से आरम्भ हुई है।

लगभग ४० वर्ष पूर्व यह टेलीविजन प्रयोगशालाओं की चहारदीवारी में सीमित था। निरन्तर प्रयोग किये जाते रहे और प्रायः ही लोग उड़ती-सी कुछ सुन भी लेते थे। सुनकर उनकी उत्कण्ठा और भी तीव्र हो उठती थी कि कब यह नयी खोज

प्रयोगशाला में जो तैयारी होकर घर-घर की वस्तु बन जाए। समय के साथ इसकी प्रगति भी तेजी पकड़ती गयी और आज टेलीविजन की संख्या लाखों तक पहुँच रही है। हमारे यहाँ अभी यह प्रायोगिक अवस्था में है।

सिद्धान्त और प्रयोग

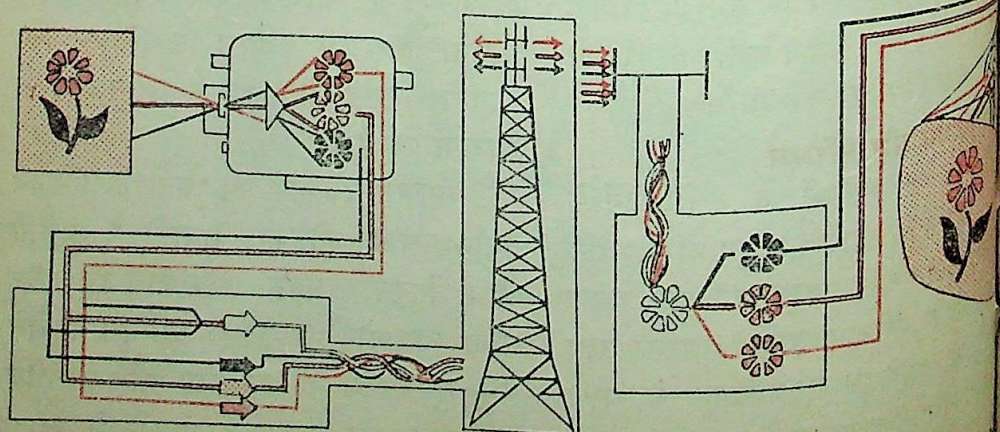
टेलीविजन में समूचा खेल फोटोइलेक्ट्रिक सेलों का है जो चित्रों को विद्युतावेशित लहरों में परिवर्तित करके प्रसारित करती रहती हैं। प्रश्न हो सकता है—यह किस प्रकार सम्भव है कि विभिन्न आवेशों की लहरों को एक ही साथ, एक ही तार पर प्रसारित किया जाए? इसका उत्तर इस एक उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है कि—मान लीजिए, आपके पास लिफाफा तो छोटा है और मित्र को भेजा जाने वाला चित्र बहुत बड़ा है। तब उसे किस प्रकार भेज सकेंगे? इस प्रश्न का उत्तर पिछला प्रश्न भी हल कर देगा। उत्तर यह है कि उस बड़े चित्र को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर उनके पीछे संकेत नम्बर डालकर भेजा जा सकेगा, ताकि वह मित्र उन्हें पुनः संयोजित करके पूरा चित्र तैयार कर ले। इसी सिद्धान्त का आश्रय लेते हुए टेलीविजन में मोजेक की प्लेट पर किसी भी चित्र

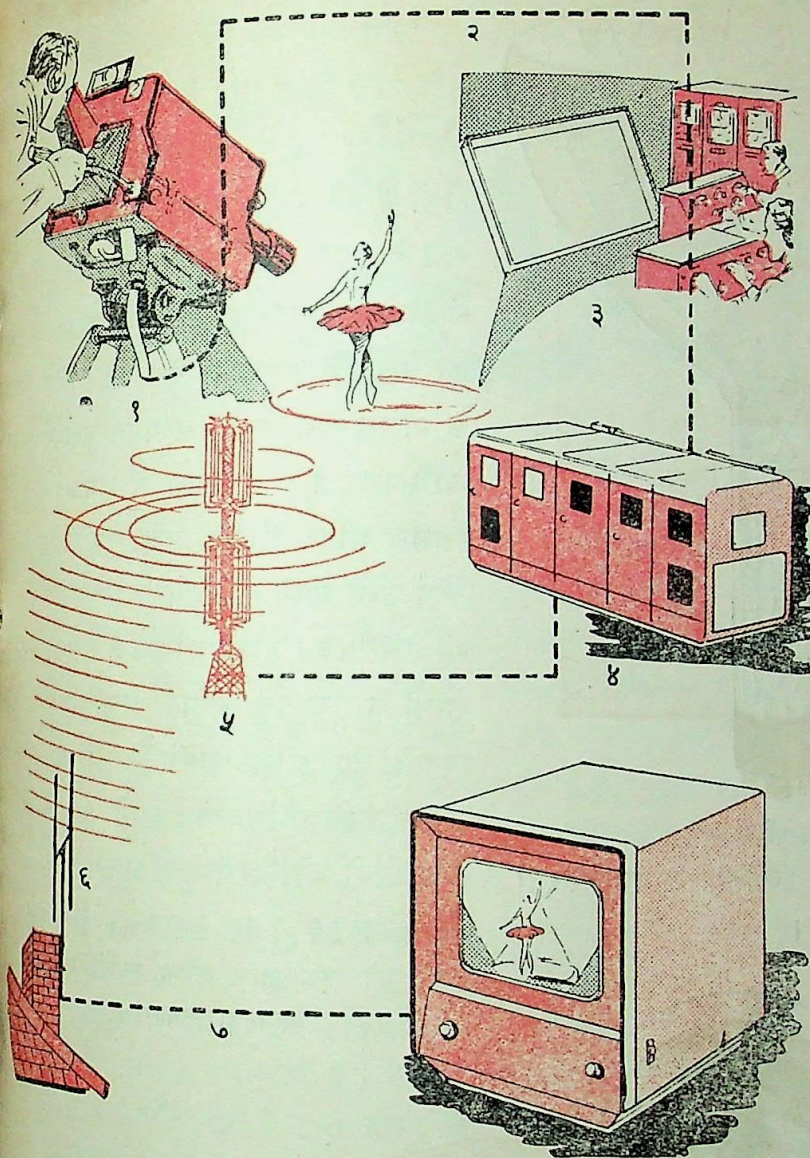
अथवा वस्तु के चित्र को प्रति सूक्ष्म खण्डों में बाँट दिया जाता है और रिसीवर में पुनः संयोजित होकर वह दृश्य पर अंकित हो जाता है।

पाल निष्कोव तथा जहाँ वेयर्ड द्वारा निर्मित छिद्रोद्युक्त गोल चकरी वाले टेलीविजन चालित यन्त्रों से बढ़ती-बदलती टेलीविजन की कहानी यंत्रचालित पुर्जे से भी निकलकर इलेक्ट्रॉनिक टेलीविजन तक पहुँची है। टेलीविजन के ट्रान्समीटर इकोनोस्कोप तथा रिसीवर को काइनेटोस्कोप कहते हैं। इसकी कार्यप्रणाली को रूपरेखा निम्न सरल प्रयोग से समझ में आएगी।

जिस चेहरे को प्रसारित करना है इकोनोस्कोप उसका एक सामान्य कैमरे की भाँति फोटो ले लेगा। अन्तर रहेगा कि फोटो फिल्म अथवा निर्गल प्लेट के स्थान पर वह प्लेट मोजेक होगी। उस प्लेट पर करोड़ों कोशिकाओं के रूप में विद्युतावेशित बिन्दु होंगे जिन्हें फोटोइलेक्ट्रिक आँखें कहेंगे। यों उस प्लेट पर वह चेहरा एक वस्तु न रहकर करोड़ों बिन्दुओं में विभाजित रहेगा। उन बिन्दुओं को विद्युत लहरों पर प्रसारित करके दूर सिरे पर रिसीवर में पुनः संयोजित

टेलीविजन द्वारा रंगीन चित्र के प्रसारण तथा प्रदर्शन का सिद्धान्त





किरणें पड़ती हैं तब उससे इलेक्ट्रान छूटते हैं। इनका वेग प्रकाश की तीव्रता के साथ बढ़ता जाता है। इनका विद्युतावेश ऋणात्मक होता है। अतः इन के निकल जाने पर इलेक्ट्रान ट्यूब स्वयं धनावेशित रह जाती है। छूटते हुए इलेक्ट्रानों को कलेक्टर रिंग संग्रहीत कर लेती है। रिंग में संग्रहीत होते ही ये इलेक्ट्रान इकोनोस्कोप से हट जाते हैं और रिसीवर की ओर प्रसारित होते रहते हैं।

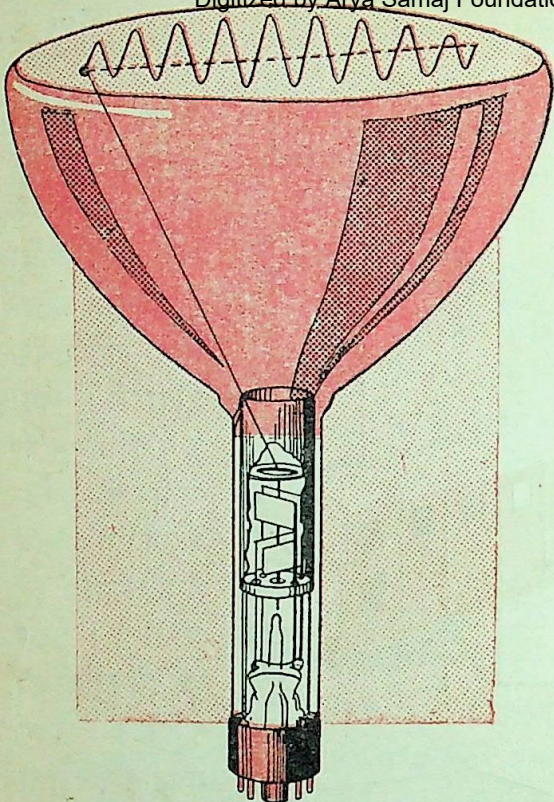
टेलीविजन के रिसीवर में

टेलीविजन द्वारा दृश्यांकन तथा प्रसारण

सम्पूर्ण चित्र प्राप्त हो जाएगा। चित्र का यह विभाजन स्कैनिंग (scanning) कहलाता है। यह क्रिया इतनी अकल्पनीय तीव्र गति से होती है कि मानव नेत्र को उसके विभाजन तथा पुनर्संयोजन का आभास नहीं हो पाता और वस्तु सम्पूर्ण ही दिखती है।

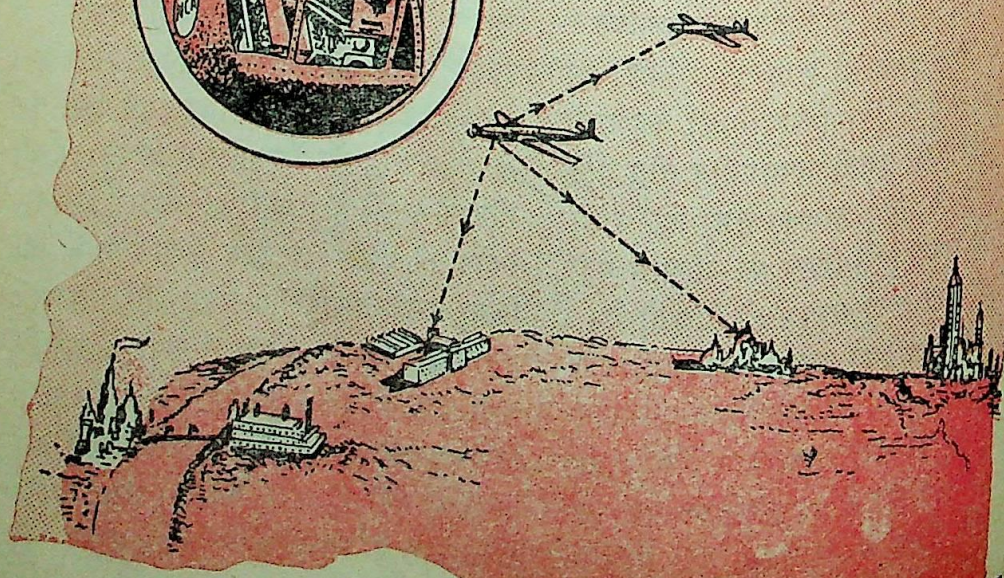
टेलीविजन का मुख्य अंग इलेक्ट्रान ट्यूब होती है। इनके अतिरिक्त इलेक्ट्रिक गन, मोजेक की प्लेट, कलेक्टर रिंग आदि भी आवश्यक अंग हैं। इलेक्ट्रिक गन पर जब किसी चित्र अथवा दृश्य की प्रकाश-

इकोनोस्कोप जैसी इलेक्ट्रान गन होती है। इसे कैथोड ट्यूब कहते हैं। यह ट्यूब सिरे पर स्थित एक फ्लोरसेंट पर्दे पर इलेक्ट्रानों की बौछार करती है। यहाँ यह बौछार इकोनोस्कोप की बौछार के ठीक समान गति की किन्तु उलटे प्रकार की होती है। फलतः प्रसारित चित्र के इलेक्ट्रान रूपी वे करोड़ों खण्ड पुनः संयोजित होकर चित्र को प्रतिबिम्बित कर देते हैं। रंगीन टेलीविजन इस दिशा में नयी ही उपलब्धि है। उसके द्वारा टेलीविजन के चित्रों में से स्याह-सफेद की



कैथोड-रश्मि दृश्य

नीरसता हटाकर रंगीनियाँ उत्पन्न करना सम्भव हो गया है।



टेलीविजन को मनोरंजन तक ही सीमित नहीं रहने दिया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा, युद्ध-कालीन कार्य, चिकित्सा तथा शिक्षण के क्षेत्रों में भी इसका महत्वपूर्ण योग लिया जा रहा है। उदाहरणार्थ, एक बड़े अस्पताल में चल रहे गम्भीर आपरेशन का दृश्य प्रसारण दूर-स्थित मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों के प्रशिक्षणार्थ उनके अध्ययन-कक्ष में किया जा सकता है। युद्धकाल में शत्रुओं के गुप्त स्थलों और रेडियो संकेतों की टोह लेना तथा उन्हें अपने केन्द्रों पर प्रसारित करना भी टेलीविजन द्वारा सम्भव है। इसी प्रकार छात्रों के एक दल सहित प्रकृति-दर्शन को निकले हुए अध्यापकगण टेलीविजन द्वारा अपना सचित्र विवरण अपने विद्यालय के विद्यार्थियों को दिखा-सुना सकेंगे।

वायुयान में ठेबे ही बैठे टेलीविजन द्वारा लिये गये दृश्यों को एक साथ अनेक स्थलों पर प्रसारित किया जा सकता है

कोलायड

सत्यकुमार

१८६१ में ग्राहम ने घुलने वाले पदार्थों को दो श्रेणियों में बांटा—केलास तथा कोलायड। केलासीय के उदाहरण हैं मिश्री, नमक, तृतीया आदि। इनके घोल समांग होते हैं तथा छाने जा सकते हैं। कोलायड के उदाहरण हैं मौद, गोंद, जिलेटिन आदि। यह विषमांग होते हैं। भिल्लियों से भी इनका छनना मुश्किल होता है।

आधुनिक मत के अनुसार ग्राहम का यह विभाजन शुद्ध नहीं समझा जाता। वास्तव में केलास तथा कोलायड किसी एक पदार्थ की दो विभिन्न अवस्थाएँ हैं। केलास में पदार्थ के कण छोटे होते हैं तथा कोलायड में बड़े। पानी में तो साबुन कोलायड अवस्था में रहता है पर एलकोहल में केलासीय रहता है। पानी में नमक केलासीय अवस्था में रहता है और बेन्जीन में कोलायड।

कोलायड पदार्थों से रसायनशास्त्र भरा पड़ा है। इनके उपयोग इतने बढ़ते जा रहे हैं कि भौतिक रसायन की एक शाखा के रूप में कोलायड रसायन का अध्ययन किया जाता है। बड़े-बड़े उद्योग कोलायड पर ही आधारित हैं।

कुछ पदार्थ प्राकृतिक रूप से ही कोलायड अवस्था में मिलते हैं तो कुछ को प्रयोगशाला में कोलायड रूप दिया जा सकता है।

भौतिक विधियों में प्रमुख विधि विद्युत-विच्छेदन की है। जिस धातु का कोलायड-विलयन बनाना हो उसके विद्युदाग्र लेकर उसमें विद्युत-चाप उत्पन्न करने से धातु के कण टूटकर पानी में कोलायड-विलयन बनाते हैं। कोलायडीय-चक्की के द्वारा भी यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

रासायनिक विधियों में द्विक-विच्छेदन, जल-विश्लेषण, आक्सीकरण और अवकरण मुख्य विधियाँ हैं।

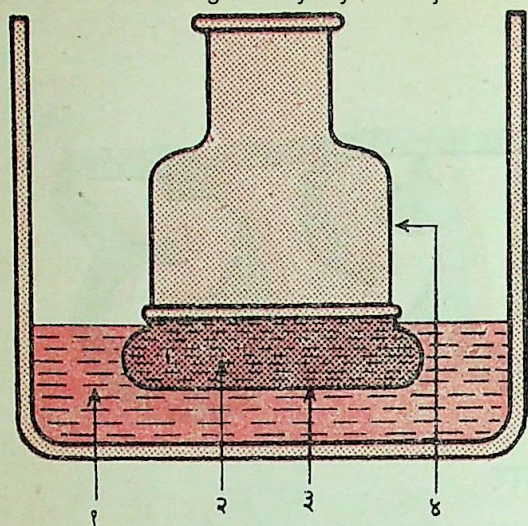
कोलायडीय विलयन के प्रमुख लक्षण निम्न हैं :

१. कोलायडीय विलयन विषमांग होता है और उसका रसाकर्षण दबाव बहुत कम होता है।

२. कोलायडीय विलयन प्रकाश को परिक्षिप्त कर देता है। यह 'टिण्डल प्रभाव' कहलाता है।

३. कुछ कोलायड कणों पर धनात्मक और कुछ पर ऋणात्मक विद्युतावेश रहता है।

४. यदि किसी कोलायडीय विलयन में कोई विद्युत-विच्छेदन डाल दिया जाए तो उसके कणों का आवेश नष्ट हो जाता है। उसके कण आपस में मिलकर, बड़े होकर, अवक्षेप रूप में नीचे बैठ जाते हैं। यह क्रिया स्कंधन कहलाती है।



थामस ग्राहम ने इस यंत्र द्वारा पदार्थों की कोलायड अवस्था सिद्ध की थी

५. कोलायडीय कणों की शोषण शक्ति अधिक होती है। दो विरोधी विद्युतावेश वाले कोलायडीय विलयन मिलाने पर दोनों के कोलायडीय पदार्थ अवक्षिप्त हो जाते हैं।

कोलायडीय विलयन किस प्रकार विषमांग होते हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा :

प्रकार	उदाहरण
द्रव में गैस	साबुन का भाग
ठोस में गैस	झाँवाँ पत्थर
गैस में द्रव	वर्षा, बादल, कुहरा
द्रव में द्रव	दूध, तेल-पानी का पायस (इमल्शन)
ठोस में द्रव	सिली का जेली
गैस में ठोस	नौसादर का धुआँ, चिमनी का धुआँ।
द्रव में ठोस	जल में रजत व स्वर्ण के कण तथा बेन्जीन में निकिल।
ठो में ठोस	रंगीन काँच, रत्न, मणि।

नित्य ही हम भाँति-भाँतिके कोलायडीय पदार्थों के सम्पर्क में आते हैं। हमारा शरीर भी अधिकांश कोलायडीय है। हमारा भोजन

फनीचर, मैकान, पुस्तकें, सभी कुछ तो कोलायडीय है !

दूध में क्या है ? जल में वसा
लस्सी जल में कैसीन
मक्खन वसा में जल
रोटी, बिस्कुट आटे में वायु
हलवा ठोस में द्रव
आइसक्रीम मलाई में वर्फ के कण
रसीले फल ठोस में द्रव
सिगरेट का धुआँ वायु में कार्बन के कण
अनेक ओषधियाँ कोलायड रूप में

प्रयुक्त होती हैं। अनुमान है कि कोलायडीय ओषधियाँ शरीर में जल्द घुल-मिल जाती हैं। इनकी शोषण शक्ति तीव्र होने के कारण इनका प्रभाव तुरन्त होता है। कोलायडीय सोना, चाँदी, कैल्सियम तथा मैंगनीज आदि इंजेक्शनों में प्रयुक्त होते हैं। कीटाणुनाशन के लिए भी कोलायडीय गंधक का उपयोग किया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि धुआँ कोलायडीय अवस्था है। शहरों में छोटे-बड़े कारखानों की चिमनियाँ दिन-रात धुआँ उगलती हैं जिससे वातावरण दूषित हो जाता है। उससे बचने के लिए चिमनियों का धुआँ बाहर निकलने के पूर्व ही अवक्षिप्त कर लिया जाता है। इससे कार्बन के कण नीचे बैठ जाते हैं। गर्म गैस चिमनी के बाहर हो जाती है और वायुमण्डल में मिल जाती है।

फिटकरी द्वारा जल का शुद्धीकरण औद्योगिक रूप से किया जाता है। वह क्रिया भी कोलायड रसायन पर आधारित है। जल में जो मिट्टी आदि के कण होते हैं फिटकरी डालने से वे तली में बैठ जाते हैं। उन कणों के साथ ही सूक्ष्माणु भी जो उपस्थित हों, नीचे पहुँच जाते हैं।

रबर भी कोलायड का उदाहरण है।

रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं। रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं। रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं।

रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं। रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं। रबर के वृक्ष से जो रस निकलता है उसमें रंग के अणु होते हैं।

साबुन द्वारा गन्दे कपड़ों की सफाई कोलायडीय प्रभाव से होती है। पानी में बना साबुन का कोलायडीय विलयन गन्दगी का शोषण कर लेता है और चिकनाई बनाकर दूर कर देता है।

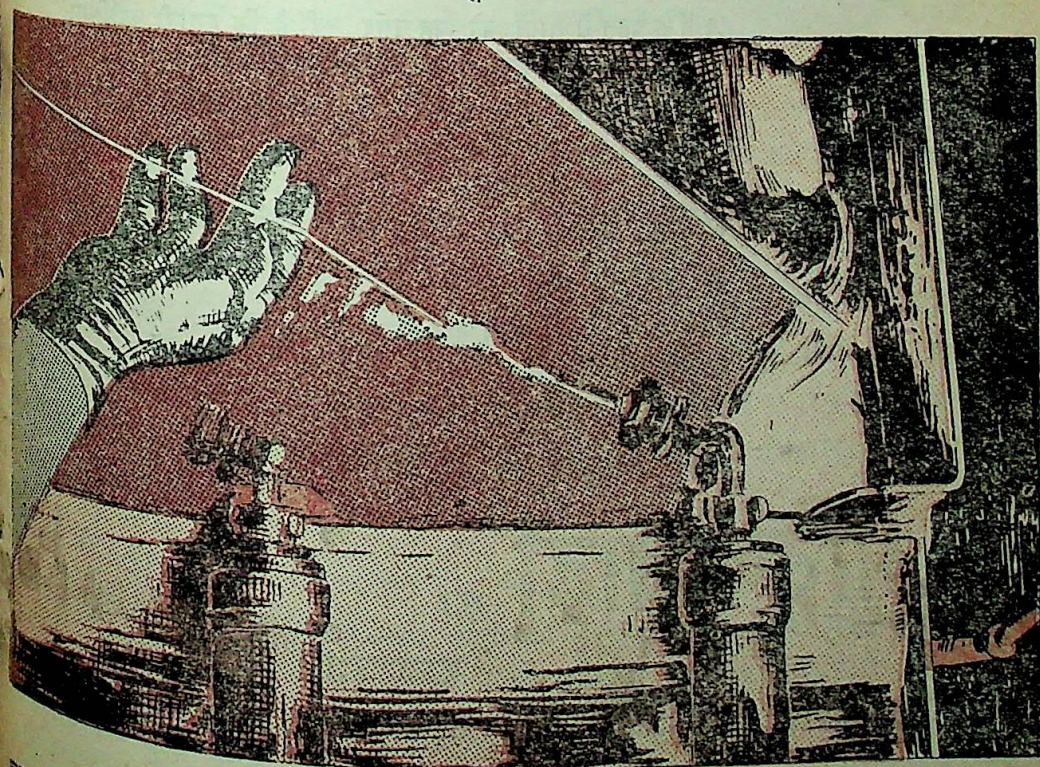
पानी की उपस्थिति में सीमेन्ट पत्थर की तरह दृढ़ हो जाता है, कैल्सियम सिलिकेट के जेली-गुण पर निर्भर करता है। सीमेन्ट की कोलायडीय परीक्षा करके उसकी

कोलायड अवस्था में प्राप्त सेल्यूलोज द्वारा रेयन के रेसे का निर्माण

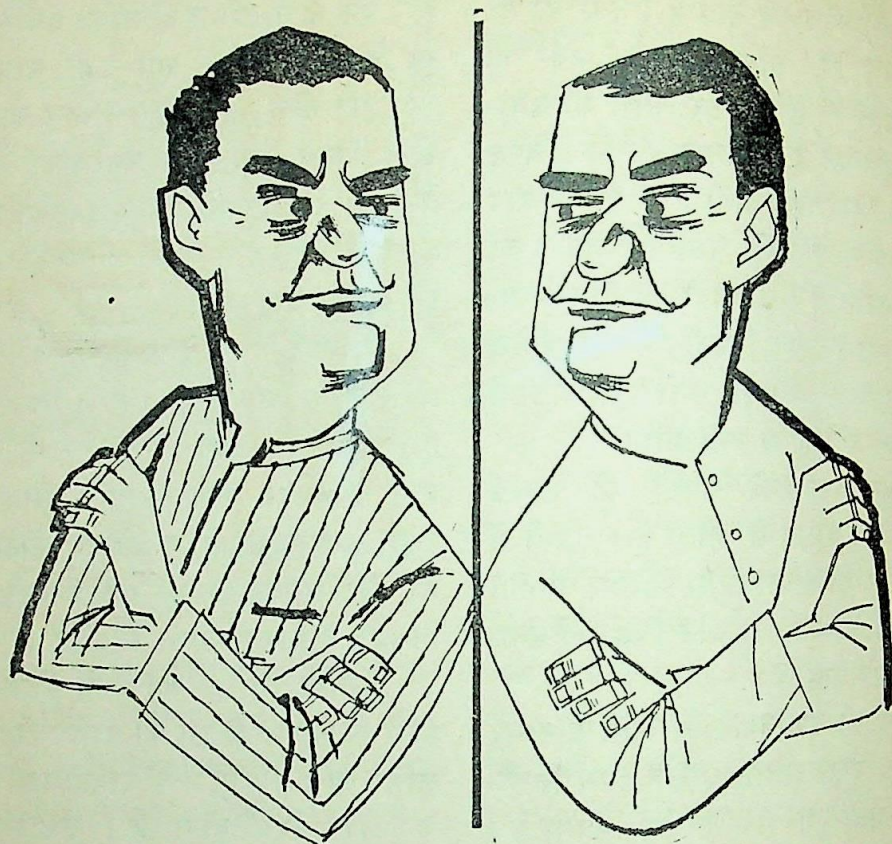
रंग के उद्योग में कोलायड सर्वेसर्वा है। रंग कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, सामान्यतः कपड़े पर ठीक नहीं चढ़ेगा। अतः कपड़े को पहले किसी बंधक या रंगस्थापक में डुबो लेते हैं। कपड़ा पहले रंगस्थापक को शोषित करता है तत्पश्चात् रंग के शोषण द्वारा पक्के रंग का हो जाता है।

नालियों के गन्दे पानी से गन्दगी को अलग करके खाद के काम में ले लिया जाता है। वह निथरा हुआ पानी गन्दगी दूर हो जाने के कारण रोग फैलाने योग्य नहीं रहता। अन्य उदाहरण देखें तो फोटोग्राफी की प्लेट अथवा फिल्मों पर जिलेटिन का सिलवर ब्रोमाइड व्याप्त रहता है।

गुलाबी रंग के काँच में कोलायडीय स्वर्ण के कारण ही रंग का प्रभाव होता है। कृत्रिम लाल-मणियों में कोलायडीय क्रोमियम के कारण रंग होता है। ग्रेफाइट भी कोलायडीय अवस्था में ही प्रयुक्त होता है।



जुलाई १९६६



तुलना न कीजिए

हम में से बहुत से लोगों को यह पसंद नहीं है कि हमारी पड़ोसियों से तुलना की जाए। ऐसी ही बात मेट्रिक बाटों के बारे में है।

मेट्रिक प्रणाली से पूरा लाभ उठाने के लिये जरूरी है कि उनका ज्यों का त्यों इस्तेमाल किया जाए जैसे कि १०० ग्राम, २०० ग्राम, ५०० ग्राम या १ किलोग्राम।

मेट्रिक वजन का जोड़-तोड़ के सेर, छटाक न बनाइये।

इसमें आपका बेकार समय नष्ट होगा तथा लेन-देन में नुकसान हो सकता है।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए,

पूर्ण इकाइयों में

मेट्रिक बाटों का प्रयोग कीजिए

DA 63/70

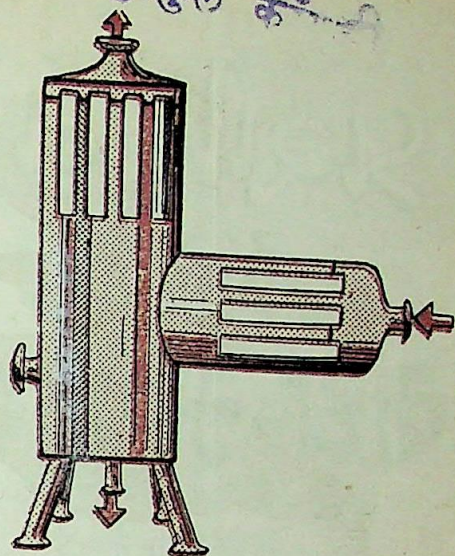
ग्रेफाइट को टैनिक की उपस्थिति में पीसकर कोलायडीय बना लिया जाता है।

युद्ध काल के गैस-रक्षावरण (gas mask) का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। युद्धस्थल की अनेक विषैली गैसों को सोखने के लिए गैस मास्क में कोलायडीय कोयला ही होता है। कोयले की अधिशोषण शक्ति तीव्र होती है।

बादलों को देखें तो मालूम होगा कि वे भी कोलायडीय विलयन के विभिन्न रूप हैं। जब ये ठण्डे क्षेत्र में पहुँचते हैं तो जल की बड़ी-बड़ी बूँदें बन जाती हैं, जो गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे गिरने लगती हैं। कभी-कभी तो दो विपरीत आवेश के बादल एक-दूसरे को प्रभावित कर देते हैं और बरस पड़ते हैं। इसी आधार पर वायुयान द्वारा सूखी वर्ष गिराकर उन्हें मन चाहे क्षेत्रों पर बरसने के अनेक सफल प्रयोग किये गये हैं।

कोलायड की महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाए! समुद्र के पास नदियाँ जो बंदा बनाती हैं वह कोलायड का ही रूप हैं! कोलायडीय गुण के कारण ही आकाश नीला दिखाई देता है।

भूमि की मिट्टी का कोलायडीय होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि मिट्टी कोलायडीय न होगी तो उसमें अधिशोषण की शक्ति नहीं होगी। मिट्टी में उपस्थित अन्य कोलायडीय पदार्थ हैं, एल्यूमिनियम व आयरन हाइड्राक्साइड, विभिन्न सिलिकेट



इस पृथक्कारी यंत्र द्वारा किरासन-पानी के मिश्रण से दोनों को पृथक् किया जा सकता है

तथा बैक्टीरिया। मिट्टी में खाद का सुरक्षित रहना कैल्सियम और पोटैशियम के अधिशोषण पर निर्भर करता है।

फेन विधि द्वारा सल्फाइड अयस्कों से अयस्कों को अलग करने के लिए तेल-पानी का इमल्शन प्रयुक्त किया जाता है। धात्विक अयस्क मुख्यतः तेल के भाग में ऊपर आ जाता है।

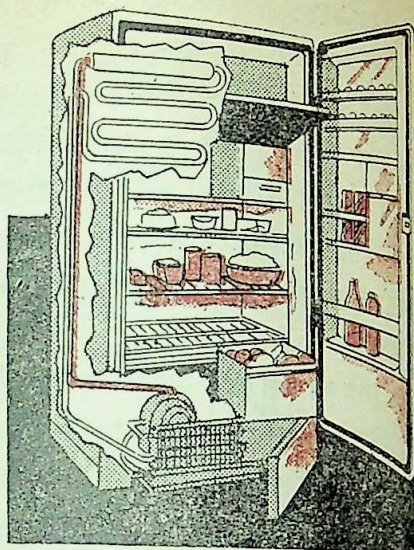
दाढ़ी बनाते में प्रायः ही ब्लेड लगने से खून निकल आता है जो फिटकरी लगाने से तुरन्त बन्द हो जाता है। इसका कारण रक्त का कोलायडीय होना है। फिटकरी की प्रक्रिया से वह वहीं जमकर रुक जाता है।

जीवन के किसी क्षेत्र में, उद्योग के किसी विभाग में, तथा प्रकृति के किसी भी प्रांगण में चले जाएँ, कोलायड सर्वव्यापी हैं।

विटामिन की अधिकता भी हानिकारक

प्रायः देखने में आता है कि रोगनाशक औषधियों का असंयमित प्रयोग प्राणघातक बन जाता है। विटामिनों के बारे में भी इस तथ्य का प्रतिपादन पश्चिम-जर्मनी के चिकित्सकों ने किया है। उदाहरण-स्वरूप अस्पताल में एक रोगी ने अपनी हालत सुधरने के प्रारम्भ में विटामिन ए की गोलियाँ अधिकता से ले लीं। इससे उसके प्राणों पर आ पड़ी। बड़ी देर में डाक्टरों को इसका कारण ज्ञात हुआ और उन्होंने रोगी से उन गोलीयों की शीशी को लेकर फेंक दिया।

प्रशीतन द्वारा खाद्य-भंडारण



बनवारीलाल शर्मा

रेफ्रिजेशन की कहानी बहुत पुरानी है— प्रागैतिहासिक काल की। आदि मानव ने शीत के प्रभाव को सर्वप्रथम पहचाना और उसका उपयोग भी किया। उसने देखा कि शिकार करके लाये हुए जिन प्राणियों को गुफा के भीतरी ठण्डे कोनों में पटक दिया जाता था वे अधिक समय तक खाने योग्य रहते थे। इसके विपरीत, जिन्हें गुफा के बाहरी खुले ताप में छोड़ दिया जाता था वे शीघ्र सड़ने लगते थे। कालान्तर में यह ज्ञान विकसित होता चला और मानव ने देखा कि सर्दियों में उसका कार्य सरल हो जाता था। तब वह अपने खाद्य भंडार को बर्फीली चट्टानों तथा हिमाच्छादित सतहों में गड्ढे खोदकर दबा देता था। यों, वह एक बार के संग्रह से महीनों काम चला लेता था। सैद्धान्तिक रूप से रेफ्रिजेशन का प्रारम्भ तब तक हो चुका था।

प्रशीतन आवश्यक क्यों ?

सामान्यतः खाद्य वस्तु पकी अवस्था में हो अथवा कच्ची, यदि उसमें पानी का अंश है तो कुछ ही समय बाद उसके रंग-रूप, स्वाद-सुगन्ध और गुणों में परिवर्तन

होना प्रारम्भ हो जाता है। यह परिवर्तन प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न-भिन्न रहेगा। रोटी हो या डबलरोटी, कच्चा दूध हो या आग, इनमें से कोई सुबह से शाम तक, कोई दूसरे तीसरे दिन खट्टा हो जाएगा, सड़ जाएगा, फेंक देने योग्य हो जाएगा। आम्रिष-आहार का भी यही हाल है। देखा गया है कि सर्दियों की अपेक्षा गर्मियों में यह शिकायत अधिक रहती है। खाद्यपदार्थों की विकृत अवस्था को मुख्यतः निम्न पाँच श्रेणियों में बाँटा जा सकता है : (१) रसीले पकवानों का सूख जाना, (२) फलों आदि का अधिक पक जाना, (३) दूध का फट जाना, खट्टा हो जाना, (४) खुला रहने से चूहे, बिल्ली, मक्खियों तथा चींटियों आदि द्वारा खराब हो जाना, तथा (५) बैक्टीरिया और फन्जई जैसे सूक्ष्माणुओं द्वारा आक्रान्त हो उठना। बैक्टीरिया की प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष उदाहरण दूध को दही, गूँधे हुए आटे को खमीर और शीरे को शराब में बदल देना है।

उपरोक्त पाँच मुख्य दोषों से सुरक्षित रखने के लिए कुछ खाद्य वस्तुओं को भरी प्रकार सीलबन्द, तो कुछ को हवाबन्द

किया जाता है। कुछ को पैक अवस्था में, तो कुछ को खुली अवस्था में काफी निम्न ताप (शीत) पर रखा जाता है। विभिन्न पदार्थों के शीतलांक भिन्न-भिन्न रहते हैं। उदाहरणार्थ, टमाटर, सन्तरे और अंगूर 32°F , केले 43 से 45°F और सेब 37 से 40°F के ताप तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। पकवानों को यदि हिमांक से भी नीचे 32°F तक के शीत में रखा जाए तो सूक्ष्माणु निष्क्रिय हो जाएँगे और पकवानों का कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे।

इसी प्रकार आमिष (meat) का उदाहरण दिया जा सकता है। इंग्लैण्ड में खपने वाले भेड़-बकरों का आमिष हजारों मील दूर न्यूजीलैण्ड से प्रचुर मात्रा में मँगाना पड़ता है। कम से कम दो सप्ताह तो मार्ग में ही लग जाते हैं और पहुँचने के पश्चात् भी दो-तीन महीने रखे रहना पड़ता है। अतः उसके दोष निवारण के लिए प्रारम्भ ही में उसे 5°F पर पैक कर लिया जाता है और स्टीमर के प्रशीतन-कक्ष में ही रख-रक्वाय कर पहुँचाया जाता है। तब तक यद्यपि 6 का ताप बढ़ जाता है, फिर भी उसके स्वाद आदि में अन्तर नहीं हो पाता।

बर्फ की फसलें
आज से २००० वर्ष पूर्व जो चलन था, वही कहीं-कहीं आज भी प्रचलित है। वह कि शीत ऋतु में पहाड़ों पर छायी हुई प्राकृतिक बर्फ को लोग खेतों की फसल की रक्षा के लिए इकट्ठा कर लेते थे और वर्ष के शेष वर्ष दिनों में उसका उपयोग करते थे। प्राचीन मिस्र के शासक और धनिक व्यक्ति विविध उपायों से बर्फ का संग्रह करते थे। उस बर्फ का उपयोग वे विभिन्न पेयों को ठण्डा करने में तथा खाद्य पदार्थों के संरक्षण के लिए करते थे। जहाँ पहाड़ों से बर्फ लाना संभव न होता, वहाँ विस्तृत खेतों में बड़ी-

बड़ी क्यारियाँ बनाकर मिट्टी के चौड़े, खुले मुँह के पानी भरे पात्र लाखों की संख्या में सजा दिये जाते थे। शीत की रातों को उनकी सतह पर बर्फ की जो पतली चादर जम जाती थी उसे उतारकर इकट्ठा कर लिया जाता था।

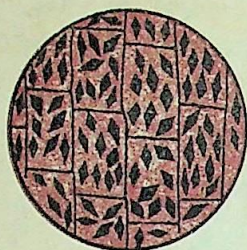
एक दन्तकथा है कि भारत-आक्रमण के दौरान सिकन्दर को जब अपना मदिरा भंडार ठण्डा करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसके आदेश पर सेनापति द्वारा पहाड़ों की ओर दौड़ाये गये हजारों सैनिक पहाड़ों से बर्फ बीन लाये थे।

वह राजसी प्रशीतन मँहगा था

मार्कोपोलो के यात्रा-विवरणों से ज्ञात होता है कि उन दिनों एशियाई देशों में भी बर्फ और बर्फ से ठण्डे किये हुए दूध, आइस-क्रीम, शर्बत आदि वस्तुओं का प्रचलन था, किन्तु राजघरानों तथा धनिकों तक ही सीमित था। जब कभी बर्फ का अभाव होता था तब खाद्य पदार्थों को नमक तथा विशेष मसाले में सुरक्षित रखा जाता था। इस पर भी शीत-संरक्षण के अभाव में जिसे जो वस्तु मन चाहे अवसर पर न मिल पाती थी। बगैर प्रशीतन, फलों का इधर-उधर भेजना संभव ही नहीं था। उन दिनों इंग्लैण्ड का सामान्य नागरिक सन्तरे का चित्र ही देखकर सन्तोष कर लेता था और धनिक व्यक्ति स्पेन पहुँचकर सन्तरे वृक्षों से तोड़कर ताजा खाता था। इन कठिनाइयों से पार पाने के लिए बर्फ का किसी भी प्रकार संग्रह अथवा उत्पादन और भी आवश्यक हो गया।

त्वरित प्रशीतन अधिक उत्तम

खाद्य-पदार्थों को बर्फ द्वारा ठण्डा करने में भी एक सूक्ष्म अन्तर है, यह रहस्योद्घाटन अमरीकन वैज्ञानिक बर्ड्स आई (Birds Eye) ने किया। उसने सिद्ध किया कि किसी खाद्य-वस्तु पर यदि मन्द गति से



(बायें) त्वरित और (दायें) मन्द प्रशीतन का भेद—
त्वरित क्रिया में खाद्यकण तुरन्त जम जाते हैं और
वस्तु का स्वाद अपरिवर्तित रहता है। मन्द क्रिया
में अपेक्षाकृत बड़े खाद्यकणों के स्फटिक बनते हैं जो
कोशिकाओं की दीवारें छिन्न-भिन्न कर देते हैं।
फलतः ऐसी वस्तुओं का स्वाद बदल जाता है और
कहीं-कहीं बिगड़ भी जाता है

कार्य किया भी जाए तो खाद्य-कणों की
कोशाओं में बर्फ के अपेक्षाकृत बड़े स्फटिक
बन जाएंगे। फलतः कोशाओं की दीवारें
टूट जाएंगी और उस द्रव के साथ ही पदार्थ-
रस वह जाने से वह वस्तु बेस्वाद लगेगी।
इसके विपरीत, यदि वस्तु को त्वरित वेग
से जमा दिया जाए तो उसकी कोशाओं में
नन्हे-नन्हे स्फटिक बन जाएंगे। उनमें द्रव्य-
रस भी जम जाएगा और स्वाद में अन्तर
नहीं पड़ेगा।

आधुनिक प्रशीतन रेफ्रिजरेटर द्वारा

खाद्य-प्रशीतन की यह कहानी आदि
युग से आरम्भ होकर आधुनिक युग तक
आयी, तब तक विज्ञान ने मानव को कृत्रिम
हिम अर्थात् बर्फ बनाना भी संभव करा
दिया। पानी की बर्फ के साथ ही सूखी बर्फ
भी अनेक उपयोग में प्रचलित है। सन् १९२०
में बर्फ द्वारा प्रशीतन की प्रथा क्रान्तिकारी
रूप से परिवर्तित हो गयी। उससे पूर्व तक
बर्फ की पेटियाँ, आलमारियाँ तथा बड़े-बड़े
कक्ष केवल कुछ ही बड़े उद्योग संस्थानों तथा
विक्री केन्द्रों तक सीमित थे।

१९२० के क्रान्तिकारी परिवर्तन ने यह
सुलभ कर दिया कि बगैर बर्फ और

बगैर अन्य किसी भंभट के शुष्क विधि
द्वारा ही प्रशीतन संभव हो जाएगा। नये
के दिनों में उन पूर्व प्रचलित बर्फ की पेटियाँ
की बर्फ बार-बार बदलना बड़ा असुविधा
जनक और खर्चीला बैठता था। तिस पा
उसकी क्षमता भी २-३ दिन की ही रहती
थी। अब इस शुष्क प्रशीतन द्वारा बर्फ के
भंभट से तो पीछा छूटा ही, क्षमता भी ते-
तीन गुनी बढ़ गयी। फलस्वरूप रेफ्रिजरेटर
का उपयोग बढ़ गया है।

आज का रेफ्रिजरेटर

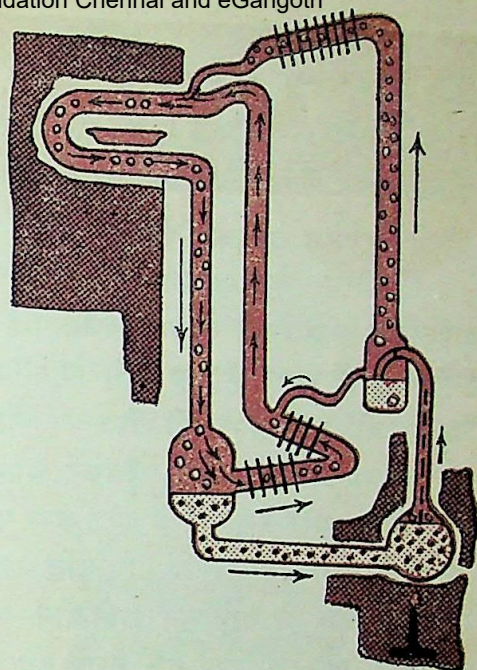
कोई भी द्रव पदार्थ जब वाष्पन द्वारा
वायु रूप में परिवर्तित होता है तब वह अपने
माध्यम का तथा निकट का ताप सोख लेता
है। परिणाम यह होता है कि उनका ताप
गिर जाता है। आप जब नहाकर गीले बदन
खड़े रहते हैं, उतनी देर अधिक ठण्ड से
लगती है उसका यही रहस्य है। जितने देर
से पदार्थ वाष्पित होगा, माध्यम में उतनी
ही अधिक शीतलता उत्पन्न होगी। पानी
की अपेक्षा स्पिरिट में उँगली डुबोक बाहर

आधुनिक गृहोपयोगी रेफ्रिजरेटर



निकाल देखने पर अन्तः प्रसिद्ध हो जाया। इसी सिद्धान्त पर रेफ्रिजरेटर आधारित है। इसमें भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक माइकेल फैरेडे ने (१८८३ में) एक नया तथ्य खोज निकाला कि दाब घटाकर एक ही पदार्थ की वाष्पन-गति को आश्चर्यजनक रूप से बढ़ाया जा सकता है। इसकी उलट फैरेडे ने यह बताया कि किसी भी गैस को उस पर दाब बढ़ाते हुए ठण्डा किया जाए तो वह द्रव्य रूप में परिवर्तित हो जाएगी।

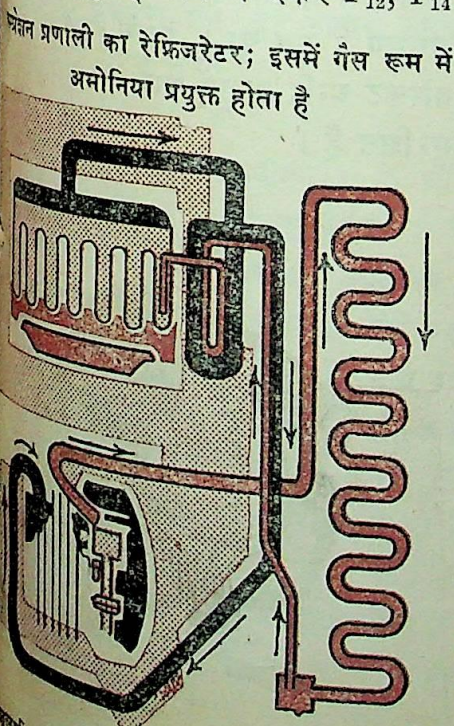
अतः रेफ्रिजरेटर में मुख्यतः यही देखना होता है कि किसी द्रव-माध्यम को जिसे रेफ्रिजरेण्ट (refrigerent) कहते हैं, एक ठण्ड जगह में इस प्रकार रखा जाए कि उस रूप में परिणत होने के पश्चात् भी द्रव्य उड़ न जाए बल्कि पुनः द्रवित होकर बार-बार काम कर सके। ऐसे माध्यमों में अब तक अमोनिया तथा सल्फर डाइआक्साइड का उपयोग होता था। अब विशिष्ट रासायनिक यौगिक, जिन्हें फ्रिऑन (freon) कहते हैं, इतनी अधिक संख्या में प्राप्य हैं कि उनके पृथक्-पृथक् नाम न देकर F_{12} , F_{14}



एम्साप्शन प्रणाली का रेफ्रिजरेटर। इसमें अमोनिया का जलीय घोल प्रयुक्त होता है

आदि संज्ञाएँ दी गयी हैं। इनमें F_{12} , F_{14} तथा F_{114} अधिक प्रचलित हैं। विशेष परिस्थितियों में पानी से भी कार्य किया जा सकता है। वायुयान में तो वायु का ही उपयोग सुविधाजनक रहता है। वैसे इन माध्यमों में शत-प्रतिशत उपयोगी कोई सिद्ध नहीं हुआ है। किसी में कुछ, किसी में कुछ त्रुटि पायी ही जाती है, अतः इस दिशा में प्रयोग अभी जारी हैं। कुछेक माध्यम प्रशीतन की आश्चर्यजनक सामर्थ्य रखते हैं किन्तु उनका प्रभाव विषैला होने से उन्हें उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

रेफ्रिजरेटर कम्प्रेसन विधि का हो अथवा एम्साप्शन विधि का, खाद्य संरक्षण में आज अप्रतिम है। इसी के द्वारा संभव है कि हमें सर्दियों में उत्पन्न न होने वाले आम और गर्मियों में अप्राप्य अमरूद, वर्ष में तीन चार महीने न मिलने वाले आलू और केवल २-३ महीने मिलने वाली मटरफली, जब चाहें तब ताजा हालत में मिल सकती हैं। ●



विचित्र संसार



हाथी टिफिन बाँधकर चलते हैं !

हिमालय के आँचल में बसे हुए दार्जिलिंग के हाथियों की यह विशेषता है। इन्हें ये छूट रहती है कि अपने खाने का जितना बोझा चाहें अपनी पीठ पर लाद कर ले जाएँ। काम पर पहुँचकर अपना बोझा एक ओर रख देते हैं और काम पर जुट जाते हैं। इनमें एक यह बुद्धि बड़ी विलक्षण है कि ये चाहे जब खाने-पीने पर मुँह नहीं मारते। यहाँ तक देखा गया है कि इनका स्वयं का भोजन पास ही रखा होने पर भी उस ओर नजर तक उठाकर नहीं देखते। खाने के लिए भी महावत की आज्ञा लेते हैं। महावत कहेगा, तभी ये खाना शुरू करेंगे।

ये भी शिष्टाचार हैं

तिब्बत में सम्मान-प्रदर्शन अपनी जीभ दिखाकर किया जाता है। अरब प्रदेश में दावत के प्रसंग पर केवल तीन कप काफी एक साथ पी जाती है और तीसरे कप पर संकेत स्वरूप खाली कप एक ओर कर दिया जाता है अन्यथा परिचारकगण तो खाली कप को देखते ही भरने लगते हैं। भोजन के पश्चात् सुगन्धित द्रव का प्याला घुमाया जाता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी दाढ़ी को छुआएगा, ताकि खाद्यकण साफ हो जाएँ और मुख सुगन्धित हो जाए।

सब कुछ एक ही टाँग का !

११वीं शताब्दी में इण्डोचाइना का सम्राट् ली थाई ऐसा ही विचित्र था जिसके यहाँ सभी कुछ एक टाँग का था। एक बार स्वप्न में अपनी इष्टदेवी को एक टाँग की

कटवा दी, बल्कि एक ही टाँग की मूर्ति से विवाह करके उसे रानी बनाया। एक ही टाँग के दरबारियों की कैबिनेट बनायी और एक ही टाँग अर्थात् खम्भे पर नया मन्त्रि खड़ा कराकर उस देवी को भेंट कर दिया

खाने से पहले धोना

यह प्रवृत्ति सफाई-पसन्द व्यक्तियों में तो पायी ही जाती है, एक वन्य पशु भी सूची में आ जाता है। अमरीका में पाए जाने वाला, भेंड़िया-वर्ग का रैकून प्राणी ऐसा ही है। दो फुट के शरीर और दस इंच की पूँछ वाला यह प्राणी अपने शिकार को खाने से पहले भली प्रकार धो लेता है।

नौ मन का आदमी... संसार की सबसे बड़ी वास्कट

ब्रिटेन का डेनियल लेम्बर्ट (१७७०) वृहत् शरीर का अप्रतिम नमूना रहा है। बचपन से ही इसका शरीर बेतरह बढ़ रहा था। जो वास्कट यह पहनता था, वह संसार में सबसे बड़ी थी। इसका वजन लगभग ६ मन था। इसके बैठने की कुर्सी वास्कट आदि वस्तुएँ आज भी संग्रहालय में सुरक्षित हैं।



जहाँ मगर को फाँसते हैं

मलाया देश के मछुए मगर को ऐसी सरलता से फाँसते हैं जैसे काँटे-बंसी से मछली को। किसी भी पर्यटक के लिए मगरों से उफनती हुई वहाँ की नदियाँ शिकार का अच्छा आकर्षण बन सकती हैं। किन्तु वहाँ राज्यादेश द्वारा मगरों की शूटिंग मना है। यह इसलिए कि गोली की घातक नोट खाया हुआ मगर नदी के तले में बैठ जाता है और प्रायः हाथ नहीं आता। इसके विपरीत फाँसे गये मगर की खाल के दाम भी कहीं अधिक उठते हैं।

वहाँ के कुशल शिकारी रातों को बाहर निकलते हैं। वे अपने माथे पर टार्चलाइट बाँध लेते हैं और दो भाले तथा एक रस्से से ही अपना काम कर लेते हैं। एक भाले की मुड़ी हुई नोक में बंसी के काँटे की तरह कोई भी जीव-जन्तु बँधा रखते हैं। बड़ी कुशलता से वे बगैर उसे चोट पहुँचाए, केवल यही करते हैं कि उसका मुँह, उसका घुंघरूँ रस्से से कसकर बाँध लेते हैं। अन्तर्वात् वे धड़क उसे घर लाकर उसका अच्छा मूल्य प्राप्त करते हैं।

यन्त्रपति जगत के ये दानव

कैलिफोर्निया (अमरीका) के अति विशालकाय रेडवुड वृक्षों से मिलते-जुलते सिकोया (*sequoia*) के वृक्ष ऐसे वृहत्काय हैं जो प्रकृति ने बड़ी ही फुर्सत में इन्हें गढ़ा है। मोटाई और मजबूती में अप्रतिम ये वृक्ष सामान्यतः तो २७५ फुट और कहीं-कहीं ३२० फुट के भी पाये जाते हैं। इनके तने का व्यास कम से कम २० फुट रहता ही है, ३५ फुट तक भी देखा जा सकता है। दो फुट मोटी तो इसके तने की छाल होती है। प्रायः ही इन वृक्षों पर आकाशीय बिजली गिरती है लेकिन थोड़ी-बहुत चोट-चपेट बाकर ये उसे भी सह लेते हैं।

साधारणतया २५०० और विशेषतः ५००० वर्ष तक की प्रोप्ति इन वृक्षों में एक-एक वृक्ष इतनी लकड़ी दे सकता है जो ५-५ कमरों वाले १५० मकान बनाने के लिए पर्याप्त होगी।

भविष्यद्रष्टा वानर

यूरोप में अन्तिम पीढ़ी के ये वानर, बारबेरी वानर ही शेष रहे हैं। जंगल-निवासी होते हुए भी ये मनोरंजन तथा



रोमांच का विषय हैं। सबसे बड़ी रोचकता लोगों की इस मान्यता के कारण है कि ज्योंही ये अदृश्य होंगे, त्योंही जिब्रान्टर से ब्रिटिश आधिपत्य उठ जाएगा।

कलियुगी भीम

यूकेन के ओडेसा स्थित स्कूल का एक आठ वर्षीय बाल-छात्र वास्तव में कलियुगी भीम है।

बालक का नाम वित्या है जो आठ ही वर्ष का है मगर लगभग पाँच फुट ऊँचा और १५० पौंड वजन का है। केवल शरीर से ही नहीं, काम-काज से भी ऐसा ही विचित्र है जो मुकाबले में किसी भी हट्टे-कट्टे जवान के दाँत खट्टे कर सकता है। ५०० कि. ग्रा. वजन आसानी से उठा लेना और २०० लिटर पानी भरे पीपे को लुढ़का ले जाना इसके लिए सहज है।



भगवानदास गुप्त

चट्टान का खिसकना भी विनाश का एक स्वरूप है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अन्धड़-तूफान, आकाशीय विद्युत, भूकम्प, बाढ़ तथा आग जैसे प्रलयंकर स्वरूपों में पहाड़ी चट्टान का खिसकना भी सम्मिलित है। पूर्वकाल में इसे 'पहाड़ का चलना' कहते थे। आधुनिक विज्ञान ने यद्यपि इनमें से अनेक आपत्तियों का पूर्वज्ञान प्राप्त करने का साधन बना लिया है फिर भी पहाड़ की कौन-सी चट्टान कब, किस ओर खिसक पड़ेगी यह पहले से ज्ञात कर लेना सम्भव नहीं हो पाया है। हाँ, कुछेक ऐसे प्रयोग किये जा रहे हैं जिनके द्वारा इनसे होने वाली हानियों को घटाया जा सके।

जब चट्टान खिसकती है

अमरीका के पहाड़ी विस्तार हों, यूरोप के आल्प्स पर्वतीय क्षेत्र हों अथवा हमारे हिमालय की ही पर्वत-श्रेणियाँ हों, चट्टानों का खिसकना एक सहज, सामान्य बात बन गयी है। आये दिन चट्टान खिसकने के समाचार प्राप्त होते ही रहते हैं। जहाँ पर्वतों की तलहटी में घनी बस्तियाँ आबाद रहती

हैं, वहाँ चट्टान का खिसकना अत्यन्त विनाशकारी होता है।

चट्टान के खिसकने के कारण, उस क्षेत्र का भौगोलिक स्वरूप ही नष्ट हो जाता है। पर्वत के स्थान पर खाई-खन्दक, समतल स्थान पर गहरा खड्ड, नदियों के मार्ग अवरुद्ध अथवा परिवर्तित तथा नई भीत, नये सरोवरों के निर्माण हो जाते हैं। कहीं पुराने बाँध टूटते हैं, कहीं नये स्वतः बन जाते हैं। बाँध टूटने से जल-प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जाता है। मीलों लम्बा-चौड़ा भूमि क्षेत्र लहराता सागर बन जाता है।

केलिफोर्निया (उत्तरी अमरीका) में २७ मई, १९५८ को लगभग ६०० टन वजन की एक चट्टान ने खिसककर लॉस एंजिल्स को सानफ्रांसिस्को से जोड़ने वाले मार्ग को क्षत-विक्षत कर दिया। भीषण गर्जना के साथ लुढ़कती हुई चट्टान को नीचे आने में दो मिनट से भी कम समय लगा था। वह व्यस्त मार्ग निरन्तर ही यातायात से चलता रहता है। संयोगवश उन पौने दो मिनट के लिए आगे की ओर ट्राफिक सिगनल

बन्द होने के कारण पचास से भी अधिक कारें रुकी हुई थीं उनका वह रुकना ही बचना हो गया अन्यथा भीषण विनाश की कल्पना की जा सकती है ।

दूसरा दृष्टान्त अमरीका के यलोस्टोन पार्क का है जिसमें अनेक पिकनिक पार्टियाँ आनन्दमग्न थीं । अचानक वहाँ एक चट्टान खिसक पड़ी जिसके फलस्वरूप असंख्य जाने लगीं ।

अब तक की ऐसी दुर्घटनाओं में सबसे अधिक विनाशकारी घटना कान्सु (Kansu) की मानी जाती है । १६ दिसम्बर १९२० की रात को भूकम्प की पूर्व सूचना पाकर उस नगर के निवासी पहले से ही घरों के तहखानों और गुफाओं में जा छिपे थे । रात होते ही प्रकृति ने प्रलय का ताण्डव प्रारम्भ कर दिया । धरती काँपी, दरारें पड़ गयीं, गर्म रेत फुफकार कर धरती के अन्तराल से निकली, पर्वत हिल उठे और ओलावृष्टि की गूढ़ चट्टानें टूट-टूटकर बरसने लगीं । नदियाँ क गयीं और वह रुका हुआ पानी जहाँ-तहाँ टूटकर वह निकला तो मार्ग का सभी कुछ बहा ले गया । वह कहानी जब समाप्त हुई तब उसके साथ एक नगरी के महाविनाश और लगभग दो लाख की जनहानि का अंश भी जुड़ चुका था ।

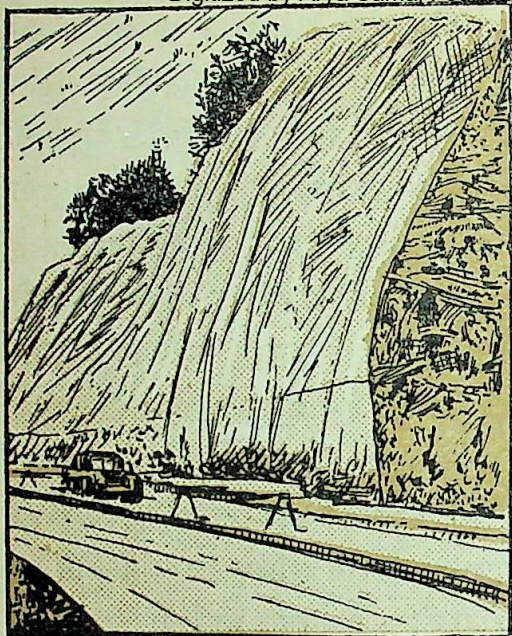
चट्टान क्यों खिसकती है ?
पृथ्वी का आकर्षण-बल, सूर्य का प्रखर ताप, पानी की मार और पवन की फटकार मिल-जुलकर चट्टानों पर धावा बोलते ही रहते हैं । दिन में चट्टानों की परतें तप्त होकर फैली अवस्था में रहती हैं । रात का शीत जब ऊपरी परतों को सिकुड़ने पर बाध्य

करता है तब तक नीचे की परतें अपेक्षाकृत तप्त और फैली अवस्था में रहती हैं । इन दो असमानताओं की खींचातानी में चट्टान कमजोर हो जाती है । इनके अतिरिक्त चट्टान की दरारों में वर्षा का भरा हुआ पानी जब शीत के कारण जमकर फैलता है तब तो भीतरी परतें और भी चटखने-टूटने लगती हैं । इस प्रकार जर्जर होती जाती चट्टानों को गिराने के लिए कभी-कभी तो तेज हवा का झोंका ही काफी होता है ; अन्यथा भूकम्प तथा विस्फोट आदि के धमाके ही प्रायः इन्हें गिराने के लिए उत्तरदायी होते हैं । पहाड़ों को काट-काटकर लम्बे-चौड़े मार्ग तथा रेलवे की सुरंगें और नयी खानें खोदने के लिए डाइनेमाइट जैसे साधनों के उपयोग भी चट्टानों के खिसकने के लिए उत्तरदायी हैं ।

निराशा नहीं, परिश्रम आवश्यक

भू-स्तरों, पर्वतों तथा चट्टानों के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि चट्टानों का खिसकना केवल दिखता ही आकस्मिक है, अन्यथा यह एक अति मन्द और क्रमबद्ध प्राकृतिक क्रिया है । अतः समय-समय पर ऐसे पहाड़ी ढलानों तथा चट्टानों का निरीक्षण आवश्यक है जिनके निकट से यातायात के मार्ग गुजरते हों अथवा बस्तियाँ आबाद हों । प्रायः ही पहाड़ी सड़कों का जगह-जगह फटना, धरती में दरारें दिखना ऐसे लक्षण हैं जिनसे चट्टानों की स्थिति का बराबर अनुमान लगाया जा सकता है ।

चट्टानों को खिसकने से रोका नहीं जा सकता और न उससे होने वाली हानियों को ही यथासंभव घटाया जा सकता है । इसके लिए निम्न कुछेक प्रयोग किये जा रहे हैं ।



तार की जाली

यह हास्यास्पद तो लगेगा कि तार की जाली से चट्टान को रोका जा सकेगा।

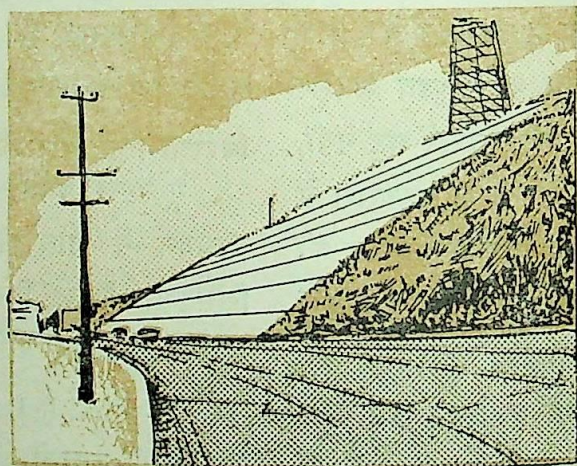
ढीली-ढाली चट्टान को कंक्रीट का ओवरकोट पहना देने से वह जल्दी नहीं गिरती

एक इंजीनियर प्रयोगकर्ता ने इसके लिए चट्टान से सटी हुई ही एक चौड़ी और गहरी खाई भी खोद रखी है। चट्टान जब खिसकेगी तब एकाएक ही मार्ग पर सामने की बजाय मोटे तारों की जाली के सहारे सरकती हुई खाई में जा गिरेगी।

दूसरे प्रयोगस्वरूप एक ऊबड़-खाबड़ ढलान पर कंक्रीट की मोटी तह जमाकर ऐसी स्थिति में की जा सकती है कि वह अस्थिर न रहकर अपने स्थान पर जमी रहे।

एक तीसरे प्रयोग में रेतीले ढलानों के

धातु की मोटी चट्टानों द्वारा भी चट्टान को खिसकने के खतरे से बचाया जा सकता है



आगे धातु निर्मित मोटी चट्टानों की दीवारों की खड़ी की गयी है ताकि यदि वह दीवार धसक भी पड़े तो नीचे के मुख्य मार्ग में बाधा उपस्थित न हो।

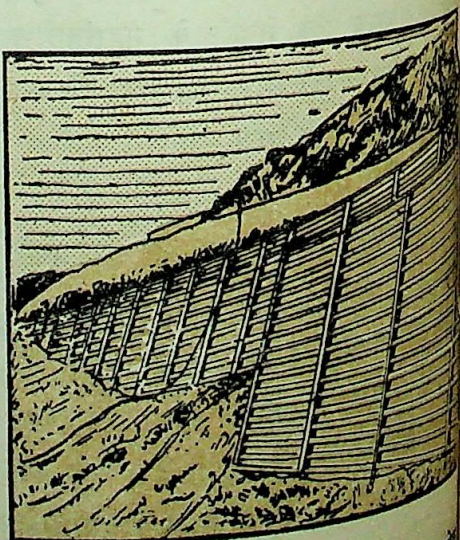
इतना सब होते हुए भी ये पूर्ण सुरक्षा के साधन नहीं कहे जा सकते। जापान तथा अमरीका के इंजीनियरों ने ऐसे कम्पनलेखी बनाये हैं जो अस्थिर चट्टानों की स्थिति का

जाली लगे रहने से चट्टान खिसककर भी सरक कर बगल की खाई में ही गिरती है, सड़क पर नही

बराबर ज्ञान कराते रहते हैं। रेल की सुरक्षा हो, अथवा मोटरमार्ग हो, ऐसे ढलानों के दोनों ओर सिगनल लगे रहेंगे जिन्हें वह कम्पनलेखी स्वयं संचालित करता रहेगा। ज्यों ही किसी चट्टान के खिसकने की घड़ी निकट

आएगी, दोनों ओर के सिगनल यातायात को रोक देंगे।

आशा है, इन प्रयत्नों से तथा अन्यान्य नवीन आविष्कारों की सहायता से चट्टानों के खिसकने के प्रति पर्याप्त सुरक्षा अनुभव की जा सकेगी।





विज्ञान
क्लब



बारे बच्चो !

जुलाई आ रही है। तुममें से अधिकांश नयी कक्षा में आ गये होंगे। विज्ञान-लोक तुम्हारे प्रगति पथ पर बढ़ने की कामना करता है। कुछ लोगों के पास असफलता न बहने पर भी अपने आप आ गयी, परन्तु हममें निराश होने की कोई बात नहीं। यदि तुमसे काम लो, अगले वर्ष आशा के दीप जलेंगे।

मुझे बड़ी खुशी है कि तुम्हारे क्लब के सदस्यों की संख्या दिन प्रतिदिन तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। इसमें सभी को लाभ प्राप्त है, सभी का स्वागत है।

छुट्टियों भर खूब खेल-कूद और ग्राम के खेलों में मन लगा होगा। तुम सोच रहे होगे खली स्कूल खुलें और तुम नयी खुशियों, नयी आशाओं और नयी उमंगों के साथ नए विद्यालय में पहुँचो।

विज्ञान-लोक का नया अंक तुम्हारे पास है। इसकी नवीनता बड़े, इसमें तुम लोगों के सहयोग की आवश्यकता है। तुम्हारे सस्य प्रशंसा पत्रों में प्राप्य प्यारी सामग्री की प्रगति स्तम्भ की सीढ़ी है। करो और तुम्हारी कलम से तुम्हारे अपने स्तम्भ हैं। इनका प्रकाशन अब नियमित रूप से हो रहा है जिसे तुम देख ही रहे हो।

इनाम लो के उत्तर कभी-कभी अंग्रेजी में आ जाते हैं। कितना अच्छा हो यदि तुम लोग उत्तर हिन्दी में ही लिखो।

पुरस्कार निर्णय की विधि वहा है जो सर्वमान्य है। अर्थात् सर्वशुद्ध अथवा निकटतम शुद्धपूति पर प्रथम और क्रमशः शुद्धपूतियों पर द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार। प्रत्येक श्रेणी के पुरस्कार की कुल राशि वही रहती है जो विज्ञप्त की जाती है और वह कुल राशि विजेताओं में बराबर-बराबर वितरित की जाती है।

यह अंक कैसा लगा और क्या-क्या पसंद आया? अपनी रुचि लिखो। तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में,

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४० के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गोपालमाधव (२३७६) मेरठ, कु. चित्रा गुप्ता (३७००) मेरठ, प्रकाश जोशी (६११३) अजमेर।

द्वितीय पुरस्कार

रामनाथ गुप्त (१३१७) दिल्ली, गजेन्द्रपाल सिंह (१६०५) मेरठ, कौशलकिशोर अग्रवाल (६५७३) नेतरहाट।

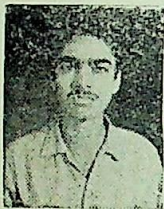
तृतीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र अग्रवाल (११५७) आगरा, बन्नी-प्रसाद जोशी (४२६३) टवलई, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, जगदीशप्रसाद गुप्त (६६१६) कानपुर, विद्योतमकुमार चोपड़ा (७२०६) जोधपुर, धर्मीचन्द जैन (७२३३) पीसांगन, पुरुषोत्तमकुमार सूरि (७३४१) जगदलपुर, सुधीर राव (७५००) इन्दौर, नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा, मंजु अग्रवाल (८१७६) इलाहाबाद, माया देवी (८६०४) कानपुर।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४२



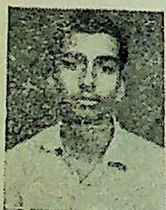
कौशलेन्द्रप्रसाद
(स. सं. ५८५)



अलखनिरंजन
(स. सं. १८३६)



रवीन्द्रकुमार
(स. सं. ३८४७)



श्यामसुन्दर
(स. सं. ३६०६)



ब्रजेश्वरप्रसाद
(स. सं. ३६७२)

६४४२ भूपेन्द्र सिंह (१६) अलवर, ४३ टीकमदास (१६) पोलीभीत, ४४ अशोक कुमार (१३) सुल्तानपुर, ४५ स्वतन्त्र कुमार (१३) सुल्तानपुर, ४६ गोपाल प्रसाद (१६) मुजफ्फरपुर, ४७ आनन्द किशोर (१७) सुपौल, ४८ विनोद (१७) अलीगढ़, ४९ ओमप्रकाश (१८) विजनौर, ५० सुरेशचन्द्र (१६) विजनौर, ५१ अंजनीकुमार (११) भागलपुर, ५२ कु. आशा श्रीवास्तवा (१२) आगरा, ५३ रणजीतसिंह (१४) संगरिया, ५४ लाजपतराय (१२) वाराणसी, ५५ तिलकचन्द (१५) दिल्ली, ५६ अशोक-कुमार (१३) भंभारपुर, ५७ परमजीतसिंह (१३) आगरा, ५८ श्यामसुन्दर (१४) संगरिया, ५९ नारायण (१७) अजमेर, ६० सुरेन्द्रप्रकाश (८) किशनगढ़, ६१ रामाश्रय (१०) नैनी, ६२ अनिल (१२) छपरा, ६३ अजयप्रकाश (१६) लखनऊ, ६४ जुगल-किशोर (२०) लखनऊ, ६५ प्रबोधचन्द्र (१७) मेरठ, ६६ हरीश-चन्द्र (१६) पिथौरागढ़, ६७ विनयकुमार (१५) गोरखपुर, ६८ लालता प्रसाद (१५) आगरा, ६९ कैलाशचन्द्र (१७) इन्दौर, ७० कु. उषा गुप्ता (१५) लुधियाना, ७१ धीरेन्द्रकुमार (१५) उदय-पुर, ७२ अरुणकुमार (१४) चण्डीगढ़, ७३ रामचन्द्र (१६) सीथल, ७४ शान्तिलाल (१६) उदयपुर, ७५ शिवनाथ (१७) रामनगर, ७६ सन्तोषकुमार (१५) भोपाल, ७७ चन्द्रप्रकाश (१८) फर्रुखाबाद, ७८ श्रीकान्त (१६) इलाहाबाद, ७९ अरुणकुमार (१६) इलाहाबाद, ८० कु. वीनू (१५) फतेहगढ़, ८१ वीरेशकुमार (१४) पटना, ८२ प्रमोदकुमार (१२) पटना, ८३ रवीन्द्रकुमार (१६) शिकोहाबाद, ८४ वीरेन्द्रकुमार (१६) भोपाल, ८५ जीतपालसिंह (१४) गोंडा, ८६ सुशील (१४) सुल्तानपुर, ८७ शंकरसिंह (१८) धार, ८८ अनिलकुमार (१२) फतेहगंज, ८९ कु. शोभा (१५) कटनी, ९० ओमप्रकाश (१२) कटनी, ९१ गोविन्दनारायण (१२) सहारनपुर, ९२ गणपतलाल (१५) दवेर, ९३ सुरेन्द्रकुमार (१२) अजमेर, ९४ हरिहर प्रसाद (११) कटरास-गढ़, ९५ सुशीलकुमार (१४) सतना, ९६ अमिताभकुमार (१४) सुपौल, ९७ कु. वीनारानी (५) इलाहाबाद, ९८ शिवशंकर (१३) मुजफ्फरपुर, ९९ हरसुखलाल (१६) रायपुर ६५०० प्रभातकुमार (१२) लखनऊ, १ कु. इरा (१२) सहरसा, २ गोविन्द (१६) दरियापुर, ३ सन्तोषकुमार (१०) गोरखपुर ४ छगनलाल (१६) कलकत्ता, ५ विनोदकुमार (१५) विसौली, ६ सतीशकुमार (१६) जोधपुर, ७ सुशील (१२) रांची, ब्रजेशकुमार (१४) महुई, ८ जगदीशनारायण (१६) मधेपुर, १० सतीशकुमार (१५) नौतनवां, ११ गोविन्ददास (१८) भोपाल, १२ मिथिलेशकुमार (१५) दरभंगा, १३ राजेन्द्रप्रसाद (१५) वाराणसी, १४ विनोदकुमार (११) महुई, १५ विनोदकुमार (१४) कलकत्ता, १६ जीवनलाल (१७) कदमा, १७ नारायण (१५) आदीपुर, १८ जितेन्द्रकुमार (१४) इन्दौर, १९ वी० वेंकटराव (१३) कलकत्ता, २० चैनसुख (१७) फलोदी, २१ सुभाषकुमार (१५) देहरादून, २२ अभयकुमार (१२) राजनन्दगाँव, २३ जवाहरलाल (१५) रांची, २४ नरेन्द्र-कुमार (१८) नगीना, २५ नरेन्द्रसिंह (१५) अल्मोड़ा, २६ श्यामराव (१६) रायपुर, २८ कैलाशचन्द्र (१६) आलिराजपुर, २९ मिश्रीलाल (१७) चिचौली, ३० अशोककुमार (१३) भोपाल, ३१ प्रेमबाबू (१३) आजमगढ़, ३२ मोहनलाल (१७) जयपुर,



सुरेश
(स. सं. ४६११)



विद्यापति
(स. सं. ५६११)



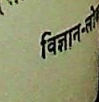
दीनदयाल
(स. सं. ६२११)



देवाशीष
(स. सं. ६२११)



सजनकुमार
(स. सं. ७१११)



३३ साहबप्रसाद (११) आगरा, ३४ कैलाशचन्द (१३) पिपरिया,
 ३५ शम्भूदयाल (१४) पिपरिया, ३६ खलील अहमद (१६)
 गडवारा, ३७ अखिल चोपड़ा (१३) नयी दिल्ली, ३८ वेचन (११)
 नेतरहाट, ३९ रमेशशंकर (१४) पटना, ४० प्रेमसिंह (१७) पूरन-
 पुर, ४१ राजेन्द्रकुमार (१७) पीलीभीत, ४२ बाबूसिंह (१७)
 पीलीभीत, ४३ वेदप्रकाश (१५) पीलीभीत, ४४ हरेन्द्रकुमार (१४)
 पीलीभीत, ४५ विनोदकुमार (१६) पीलीभीत, ४६ प्रेमकुमार
 (१५) चुरू, ४७ राजकुमार (१७) रायपुर, ४८ राकेशकुमार (१२)
 लश्कर, ४९ कु. मंजुला (९) लश्कर, ५० अनिलकुमार (११)
 चित्तौड़गढ़, ५१ रामदास (१७) आजमगढ़, ५२ काशीनाथ (१७)
 मुरारपुर, ५३ रवीन्द्रनाथ (१३) सिहूका, ५४ भानुप्रताप (१३)
 सिहूका, ५५ बालमुकन्द (११) नेतरहाट, ५६ विजेन्द्रनाथ (१२)
 ग्वालियर, ५७ कुलभूषण (१६) लुधियाना, ५८ मिथलेशकुमार
 (१०) पटना, ५९ नाथूलाल (२०) सिंगोली, ६० वृजमोहन (१७)
 वकानी, ६१ राजकुमार (१३) खेलारी, ६२ शिवचरण (११)
 सिहोर, ६३ उमानाथ (१३) पटना, ६४ नारायणलाल (१४)
 जयपुर, ६५ रमेशलाल (१४) महादेव स्थान, ६६ मनहर पारिख
 (१६) पूना, ६७ भगवानदास (१३) सीथल, ६८ लक्ष्मणसिंह
 (१४) आसीन्द, ६९ एम. प्रसादराव (१६) आद्रा, ७० राम-
 गोपाल (१८) करौरा, ७१ नचिकेता (१०) वाराणसी, ७२
 सरोजकुमार (१३) गोलमुरी, ७३ कौशलकिशोर (१२) नेतरहाट,
 ७४ भंवरलाल, (१८) आसीन्द, ७५ गौतमप्रकाश (१३) पटना,
 ७६ कु. शुभा (११) पटना, ७७ कु. मृदुला (१२) डीडवाना, ७८
 जगतनारायण (१६) बम्बई, ७९ विजयकुमार (१०) बम्बई, ८०
 देवेन्द्रप्रसाद (१४) सहरसा, ८१ महावीरप्रसाद (१६) श्रीगंगानगर,
 ८२ योगेन्द्रकुमार (१६) बम्बई, ८३ कु. रागिनी (११) चान्द-
 चौरा, ८४ सतीशचन्द्र (१५) फिरोजाबाद, ८५ सतीशकुमार (१२)
 बम्बई, ८६ अरविन्दकुमार (१५) भाँसी, ८७ वसंतराव (१७)
 रायपुर, ८८ कृष्णनारायण (१७) लश्कर, ८९ रामचरण (१७)
 लश्कर, ९० हर्षदकुमार (१२) बम्बई, ९१ लाखनसिंह (१५)
 अम्बाह, ९२ द्वारकाप्रसाद (१४) बम्बई, ९३ कु. दयारानी (८)
 लखनऊ, ९४ स्वतंत्रकुमार (१२) मुल्तानपुर, ९५ अरुणकुमार
 (१२) सीकर, ९६ चन्द्रभूषण (१६) तेइवारा, ९७ रमेशचन्द्र
 (१३) शमसाबाद, ९८ कामतानाथ (१४) सतना, ९९ रतनचन्द्र
 (१८) इटारसी, ६६०० कु. स्वर्णेंद्र (१५) विहपुर, १ रंजन (१७)
 रुड़की, २ रमेशचन्द्र (१८) राजगढ़, ३ अनिलकुमार (१२)
 कानपुर, ४ विजयशंकर (१८) वाराणसी, ५ त्रिलोकसिंह (१५)
 आद्रा, ६ कान्तिकुमार (१५) खुरई, ७ कुमारी विमला (१३)
 लाडनूँ, ८ कुमारी प्रसवा (१०) लाडनूँ, ९ रवीन्द्रप्रकाश (१६)
 मन्दसौर, १० गुरुदास (१६) बीकानेर, ११ लक्ष्मीनारायण (११)
 लश्कर, १२ विनोदकुमार (१३) सारंगपुर, १३ पी. सूर्यराव
 (१४) आद्रा, १४ अनुपकुमार (१०) लश्कर, १५ जनरंजन
 (१३) नागपुर, १६ जगदीशप्रकाश (१४) कानपुर, १७ जगदीश-
 चन्द्र (१६) बीकानेर, १८ महेन्द्रप्रताप (१६) सीथल, १९ सुरेश-
 प्रकाश (१४) किशनगढ़, २० टेकचन्द (१६) भाटपारा, २१
 रमेश कमरानी (१६) भोपाल, २२ श्रीराम (१६) इटारसी, २३
 राजेन्द्रप्रसाद (१७) सिंहनान, २४ विद्याप्रकाश (१८) थानेसर
 २५ सुमेरचन्द्र (१५) थानेसर, २६ अमृतलाल (१४) रायपुर,
 २७ खुशपाल (१४) कानपुर, २८ प्रेमचन्द (२२) मंभेड़ा शुकरू।



मोतीलाल
(स. सं. ७६२६)



पुरुषोत्तमदास
(स. सं. ८२२८)



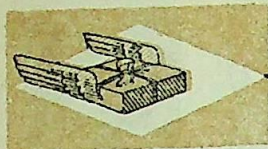
ललितकुमार
(स. सं. ८२५४)



कृष्णदेव
(स. सं. ८३७७)



जगजीतसिंह
(स. सं. ८४२१)



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की गुण
२० रु. की गुण
१५ रु. की गुण

अन्तिम तिथि : ३१ जुलाई

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखें। पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४२ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। ३१ जुलाई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४२ के प्रश्न

- चाँदनी रात में प्रकाश होते हुए भी विभिन्न रंग स्पष्टतः क्यों नहीं दिखते ?
- लारेन्सियम (Lawrencium) क्या है, इससे सम्बन्धित व्यक्ति का नाम क्या है ?
- प्रायः पानी उबालने वाले बर्तनों के अन्दर की ओर सफेद धारियाँ (scales) क्यों जम जाती हैं ?
- ल्यूटाइन-बेल (Lutine Bell) क्या है ?
- तीव्र वेग से घूमती हुई वस्तु का गतिमान अवस्था में ही सूक्ष्म निरीक्षण किस यन्त्र के द्वारा किया जा सकता है ?
- B. T. U. की व्याख्या कीजिए।
- प्राणि-विज्ञान का पिता किसे कहा है ? उनका जीवनकाल किन वर्षों में रहा है ?
- सामान्य टिड्डी (Grasshopper) पिछले पाँवों में जो एक अतिरिक्त अंग और होता है, वह किस काम आता है ?
- धनवैशित (positive) ऐलेक्ट्रॉन क्या कहते हैं ? इसकी खोज किसने की ?
- खलासियों की पेंड के पाँचों ओर चौड़े क्यों रखे जाते हैं ?

प्रतियोगिता संख्या ४० के प्रश्नों के उत्तर

- इंग्लैण्ड से अमरीका तक वायरलेस संवाद १२ दिसम्बर १९०१ को भेजा गया था।
- रसायन में इसे ट्राइप्लम्बिक टेट्राक्साइड (triplumbic tetraoxide) कहते हैं। इसका व्यावसायिक नाम रेड लेड (red lead) है। इसका उपयोग मुख्यतः पाइपलाइन जोड़ने में तथा फ्लिंट शीशा (flint glass) बनाने में होता है।
- इस्पात की गेंद की उछाल और वेग रबर की अपेक्षा कहीं अधिक होगा, क्योंकि इसकी स्थितिस्थापकता अप्रतिम है। अतः इसकी दबी हुई सतह बहुत शीघ्र मूल अवस्था में आ जाती है।
- सूर्य द्वारा विकीरित पराबैंगनी रश्मियाँ पृथ्वी तक आते-आते पर्याप्त मात्रा में वायुमण्डल द्वारा शोषित हो जाती हैं जबकि ऊँचे पर्वत-शिखरों पर ये काफी शक्तिशाली रहती हैं। इनकी चमक से आँखें खराब हो जाती हैं। यही हिमान्धता है। अतः पर्वतारोहियों के लिए उचित चश्मे (goggles) के अभाव में ये रश्मियाँ बड़ा संकट उत्पन्न कर देती हैं। कभी-कभी तो प्राणसंकट तक उत्पन्न हो जाता है।
- दक्षिण तथा मध्य अमरीका में पाये जाने वाले इन तोतों को मैको (macaw) कहते हैं।
- सर्वप्रथम चार उपग्रह ज्ञात किये जा चुके थे। नाम हैं—इयो (Io), यूरोपा (Europa), गैनिमीड (Ganymede) तथा कैलिस्टो (Callisto)।
- अन्तरिक्ष-यान के लिए एक नवविश्व इंजन का नाम है। यह इंजन एक कोष में जल आयनीकृत नत्राति परमाणु को एक पतली टोती दबाकर इतनी तीव्र गति से निकालता है कि प्रवेगिक दबाव उत्पन्न हो जाता है।
- सन् १६६२ में क्रिस्टोफर रैन तथा बायल के सहयोग से स्थापित।
- मिस्र देश की नील नदी पर, अरबिक संसार का विशालतम बांध बनकर तैयार होना।

आपके प्रश्न



प्रमरनाथ अग्रवाल (८६१६) सीतापुर

प्रश्न—सेक्रीन जैसी चीनी से भी सौगुना अधिक कितने वस्तु के लिए किसका आभार मानें ?

उत्तर—सौ गुनी नहीं, ५०० गुनी ! रेमसेन और फाल्वर्ग नामक दोनों रसायनज्ञों का आभार माना जाएगा । सल्फोनिक अम्लों के आवसीकरण के प्रयोग करते-करते एक दिन उन्होंने देखा कि खाने-पीने की जिस चीज से उनका हाथ छुआ, वही बेहद मोठी हो गयी ! वहीं उन्हें सेक्रीन का सूत्र हाथ आया था ।

पुनमोहन खरे (१७२३) सागर

प्रश्न—चोट लगने पर तुरन्त इतनी पीड़ा का अनुभव नहीं होता जितना कि वाद में । ऐसा क्यों ?

उत्तर—सामान्य चोटों में यह बात नहीं । बड़ी चोट में कुछ देर के लिए तंत्रिका-संस्थान सुन्न पड़ जाता है जिसके कारण पीड़ा का विशेष अनुभव नहीं होता । ज्ञानतन्तु पुनः सक्रिय होने पर पीड़ा अनुभव होता है ।

पारसकुमार (३६२२) ब्यावर

प्रश्न—जानवरों को भी दाँत के डाक्टर की सहायता पड़ती है क्या ?

उत्तर—जी हाँ !

रवीन्द्र (२१४८) गुरुकुल कांगड़ी

प्रश्न—पेणोग्राफ किस काम आता है ।

उत्तर—प्लान, नक्शे आदि की छोटी या बड़ी प्रतियाँ बनाने के काम आता है । सीधी-सादी प्रतियों को विशेष आकृति (सीधे पर उलटा) में इस प्रकार जोड़ा जाता है कि प्रतियों पर वे घूम सकें ।

गंगापुर (५००६)

प्रश्न—गरम कपड़ों में रखी हुई फिनाइल की प्रतियाँ घूमती तो दिखती नहीं, अदृश्य कैसे हो जाती हैं ?

उत्तर—ऊर्ध्वपातन (sublimation) के कारण ।

प्रश्न—डामर (कोलतार) किस अवस्था में, कहाँ पाया जाता है ?

उत्तर—ट्रिनिडाड (अमरीका) के दक्षिण-पश्चिमीय विस्तार में पिच-लेक (Pitch Lake) से यह 'एस्फाल्ट' के नाम से प्राप्त होता है । युग-युगों से भूमिगत द्रव-पेट्रोल तथा हाइड्रोकार्बन (कार्बन हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा गन्धक) के मन्द आक्सीकरण के फलस्वरूप यह बनता रहता है । इसके उपयोगों की शृंखला बहुत लम्बी है ।

अजयप्रतापसिंह (६०७८) इलाहाबाद

प्रश्न—क्या यह सत्य है कि नीम व बबूल की दातून से दाँतों का पायरिया, खून गिरना तथा हिलना आदि बन्द हो जाता है ?

उत्तर—नीम प्रबल कीटाणुनाशक है और बबूल दाँतों को मजबूत करता है । सावधानीपूर्वक नित्य नियम से दातून की जाए तो ये रोग होंगे ही नहीं । रोग हो जाने पर दातून से तो उलटे दाँतों की जड़ें कमजोर हो सकती हैं । अतः सत-नीम, सत-बबूल तथा अन्य ओषधियोंयुक्त उत्तम मंजन, फिटकरी के कुल्ले तथा पोटाश परमेगनेट (लाल दवा) के प्रयोग से अवश्य लाभ होगा ।

सरस्वती दयासिंह (७१७३) गोरखपुर

प्रश्न—पौधे केवल मिट्टी से ही पोषण प्राप्त करते हैं, ध्याख्या कीजिए ।

उत्तर—ब्रुसेल्स (जर्मनी) के वान हेल्मण्ट (Van Helmont) ने इस भ्रम को मिटाया था । अपने प्रयोगों के अन्तर्गत उसने एक गमले में मिट्टी की तौली हुई मात्रा ली और उसमें एक नवांकुरित पौधा तौलकर जमा दिया । रोजाना सींचते-सींचते जब वह पौधा पुष्ट और विकसित हो गया तब उस मिट्टी का पानी सुखाकर पुनः तौला तो मिट्टी के भार में नगण्य तथा पौधे के भार में उल्लेखनीय वृद्धि पायी गयी ।

अनवर आलम (६६८४) गोरखपुर

प्रश्न—शुक्रग्रह से आती हुई रेडियो-तरंगों का पता सबसे पहले किसने लगाया ?

उत्तर—ओहायो (Ohio) विश्वविद्यालय के क्राउस महाशय ने, १९५६ में ।

हरिदचन्द्र (१९७०) सहारनपुर

प्रश्न—फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त (Phlogiston Theory) क्या है ? इसका प्रतिवाद किसके द्वारा, किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—बेकर (J. J. Becher) तथा स्टाल (G. E. Stahl) ने प्रारम्भ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि जलने की क्रिया में प्रत्येक वस्तु अपने माध्यम को अथवा वायुमण्डल को कुछ न कुछ देती अवश्य है, अर्थात् कुछ खोती ही है। उस 'कुछ न कुछ' का उस समय काल्पनिक नाम फ्लॉजिस्टन ही रख दिया गया। बाद में लवाशिये (Lavoisier) ने पारे पर अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि आक्सीकरण की क्रिया में पारे ने आक्सीजन प्राप्त करके कुछ खोने के बजाय पाया ही है, क्योंकि जलने के फलस्वरूप उसके भार में वृद्धि पायी गयी। तभी उस पूर्व के सिद्धान्त का खण्डन हो गया।

नारायणदास अग्रवाल (५६४४) रायगढ़

प्रश्न—एपोलोनियस कौन था और किस लिए प्रसिद्ध था ?

उत्तर—यूक्लीड और आर्कमिडीज के स्तर का महान् गणितज्ञ, ईसा से २५० वर्ष पूर्व एपोलोनियस रेखागणित का प्रणेता था। इसी ने रेखागणित का साध्य ५२ प्रतिपादित किया था।

प्रमोदकुमार (८५०६) उत्तर काशी

प्रश्न—पक्षाभ (Cirrus) शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—भाँति-भाँति के मेघ समूहों में से एक का यह नाम है। पृथ्वी की सतह से ऊपर १८ हजार से ४० हजार फुट तक इनका विचरण-क्षेत्र रहता है।

ए. के. सूर (६७०६) रायपुर

प्रश्न—अम्बरग्रिस क्या है, कहाँ पायी जाती है ?

उत्तर—मन्द सुगन्धयुक्त मोम जैसा पदार्थ है जो अधिकतर स्पर्मव्हेल के शरीर में पाया जाता है। यह भी माना जाता है कि यह स्क्वीड के कण्ठ-भाग में होता है और वह स्पर्मव्हेल का प्रिय आहार है। इत्र के उद्योग में यह विशेषतः काम आता है।

श्रवणकुमार (१३००) दिल्ली

प्रश्न—एक औसत चिड़िया वर्ष भर में कितना अनाज खा सकती है ?

उत्तर—लगभग ३ किलोग्राम।

प्रदीपचन्द्र (६८६८) महासमुन्द

प्रश्न—टेरीलीन क्या है ? क्या इसका प्रयोग शरीर के लिए हानिकारक है ?

उत्तर—यूरोप में सर्वप्रथम १९४१ में इसका प्रयोग प्राप्त किया गया। मेथिल टरीथेलेट (Methyl Terephthalate) तथा एथिलीन ग्लाइकोल (Ethylene Glycol) से इसके तार बनाये जाते हैं। अमरीका में इसीको डेकान कहते हैं। शरीर के लिए यह हानिकारक इस अर्थ में है कि इससे त्वचा का वाष्पन रुक जाता है और यह नाइलॉन से भी अधिक और त्वरित ज्वलनशील है। इसे पहने हुए आग से दूर रहना चाहिए। इससे तारों का गलनांक 285°C है।

त्रिलोकीनाथ पाण्डे (७३७१) पयागपुर

प्रश्न—हर्टिजियन तरंगें (Hertizian waves) क्या हैं ?

उत्तर—हर्टिजन ने पुरोगामी वैज्ञानिक मैक्स वेल के इस सिद्धान्त का अपने प्रयोगों द्वारा १८८७ में समर्थन किया था कि विद्युत चुम्बकीय तरंगों की गति प्रकाश की गति के लगभग ही है। यह सिद्धान्त रेडियो-विज्ञान में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी से मारकोनी तथा अन्य वैज्ञानिकों ने तार उठाया है।

रवीन्द्रनाथ वर्मा (६६८५) वाराणसी

प्रश्न—रेडियम सबसे अधिक कहाँ और किस वस्तु से प्राप्त की जाती है ?

उत्तर—अधिकतर अमरीका की केरोलोना तथा आटोनाइट खानों से निकलते पिचब्ले (यूरेनियम का एक आक्साइड) नामक खनिज पदार्थ से प्राप्त की जाती है। लगभग ६ टन पिचब्ले से केवल १ ग्राम रेडियम प्राप्त हो सकती है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

पानी की तुला

बनाइए

रवि लाटू

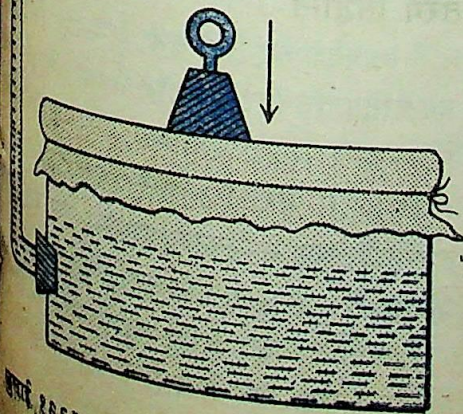
आवश्यक सामग्री—समकोण पर मुड़ी शीशे की एक नली, टीन का डब्बा, रबर की चादर का एक टुकड़ा, थोड़ा-सा पानी, एक ग्राम का बाँट तथा एक कार्क ।

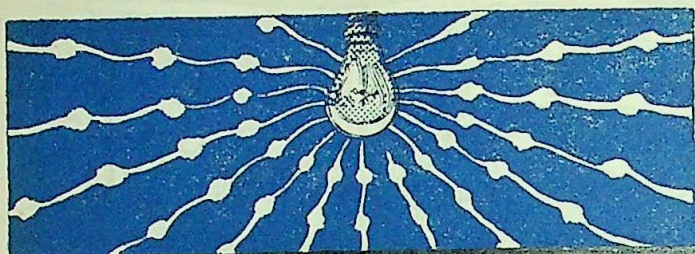
बनाने की विधि—सर्वप्रथम टीन के डब्बे में एक छेद करके उसमें कार्क लगायें । कार्क के चित्रानुसार समकोण पर मुड़ी हुई शीशे की नली लगाकर जोड़ पर लाख आदि कोई ऐसा पदार्थ लगा दें जिससे वह स्थान गुरु-रुद्ध हो जाए । नली लगाने के उपरांत डब्बे का पौन भाग पानी से भर दें । अब डब्बे के मुँह पर रबर की चादर का टुकड़ा इस तरह मजबूती से बाँधें कि हवा एक ओर

से दूसरी ओर आने-जाने न पाये । साथ ही स्थिरावस्था में नली में पानी की ऊँचाई को चिह्नित कर दें । बस, आपकी तुला तैयार है । अब इसको चिह्नित करना शेष है ।

चिह्नित करने के लिए रबर की चादर पर १ ग्राम का बाँट रखते हैं जिससे वह कुछ दबती है । इससे डब्बे की हवा पर दबाव पड़ता है और हवा पानी पर दबाव डालकर उसे नली में कुछ ऊँचाई तक चढ़ा देती है । नली में पानी की सतह स्थिर हो जाने के बाद उस ऊँचाई को पुनः चिह्नित कर लेते हैं । भार हटा लेने पर पानी की सतह गिरकर अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाती है । दोनों चिह्नों के बीच के भाग को दस बराबर भागों में बाँट दिया जाता है । इस तरह रबर के लोच की सीमा देखकर उस पर क्रमशः भारी बाँट रखे जा सकते हैं और नली पर बड़ा स्केल भी बनाया जा सकता है ।

भार ज्ञात करना—इस तुला के द्वारा जिस वस्तु का भार निकालना हो उसे रबर की चादर के ऊपर रख देते हैं और नली में पानी की सतह का निरीक्षण करते हैं । मान लीजिए नली में सतह छः चिह्न ऊपर उठी तो उस वस्तु का भार ६ मिलीग्राम हुआ । इस प्रकार इस तुला से हलकी वस्तुओं का भार बड़ी सुगमता से ज्ञात हो जाता है । ●





प्रकाश का रूप

आश्विन बो. राम (स. सं. ३४५७)

यह कौन नहीं जानता कि प्रकाश जीवन के लिए महत्वपूर्ण है? केवल कुछ जीवाणु उसके अपवाद हैं। प्रकाश में उपस्थित अल्ट्रावायलेट किरणों के कारण ही पेड़ पौधों में प्रकाश संश्लेषण संभव होता है। विटामिन डी के निर्माण में भी यह सहायक है। कुछ रासायनिक क्रियाएँ प्रकाश की अनुपस्थिति में असंभव हैं। वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में अनेक सफल अनुसन्धान किये हैं।

प्रकाश के रूप की व्याख्या में दो सिद्धान्त मुख्य हैं। कणिका निःसरण सिद्धान्त (Corpuscular theory) और तरंग सिद्धान्त (Wave theory)।

कणिका निःसरण सिद्धान्त

सर आइजक न्यूटन इस सिद्धान्त के प्रवर्तक थे। उनके मतानुसार प्रदीप्त वस्तुएँ छोटे-छोटे अदृश्य कण चारों ओर विकीरित करती हैं। जब इन कणों का आघात हमारी आँख के दृश्य पर होता है तब हम प्रकाश का अनुभव करते हैं। इन कणिकाओं का मार्ग समांगी माध्यम में सरलरेखीय होता है।

जब ये कणिकाएँ अपने माध्यम को बदलती हैं तब इनकी गति में परिवर्तन आ जाता है। ये कणिकाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। फलतः प्रकाश के विभिन्न रंगों का वेग होता है। कणिकाओं के इन्हीं गुणों के आधार पर न्यूटन ने आवर्तन और परावर्तन को समझाया है। न्यूटन ने अपनी खोजों के आधार पर यह भी सिद्ध किया कि सफेद माध्यम में प्रकाश का वेग विरल माध्यम की अपेक्षा अधिक होना चाहिए, परन्तु एक अन्य वैज्ञानिक फोकू ने प्रकाश के वेग की तुलना पानी में प्रकाश के वेग से की तो ठीक उल्टा का उलटा परिणाम निकला।

तरंग सिद्धान्त

‘प्रकाश तरंगों से बना है’—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हाइगेन और फ्रेसनल ने १६७८ में किया। सारा ब्रह्माण्ड एक काल्पनिक माध्यम से भरा है जिसे ईथर कहते हैं। तरंगों के रूप में प्रकाश इस माध्यम में फैलता है। वस्तु स्थिति इस प्रकार है।

प्रदीप्त वस्तु अपने चारों ओर के ईथर में तरंगों पैदा कर देती है। कम्पन के

आवश्यक शक्ति, ईथर को दृश्य-पटल तक पहुँचता है तब प्रकाश कण तक जाती है। इसे ईथर में प्रकाश तरंगों की गति कहा जाता है। ये तरंगे अनुग्रस्थ होती हैं। जब इन तरंगों का समूह हमारे दृश्य-पटल तक पहुँचता है तब प्रकाश का आभास होता है। इनका तरंग-दैर्घ्य इतना छोटा होता है कि एक सरल रेखा-सा दिखता है।

इन दोनों सिद्धान्तों में काफी मतभेद है। प्रकाश के कुछ आचरण तो 'कण' मान कर समझाये जा सकते हैं और कुछ 'तरंग' मानकर। दोनों ही सिद्धान्तों के पक्ष में काफी प्रमाण भी हैं।

कणिका सिद्धान्त के प्रमाण

(१) प्रमात्रा सिद्धान्त (Quantum Theory) — जब ठोस पदार्थों को तपोज्ज्वल करते हैं तो वे क्रमशः लाल, नारंगी, पीली और फिर सफेद चमक पैदा करते हैं। यह समझने में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही थी कि विकीरित शक्ति का परिमाण (तरंग-दैर्घ्य) ताप के साथ कैसे घटता-बढ़ता है। गर्म करने पर ठोस पदार्थ सीधे ही सफेद या पीली चमक न देकर लाल ही क्यों देते हैं? यदि इसकी व्याख्या प्रकाश को तरंग मानकर करें तो कोई फल नहीं निकलेगा। अतः यहाँ पर प्रकाश को कण मानकर ही इसकी व्याख्या हो सकती है। यह सिद्धान्त सन् १९०० में मैक्स प्लैंक ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने ऊर्जा को लगातार निकलती न मानकर पैकटों के रूप में माना जिन्हें प्रमात्रा (quanta) कहते हैं। उन्होंने गणित की सहायता से एक समीकरण भी प्रस्तुत किया।

प्लास्टिक की नाव

मास्को में प्लास्टिक की पहली मोटरबोट बनायी गयी है। ६५ व्यक्तियों को पार ले जाने वाली यह नाव काफी हलकी है। अतः छिछले पानी में भी इसे कठिनता न रहेगी। मजबूती का भी इसमें ध्यान रखा गया है। हलकी होने पर भी इसपात से अधिक मजबूत है। इसे न तो इसपात की तरह रंगने की जरूरत है, न इसमें जंग लग सकता है और न यह खारे पानी में ही खराब हो सकेगी।

(२) आइन्स्टीन का प्रकाश वैद्युत नियम — इस नियम की व्याख्या आइन्स्टीन ने १९०५ में की। जब प्रकाश को किसी धातु पट्टिका पर पड़ने देते हैं तब वह पट्टिका विद्युतअणुओं की झड़ी बिखेरती है। इस विषय की व्याख्या सामान्य तरंग सिद्धान्त से नहीं की जा सकती। अतः आइन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रकाश शक्ति की अविरल धारा नहीं है, अपितु उसका निर्माण अलग-अलग कणों से होता है। इसे इन्होंने 'फोटान' (जो वास्तव में प्रकाश-कण हैं) का नाम दिया। विभिन्न रंगों के प्रकाश के 'फोटान' भी भिन्न-भिन्न होते हैं। वास्तव में ये दोनों ही प्रमाण कणिका सिद्धान्त के सबल प्रमाण हैं।

तरंग सिद्धान्त का प्रमाण

क्लार्क मैक्सवेल का विद्युत चुम्बकीय सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि प्रकाश किरणें विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं जो ईथर में गमन करती हैं। रेडियो तरंगें, एक्स-किरणें, अल्ट्रावायलेट किरणें तथा इन्फ्रारेड रश्मियाँ आदि इसके उदाहरण हैं।

आधुनिक रूप

प्रकाश तरंगें इस बात को सुस्पष्ट करती हैं कि प्रकाश कणों से बना है, जो तरंगों जैसा व्यवहार करता है। द'ब्रगली, श्रेदिमर, डेविसन और गारमर नामक वैज्ञानिकों ने भी इस बात को निश्चित रूप से सिद्ध किया है। अतः कहा जा सकता है कि प्रकाश तरंगों और कणों दोनों से बना है।

उत्तर रेलवे

सूचना

संशोधित निरसन शुल्क (Cancellation Fees)

निर्धारित यात्रा के टिकट कैंसिल कराने पर उनके मूल्यों की वापसी बुकिंग स्टेशनों पर (जहाँ से टिकट खरीदे हों) की जाएगी जिनके निरसन शुल्क कोचिंग टैरिफ सं. १८-भाग १ के अन्तर्गत आई. आर. सी. ए. के नियम—२१३-१(३) में निर्धारित निम्न प्रकार संशोधित किये गये हैं :

कैंसिल कराये गये टिकट	प्रति यात्री, निरसन शुल्क	रु. न.पै.
(अ) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से ५ दिन से अधिक पहले (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी... द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी ...	२ ०० ० ५०
(ब) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से ४ तथा ५ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी... द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी ...	३ ०० १ ००
(स) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से २ तथा ३ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)	टिकट के मूल्य का १०% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—	

श्रेणी	न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
	रु. न.पै.	रु. न.पै.
वातानुकूलित तथा प्रथम ...	५ ००	१० ००
द्वितीय तथा तृतीय ...	१ ५०	३ ००

(द) यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि से १ दिन पूर्व (यात्रा प्रारम्भ होने की तिथि नहीं गिनी जाएगी)

टिकट के मूल्य का २०% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—

श्रेणी	न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
	रु. न.पै.	रु. न.पै.

वातानुकूलित तथा

प्रथम ... ७ ५० २० ००

द्वितीय तथा

तृतीय ... २ ५० ६ ००

(ई) यात्रा प्रारम्भ होने वाले दिन ट्रेन छूटने के निर्धारित समय तक

टिकट के मूल्य का २५% किन्तु निम्नांकित न्यूनतम तथा अधिकतम निरसन शुल्क के अन्तर्गत :—

श्रेणी	न्यूनतम प्रति यात्री	अधिकतम प्रति यात्री
	रु. न.पै.	रु. न.पै.

वातानुकूलित तथा

प्रथम ... ७ ५० ३० ००

द्वितीय तथा

तृतीय ... २ ५० १० ००

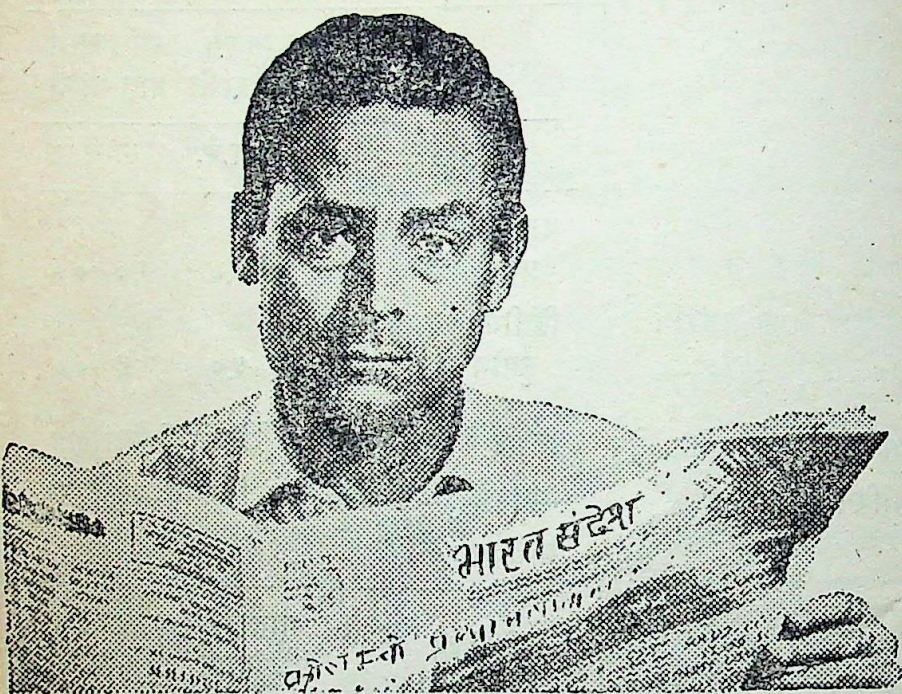
(फ) निर्धारित ट्रेन छूट जाने पर

सामान्यतः कोई भी मूल्य वापसी न होगी। विशेष परिस्थितियों में सम्बन्धित रेलवे विभाग के केन्द्रीय कार्यालय को आवेदन करने पर विचार किया जा सकेगा।

प्रस्तुत संशोधित नियम १-७-६३ से कार्यान्वित होंगे। टिकट खरीदने की तिथि को लक्ष्य में न लेते हुए १-७-६३ के दिन तथा तत्पश्चात् निरसन कराये गये समस्त टिकटों पर प्रस्तुत नियम लागू होंगे।

—चीफ कमर्शियल सुपरिण्टेंडेंट

क्या अब भी कुछ करना है ?



जी हां ! अब भी बहुत कुछ करना है । देश भर में अपूर्व एकता और असीम उत्साह की जो लहर फैली है, अपना लक्ष्य प्राप्त करने की जो दृढ़ता और प्रबल भावना जागृत हुई है, उसमें हमारी उदासीनता अथवा ढिलाई के कारण कोई कमी न आए, इसका हमें पक्का इंतजाम करना है । राष्ट्र के प्रति समर्पण, कर्तव्य-निष्ठा तथा अनुशासन से काम करने के दृढ़ निश्चय को हमें दोहराना है ।

- अनावश्यक खर्च बंद करें, ठाट-बाट छोड़ दें ।
- कुछ भी ज़ाया न करें—दफ्तर हो या घर, कहीं भी, किसी भी समय ।
- अपने काम पर डटे रहें, फुर्ती और कुशलता से पूरा किया गया हर काम राष्ट्र को अधिक सवल बनाता है ।
- अपना सोना राष्ट्र की सेवा में अर्पित करें, ढिलाई छोड़ें और मुस्तैदी से काम में जुटे रहें ।

चौकस रहें

—राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें ।

DA 62/F4

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

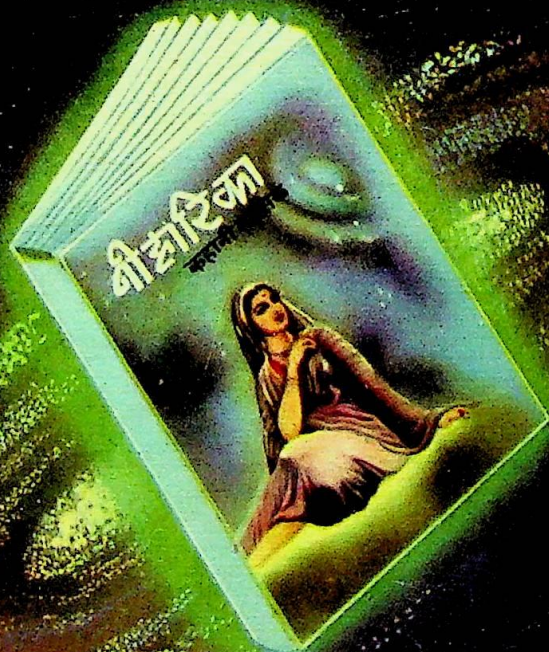
Book II.....Price : Re.1'00

Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

कहानी जगत में नया नक्षत्र



वीटारिका

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६
वार्षिक मूल्य ७ रुपये
एक प्रति ६० न

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



प्राणियों में प्रणय-लीला

—जगदीशप्रसाद अग्रवाल

मनुष्य ने मापना सीखा

—अवधबिहारीलाल

रक्त और हमारा शरीर

—सी. एल. संघी

शक्ति का भण्डार, सूर्य

—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

एल्डीहाइड

—सत्यकुमार

कोयल

—कुंवर सुरेशसिंह

पौधों का कृत्रिम उत्पादन

—प्रेमानन्द चन्दोलाल

नील्स बोर

—राजेन्द्रकुमार

द्रव की चतुर्थ अवस्था—प्लाज्मा

—जगदीशचन्द्र गोविल

ये विलक्षण चींटियाँ

—ओमशंकर बाजपेई

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

विज्ञान क्लब

इनाम लो

करो और देखो

आपके प्रश्न

तुम्हारी कलम से

वर्ष ४



अंक ७

मूल्य

प्रति : ७५ नये पैसे

पिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा



जगदीशप्रसाद अग्रवाल

बच्चे के लिए माँ के दिल में क्या नहीं होता ? प्यार, स्नेह, वात्सल्य सभी कुछ तो होता है। यह बात नहीं कि मनुष्य में ही माँ का दुलार बच्चों को प्राप्त होता है। दूसरे जन्तुओं में भी मनुष्य की भाँति जन्म-जात प्रवृत्तियाँ मौजूद होती हैं। यदि उनके हृदय में स्नेह का सागर हिलोरें ले रहा होता है तो उसी हृदय में प्रणय की हूक भी उठती है। उनमें दो प्राणियों का साहचर्य केवल संतति उत्पन्न करने की इच्छा से नहीं बल्कि सुकोमल इच्छाओं की तृप्ति के लिए भी होता है उनके भी कुछ आदर्श होते हैं। उनका भी कुछ उद्देश्य होता है। उनका प्रेमालाप, उनकी प्रणय-लीला उनके साथी को लुभाने, रिझाने और फुसलाने के दौंव-पेच, उनकी चुहलबाजी, उनका चुल-बुलापन तथा उनके परस्पर आकर्षण के पंखे आज भी इस क्षेत्र में मनुष्य को मात दे जाते हैं।

पक्षी समाज में मादा की अपेक्षा नर की संख्या अधिक है, इसलिए हर नर को स्त्री-प्राप्ति का सौभाग्य नहीं मिल पाता। नर को बड़ी कोशिशों के बाद मादा का सह-वास प्राप्त होता है और इन कोशिशों में उसे हर प्रकार के वशीकरण साधनों का उपयोग करना पड़ता है। चंडूल अपनी प्रणय-क्रीड़ा का कलात्मक प्रदर्शन करते समय पंख फैलाकर, दुम उठाकर, छाती फुलाकर तरह-तरह के हाव-भाव दिखाता है। ऐसे समय यदि कोई प्रतिद्वन्दी आ जाए तो उस पर बाज की तरह टूट पड़ता है। मादा भगड़ों के समय चुपचाप उदासीन भाव से बैठी रहती है।

पंखों की विविधता पक्षी को सजा-धजाकर उन्हें उन्मुक्त सौंदर्य का स्वामी बना देती है। उनके गन्धर्व विवाह उनके नक्श-निखार और सौंदर्य पर निर्धारित होते हैं। बीस हजार पक्षियों में से बहुतेरे पक्षी जैसे

मुर्गाबी, कौआ, कबूतर, उल्लू, चिड़िया, चील, गीध आदि में नर और मादा के रंगों में विशेष अन्तर नहीं होता, पर बहुतेरे दूसरे पक्षियों में नर और मादा जोड़ा बाँधने के दिनों में अलग-अलग पोशाक में होते हैं। करछिया बगुला में पीठ और छाती पर सजावट के रेशों से भरे हुए पतले-पतले पंख निकल आते हैं तथा गाय बगुला में इन्हीं दिनों मादा के शरीर पर कुछ नारंगी रंग लिए हुए बादामी पंख उग आते हैं। जलमुर्गी (moorhen) में नर के बदन पर एक काली झलक आ जाती है और सिर पर एक शृंग भी निकल आता है जो अण्डा देने के दिन बीतने पर गिर पड़ता है।

कीट-पतंगे तथा नन्हें कीड़े-मकोड़े चुन-चुनकर खाने वाली चिड़िया केटल ईग्रेट (cattle egret) अपने अण्डे को दलदली जगहों में छिपाकर रखती है क्योंकि अधिक-

यह स्वर्ग-पक्षी अपने रंगीन पंखों का प्रदर्शन करता है, संगीत सुनाता है, तरह तरह की मुद्राओं में नाचता है और टहनी से उलटा लटककर नट के से करतब भी दिखाता है—मादा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए



तर लोग उन अण्डों को उठा ले जाते हैं। सहवास-काल में इन चिड़ियों का सफेद रंग लुप्त होकर सिर, पीठ तथा सीने के पर कथई रंग के हो जाते हैं, चोंच का सिरा लाल तथा आँखें भूरी हो जाती हैं। ऋतु-काल के पश्चात् ये विभिन्न रंगों के पर अदृश्य हो जाते हैं और इनका शरीर पुनः सफेद हो जाता है। इनकी भी प्रणय-मुद्राएँ सारस के जोड़े जैसी होती हैं। ऊँचे स्वर में चहचहाना, फुदकना, चोंच से चोंच मिलाना, पर से पर घिसना तथा गर्दन से गर्दन मिलाना इनकी मुख्य क्रियाएँ हैं।

काग-परिवार में विदेशी राजकुमार (Prince Rudolf), नवाब (Count) तथा स्वर्ग-पक्षी (Bird of Paradise) जैसे नामधारी और शोभावान काग भी हैं। प्रणय-काल में प्रकृति इन्हें सिर पर चित्र-विचित्र मुकुट और छैल-छबीले, चटकीले

रंगों का खजाना लुटा देती है। किन्हीं-किन्हीं में तो इतने सुन्दर रंग उभर आते हैं कि काग होने का एकाएक आभास ही नहीं होता। राजकुमार तो प्रणय-नृत्य दिखाते-दिखाते पाँवों के सहारे उलटा लटक जाता है और पंख फैलाकर बड़े वेग से कम्पन करता है। एक बार तो इसका कम्पन देखकर पालने वाले को इसके बीमार हो जाने का भ्रम हो गया था और सचमुच ही उसने तत्काल एक दवा भी इसके गले में उतार दी थी !

मोर, कबूतर आदि पक्षियों को रिभाते हैं। मोर मादा को रिभाते हैं। मोर नाचता है और नाचने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपने तन की सुध नहीं रहती। मोरनियाँ उसके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं पर वह नाचता है, नाचता ही जाता है। अपने इन प्रणय नृत्यों द्वारा पक्षी पंखों को निकाल पूँछ को अकड़ाकर पंखे की तरह हिलाकर गौरवमय से उपहासजनक तक मुद्राएँ बनाकर प्रिया से प्यार की भीख माँगते हैं।



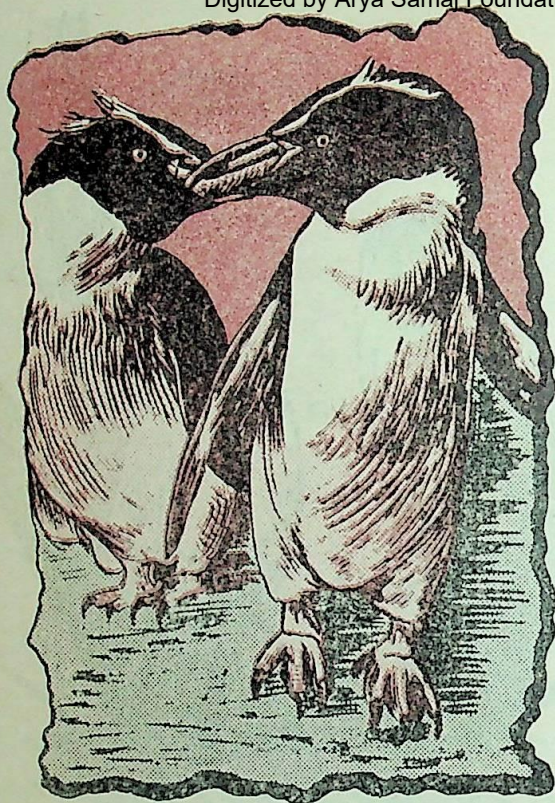
कबूतर का ढंग अजीब है। मादा दाना चुगती रहती है, नर एकाएक उसके पास गला फुलाकर नाचने लगता है। कुछ आगे बढ़ता है फिर पीछे लौट आता है और इस प्रकार उसे रिभाने की कोशिश करता है। सुन्दर आकाश में उड़ने वाले पक्षी चील आदि आकाश में ही नृत्य करते हैं। उनका यह नृत्य गोलाकार रूप में होता है। व्योममंडल में वह देर तक अपने करिश्मे दिखाते हैं और तब नीचे आकर माँदा के संग बैठते हैं। पहले मादा नर के प्रणयगीत तथा प्रणयनृत्य की ओर उदासीनता दिखाती है। वह चुपचाप दाने चुगती रहती है मानो नर की प्रणय परीक्षा ले रही हो। अन्त में जब वह उसके हृदय पर काफी प्रभाव डाल लेता है, उसके अन्दर काम संचार हो जाता है तो सचेष्ट होकर जाहिर करती है कि उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके साथ जोड़ा बाँधना उसे मंजूर है।

बटेरों (quail) में नर नहीं बल्कि मादा अपनी भाव-भंगिमाओं से नरों को अपनी ओर आकर्षित करती है। उनमें से किसी एक के साथ जोड़ा बाँधकर घर बनाती

बगुले का जोड़ा गृहस्थ जीवन की देहरी पर

है, अण्डे देती है और फिर उस पर अण्डों का भार छोड़कर गायब हो जाती है। दो-तीन दिन में ही फिर किसी और के साथ जोड़ा बाँधती है, अण्डे देती है और फिर किसी तीसरे की तलाश में घर छोड़कर निकल पड़ती है। जनन ऋतु में वह एक दो तीन नहीं बल्कि अनेक नरों के साथ इसी प्रकार जोड़ा बाँधती है। बया पक्षी के नर एक से अधिक मादाओं के साथ जोड़ा बाँधते हैं।

गजपन या तिगर (black winged stilt) में गर्मियों में नर के निचले सफेद हिस्सों में गुलाबीपन आ जाता है तथा सिर का ऊपरी हिस्सा काला हो जाता है और कहीं-कहीं उसमें सफेदी आ जाती है। गहे वाला (ruft) में नर की गर्दन पर बड़े-बड़े पंख निकल आते हैं। पक्षियों में ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जाती है, उनका सौन्दर्य, उनका रूप और आकर्षण भी बढ़ता है। ढलती



यह मारकोनी पेंगुइन का जोड़ा

उमर पक्षियों के सौन्दर्य-उत्कर्ष का समय है। जिस पक्षी के पंरों का रंग पूर्णतया विकसित होता है उसे जोड़ा बाँधने में अधिक कठिनाई अथवा विलम्ब नहीं होता।

गिरगटमार बाज में प्रत्येक नर के रनिवास में दो रानियाँ होती हैं पर विलायती कोयल के कई पति होते हैं। पक्षियों में प्रत्येक गृहस्थ की अपनी जमीन होती है जिसके आसपास वह अपना घोंसला बनाता है। उसकी जमीन में किसी भी दूसरे पक्षी का दखलअन्दाजी करना ठीक नहीं समझा जाता। प्यार की विजय प्राप्ति पर नर या मादा या दोनों मिलकर अपना घर बनाते हैं जो सीधे-सादे पत्तों, तिनकों, पहले के बने-बनाये छिद्रों, जमीन में कुरेदे सुराखों, कीचड़ से बने घरों, घास के कटोरीनुमा अथवा डंठल के गेंदनुमा घोंसलों से लगाकर बया के लटकते हुए

सुन्दर मन्दल सा पत्तों के सिले बड़े तक हो सकता है।

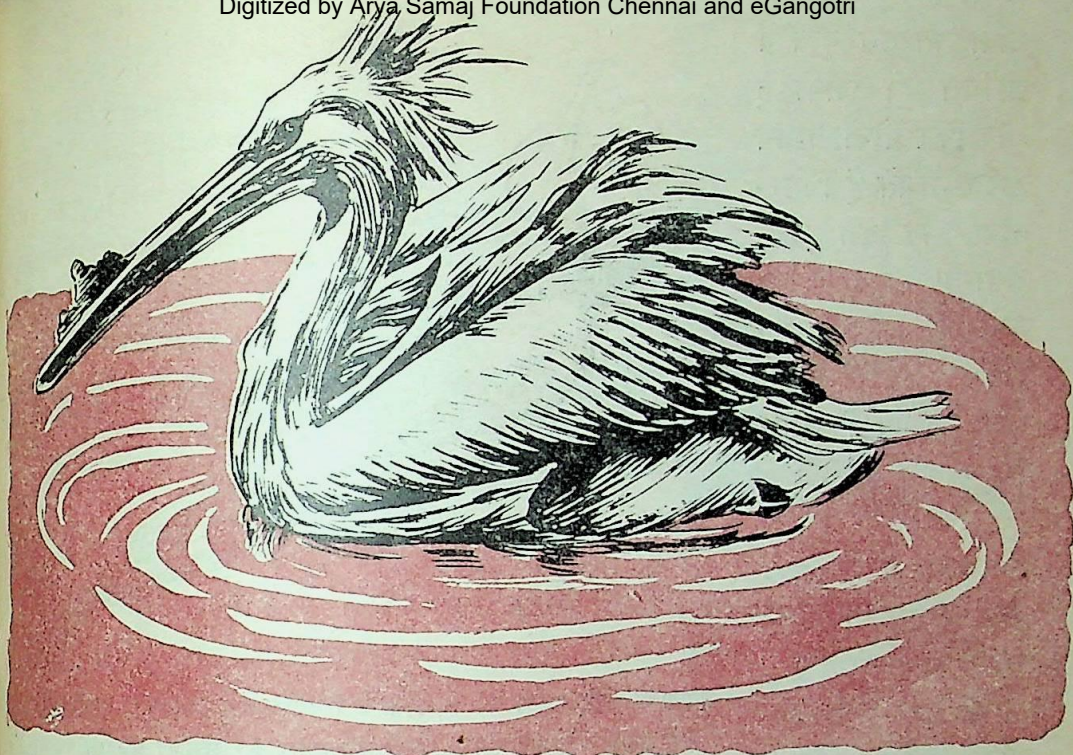
सर्वभक्षी मख्यो (emfids) में घनिष्ठता सोच-समझकर बढ़ायी जाती है। लड़का-लड़की एक दूसरे के स्वभाव से भलीभाँति परिचित होने के बाद विवाह सूत्र में बँधते हैं। 'डेंटिंग' अकसर होती रहती है। नर मादा के लिए उपहार स्वरूप छोटे-छोटे कीड़े, रेशम के धागे, सुन्दर-सा पंख, फूल की पत्ती या किसी सिगरेट या मिठाई के पैकेट का ऊपर के कागज का टुकड़ा उसका चित्त चुराने के लिए पेश करता है। पेंगुइन (penguin) पत्थर के टुकड़े उठा-उठाकर अपनी प्रेमिका को भेंट करता है। घोंघा (common garden snail) अपनी प्रेयसी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े चमकदार टुकड़े उसकी

स्वीकृति के लिए समर्पित करता है।

यह मुर्गा भी अपनी मादा को रिझाने के लिए सब कुछ कर गुजरने में किसी से पीछे नहीं



विज्ञान-चक्र



नर पेलिकन की चोंच के ऊपर प्रणयावस्था में एक चौड़ी अस्थि-पट्टी उभर आती है जो प्रणयकाल के पश्चात् लुप्त भी हो जाती है

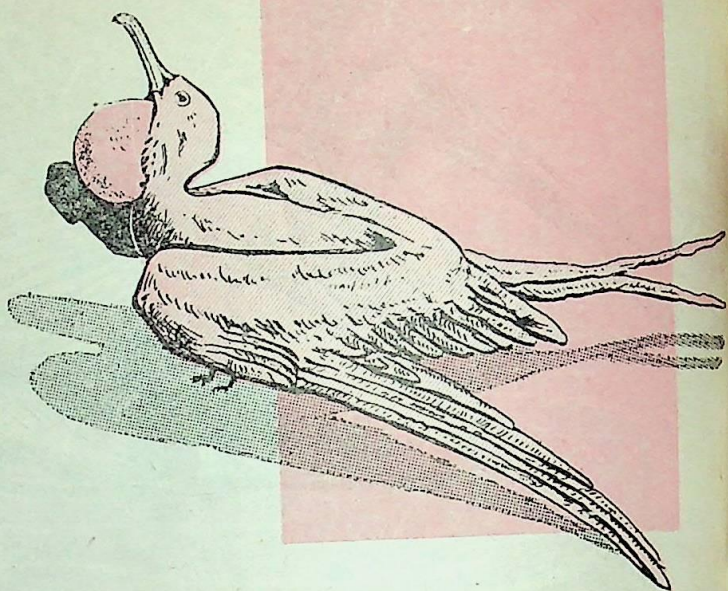
गायन पक्षी समाज का जन्मसिद्ध अधिकार है। कोयल की कूक और चिड़ियों की चहचहाहट वसन्त ऋतु में प्रस्फुटित और मुखरित होकर मदन को चुनौती देती है। पक्षियों में वाद्ययन्त्र की रचना मनोरंजन प्रदान कर उन्हें मनमोहक बनाने के लिए हुई है। गाने वाले पक्षी जब काम-विह्वल होते हैं तो जोर-जोर से गाना शुरू कर देते हैं। न जाने कहाँ से इनके गलों में सोज टपकता है। बोल में मिठास, स्वर में मधुरिमा और हृदय में जोश व खरोश की बाढ़ आ जाती है और नर दिन-रात प्रणयगीत गाने में तल्लीन रहते हैं। कोयल, पपीहा आदि पक्षियों के निपुण तानसेन पेड़ की डाल पर बैठकर ऊँचे गले से गाते हैं। चंडूल (lark) जैसे पक्षी आकाश में उड़-उड़कर गाते रहते हैं। वसन्त ऋतु में चंडूल नर को मादा के साथ गाकर, रिझाकर प्रणय

भिक्षा मांगते हुए देखा जा सकता है। कुछ पक्षी जैसे दाबिल (spoon bill) जिन्हें गाना नहीं आता वह गले से आवाज करते हैं, चिल्लाते हैं और जोर से बोलते हैं। वह क्या कहते हैं यह सिवाय मादा के दूसरा नहीं समझ पाता।

पक्षियों में मादा किसी नर के साथ दाम्पत्य सूत्र में बँध जाती है तो फिर उसे छोड़ती नहीं। सुन्दर से सुन्दर पर वाले किसी दूसरे नर के आ जाने अथवा लुभाने के प्रयत्न पर भी वह उसका साथ नहीं छोड़ती। सारस (crane) में नर-मादा में बड़ा प्रेम होता है। जोड़ा बाँधने के दिनों में वे दोनों साथ मिलकर खूब नाचते हैं। पहले नर मादा के पास लकड़ी का टुकड़ा लेकर जाता है फिर दोनों पैर एक साथ जोड़कर कूदता है, नाचता है, पंख फड़फड़ाता है और संगीत की अभिव्यक्ति

करता है। शीघ्र ही मादा भी उस नृत्य में शामिल हो जाती है और फिर दोनों तन्मय होकर नाचते हैं। नर-मादा का प्रेम अटूट होता है। एक के मर जाने के बाद दूसरा जीवन भर अकेला रहता है, पुनः जोड़ा नहीं बाँधता।

पनकौआ (cormorant) में भी नर-मादा का साथ जिन्दगी भर के लिए होता है। एक के मर जाने पर दूसरा अकेला जीवन बिताता है। दूसरे पनकौओं के साथ मिलना-जुलना भी त्याग देता है। चाँद और चकोर मेघ और मोर, गुल और बुलबुल की कथाओं से साहित्य उसी प्रकार भरा पड़ा है जिस प्रकार तोता और मैना के किस्सों से पंचतंत्र, पर सुरखाव (ruddy shield rake)



प्रणय के लिए मादा को रिझाने के निमित्त यह अद्भुत पक्षी जोर लगा कर अपने गले की रंगीन थैली को फुला कर उसका प्रदर्शन करता है।

जिसे चकवा-चकवी भी कहते हैं, का प्रेम एक आदर्श प्रेम होता है। यह हीर और राँभा और शशी पूर्ण रात को जब भोजन की तलाश में एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं तो रात के सन्नाटे में रात भर एक-दूसरे को बोल-बोलकर खोजते रहते हैं। [क्रमशः]

पंचम अन्तरिक्ष यात्री बाइकोव्स्की से पूछा गया—

आपको सर्वाधिक प्रिय क्या लगता है ?

सरलता

मानव को क्या वस्तु ऊपर उठाती है ?

स्वप्न

और, क्या वस्तु गिराती है ?

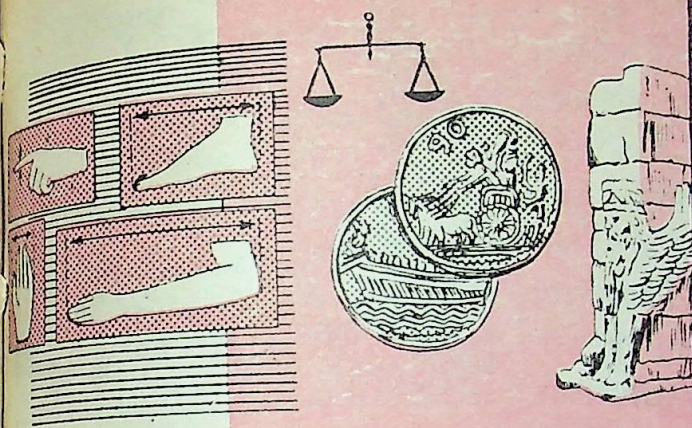
स्वप्न का अभाव

वीरता क्या है ?

मानवता स्वयं वीरता है

मातृभूमि के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

मातृभूमि ही सब कुछ है।



मनुष्य ने मापना शुरू किया

श्रवधबिहारीलाल

प्रारम्भ में विनिमय के लिए सिक्के तो थे ही नहीं। वस्तु का विनिमय वस्तु से ही होता था। उसमें भी कम या अधिक का संकेत किसी न किसी प्रकार करना आवश्यक होता ही होगा। कदाचित् तभी ने मापने के लिए हाथ-पाँव का सहारा लिया जाने लगा, क्योंकि अन्य गणितीय मापन उपलब्ध नहीं थे। उदाहरणार्थ जिसके पास हिरन की एक खाल होगी और वह दूसरे से दो भेड़ों के बदले में बदलना चाहता होगा तो वह अपनी हिरन की खाल दिखाकर एक अँगुली उठाएगा और सामने वाले की भेड़ों की ओर इशारा करके दो अँगुली दिखाएगा। तब कहीं सौदा पटेगा। अँगुली अँगुली की वह गणना भी आखिर १० तक ही सीमित रही होगी। प्राणीशास्त्र में अँगुली की अस्थियों को डिजिट्स (digits) कहते हैं। अतः १ से ९ तक के अंक भी डिजिट्स ही कहलाये।

अँगुलियों पर दस तक की गिनती वाली बात भी तब बढ़ निकली जब मानव ने पशु-पालन प्रारम्भ किया। तब उसने कंकड़-पत्थर बटोरने शुरू किये। एक भेड़ का एक कंकड़ करके १०-१० कंकड़ की जितनी ढेरियाँ उसके पास जमा होने लगीं

उतनी ही भेड़ों का वह मालिक समझा जाने लगा। जल्द ही वह कंकड़ के ढेरों से भी ऊब गया और लकड़ी की पट्टी को उपयोग में लाने लगा। एक-एक अंक के लिए उसमें एक-एक खाँचा बना लिया। ऐसी खाँचे वाली लकड़ी को टाली स्टिक (Tally Stick) कहा जाने लगा। लकड़ी के अतिरिक्त उसने एक रस्सी भी रखना प्रारम्भ किया जिसमें प्रत्येक गणना पर एक-एक गाँठ लगाता जाता था।

गणना के लिए लिखित चिह्न का प्रयोग प्राचीन मिस्रवासियों ने आज से ५-६ हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया। प्रत्येक अंक के लिए वे एक खड़ी रेखा खींच दिया करते थे। यह रेखा उन्होंने संभवतः अँगुली की आकृति से समानता दर्शाने को निर्धारित की थी। १०० और १००० के लिए भी उन्होंने विभिन्न तथा विशिष्ट चिह्न निर्धारित किये।

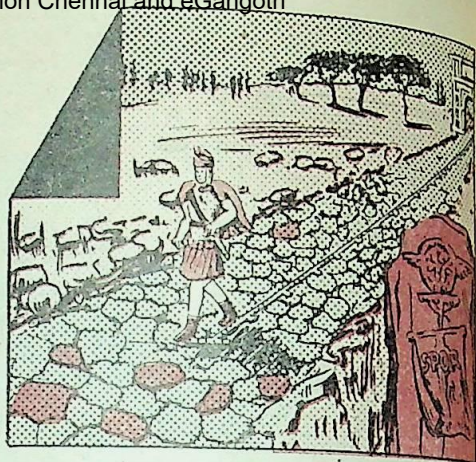
इस प्रकार मनुष्य ने गणित सरल कर लिया। प्राचीन बेबीलोन निवासी चिकनी मिट्टी की तख्तियाँ बनाकर उन पर अपने हिसाब अंकित करते थे। उन पट्टियों को सहज ही टूटने से बचाने के लिए बर्तन की तरह आग में पका भी लेते थे। मिस्रवासी

उनसे भी आगे धातु और वे कागज का कागज चलाऊ स्वरूप भी बना चुके थे। अतः वे अपने हिसाब-किताब उन कागजों पर खड़ी रेखाओं के रूप में रखने लगे। इसी समय ग्रीक-निवासी भी ५, ५०, ५०० तथा १०, १००, १००० के लिए अलग चिह्न निर्धारित कर चुके थे। उन्होंने ५ को 'वी' (V) का आकार सम्भवतः इसीलिए दिया कि हाथ की फैली हुई पाँचों अँगुलियाँ 'वी' के आकार में ही दिखती हैं। इसी प्रकार दोनों हाथों की अँगुलियाँ एक के ऊपर दूसरी फैलाने से 'एक्स' (X) की जो आकृति बनती है उसे १० का चिह्न माना गया।

प्रारम्भ में मनुष्य को लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के ही माप की आवश्यकता पड़ती रही। तब उसकी आवश्यकताएँ सीमित थीं। जब-जब उसे नयी भोंपड़ी बनानी होती तो प्रायः ही वह कहता— 'मेरी भोंपड़ी उतने कदम लम्बी होगी जितनी अँगुलियाँ मेरे दोनों हाथों में हैं। चौड़ाई उतने कदम होगी जितने कुल हाथ-पाँव मेरे हैं और दीवार उतनी मोटी होगी जितना लम्बा मेरा एक हाथ है। इसकी ऊँचाई इतनी रखूँगा कि मेरे गाँव का सबसे ऊँचा आदमी आराम से अन्दर आ सके।'।

मिस्रवासियों द्वारा निर्धारित हाथ, पाँव और अँगुलियों के माप इस प्रकार थे :

लेन-देन का लेखा—प्राचीन पद्धति। काठ की इस पट्टी को टाली स्टिक कहते थे। लेन-देन की संख्या का हिसाब इसमें खाँचे बनाकर इसे बीच में से चीरकर लेनदार और देनदार एक-एक टुकड़ा अपने पास रख लेते थे।



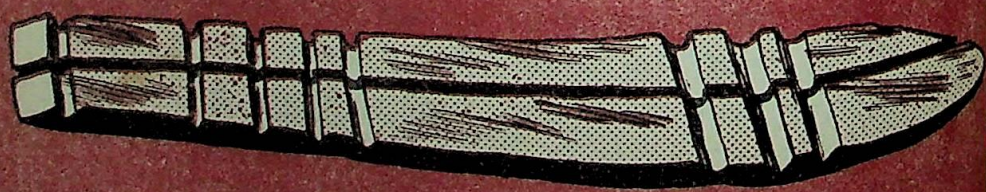
एक हजार कदम बराबर एक मील—प्राचीन रोमन-पद्धति

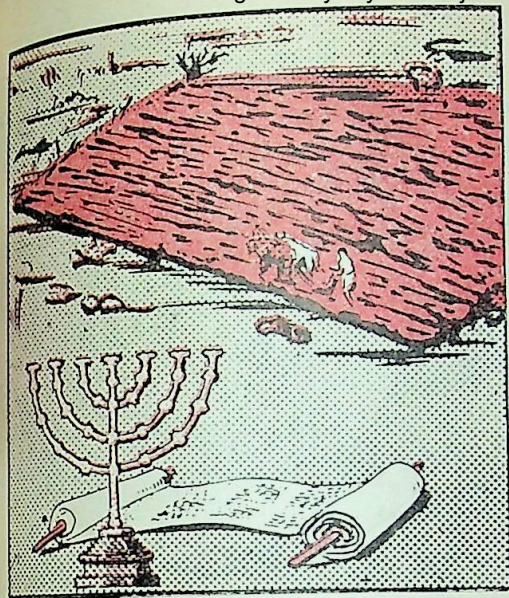
एक अँगुली की चौड़ाई के बराबर एक डिजिट, चार डिजिट के बराबर एक पंजा, दो पंजों के बराबर एक स्पान (span), दो स्पान के बराबर एक क्यूबिट (cubit) अर्थात् एक हाथ की लम्बाई तथा अन्त में पाँव की एड़ी से अँगूठे के सिरे तक एक फुट।

ग्रीकवासियों ने १००० कदम के एक मील का अपना अलग ही मान निर्धारित किया था।

इसी प्रकार आंग्लभाषी देशों ने किञ्चित् परिवर्तन के साथ अपने मान निम्न भाँति निर्धारित किये :

अँगूठे की चौड़ाई बराबर एक इंच, पाँव की लम्बाई बराबर एक फुट तथा फैलाये हुए एक हाथ की अँगुली के सिरे से





प्राचीन यहूदियों द्वारा भूमि के माप का मान—
भूमि का एक इतना निर्धारित खण्ड जिसे दो बैलों
की जोड़ी सुबह से शाम तक पूरी जोत सके

नाक की नोक तक एक गज । गज मापने का
यह ढंग तो आज भी हमारे अल्प शिक्षित
समाज में अधिकता से देखने को मिलता
है । देहातों में कपड़े की माप इसी प्रकार
सहज ही कर लेते हैं । प्रारम्भ में इसमें भी
तब कठिनाई पड़ने लगी जब लम्बे हाथों
वाला ग्राहक छोटे हाथ वाले दूकानदार से
कपड़ा खरीदता था । अतः इसके लिए भी
एक निर्धारित माप रखने की आवश्यकता
पड़ी । दूसरी ओर मिस्रवासियों द्वारा
निर्धारित क्यूबिट की माप लम्बे-चौड़े खेतों
की पैमाइश में सुविधाजनक सिद्ध न हुई ।
अतः प्रयोगस्वरूप खेतों की पैमाइश के लिए
एक ऐसा भूमिखण्ड मापक रखा गया जिसे
सुबह से शाम तक के एक दिन में दो बैलों
युक्त हल से जोता जा सके ।

अंकों का निर्धारण हो जाने पर गिनने,
जोड़ने और घटाने के लिए गिनतारां
(abacus) आविष्कृत किया गया । देश-
देश ने अपने विभिन्न गिनतारे बनाये । मिस्र
और बेबीलोन के गिनतारे का प्रारम्भिक

स्वरूप केवल मिट्टी की एक गड़बेदार
तख्ती का था । जितने अंक जोड़ने होते थे,
उन गड़बों में डाल दिये जाते थे और घटाने
होते थे उतने निकाल लिये जाते थे । उन
गिनतारों द्वारा जोड़-बाकी ही सम्भव था,
गुणा-भाग नहीं ।

गणित के विकास में भारत का भी प्रमुख
स्थान है । भारत-आविष्कृत अंकप्रणाली को
अरब निवासियों ने देश-विदेशों में फैलाया ।
तभी यह सम्भव हो सका कि केवल १ से ९
तक के अंकों से ही इकाई, दहाई, सैकड़ा,
हजार आदि लम्बी से लम्बी संख्या सरलतम
रूप में लिखी जा सके ।

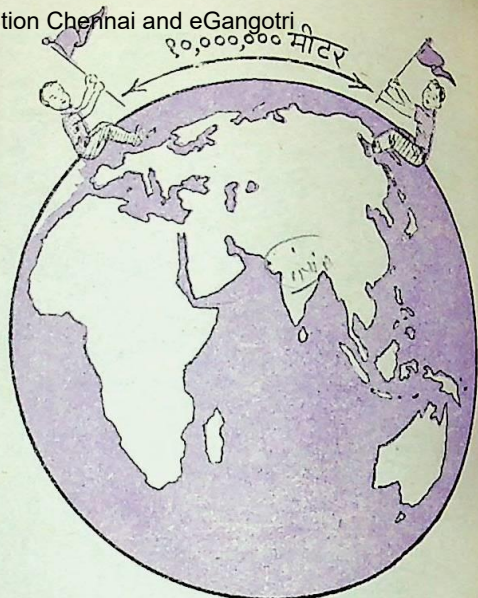
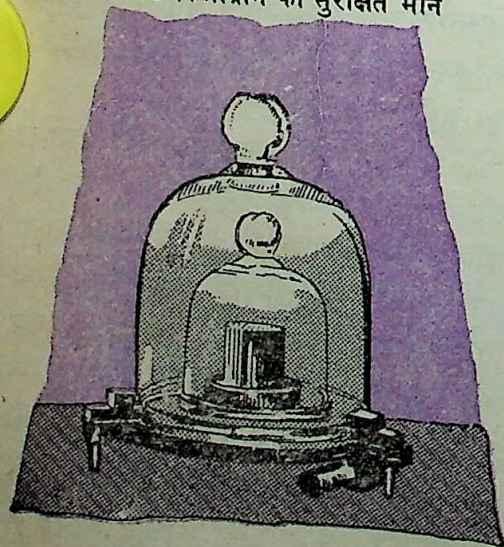
समय के साथ-साथ मनुष्य की आव-
श्यकताएँ तथा व्यापार का विस्तार बढ़ता
चला । वस्तुओं की माप, उनकी भिन्न-भिन्न
तौलें तथा मुद्राओं, सिक्कों की गिनती
रखने के कार्य भी बढ़ते चले । अतः अंकों
का हिसाब रखने के लिए अंकगणित
(arithmetic), विविध मापों के लिए
ज्यामिति (geometry), तथा त्रिकोण-
मिति और गतिशील वस्तुओं के अध्ययन
के लिए कलन (calculus) का आविष्कार
किया गया । इन सबमें भी समीकरणों के
बगैर हिसाबों की फैलावट में अत्यधिक
विस्तार तथा समय लगने लगा । इस कमी
को दूर करने के लिए बीजगणित (algebra)
का आविष्कार किया गया ।

यह सब होने पर भी यह समस्या
तो बनी ही रही कि देश-देश ने माप और
तौल के लिए जो अपने भिन्न-भिन्न मानक
बना रखे थे उनके आधार पर पारस्परिक
विनिमय कैसे किया जाए ? इसके हलस्वरूप
सन् १७९५ में सर्वप्रथम फ्रान्स ने मीट्रिक
प्रणाली का आविष्कार किया । इस प्रणाली
को पृथ्वी और जल के आधार पर इस
प्रकार निर्धारित किया गया ।

इसके लिए पृथ्वी के उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव को मिलाते हुए एक वृत्त खींचा गया जिसे मिरीडियन (meridian) कहा गया। मिरीडियन का एक चौथाई भाग क्वाड्रैण्ट (quadrant) कहलाया। एक क्वाड्रैण्ट को एक करोड़ समभागों में बाँटा गया और उस एक करोड़वें भाग को मीटर कहा गया। इस लम्बाई की शुद्ध माप प्लेटिनम की एक छड़ पर अंकित की हुई आज भी पेरिस के म्यूजियम में सुरक्षित रखी है। एक मीटर की लम्बाई लगभग ३९.५६ इंच है। इस मीटर का एक सौवाँ भाग सेन्टीमीटर कहलाता है।

इसी प्रकार द्रवों के भी माप निर्धारित किये गये। एक-एक से.मी. की लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई के गुणनफल को एक घन से.मी. कहा गया। थिम्बल (Thimble) नामक एक विशिष्ट माप के पात्र में एक घन से.मी. ही पानी आता है। इतने पानी का भार एक ग्राम होता है। एक ब्रिटिश पौण्ड में लगभग ४५४ ग्राम होते हैं।

स्टैण्डर्ड किलोग्राम का सुरक्षित मान



पृथ्वी के वृत्त का एक करोड़वाँ भाग
एक मीटर माना गया था

इस प्रकार माप, तौल आदि के माप निर्धारित हो जाने से मोटे और सरसरे तौर पर लिये जाते रहे मापों की आवश्यकता न रही। क्रमशः अधिकाधिक शुद्ध तथा सूक्ष्म मापों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। १७वीं शताब्दी में वर्नियर (P. Vernier) ने इंजीनियरिंग के कार्यों में सूक्ष्म मापन के लिए केलिपर्स (callipers) नामक जो उपकरण तैयार किया वह आज भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। केलिपर्स के द्वारा एक इंच के १०००वें भाग तक को शुद्धता से मापा जा सकता है। तत्पश्चात् माइक्रोमीटर (micrometer) द्वारा यह सम्भव हो सका कि एक मीटर के दस लाखवें भाग को और आंग्स्ट्रम (angstrom) द्वारा एक माइक्रान के १० हजारवें भाग को भी मापा जा सके। विशेष प्रकार की रश्मियों के तरंग-दैर्घ्य मापने के लिए ये दोनों उपकरण अत्यन्त उपयोगी हैं।



सी. एल. संघी

रक्त तरल टिशूज का एक जाल है, जो हमारे शरीर की शिराओं और धमनियों में प्रवाहित होता रहता है। इससे शरीर के सभी अंगों में अन्तर-संचार व्यवस्था बनी रहती है। रक्त ही शरीर के लिए उपयोगी तथा पोषक पदार्थों को—जैसे आक्सीजन जल तथा आहार—शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाता है और यही कार्बन डाइआक्साइड तथा पाचन क्रिया से बने निरर्थक तत्त्वों को शरीर से गन्दे तत्त्व बाहर निकालने वाले अंगों—अर्थात् फेफड़ों, गुरदा, त्वचा और श्रंतडियों—तक पहुँचाता है। रक्त ताप का रेगुलेटर भी है और इसी के द्वारा हमारे शरीर का ताप सामान्य बना रहता है।

रक्त शरीर में कैसे प्रवाह करता है

आज यह तो सब जानते हैं कि रक्त हमारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, परन्तु इस बात की खोज सबसे पहले विलियम हारवे ने १६१६ में की थी कि शिराओं में रक्त का संचार हृदय करता है। उन्होंने यह भी बताया कि हृदय के दायें और बायें कोषों में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। रक्त हृदय के दायें कोष से फेफड़ों में होकर बायें कोष में पहुँचता है। एक स्वस्थ

मनुष्य के पूर्ण विश्राम की स्थिति में रक्त का दबाव, हृदय के संकुचन के समय १०० से १२५ मि. मी. और हृदय के फैलने की अवस्था में ६० से ७५ मि. मी. होता है। आयु के साथ रक्त का दबाव बढ़ता है।

रक्त की रचना

रक्त की मात्रा शरीर के कुल भार की ७ से ८ प्रतिशत तक होती है अर्थात् एक १२५ पाँड भार वाले व्यक्ति के अन्दर लगभग १० पाँड रक्त होगा। रक्त की एक बूंद में २५० लाख लाल-कोषाणु, ४० लाख श्वेत कोषाणु तथा १५० लाख प्लेटलेट्स होते हैं जो प्लाज्मा नामक तरल पदार्थ में तैरते रहते हैं। प्लाज्मा एक द्रव होता है जिसमें ७-८ प्रतिशत प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चरबी, क्षार और हारमोन का मिश्रण होता है।

रक्त कोषाणुओं के कार्य

रक्त के लाल कोषाणु फेफड़ों से शरीर में आक्सीजन पहुँचाते हैं। श्वेत कोषाणु बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट करते हैं तथा प्लेटलेट्स (बिम्बाणु) रक्त बहने की दशा में घाव के स्थान पर रक्त का थक्का बनाकर उसे जमाने में सहायता करके उसका

बहना रोकते हैं। प्लाज्मा के क्लोथिन नामक प्रोटीन में एक और तत्त्व होता है जिसे 'एण्टीवाडी' कहते हैं। एण्टीवाडी का कार्य प्रतिरक्षात्मक होता है और यह रोगों के कीटाणुओं को स्वच्छन्दतापूर्वक शरीर में विचरण करने से रोकते हैं तथा उन्हें निष्क्रिय भी बना देते हैं।

रक्त के प्रकार

मानव शरीर में रक्त का होना तो एक आवश्यक तथ्य है, किन्तु सभी मनुष्यों का रक्त एक समान नहीं होता। यहाँ तक कि भाई-भाई और माता-पुत्री के रक्त में भी भिन्नता पायी जाती है। डा. कार्ल-लेडस्ट्राइनर ने रक्त को चार भागों में विभाजित किया। प्रत्येक अपनी विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से असंगत तथा असंयोज्य है। रक्त के चार वर्ग इस प्रकार हैं—ए, बी, एबी तथा ओ। इनमें से फिर प्रत्येक वर्ग को आर. एच. पाजिटिव और आर. एच. निगेटिव उपवर्गों में विभाजित किया गया है। कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़कर सभी रोगियों को उनके अपने ही रक्त वर्ग का रक्त संक्रामित किया जाना चाहिए, अन्यथा प्रतिकूल प्रतिक्रिया इतनी भयंकर हो सकती है कि परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाये।

हमारी पसलियों जैसी अस्थियों की मज्जा में भी रक्त-कोशिकाएँ विकसित होकर रक्त-प्रवाह में पदार्थ सामने आती हैं।



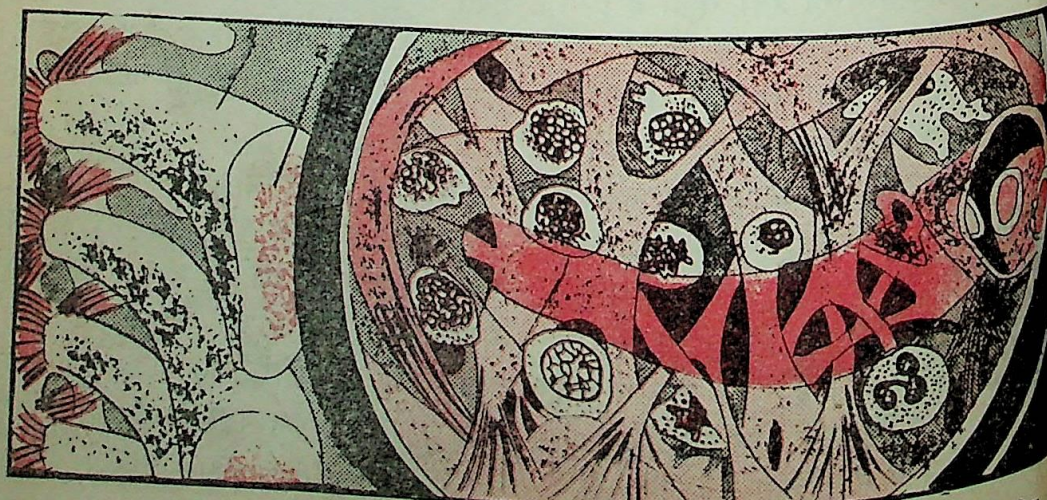
रक्त-कोशिकाओं का संख्या-निर्धारण—रक्त को कांच की एक स्लाइड के एक सिरे पर एण्टी-ए-सीरम तथा दूसरे पर एण्टी-बी-सीरम रख देते हैं। फिर दोनों सिरों पर एक-एक बूंद रक्त की डालकर दो मिनट बाद देखते हैं कि कौनसे सिरे पर रक्त जकड़ा जाता है।

रक्त वर्ग का ज्ञान कैसे किया जाता है

प्रयोगशाला में रक्त वर्ग का निर्धारण एक सरल रीति से किया जाता है। कांच की एक स्लाइड के एक सिरे पर एण्टी-ए-सीरम तथा दूसरे पर एण्टी-बी-सीरम रख देते हैं। फिर दोनों सिरों पर एक-एक बूंद रक्त की डालकर दो मिनट बाद देखते हैं कि कौनसे सिरे पर रक्त जकड़ा जाता है।

(१) यदि केवल एण्टी-ए-सीरम रक्त

को जकड़ता है तो रक्त का वर्ग 'ए' होगा।



निर्धारित होते तो उसे **आर. एच. पाजिटिव** अन्यथा **आर. एच. निगेटिव रक्त** कहते हैं।

रक्त परीक्षण से चिकित्सा में लाभ

शल्य चिकित्सा के लिए डाक्टर रक्त परीक्षण द्वारा यह पता लगाता है कि रक्त संक्रामण क्रिया के लिए किस वर्ग का उपलब्ध करना आवश्यक है और रक्त पिंड बनने के समय की जानकारी भी की जाती है, क्योंकि यदि रक्त का प्रवाह बन्द न हो और रक्त पिंड न बने तो मृत्यु की आशंका हो जाती है।

रक्त परीक्षण द्वारा हमें और भी कई लाभ होते हैं—जैसे यदि कोई बालक विष निगल लेता है तो रक्त परीक्षण द्वारा क्षण भर में पता चल जाएगा कि विष कौनसा था और तुरन्त उपचार आरम्भ करके बालक को मौत के मुँह से बचाया जा सकता है। जब रोग के कारण शरीर में काफी व्यवधान पड़ जाता है तो रोगी के रक्त परीक्षण से रोग के लक्षण सही प्रकार से ज्ञात हो जाते हैं। रोग के मध्य में रक्त परीक्षणों से यह भी पता चलता रहता है कि रोग में कितना सुधार हुआ है और दी हुई ओषधि का क्या प्रभाव पड़ा है। आजकल जो रक्त परीक्षण किये जाते हैं उनसे प्रायः यह पता

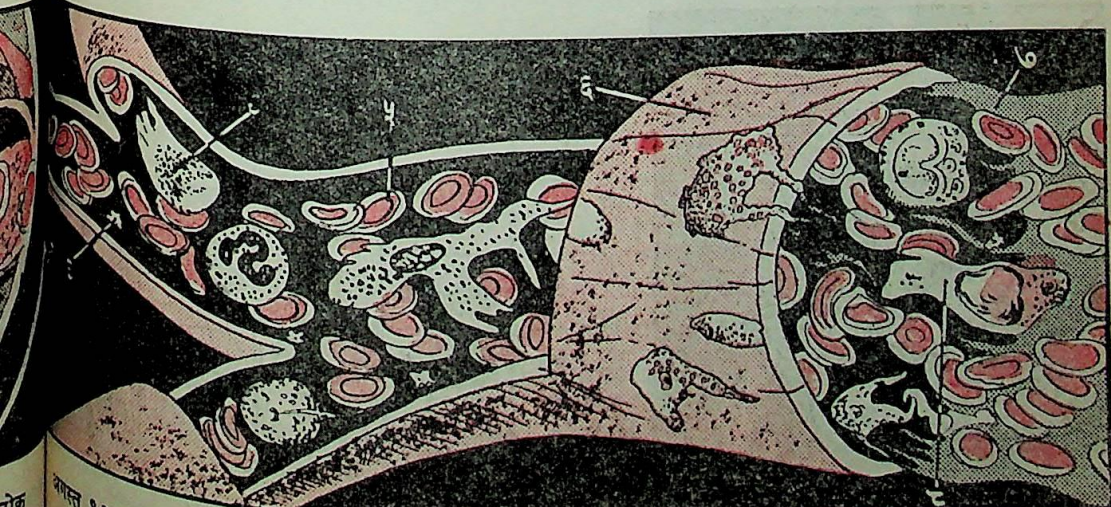
—रक्त का रंग को नली में लेकर एक विशिष्ट द्रव या जल को एक जालीदार गणक प्लेट (grid) पर एक निश्चित कोशिकाओं की संख्या गिन ली जाती है

(२) यदि केवल एन्टी-बी-सीरम रक्त को जकड़ा है तो रक्त का वर्ग 'बी' होगा।

(३) यदि दोनों ही सिरों पर रक्त जकड़ा जाता है तो रक्त का वर्ग 'एबी' होगा।

(४) यदि किसी भी सिरे पर रक्त नहीं जकड़ा जाता है तो रक्त का वर्ग 'ओ' होगा। 'ओ' वर्ग का रक्त सभी वर्गों वाले रोगियों को दिया जा सकता है।

एक और तत्त्व रीसस यदि रक्त में रक्त को श्वेत कोशिकाएँ हमारे शरीर के प्रहरियों का काम देती हैं और जो भी विजातीय आक्रमण करती हैं



चलता है कि शरीर के किसी अंग में रक्त सक्रिय है या नहीं।

रक्त संक्रामण की आवश्यकता

रक्त संक्रामण निम्न परिस्थितियों में आवश्यक है।

(१) एनीमिया, (२) तीव्र विष—जैसे कार्बन-मोनोआक्साइड जो हीमोग्लोबिन की आक्सीजन प्रवाहक क्षमता को नष्ट कर देता है, (३) आघात जिनसे अत्यधिक रक्त स्राव हो जाए, (४) रक्त के रोग, (५) जल जाना, (६) प्रसव के समय यदि अधिक स्राव हो जाए, (७) अत्यधिक चिन्ताओं के कारण यदि हृदय बैठने लग जाए, (८) दुर्घटना, (९) आर. एच. तत्त्व सम्बन्धी वच्चों में और (१०) तपेदिक (क्षय) और पुराने रोगों में, जिनके कारण रोगी बहुत निर्बल हो गया हो।

रक्त के उपयोग की अवधि

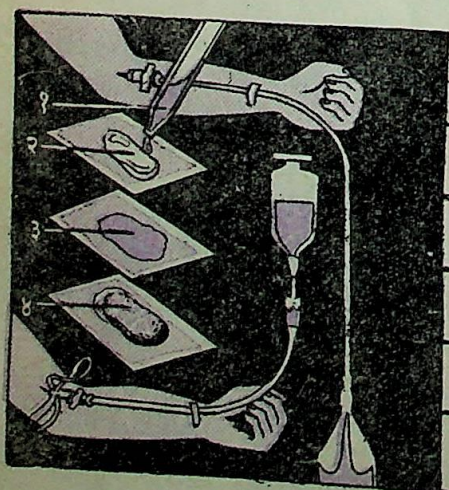
वर्तमान घोलों—जैसे सोडियम साइट्रेट द्वारा रक्त को २१ दिनों तक उपयोग के

योग्य रखा जा सकता है। इसके पश्चात् रक्त बिगड़ जाता है और संक्रामण के उपयुक्त नहीं रहता। २१ दिनों के पश्चात् भी रक्त को बेकार नहीं जाने दिया जाता। ऐसे रक्त से 'प्लाज्मा' और प्लाज्मा के उत्पाद—जैसे फिब्रिनोजिन, जो रक्त पिंडों के बनाने में सहायक होते हैं, जैसे महत्वपूर्ण पदार्थ तैयार कर लिये जाते हैं।

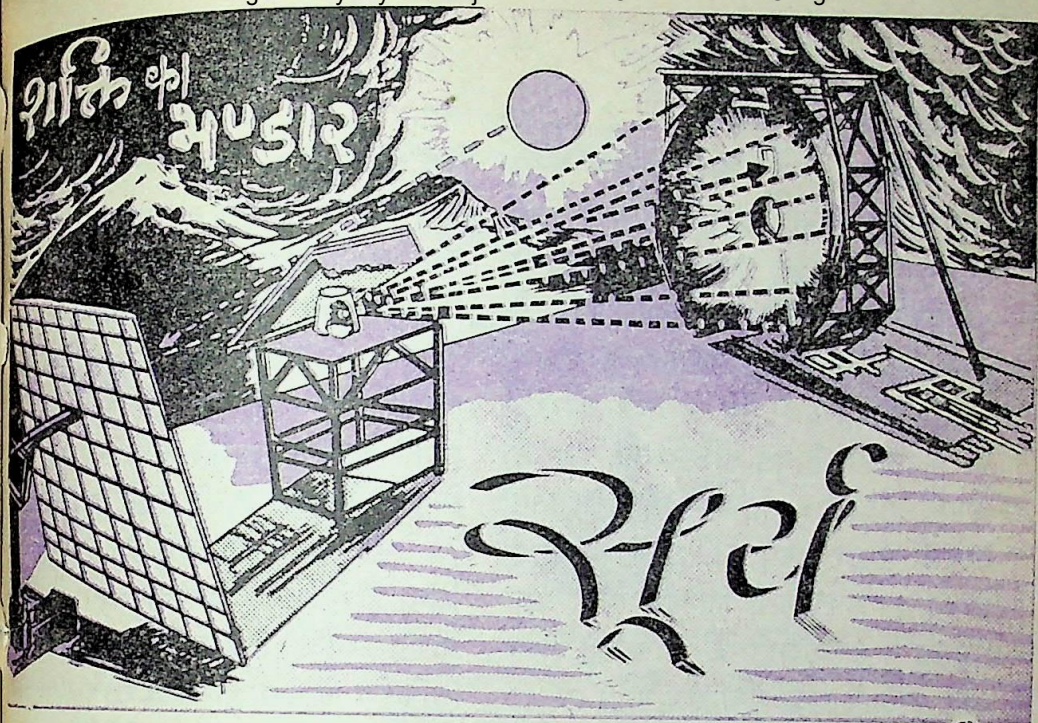
रक्त-दान का महत्त्व

हमारे शरीर में १० पौंड से भी अधिक रक्त प्रवाह करता रहता है। यदि इसमें से हम एक पौंड रक्त, बीमारों और घायल सैनिकों के लिए दान करते हैं तो इससे हमारे शरीर पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता और न ही रक्त देते समय हमें कोई कष्ट होता है। इन प्रकार जो रक्त दिया जाता है उसकी पूर्ति लगभग ६ सप्ताह में हो जाती है। रक्तदान का महत्त्व वही समझ सकता है जिसका कोई प्रियजन रक्त के अभाव में अस्पताल में पड़ा मौत से लड़ रहा होता है।

रक्ताधान (blood transfusion) की क्रिया से पूर्व रक्त देने वाले और पाने वाले पात्रों के रक्त का परीक्षण आवश्यक है। चित्र में दिखाये अनुसार यदि दोनों का मिश्रण एकरस बन जाता है तब तो रक्ताधान किया जाएगा अन्यथा नहीं



	पाने वाले के रक्तोद			
	A	B	AB	O
A				
B				
AB				
O				



डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

सम्पूर्ण सौर जगत में प्रकाश तथा गर्मी सूर्य से आती है। सूर्य के ही कारण पृथ्वी पर जीवन सम्भव है। पृथ्वी से लगभग सवा नौ करोड़ मील दूर होने पर भी सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक आठ मिनट में आ जाता है। सूर्य पृथ्वी की भाँति ही लगभग साढ़े आठ लाख मील के व्यास का बहुत बड़ा गोला है परन्तु वह पृथ्वी की तरह धातु, पत्थर या मिट्टी का बना हुआ नहीं है। सूर्य जलती हुई गैसों (मुख्यतः हाइड्रोजन) का बना हुआ एक गोला है। सूर्य की गर्मी का ताप लगभग दो करोड़ डिग्री सेंटीग्रेड है। इतने अधिक ताप के कारण हाइड्रोजन गैस के परमाणु लगातार विकीरित होते रहते हैं तथा हीलियम गैस के परमाणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं। इस क्रिया में जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसी को हम सूर्य के प्रकाश और गर्मी के रूप में प्राप्त करते हैं।

सूर्य की महानता

सूर्य की महानता उसके विशाल आकार में नहीं बल्कि उससे सौर जगत को प्रदान की जाने वाली शक्ति में है। महानता का एक उदाहरण इस प्रकार दर्शाया जा सकता है कि यदि सूर्य से आने वाले विकिरण की मात्रा केवल एक प्रतिशत ही कम कर दी जाए तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर औसत ताप एक डिग्री सेंटीग्रेड कम हो जाएगा। हमारी पृथ्वी पर ताप की यह कमी पृथ्वी के अधिकांश भागों पर ग्लेशियर तैयार करने तथा जन-समुदाय पर प्रभाव डालने के लिए काफी है।

घरों में कोयला तथा तेल जलाने के काम में लाया जाता है। यह सब सूर्य की ऊर्जा की देन है। सूर्य का विकिरण ही प्राचीन दबे हुए पदार्थों को रासायनिक ऊर्जा में बदल देता है। समस्त यातायात के साधन उस कोयले, तेल और पेट्रोल से ही चलते हैं जिनको सूर्य ऊर्जा ने पृथ्वी के

गर्भ में हजारों वर्षों में तैयार करके इकट्ठा कर रखा है।

विद्युत ऊर्जा भी सूर्य ऊर्जा के ही कारण उत्पन्न होती है। विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करने के दो ढंग हैं—कोयले द्वारा वाष्प-वायलर अथवा वाष्प-टरबाइन का उपयोग बिजली के डाइनमो चलाने के लिए किया जाता है या फिर पानी के झरनों से बिजली उत्पन्न की जाती है। पहले ढंग में जो कोयला काम में आता है वह तो सूर्य की ऊर्जा से ही तैयार होता है। रहा प्रश्न पानी के झरने से बिजली तैयार करने का, इसमें भी सूर्य ऊर्जा का यह उपयोग है कि जब पानी बहकर समुद्र में पहुँच जाता है तब उसको वाष्प बनाकर हवा में उड़ा देना सूर्य ऊर्जा का ही कार्य है। यही वाष्प ठण्डी होकर पहाड़ों पर हिम के रूप में जम जाती है और यही हिम पिघलकर पानी की नदियाँ बहा देते हैं जिनके झरनों से हमको विद्युत-शक्ति प्राप्त होती है।

कुछ समस्याएँ

हमारी पृथ्वी पर दैनिक कार्यों के लिए

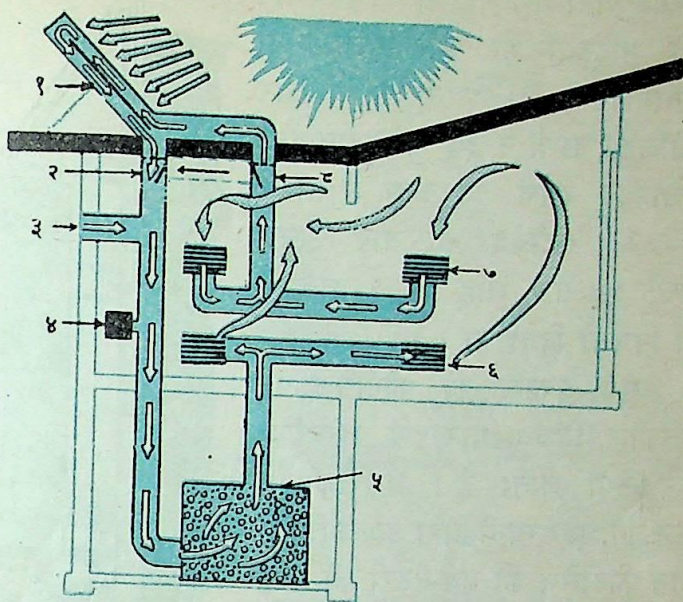
शक्ति प्रदान करने का मुख्य श्रेय कोयले तेल तथा प्राकृतिक गैसों को है। अनुमान लगाया गया है कि संसार में प्राप्त कोयला तेल अथवा गैस द्वारा उत्पन्न शक्ति मात्र तीन लाख अरब किलोवाट घण्टे की है तथा संसार में इन शक्तियों का दैनिक व्यय लगभग तीस हजार अरब किलोवाट घण्टे का है। गणना के इस आधार पर सूर्य द्वारा करोड़ों वर्षों में इकट्ठी की हुई सम्पूर्ण शक्ति लगभग सौ वर्ष के थोड़े से ही समय में पूर्णतया समाप्त हो जानी चाहिए।

भौतिक वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि पृथ्वी पर यदि सूर्य की किसी सीधी ऊर्ध्वाधर पड़ रही हो तब सूर्य द्वारा विकिरण की मात्रा १.३५ किलोवाट प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल होती है। यदि पृथ्वी के वायुमण्डल द्वारा इस विकिरण के कुछ भाग के शोषण का भी हिसाब लगा लिया जाय तब भी लगभग एक किलोवाट प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल की मात्रा का सूर्य विकिरण हमारे पृथ्वी पर आ जाता है। तुलना के लिए इस विकिरण को बीच के आकार के एक

सृष्टि का प्राणदाता सूर्य



हमें गर्म प्लेट अथवा विद्युत रेडियेटर के विकिरण के लगभग बराबर मान सकते हैं जो साधारणतया एक छोटे से कमरे को सर्दी में गर्म करने के लिए पर्याप्त हो। यदि यह भी गणना कर ली जाए कि सूर्य का विकिरण दिन भर में सुबह से शाम तक, विभिन्न कोणों पर आता है तब भी स्वच्छ आकाश वाले दिन में विषुवतीय प्रदेशों में किसी मकान की चौरस छत पर बारह घंटे में लगभग ६ किलोवाट घण्टे की सूर्य-ऊर्जा इकट्ठी की जा सकती है। यदि हम इस सूर्य-ऊर्जा को विद्युत शक्ति में परिणत करना चाहें और साथ में यह भी ध्यान रखें कि सूर्य-ऊर्जा का केवल ५० प्रतिशत भाग ही विद्युत ऊर्जा में परिणत होता है तब भी १० वर्गमीटर क्षेत्रफल के मकान की एक छत से प्रतिदिन १५० किलोवाट घण्टे विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। यह ऊर्जा एक ऐसे मकान में काम आनेवाली ऊर्जा से काफी अधिक है जो पूर्णतया विद्युत-युक्त हो तथा जिसमें विद्युत सम्बन्धी सभी साधन उपलब्ध हों। परन्तु इस ऊर्जा का मान भौगोलिक उच्च अक्षांशों के प्रदेशों में काफी कम होता जाएगा; क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणें सीधी नहीं पड़तीं तथा सूर्य भी बादलों से काफी समय तक छिपा रहता है। यदि सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए हिसाब लगाया जाए तो पन्द्रह करोड़ अरब किलोवाट घण्टे की सूर्य-ऊर्जा प्रति वर्ष पृथ्वी पर मिल सकती है। सूर्य द्वारा ऊर्जा की देन कितनी विशाल है, अब आपको अनुमान हो गया होगा।



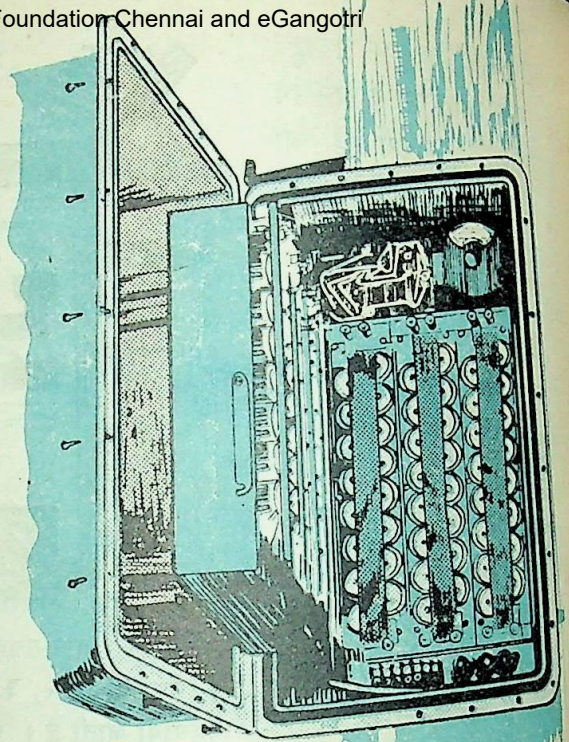
सूर्य द्वारा ताप-संग्रह—सौर-ताप संग्राहक में भरी हुई वायु १. तप्त होकर २, ३. पम्प ४. द्वारा नीचे कंकड़ों के ढेर ५. में पहुँचायी जाती है। वहाँ ताप शोषित कर लिया जाता है। वहाँ से वायु प्रसारक गवाक्षों ६. से होकर कमरे को गर्म करती हुई निष्कासन गवाक्ष ७. से बाहर निकल जाती है। यदि सूर्य बादलों में छिप जाता है तो वाल्व ८. बन्द कर दिया जाता है

सूर्य-ऊर्जा की उपयोगिता

प्रश्न उठता है कि यह सूर्य ऊर्जा इकट्ठी किस प्रकार की जाए तथा इसको किस प्रकार कार्य में लाया जाए? कुछ वर्ष पूर्व मिस्र, केलीफोर्निया तथा दक्षिणी अफ्रीका में परवलयाकार परावर्तक द्वारा सूर्य विकिरण इकट्ठा किया गया तथा उनको बहते हुए पानी के पाइपों पर डाला गया। इस पानी के द्वारा शोषित गर्मी को चीजें गर्म करने और ताप इंजन चलाने के काम में लाया गया है। हमारे देश में भी राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में इस दिशा में काफी प्रगति हो चुकी है। वृत्ताकार अथवा परलवयाकार परावर्तकों द्वारा सूर्य विकिरण को केन्द्रित करके ऊर्जा का उपयोग रेफ्रिजरेटर चलाने, मकानों को गरम रखने तथा इंजन चलाने आदि में किया जा रहा है। रूस में सूर्य की ऊर्जा को केन्द्रित करके पाकशालाओं में भोजन तैयार

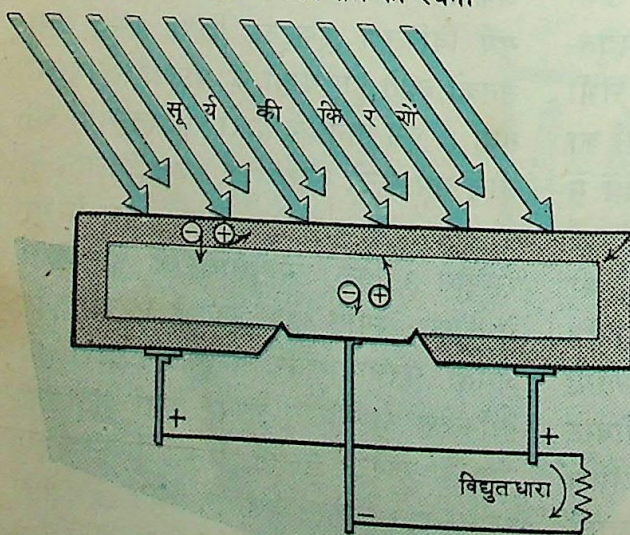
किया जाता है। धातुओं को पिघलाने की भट्ठियाँ भी इसी सिद्धान्त पर बनायी गयी हैं। फ्रान्स के प्रोफेसर फोलिक्स दाम्बे ने ३३ फुट व्यास वाले वृत्ताकार दर्पण को काम में लाकर 5000° सेंटीग्रेड का ताप उत्पन्न करके ५० सेर लोहे को १ घण्टे में ही पिघला दिया था।

सूर्य प्रकाश को फोटोसेल पर गिराकर विद्युत धारा में परिवर्तित कर लिया जाता है। अमरीका में आर. सी. ए. कम्पनी द्वारा उत्पन्न सिलीकोन फोटोसेल को सूर्य-बैटरी की तरह से टेलीफोन लाइनों में काम में लाया जाता है। सिलीकोन सेल सूर्य की दस प्रतिशत ऊर्जा को सीधे ही विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। इन फोटोसेलों का आकार एक रेजर-ब्लेड के बराबर होता है। जिन दिनों आकाश में बादल छाये रहते हैं उन दिनों भी ये फोटोसेल अपना कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी मकान की छत को फोटोसेलों से आच्छादित



सौर-बैटरियों द्वारा उत्पादित विद्युत इस संग्राहक में संचित कर ली जाती है। जब सौर-बैटरियाँ काम न करती हों अथवा अनियन्त्रित ऋतु में विद्युत-उत्पादन के अन्य साधन काम न करते हों तब इस संचित विद्युत से काम लिया जा सकता है

सिलीकोन सेल की रचना



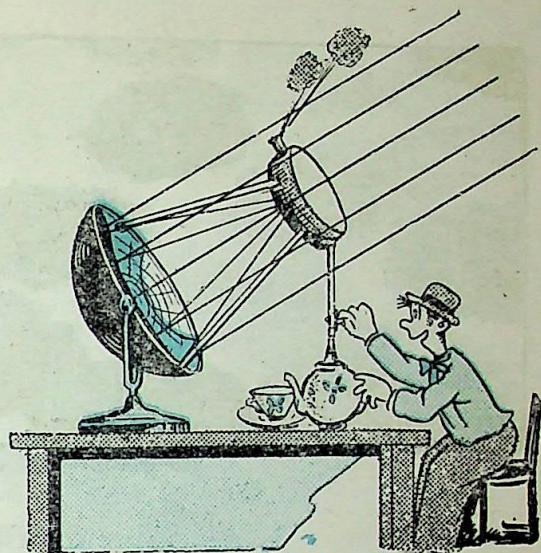
कर दिया जाए तो उससे काफी मात्रा में विद्युत धारा प्राप्त की जा सकती है। राकेट, अंतरिक्ष स्टेशन अथवा अंतरिक्ष-यान को चलाने के लिए तो शक्ति की काफी मात्रा अंतरिक्ष में ही सूर्य विकिरण से उत्पन्न की जाती है। अंतरिक्षयान को फोटोसेलों से सुसज्जित कर दिया जाता है जो सूर्य-ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिणत करते रहते हैं।

इसी प्रकार सूर्य विकिरण को थर्मोकपिल पर डालकर विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु इसका उपयोग ऊँचे पैमाने पर नहीं किया जा सकता क्योंकि थर्मोकपिल की दक्षता अधिक से अधिक एक प्रतिशत ही की जा सकती है। यदि सहारा के रेगिस्तान को थर्मोकपिल से भर दिया जाए तब भी उनसे उत्पन्न विद्युत धारा वृक्षों का खेल ही बनी रहेगी।

ऐसे भी प्रयत्न किये जा रहे हैं जिससे सूर्य-ऊर्जा को रेडियो, रेलगाड़ियाँ एवं जहाज आदि चलाने के काम में लाया जा सके। पृथ्वी की ओर सूर्य विकिरण की ऊर्जा इतनी अधिक है कि इसका पचास हजारवाँ भाग ही समस्त संसार की विद्युत-शक्ति की आवश्यकता को पूरा कर सकता है। परन्तु आधुनिक तकनीकी सम्भावनाओं अथवा भविष्य के उपायों पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि संसार की विद्युत-शक्ति की सम्पूर्ण आवश्यकता केवल सूर्य विकिरण से कभी पूरी नहीं हो सकती।

सूर्य-ऊर्जा ही परमाणु ऊर्जा है

जब सूर्य से उत्पन्न ऊर्जा के कारणों पर विचार किया गया तो वेथे तथा विजाकर नामक वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि सूर्य के गर्भ में परमाणु परिवर्तन होते रहते हैं जिनसे सूर्य की ऊर्जा उत्पन्न होती रहती है। वास्तव में सूर्य एक परमाणुशक्ति-घर है जो परमाणु परिवर्तनों तथा



सूर्य-ऊर्जा का पाकशाला में प्रयोग

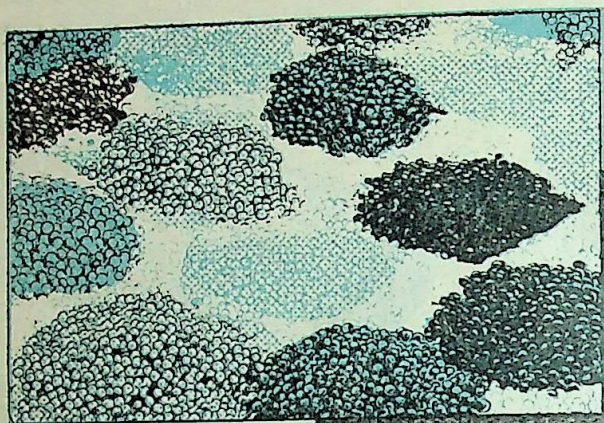
अन्तर-क्रियाओं के कारण परमाणु के नाभिकों में छिपी ऊर्जा को सदैव बाहर फेंकता रहता है। हाइड्रोजन बम का सिद्धान्त भी सूर्य की इसी परमाणु ऊर्जा की देन है।

इसमें सन्देह नहीं कि सूर्य की ऊर्जा एक परमाणु ऊर्जा है, परन्तु इसका विपरीत सत्य नहीं है अर्थात् परमाणु ऊर्जा कभी भी सूर्य से आने वाली ऊर्जा नहीं कही जा सकती। इस समय सूर्य की परमाणु ऊर्जा इतनी सहायक नहीं है कि हमारी पृथ्वी पर परमाणु ऊर्जा समस्त शक्तियों की समस्याओं का हल करने के लिए पर्याप्त हो सके। परन्तु भविष्य में सम्भव है कि सूर्य की ऊर्जा को अनेक प्रकार के उपायों द्वारा अधिक काम में लाया जा सके।

कीट-नाशन के लिए कीट-उत्पादन

सोवियत वैज्ञानिकों ने जंगली सेबों की फसलें नष्ट करने वाले कीटाणुओं के उन्मूलन के लिए संकर-कीटाणु उत्पन्न करने के सफल प्रयोग किये हैं। इससे पूर्व सेब के वृक्षों की शाखें उन हानिकारक कीटाणुओं के प्रभाव से ऐसी हो जाती थीं मानो वे आग में झुलस गयी हों। उन वैज्ञानिकों ने लगभग २० स्थानों से मँगवाये गये इश्नूमौन आगेनियास्पिस नामक कीटाणुओं को संकरक्रिया द्वारा उत्पादित करके उन्हें वृक्षों पर फैलाने के लिए छोड़ दिया। उन संकर कीटाणुओं ने हानिकारक कीटाणुओं का बिलकुल सफाया करके सेबों की फसलों को पूर्ण सुरक्षित कर दिया है।

अगस्त १९६३



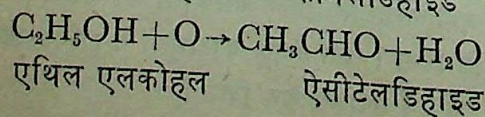
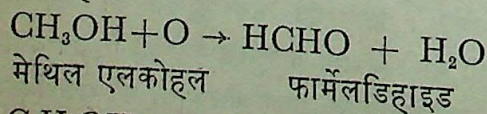
एलडीहाइड

सत्यकुमार

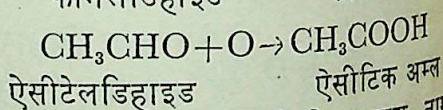
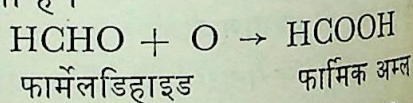
आपका गला कभी अवश्य खराब हुआ होगा और आपको चूसने के लिए जो गोलियाँ (लोजेंज) दी गयी होंगी वे आपने अवश्य पसन्द की होंगी। यह गोलियाँ फार्मेलडिहाइड और लेक्टोज मिलाकर बनायी जाती हैं।

आपने प्लास्टिक अवश्य देखा होगा। प्लास्टिक कई प्रकार के होते हैं। उद्योग में अधिक प्रयुक्त होने वाला प्लास्टिक बेकेलाइट है। इसे सर्वप्रथम १९०५ में बेक्लोड ने बनाया था। यह फार्मेलडिहाइड और फीनोल का बहुलक (polymer) होता है।

फार्मेलडिहाइड एक प्रमुख एलडीहाइड है। एलडीहाइड परिवार का यह प्रथम सदस्य है। प्राथमिक एलकोहलों के आक्सीकरण से एलडीहाइड बनते हैं। किसी भी एलकोहल में से यदि हाइड्रोजन के दो परमाणु निकल जाएँ तो सम्बन्धित एलडीहाइड बन जाता है। कार्बनिक रसायन में इस प्रकार परिवारों की सजात श्रेणियाँ बनती हैं।



$\text{RCH}_2\text{OH} \rightarrow \text{RCHO} + \text{H}_2\text{O}$
प्राथमिक एलकोहल एलडीहाइड
—CHO एलडीहाइड वर्ग कहलाता है।
एलडीहाइडों के गुण इसी वर्ग पर निर्भर करते हैं। आक्सीकृत किये जाने पर एलडीहाइड वसीय अम्लों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन्हीं सम्बन्धित अम्लों के नाम से एलडीहाइडों का भी नाम संस्कार किया जाता है।



फार्मिक अम्ल बनने के कारण नाम पड़ गया फार्मेलडिहाइड। हालाँकि अम्ल के स्वयं के नामकरण की भी बड़ी रोचक कथा है। सर्वप्रथम इसे चींटियों के स्रवण से प्राप्त किया गया था। लैटिन भाषा में 'फार्मिक' शब्द का अर्थ होता है चींटी। उसी से यह नाम चला आ रहा है। इसी प्रकार सिरके में पाये जाने के कारण दूसरे अम्ल का नाम पड़ गया ऐसीटिक अम्ल। इससे बना ऐसीटेलडिहाइड।

फार्मेलडिहाइड एक तीक्ष्ण गंध वाली गैस है। एक बार सूँघ लेने पर इस गैस

की गंध सहज भूली नहीं जा सकती।
आँख, नाक और गले की झिल्लियों पर
इसका प्रभाव पड़ता है। कसकर सूँघने पर
आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती
है। उपयुक्त परिस्थितियों में फार्मेलडिहाइड
का बहुलीकरण कर पैरा-फार्मेलडिहाइड में
बदल लिया जाता है। यह ठोस पदार्थ है
तथा इसमें तीक्ष्ण गंध नहीं होती। थोड़ा-
सा गरम करने पर इसमें से फार्मेलडिहाइड
गैस निकलने लगती है। पैरा-फार्मेलडिहाइड
के रूप में एक स्थान से दूसरे पर भेजने में
सुविधा रहती है।

फार्मेलडिहाइड की झिल्ली पर इतना
तीक्ष्ण प्रभाव होने का कारण इसका प्रोटीन
से सहज ही संयोग कर लेना है। प्रोटीन
सभी जीवित ऊतक (living tissues) में
होता है। संयोग के कारण ऊतक कड़ा हो
जाता है और उसकी जीवकोशाएँ समाप्त
हो जाती हैं। अन्य अणुजीव भी इसकी
उपस्थिति में मर जाते हैं। अतः फार्मेल-

डिहाइड का उपयोग ऊतक
को सुरक्षित रखने में किया
जा सकता है। प्रयोगशाला
में काँच के बड़े-बड़े मरत-
दानों में आपने पशु-पक्षियों
के शरीरों को किसी द्रव में
सुरक्षित देखा होगा। यह
द्रव फार्मेलिन कहलाता है।
यह फार्मेलडिहाइड गैस का
४०% विलयन होता है।
ठरियाँ इसमें गलती-सड़ती
नहीं तथा ऊतक बहुत कठोर
हो जाता है। कठोर हो
जाने के कारण इसको
उठाने, धरने तथा चीड़-
फाड़ करने में आसानी
रहती है।

फार्मेलडिहाइड और फीनोल मिलकर
'रेजिन' बनाते हैं। रेजिन में कुछ अन्य
पदार्थ मिलाकर प्लास्टिक बना लेते हैं।
इनके बहुलक द्वारा बेकेलाइट बनता है।

गोंद, सरेस, जिलेटिन इत्यादि भी
फार्मेलडिहाइड द्वारा कठोर बना दिये जाते
हैं। जल में इनकी विलेयता भी समाप्त हो
जाती है। अतः चमड़ा उद्योग में इसका
पर्याप्त इस्तेमाल होता है।

यूरिया और फार्मेलडिहाइड मिलकर
भी प्लास्टिक उद्योग में परतों को चिपकाने
के काम आते हैं। रंग उद्योग में भी
फार्मेलडिहाइड प्रयुक्त होता है।

अमोनिया के साथ फार्मेलडिहाइड का
एक यौगिक बनता है यूरोट्रोपिन। पहले
यह मूत्र सम्बन्धी रोगों के उपचार में काम
आता था। गठिया के लिए भी यह श्रेष्ठ
ओषधि है। खबर उद्योग में भी यूरोट्रोपिन
वल्कनीकरण (vulcanisation) के काम
आता है। इसके नाइट्रीकरण द्वारा 'साइ-

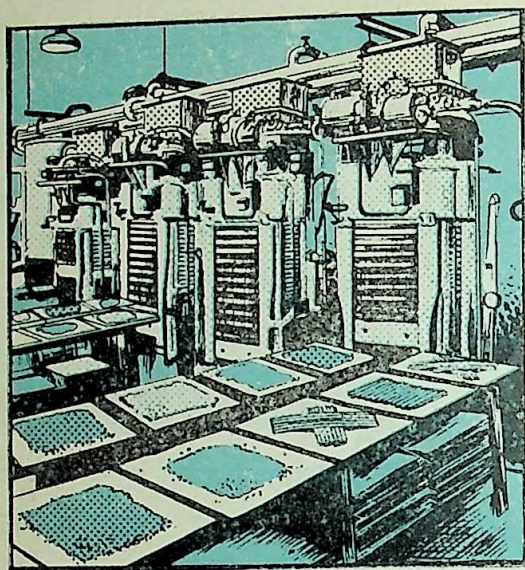
फार्मेलिन में ही जेलीफिश सुरक्षित
रखी जा सकती है



क्लोनाइट' बनता है। यह
टी. एन. टी. से ड्योढ़ी
शक्ति का विस्फोटक है।

फार्मेलडिहाइड के दो
हाइड्रोजन परमाणुओं के
स्थान पर क्लोटीन के दो
परमाणु आ जाएँ तो अत्यन्त
विषैली गैस 'फोसजीन'
(COCl_2) बनती है। एक
बार कसकर खींच लेने पर
मृत्यु निश्चित है। प्रथम
महायुद्ध में इसका प्रयोग
हुआ था।

हम ऊपर कह चुके हैं
कि —CHO एलडीहाइड
वर्ग हुआ, केवल फार्मेल-
डिहाइड में यह वर्ग एक



विभिन्न रंगों के इन केसीन पाउडरों की शीट बनाने के पश्चात् उन पर फार्मेलिन की प्रक्रिया कराकर उन्हें प्लास्टिक में परिवर्तित कर लिया जाएगा

हाइड्रोजन परमाणु से सम्बन्धित रहता है। अन्य एलडीहाइड में इस वर्ग का कार्बन परमाणु दूसरे कार्बन परमाणु से सम्बन्धित रहता है। इस प्रकार CH_2 के अन्तर से इस सजात श्रेणी के सदस्य बढ़ते चलते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण एलडीहाइड ऐसीटेलडिहाइड है। यह द्रव है पर इसका क्वथनांक बहुत कम, 20° से. है। सान्द्र अम्लों की उपस्थिति में इसके तीन अणुओं का बहुलीकरण होकर चक्रीय यौगिक पैरालडिहाइड बनता है। पैरालडिहाइड बन जाने पर इसका क्वथनांक 122° से. हो जाता है और इस रूप में इसे सरलता से इधर-उधर भेजा जा सकता है। ऐसीटेलडिहाइड का क्वथनांक बहुत कम है। अतः उसके वाष्प रूप में परिवर्तित होकर निकल जाने का डर रहता है। पैरालडिहाइड की किसी भी दुर्बल अम्ल से प्रक्रिया करने पर पुनः ऐसीटेलडिहाइड बन जाता है।

ऐसीटेलडिहाइड हमारे शरीर में भी बनता रहता है, किन्तु स्थायी नहीं रहता

और बनते ही अन्य पदार्थों में परिवर्तित हो जाता है। उपापचयन (metabolism) में यह माध्यमिक यौगिक होता है। प्रायः शरीर में एथिल एलकोहल ऐसीटेलडिहाइड में परिवर्तित होता रहता है। ऐसीटेलडिहाइड स्थायी नहीं होता अन्यथा यह हानिकारक पदार्थ है। शरीर में प्रायः एथिल एलकोहल ही पहुँचता है। यदि अन्य एलकोहल पहुँचते तो उससे वे एलडीहाइड अत्यन्त हानिकारक होते।

प्रत्येक मनुष्य का शारीरिक रसायन भिन्न-भिन्न होता है। कुछ लोगों के शरीर में ऐसीटेलडिहाइड जल्दी परिवर्तित होता है, अन्य लोगों के शरीर में देर लगती है। जिन लोगों के शरीर में यह कुछ देर स्थायी रहता है उन पर शराब पीने से कुप्रभाव पड़ता है। शराब में एथिल एलकोहल होता है। वह ऐसीटेलडिहाइड में आक्सीकृत हो जाता है, ऐसीटेलडिहाइड उसके शरीर में पहले से ही उपस्थित है अतः वे शराब बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। परेशान हो जाते हैं। शराब की आदत छुड़ाने की विधियों में एक प्रयोग यह भी है। डाक्टर की राय से रोगी (शराबी) को ऐसी दवाइयाँ देते हैं कि शराब का घूँट पीते ही उसके शरीर में ऐसीटेलडिहाइड पर्याप्त बन जाता है और मजा किरकिरा हो जाता है। दो-चार बार जहाँ ऐसा अनुभव हुआ कि उसने तौबा की।

पैरालडिहाइड शमक के रूप में डाक्टरों द्वारा प्रयोग किया जाता है। पानी के साथ थोड़ा पैरालडिहाइड दे दिया जाता है। १०-१५ मिनट पश्चात् रोगी आराम से सो जाता है। पैरालडिहाइड से भी उत्तम निद्रा लाने वाला पदार्थ क्लोरल हाइड्रेट है। यदि ऐसीटेलडिहाइड के मेथिल वर्ग के तीन हाइड्रोजन परमाणुओं के स्थान पर क्लोरल के तीन परमाणु आ जाएँ तो क्लोरल बनता

है। जल में घुलने पर यह अम्ल एक अणु अणु प्रमुख पदार्थों के अतिरिक्त दालचीनी केर क्लोरल हाइड्रेट बन जाता है। अत्यधिक आवश्यकता होने पर ही इन शमक पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। इनका स्वाद भी बुरा होता है तथा ये पेट में गड़बड़ी पैदा करते हैं। इनकी आदत पड़ने पर बिना दवा के नींद ही नहीं आती। मात्रा से अधिक खुराक ले लेने पर मृत्यु भी हो सकती है।

फार्मेलिडहाइड और ऐसीटेलिडहाइड दो प्रमुख एलडीहाइड हैं। वैसे अनेक एलडीहाइडों में सुगन्ध होती है और कृत्रिम सुगन्ध के रूप में उनका उपयोग होता है। सिट्राल दस कार्बन परमाणु वाला एलडीहाइड होता है। इसमें नीबू की बड़ी गंध होती है। नीबू के शर्बत आदि में इसी का प्रयोग होता है।

बेंजिलिडहाइड में एलडीहाइड वर्ग के तीन चक्र से सम्बन्धित होता है। इसमें बादामों की सी तेज गंध होती है। बादाम से सुगन्ध देने के लिए यह बहुत प्रयुक्त होता है।

विस्कुट आदि खाद्य-पदार्थों में आपने विशिष्ट गंध सूंघी होगी। यह यौगिक वेनीलीन होता है। वेनीला नाम से इसका बहुत अधिक प्रचलन है। इसमें एलडीहाइड वर्ग के अतिरिक्त हाइड्राकिल और ईथर वर्ग भी होता है।

टैंकचालक के लिए नया सिरस्त्राण

युद्धक्षेत्र पर टैंकचालकों को अब तक भारी, स्टील के सिरस्त्राण पहनने पड़ते थे। उनके स्थान पर अब जो नये नमूने बनाये गये हैं उर्नमें अनेक विशेषताएँ हैं। नाइलान का बना यह सिरस्त्राण वजन में केवल तीन पौण्ड है और गोलियों की बौछारें तथा गोलों के टुकड़ों से उसी क्षमतापूर्वक रक्षा करता है जैसे स्टील-निर्मित करता है। हर प्रकार की चोटें और धक्के सहने के लिए इसमें पंज भी लगे रहते हैं। इनमें नवीनता यह है कि वायरलेस-संवादों के प्रसारण तथा ग्रहण करने के लिए एक छोटा माइक्रोफोन, उसका स्विच तथा अन्य उपकरण भी रहते हैं।

अप्रैल १९६३

इत्यादि की गंध विभिन्न एलडीहाइडों में पायी जाती है। एलडीहाइड पानी में नहीं घुलते। यह एथिल एलकोहल में विलेय है। इसीलिए इत्र आदि में एलकोहल होता है।

कई छोटे अणु यदि संयोग करके एक बड़ा अणु बना लें जिसका अणुभार उस छोटे अणु का ही कई गुना हो तो वह यौगिक बहुलक कहलाता है। प्रकृति ने पदार्थों के इस गुण का बहुत सुन्दर उपयोग किया है। सूर्य के प्रकाश में, पौधों में क्लोरोफिल की उपस्थिति में, कार्बन डाइ-आक्साइड और जल मिलकर पहले फार्मेल-डिहाइड बनाते हैं। इसके अनेक अणु मिलकर नाना प्रकार की शर्करा बनाते हैं जिनसे पौधे को अपनी वृद्धि के लिए स्टार्च, सेल्युलोज इत्यादि अनेक पदार्थ स्वतः प्राप्त होते रहते हैं।

पौधे कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं और आक्सीजन देते हैं। पर वे कार्बन डाइ-आक्साइड को परिवर्तित रूप फार्मेलिडहाइड में लेते हैं। इस क्रिया के कारण ही संसार के समस्त प्राणियों के द्वारा आक्सीजन लेने और कार्बन डाइआक्साइड निकालने पर भी वायुमण्डल में न तो आक्सीजन की कमी होती है और न ही कार्बन डाइआक्साइड की अधिकता।



विशिष्ट वर्ग एकत्रित हों तो
हाईलैण्ड
चीफ

माल्टेड विहस्की

एक अरोध्य प्रलोभन है

जब कभी मित्रगण सम्मिलित होते हैं तो अच्छी व्हिस्की से अधिक सुखद और कुछ नहीं है। उस सभा को अविस्मरणीय बनाने के हेतु आप उत्तम विधि तथा सावधानी से मिश्रित हाईलैण्ड चीफ से अधिक अच्छा चुनाव नहीं कर सकते।



DMB-NP-331

डायर मीकिन ब्रूअरीज़ लि० स्थापित १८५५



कुंवर सुरेशसिंह

कोयल किस प्रकार अपने अंडों को दूसरे पक्षियों के घोंसले में सेने के लिए छोड़ आती है और घोंसले से कैसे उसके बच्चे उन्हीं पक्षियों द्वारा पाले-पोसे जाते हैं, इसके बारे में थोड़ा-बहुत तो हम सब जानते ही हैं लेकिन इसका पूरा विवरण इतना रोचक है कि यहाँ विस्तार से देना ही ठीक होगा। कोयल की जाति की कई चिड़ियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं जो दूसरों के घोंसलों में अपने अंडे दे आती हैं। उनमें कुछ खास के नाम यहाँ दिये जाते हैं : कुक्कू (यूरोपीय कोयल), काफलपाको (भारतीय कोयल), पीपीहा (हाक कुक्कू), चातक (पाइड क्रेस्टेड कुक्कू) और कोयल। इन सब पक्षियों ने न जाने कितने समय से अपने अंडों को सेना छोड़ दिया है और अब वे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में अपना अंडा इसलिए चालाकी से रख आती हैं कि उन्हें दूसरे पक्षी अपना अंडा समझकर सेने लगें और अंडा फूटने पर उनके बच्चों का उन्हीं के द्वारा पालन-पोषण हो। इन पक्षियों को इस काम में प्रकृति की ओर से भी सहायता मिलती है।

कोयल के इस रहस्योद्घाटन पर विशेषज्ञों ने पचीसों वर्ष लगा दिये तब कहीं जाकर उन्हें कोयल की सच्ची कहानी का पता चला। पहले लोगों का विश्वास था कि कोयल अपने अंडे कहीं जमीन पर देती है और वहाँ से उन्हें एक एक करके अपनी चोंच से उठाकर दूसरे पक्षियों के घोंसलों में रख आती है। इस विश्वास का मुख्य कारण यह था कि अंडा देने का समय आने पर हमें अक्सर कोयल अपनी चोंच में अंडा लिए हुए उड़ती दिखाई पड़ती है। लेकिन थोड़े ही दिन हुए श्री एडगर चान्स ने कोयल के इस रहस्य का पता लगा लिया कि कोयल किस प्रकार अपने अंडे दूसरों के घोंसले में रख आती है।

श्री एडगर चान्स ने कई वर्ष तक कोयल का निरीक्षण किया और कोयल के अण्डा देने की पूरी प्रक्रिया को सिनेमा के कैमरे से चित्र खींचकर यह सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार कोयल के अंडे दूसरे पक्षियों के घोंसले में पहुँचते हैं। उनके इस कार्य से पूर्व मत का पूर्ण रूप



सुनहरी चोंच की कोयल बड़े शौक से नन्हें गिराड़ों का भोजन करती है

से खण्डन हो गया और अब सब लोग कोयल के रहस्य को जानने लगे हैं। यदि श्री एडगर चान्स सिनेमा फिल्म का सहारा न लेते तो पुराना मत मानने वाले विद्वान इसे कभी स्वीकार न करते कि कोयल अपने अंडे बाहर देकर चोंच से दूसरे पक्षियों के घोंसले में नहीं रखती, क्योंकि उनके पास अपने मत के समर्थन के लिए और भी कई सुन्दर दलीलें थीं। पुराने मत वाले कहते थे कि कोयल को इतना समय नहीं मिलता कि वह निश्चिन्त होकर दूसरे के घोंसले में अंडा दे। इससे यही जान पड़ता है कि वह अपने अंडे कहीं बाहर देती है और वहाँ से एक एक अंडे को उठाकर चालाकी से दूसरे के घोंसले में रख देती है। दूसरा प्रमाण जो वे लोग देते थे वह यह था कि कोयल के अंडे कुछ ऐसे घोंसले में पाये जाते हैं जो बहुत छोटे और गोल गुम्बद के आकार के होते हैं और जिनमें घुसना कोयल के लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं है। अतः कोयल इन घोंसलों में केवल अपनी चोंच डालकर ही अंडे रख सकती है।

श्री एडगर चान्स ने चित्र लेने के लिए कुक्कू (यूरोपीय कोयल) को चुना, क्योंकि कोयल तो केवल भारत की चिड़िया है।

यूरोप में इस जाति की दूसरी चिड़िया कुक्कू कहलाती है जो वहाँ काफी संख्या में पायी जाती है। दोनों की आदतों में अधिक अन्तर नहीं होता। फिर अंडा देने के मामले में तो हमारी कोयल, कुक्कू, काफल-पाको, पपीहा तथा चातक सब एक ही जैसे हैं। कुक्कू अक्सर चिचरी (पिपिट) के घोंसले में अंडे देती है। इसलिए चिचरी का एक ऐसा

घोंसला चुना गया जो कँटीली भाड़ियों के बीच में था। उस भाड़ी को और भी काँटों से अच्छी तरह रूँध दिया गया जिससे वहाँ तक पहुँचने के लिए सिर्फ एक पतला सूराख रह जाए और जिसमें कुक्कू की चोंच भर जा सके तथा खुद न जा सके। समय आने पर मादा कुक्कू भाड़ी के पास पहुँच गयी। उसने भाड़ी में घुसने की कोशिश की लेकिन उसमें घुसना सम्भव नहीं था। घोंसले के सामने खाली जमीन पड़ी थी, जिस पर कुक्कू अंडे दे सकती थी लेकिन उसने वहाँ अंडा नहीं दिया, बल्कि भाड़ी के ऊपर बैठ कर उसमें घुसने की कोशिश करने लगी। धीरे-धीरे वह काँटों को इधर-उधर दबा कर चिचरी के घोंसले तक पहुँच ही गयी। उसके पर उखड़ गये। वह घायल हो गयी लेकिन उसने तब तक दम नहीं लिया जब तक वह घोंसले तक नहीं पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी चोंच में चिचरी का एक अंडा उठा लिया और उसके स्थान पर स्वयं एक अंडा देकर भाड़ी के बाहर निकल आयी और चिचरी के अंडे को एक डाल पर बैठकर चट कर गयी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कुक्कू अपने अंडे जमीन पर न

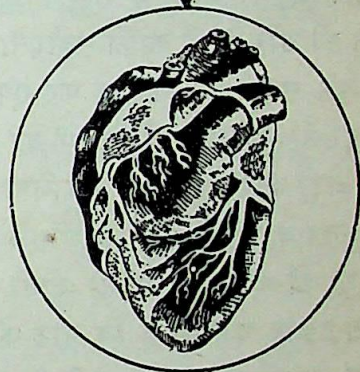
देकर सीधे दूसरे पक्षियों के घोंसले में ही देती है।

कोयल अथवा कुक्कू के बारे में और जो बातें निरीक्षण से ज्ञात हुई हैं वे इस प्रकार हैं—कोयल और उसकी जाति के अन्य पक्षी कौए, चरखी, चिचरी, पादनां आदि के घोंसले में अपने अंडे देते हैं। ये अंडे एक ही दिन में नहीं दिये जाते बल्कि इन्हें कोयल एक एक दिन का अन्तर देकर देती है। उसे जिस दिन अंडा देना होता है वह किसी पेड़ की डाल पर उसी तरह घंटों बैठी रहती है जिस प्रकार अन्य चिड़ियाँ अंडा देने से कुछ समय पहले चुपचाप बैठ जाती हैं। फिर अंडा देने का समय आने पर वह हवा में उड़कर उस घोंसले पर पहुँच जाती है जिसे वह पहले से ही चुने रहती है। वहाँ पहुँचकर वह अपना समय नष्ट नहीं करती और फौरन ही एक अंडे को अपनी चोंच में उठाकर उसके स्थान पर खुद अंडा देकर उड़ जाती है। इस सबमें उसे मुश्किल से १० सेकण्ड का समय लगता है। कोयल अंडा लेकर किसी डाल पर जा बैठती है और वहीं उसे निगल जाती है। ४-६ घंटे के कठिन परिश्रम के बाद उसे यही पहला भोजन मिलता है।

अपना अंडा दूसरे के घोंसले में देकर कोयल उसे भूल नहीं जाती बल्कि समय समय पर उसे देखती रहती है और यदि वहाँ अपने अंडे को नहीं पाती तो फिर वहीं अपना दूसरा अंडा दे आती है। इस प्रकार तब तक बार-बार अंडे देती रहती है जब तक वह उन्हें सुरक्षित नहीं देख लेती। वैसे तो कोयल साधारणतया ४-५ अंडे देती है लेकिन इस प्रकार अंडे नष्ट हो जाने पर उसे २५ अंडे तक देते देखा गया है।

लगभग १३ दिन में कोयल का अंडा फूट जाता है और कोयल का भड़ा-सा

**चिन्ता और भय का
हृदय पर गहरा
प्रभाव होता
है**



साफ़ी

पाचन-क्रिया को ठीक करती है, खून को साफ़ करती है और ताज़ा खून पैदा करके चेहरे पर ताज़गी लाती है।



हमदर्

देहली-कानपुर-पटना

बच्चा निकल आता है। शुरू में उसकी आँखें नहीं खुली रहतीं और वह घोंसले के बीच में लोथड़े के समान पड़ा रहता है। पहले दिन तो वह चुपचाप पड़ा रहता है लेकिन दूसरे दिन शाम को या तीसरे दिन सवेरे तक उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वह घोंसले के दूसरे बच्चों और अंडों के बाहर फेंकने में ही अपनी भलाई देखता है और वह उन्हें घोंसले के बाहर फेंकने का काम शुरू कर देता है। इस काम में उसे कठिनाई जरूर पड़ती है लेकिन इसमें उसे प्रकृति की ओर से भी काफी सहायता मिलती है। इस समय उसकी पीठ पर एक प्रकार का गढ़ा-सा हो जाता है जिसमें वह कोशिश करके अंडों और बच्चों को रख लेता है और उसके बाद वह अपने पंजों से घोंसले के दोनों किनारों को पकड़कर अपनी दोनों भुजाओं को इस प्रकार चलाता है कि पीठ की मांस-पेशियाँ मथनी की तरह चलती हैं और पीठ पर के गढ़े में जो अंडा या बच्चा रहता है वह उछलकर घोंसले के बाहर जा गिरता है। इसी प्रकार वह एक-एक करके सब अंडों और बच्चों को बाहर निकाल फेंकता है और घोंसले में उसका एकछत्र राज्य स्थापित हो जाता है।

अब कोयल का यह बच्चा घोंसले में सौतेले माँ-बाप के लाये हुए भोजन को अकेले ही खा-खाकर खूब मोटा होता जाता

है और धीरे-धीरे उसका शरीर मुलायम पंखों से ढक जाता है। उसका शरीर घोंसले से बड़ा हो जाता है और वह बड़ी मुश्किल से उस पर किसी प्रकार अपने को सम्हाल रहा है। कुछ दिन बाद उसके उड़ने की वारी आती है और वह थोड़ी दूर उड़कर किसी डाल पर बैठ बड़े मीठे स्वर में बोलता है। उसकी बोली सुनकर आसपास के पक्षी जो इधर-उधर से अपने बच्चों के लिए खाना लेकर गुजरते हैं उसकी खुली हुई चोंच और फैले हुए मुँह को देखकर उसके मुँह में खाना रख देते हैं। इस प्रकार यह परजीवी-पक्षी दूसरों के भोजन से अपना पेट भरकर बड़ा हो जाता है। और अन्त में एक दिन पालन-पोषण करने वाले उसे छोड़कर उड़ जाते हैं।

ऐसी हालत में उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। उसे बैठे-बैठे कीड़े-मकोड़ों की नरम जोराइयाँ तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ मिलने बन्द हो जाते हैं। वह मजबूरन शाकाहारी हो जाता है और नरम कोपलों और पत्तियों से अपना पेट भरने लगता है। लेकिन उसे इस प्रकार थोड़े ही दिन बिताने पड़ते हैं और पुनः वह अपने असली भोजन कीड़े-मकोड़े आदि से अपना पेट भरना शुरू कर देता है। इस प्रकार कोयल का रहस्यमय जीवन एक साधारण पक्षी की तरह बीतने लगता है।

बाल-पक्षाघात निरोधक टिकियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले सोवियत संघ में बाल-पक्षाघात बहुत ही कम-परिचित रोग था। युद्ध के पश्चात् यह महामारी के रूप में फैलता चला। सोवियत वैज्ञानिक और चिकित्सक इससे अति चिन्तित हो उठे और वर्षों के परिश्रम तथा प्रयोगों के अनन्तर ऐसी मीठी टिकियाँ तैयार की गईं जिनमें पक्षाघात-निरोधक जीवित टीके की कुछ बूँदें भी रहती हैं। ये टिकियाँ पूर्णतः हानिरहित तथा प्रभावयुक्त सिद्ध हुई हैं।

पौधों का

कृत्रिम उत्पादन



प्रेमानन्द चन्दोला

एक सजीव पदार्थ की यह विशेषता है कि वह अपनी जाति बढ़ाने के लिए पुनरुत्पादन या जनन करता है अर्थात् अपने ही अनुरूप अन्य छोटे और वृद्धि कर सकने वाले जीवों के उत्पादन की क्षमता रखता है। इस क्रिया को सम्पन्न बनाने में उसे कृति योग देती है। इसलिए यह उत्पादन या जनन जिसे हम नित्य-प्रति अपने जीवन में देखते हैं, प्राकृतिक उत्पादन हुआ, परन्तु अब स्वयं मनुष्य भी अपनी इच्छानुसार पौधों का उत्पादन करने लगा है। मनुष्य द्वारा सम्पन्न होने वाली 'पादप-उत्पादन' की इस विधि को ही पौधों के कृत्रिम उत्पादन के नाम से पुकारा जाता है। कृत्रिम उत्पादन की कई रीतियाँ हैं, जिन पर आये दिन निरन्तर प्रयोग चल रहे हैं। मनुष्य ने इस विधि को इसलिए अपनाया कि वह स्वयं पौधों को छाँटकर, उन पर इच्छानुसार नियन्त्रण रखकर उनमें और उनकी अगली पीढ़ियों में परिवर्तन तथा उचित सुधार कर सके।

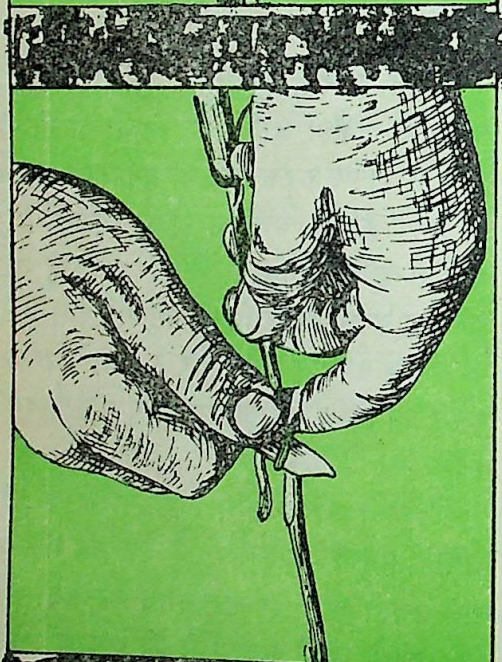
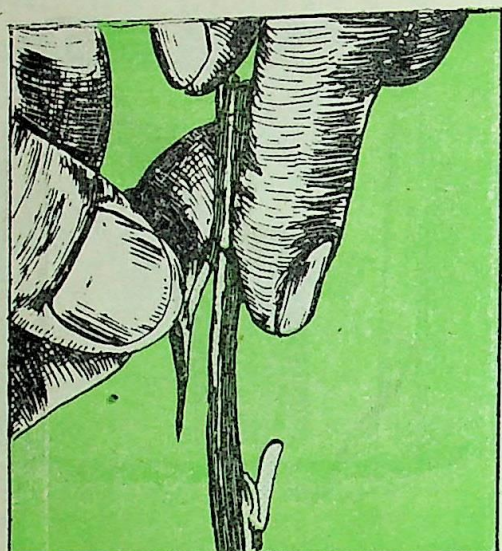
कृत्रिम उत्पादन पौधों के वर्धों (vegetative) तथा पुष्पी (लैंगिक) दोनों भागों से सम्पन्न होता है। वर्धों भागों अर्थात्

जड़, तने, शाखा, कलियों, आँखों, गाँठों, पत्तियों, टुकड़ों आदि का मिट्टी या किसी पौधे में रोपण करके नया पौधा उत्पन्न करने को ही 'कृत्रिम वर्धों उत्पादन' कहते हैं। इसी तरह इच्छानुसार किसी मनचाहे नर फूल का पराग-केसर किसी मनचाहे स्त्री फूल के स्त्री-केसर पर गिराकर नये पौधे उत्पन्न करने की विधि को 'कृत्रिम लैंगिक उत्पादन' कहते हैं।

इसकी आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि मनुष्य की इच्छा हुई कि मन पसन्द पौधे उगाये जाएँ, इच्छित समय पर बेमौसम पौधे उगाये जाएँ, एक पौधे की शुद्धता और गुण दूसरे पौधे में भी वैसे के वैसे ही बने रहें, एवं रोग-अवरोधी, रोगमुक्त और स्वस्थ पौधे उत्पन्न हों। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए उसने अपने प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

कलम या पंखन्द लगाना

इस विधि में एक पौधे के किसी भाग को काटकर उसी जाति के दूसरे पौधे में इस तरह लगा दिया जाता है कि उसको बराबर पोषण मिलता रहे। इसमें काटकर लगाये गये भाग को कलम (sion) और



जिस पौधे पर लगाते हैं उसे स्कंध (stalk) कहते हैं। इस रीति में सरलता से नाशपाती या सेब पर या निकट सम्बन्धी पौधे पर अच्छे नाशपाती या सेब की कलम लगायी जाती है। कलम का अच्छी तरह से परिवर्धन होने के बाद स्कंध की अन्य टहनियों या भागों को काट देते हैं और तब वह कलम एक नये पौधे के रूप में परिवर्धित हो जाती है। वैसे तो अब कलम कई प्रकार की लगायी जाती है और उनमें बहुत कुछ सुधार भी हो गये हैं परन्तु सामान्य सिद्धान्त सबके बिलकुल एक ही है।

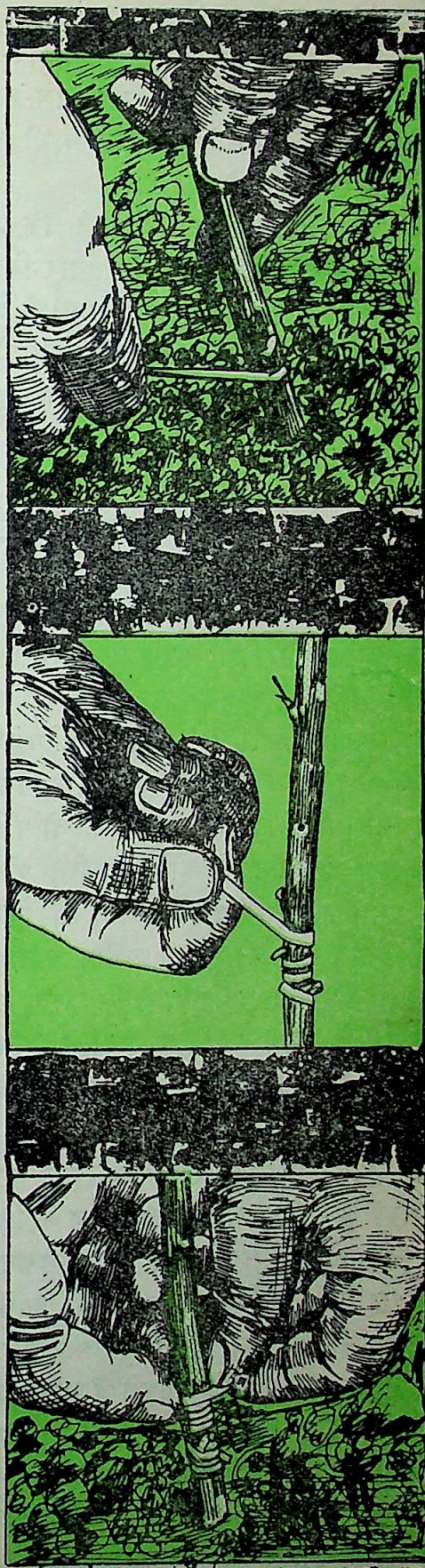
वनस्पति-वैज्ञानिकों ने कलम लगाकर कई ऐसे विचित्र पौधे तैयार किये हैं जिनमें कलम दूसरी जाति के पौधे की थी और लगाया गया वह भिन्न जाति के दूसरे पौधे पर। उदाहरण के लिए उन्होंने आलू के पौधे पर टमाटर की कलम लगायी और आश्चर्य की बात कि उनका यह प्रयोग बिलकुल सफल रहा। उस पौधे में आलू भी लगे और टमाटर भी। उस विचित्र पौधे का नाम उन्होंने 'पौमैटो' (पोटैटो-टोमैटो) रखा।

कलम लगाने की एक दूसरी विधि को भेंट कलम लगाना कहते हैं। इसमें एक बड़े पेड़ की टहनी तथा गमले के पौधे के तने को छीलकर और एक साथ जोड़कर चारों ओर से मिट्टी, गोबर, रुई आदि से लपेटकर बांध देते हैं। जब दोनों के उत्तक बढ़ करके परस्पर मिल जाते हैं तो बड़े पेड़ की टहनी को नीचे से काटकर गमले को अलग कर देते हैं और इस तरह कम समय में नया पौधा तैयार हो जाता है।

← कली का स्थानान्तरण—(ऊपर से नीचे) को पृथक करने के लिए टहनी पर सावधानीपूर्वक काट लगाया जा रहा है; कली को कोमलता से उठाया जा रहा है; जिस दूसरी टहनी पर कली बिठाया जाएगा उस पर स्थान बनाया जा रहा है।

(stalk) **कली चढ़ाना**
 इसमें स्कंध के तने में कली वाले स्थान पर एक-डेढ़ इंच लम्बी काट दे दी जाती है और मनचाहे अच्छे पौधे से उसी आकार की कली या चश्मा लेकर ठीक उस कटे स्थान पर फिट कर दिया जाता है। कली लगाने के बाद उस स्थान को बाँध दिया जाता है जिससे कली या चश्मा स्कंध के ऊपर से बिल्कुल मिल जाए। कली के परिवर्धित हो जाने पर बंधन खोल दिया जाता है और स्कंध की शेष टहनियाँ भी काट दी जाती हैं। फिर यही नन्हीं कली परिवर्धित होकर नया बड़ा पौधा बना देती है। इस विधि का प्रयोग गुलाब में काफी किया जाता है। बाग-बगीचों से शौक रखने वाले इस विधि से फायदा उठाकर एक ही गुलाब के तने में कई गुलाबों की कलियाँ बिठाकर लाल, पीले, गुलाबी रंग के फूल खिला लेते हैं और देखने वाले आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि यह कैसा विचित्र गुलाब का पौधा है।

कलम लगाना
 इस विधि में किसी पौधे की टहनी या तने का भाग मिट्टी में दबा दिया जाता है और जब उसमें जड़ें निकल आती हैं तो उसे या शाखा को मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं। इस तरह बड़ी सरलता से एक स्वतन्त्र नया पौधा बन जाता है और इसमें वही शुद्धता तथा गुण बने रहते हैं। ठीक ऐसे ही गुटी लगाने और कर्तन की विधियाँ भी हैं जिनमें कली के नीचे या तने में इस तरह से काट दी जाती है कि उसके नीचे से नयी जड़ें उत्पन्न हो जाएँ। जब जड़ें निकल आती हैं तो उसे काटकर अलग कर लेते हैं और इस तरह (ऊपर से नीचे) कली को नयी जगह बिठा दिया → काट दिया है; जोड़ को टेप से बाँधा जा रहा है; और अब नया गठबन्धन तैयार है, नवोत्पादन के लिए



बिलकुल नया पौधा तैयार हो जाता है। इसी तरह गन्ने, प्याज, आलू, अरबी, अदरक हल्दी आदि की आँख या कली वाले भाग को काटकर जमीन में दबा देने से भी नये पौधे उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्धी जनन से लाभ यह है कि इस रीति से नया पौधा शीघ्र ही तैयार किया जा सकता है और यह शीघ्र ही फल भी देने लगता है। इसके साथ ही उसमें मातृ पौधे की शुद्धता और सभी अन्य गुण भी बराबर वैसे के वैसे बने रहते हैं।

पुष्पी भागों द्वारा कृत्रिम लैंगिक जनन

आजकल यह विधि बहुत उन्नत हो गयी है। इसमें मनुष्य द्वारा स्वस्थ और मन-पसन्द भिन्न-भिन्न लक्षणों वाले पौधों का इच्छानुसार परागण करके मनपसन्द गुणों वाली नयी-नयी स्वस्थ तथा उत्तम जातियों के उत्पादन के लिए संयोग (hybridization) किया जाता है। असमान पैतृक लक्षणों वाले भिन्न-भिन्न जाति के दो पौधों या एक ही जाति के दो भिन्न-भिन्न पौधों में संयोग या पर-निषेचन कराने की क्रिया को संकरण कहते हैं। प्राचीन काल के भित्तिचित्रों से ज्ञात होता है कि लोग उस समय भी खजूर आदि के पेड़ों में कृत्रिम परागण किया करते थे। आजकल तो यह क्रिया सामान्य-सी हो गयी है।

हमारे यहाँ भी संकरण तथा वरण द्वारा फसलों के सुधार और अधिक उपज के लिए अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। कृत्रिम परागण की यह विधि इसलिए अपनायी गयी, क्योंकि इससे कई लाभ हैं। इससे इच्छित प्रकार के पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं और साथ ही नयी-नयी जातियों का उद्भव भी होता है। सुन्दर और नये-नये विचित्र प्रकार के आकर्षक पौधे उगाकर घरों-उद्यानों की शोभा बढ़ायी जा सकती है तथा सौन्दर्यप्रियता के

गुण की सज्जुष्टि की जा सकती है। इन प्रकार उत्पन्न होने वाले पौधे स्वस्थ, नीरोग, ओजयुक्त, रोग-अवरोधी, तुषार-अवरोधी, शुष्कता-अवरोधी तथा म्लानता-अवरोधी होते हैं। फलतः स्वस्थ और नीरोग पौधों के कारण उपज अधिक होना भी स्वाभाविक है। इनके अतिरिक्त इस विधि से पौधे मौसम-बेमौसम भी उगाये जाते हैं और फसल के समय से पहले ही परिपक्व भी किये जा सकते हैं। वातावरण में परिवर्तन करके पौधों या फसलों को शीघ्र परिपक्व करने की इस चमत्कारी विधि को वसन्तकरण (springification या vernalization) कहते हैं। सोवियत रूस में तो इस विधि व्यवहार में बहुत अधिक लाभ जा रही है। इसी विधि के द्वारा वहाँ वर्ष में चार-पाँच फसलें उगायी जाती हैं। इसी सिद्धान्त को आधार मानकर मद्रास में आमों की फसल बेमौसम (अगस्त से मार्च) भी उत्पन्न की जा रही है। इसी तरह संकरीकरण (hybridization) के प्रयोगों से और उत्परिवर्तन (mutation) से अर्थात् परागण और निषेचन के समय परागकोष अण्डाशय तथा निषेचित अण्ड में विकिरण (radiation), ताप तथा रासायनिक पदार्थों आदि की सहायता से इच्छानुसार परिवर्तन करके बदली हुई या उत्परिवर्तित जातियाँ भी उत्पन्न की गयी हैं।

इसी सन्दर्भ में जापान में बीजहीन फल वाले पौधे उत्पन्न करने वाले प्रयोगों की सफलता का स्मरण कराना भी आवश्यक होगा। इन आधुनिक उपायों से पौधे के फसल के किसी भी लक्षण में कृत्रिम रूप से उत्परिवर्तन किया जा सकता है। फिर भी लक्षण अधिक लाभकारी सिद्ध होता है उसको छाँटकर नयी किस्म के रूप में उगाया जा सकता है और बिलकुल इसी आ

पर कई फसलों जैसे जौ, धान, आरु, फली, फल, सब्जियों के पौधों के ऊपरी सिरे पर के पुंकेसरों को छोड़कर बाकी सब पौधों के पुंकेसरों को काट दिया जाता है। समय-समय पर यह देख लिया जाता है कि पौधे परिपक्व हो गये हैं या नहीं। पुंकेसर के परिपक्व एवम् वर्तिकाग्र पराग के लिए तैयार हो जाने पर परागण की क्रिया आरम्भ कर दी जाती है। परागणों को स्वयं लेकर या नली आदि द्वारा वर्तिकाग्र पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है और निषेचन होने दिया जाता है। इस प्रकार से स्वस्थ पराग और स्वस्थ अण्डाशय वाले इच्छित पौधों में निषेचन से भुट्टे में दानों की पत्तियाँ, दानों का आकार, मण्ड प्रतिशत और रोग-अवरोधकता बढ़ जाती है। फलतः उपज की वृद्धि भी स्वाभाविक है।

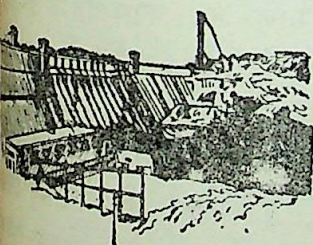
मक्का में कृत्रिम परागण और निषेचन

पर-निषेचित फसलों में सबसे अधिक अनुसंधान कार्य मक्का पर किया गया है। इसीलिए यह फसलों के लिए नमूने के रूप में लिया जाता रहा है। इच्छानुसार पर-परागण तथा पर-निषेचन करने की इस कृत्रिम विधि में मक्का की लम्बी और बाहर निकली हुई वर्तिका (style) तथा वर्तिकाग्र (stigma) को प्लास्टिक या किसी कपड़े से ढक दिया जाता है और

रेणुका बाँध

अब

तैयार हो गया है!



इससे पूर्वी उत्तर प्रदेश का कायापलट हो जायगा। इसकी बिजली से सिंचाई के लिए लगभग २५,०० टचूबवेल चलेंगे। १४ लाख एकड़ की सिंचाई होगी, कुटीरों का विकास होगा। बड़े-बड़े कारखाने चलेंगे, बिजली की रेल चलेगी, लगभग २० लाख श्रामियों को रोजगार मिलेगा।

उत्तर प्रदेश को ऐसी कई योजनाओं की आवश्यकता है

योजना के लिए अपना अंशदान दीजिए

छोटी से छोटी रकम का स्वागत है।

राष्ट्रीय बचत योजना में जमा कीजिए



उत्पादन बढ़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!

विन्ध्य संसार



हमाम गम है, गुस्ल कीजिए

नमक की नगरी

यह नगरी नमक ही नमक की बनी हुई है। ईट-चूने का इसमें कुछ भी काम नहीं। पोलैण्ड के क्रेको नगर के निकट ही यह निराली नगरी है। इस नगरी का नाम वाएलिकजा है। इस नगर में भूमि की सतह से १००० फुट तक की गहराई में नमक ही नमक की चट्टानों द्वारा मकान, सड़कें, होटल, चर्च, बाग-बगीचे, सिनेमाघर आदि बनाकर एक छोटा-सा शहर ही खड़ा कर दिया गया है। नमक की धवल चट्टानों द्वारा निर्मित यह शहर संगमरमर का बना दिखता है। इन्हीं चट्टानों से संसार का अधिकांश नमक-उत्पादन होता है। नमक की खुदाई इसी भूमिगत नगरी में वृहत रूप से की जाती है। वर्ष भर में लगभग ६० हजार टन नमक बाहर भेजा जाता है जो अपनी शुद्धता और उत्तमता के लिए प्रसिद्ध है।

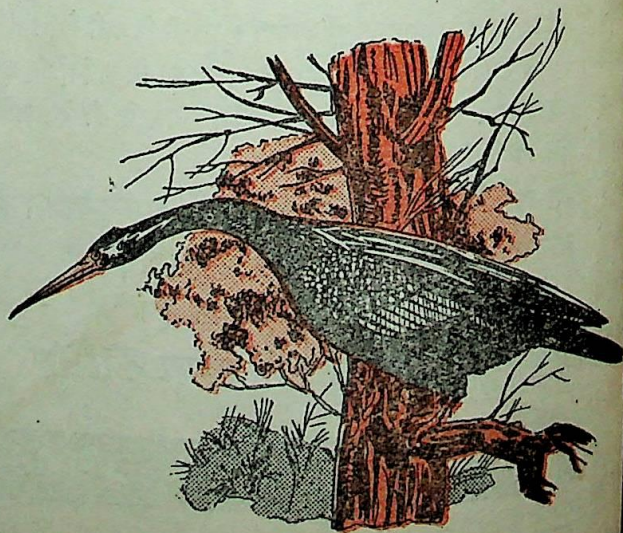
लकड़ी का तमाशा

केश-विन्यास अर्थात् बालों की सजावट जापानी महिलाओं की अप्रतिम कला है और एक बार के विन्यास में काफी समय तथा श्रम लगता है। बालों की वह सजावट सोते समय चाहे जैसे और चाहे जहाँ पड़ रहने में खराब न हो जाए इसका उन्हें पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इसके लिए सोते समय उन्हें काष्ठ का एक बेलन इस प्रकार गर्दन के नीचे लगाये रखना पड़ता है जिससे उनका सिर शैया से उठा ही रहता है।

फिनलैण्ड में तो हमाम घर-घर की प्रथा है। वहाँ जालीदार २-३ सीढ़ियों के एक प्लेटफार्म पर स्नानार्थी कपड़े उतारे, बैठे रहते हैं। भट्ठी के ऊपर रखे हुए तप्त पत्थरों पर पानी छिड़कते ही वाष्प के बादल पैदा हो जाते हैं। तत्पश्चात् किसी औषधीय वनस्पति की टहनी से शरीर को मला जाता है और उचित ताप आ जाने पर ठण्डे हौज में कूद पड़ते हैं।

सर्पग्रीव पक्षी

लम्बी, पतली और लहराती गर्दन का यह पक्षी जब पानी में तैरते समय अपनी गर्दन बाहर निकाले रहता है तब इसकी गर्दन एक सर्प जैसी दिखती है। इसी के इसे यह नाम दिया गया है। भारत, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के दलदली विस्तारों में यह पाया जाता है। मछली का शिकार करते समय इसकी नोकदार लम्बी गर्दन एक नुकीले भाले का काम देती है जो शिकार को छेद देती है। चोंच से पूँछ तक तीन फुट लम्बाई के इस पक्षी के पंखों का फैलाव चार फुट का होता है। पानी किनारे और पानी की ही ओर पेड़ की



शुकी हुई मजबूत डाल पोंसला बनाता है।

आग... और धुआँ न दे

ऐसी ही आग पर खाना भी पकाया जाता है। न्यूगिनी के आदिवासी इस कला में पारंगत हैं। वे काठ की हँडिया को बार-बार भी आग पर चढ़ाना जानते हैं। जब कभी दावत का मौका होता है तब षाठ के एक बड़े पीपे में उबालने वाली खाद्य वस्तुएँ भर दी जाती हैं। उस पात्र को आग पर नहीं चढ़ाया जाता किन्तु लाल लकड़ों जैसे पत्थरों की तहें बीच-बीच में रख दी जाती हैं। अन्त में ढक्कन बन्द करके एक सूराख में से पानी छोड़ा जाता है। तुरन्त वाष्प बनता जाता वह पानी बाघ वस्तुओं को उबाल देता है।

नेत्रहीनता भी जब हार गयी

१८वीं शताब्दी की बात है। इंग्लैण्ड के अर्ल सप्तम की पत्नी लेडी एमिली अति कुशल घुड़सवार थी। युवावस्था के उत्तर-भाग में ही नेत्रहीन हो जाने पर भी ८५ वर्ष की परिपक्व वृद्धावस्था तक उसने घुड़-सवारी और शिकार का अपना दैनिक क्रम नहीं तोड़ा। केवल सहायतार्थ वह अपने साथ एक अंगरक्षक रखती थी। इतना किन परिश्रमी जीवन व्यतीत करने वाली उस महिला का अन्त बड़ी सामान्य घटना से हुआ। एक रात शिकार से लौटने पर उसने जब अपने महल में प्रवेश किया तो रास्ते में एक जलती मोमबत्ती पाँवों से जल गयी और उससे जो आग फैली उसने एमिली और उसके महल को भस्म कर दिया।

ऊँट की ता-थेई-ता

क्षुद्र पतंगों से लेकर चित्र में प्रदर्शित बहुलाय ऊँट तक संगीत से अप्रभावित नहीं

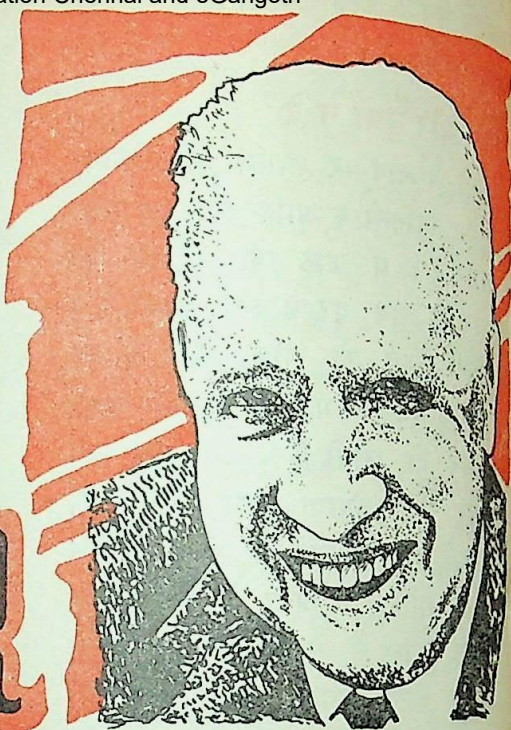


रहते। भारत में लगने वाले मवेशियों के छोटे-बड़े मेलों में मनोरंजनार्थ ऊँट-नृत्य देखने को मिलते रहते हैं। उचित प्रशिक्षण के उपरान्त संगीत की लय और ताल के साथ ऊँट को कुशल नर्तन के लिए तैयार किया जा सकता है। रेगिस्तान का एकमात्र जहाज यह ऊँट आज वायुयान तथा मोटर बसों के युग में भी उतना ही उपयोगी वाहन है जितना इस युग के प्रारंभ में था।

जिन्दगी पानी में

फ्रान्स के कुछेक खानाबदोश परिवार पानी पर तैरते हुए अपने शिकारे पर ही जिन्दगी गुजार देते हैं। नहरों-नदियों को पार करते हुए वे घूमते हैं तथा माल बेचते फिरते हैं। परिवार की महिलाएँ शहर के एक सिरे पर शिकारे से उतरती हैं और शापिंग समाप्त करके दूसरे छोर पर पुनः शिकारे में आ जाती हैं। वे अपने बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था डाक द्वारा तथा जहाँ संभव हो वहाँ ऐसे ही तैरते स्कूल द्वारा कर लेती हैं।

नील्स बोर



राजेन्द्रकुमार

परमाणु-विज्ञान कुछ तो आइन्स्टीन का ऋणी रहा है और अधिकांशतः नील्स बोर का आभारी है। नील्स बोर का स्थान आइन्स्टीन के पश्चात् आते हुए भी एक विशेषता लिये हुए है। नील्स बोर दर्जनों युवा वैज्ञानिकों के धर्मपिता (आचार्य) भी थे जो आज उन्हें गहरे स्नेहवश 'चचा निक' (Uncle Nick) के नाम से याद करके श्रद्धानत हो जाते हैं। नील्स के असंख्य शिष्य आज यह कहकर गौरव अनुभव करते हैं कि 'हम बोर के बालक' (Bohr's Boys) हैं। और सचमुच अपने उस आचार्य की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही उनमें से कितने ही आज अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त हैं, जिनमें लेण्डाउ (Landau), गेमाओ (Gamou), टेलर (Teller), क्रैमर्स (Kramers), हीजेनबर्ग (Heisenberg) तथा फाउलर (Fowler) आदि कुछ नाम गिनाये जा सकते हैं।

७ अक्टूबर १८८५ को नील्स बोर का

जन्म कोपनहेगन (डेनमार्क) में हुआ। दो वर्ष पश्चात् हेराल्ड बोर ने इनके छोटे भाई के रूप में जन्म लिया। पिता क्रिश्चियन बोर कोपनहेगन विश्वविद्यालय में प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। दोनों भाइयों की रुचि विज्ञान की ओर प्रारम्भ से ही थी। छोटे भाई हेराल्ड ने आगे चलकर गणितशास्त्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की और 'चचा निक' ने परमाणु विज्ञान को अपना लिया।

छात्र-जीवन में बोर-बन्धु फुटबाल के कुशल खिलाड़ी रहे। सुखी गृहस्थ जीवन और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों में नील्सबोर के उत्साह और अथक परिश्रम का प्रमुख कारण उनकी पत्नी मार्गरेथ (Margrethe) हैं। स्नेह और सौजन्य में वह अपने पति की आगे थी। इनका घर, घर न रहकर छात्रों का एक संस्कार-केन्द्र बना हुआ था जिसमें व्यस्त रहकर भी पति-पत्नी आपस में का अनुभव करते थे।

बोर ने २६ वर्ष की आयु (१९११) में

का प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम ये केम्ब्रिज-स्थित केवेंडिश अनुसन्धानशाला पहुँचे। वहाँ निदेशक के पद पर ब्रिटिश वैज्ञानिक सर जे. जे. टामसन थे जिन्होंने इलेक्ट्रान की खोज की थी। बोर का दृष्टिकोण काफी सुधरा-सँवरा होने से वहाँ के रूढ़िचुस्त वातावरण में गाड़ी अधिक समय तक न चल सकी। टामसन द्वारा निर्मित परमाणु के मॉडल इन्हें जँचे नहीं और प्रायः ही नौक-मौक चलती रही। आखिर असन्तुष्ट मन से इन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया और मैन्चेस्टर जाकर लार्ड रदरफोर्ड (तब तक लार्ड नहीं बने थे) की शरण ली। न्यूजीलैण्ड निवासी अर्नेस्ट रदरफोर्ड उन दिनों परमाणु विखण्डन के अपने ऐतिहासिक प्रयोगों में लगे हुए थे।

रेडियो-सक्रिय पदार्थों से विकीरित उच्च ऊर्जायुक्त अल्फा कणों की बौछार द्वारा परमाणु का विखण्डन करने से रदरफोर्ड के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि परमाणु का समूचा धनावेश तथा पदार्थ-तत्त्व उसके एक नन्हें केन्द्रक में संग्रहीत रहता है। उस केन्द्रक को परमाणुनाभिक का नाम दिया गया। इस निष्कर्ष ने तब तक के प्रतिपादित अन्य समस्त परमाणु-सिद्धान्तों को हिलाकर रख दिया। बोर जब तक साथ रहे, रदरफोर्ड बड़ी सुविधा अनुभव करते रहे।

सन् १९०० में जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता मैक्स प्लांक का काफी दौर-दौरा था उनका क्वाण्टम सिद्धान्त बहुत प्रसिद्धि पा चुका था कि विकीरित ऊर्जा की अवस्थिति पैकेटों के रूप में ही होनी चाहिए। ऐसे पैकेटों को प्रकाश-क्वाण्टा (light quanta) कहा गया, क्योंकि एक पैकेट में अवस्थित ऊर्जा का मान प्रकाश की आवृत्ति (frequency of light) तथा उसका अंक

प्लांक का यह सिद्धान्त आगे चलकर फोटो इलेक्ट्रिक सेल के उद्योग तथा काम्प्टन प्रभाव के लिए बड़े महत्त्व का सिद्ध हुआ।

मैक्स प्लांक ने जब अपना उपरोक्त सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रस्तुत किया तब बोर की अवस्था केवल १४ वर्ष की थी। अब २६ वर्ष के डाक्टरेट प्राप्त प्रो. बोर ने उसी क्वाण्टम सिद्धान्त को आड़े हाथों लिया। बोर का तर्क था कि जब विकीरित ऊर्जा पैकेटबन्द अर्थात् क्वाण्टम अवस्था में (quantised) मानी जा सकती है तब परमाणु के अन्दर चक्कर लगाते हुए इलेक्ट्रान की गतिशील ऊर्जा भी क्यों न क्वाण्टम अवस्था में मानी जाए? बोर ने यह प्रतिपादित किया कि नाभिक की परिक्रमा करते हुए इलेक्ट्रान सहज नहीं किन्तु कूदकर कक्षाएँ बदलते हैं।

१९१३ में बोर ने अपना प्रसिद्ध बोर सिद्धान्त प्रस्तुत करके परमाणु के अध्ययन की एक ऐसी पहेली को हल किया जिसे सुलभाने में विज्ञान-जगत विगत ३० वर्षों से लगा हुआ था और विशेषतः एक जर्मन अध्यापक जे. जे. बामर तो अपने वर्णपट में ही उलझा पड़ा था। परमाणु विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोजकार्यों के उपलक्ष्य में १९२२ में बोर को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया। तत्पश्चात् १९२६ में इन्हें रायल सोसायटी का विदेशीय सदस्य बनाया गया। इनके अतिरिक्त स्वीट्जरलैण्ड ने भी अपने राष्ट्र के दो सर्वोच्च सम्मानों (Order of the Elephant, Atoms for Peace Award) से इन्हें विभूषित किया।

द्वितीय महायुद्ध के दिनों में जब जर्मनी ने डेनमार्क पर आक्रमण किया तब बोर ने देश छोड़कर भागने की अपेक्षा देश ही में

रहकर संकटकालीन परिस्थिति में अपनी सेवाएँ देना परम पुनीत कर्तव्य समझा। वे अपने असंख्य शिष्यों को उनके वैज्ञानिक अध्ययनों में सहायता देते रहे। देश पर संकट बढ़ता देखकर शिष्यों को यह उचित प्रतीत नहीं हुआ कि एक देशरत्न का जीवन व्यर्थ ही युद्ध की भेंट चढ़ जाए। अतः पूर्व-योजनानुसार उन्होंने एक अँधेरी रात को इनसे डेनमार्क का किनारा छुड़वा दिया। एक मछुए की सहायता से इन्होंने खाड़ी को पार किया और दूसरे किनारे पर खड़े हुए एक बमवर्षक वायुयान से उड़ चले। ऐसे वायुयानों में बैठने की सीटें तो होती नहीं। अतः एक गड्ढे में बैठे ही बैठे ये ऊँघते चले। यानचालक ने २-३ बार पुकारा किन्तु कोई उत्तर न पाकर उसे कुशंका हो गयी कि कहीं कुछ अनहोनी तो नहीं हो गयी; लेकिन सब कुछ ठीक ही था, केवल यही कि बोर को जरा गहरी नींद आ गयी थी।

यों संकट से बचकर शीघ्र ही बोर अमरीका पहुँच गये। वहाँ लॉस एला-मौस (Los Alamos) पर परमाणुबम (Atom Bomb) की निर्माण-योजना में उपस्थित कठिनाइयों के कारण इनकी तीव्र आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। ये वहाँ वरदान बनकर पहुँचे। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेकों इनके शिष्य बन गये और स्नेहवश इन्हें 'चचा निक' कहने लगे।

युद्धोत्तरकाल में बोर ने विश्वशान्ति की दिशा में सर्न (CERN) संस्था (Centre European de Recherch Nucleaire) को उल्लेखनीय सेवाएँ दीं। इसी विषय में बोर ने १९४४ में ब्रिटिश एटमिक एनर्जी प्रोजेक्ट के अध्यक्ष सर जान एण्डरसन से तथा प्रधानमन्त्री चर्चिल से मन्त्रणाएँ भी कीं, किन्तु उनकी ओर से आशाजनक आश्वासन न मिले। तत्पश्चात् उसी वर्ष अगस्त में

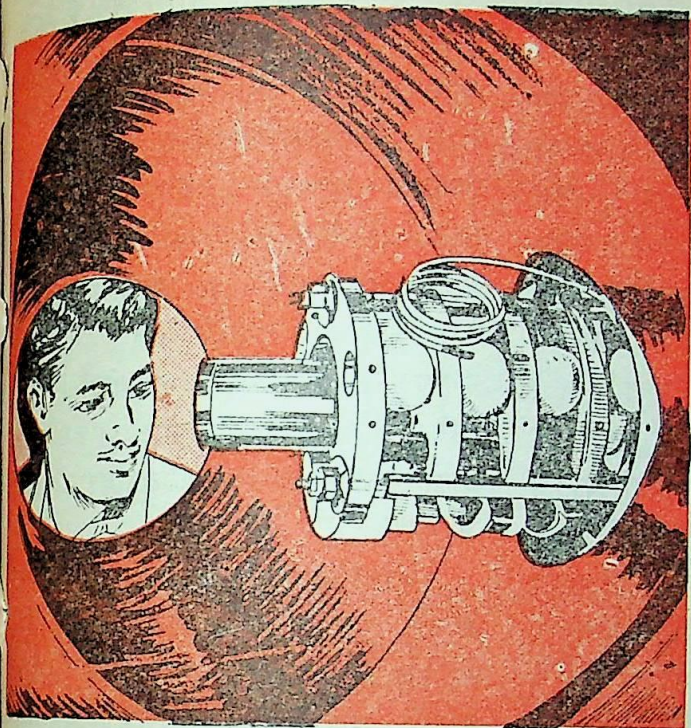
अमरीका के प्रेसीडेंट रूजवेल्ट से इन्होंने चर्चा की। वहाँ इनके परामर्श का समुचित सत्कार किया गया। इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में इन्हें फोर्ड फेडरेशन की ओर से एटम फार पीस एवार्ड (Atoms for Peace Award) पुरस्कार दिया गया।

महान् दार्शनिक आइन्स्टीन और नील्स बोर में यद्यपि दीर्घकाल तक मतभेद रहा किन्तु अन्ततः आइन्स्टीन को प्रभावित होकर बोर का लोहा मानना ही पड़ा। साथ ही उन्होंने यह कहा—'बोर के सिद्धान्त संस्था त्रुटिशून्य हैं, यद्यपि मुझे वे भाते कम हैं।'

बोर के व्यक्तित्व में जो भी स्नेह सौजन्य और आकर्षण था उसका मुख्य आधार उनकी पत्नी मार्गरेथ का व्यक्तित्व था। इनके कुल छह पुत्रों में सबसे बड़ा अपनी किशोरावस्था में ही एक नाव दुर्घटना का शिकार हो गया था और सबसे छोटा बाल्यावस्था में चल बसा था। शेष चारों पुत्र क्रमशः आगेय (Aage) एरिक (Eric), अर्नेस्ट (Earnest) और हंसा (Hans) अपने-अपने क्षेत्र में अपने पिता की उज्ज्वल प्रतिभा के ज्योतिर्धर हैं। इनमें सबसे बड़े आगेय बोर अपने पिता के सच्चे प्रतिनिधि बने हुए पिता द्वारा स्थापित इन्स्टीट्यूट के निदेशक-पद पर हैं और अग्रणी भौतिकवेत्ता हैं।

१८ नवम्बर, १९६२ को ७७ वर्ष की अवस्था में परमाणु-विज्ञान का महान् वेत्ता नील्स बोर हमसे छीन लिया गया। परमाणु-विज्ञान का आज जो स्वरूप और आकार हमारे सामने है, उसका मूल ढाँचा बोर ने ही खड़ा किया था और यह भी कि भौतिक-विज्ञानाकाश के उस अति उज्ज्वल नक्षत्र ने अपनी आभा और प्रतिभा को उन शत-सहस्र नवोदित नक्षत्रों में समाविष्ट कर दिया है जो अनन्त जगमाते रहेंगे और पर स्नेही 'चचा निक' को न भुला सकेंगे।

द्रव की चतुर्थ अवस्था प्लाज्मा



जगदीशचन्द्र गोविल

ठोस, द्रव और गैस-पदार्थ की इन तीन भौतिक अवस्थाओं से सभी भलीभाँति परिचित हैं। लगभग चालीस वर्ष पूर्व पदार्थ की एक अन्य अनोखी अवस्था का पता चला जो गैसीय होने पर भी सामान्य गैसों से सर्वथा भिन्न है। पदार्थ की इस अवस्था को, नोबेल-पुरस्कार विजेता इरविंग लैंगम्यूर ने 'प्लाज्मा' की संज्ञा दी। प्लाज्मा क्या है और पदार्थ की अन्य अवस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है, यह समझने के लिए पदार्थ की मौलिक रचना के विषय में थोड़ा जानना होगा।

रासायनिक पदार्थ प्रायः दो प्रकार के होते हैं: एक वे जो किसी भौतिक एवं रासायनिक क्रिया द्वारा दो या उससे अधिक विभिन्न पदार्थों में विभाजित नहीं किये जा सकते। ये मौलिक तत्त्व (elements) कहलाते हैं, जैसे लोहा, आक्सीजन आदि। दूसरे पदार्थ वे हैं जो दो या दो से अधिक

मूल तत्त्वों से मिलकर बने हैं जैसे नमक, पानी इत्यादि। इन्हें 'यौगिक' (compounds) कहते हैं। वैसे सभी पदार्थ प्रत्यक्ष रूप में सतत (continuous) प्रतीत होते हैं किन्तु सचाई यह है कि प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म कणों का सुसंगठित स्वरूप है। प्रत्येक तत्त्व अत्यन्त ही सूक्ष्म कणों में विभाजित किया जा सकता है। मूल तत्त्वों के ये सूक्ष्म कण 'परमाणु' (atom) कहलाते हैं। विभिन्न तत्त्वों के परमाणु भार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। यौगिक भी सूक्ष्म कणों से ही मिलकर बनते हैं। यौगिक का वह सूक्ष्मतम कण जिसमें उस यौगिक के समस्त रासायनिक गुण विद्यमान रहते हैं 'अणु' (molecule) कहलाता है। अणु परमाणुओं से मिलकर बनता है।

ठोस, द्रव और गैस में अन्तर

पदार्थ की तीन अवस्थाओं से हम इतनी अच्छी तरह परिचित हैं कि देखकर

ही आभास हो जाता है कि कौन पदार्थ किस अवस्था में है। वैज्ञानिक दृष्टि से इन अवस्थाओं में क्या अन्तर है यह अणु सिद्धान्त के आधार पर देखा जा सकता है। ठोस पदार्थ के कण आपस में इतने निकट होते हैं कि उनके बीच लगे गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वे परस्पर सटे रहते हैं। इसी कारण ठोस पदार्थ का आकार और रूप निश्चित रहता है। द्रवों के कण अपेक्षाकृत कुछ अधिक दूरी पर होने के कारण वे एक-दूसरे से पृथक् नहीं हो पाते। यही कारण है कि द्रवों का आयतन निश्चित रहता है किन्तु उनकी शक्ल सहज ही बदल जाती है। इसके विपरीत गैसों में कणों के बीच इतनी अधिक दूरी रहती है कि वे परस्पर के गुरुत्वाकर्षण से विमुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक विचर सकते हैं। उनका न तो आयतन निश्चित रहता है और न शक्ल ही।

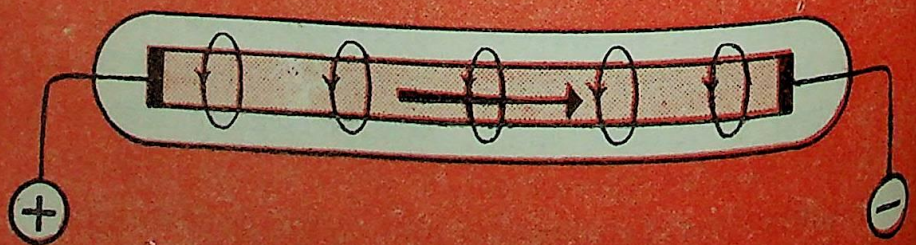
१९वीं सदी के अन्त तक परमाणु ही सबसे छोटा अविभाज्य कण समझा जाता रहा था किन्तु बाद में पता चला कि स्वयं परमाणु भी अन्य सूक्ष्मतर कणों में विभाजित किया जा सकता है जिन्हें मौलिक-कण कहते हैं। इनकी संख्या बीस के लगभग पहुँच चुकी है। इनमें इलेक्ट्रान, प्रोटान

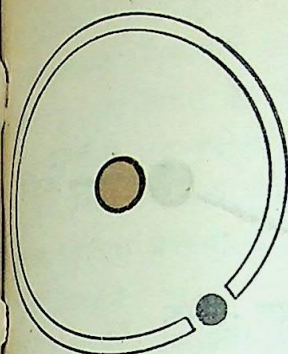
तथा न्यूट्रान वे प्रमुख मौलिककण हैं जिसे परमाणु की रचना होती है। इलेक्ट्रान ऋण विद्युत की लघुतम इकाई है, इसकी संहति हाइड्रोजन परमाणु का लगभग दो हजारवाँ भाग है। प्रोटान का विद्युत आवेश इलेक्ट्रान के बराबर होता है परन्तु यह विपरीत जाति का अर्थात् धन विद्युत का होता है। इसकी संहति हाइड्रोजन परमाणु के लगभग बराबर होती है। न्यूट्रान आवेश रहित होता है तथा इसकी संहति प्रोटान की संहति के ठीक बराबर होती है।

परमाणु—एक सौर-मंडल

आधुनिक विचारों के अनुसार परमाणु के दो भाग हैं। एक केन्द्रीय भाग जिसे नाभिक (nucleus) कहते हैं तथा दूसरा बाहरी भाग जहाँ विभिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रान इस नाभिक के गिर्द चक्कर काटते रहते हैं। नाभिक से बाहर का भाग अधिकांश रूप से शून्य सरीखा है मानो वह स्वयं में एक नन्हा-सा सौर-मंडल है जिसमें ग्रहों की तरह इलेक्ट्रान परिक्रमा लगाते हैं। नाभिक नन्हा-सा होता है किन्तु परमाणु की अधिकांश संहति इसी में निहित रहती है। इलेक्ट्रानों के चक्कर लगाने की कक्षा नाभिक के व्यास की तुलना में हजारों गुना अधिक बड़ी होती हैं। सबसे बाहरी कक्षा

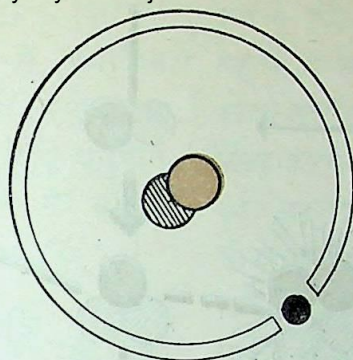
प्लाज्मा विद्युत का सुचालक है—विद्युत धारा के गुजरने से उत्पन्न हुए चुम्बकीय क्षेत्र (तीर लगे वृत्त) से प्रभावित होकर वह सिमटकर बीच में जमा हो जाता है





हाइड्रोजन

नाभिक :- १ प्रोटॉन

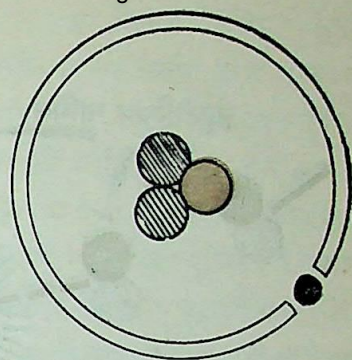


ड्यूटीरियम

नाभिक :- १ प्रोटॉन

१ न्यूट्रॉन

केवल १ बाहरी इलेक्ट्रॉन



ट्रीटियम

नाभिक :- १ प्रोटॉन

२ न्यूट्रॉन

हैं जिनसे
इलेक्ट्रॉन
इसके
परमाणु
विद्युत
है परन्तु
न विद्युत
हाइड्रोजन
न्यूट्रॉन
संज्ञा
होती है।

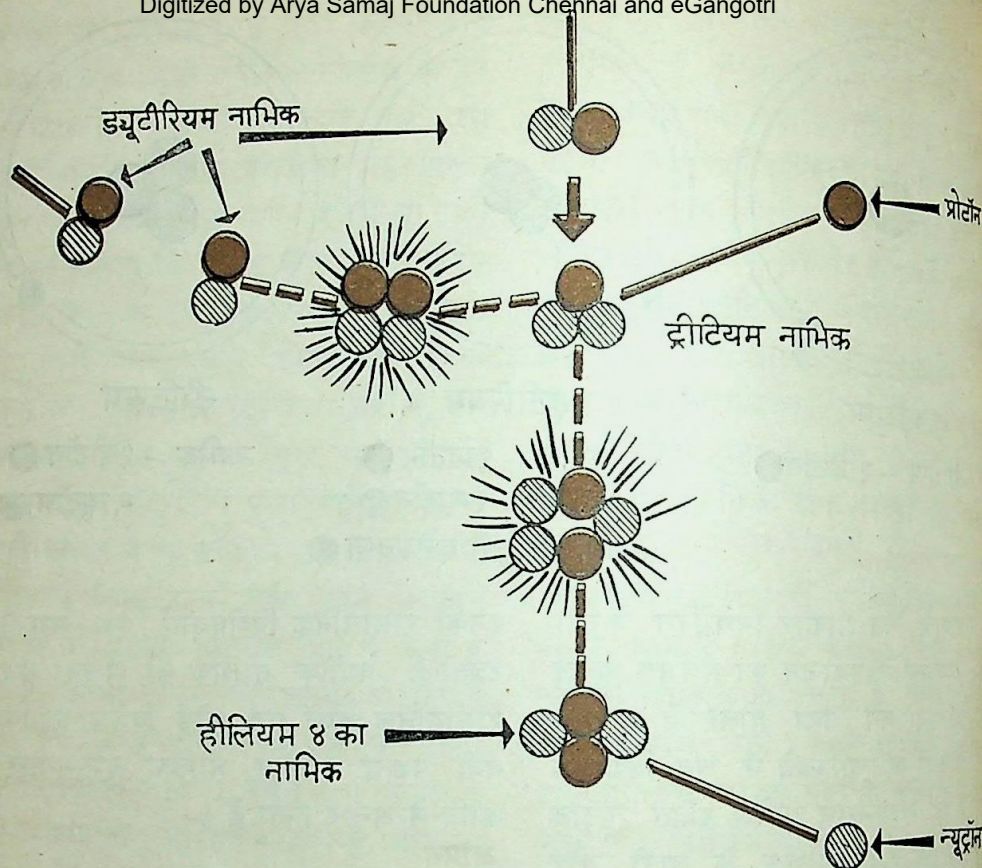
परमाणु का आकार निर्धारित करती है। सामान्य हाइड्रोजन का नाभिक केवल एक प्रोटॉन का बना होता है। अन्य सभी तत्वों के नाभिकों में धन विद्युन्मय प्रोटॉन के साथ-साथ आवेश रहित न्यूट्रॉन मौजूद रहते हैं। नाभिक के चारों ओर चक्कर काटने वाले ऋण विद्युन्मय इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या नाभिक के प्रोटॉनों की संख्या के ठीक बराबर होती है। इस कारण परमाणु समष्टि रूप से आवेश रहित रहता है। चक्कर काटने वाले इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या परमाणु के लिए विशेष महत्त्व रखती है। इसी संख्या पर परमाणु के रासायनिक तथा भौतिक गुण निर्भर करते हैं। इस संख्या को परमाणु-संख्या (atomic number) कहते हैं। प्रत्येक तत्व के लिए परमाणु-संख्या सदैव निश्चित रहती है किन्तु विभिन्न तत्वों की परमाणु-संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

एक ही तत्व के ऐसे विभिन्न स्वरूप भी पाये जाते हैं जिनकी परमाणु-संख्या तो समान रहती है किन्तु नाभिक के भीतर न्यूट्रॉनों की संख्या बदल जाने के कारण उनका परमाणु-भार बदल जाता है। ये समस्थानिक (isotopes) कहलाते हैं।

इनकी रासायनिक विशेषताएँ एक समान रहती हैं, क्योंकि नाभिक की रचना का रासायनिक गुणों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, केवल भौतिक गुण—भार आदि में अन्तर होता है।

आयन

यदि किसी प्रकार परमाणु के एक या अधिक इलेक्ट्रॉनों को परमाणु से पृथक कर दिया जाए तो उस परमाणु में प्रोटॉनों की संख्या इलेक्ट्रॉनों की संख्या से अधिक हो जाएगी। इस कारण वहाँ धन विद्युत आवेश की अधिकता हो जाएगी। इस दशा में परमाणु अथवा उनका समुदाय जो अपने इलेक्ट्रॉन गँवा देने के कारण धन विद्युन्मय हो जाते हैं, 'आयन' (ion) कहलाते हैं तथा इस क्रिया को आयनीकरण (ionisation) कहते हैं। परमाणु संरचना की दृष्टि से हाइड्रोजन विश्व का सबसे सरल तत्व है। सामान्य हाइड्रोजन के नाभिक में एक प्रोटॉन होता है जिसके चारों ओर केवल एक इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाता है। हाइड्रोजन के अन्य दो समस्थानिक भी हैं। ये ड्यूटीरियम (deuterium) तथा ट्रीटियम (tritium) कहलाते हैं। एक ही तत्व के समस्थानिक होने के कारण नाभिक की



ड्यूटीरियम के दो नाभिकों की भिड़न्त से ट्रिटियम नाभिक का निर्माण होता है। तत्पश्चात् ड्यूटीरियम और ट्रिटियम नाभिकों की भिड़न्त से हीलियम-४ का निर्माण होता है। इस क्रिया में प्रोटॉन और न्यूट्रॉन हासिल होते हैं

परिक्रमा लगाने वाला इलेक्ट्रॉन तो इनमें एक ही होता है किन्तु नाभिक की रचना भिन्न होती है। ड्यूटीरियम का नाभिक एक प्रोटॉन और एक न्यूट्रॉन का बना होता है जबकि ट्रिटियम के नाभिक में एक प्रोटॉन और दो न्यूट्रॉन होते हैं। अन्य भारी तत्वों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या बढ़ती जाती है तथा नाभिक की रचना भी अपेक्षाकृत जटिल हो जाती है। स्पष्ट है कि हाइड्रोजन और उसके समस्थानिकों का पूर्ण आयनीकरण करना अपेक्षाकृत कहीं अधिक सरल है क्योंकि इनमें से बस एक इलेक्ट्रॉन को, जो नाभिक के एकाकी प्रोटॉन से ही आकर्षणबद्ध रहता है, हटाना पड़ता है।

प्लाज्मा

किसी परमाणु का आयनीकरण करना

सरल काम नहीं है। हाइड्रोजन गैस के ताप को लाखों डिग्री ऊँचा करने पर ही उसके इलेक्ट्रॉन नाभिक से पृथक हो पाते हैं। ताप के बढ़ने से इलेक्ट्रॉन की गतिज ऊर्जा अधिक हो जाती है जिसके कारण उनके घूमने की गति बढ़ जाती है। गति बढ़ने के साथ ही केन्द्रापसारी बल (centrifugal force) भी बढ़ता है जिसके कारण इलेक्ट्रॉन नाभिक के आकर्षण से मुक्त होकर पृथक हो जाते हैं। इनका वेग अत्यधिक होने के कारण इलेक्ट्रॉन रहित नाभिक इन्हें फिर से पकाने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार नाभिक और इलेक्ट्रॉन तप्त आयनीकृत गैस पृथक-पृथक स्वच्छन्द होकर घूमते रहते हैं। नाभिकों और इलेक्ट्रॉनों से बनी यह गैस प्लाज्मा और पूर्णतया आयनीकृत गैस ही

(plasma) है। सामान्य गैसों के विपरीत यह प्लाज्मा चुम्बकीय क्षेत्र से प्रभावित होता है। यह विद्युत का वैसा ही सुचालक होता है जैसी ताँबे सरीखी धातुएँ। अनुमान है कि विश्व का ६५ प्रतिशत से अधिक पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में है।

ऊर्जा के स्रोत

पदार्थ की प्लाज्मा अवस्था में ऊर्जा की अद्भुत सम्भावनाएँ निहित हैं। १९२९ में ऐटकिनसन और हाउटरमैन्स ने सुझाव रखा था कि सम्भवतः सूर्य और तारों पर करोड़ों डिग्री ऊँचे ताप के होने के कारण वहाँ का पदार्थ (जो अधिकतर हाइड्रोजन है) प्लाज्मा अवस्था में है। इस भीषण ताप के कारण हाइड्रोजन के चार नाभिक परस्पर जुड़कर हीलियम के नाभिक का निर्माण करते हैं। इस क्रिया में बेहिसाब ऊर्जा विमुक्त होती है। इस प्रकार नाभिकों के परस्पर जुड़ने की क्रिया को 'संश्लेषण क्रिया' (fusion reaction) कहते हैं। यह क्रिया यूरेनियम जैसे भारी तत्वों के परमाणु-नाभिकों का खंडन करके ऊर्जा विमुक्त कराने की क्रिया अर्थात् नाभिकीय-खंडन-प्रतिक्रिया (nuclear - fission reaction) की बिल्कुल विपरीत क्रिया है।

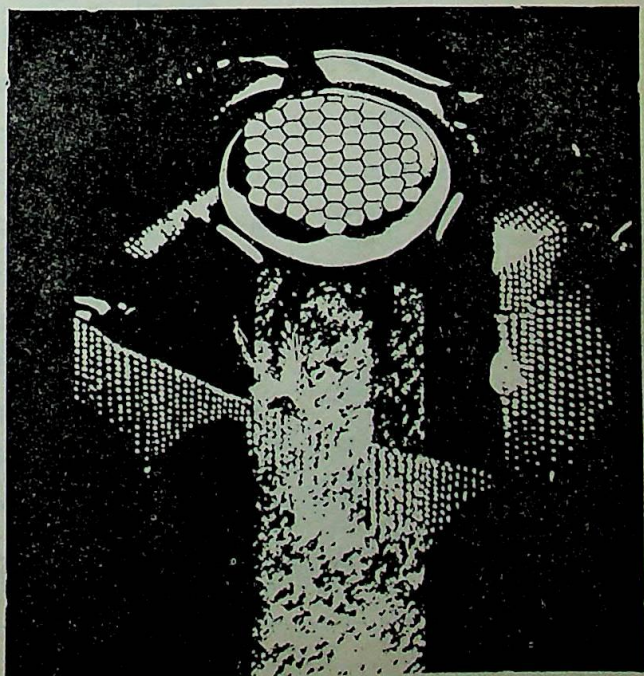
ऊँचा ताप आवश्यक

संश्लेषण क्रियाएँ अत्यधिक ऊँचे ताप पर ही सम्पादित हो सकती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि इसके लिए पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में होना चाहिए अन्यथा परमाणु-नाभिक इलेक्ट्रानों से छुटकारा नहीं पा सकते। दूसरा कारण यह है कि प्लाज्मा के नाभिकों पर समान

रूप से धन जाति का विद्युत आवेश फैला रहता है जिसके कारण उनके बीच परस्पर हटाव-बल लगता है। ताप को अत्यधिक ऊँचा करने पर ही नाभिकों का वेग इतना बढ़ सकता है कि वे हटाव-बल के बावजूद भी निकट आकर परस्पर संश्लेषण कर सकें। इस क्रिया के लिए हाइड्रोजन और विशेष रूप से उसके समस्थानिक ही अधिक उपयुक्त हो सकते हैं, क्योंकि इनके नाभिकों पर विद्युत आवेश की मात्रा न्यूनतम होने के कारण इनके मध्य हटाव-बल भी अपेक्षाकृत कम होता है। ऊँचे ताप पर सम्पादित होने के कारण संश्लेषण प्रतिक्रियाएँ प्रायः थर्मो-न्यूक्लियर-प्रतिक्रियाएँ (thermo-nuclear reactions) कहलाती हैं।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन बम जैसे प्रलयकारी शस्त्रों का निर्माण करके यह सिद्ध कर दिया है कि थर्मो-न्यूक्लियर-प्रतिक्रियाओं द्वारा पृथ्वी पर अपार शक्ति पैदा की जा सकती है। किन्तु हाइड्रोजन

उड़ानगत प्लाज्मा राकेट—इस प्रायोगिक उड़ान के अन्तर्गत राकेट के तलद्वार से तेजपुंज के रूप में प्लाज्मा नजर आ रहा है



अगस्त १९६३

बम के विस्फोट से विमुक्त हुई ऊर्जा की रचनात्मक कार्य के लिए कैसे उपयोग में लाया जा सकता है ? निश्चय ही रचनात्मक कार्य के लिए तो ये क्रियाएँ पूर्णतया नियंत्रित ढंग से ही सम्पन्न की जानी चाहिए तथा यह भी आवश्यक है कि लागत के अनुपात में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा हासिल की जा सके। इस दृष्टि से दस करोड़ डिग्री ऊँचा ताप ड्यूटीरियम और ट्रीटियम प्लाज्मा के लिए अधिक उपयुक्त ठहरता है। परन्तु प्लाज्मा को इतने ऊँचे ताप तक गरम कैसे किया जाए और फिर उसे किस प्रकार के बर्तन में रखा जाए ? संसार में कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो इतने ऊँचे ताप को सह सके। साथ ही संश्लेषण क्रिया से ऊर्जा द्रुतगामी कणों की बौछार के रूप में प्राप्त होती है। प्रश्न यह है कि इसे विद्युत शक्ति में कैसे बदला जाए। इस

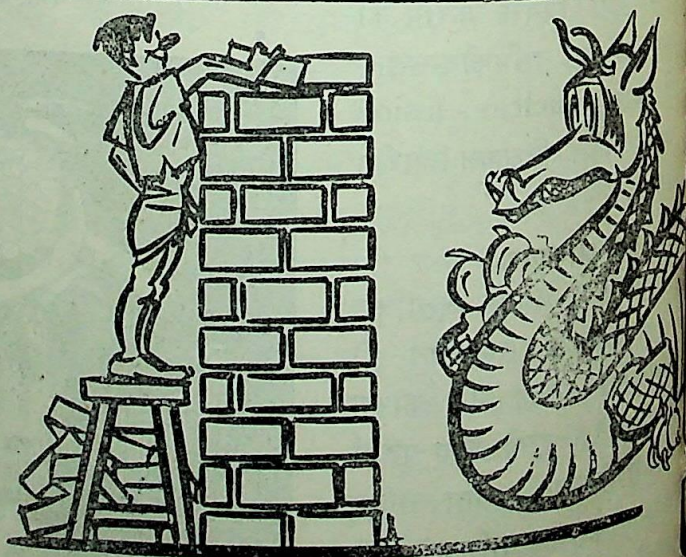
प्रकार की अनेक समस्याएँ हैं जिनका हल खोजने में अनेक वैज्ञानिक लगे हुए हैं। सैद्धान्तिक रूप से उन्होंने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है किन्तु अनेकों व्यावहारिक कठिनाइयाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी तक पूर्ण तरह से हल नहीं किया जा सका है। विश्वास किया जाता है कि पाँच-सात वर्षों के भीतर ही वैज्ञानिक इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेंगे और तब थर्मोन्यूक्लियर रीऐक्टर का निर्माण करना सम्भव हो जाएगा। इन रीऐक्टरों में ड्यूटीरियम ही ईंधन का काम करेगा। समुद्र के पानी से ड्यूटीरियम प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है और तब यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हम 'पानी को जलाकर' शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। निश्चय ही भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें 'प्लाज्मा' का ही आभारी होना पड़ेगा।

आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगाकर इसकी रक्षा कीजिए।

जवाहरलाल नेहरू

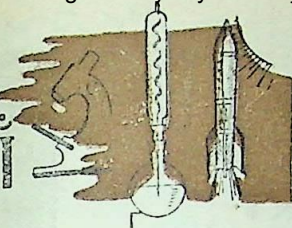
साधनों को सुरक्षित रखिए

भारत के साधन बहुत मूल्यवान हैं। सभी साधनों को देश की ताकत बढ़ाने के महत्वपूर्ण काम में पूरी तरह लगा देना चाहिए। यही एक ऐसा तरीका है जिससे हम आजादी पर आये इस खतरे का मुकाबला कर सकते हैं। फजूल-खर्ची और व्यर्थ की बर्बादी से राष्ट्र को नुकसान पहुँचेगा। आजादी की एक कीमत होती है और हमें वह पूरी तरह चुकानी है।



आजादी की रक्षा में पूरी शक्ति लगाइये

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



६०० फुट ऊँचे टावर पर रेस्तराँ

वेस्ट एण्ड, लन्दन का डाक विभाग एक अनोखा टावर बना रहा है। ५५० फुट ऊँचे इस टावर की छत पर ४० फुट ऊँचा रियल लगाया जाएगा ताकि डाक विभाग टेलीफोन और टेलीविजन के संवाद अधिक दूरतत्त्वक ग्रहण तथा प्रसारित कर सके। छत में ५२० फुट की ऊँचाई पर एक शालीशान रेस्तराँ भी होगा जहाँ से दर्शक दूर-दूर तक का दृश्य देख सकें। सन् १९६५ तक यह टावर तैयार हो जाएगा।

चिकने फर्श पर अब क्यों फिसलें

वोस्टन (अमरीका) की वाल्टर लियन्स ने एक ऐसा घोल तैयार किया है जो चर्च के लिए हानिशून्य तथा दाग न छोड़ने वाला है। फ्लट की भाँति इसे अत्युत्तम पम्प द्वारा फर्श पर छिड़क देने से फर्श पर चलने में विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं—कैसा भी चिकना फर्श हो, आपका पैर फिसलेगा नहीं।

बच्चे को और भी शीघ्र सहायता

जिन बच्चों के कुण्डों और तालाबों में पानी सिखाया जाता है वहाँ नौसिखिये ही दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो साथ आये हुए बच्चे ही सरकते हुए पानी में जा गिरते हैं जिनका बड़ी देर तक पता चलता है। इनके प्रति सुरक्षा का साधन तैयार कर लिया गया है।

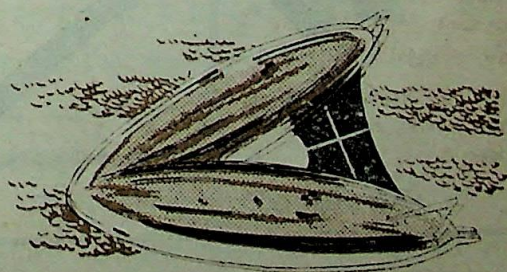
पानी के अन्दर एक ऐसी संवेदक प्लेट तैराये रखते हैं जो प्रत्येक हलचल को ग्रहण तथा प्रसारित कर देती है। इसका सम्बन्ध एक घण्टी से रहता है। किसी भी वस्तु के गिरने तथा निश्चित समय तक न उभर आने पर वह प्लेट सक्रिय हो जाती है और तुरन्त खतरे की घण्टी बज उठती है।

अणुवीक्षक, दृश्य प्रसारक भी

ऐसा द्विउद्देशीय सूक्ष्मदर्शी तैयार किया गया है जिसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का आवर्द्धित रूप न केवल देखा जा सकता है, बल्कि पर्दे पर उस दृश्य को प्रक्षेपित भी किया जा सकता है। इसमें एक विशेषता और भी है कि इसका दर्शक लेन्स एक मापांकित आवरण से भी युक्त है जिससे उस दृश्य को कागज पर उतारा भी जा सकता है।

गुब्बारे आजकल भी

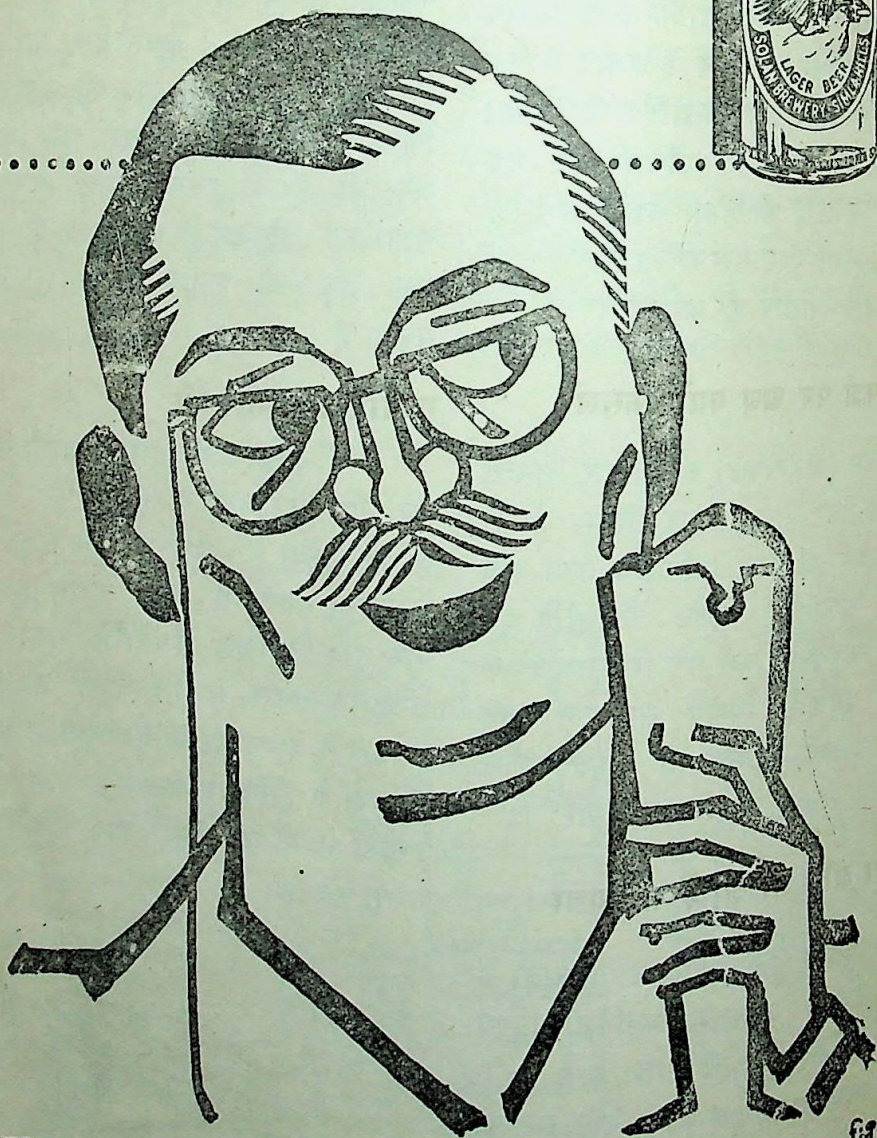
‘वी’ आकृति का तथा गुब्बारों से युक्त यह विशालकाय यान १०० फुट से भी अधिक लम्बा है। अमरीका के एकन नगर के ऊपर गगन से बातें करता हुआ यह यान वायु-निरीक्षक संयंत्रों से सुसज्जित है और वायुमण्डल के महत्त्वपूर्ण अवलोकनों को अपनी वेधशाला में भेज रहा है। इसके गुब्बारों में हीलियम गैस है। तेज से तेज तूफानों में भी यह अपना कार्य सुचारु रूप से करता रहेगा।



अच्छी तथा श्रमहारी !

गोल्डन ईगल लागरबीयर

गोल्डन ईगल बीयर अच्छी है क्योंकि यह ठण्डी, ताजी तथा
साफ है—यह सर्वत्र लोकप्रिय बीयर गर्मियों में वास्तविक
प्यास बुझाने वाली है।



डा. य. र. मी. कि. न. ब्र. श्र. री. ज.

लि०



यं विलक्षण चीटियाँ

ओमशंकर बाजपेई

प्रकृति ने अपनी सृष्टि में अनेकों ऐसी अद्भुत एवं रहस्यमय लीलाओं का निर्माण किया है जिन्हें देखकर या जानकर सभी को विस्मय होता है। प्रकृति के इस लीला प्रांगण में सामान्य मानव प्रविष्ट नहीं हो पाता। अतः उसका ज्ञान सीमित हो रह जाता है। आइये, कुछ ऐसी ही आश्चर्यजनक तथा मनोरंजक लीलाओं का वर्णन जन्तु जगत में देखें।

सिलाई करने वाली चिड़िया (Tailor Bird) का वर्णन अधिकांश लोगों ने पढ़ा होगा। किन्तु इस सिलाई करने वाले कीड़ों के विषय में शायद अधिक लोग परिचित न होंगे। सिलाई करने वाली चिड़िया जिस प्रकार अपना घोंसला बनाती है उसी तरह ईकोफिला (Oecophylla) नामक चींटी पत्तियों को सीकर अपने रहने का स्थान सुरक्षित करती है। ये चींटियाँ उष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों में पायी जाती हैं। ईकोफिला चींटियाँ पत्तियों के किनारों को एक प्रकार के रेशम के धागों से सीकर अपना घर बनाती हैं। इनके सिलाई करने के ढंग

को जानकर मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है। ईकोफिला के लार्वे (larvae) अपने शरीर पर एक प्रकार का रेशम तैयार करते हैं। इसी रेशम को लेकर बड़ी चींटियाँ पत्तियों के किनारे सी डालती हैं। चींटियों का यह एक विशेष गुण है कि वे किसी भी कार्य को अकेले नहीं करतीं। इसी प्रकार दर्जी चींटियाँ भी सिलाई अकेले नहीं करतीं बल्कि अनेकों एक साथ कार्य में जुट जाती हैं। वे पत्ती के किनारों को पकड़कर पास घसीट लेती हैं और इस अवस्था में सम्हाले रहती हैं। कुछ अन्य चींटियाँ अपने लार्वे को लाकर पत्ती के दोनों किनारों पर आगे पीछे ढकेलती हुई आगे बढ़ाती हैं। ईकोफिला का लार्वा एक जीती-जागती रेशम की रील की तरह पत्तियों के किनारों पर लुढ़कता जाता है और किनारे सिलते जाते हैं। यह रहा इन चींटियों का घर बनाने का ढंग।

जन्तुओं के पालतू जन्तु

चींटियों की कुछ जातियाँ अपने कार्यों में वह कौतूहल रखती हैं जो सचमुच ही मनुष्य को विस्मय में डाल देता है।

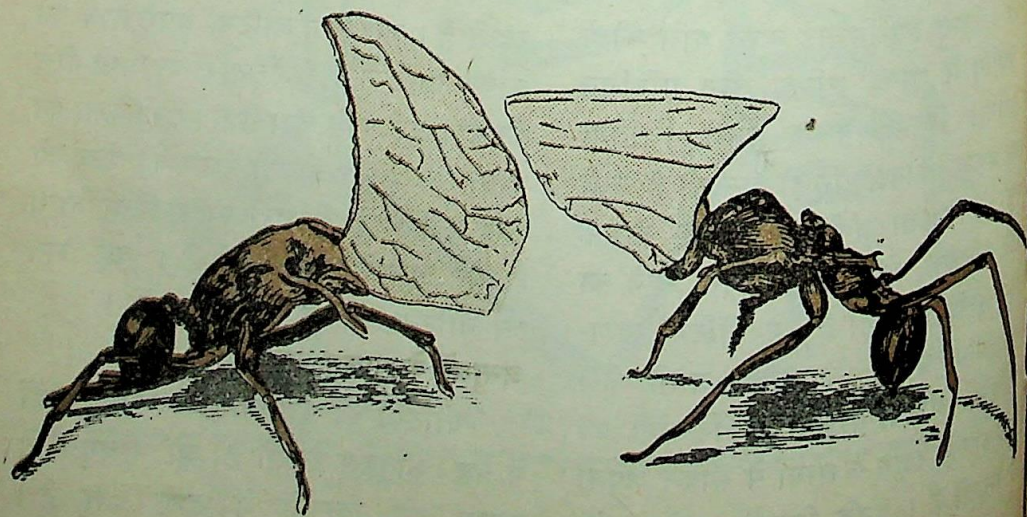
यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में एक प्रकार की चींटी पायी जाती है जो हेटीरियस (*Hetaerius*) नामक छोटे से गुबरीले को बड़े शौक से पालती है। जैसे हम कुत्ता पालते हैं या गाय पालते हैं, ठीक उसी तरह ये चींटियाँ हेटीरियस को पालती हैं। ये गुबरीले चींटियों से अपनी सेवा करवाते हैं और उनसे भोजन प्राप्त कर उनके मेहमान बने रहना पसन्द करते हैं। हेटीरियस और इन चींटियों का रिश्ता बड़े मनोरंजन का विषय है। वास्तव में चींटियाँ इस गुबरीले का चेहरा चाटने में आनन्द लेती हैं और इसीलिए वे इसे अपने मकान में रहने देती हैं तथा आलसी गुबरीले को भोजन करवाती हैं। यह आलसी हेटीरियस अपने भोजन के लिए भी कहीं नहीं जाता; क्योंकि वह बड़ी चतुराई से अपना भोजन चींटियों से ही प्राप्त कर लेता है। जब चींटियाँ हेटीरियस का मुँह चाटना शुरू करती हैं तो वह कुछ समय के बाद अपनी गर्दन को सिकोड़कर चेहरे को धड़ के अन्दर समेट लेता है, इस प्रकार इसका चेहरा चींटियों से छिप जाता है। ऐसी हालत में चींटियाँ अपना भोजन उगलकर उसके आगे

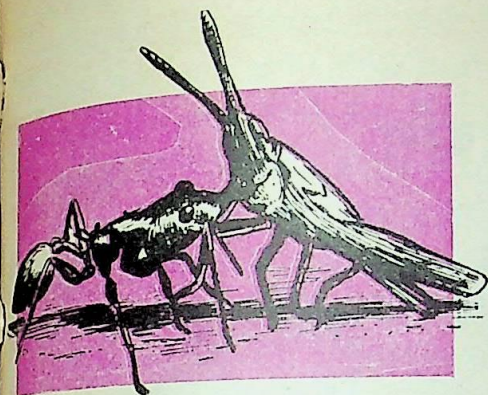
पर्ण-छेदक (leaf-cutter) चींटियाँ पत्तों को कुतरकर अपने बिल में ले जा रही हैं, जहाँ इन पत्तों को खाने योग्य फन्जाई उपजायी जाएगी

डाल देती है, जिसे गुबरीला महाभय खाना पसन्द करते हैं। इस भोजन को खाने के लिए गुबरीला फिर अपनी गर्दन बाहर निकालता है तथा भोजन खाकर मुँह चटवाना शुरू कर देता है, मगर अक्सर देर तक नहीं। इस प्रकार बार-बार वह अपनी गर्दन अन्दर को सिकोड़ता तथा बाहर निकालता और चींटियों से भोजन प्राप्त करता रहता है। ऐसा देखा गया है कि ये चींटियाँ जब किसी समय सैर को निकलती हैं तो अपने प्यारे गुबरीले को साथ ही ले जाती हैं। यहाँ भी इस हेटीरियस की सक्कारी कम नहीं होती। यह अपने पैर समेटकर गोल हो जाता है और मास्टर चींटियों को इसे ढकलते हुए ले जाना पड़ता है। आलसियों में शायद यह सबसे बड़ा आलसी कीड़ा होगा। अतः जानवर पालने का शौक मनुष्य तक ही सीमित नहीं है वरन् छोटे-मोटे कीड़े भी इस प्रकार का शौक रखते हैं और उसे बड़े परिश्रम से पूरा करते हैं।

जीवित स्टोर-हाउस

चींटियों की जाति में कई प्रकार की चींटियाँ होती हैं, जैसे मजदूरी करने वाली





Daceton जाति की शिकारी चींटी, एक टिड्डी का शिकार करके उसे ले जाती हुई

चींटियाँ, लड़ने वाली चींटियाँ आदि-आदि। इसी वर्ग में कुछ शहद की चींटियाँ भी होती हैं। ये चींटियाँ अपने बिलों में अनेक छोटे-छोटे कमरे बनाती हैं, जिनकी दीवारें तथा फर्श बहुत चिकने होते हैं, किन्तु छत विशेष रूप से खुरदरी बनी होती है। शहद की चींटियों में कुछ साधारण सेवक यानी नौकर चींटियाँ होती हैं। इनका काम शहद इकट्ठा करना रहता है। शहद इकट्ठा करने के उपरान्त वे शहद की चींटियों के आगे लाकर उगल देती हैं और शहद की चींटियाँ उन्हें बड़े विचित्र रूप से संग्रह कर लेती हैं। यह संग्रह किया हुआ शहद अकाल के समय काम आता है। इन चींटियों की सारी क्रिया इस प्रकार होती है—एक बिल में हजारों चींटियाँ रहती हैं, जिनमें अधिकतर मेहनत मजदूरी करने वाली होती हैं। कुछ चींटियाँ शहद संग्रह करने वाली होती हैं और शेष मकान की देखभाल करने वाली। मजदूर चींटियाँ पेड़ों पर जाकर शहद एकत्र करती हैं। शहद इकट्ठा करने के साथ-साथ, पौधों पर रहने वाले प्लान्ट लाइस (Plant lice) नामक छोटे से कीड़े को भी लूटकर उससे एक प्रकार का मीठा द्रव प्राप्त कर लाती हैं। प्लान्ट लाइस अपना भोजन अपने पेट में संग्रह करता है और ये

चींटियाँ अपनी मुँहों से उस बेचारे कीड़े को मारती हैं जब तक वह मीठा द्रव बाहर नहीं निकाल देता। इस द्रव तथा शहद को ये चींटियाँ अपने बिलों में ले आती हैं। यहाँ आकर ये चींटियाँ संग्रह करने वाली चींटियों के सामने सारा द्रव तथा शहद उगल देती हैं, जिसे संग्रह करने वाली चींटियाँ खा जाती हैं। ये संग्रह करने वाली चींटियाँ चिकने तथा छोटे कमरों की छतों में चिपटी रहती हैं और इतना भोजन संग्रह कर लेती हैं कि इनका पेट फूलकर फट-सा जाता है और सिर तथा धड़ का कहीं पता तक नहीं चलता। वैज्ञानिक अभी तक इस बात को नहीं समझ सके कि आखिर ये चींटियाँ छत में ही क्यों चिपटी रहती हैं। अकाल के समय जब भोजन की कमी होती है तब बिल में रहने वाली सभी चींटियाँ इन जीते-जागते गोदामों पर हमला बोल देती हैं और उन्हें पीटकर उनसे एकत्र शहद तथा मीठा द्रव निकलवाकर खाती हैं और समय काट देती हैं। अभी तक यह नहीं समझा जा सका कि सभी चींटियाँ जीते-जागते स्टोर-हाउस बन सकती हैं या केवल एक विशेष जाति ही इस काम को पूरा करती है। इन्हें देखने से यह पता चलता है कि चींटियाँ बुरे समय के लिए किस प्रकार उपधान जुटातीं तथा कितने मनोरंजक ढंग से कार्य करती हैं।

जन्तु-गुलाम

इसी शृंखला में एक स्वीटजरलैण्ड में पायी जाने वाली चींटी का वर्णन उपयुक्त जान पड़ता है। इसका नाम पोलियेरगस रूफेसेन्स (*Polyergus Rufescens*) है। ये चींटियाँ अपने भोजन की स्वयं कोई व्यवस्था नहीं करतीं और न ही अपने बच्चों की देखभाल करती हैं। अपने मकान की देखभाल, सफाई तथा खाना एकत्र करने के

एक वैज्ञानिक बात . . .



मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है। यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है। नन्हें मुन्नों (और मेट्रिक बाटों) के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये।

मेट्रिक तोल का जोड़-तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए
पूर्ण श्रृंखला में
मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

Digitized by eGangotri
 लिए ये चींटियाँ फार्मिका (Formica) नामक चींटी को दास बना लेती हैं, जो इसका सारा काम करती रहती है और पोलीयेरगस आराम से जीवन बिताती हैं।

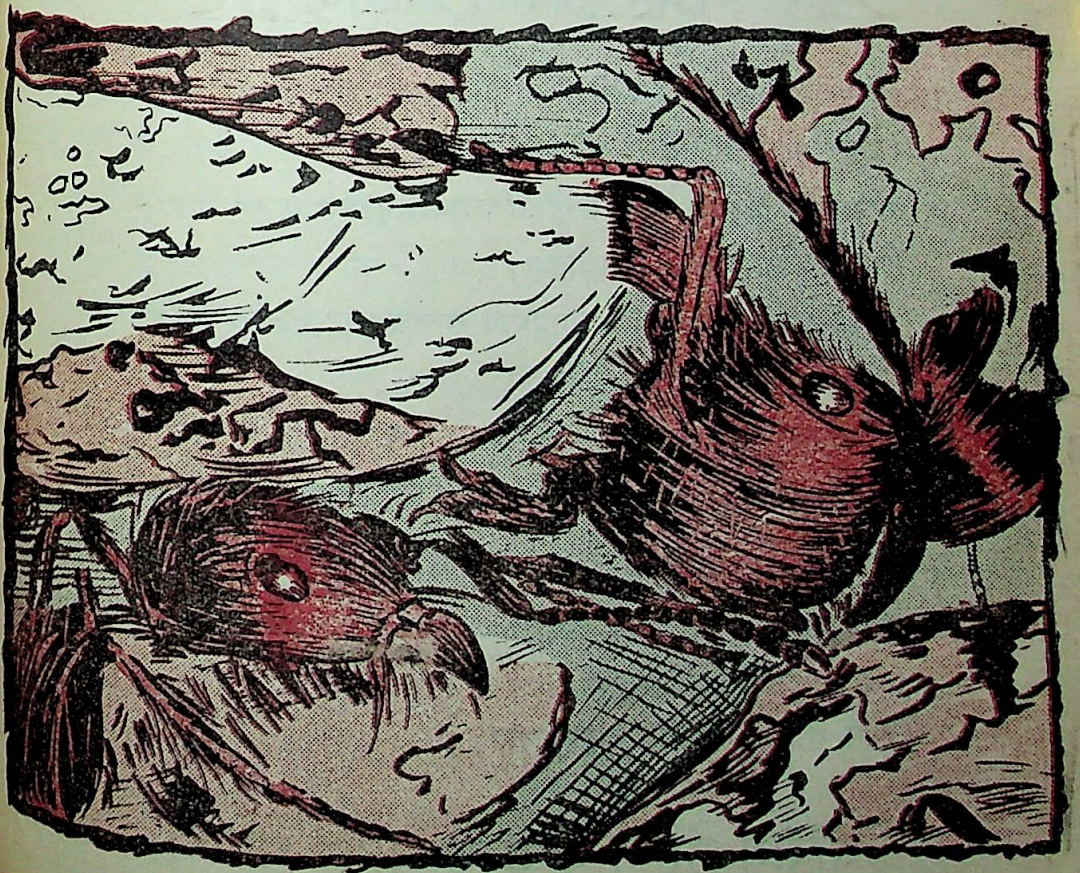
फार्मिका चींटियाँ बच्चे पैदा नहीं कर सकतीं। अतः कुछ समय में ये दास चींटियाँ मरकर नष्ट हो जाती हैं। ऐसे समय में पोलीयेरगस की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि पोलीयेरगस बेठी सोचती रहती है कि अब क्या करना चाहिए। वे तुरन्त फार्मिका की तलाश में निकल पड़ती हैं और घूम-फिरकर उसके बिल को देख आती हैं। फिर बहुत बड़ी संख्या में निकलकर फार्मिका के बिलों पर आक्रमण कर देती हैं तथा फार्मिका के अण्डों को उठा लाती हैं। ये अण्डे पोलीयेरगस के बिलों में ही बढ़कर बच्चे होते हैं

जो पीरे-पीरे रहते हैं। लगते तथा पोलीयेरगस की दासता स्वीकार कर लेते हैं। इन दास चींटियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है ताकि ये कहीं भाग न जाएँ।

सामुदायिक सौत

विभिन्न प्रकार के जन्तुओं की जानकारी विभिन्न प्रकार से मनोरंजक होती है। किन्तु सभी मनोरंजन केवल जीवन बनाये रखने के उपायों में ही सीमित नहीं रहता। संसार में ऐसे प्राणी भी मौजूद हैं जिनमें मौत का आह्वान वैज्ञानिक तथा सामान्य दृष्टि से उत्सुकता का विषय बन गया है। लेमिंग (leming) नामक एक छोटा-सा चूहा (वास्तव में यह चूहा नहीं होता बल्कि उसी की तरह का एक जानवर होता है) स्केण्डीविया के पठारों पर पाया जाता है। यह जानवर पठारों पर उगने वाली घास

चींटियाँ अपने आकार से कई गुनी बड़ी वस्तुएँ खींच ले जाने में समर्थ हैं



को खाकर ही जीवित रहता है। इस वर्ग में सन्तानोत्पत्ति बड़ी तीव्र गति से होती है। धीरे-धीरे एक समय आ जाता है कि पर्वतीय ढालों पर घास समाप्त हो जाती है, किन्तु इस जानवर की वंश वृद्धि अपनी चरम सीमा पर ही होती रहती है। अतः इसे भागना पड़ता है। लेमिंग पठारों को छोड़कर गाँवों, देहातों तथा अन्य जंगलों को पार करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यह देखा गया है कि स्थान परिवर्तन के समय असंख्य लेमिंग अपनी यात्रा पर निकल पड़ते हैं। रास्ते में उन्हें लोमड़ी तथा अन्य शिकारी जानवर मारकर खाते जाते हैं। इतना ही नहीं, बाज तथा उल्लू जैसे शिकारी पक्षी भी इनका भोजन कर डालते हैं। अन्त

में लेमिंग का समुदाय समुद्र के तट पर पहुँच जाता है। वे सभी समुद्र की लहरों में प्रवेश कर जाते हैं तथा मर जाते हैं। जो थोड़े से लेमिंग पहाड़ों पर रह जाते हैं वे पुनः वृद्धि करते हैं और लगभग चार वर्ष में उनकी संख्या फिर लाखों में पहुँच जाती है, खाना फिर समाप्त होता है और इनकी सामूहिक आत्महत्या की दौड़ पुनः दिखाई देती है। असीमित वंशवृद्धि तथा सीमित भोजन के विषम अनुपात के कारण बेचारे लेमिंग बार-बार लाखों की संख्या में प्राण गँवाते हैं। यही वंशवृद्धि पर प्राकृतिक नियंत्रण है। आखिर प्रकृति में यह सब क्यों होता है इसे वैज्ञानिक समझने में असमर्थ है !

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
२. वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
३. प्रारम्भिक भौतिकी—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३.५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
४. प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
५. प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
६. सामान्य विज्ञान—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६.२५
७. सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५.००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा



**विज्ञान
क्लब**



तट पर
की लहरों
जाते हैं।
जाते हैं।
भग चार
में पहुँच
है और
दौड़ पुनः

द्वि तथा
के कारण
संख्या में
प्राकृतिक
यह सब
ममने में

प्यारे बच्चो !

पिछली गर्मियों में जिन दिनों तुम जहाँ-
तहाँ छुट्टियाँ मना रहे होगे, उन्हीं दिनों
तुमने पढ़ा होगा कि समानव अन्तरिक्ष-
उड़ान में सोवियत उड़ाकों ने इस बार
संसार को चमत्कृत कर दिया। वह चमत्कार
या—दो यात्रियों की, दो पृथक् यानों में
अन्तरिक्ष की सह-उड़ान। उनमें एक था
गैरकोव्स्की और दूसरा कु. वेलेंन्तीना
तेरेस्कोव। तेरेस्कोव संसार की एकमात्र
महिला है जो प्रथम बार धरती से उठकर
अन्तरिक्ष में चक्कर लगा आयी और सकुशल
पृथ्वी पर लौट भी आयी।

तुम्हारे अनेक पत्रों में 'तुम्हारी कलम'
में स्तम्भ के लिए नये विषय की माँग मुझ
से की गयी है। मेरा अनुमान है कि 'स्वतंत्र
भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक' तथा 'हमारे
वर्तमान नवोदित वैज्ञानिक' जैसे विषयों पर
तुम और तुम्हारे सदस्य-मित्र अपने-अपने
नगरों तथा क्षेत्रों से ऐसे वैज्ञानिकों तथा
विज्ञानवेत्ताओं के फोटो सहित परिचय
तथा उनकी उपलब्धियों के सचित्र विवरण
संकलित करके मुझे भेजें। रचनाएँ उत्तम
होने पर अवश्य प्रकाशित होंगी और उनसे
भारत के वैज्ञानिकों के प्रति भारतीय जनता
की रुचि और जानकारी बढ़ेगी।

हैं। सही अर्थ में वैज्ञानिक तथा
दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाने के प्रयोग
देने की अब भी तीव्र माँग है। पिछले जून
अंक में प्रकाशित 'टेस्ट ट्यूब में तुला' सरल
प्रयोग होते हुए भी अनेक मित्रों ने उसे
उपयोगी पाया है।

'मुझे सीपी कहते हैं', 'पारमेंत्यर और
ग्रालू', 'ग्राइसक्रीम की बहार-वेनीला' और
'घातक रेडियो विकिरण' लेख विशेष पसन्द
किये जाने के समाचार तुम्हारे अनेक मित्रों
ने अपने पत्रों में मुझे भेजे हैं।

तुम्हारे नये पत्रों की प्रतीक्षा में,

तुम्हारी,
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४१ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

रामकुमार (५६२६) दिल्ली।

द्वितीय पुरस्कार

त्रिभुवननाथ (७१००) बीकानेर।

तृतीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र (११५७) आगरा, अशोक गुप्ता
(२७०१) लखनऊ, वीरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव (३४२६)
इलाहाबाद, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, प्रदीप-
कुमार (४१३५) इलाहाबाद, जगदीशप्रकाश गुप्ता
(६६१६) कानपुर, सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०)
अमृतसर, कु. माया देवी (८६०४) कानपुर।

प्रतियोगिता संख्या ४३

सदस्य संख्या.....



ओमप्रकाश
(स. सं. ४०४४)



प्रदीपनारायणलाल
(स. सं. ५५३०)



दिलप्रसाद
(स. सं. ५७१२)



रामनारायण
(स. सं. ६२२४)



रमाशंकर
(स. सं. ६२३५)

६६२६ गोविन्दप्रसाद (१६) इलाहाबाद, ३० मधुसूदन (१७) लखनऊ, ३१ बजरंगलाल (१६) सरदारशहर, ३२ महेशचन्द्र (१८) अलीगढ़, ३३ स्वराज बिहारी (१८) आगरा, ३४ प्रकाश (१८) आगरा, ३५ कु. अरुणा (१३) आगरा, ३६ नरेश कुमार (२०) आगरा, ३७ सुधीरकुमार (१५) आगरा, ३८ कृष्णचन्द (१७) लश्कर, ३९ केशवदेव (१३) बाँदा, ४० किशोरसिंह (१५) बीकानेर, ३१ भूषणकुमार (१४) उज्जैन, ४२ पुरुषोत्तमदास (१५) रायगढ़, ४३ राजेन्द्रकुमार (१४) विदिशा, ४४ बसंतकुमार (१४) विदिशा, ४५ अरुणोदय (१२) भोपाल, ३६ अजयकुमार (११) मोतीहारी, ४७ कु. निराशा (१५) बोरियो, ४८ यशवात्स्यायन (१७) बटाला, ४९ जेठनशॉ (१६) कलकत्ता, ५० दिनेशकुमार (१४) गोरखपुर, ५१ ब्रजनन्दनराम (१४) जहानाबाद, ५२ प्रवीणकुमार (१२) दिल्ली, ५३ त्रिलोकचन्द (१६) दिल्ली, ५४ भजनवीर (१४) कानपुर, ५५ चन्द्रशेखर (१७) मल्हारगढ़, ५६ आर. बी. अग्रवाल (१७) जबलपुर, ५७ जसवीरसिंह (१६) इन्दौर, ५८ रमेश (१५) अजमेर, ५९ विजयचन्द्र (१७) नसीराबाद, ६० आलोक (११) जमशेदपुर, ६१ श्रीनारायण (१५) मुजफ्फरपुर, ६२ भँवरलाल (१८) नौगाँव, ६३ कु. चन्द्रकांता (१६) बम्बई, ६४ सुशीलकुमार (१४) वाराणसी, ६५ कामताप्रसाद (१५) कलकत्ता, ६६ हरबंससिंह (१७) हीराकुड, ६८ विजयकुमार (१६) कलकत्ता, ६९ पंकजकुमार (१३) भागलपुर, ७० नवलकिशोर प्रसाद (११) दरभारा, ७१ राजेन्द्रकुमार (१४) सीकर, ७२ इन्द्रनारायण (१६) पटोरी, ७३ प्रभाशंकर (१५) सकरिया, ७४ रामनन्दन (१६) श्रीपाथर, ७५ डी. कमल (१६) रांची, ७६ रजनीकांत (१३) मोटीमारड, ७७ शैलेन्द्रकुमार (१३) लखनऊ, ७८ वीरेन्द्रकुमार (१६) विजनौर, ७९ दयालसरन (१५) आगरा, ८० दर्शनसिंह (१७) रायपुर, ८१ वीरेन्द्रकुमार (१२) रानीपुर, ८२ कुलप्रसाद (१३) डिगबोई, ८३ प्रेमनारायण (१४) आगरा, ८४ मोहनमाधवराव (१४) नागपुर, ८५ हरिश्चन्द्र (१०) दिल्ली, ८६ भुरितराम (१६) खरसिया, ८७ त्रिलोकचन्द्र (१५) व्यावर, ८८ रणजीत (१६) कलकत्ता, ८९ सूर्यकान्त (१२) भोपाल, ९० शिवकुमार (१८) अलीगढ़, ९१ अम्बेशकरन (८) जोधपुर, ९२ राकेशकुमार (११) इलाहाबाद, ९३ सरयूप्रसाद (१७) गया, ९४ रमेशचन्द्र (१८) शाजापुर, ९५ राममूर्ति (१६) जर्वे, ९६ अशोककुमार (१४) दिल्ली, ९७ राजेशकुमार (१२) दिल्ली, ९८ सुरेश (१२) नागपुर, ९९ हरीशचन्द्र (१५) कोटा, ६७०० पंकजशरण (१४) बुलन्दशहर, १ राजनारायण (१६) पडरीकलां, २ कु. सुषमा (१५) नौगाँव, ३ राजेन्द्रकुमार (१४) तिलकनगर, ४ पार्थसारथी (१५) पूना, ५ जयकर (१४) चाइबासा, ६ अजयकुमार (१२) जौनपुर, ७ शशिभूषण (१४) बीकानेर, ८ कु. पूर्णिमा (१६) रायपुर, ९ ए. के. सूर (२०) रायपुर, १० सुरेशचन्द्र (१२) अलिराजपुर, ११ ओमप्रकाश (१४) कुशी, १२ कु. मंजूश्री (१३) फैजाबाद, १३ ब्रजभूषण (१७) वेगमपुर, १३अ विष्णुप्रसाद (१३) भोपाल, १४ ज्ञानताकुमारी (१०) पिपरिया, १५ अनिलकुमार (१६) आगरा, १६ महेन्द्रनारायण (१४) फुलपरास, १७ विनोदकुमार (१४) जसीडीह, १८ नन्दलाल (१४) मुँगेर, १९ सुधीरकुमार (११) गोरखपुर, २० अविनाशचन्द्र



प्रकाशचन्द्र
(स. सं. ६२५५)



विनोद
(स. सं. ६४४५)



बलरामदास
(स. सं. ६८२५)



गोपेश्वर
(स. सं. ७३५५)



देवकुमार
(स. सं. ७३५५)



विनायक
(स. सं. ७३५५)

(१४) जबलपुर, २१ एच. एन. मुरलीधर (१७) जबलपुर, २२ प्रेमकुमार (१७) हाटा, २३ राजेन्द्रसिंह (१५) बड़ौत, २४ सत्यनारायण (१७) भटिण्डा, २५ काशीनाथ (१५) खगौल, २६ विकासप्रसाद (१५) पूर्णियाँ, २७ सोमचन्द्र (१२) कुशी, २८ दिनेशकुमार (१२) धनबाद, २९ कु. गीता बेनेगल (१४) देहरादून, ३० गिरीशकुमार (१५) हाटा, ३१ रीताकरण (९) धनबाद, ३२ दिलीपकुमार (१४) बम्बई, ३३ प्रकाश बाबूराव (१३) बम्बई, ३४ शरदेन्दु (१३) मोतीहारी, ३५ राधेश्याम (१३) हाटा, ३६ विजयकुमार (१३) करौरा, ३७ श्यामसुन्दर (१३) कटरासगढ़, ३८ आदित्य (१२) लश्कर, ३९ ए. क्लेवर्स (१३) रांची, ४० विजयकुमार (११) कटरास बाजार, ४१ अब्दुलहई (१५) रायपुर, ४२ रामप्रसाद (२०) जमशेदपुर, ४३ जोसेफ विक्टर विजयधर (१६) मुजफ्फरपुर, ४४ प्रकाशसिंह (१३) कानपुर, ४५ सुरेशचन्द्र (१८) आगरा, ४६ अशोक (१६) कोटा, ४७ जगदीशनारायण (१५) नेतरहाट, ४८ राउल गोम्स (१६) जमशेदपुर, ४९ तारकेश्वरप्रसाद (१६) गनपतगंज, ५० कु. मुक्ता बालादास (१५) वाराणसी, ५१ रमानिवास (१३) हनुमना, ५२ विजयकुमार (१२) सरेन, ५३ प्रभातरंजन (१४) धनबाद, ५४ सरोश एम. दलाल (१६) जमशेदपुर, ५५ नन्दकिशोर (१५) गिरीडीह, ५६ रमेशचन्द्र (१४) पिथौरागढ़, ५७ शमसुद्दीन (१८) वाराणसी, ५८ प्रकाशकुमार (१२) पडरौना, ५९ ईश्वरचन्द्र (२५), पडरौना, ६० आसिफ जैदी (१३) आगरा, ६१ गोपाल जालान (१६) गिरीडीह, ६२ गोपालकुमार (१०) मालिनी, ६३ अरुणकुमार (१८) कामठी, ६४ अशोक बेनेगल (११) देहरादून, ६५ सत्यप्रकाश (१४) करौरा, ६६ सच्चिदानन्दसिंह (१३) हरनाथपुर, ६७ विन्देश्वरीकुमार (१२) हरनाथपुर, ६८ कु. रेखारानी (१२) पटना, ६९ शिवयतनकुमार (१४) अथमल गोला, ७० प्रमेशनारायण (१५) बिलग्राम, ७१ श्यामानन्दप्रसाद (१५) कटिहार, ७२ अखिलेशकुमार (१६) भाँसी, ७३ महेशदत्त (१६) व्यावर, ७४ केशवचन्द्र (११) वाराणसी, ७५ विश्वनाथ (१८) कानपुर, ७६ गणेशदत्त (१५) जबलपुर, ७७ मेवालाल (१८) भानतलैया, ७८ चन्द्रमोहन (१३) हिंगनघाट ७९ रामकिशोर (१५) जैतारन, ८० द्वारकादास (१७) बड़वानी, ८१ प्रद्युम्नचन्द्र (१२) उज्जैन, ८२ शिशिर (११) आगरा, ८३ विद्याशंकरलाल (१४) अनिसाबाद, ८४ महावीरशरण (१५) गोरखपुर, ८५ विजयसिंह (१८) सादुलपुर, ८६ कु. विजयलक्ष्मी (१२) लश्कर, ८७ मंगतमल (१९) सादुलपुर, ८८ योगेन्द्र (१३) मेरठ, ८९ राजकुमार (१५) लश्कर, ९० विजयजनार्दन (१७) आद्रा, ९१ कमलाकांत (१६) सुन्दरगढ़, ९२ वेदप्रकाश (१५) लुधियाना, ९३ विक्रमकुमार (१४) लश्कर, ९४ रमेशकुमार (१४) ग्वालियर, ९५ पशुपतिनाथ (११) सिवान, ९६ बलवीरसिंह (१२) नई दिल्ली, ९७ वजरंग (१५) हावड़ा, ९८ श्रीराम (१६) सिवान, ९९ रमेशचन्द्र (१७) सुपौल, १०० त्रिभुवननाथ (१३) सिवान, १ काशीनाथ (१४) नापासर, २ रमेशचन्द्र (१६) हरद्वार, ३ रंजनकुमार (१०) हरद्वार, ४ सुभाषचन्द्र (१०) हरद्वार, ५ रवीन्द्रनाथ (१३) सिवान, ६ शिवदयाल (१८) कटक, ७ महावीरप्रसाद (१३) सिवान, ८ ध्रुवजीप्रसाद (१४) सिवान, ९ जगदीशचन्द्र (१३) सोयतकलां ।



ब्रिजलाल
(स. सं. ७८१०)



बद्रीप्रसाद
(स. सं. ७८२२)



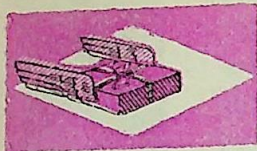
मदनगोपाल
(स. सं. ७८६०)



विपिनबिहारी
(स. सं. ८१४२)



विन्ध्याचलप्रसाद
(स. सं. ८५३६)



विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३

प्रथम पुरस्कार

द्वितीय पुरस्कार

तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तकें
२० रु. की पुस्तकें
१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ अगस्त

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। ३१ अगस्त तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३ के प्रश्न

१. ब्राउन कोल, कोयले की किस अवस्था का नाम है ? इसका पारिभाषिक नाम तथा इसमें कार्बन की प्रतिशत मात्रा क्या है ?

२. लेंगरहेन्स द्वीप (Langerhans islands)
कहाँ हैं, किस लिए प्रसिद्ध हैं ?

३. प्रथम भू-भौतिकी वर्ष की अवधि कब से कब तक की थी ?

४. तार पीडो क्या है ? इसका आविष्कार किसने किया ?

५. पृथ्वी पर कौन-सी वनस्पति सर्वाधिक मात्रा में पायी जाती है ?

६. हमारे नेत्रपटल के किस बिन्दु पर सभ्यतम बिम्ब पडता है और क्यों ?

७. सूत के धागे में काउण्ट (count) क्या अभिप्राय है ? यह किस प्रकार निर्धारित किया जाता है ?

द. भूगर्भ में कौनसी धातु सबसे अधिक पायी जाती है ?

६. प्रेयरी डाग (Prairie dog) का क

करण किस जाति के जन्तुओं में किया जाता है ?

१०. फोर्लिंग चेयर का आविष्कार
किया ?

प्रतियोगिता संख्या ४१ के प्रश्नों के उत्तर

१. जहाँ डाल्टन ने १७६४ में। वह और उसका भाई वर्णान्ध थे। इसी विषय पर उसने अपना खोजपूर्ण प्रबन्ध पढ़ा था।

२. फर्नीचर में प्रचुरता से काम आने वाला महोगनी का वृक्ष । चाँदनी रात में इसमें नमी कम, मजबूती अधिक तथा रंग भी उत्तम होता है ।

३. त्वचा से सटी हुई रक्त-केशिकाएँ मस्तिष्क द्वारा संचालित ज्ञान तन्तुओं से सक्रिय होकर रक्त प्रवाह तेजी से बढ़ा देती हैं। तभी लाली नजर आती है।

४. अन्दर की गर्मी पाकर अतिरिक्त आक्सीजन पृथक् होकर शेष पानी रह जाता है और उठती हुई आक्सीजन भाग देती हुई निकलती है।

५. ओस्मियम । एक घन फुट टुकड़े का भार लगभग १४०० पौण्ड ।

६. स्टाइलेप ।

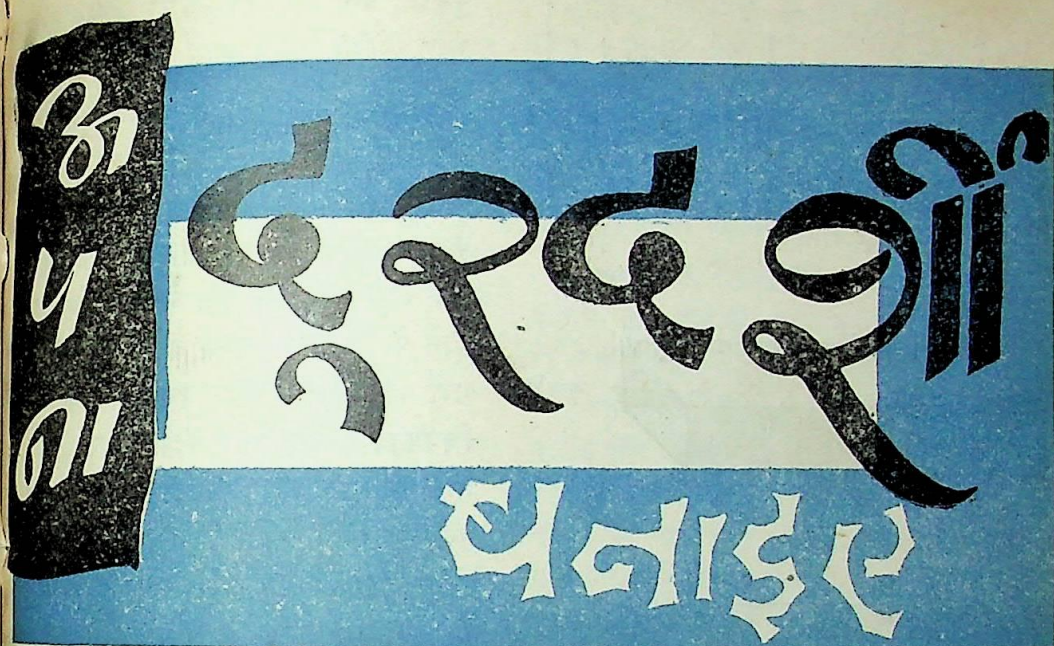
७. पलकों को स्वस्थ रहने के लिए आँकड़ा रहना आवश्यक है। यह कार्य अदृश्य श्रम-पालिका बीच-बीच में करती रहती हैं। उनका जीवन जल-भाग तथा धूलिकण आदि बुराई की भाँति जल-करके पलकों कोने के उन छिद्रों में ले जाती है। नासिका में खलते हैं।

द. मिसिसिपी नदी मिनेओस्टा (Minnesota) में स्थित इटास्का झील (Itasca) से निकलती है। यह नदी अंतर्देशीय जलमयंत्रण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

६. दक्षिणी आस्ट्रेलिया में ।

१०. दक्षिणी अफ्रीका में पायी जाती है।
मेन कैण्डिल तथा पनामा नहर के निकट पायी जाती है।
वाला कैण्डिल ऐसे ही वृक्ष हैं जिनकी लम्बी फलियाँ खायी भी जाती हैं और मोम बनाने के लिए
तरीह जलाने में भी काम आती हैं।

करो और देखो



आप यह दूरदर्शी (telescope) सस्ते में तथा सरलता से तैयार कर सकते हैं। इसे बनाने से पूर्व निम्न साधन एकत्रित कीजिए :

१. लगभग ५० से. मी. नाभ्यान्तर (focal length) का एक ताल (lense)।

इस ताल का वास्तविक नाभ्यान्तर (माना) 'य' से. मी. है। इस ताल को 'क' नाम से पुकारेंगे।

२. लगभग ६ से. मी. नाभ्यान्तर का एक अन्य लेन्स। इसे 'ख' लेन्स तथा इसके नाभ्यान्तर को 'र' से. मी. कहेंगे।

'य' तथा 'र' के स्थान पर आप इन लेन्सों के वास्तविक नाभ्यान्तर लिख सकते हैं।

३. गत्ते (cardboard) की एक शीट,

४. गोंद तथा कुछ रही कागज की पट्टियाँ।

निर्माण विधि

१. गत्ते का एक टुकड़ा $(य+२) \times २४$

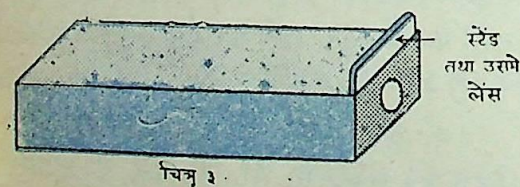
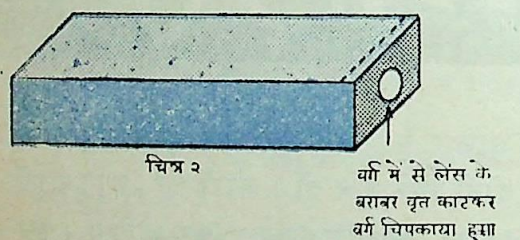
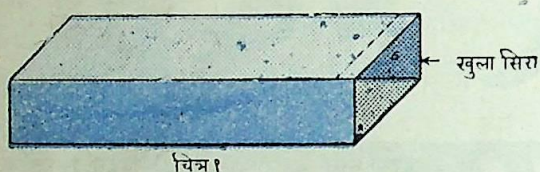
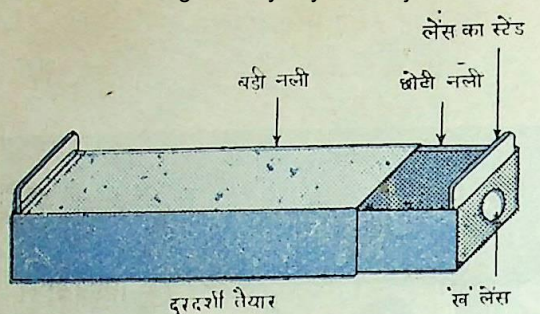
से. मी. का लेकर उससे एक नली के

आकार का चौकोर डिब्बा बनाइये जिसके दोनों सिरे खुले हों। जोड़ों पर कागज की पट्टियाँ चिपकाकर मजबूत कर दीजिए। इस नली का आकार बनने पर $(य+२) \times ६ \times ६$ से. मी. होगा (चित्र १)

२. इसी प्रकार, एक दूसरा डिब्बा $(२+४) \times २३$ से. मी. के गत्ते के टुकड़े से बनाइए।

३. इन दोनों डिब्बों में से प्रत्येक डिब्बे की किसी एक दीवाल को किसी एक सिरे से एक से. मी. की दूरी तक काट दिया। चित्र १ में यह भाग बिन्दुमय रेखाओं से दिखलाया है।

४. गत्ते के दो वर्ग एक ६×६ से. मी. तथा दूसरा ५.७५×५.७५ से. मी. के लेकर पहले में से 'क' लेन्स के व्यास के बराबर तथा दूसरे में से 'ख' लेन्स के व्यास के बराबर वृत्त काट लिया। इस प्रकार बचे वर्गों में से पहले से बड़ी नली के उस सिरे को बन्द कर दिया जिस ओर से आपने एक दीवाल एक से. मी. तक काट दी थी।



इसी प्रकार दूसरे वर्ग को छोटी नली पर चिपका दिया जाए चित्र (२) ।

५. अब आपको लेन्सों के लिए स्टैंडों की भी आवश्यकता होगी । इसके लिए दो गत्ते के टुकड़े 18×5.75 तथा 18×5.5

से. मी. के लेकर उन्हें बीच से मोड़कर दुहरा कर लिया । ऊपर से १ से. मी. भाग छोड़कर शेष भाग के मध्य से कमच. 'क' तथा 'ख' लेन्सों के व्यास से थोड़े कम व्यास के वृत्त काट लिये । पहले गत्ते की तहों के बीच 'क' लेन्स इस प्रकार रखा कि कटे भागों के बीच में लेंस भली प्रकार फिट बैठ जाये । लेंस से गत्ते में कटा भाग छोटे होने के कारण लेन्स बाहर नहीं गिरेगा । गत्ते की तहों को सिरों पर कागज की पट्टिका चिपकाकर बन्द कर दिया तथा इसे बड़ी नली के बन्द सिरों की ओर कटे भाग में बड़ी नली में रख दिया । इसी प्रकार 'ख' लेन्स स्टैंड बनाकर उसे छोटी नली में, बन्द सिरों की ओर कटे भाग में से नली में खड़ा कर दिया (चित्र ३) ।

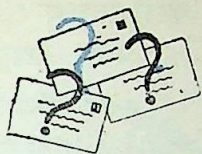
६. बड़ी नली के खुले सिरों में छोटी नली का खुला सिरा डाल दिया । अब छोटी नली बड़ी में आगे पीछे भली प्रकार घूम सकेगी ।

लीजिए आपका दूरदर्शी तैयार है । अब इससे अपने दूर खड़े किसी मित्र अथवा किसी अन्य वस्तु को इस प्रकार देखिये कि दूरदर्शी का 'ख' लेन्स आँख के पास तथा 'क' लेन्स वस्तु की ओर हो । वह वस्तु आपको उलटी तथा अस्पष्ट दिखलाई देगी । छोटी नली को आगे पीछे करके उसे उस स्थिति पर स्थित कीजिए कि वह दूर की वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगे ।

इस पत्थर में जान है

मध्य यूराल की पर्वतमाला से एक ऐसा विचित्र पत्थरनुमा खनिज प्राप्त किया गया है जिसके विशिष्ट गुणों के कारण उसे वर्मिक्युलाइट अर्थात् कीड़ेनुमा पत्थर नाम दिया गया है । गरम किये जाने पर यह पत्थर ऐँठता है, आकार में २० गुना तक बढ़ जाता है और हलका तथा स्पंजनुमा भी हो जाता है जिसके कारण उसमें पानी सोखने की क्षमता भी आ जाती है ।

आपके प्रश्न



उमेशचन्द्र चौबे (५६८२) ललितपुर

प्रश्न—कभी-कभी चन्द्रमा के चारों ओर एक गोले घेरा दिखाई देता है, वह क्या है ?

उत्तर—वायुमण्डल में व्याप्त हिमकणों द्वारा परावर्तित प्रकाश किरणें उस गोले के रूप में दिखती हैं।

पारसनाथ (७८४२) डाल्टनगंज

प्रश्न—एन्टी-टाक्सिन (anti-toxin) क्या है ?

उत्तर—शरीर के स्वस्थ अंगों द्वारा उत्पादित वह पदार्थ जो शरीर में स्थित बैक्टीरिया के जैविक-विष को नष्ट करता रहता है। यह पदार्थ संश्लेषित रूप से भी बनाकर आवश्यकतानुसार शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है।

हृण्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—रेडियो-सक्रिय स्ट्रान्शियम का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—इसका प्रचलित नाम स्ट्रान्शियम-९० है। परमाणुबम के विस्फोट के बाद यह वायुमण्डल में उड़ता हुआ स्ट्रेटोस्फीयर तक पहुँच जाता है। वहाँ वर्षा के जल में घुलकर पुनः पृथ्वी पर बरसता है। इसका मिश्रित जल वनस्पतियों पर गिरता है जिसके फलस्वरूप वे विपाक्त हो जाती हैं। मनुष्यों तथा प्राणियों द्वारा उन वनस्पतियों के उपयोग से अस्थि-कैंसर (Bone Cancer) के विभिन्न घातक रोग हो जाते हैं।

अरुणकुमार भट्ट (६६७८) बुरहानपुर

प्रश्न—सूखने के लिए डाले हुए कपड़े रात की शीतल हवा की अपेक्षा दिन की गर्म हवा में क्यों सूखते हैं ?

उत्तर—गीले कपड़ों की आर्द्रता सूखने के लिए हवा का गर्म होना आवश्यक है।

शशीलाल शर्मा (६६५२) मण्डफिया

प्रश्न—स्पंज किस पदार्थ से तैयार किया जाता है ?

उत्तर—यह एक समुद्री जीव का कंकाल है।

प्रेमसिंह (३८६) गंगानगर

प्रश्न—गन-मेटल में क्या-क्या पदार्थ, किस मात्रा में मिलाये जाते हैं ?

उत्तर—इसमें मुख्य धातु ताँबा होती है जिसमें टिन १०% जस्ता १०% और सीसा ५% मिलाया जाता है।

कु. शकुन्तला राउत (७४०५) छिन्दवाड़ा

प्रश्न—यदि यह सत्य है कि सर्प के कान नहीं होते तो वह बीन की मधुर ध्वनि पर मुग्ध क्यों हो जाता है ?

उत्तर—सर्प के कान नहीं होते। बीन और बजाने वाले को केवल वह अपनी दृष्टि में बाँधे रहता है और बीन के साथ ही हिलता है। ध्वनि का अनुभव यह केवल भूमि पर होने वाले प्रकम्पनों से अपनी त्वचा द्वारा करता है।

रमेशप्रसाद शर्मा (६२६६) शिमला

प्रश्न—घड़ियों का आविष्कार किस प्रकार किया गया ?

उत्तर—यन्त्रचालित घड़ियों का प्रारम्भ दीवार घड़ी से हुआ जिनके आविष्कार का श्रेय जर्मनी के हेनरी डी विक (१३६२) को है। घड़ियों के क्रमिक इतिहास के लिए विज्ञान-लोक, मार्च ६२ का अंक देखिए।

जानकीप्रसाद गर्ग (६६२४) सबलगढ़

प्रश्न—टाइपराइटर का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—अमरीका के क्रिस्टाफर शोल ने (जीवनी देखिए विज्ञान-लोक अक्टूबर १९६२)

पन्नालाल (६४२७) चौकआरा (बिहार)

प्रश्न—लूथियम नामक तत्त्व की खोज का श्रेय किसको है ?

उत्तर—क्लीव (१८७९) को।

रमेशकुमार सोनी (६३६६) पेण्डारोड

प्रश्न—कुछेक व्यक्ति, बायें हाथ से ही प्रत्येक कार्य बखूबी किस प्रकार कर लेते हैं ?

उत्तर—प्रारम्भ ही से अभ्यास पड़ जाने के कारण।

मनोजकुमार वर्मा (८१३) पटना

प्रश्न—नाइटशेड वनस्पति को बेलाडोना अर्थात् सौन्दर्यमयी क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—इसका सत् एट्रोपीन (atropene) के नाम से नेत्रचिकित्सा में महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग प्राचीन इटालियन महिलाएँ खूब जानती थीं और सही रूप में करती भी थीं, क्योंकि इसकी बूंद दो बूंद पुतलियों को फैला देती है। फैली हुई पुतलियों से नेत्र-परीक्षण में तो सहायता मिलती ही है, नेत्र बड़े भी दिखते हैं जो सौन्दर्य का प्रतीक माने जाते हैं।

रणवीरसिंह (४४२) सिरोही

प्रश्न—सल्फीकृत (sulphuretted) हाइड्रोजन प्राप्त करने का स्वचालित उपकरण कौन-सा है ?

उत्तर—किप्प (१८६०) द्वारा तैयार किया गया उपकरण इस कार्य के लिए श्रेष्ठ है। इसमें गैस निर्धारित दाब पर संचित रहती है और ज्यों-ज्यों आवश्यकता पड़ती है यह इसमें स्वयं ही उत्पन्न होती रहती है।

चन्द्रभूषण गिरोजा (३४७१) बम्बई

प्रश्न—मोटरकार के आगे-पीछे के पहिये पर-स्पर कभी असमान गति से भी चलते हैं क्या ? कब और किस प्रकार ?

उत्तर—तेज चलती हुई कार के पहिये मोड़ पर विभिन्न गति के हो जाते हैं। यद्यपि यह विचित्र प्रतीत होता है किन्तु उसमें लगे डिफरेंशियल गीयर का यही काम है। इसमें प्रत्येक पहिये की आधी आधी शाफ्ट केन्द्रीय क्राउनव्हील से छोटे पिनियन गीयरों द्वारा सम्बन्धित रहती है।

आलोक भट्टाचार्य (८७००) कानपुर

प्रश्न—पिता-पुत्र को एक साथ नोबेल पुरस्कार मिलने का कोई दृष्टान्त है क्या ?

उत्तर—जी हाँ। विलियम एच ब्रेग (१८६२-१९४२) ने १९१५ में अपने पुत्र विलियम एल ब्रेग (जन्म-१८९०) के साथ एक्स-रे तथा मणिभ-संरचना पर संशोधन प्रस्तुत करके भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सम्मिलित रूप से प्राप्त किया था।

सुरेन्द्रकुमार (६०६४) जबलपुर

प्रश्न—साइक्लोट्रान का आविष्कार किसने और कब किया ?

उत्तर—कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्रो. अर्नेस्ट आरलेण्डो लारेन्स ने १९३१ में।

पराक्षितकुमार मदान (२६४२) कुरुक्षेत्र

प्रश्न—हाइड्रोमानिक्स क्या है ?

उत्तर—विना मिट्टी, खाद की बागवानी और कृषि-विद्या। इसमें केवल रासायनिक घोल ही काम में लिये जाते हैं।

श्यामबिहारी (१०१८) अमृतसर

प्रश्न—तेजी से घूमती हुई छड़ की गति नि-यंत्र द्वारा मापी जा सकती है ?

उत्तर—स्ट्रोबोस्कोप द्वारा।

कौशलेन्द्रप्रसाद (५८५) मोतिहारी (बिहार)

प्रश्न—किस वृक्ष से मलेरिया की दवा बनाई जाती है ?

उत्तर—सिन्कोना-वृक्ष से।

आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ

प्रश्न—सल्फा-ड्रग्स क्या है ?

उत्तर—तीव्र रोगाणुरोधक (antiseptic) औषधियाँ हैं। जर्मनी की प्रसिद्ध बायर (Bayer) कम्पनी में काम करते हुए रसायनज्ञ डॉमैग (Domagk) ने १९३५ में इन सल्फोनामाइड दवाओं का आविष्कार किया था। उन दिनों रोगाणुरोधक अन्य औषधियाँ प्रभावकारी होते हुए भी इतनी हानिरहित नहीं थीं जो निस्संकोच ले ली जातीं। अतः इनके आविष्कार ने एक आश्चर्यजनक नवीन प्रस्तुत की है। ये औषधियाँ कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा सल्फर की जटिल यौगिक हैं।

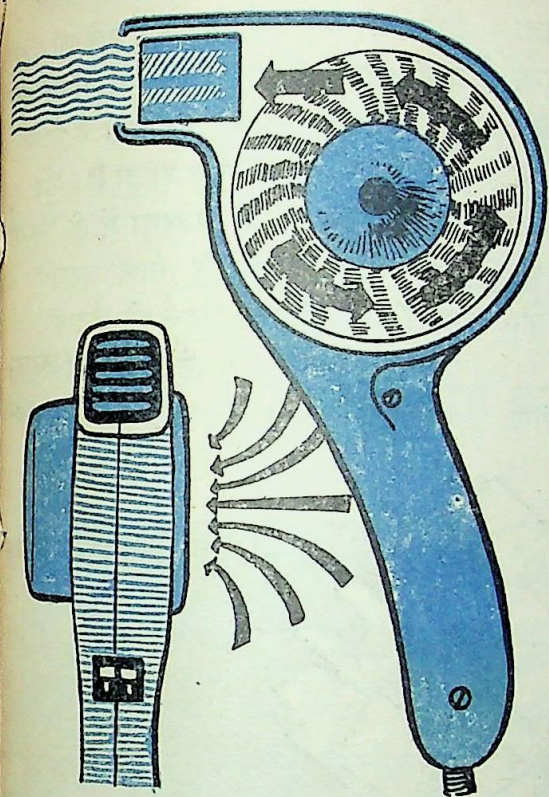
रामानुजप्रसाद सिंह (५७५८) गया

प्रश्न—सन् १९६१ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार किसे दिया गया ?

उत्तर—दो वैज्ञानिकों को सम्मिलित रूप से दिया गया—राबर्ट हैफस्टेडटर को परमाणु नाभिक के अनुसन्धान पर तथा रुडोल्फ मोस बेउर को 'मोस बेउर प्रभाव' के उपलक्ष्य में।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

कुक्षेत्र
तुम्हारी कलम से



स्विच

देखाइए

बाल

सुखाइए

शिम्भू शरण (स. सं. १५०४)

बालों को धोकर तुरन्त सुखा लेना अब कोई समस्या नहीं रहा। बिजली का यह छोटा-सा यन्त्र प्रायः ही देखने में आता है। यद्यपि हमारे यहाँ इसका प्रचलन अधिक नहीं हुआ है तथापि हेयर कटिंग सैलूनों में इसका प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

सैद्धान्तिक रूप से यह केवल एक हस्त-चालित बिजली का पंखा प्रतीत होता है जिसमें एक ओर से सामान्य वायु प्रवेश करती है और दूसरी ओर से अर्थात् नली के द्वारा इतने उच्च ताप की बनकर निकलती है जो बालों को शीघ्र ही सुखा सके। सरल रचना होते हुए भी इसके निर्मायकों ने अन्यान्य विद्युत-उपकरणों

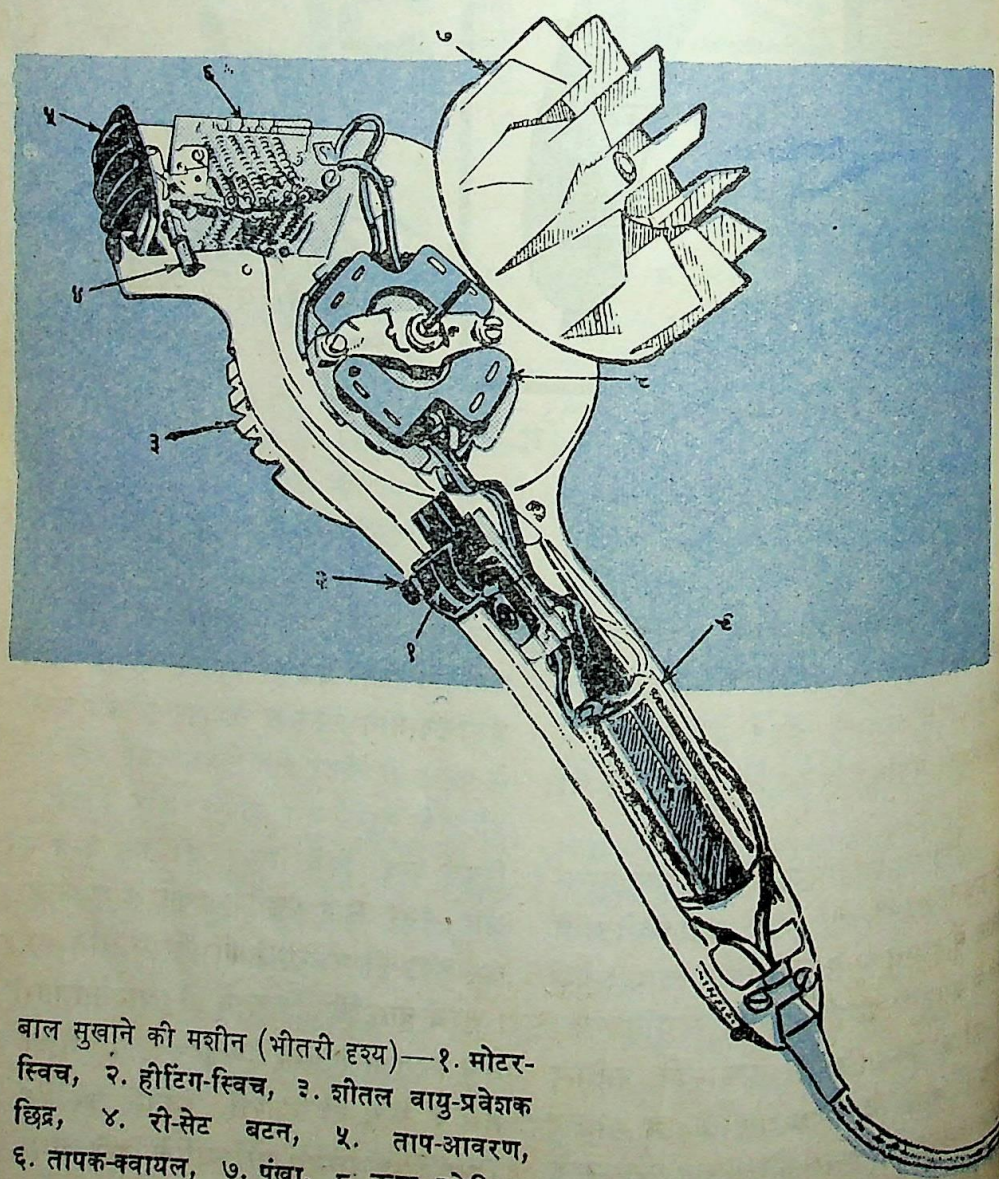
(पंखा, इस्त्री, स्टोव, हीटर आदि) की भाँति इसमें भी उस प्रत्येक सावधानी की व्यवस्था रखी है जो इसका असावधानी से प्रयोग करने पर हो जाए। उदाहरणार्थ, असावधानीवश इसके पंखे का स्विच दबाने से पहले ही हीटर का स्विच दबा देने पर हीटर के तार जल जाएँगे और हीटर का स्विच बन्द किये बगैर ही इस यन्त्र को आड़ा-टेढ़ा, चाहे जहाँ रख देने से यन्त्र जल कर नष्ट हो सकता है।

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, एक बहुत ही सूक्ष्म हासपावर की इलेक्ट्रिक मोटर एक नन्हें पंखे से जुड़ी रहती है। विद्युतशक्ति द्वारा इस मोटर के चलने से यह पंखा तेजी से घूमता है। चलने की

अवस्था में इसके ऊपर का केसिंग बन्द रखना पड़ता है। तभी उस संकुचित दायरे में एक निश्चित वायु का प्रवाह उत्पन्न होता है। उसी प्रवाह में एक ओर से सामान्य वायु अन्दर को खिंचती है जो आगे चलकर हीटर पर से गुजरती हुई तप्तावस्था में नली के बाहर निकलती है। नली के निकट हीटर लगा होने से वहीं एक रुकावट भी लगी रहती है ताकि हाथ या अँगुली का कोई भाग गर्म हीटर को स्पर्श न करे।

हैण्डिल पर दो स्विच रहते हैं। लाल

स्विच से हीटर तथा काले से पंखा चलता है। इसमें सुरक्षा के भी दो प्रबन्ध हैं। प्रथम तो यह कि जब तक पंखे का स्विच नहीं दबाया जाता, हीटर का स्विच नहीं दबेगा। दूसरे यह कि नली के निकट ही एक और सुरक्षा-स्विच रहता है। यदि यन्त्र को चालू हीटर की अवस्था में ही रख कर भूल जाया जाए तो ताप अत्यधिक बढ़े इससे पहले ही यह हीटर को बन्द कर देगा। पुनः चालू करने से पहले इस सुरक्षा स्विच को मूल अवस्था में लाना आवश्यक होगा।



बाल सुखाने की मशीन (भीतरी दृश्य)—१. मोटर-स्विच, २. हीटिंग-स्विच, ३. शीतल वायु-प्रवेशक छिद्र, ४. री-सेट बटन, ५. ताप-आवरण, ६. तापक-क्वायल, ७. पंखा, ८. नन्हा इलेक्ट्रिक मोटर, ९. धारा-नियन्त्रक

उत्तर रेलवे

सूचना

भारी लगेज का बुकिंग

तथा

साथ में लगेज का लाना-ले जाना

समय-समय पर सूचित करते रहने के बावजूद देखा गया है कि यात्रीगण अब भी अपने साथ भारी बक्से, ट्रंक तथा सूटकेस आदि अपने साथ यात्री ट्रेन में लिये चलते हैं जिससे अन्य यात्रियों को बेहद तकलीफ होती है। अतः इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेंस एसोसिएशन के नियम नं. ६०६ के कोचिंग टैरिफ नं. १८, भाग १ को संशोधित किया गया है जो १ अगस्त, १९६३ से निम्न भाँति लागू होगा :

६०६—वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए
साथ रखने योग्य लगेज

यात्री अपने साथ डब्बे में वे ही छोटे अदद निजी सामान के तौर पर रख सकेगा जिनकी उसे यात्रा के दौरान में जरूरत हो और जो डब्बे में इस प्रकार रखे जा सकें कि अन्य यात्रियों को असुविधा न हो और यात्रियों के उठने-बैठने तथा सोने और सुविधापूर्वक चलने-फिरने के लिए आवश्यक स्थान में कमी न करें।

ऐसे ट्रंक, सूटकेस और बक्से जिनकी बाहरी लम्बाई १०० से. मी., चौड़ाई ६० से. मी. और ऊँचाई २५ से. मी. से अधिक हो, अपने साथ डब्बे में न रखे जा सकेंगे और उन्हें ब्रेकवान में रखना आवश्यक होगा। इस नियम के उल्लंघनकर्ता यात्री को ऐसे सामान का लगेज में बगैर किसी कटौती या रिआयत के, पूरा चार्ज देना होगा। साथ ही, ऐसे सामान को, जहाँ भी चेकिंग में पाया जाएगा, वहीं से आगे की यात्रा के लिए ब्रेकवान में भेज दिया जाएगा। चार्ज में रिआयत केवल उसी दूरी तक के लिए दी जाएगी, जितनी दूर वह सामान ब्रेकवान में सफर करेगा। जितनी दूरी तक ऐसा सामान यात्रियों के डब्बे में ले जाया गया होगा, उतनी दूरी तक का चार्ज, बगैर किसी रिआयत के, पूरा-पूरा वसूल किया

जाएगा। उपरोक्त नियम ऐसे लगेज पर लागू नहीं किया जाएगा जो किसी यात्री अथवा दल द्वारा पूरा डब्बा रिजर्व कराकर उसमें ले जाया जा रहा हो। इसके अपवाद में वस्तुएँ भी सम्मिलित रहेंगी—बिस्तरे, टोकरियाँ, हैण्डबैग, छतरियाँ, छड़ियाँ, सुराहियाँ आदि। इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेन्स एसोसिएशन के नियम नं. ६०५ के टैरिफ नं. १५ भाग १ की धारा सं. १ तथा ४ में गिनायी हुई वस्तुएँ किसी भी हालत में निजी सामान की तरह डब्बे में अपने साथ न ले जायी जा सकेंगी। ऐसा समस्त सामान यात्रीगण अपने निजी जिम्मेदारी पर ही ले जा सकेंगे।

जो भी यात्री इस नियम का उल्लंघन करेगा, स्वयं को अभियोग का उत्तरदायी बनाएगा।

ये नियम (६०६) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों पर भी लागू रहेंगे तथा इस नियम के शीर्षक को निम्न भाँति परिवर्तित करके पढ़ा जाए :

६०६ (१) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों के लिए
साथ रखने योग्य लगेज

—चीफ कमर्शियल सुपरिण्डेंडेंट

यहाँ से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन

आयु

नाम

घर का पता

स्कूल का नाम

शिक्षा

रुचि

यहाँ से काटिए

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

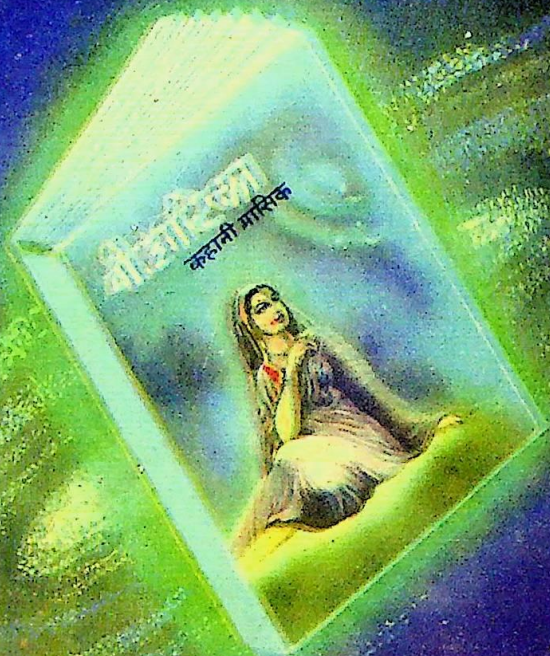
Book II.....Price : Re.1'00

Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

कहानी जगत में नया नक्षत्र



गीटारिजा

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेण्टों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रु.

एक प्रति ६० रु.

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



७५

नये पैसे

ध्वनि	३
—अवधविहारी लाल	
भारत का जादुई पौधा सर्पगंधा	७
—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	
उड़न सिद्धान्त	१२
—राजेन्द्रकुमार	
खेल-खिलवाड़ भरा पौपस	१६
—त्रिलोकीनाथ शर्मा	
दैत्याकार हल	२०
—ब्रजेन्द्रप्रसाद पालीवाल	
सोना सोना ही है	२४
—रमेशचन्द्र कपूर	
अन्तरिक्ष किरणों का निर्माण	२६
—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा	
सेन्टाइगो रेमन केजेल	३५
—कुमारी रेखा सरीन	
रंगीन प्रकाश की अनुभूति	४०
—सुरेन्द्रकुमार सक्सेना	
प्राणियों में प्रणय-लीला	४४
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल	
हमारी बिजली	५१
—सुशीलकुमार	
स्थायी स्तम्भ	
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	३६
विचित्र संसार	५६
विज्ञान क्लब	५६
आपके प्रश्न	६२
इनाम लो	६३
तुम्हारी कलम से	६४

वर्ष ४



अंक ८

मूल्य

एक प्रति : ७५ नये पैसे

वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा



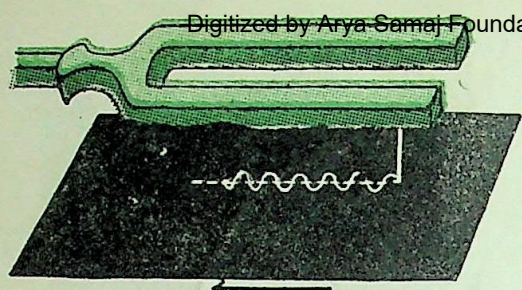
श्रवणबिहारी लाल

ध्वनि कोई ठोस वस्तु नहीं जो पकड़ में आ सके और कोई चित्र भी नहीं जो देखा जा सके। जब-जब हमारे कानों पर स्वरलहरी टकराती है, हमें सुनने की अनुभूति होती है। समझ लीजिए, कहीं निकट ही में लोहार का घन बज उठा। तब निहाई पर चोट करते समय घन ने अपनी शक्ति का कुछ भाग चारों ओर के वायु-मण्डल को भी दे दिया। फलस्वरूप ठीक वैसे ही तरंगें वायु में उत्पन्न हो गयीं जैसी गन्त पानी में डेला फेंकने पर हो जाती हैं। फर्क इतना ही है कि पानी की लहरें क्षैतिज अवस्था में गोल घेरें बनाती, मिटाती और फिर बनाती जाती हैं और ध्वनि-लहरें वायुमण्डल में प्रकम्पित वस्तु के चारों ओर गुंवारे की भाँति बनती, बढ़ती और मिटती जाती हैं। दूसरे उदाहरण-स्वरूप एक स्वरित्र (tuning fork) लीजिए और उसकी एक भुजा को टंकार दीजिए। जब तक वह भुजा प्रकम्पन करती रहेगी, वायु में तरंगें उठती रहेंगी। वे ही तरंगें जब तक हमारे कान से टकराती रहेंगी, हम उसकी स्वरलहरी सुनते रहेंगे।

ध्वनि की ये लहरें चित्र रूप में भी देखी जा सकती हैं। इसके लिए स्वरित्र की एक भुजा पर एक पतला ढीला तार खड़ी अवस्था में बाँध दीजिए। अब भुजा पर टंकार करके एक ओर काजल पोती हुई शीशे की तख्ती को उस तार से छुआते ही छुआते एक निश्चित गति से सरकाते रहिए। आप देखेंगे कि एक सुनिश्चित डिजाइनयुक्त लहरियेदार चित्र बन गया है। वही हमारा तरंग-चित्र है। किसी पात्र का यदि कम्पन नहीं तो तरंगें नहीं।

भाँति-भाँति की ध्वनियाँ

ध्वनियों की विविधता का हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। हमारी श्रवण-क्षमता अति सीमित होने के कारण अनेक प्रकार की ध्वनियाँ तो हम सुन ही नहीं पाते। पवन की सरसराहट, पत्तों की खड़खड़ाहट, बादलों की गड़गड़ाहट, पंखों की फरफराहट, मच्छरों की भनभनाहट, गीतों की गुन-गुनाहट, घोड़े की हिनहिनाहट, नदी की कलकल, सिंह की गर्जना, हाथी की चिंगाड़, तोप का धमाका, बम का धड़ाका, सितार का स्वर, तबले की थाप, मुरली की तान,



स्वरित्र द्वारा ध्वनि का रेखांकन

घुड़सवार की आहट, शंखनाद, घंटारव, तथा जनसमुदाय का शोरगुल और हो-हल्ला आदि कुछ ध्वनियाँ हैं जिन्हें हमने सम्बन्धित ध्वनिकर्ताओं से उनकी पहचान करने के लिए वर्गीकृत कर रखा है। हम जानते हैं कि इनमें कई ध्वनियाँ कोमल हैं, तो कुछेक कर्कश भी, कई कर्णप्रिय हैं तो कई कर्णकटु भी। इनके उत्पादित होने, तरंगित होने तथा प्रसारित होने के आधारभूत प्रकार समान ही हैं। इन्हीं में निम्नतम तथा उच्चतम आवृत्तियों (frequencies) की ध्वनियाँ होती हैं। साधारणतया मनुष्य प्रति सेकण्ड निम्नतम ३० तथा उच्चतम ४०००० आवृत्तियों की ध्वनियाँ सुन सकता है। कुछेक प्राणी विशेषतः कुत्ता और अपवादस्वरूप चमगादड़ इतनी अधिक आवृत्तियों की ध्वनियाँ सुन सकते हैं जो मनुष्य के लिए सुनना सम्भव ही नहीं।

ध्वनि को माध्यम चाहिए

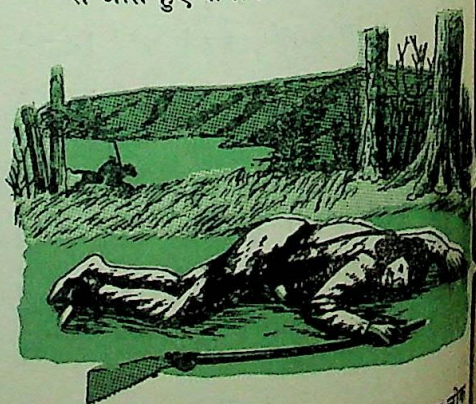
आवागमन के लिए ध्वनि केवल वायु पर ही निर्भर नहीं। वायु तो इसके लिए तृतीय श्रेणी का माध्यम है। पानी में अधिक तथा धातुओं एवं ठोस पदार्थों में इसका आवागमन सरलतम रहता है। वायु में इसकी गति केवल ११०० फुट प्रति सेकण्ड अर्थात् पाँच सेकण्ड प्रति मील की रहती है। यही ध्वनि पानी में ४६०० फुट प्रति सेकण्ड अर्थात् लगभग पाँच गुने वेग से और ठोस माध्यम में १६००० फुट प्रति सेकण्ड अर्थात् १५ गुने वेग से गमन करती है। यदि हम

अपने मित्र को पुराने तो सिद्धान्ततः हमारा स्वर उसके कानों में ३० मिनट में टकराना चाहिए। इसके विपरीत, यदि टेलीग्राफ की संकेत-भाषा में अपने संवाद को रेल की पटरी पर टुकटुकाए तो वह संवाद उतनी ही दूरी केवल दो मिनट में तय कर लेगा। इसी आधार पर पूर्वकाल में शत्रु-सवारों की टोह धरती पर कान लगाकर ली जाती थी, क्योंकि उनके घोड़ों की टाप मीलों दूर से इसी प्रकार प्रकम्पनों द्वारा ज्ञात कर ली जाती थी।

माध्यम के ताप से भी ध्वनि की गति स्पष्टतः प्रभावित होती है। निम्न ताप पर गति मन्द पड़ जाती है। सागर-सतह पर 44°F ताप हो तो ध्वनि का वेग 1102 तथा 32°F हो तो 1056 फुट प्रति सेकण्ड रहेगा। उससे ऊपर उठकर 10000 फुट की ऊँचाई पर और भी पिरे हुए ताप में यह गति 1050 फुट ही रह जाएगी। इसलिए ध्वनि-वेग के समकक्ष तथा उससे भी तीव्र उड़ने वाले विमानों की प्रायोगिक उड़ानें तप्त वायुमण्डल में ही की जाती हैं, क्योंकि बड़े हुए ताप में ही ध्वनि का वेग अधिकतम रहता है।

निर्वात माध्यम में ध्वनि का गमन नहीं होता। इसे समझने के लिए शीशे के एक

यह शिकारी धरती पर कान लगाकर मीलों दूर से आते हुए सवार की आहट ले लेता है



विज्ञान-कोश

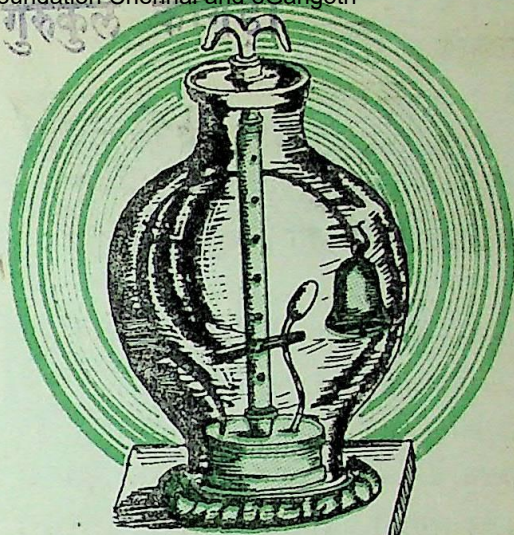
बन्द बर्तन में बजती हुई आवाज नहीं बजाती दीजिए। ठक्कन बन्द करने पर आप देखेंगे कि ध्वनि अत्यन्त मन्द पड़ गयी है। उसी बर्तन से पम्प द्वारा समूची हवा निकालकर देखिए तो केवल अलार्म चलती दिखाई देगी किन्तु सुनाई बिल्कुल नहीं पड़ेगा। इसका एकमात्र कारण माध्यम का अभाव है अर्थात् प्रकम्पित होने के लिए वायु तो उसमें रही ही नहीं जिससे उत्पन्न वायु तरंगों हमारे कानों से टकरातीं।

शोर-गुल, दया संगीत

शोर-गुल और संगीत में निश्चित अन्तर है। संगीत के लिए मनुष्य स्वर को शास्त्रीय गणना के अनुसार लयबद्ध करता है तब कहीं वह स्वरलहरी हमारे कानों से टकराती है। शोर-गुल वगैर किसी साज-सँवार की प्रतीक्षा किये, हम चाहें-न-चाहें, हमें सुनाई देता ही रहता है। फिर भी ऐसी अनि-वृत्त ध्वनियाँ कभी-कभी किसी-किसी के लिए आकर्षक भी सिद्ध होती हैं— जैसे, मोर के लिए मेघ-गर्जन, सैनिक के लिए तोप-गर्जन और अपने प्रियजन की प्रतीक्षा करने वाले के लिए धड़धड़ाकर आती हुई ट्रेन।

आवाज लौटती है

प्रकाश-किरणों की भाँति ध्वनि भी टकराकर परावर्तित होती है। यदि हम किसी पहाड़ी की ओर मुँह करके पुकारें तो दूसरे ही क्षण हमारी आवाज लौटकर हमारे कानों से आ टकराएगी। स्पष्ट प्रतिध्वनि सुनने के लिए किसी भी दीवार अथवा पहाड़ी का ६० फुट दूर होना आवश्यक है। इंग्लैण्ड के अनेक चर्च ऐसे हैं जिनके निर्माण में ध्वनि-परावर्तन का विशेष ध्यान रखा गया है। उनकी छतें और मेहराबें इस प्रकार बनी हैं कि एक मेहराब से दूसरी मेहराब तय करते-करते ध्वनि संयुक्त होकर



प्रसिद्ध वैज्ञानिक, राबर्ट वायल द्वारा सत्रहवीं शताब्दी में बनाया हुआ यह यन्त्र सिद्ध करता है कि निर्वात माध्यम में ध्वनि गमन नहीं कर सकती

काफी देर तक गूँजती रहती है। ताजमहल के बड़े गुम्बद में भी ध्वनि परावर्तन का रोचक अनुभव किया जा सकता है। आयर-लैण्ड में तो पहाड़ियों से घिरे कुछेक संरोवर ऐसे हैं जहाँ एक ही ध्वनि सौ-सौ बार परावर्तित हो लेती है।

गूँज—एक साज भी, एक भूकम्प भी

यह ध्वनि-परावर्तन, जिसे हम गूँज भी कहेंगे, कहीं साज का काम देती है और कहीं परेशानी खड़ी कर देती है। एक ही भवन में जब यांत्रिक संगीत चल रहा हो तब तो गूँज स्वयं एक साज बनकर उसका आकर्षण बढ़ा देती है और उसी में जब मौखिक संगीत, भाषण अथवा गीत-पाठ चल रहा हो तो शब्दों का ऐसा भ्रमेला खड़ा हो जाता है कि सुननेवाले की कुछ भी समझ में नहीं आता। इसी प्रकार एक खाली हाल में गूँज के कारण दो व्यक्ति आपस में भी बातचीत नहीं कर पाते और उसी में जब फर्नीचर की सजावट कर दी जाती है तब सारी गूँज अवशोषित होकर नक्शा ही बदल देती है। इसीलिए चर्चों तथा बड़े

मार्च १९६३

हालों में गूँज से घाबारे के आगे बढ़ते-बढ़ते पड़ें व्यक्ति बैठ सकते हैं उनके द्वारा ध्वनि का अवशोषण कितना होगा, इसका पूरा ध्यान रखा गया है। सारी खूबी उसकी सीटों में है। जब कोई व्यक्ति प्रोग्राम के बीच से उठकर बाहर जाएगा तो स्पष्ट है कि एक व्यक्ति का ध्वनि-अवशोषण कम हो जाएगा। इसके लिए ज्योंही वह उठ खड़ा होगा, उसकी सीट का निचला भाग उलटकर ऊपर आ जाएगा। उसी भाग में ध्वनि अवशोषक पदार्थ इस हिसाब से भरे रहते हैं कि वे एक व्यक्ति के योग्य ध्वनि का अवशोषण करते रहें। उस सीट पर पुनः किसी के आने पर ध्वनि-अवशोषक भाग नीचे चला जाता है और काफी काम व्यक्ति का शरीर पूरा कर देता है। यों उस हाल का ध्वनि-अवशोषण-संतुलन नहीं बिगड़ने पाता।

नूतन ध्वनि-विज्ञान

यह नूतन ध्वनि-विज्ञान (acoustics) आजकल थियेटर हालों के निर्माण में अत्यावश्यक हो गया है। सिनेमा-हाल की स्क्रीनवाली दीवार नतोदर लेन्स की भाँति घुमावदार होती है ताकि ध्वनि उस पर केन्द्रित होने के पश्चात् ही हाल में प्रक्षेपित हो। साथ ही, छतें तथा दीवारें बनाने में ध्वनि-अवशोषक टाइल्स, गहियाँ आदि लगायी जाती हैं। आधुनिक रेस्तराँ भी इस खूबी से ध्वनि-अवरोधक बनाये जाते हैं कि ग्लास-प्यालों की खड़खड़ाहट तथा सड़क का शोरगुल सर्वथा दब जाए।

इस दिशा में लन्दन का रायल फेस्टिवल हाल अनुपम है। उस हाल में कुल जितने ध्वनि-अवशोषक पदार्थों द्वारा निर्मित ये विशिष्ट प्रकार की दीवारें दक्ष को सर्वथा शून्य रखती हैं



गंधक का तेजाब पुड़िया में !

कनाडा की हेल्मर केमिकल कम्पनी द्वारा तैयार किया गया यह नुस्खा गंधक के तेजाब को सूखे पाउडर के रूप में पुड़िया में ही पेश करता है। इसमें सान्द्र गंधकाम्ल विशेष प्रकार से तैयार किये गये कैल्सियम सिलीकेट पाउडर में मिलाया जाता है जिसे वह पाउडर भली प्रकार सोख लेता है। इस पाउडर में ८०% तेजाब विद्यमान रहता है। इससे इसे लाने-ले जाने में श्रत्यधिक सुविधा रहती है।

इस क्षेत्र में इसे मनोध्वनि-विज्ञान (psychoacoustics) का नाम दिया गया है। इसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि विभिन्न ध्वनियों का मानव-मन पर क्या प्रभाव पड़ता है। बहुत देर तक शोरगुल के मध्य रहने (मशीनों की घरघराहट में ८ घण्टे काम करने वाले) के फलस्वरूप मनुष्य की कार्यक्षमता तथा मनोयोग की शक्ति क्षीण होती रहती है और वह व्यक्ति क्रमशः निरुत्साहित, चिड़चिड़ा और क्षमताहीन होता जाता है। लगभग ध्वनि-शून्य वातावरण में लम्बे अर्से तक लगातार काम करने वाला व्यक्ति स्वयं को संसार से अलग-सा अनुभव करता है।

चिकित्सा में ध्वनि-विज्ञान

इस क्षेत्र में इसे मनोध्वनि-विज्ञान (psychoacoustics) का नाम दिया गया है। इसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि विभिन्न ध्वनियों का मानव-मन पर क्या प्रभाव पड़ता है। बहुत देर तक शोरगुल के मध्य रहने (मशीनों की घरघराहट में ८ घण्टे काम करने वाले) के फलस्वरूप मनुष्य की कार्यक्षमता तथा मनोयोग की शक्ति क्षीण होती रहती है और वह व्यक्ति क्रमशः निरुत्साहित, चिड़चिड़ा और क्षमताहीन होता जाता है। लगभग ध्वनि-शून्य वातावरण में लम्बे अर्से तक लगातार काम करने वाला व्यक्ति स्वयं को संसार से अलग-सा अनुभव करता है।



भारत का जादुई पौधा

सर्पगंधा

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

प्राचीन काल की बात है। भारत में हिमालय पर्वत के नीचे के स्थानों में एक विशेष प्रकार का पौधा पाया जाता था। वहाँ के निवासी इस पौधे को सर्पगंधा (snake root plant) के नाम से पुकारते थे। उनका विश्वास था कि इस पौधे में कुछ जादू होता है। कभी-कभी तो इसके जादुई गुणों के कारण उस समय लोग इस पौधे का उपयोग अनिद्रा, पागलपन और अंधेपन को दूर करने में करते थे। लगभग ३,००० वर्षों तक यह पौधा एक रहस्य बना रहा और इसके विषय में कोई विशेष जानकारी न हो सकी।

१६वीं शताब्दी में जर्मनी के श्री राउल्फ (Rauwolf) नामक चिकित्सक ने चिकित्सा के जान की खोज के लिए पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। कुछ लोगों के मतानुसार श्री राउल्फ इसी समय सर्पगंधा के सम्पर्क में आये। किन्तु यह बात शंकापूर्ण है कि श्री राउल्फ ने स्वयं इस पौधे को देखा। जो भी बात रही हो, किन्तु यह सत्य है कि जब कुछ वर्षों बाद यह पौधा यूरोप पहुँचा तो श्री राउल्फ के सम्मान में इस पौधे का नाम

राउल्फिया रखा गया। शीघ्र ही राउल्फिया की कहानी सारे यूरोप में फैल गयी। किन्तु वैज्ञानिकों को फिर भी इसके जादुई गुणों के विषय में अविश्वास था। इस प्रकार ३०० वर्ष और व्यतीत हो गये किन्तु यह पौधा रहस्य ही बना रहा। अन्त में १८३१ में बम्बई के एक प्रसिद्ध डा. रुस्तम जल वकील ने ब्रिटिश हार्ट जर्नल में एक बहुत ही सनसनी खेज लेख प्रकाशित करवाया। डाक्टर रुस्तम जल वकील के अनुसार सर्पगंधा द्वारा बारबिटुरेट्स (barbiturates) की अपेक्षा ५० रोगियों में रक्त-चाप कम हो गया। इस समाचार के उपरान्त संयुक्त राज्य अमरीका के डाक्टर राबर्ट विलकिन्स ने सर्पगंधा से ओषधि तैयार करने का निश्चय किया। इसके पश्चात् ही पश्चिमी राष्ट्रों में सर्पगंधा द्वारा रोगों के उपचार का मार्ग खुल गया।

राउल्फिया की लगभग ५० जातियाँ पायी गयी हैं, किन्तु भारत में ओषधि के काम आने वाली केवल दो जातियाँ हैं :

(१) राउल्फिया सर्पेन्टाइना (*Rauwolfia serpentina*) और

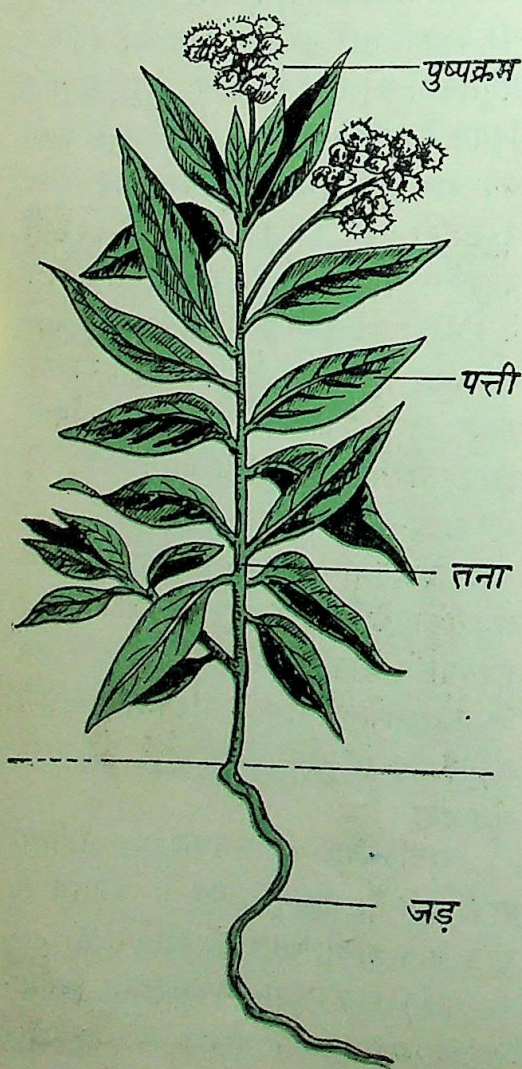
(२) राउल्फिया कैनेसेन्स (*Rauwolfia canescens*) ।

इसमें राउल्फिया सर्पेन्टाइना विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

राउल्फिया सर्पेन्टाइना

यह पौधा छोटा, केशहीन, ऊपर की तरफ सीधा उगने वाला एक गुल्म या झाड़ी है । इसकी छाल पीले रंग की होती है । पत्तियाँ डंठल के चारों तरफ घुमावदार गुच्छे या आवर्त में होती हैं । पत्तियाँ साधारणतया ३-७ इंच लम्बी और १-२ इंच चौड़ी होती हैं । पत्ती का आकार भाले के फल जैसा या प्रासवत होता है । ऊपरी सिरा नुकीला

सर्पगंधा का छोटा पौधा



होता है और नीचे पतला होता जाता है । पत्ती पंज दण्ड या पत्ती के डंठल में समाप्त होती है । पत्ती पतली, हरी और नीचे की ओर पीली होती है । पुष्प सफेद या हल्के गुलाबी होते हैं और साधारणतया नवम्बर से दिसम्बर तक खिलते पाये गये हैं । पुष्पक्रम कोरिम्बोस साइम (*Corymbose cyme*) होता है । पुष्पक्रम या तो किसी शाखा या उपशाखा के बगल से निकलते हैं या शाखा या उपशाखा के ऊपरी भाग पुष्पक्रम में समाप्त होते हैं । पुष्पक्रम-दण्ड काफी मजबूत होता है और २/५ इंच तक लम्बा होता है । पुष्पवृन्त और बाह्य दल पुंज लाल रंग का होता है । निपत्र छोटा और प्रासवत होता है । बाह्य दल पुंज की पिण्डिका १/१० इंच लम्बी और प्रासवत होती है । दल पुंज लगभग १/२ इंच लम्बा होता है । दल पुंज से बनी नलिका पतली और मध्य से जरा ऊपर थोड़ी मुड़ी होती है । नलिका की अपेक्षा दल-पिण्डिका बहुत छोटी होती है । पुंकेसर नली के भीतर होता है और नलिका के मध्य या मध्य से थोड़ा ऊपर जुड़ा होता है । परागकोष छोटा, ऊपर की तरफ पतला और वर्तिकाग्र से मुक्त होता है । पुष्पकोष बड़ा और प्याले के आकार का होता है । फल का व्यास १/४ इंच होता है । एक पुष्पदण्ड से लगे फल की संख्या एक या दो हो सकती है । ये लगभग जनियुक्त जुड़वाँ या जुड़े हुए होते हैं । फल प्रारम्भ में हरा, नीला, लाल, बैजनी और पकने के बाद काले रंग का हो जाता है । इसका फल गुठलीदार या अष्टि फल (*drupe*) होता है । बीज कड़ा और अण्डाकार होता है ।

भारत में सर्पगंधा हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों, पंजाब से आसाम, विशेष रूप से देहरादून, शिवालिक रेन्ज, रुहेलखण्ड, विमान-लोहा

ता है।
समान
नीचे की
या हलके
नवम्बर
गये हैं।
rymbos
की किसी
कलते हैं
ग पुष्प-
क्रम-दण्ड
इंच तक
हाइ दल
त्र छोटा
पुंज की
प्रासकत
च लम्बा
पतली
डी होती
का बहुत
भीतर
मध्य से
रागकोष
वर्तिका
र प्याले
ना व्याप्त
से लगे
पत्ती है।
जुड़े हुए
लात
का हो
अच्छि
झड़ा और
पर्वतीय
रूप से
हलकड़
जान-नो

उत्तरी उत्तर प्रदेश, गोरेगपुर, कोनार, उत्तरा
कनारा, दक्षिणी महाराष्ट्र, मद्रास राज्य
के पश्चिमी और पूर्वी घाटों, बिहार में पटना
और भागलपुर तथा उत्तरी और मध्य बंगाल
में अधिकता से उगता है। यह सिक्किम,
बर्मा, श्रीलंका और जावा द्वीप में भी पाया
जाता है।

राउल्फिया कॅनेसेन्स

यह राउल्फिया सर्पेन्टाइना के आसपास
ही उगता है। विशेष रूप से भारत के नम
और गर्म प्रदेशों में। इसके लिए बंगाल
के चौबीस परगना और हावड़ा विशेष रूप
से उल्लेखनीय हैं।

ओषधियों की खोज

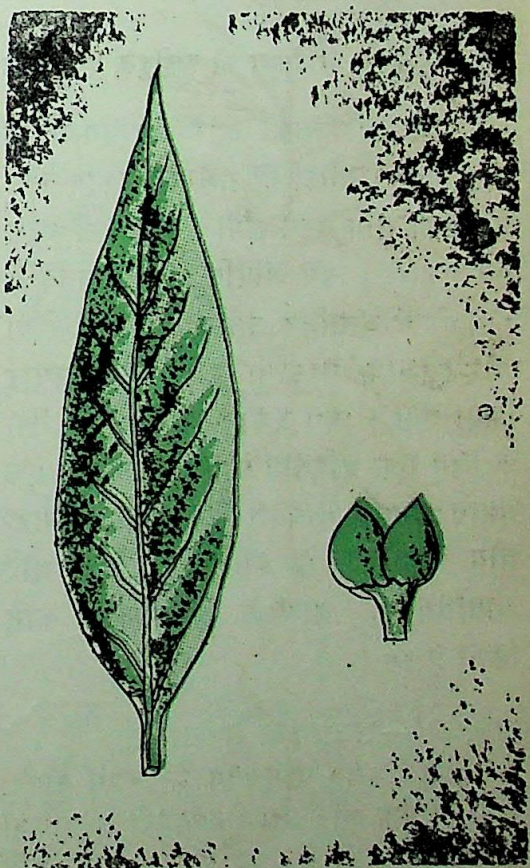
सर्पगंधा बड़ा ही निराला पौधा है।
आधुनिक युग में इस पौधे के विभिन्न भागों से
कई प्रकार की ओषधियाँ बनायी गयी हैं।
इन ओषधियों को कई भयानक रोगों के
उपचार में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता
है। इन ओषधियों के खोज की कहानी भी
रम मनोरंजक नहीं है।

१९३१ के बाद भी डाक्टर वकील अपने
अनुसन्धानों में लगे रहे। उन्होंने बहुत से
रुग्णों का पता लगाया। पौधे के विभिन्न
भाग भिन्न-भिन्न रोगों के उपचार के लिए
उचित पाये गये। इससे स्विटजरलैण्ड के
बासले नामक स्थान के वैज्ञानिकों ने यह
सोचा कि शायद राउल्फिया की जड़ों में
कुछ ऐसे अवयव हों जिसका पता अभी तक
न लग पाया हो। उनकी यह धारणा निर्मूल
नहीं थी। यहाँ के लोगों ने डा. एमिल
स्लिटलर (Dr. Emile Schlittler) के
नेतृत्व और सन्दर्शन में बहुत से अवयवों का
पता लगा लिया। आप सोच सकते हैं कि वह
अपने उनके लिए कितनी प्रसन्नता का रहा
रोगा जब उन्होंने प्रथम मणिभ देखा होगा।
वास्तव में यही वह अलकालायड (alka-

नवम्बर १९६३

ला) था, जिसका पता ३००० वर्षों तक
नहीं चल सका और जो बाद में उतने ही
भार की जड़ों से १,००० गुना अधिक
शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इन प्रयोगों के समय
भारत से इस पौधे को स्विटजरलैण्ड भेजना
अत्यन्त आवश्यक था जिससे उनके प्रयोगों
में कोई रुकावट न आने पाये। ओषधियों
को प्रारम्भ में जानवरों पर और सफल
होने के बाद मनुष्यों पर प्रयोग किया गया।
फिर तो वैज्ञानिक सर्पगंधा से तैयार की
हुई ओषधियों द्वारा बड़े-बड़े भयानक रोगों
के उपचार के विषय में निश्चिंक हो गये।
मणिभों को टिकियों के रूप में बहुत अधिक
मात्रा में बनाया जाने लगा और सर्पासिल
(Serpasil) के नाम से संसार के विभिन्न

सर्पगंधा की पत्ती एवं जुड़वाँ फल





सर्पगंधा की फलोंयुक्त एक शाखा

भागों में चिकित्सकों और रसायनज्ञों को भेजा गया। शीघ्र ही संसार के कोने-कोने में इसकी माँग बढ़ने लगी। सर्पासिल बहुत सफल हुआ। इस ओषधि द्वारा बहुत से रोगियों में अत्यधिक तनाव, मस्तिष्क रोगों और स्वभाव सम्बन्धी रोगों का उपचार किया गया। इस प्रकार मानवता के हित के लिए एक भारतीय पौधे की जड़ को एक महान ओषधि में बदल दिया गया। भारतीय वैज्ञानिकों ने इसके सही सूत्र और ओषधियों की जाँच के लिए बहुत काम किया है।

ओषधियाँ—राउल्फिया सर्पेन्टाइना

जड़—इससे पागलपन दूर करने वाली, शान्तिदायक और सम्मोहनकारी ओषधियाँ तैयार की जाती हैं। यह रक्त-चाप की गति

को कम करती है। अंत-
डियों के दर्द और स्थियों
में प्रसवकाल में गर्भाशय
के संकोचन को बढ़ाने में
प्रयुक्त होती है।

पत्तियों का रस—
नेत्रों के चक्षुण पटल के
धुंधलेपन को दूर करने में
प्रयोग करते हैं। सर्पगंधा
के बिहार किस्मों की जड़
में ८-१३% अलकलायड्स
होते हैं। इसमें अजमैलीन
(ajmaline), अजमैलि-
नीन (ajmalinine) पीले
अलकलायड्स, सर्पेन्टीन
(serpentine), सर्पेन्टि-
नीन (serpentinine)
और अमणिभ अपघातु
होते हैं।

देहरादून किस्मों की
जड़ में १-१३% सभी

अलकलायड्स होते हैं लेकिन कोई पीला
अलकलायड नहीं होता। इसमें दो अन्य
अपघातु होते हैं। अजमैलीन और अजमैलि-
नीन के साथ ही साथ उभय गुणों वाले
अलकलायड्स पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त
जड़ों में औलियोरेजिन (oleoresin) और
सर्पोस्टेराल (serposterol) पाया जाता है
और इसका सर्जास अंश ही ओषधि के काम
आता है।

बिहार किस्मों की जड़ में अजमैलीसिन
(ajmalicine) भी पाया गया है। जड़
की छाल में १% आइसो अजमैलीन (iso-
ajmaline) और १% नियो अजमैलीन
(neoajmaline) होता है। सम्पूर्ण जड़
में ०.१% आइसो अजमैलीन और ०.१%
नियो अजमैलीन होता है।

जड़ों से प्राप्त एक औषधि राउल्फाइन (Rauwolfine) द्वारा मेंढक, बिल्ली और चूहों में हृदय की गति कम हो जाती है। नसों के भीतर सर्पेन्टीन (१ मिलीग्राम प्रति-किलोग्राम जल) को सुई द्वारा प्रवेश कराने से कुत्तों में रक्तचाप कम हो जाता है। इससे छोटी आँत की आरोग्यता और बढ़ाव में वृद्धि होती है। आँत के क्रमांकुचक संकुचनों में कमी आती है।

पत्ती का निचोड़ा हुआ रस सारे अल-कलायड्स और सर्पेन्टीन की उपस्थिति के कारण साधारण विल्लियों में ग्रैवीय रक्त चाप कम हो जाता है। अजमैलीन और सर्पेन्टीनीन चाप बढ़ाते हैं। सर्पेन्टीनीन उपहृद (हृदय सम्बन्धी) पेशीतन्त्र को कम करता है किन्तु प्लैटिक संकोचन उत्पन्न करता है। श्वसन को उत्तेजित करता है। यह शान्तिदायक और सम्मोहनकारी होता है।

देहरादून किस्मों से उपलब्ध नियोजमैलीन और आइसो अजमैलीन रीढ़ वाले और मस्तिष्क हीन जानवरों में प्रावसादक का काम करते हैं। प्रयोग में इस्तेमाल किये गये जन्तुओं में सर्जास का एक अंश शान्ति-दायक और सम्मोहनकारी होता है।

सर्पेन्टीन कुत्तों के लिए अवपीड़क और वाहिनी अभिस्तारक होता है। बिहार किस्म के पौधों से निकाला हुआ अलकलायड देहरादून किस्म की अपेक्षा अधिक विषैला होता है। १९५२ में रिसर्पिन (reserpin) को पृथक किया गया। इसका प्रभाव सम्मोहनकारी होता है और इससे रक्त चाप की गति भी कम की जा सकती है।

राउल्फिया कैंनेसेन्स

इस पौधे से राउल्सीन (Rauwal-scine) नामक अलकलायड पृथक किया गया है। इसकी जड़ की छाल से ०.१%, तने की छाल से ०.२% और पत्तियों से ०.२% राउल्सीन निकाला गया है। जन्तुओं में यह हृदय वाहिनी प्रावसादक का कार्य करता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि यह अन्य अलकलायड से अधिक विषैला होता है। इसका प्रभाव सीधा हृत्पेशी पर पड़ता है। नस के भीतर इसे सुई द्वारा प्रवेश कराने पर यह अत्यधिक सम्मोहन के उद्दीपन को समाप्त कर देता है। स्वकृत मांसपेशियों की तेजी को कम करता है। इस पौधे से पृथक किया हुआ एक अन्य अलकलायड रिसर्पिन शान्तिदायक और सम्मोहनकारी होता है।

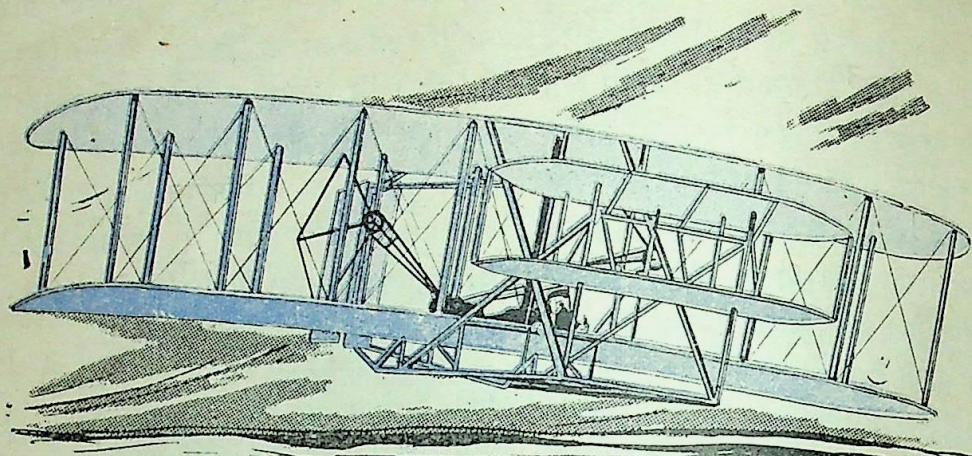
आलू की छिलाई के साथ ही धुलाई भी

जर्मनी ने रबर के ऐसे दस्ताने तैयार किये हैं जिनमें लोहे की रज एक रेगमाल की तरह सतह पर जमा दी गयी है। इन दस्तानों को पहने हुए पानी की धार के नीचे आलू को धोते जाइये, वे साथ ही साथ छिलते भी जाएँगे !

स्वप्रकाशित बेल्ट पहनिए

न्यूयार्क के मैडिगन इलेक्ट्रानिक कारपोरेशन ने चौराहे के सिपाहियों के लिए ऐसी बेल्ट तैयार की है जो अधिकतम सुविधापूर्ण है। इसे पहनने के बाद उन्हें वे लाल परावर्तक शीशे लगाने की आवश्यकता नहीं रहती जिन पर सामने से आते वाहन का प्रकाश पड़ता है और उसके चालक को ज्ञात हो जाता है कि कोई सिपाही खड़ा है। इस बेल्ट में बत्तियों की माला रहती है और वे बत्तियाँ ऐसी बैटरी से प्रकाशित रहती हैं जो पुनः चार्ज की जा सकती है।

सितम्बर १९६३



उड़न सिद्धान्त

राजेन्द्रकुमार

‘मनुष्य कभी तो उड़कर रहेगा ही’— यह भविष्य वाणी रॉजर बेकन ने की थी। वह लगभग ७०० वर्ष पूर्व की बात थी। १५० वर्ष और बीत गये। १५वीं शताब्दी के उत्तरकाल में इस ओर पुनः प्रयत्न प्रारम्भ हुए। लियोनार्डो-डा-विंसी ने मनुष्य की यांत्रिक उड़ान के कुछ छोटे-बड़े सफल प्रयोग किये और साथ ही साथ उड़न-सिद्धान्त का विशद विवेचन भी प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् विगत शताब्दी के अन्तिम दिनों से उड़ान के जो नियमित प्रयोग प्रारम्भ हुए, उनमें लियोनार्डो के लिखित विवरण, संकेत आदि ने उड़न सिद्धान्त को समझने में उल्लेखनीय योग दिया है।

चार अवस्थाएँ

हवा में उतराती हुई किसी भी वस्तु पर चार प्रबल विरोधी बल दबाव डालते हैं—उत्थान (lift), गुरुत्व (gravity), प्रघात (thrust) तथा पश्चकर्षण (drag)। इनके प्रभाव क्रमशः

इस प्रकार हैं—यान को ऊपर उठाना, नीचे खींचना, आगे बढ़ाना और पीछे खींचना। उड़ती हुई वस्तु की ये चार अवस्थाएँ हैं। इन परस्पर विरोधी खींचातानियों के बीच अपना संतुलन बनाये हुए, हवा से भारी वस्तु, चाहे वह वायुयान हो या हेलीकॉप्टर, ग्लाइडर हो या जेट अथवा राकेट उड़ती चली जाती है। उपरोक्त चारों बल से जूझने के लिए यान में निम्न प्रकार की विभिन्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं।

उत्थान

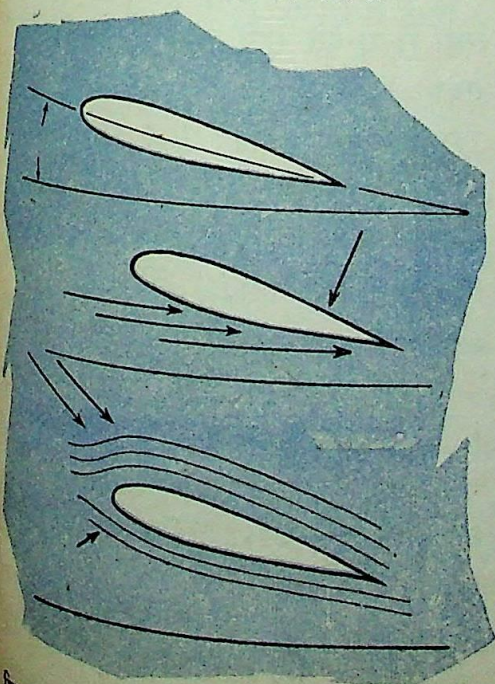
यान को ऊपर उठाने का काम पाँखों (wings) द्वारा किया जाता है। हेलीकॉप्टर में पाँखों के स्थान पर रोटर (rotor) लगाये जाते हैं। यान के पाँखों की रचना इस प्रकार की जाती है कि आगे की धार, पीछे की धार से अधिक उड़ी हुई रहे। फलस्वरूप, तीव्र वेग से आती हुई वायु, पाँख के एक विशिष्ट कोण पर टकराती है जिसे प्रघाती कोण (angle of

विमान-नीति

attack) कहते हैं। इसको **एयर ड्राफ्ट** (Air Draft) कहते हैं। यह सब उन बड़े पंखों के कारण है जो ऊपर लगे रहते हैं। सामान्यतः ये पंखे तीन परोंयुक्त होते हैं। प्रत्येक की रचना वायुयान की पाँख की भाँति होती है ताकि वायु का अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। इन पंखों को चलाने में चालक वायु के प्रघात को विभिन्न आवश्यक कोणों पर लेकर गति तथा दिशा में भी विभिन्नता ला सकता है।

बर्नोली ने अनेक प्रयोग करके देखा कि जब कोई भी द्रव चौड़े मार्ग से सँकरे मार्ग में गुजरता है तब उसका वेग बढ़ जाता है। गति वृद्धि के साथ-साथ मार्ग की दीवारों पर उक्त द्रव का दबाव घटता जाता है। बहती हुई वायु को भी द्रव रूप ही मानकर इस सिद्धान्त को अपना लिया गया है।

हेलीकॉप्टर की रचना बड़ी विलक्षण होती है। पवनचक्की के पंखों जैसे इसके वायु के प्रभाव से यान की उठान (ऊपर से नीचे) —
१. उठान का कोण, २. कोण से प्रभावित वायु द्वारा नीचे की सतह से उठान ३. वायु के प्रति सामान्य अवरोध की अवस्था



प्रघात

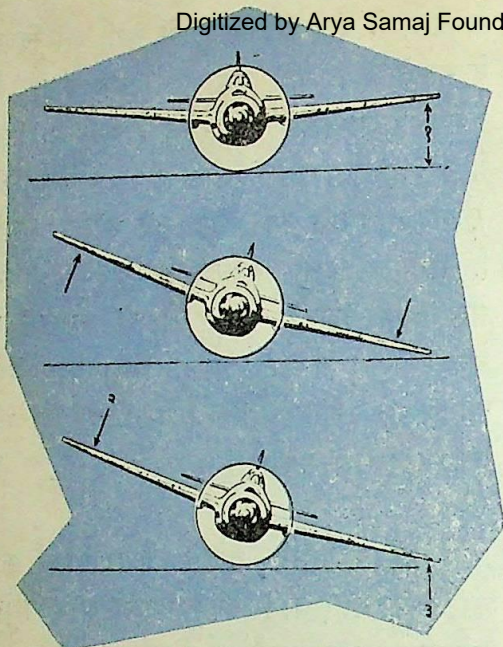
यान को आगे बढ़ाने तथा वायु को काटने के लिए वायु को समेटना और पीछे धकेलना आवश्यक है। अधिकतर वायुयानों में यह कार्य आगे का पंखा ही करता है। कुछ यानों में पीछे की ओर भी पंखे लगे होते हैं जो इस प्रकार वायु को फेंकते हैं जैसे तैराक अपने पाँवों से पानी को पीछे खदेड़ता रहता है। जेट विमान और राकेटों में यह क्रिया गैसों के वेगवान निष्कासन द्वारा सम्पन्न होती है।

संतुलन

यान को वायु में उठा लेना तथा गति दे देना ही काफी नहीं। वायु में उड़ते हुए यान को संतुलित रखना भी आवश्यक है। यह कार्य बड़ा जटिल है। इसके लिए यान में कुछेक संतुलन उपकरण रहते हैं। ये उपकरण यान के पूँछ वाले भाग में होते हैं। खड़ी आकृति वाले उपकरण को फिन्स (fins) कहते हैं तथा आड़ी आकृति वालों को स्टेबिलाइजर (stabilizer) कहते हैं।

नियन्त्रण

संतुलन के साथ ही यान के लिए दिशा नियन्त्रण भी महत्त्वपूर्ण है। इसकी भी यंत्र-सज्जा पूँछ के ही भाग में स्थित रहती है जिसे टेल एसेम्बली (tail assembly) कहते हैं। इनमें फिन्स से जुड़े हुए डाँड़



उड़ते हुए यान की तीन अवस्थाएँ—१. समतुल अवस्था, (पाँखों की डाइहेड्रल अवस्था में), २. रोलिंग अवस्था, ३. गति-परिवर्तन, (पाँखों की तार्मल न्यूनाधिक अवस्थाओं में)

सरीखे उपकरण, स्टेबिलाइजर से जुड़े हुए दो एलिवेटर और पाँखों के पिछले भाग में दो-दो सहपक्ष (aileron) रहते हैं।

इनके अतिरिक्त यान में अनेक ऐसे भी महत्वपूर्ण उपकरण रहते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध उड़ान से नहीं है। पेंदे में लगे पहिये (यदि धरती पर उतरना हो), तैराकी उपकरण (यदि समुद्री सतह पर उतरना हो) तथा स्कीइंग उपकरण (यदि बर्फ पर उतरना हो) ऐसे ही उपकरण हैं।

गत्यात्मक संतुलन

इसे डाइनेमिक स्टेबिलिटी (dynamic stability) कहते हैं। उड़ान की स्थिति में सामान्यतः तीन अवस्थाएँ ऐसी मानी जाती हैं जिनमें यान का संतुलन बिगड़ सकता है। असंतुलन की उन अवस्थाओं को रॉल (roll), याँ (yaw) तथा पिच (pitch) कहते हैं। असंतुलन की अवस्था को नियंत्रित करने के लिए जब पाँखों की सहायता लेते हैं तब उसे डाइहेड्रल

(dihedral) कहते हैं। यह संतुलन पुच्छ-सज्जा द्वारा भी पा लिया जाता है।
चालक-कक्ष

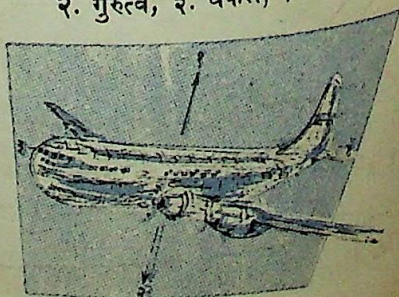
यह यान का कॉक-पिट (cock-pit) है। इसमें बैठा हुआ चालक एक दृष्टि अपने नियंत्रण-उपकरणों के बोर्ड पर तथा दूसरी दृष्टि वायुपथ पर रखता है। कहीं वह सहपक्षों को झुकाता है तो वायु का उठाव बढ़कर यान को ऊँचा उठाता है; तो कहीं पूँछ में लगे डाँड़ को घुमाता है तब यान दायें-बायें घूम जाता है। कहीं वह एलिवेटरो को उठाकर यान को नाक की सीध में ऊँचा ले जाता है।

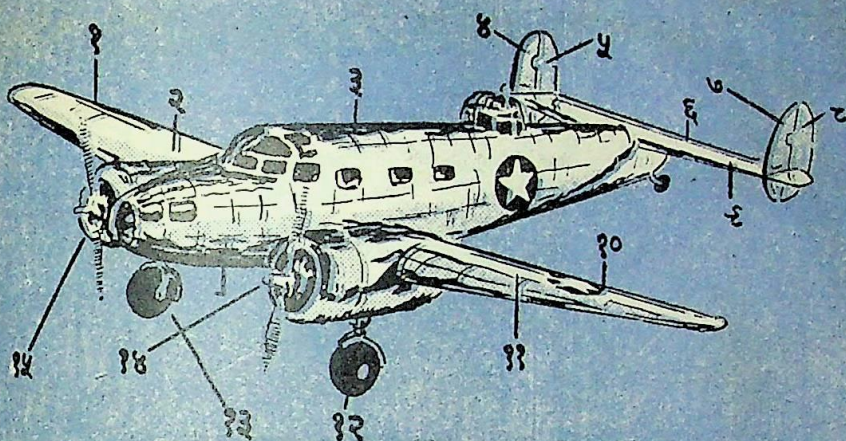
चालक-कक्ष में प्रायः निम्न पाँच अधिकारी रहते हैं—कप्तान, फर्स्ट आफिसर, नेवीगेटर (चालक), रेडियो आफिसर तथा इंजीनियर आफिसर। मौसम की पूर्व सूचना, यात्रा पथ की निर्विघ्नता, यान में ले जाने वाले सामान और यात्रियों का कुल भार तथा यंत्र-सज्जा की पूर्ण क्षमता से सन्तुष्ट होकर ही कप्तान उड़ान की आज्ञा देता है।

नेवीगेटर का कार्य यान को सही गति तथा दिशा देते रहने का है। वायुमण्डल में सदैव ही कोई न कोई तीव्रगामी पवन रहता है। यदि पवन पीछे से आता रहा तो यान की गति अनावश्यक रूप से बढ़ जाएगी, यदि सामने से आया तो यान की गति मन्द पड़ जाएगी। इसी प्रकार दायी

उड़ानगत यान पर लग रहे विभिन्न बल—१. उठाव

२. गुरुत्व, ३. धकेल, ४. खिंचाव





आधुनिक यान के कुछ प्रमुख भाग—१. एलेरान, २. विंग, ३. फ्यूसिलेज, ४. फिन, ५. राडर, ६. लैंडिंग गियर, ७. फिन, ८. राडर, ९. स्टेबिलाइजर, १०. एलेरॉन, ११. विंग, १२, १३. लैंडिंग गियर १४, १५. पावर प्लान्ट्स

वायों ओर से आने वाला पवन यान की निर्धारित दिशा तथा गति में बाधा उत्पन्न कर सकता है। कप्तान की भाँति मौसम का ज्ञान इसे भी पहले से ही कर लेना होता है।

रेडियो आफिसर का कार्य टेलीफोन तथा टेलीग्राफ द्वारा कंट्रोल स्टेशन से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखना है। एयरो-मैम यदि निकट है तो टेलीफोन द्वारा तथा दूर है तो टेलीग्राफ द्वारा सम्पर्क बनाये

रखकर मौसम की सूचना प्राप्त तथा प्रसारित करनी पड़ती है। इस कार्य में राडर यंत्र बहुमूल्य सहायता करता है। जहाँ मौसम की खराबी से यान को उतारना आवश्यक हो और मार्ग भी दिखाई न पड़ता हो, वहाँ राडर से कार्य लिया जाता है।

इंजीनियरिंग आफिसर को यह देखना होता है कि यात्रा से पूर्व यान की मशीनरी ठीक है। इंजन की क्षमता, ईंधन आदि की व्यवस्था इसी के जिम्मे रहती है। ●

स हाथ ले, उस हाथ दे

अमरीका में आलू के खेतों तक कृषियन्त्रों के लिए ईंधन-तेल पहुँचाकर प्रायः ही बड़े ट्रकों को वापसी यात्रा में खाली आना पड़ता था। इसके लिए यह उपाय ढूँढ़ लिया गया कि एक ओर से जो वह विशाल ट्रक ४००० हजार गैलन तेल लादकर ले जाए और वापसी में उनके खेतों से मण्डी तक पहुँचाने के लिए ३५ टन आलू ले आए। इसके लिए ट्रक के पीछे एक ४० फुट लम्बा बैगन जोड़ दिया गया है।

फरवरी १९६३



त्रिलोकीनाथ शर्मा

पौपस (porpoise) व्हेल परिवार का जलचर है। यह औसत ५-६ फुट लम्बा तथा २५०-३०० पौण्ड भारी होता है। इसकी पीठ काली तथा पेट सफेद होता है। सामान्य व्हेल की भाँति इसका नथुना एक छिद्र के रूप में सिर के ऊपर होता है और उसमें व्हेल की ही भाँति पानी की फुहार उड़ती है। इसकी पूँछ के सिरे के फ्ल्यूक (flukes) मछलियों जैसे ऊर्ध्वाधर न होकर क्षैतिज अवस्था में होते हैं। उनसे इसे उछलने और डुबकी लगाने में बड़ी सहायता मिलती है। इसकी बाह्य त्वचा के नीचे एक इंच मोटी चर्बी की तह रहती है। ऊपर तथा नीचे के जबड़ों में प्रत्येक में ४० से ५० तक दाँत होते हैं। इसकी बाह्यत्वचा बहुमूल्य चर्म बनाने में तथा चर्बी मूल्यवान तेल बनाने में काम आती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रागैतिहासिक

काल में दैत्याकार थलचरों (dinosaurs) से बचने के लिए थलीय जीवन को छोड़कर जलीय जीवन अपनाने के लिए अनेक चतुष्पदों में पौपस भी रहे होंगे। उछलने वाली चंचल मछलियों की अपेक्षा पौपस कहीं अधिक (पानी की सतह से १० फुट तक) ऊँचा कूद सकता है। श्वास रोकने की क्रिया में भी यह कुशल है। पानी के अन्दर १० मिनट तक श्वास रोक सकता है इसके लिए कठिन नहीं।

पौपस की श्रवणशक्ति अति तीव्र है। चमगादड़ के बाद इसी का स्थान है। भी चमगादड़ की भाँति ध्वनि-परावक द्वारा अपने मार्ग की टोह ले लेता है। भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न ध्वनिकाल लेता है। हलकी करतल ध्वनि, मन्द सीटी, चहचहाना तथा कर्कश स्वर निकालना इसके लिए सरल है।

एक प्रयोग-स्वरूप मादा को पौपस के साथ एक तालाब में इस प्रकार रखा गया कि बीच के पार्टिशन के कारण दोनों एक दूसरे को देख न सकें, केवल ध्वनि सुन सकें। इस पर देखा गया कि नन्हा पौपस तालाब की सीटी की ध्वनि निकालता रहा और प्रत्युत्तर में मादा उसे मन्द और मीठे स्वर में दिलासा देती रही।

बुद्धिमत्ता और प्रशिक्षण-क्षमता

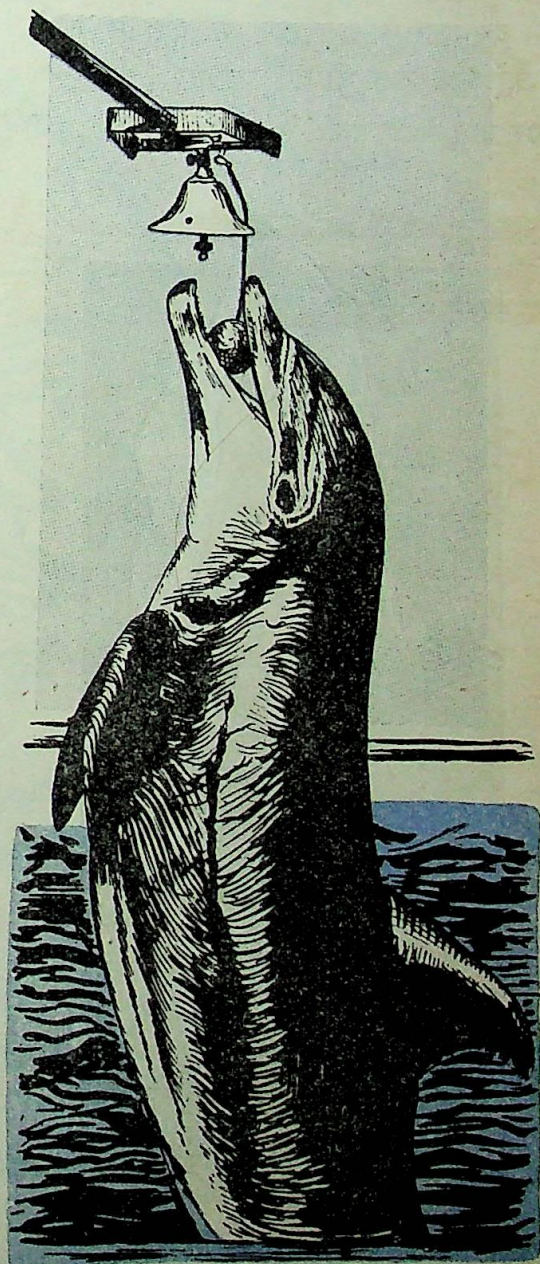
यह सिद्ध करने के लिए कि बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में पौपस का स्तर अन्य जन्तुओं की तुलना में अधिक है फ्लोरिडा (अमरीका) के ज्यूरक लेबोरेटरी के अधिकारियों ने, निवेष्टक मि. एडाल्फ फ्रान (Adolf Frohn) ने एक पौपस को आश्चर्यजनक रूप से प्रशिक्षित किया है। उसके करिश्मे देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं और उनका कहना है कि उस पौपस में बोलने मात्र की क्षमता वाकी है। उक्त प्रयोगशाला के निवेष्टक मि. कर्नेलियस व्हिटने की पत्नी ने छोड़कर बड़े चाव से उस पौपस का नाम फिलपी (Filippy) रखा है। जब वह दो वर्ष का उछलता तब वह लम्बाई में ६ फुट और वजन १५० पाउण्ड था। प्रारम्भ में उसे २० फुट गहरे एक ऐसे कुण्ड में रखा गया था जहाँ पौपस को रोकने में ताजे समुद्री पानी का आवागमन पानी की था।

फिलपी मछली खाना पसन्द करता है। इसके प्रशिक्षक मि. फ्रान आरम्भ में इसके लिए मछलियाँ उस पानी में डालते हैं। किन्तु एक सप्ताह के अन्दर ही इसने अपने हाथ से धैर्य और सफाईपूर्वक मछलियाँ खींच लीया। शीघ्र ही यह उनके हाथ से अनेक संकेत भी समझने में दक्ष हो गया।

फिलपी अपने शिक्षक के संकेत पर तब तक कलाबाजियाँ

दिखाती रहता जब तक कि वह इसे रोकने के लिए दूसरा संकेत न करे। जब वह अपनी छड़ी को पानी में फेंकेगा तो यह उसके पीछे दौड़कर उसे ले आएगा और उसके हाथ में थमा देगा।

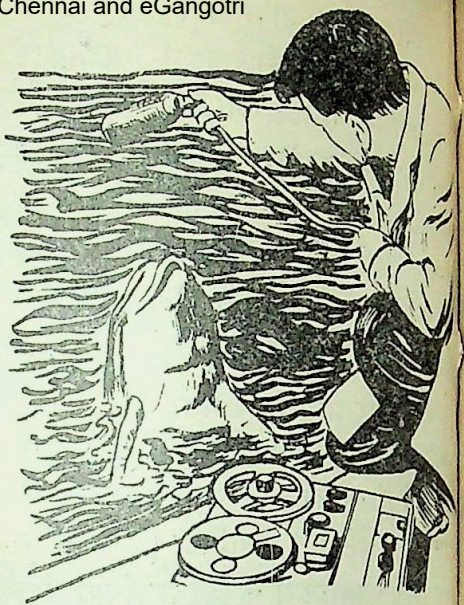
यह पानी से पूरा बाहर निकलकर दस फुट ऊँची लटकती हुई एक गेंद को लपक भूख ने सताया और इस पालतू पौपस, फिलपी ने उछलकर खाने की घण्टी बजायी



लेगा। वह सिद्धि घण्टे के उधारे फलाना होगी। जब यह उस गेंद को निश्चित क्रम में हिलाएगा तो वह घण्टा बज उठेगा। इसके पुरस्कारस्वरूप इसे दो मछलियाँ खाने की दी जाएँगी। अतः जब भी इसे भूख सताती है, यह उस घण्टे को बजा देता है, मानो खाने की घण्टी बजाता है।

मि. फ्रान अपने हाथ में रबर के बल्ब-युक्त एक हार्न लिये होंगे और यह उनके इशारे पर उसे मुँह में रखकर इस कोमलता से दबाएगा कि उस बल्ब में दाँत न गड़ने पाएँ और हार्न भी बज उठे।

कलाबाज पौपस पानी से बाहर, १० फुट ऊँची छलांग लगा रहा है



टेप रिकार्डर पर अंकित की जा रही पौपस को तब...

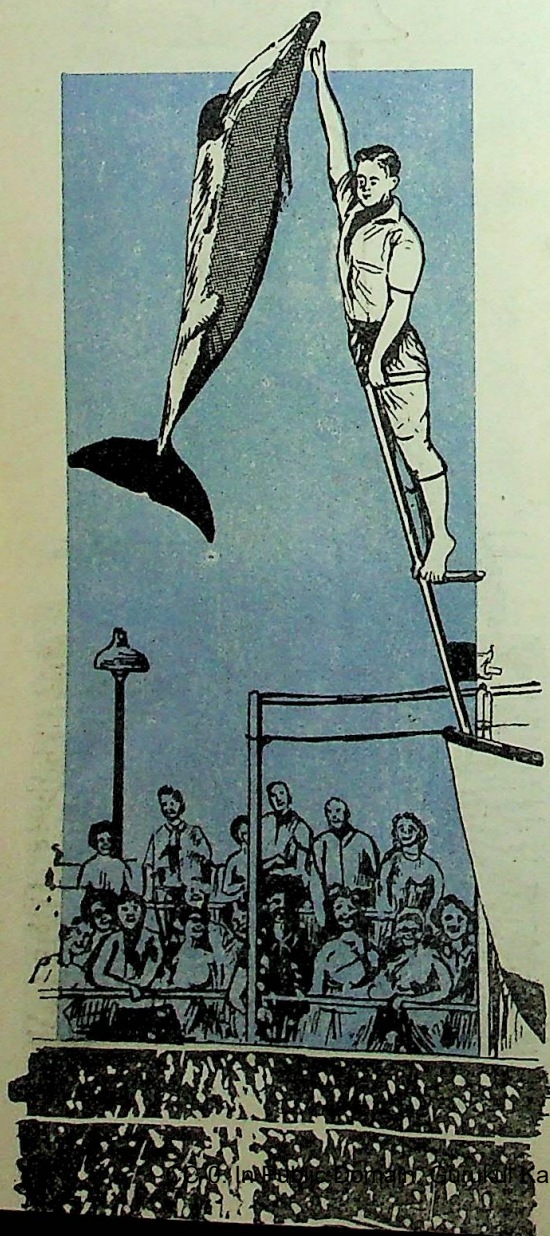
तथा अन्य ध्वनियाँ

पानी से ऊपर १० फुट तक उछलने अतिरिक्त इसे हवा में कलाबाजी भी दिखाया गया है। ऊँची लटकती हुई रिंग में से यह उछलकर बड़ी सफाई निकल जाएगा।

इसने मि. फ्रान के कुत्ते से भी मित्रता कर ली है। यह उसे तख्ते पर बिठाता तालाब में दूर की सैर करा लाता है। बदले में वह भी इसका काम कर देता। अर्थात् जब इसका सिर धूप में गर्म हो जाता है तब मि. फ्रान उस पर थोड़ी-सी चर्बी देते हैं वह कुत्ता उस चर्बी को इसके सिर से चाटकर सिर को ठण्डक पहुँचा देता है।

कुमारी फ्रान भी इसे बहुत प्यार करती है। वह एक तख्ते पर स्वयं खड़ी होती है। इसे लगाम बाँधकर गहरे, खुले समुद्र में छोड़ देती है। यह उसे दूर-दूर की सैर करा लाता है। अनेक बार यह डूबने की स्थिति में व्यक्तियों को भी पीठ के सहारे किनारे लाकर बचा चुका है।

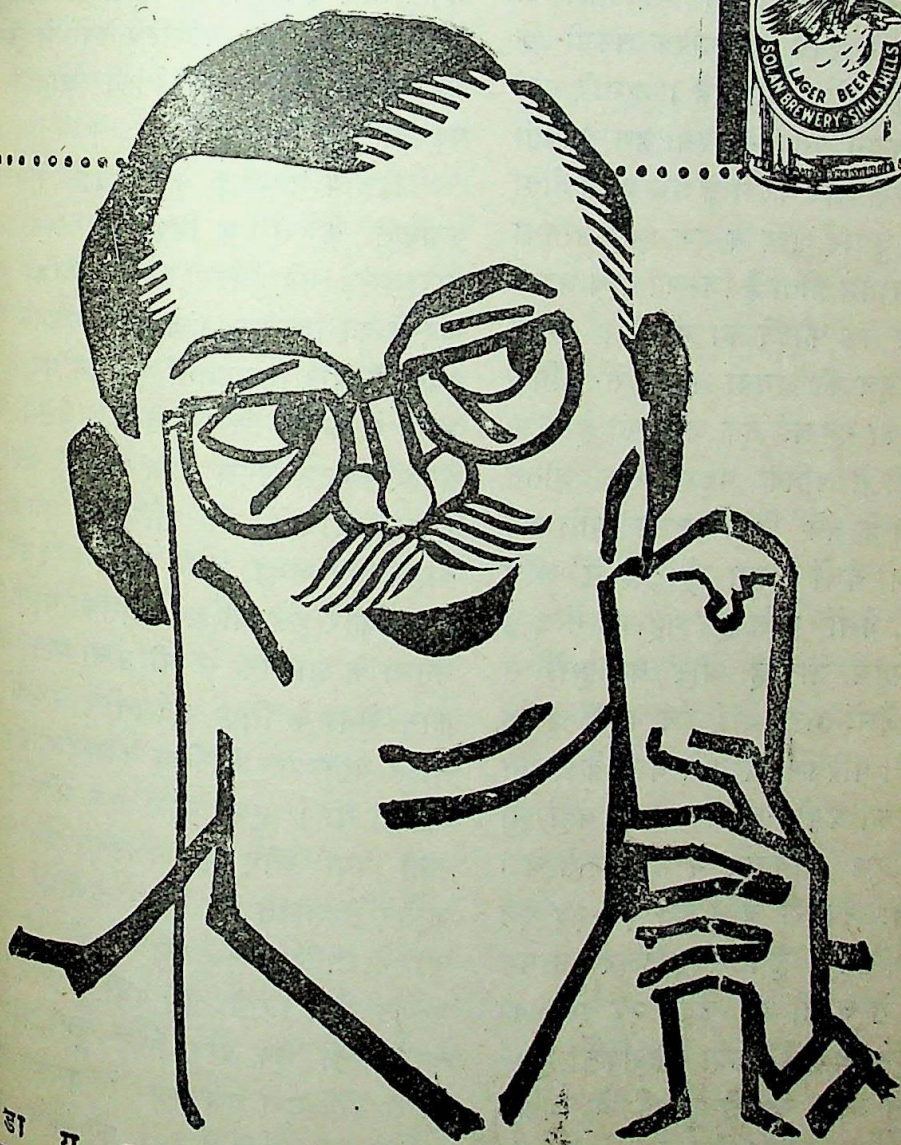
[शेष पृष्ठ ३८ पर]



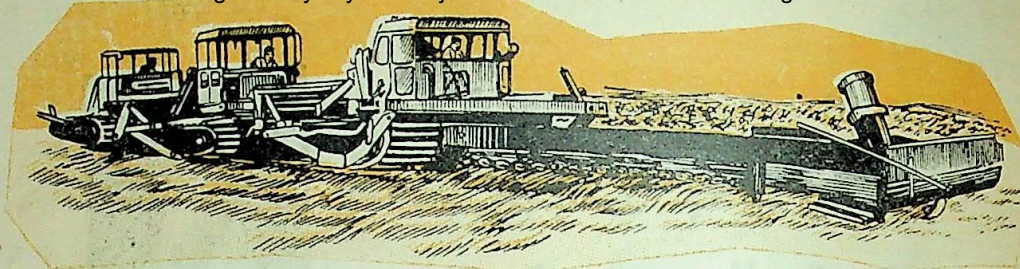
अच्छी तथा अमहारी !

गोल्डन ईगल लागरबीयर

गोल्डन ईगल बीयर अच्छी है क्योंकि यह ठण्डी, ताजी तथा
साफ है—यह सर्वत्र लोकप्रिय बीयर गर्मियों में वास्तविक
प्यास बुझाने वाली है ।



डा य र सी कि न अ म री ज लि०



दैत्या कार हल

ब्रजेन्द्रप्रसाद पालीवाल

हल का नाम लेते ही हम भारतवासियों के मन पर अपने पारम्परिक लकड़ी के हल का चित्र खिंच जाता है। हमारे यहाँ न जाने कितने समय से इसी हल से खेती होती आयी है और धरती से अन्न प्राप्त होता रहा है। जुताई शब्द में एक ऐसी भावना का भी समावेश होता है जिसका बोध धरती को गहराई तक फोड़ने का भी है। हमारे लकड़ी के हल की क्षमता अधिक से अधिक ३-४ इंच की गहराई तक जाने की है।

लकड़ी से अधिक गहराई तक जोतने वाले लोहे के बने मिट्टी पलटने वाले हल होते हैं जो बैलों अथवा ट्रैक्टरों से खींचे जाते हैं। बैलों वाले हल गहराई में ६-७ इंच तक पहुँच जाते हैं और बड़े हलों से दो जोड़ी बैलों द्वारा ८-९ इंच गहरी जुताई सम्भव है। पश्चिमी देशों में बैलों के स्थान पर घोड़ों का प्रयोग होता था। वहाँ भी ऐसे ही हल व्यवहार में लाये जाते थे। साधारणतः ट्रैक्टरों वाले हल १२-१४ इंच तक धँस सकते हैं। 'सबसाइलर' नामक उपकरण से धरती का उदर २४ इंच की गहराई तक विदीर्ण किया जा सकता है।

गहरी और उथली जुताई के अपने-अपने अलग-अलग प्रयोजन हैं। विशिष्ट कार्यों के लिए विभिन्न उपकरण काम में लाये जाते हैं। साधारणतः खेती में ३ इंच से

लेकर ८-९ इंच तक की गहरी जुताई पर्याप्त होती है। विशेष परिस्थितियों में इससे भी अधिक गहरी जुताई की आवश्यकता पड़ जाती है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् लेखक ने कलकत्ते के सैनिक डिपो पर अमरीकनों द्वारा छोड़े गये ट्रैक्टरों और विभिन्न उपकरणों का विशाल पुंज देखा जिनसे युद्ध-स्थल में और निकटवर्ती भू-भाग पर भी भूमि-भँति के काम लिये जाते थे, जैसे विजली तैयार करना, जंगल साफ करना, फँसी हुई मोटर लारियों को खींचकर दल-दल से बाहर निकालना आदि-आदि। इन्में एक दानवाकार हल भी था जिसका मोल्ड बोर्ड मनुष्य के आकार से भी ऊँचा था। इसका काम सेना के लिए दुर्दमनीय स्थलों पर मोटर यातायात के लिए कामचलाऊ सड़क बनाना था। एक बार एक ओर से बूँद लगा दिया और फिर पलटकर ३० फुट के अन्तर से लौटते हुए विपरीत दिशा में एक और ३० फुट चौड़ी सड़क काट दी और २ फुट ऊँची मिट्टी चढ़ गयी। और ऊँचा चाहिए तो एक बार फिर इसी क्रम में दुहरा दीजिए। बुलडोजर से समतल करने इन्हीं भारी-भारी ट्रैक्टरों को पहले एक बार इस सड़क का उद्घाटन कर गये और फिर आनन-फानन में सड़क बन गयी।

जिसके लिए कई हजार मजदूरों की जरूरत होती।

यंत्रीकरण की दिशा में एक छोटे से देश नीदरलैण्ड के प्रयास और सफलता उल्लेखनीय हैं। वहाँ मुख्य प्रश्न था कृषि के विकास द्वारा उपज को बढ़ाना। अपने देश के किसी जिले के बराबर आकार वाले इस देश में उपजाऊ धरती व्यावसायिक समृद्धि के फलस्वरूप बढ़ते हुए कारखानों और आवास संस्थानों में घिरती जा रही थी। सदियों से हमारे देश की भाँति वहाँ भी भूमि का कुटुम्ब के सदस्यों में बँटवारा होते-होते छोटे-बड़े असमान और बिखरे हुए खण्डों में विभाजन हो गया था। न समुचित यातायात व्यवस्था हो सकती थी और न सिंचाई के साधनों का पर्याप्त दोहन। कहीं-कहीं पानी के निकास की समुचित व्यवस्था के अभाव में भूमि क्षारीय और अम्लीय होती जा रही थी।

उच्च अर्थशास्त्रियों ने हिसाब लगा कर बताया कि यदि वर्तमान भूमि का उपयुक्त लाभदायक इकाइयों के आकार वाले क्षेत्रों में विभाजन कर दिया जाए जिनमें यंत्रीकृत कृषि सुविधानुसार हो सके तो इतनी ही भूमि में बिना किसी अन्य प्रकार के विशेष प्रयत्न के उपज को कम से कम १५ प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। खेती योग्य भूमि वहाँ फालतू थी ही कहाँ? अतः ११,८०० एकड़ भूमि फले पड़ी, जिसमें पानी भिदता ही था। मिट्टी की तहें कहीं रेतीली, कहीं नीचे अत्यन्त कठोर जिनमें पानी रिसना दूभर। पानी निरन्तर भरे रहने के कारण अत्यधिक नमस्पर्ति उगने और सड़ते रहने से भूमि में अम्लों का अनुपात अत्यधिक बढ़ गया था, इसके विपरीत कहीं-कहीं क्षारीय सफेद काले अवशेषों का जमाव। कहीं-कहीं स्थितियाँ अपने देश की समस्याओं के समान थीं।

नीदरलैण्ड में एक सरकारी संस्था है अलाभकारी आधार पर, जिसका कार्य है उच्च भूमि का सुधार, मछलियों के व्यापार में सुविधाएँ प्रदान करना और वन्य सम्पदा में वृद्धि और वृक्षारोपण की व्यवस्था करना। आज इस संगठन का मुख्य कार्य कृषि योग्य अथवा अयोग्य भूमि को सुधारकर और समुचित आकार के फार्म बनाकर किसानों में वितरण करना है। इस काम के लिए इस संस्थान में विशेष मिट्टी सरकाने वाले भूमि-स्थानान्तरण (earth moving) उपकरण, जुताई और खुदाई के यन्त्रादि को कार्यान्तरूप विकसित करके खरीद लिया गया है।

उपरोक्त संस्था ने यह योजना अपने हाथ में ली जिसमें ११,८०० एकड़ भूमि को खेती योग्य बनाकर सड़क, सिंचाई और पानी के निकास की उत्तम व्यवस्था करके वांछित आकार के खण्डों में विभक्त करना था।

बीस 'कैटरपिलर' नामक लोहे के चैन प्रणाली पर चलने वाले विशाल शक्तिशाली ट्रैक्टरों को इस काम के लिए विशेष रूप से उपयोग में लाया गया। इनके साधारण लोहे की पट्टीनुमा सरकने वाले जूतों को तीन-तीन फुट चौड़ा बनाया गया जिससे गीली-नरम धरती पर जोर लगाने पर इनका भीतर फँसना रोका जा सके। सामान्य पुरजों और अवयवों को कार्य के अनुरूप और भी सुदृढ़ बनाया गया।

कृषि विभाग के भूमि विशेषज्ञों ने आदेश दिये थे कि नीचे की मिट्टी को आवश्यकतानुसार २ फुट से लेकर ६ फुट तक गहरी जुताई द्वारा उथल-पुथल करके भूमि कणों के व्यवधान में परिवर्तन कर दिया जाए। ऐसी असाधारण गहरी जुताइयों के लिए विशेष प्रकार के उपकरण तैयार

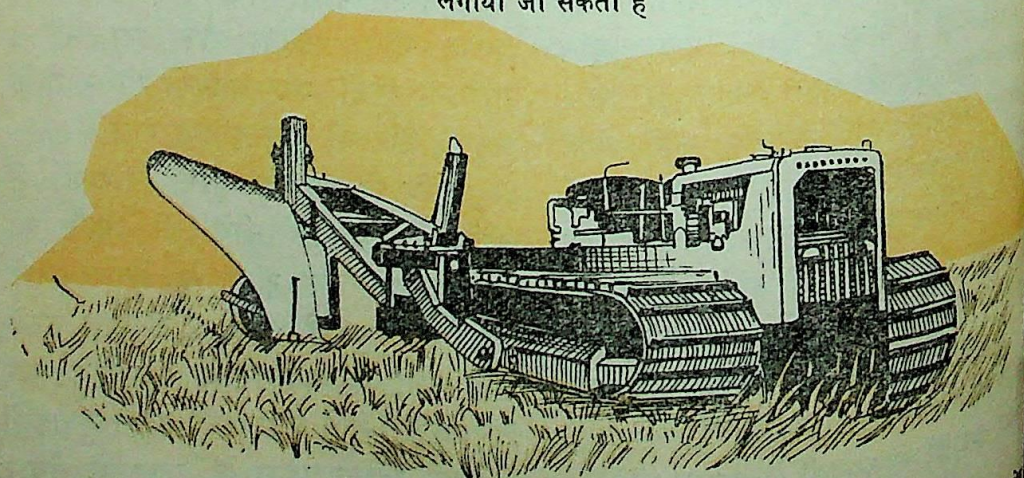
किये गये। चार फुट तक की गहरी जुताई के लिए 'यूनिवर्सल डीप प्लाउ' का प्रयोग किया गया। इस लोहे के पुतले को तीन पहिये के एक छकड़े में सवार कराके बैठाया गया। ३० इंच की गहराई तक तो एक ट्रैक्टर से काम चल जाता था, किन्तु अधिक गहरी जोत के लिए कभी-कभी सौ अश्वशक्ति वाले दो अथवा तीन ट्रैक्टरों को लगाना पड़ता था।

अपना लकड़ी का हल, जो अब सभी जगह 'देशी हल' के नाम से विख्यात है, केवल तीन इंच की गहराई तक धरती फोड़ता है तो मिट्टी फूलकर लगभग ६ इंच की गहराई का भान कराती है। कल्पना कीजिए कि जब चार-छह फुट धरती विदीर्ण होगी तो मिट्टी के दूहे पर्वत से ही दिखने लगेंगे! इस अनुपम दैत्य के आकार का अन्दाजा तो आपने उसके समीप खड़े साधारण ऊँचाई के मनुष्य से लगा ही लिया है।

१००० एकड़ से अधिक भूमि में ४ फुट से भी अधिक गहरी जुताई की आवश्यकता अनुभव हुई। इसके लिए छह फुट की गहराई तक कार्य कर सकने वाले एक दूसरे हल का निर्माण किया गया जिसकी हरस को द्रवशक्ति से दबाव (hydraulic

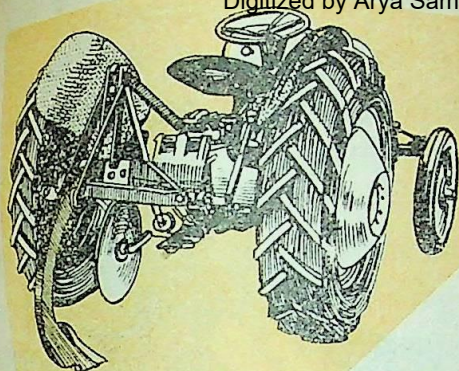
Cat D7 के आकार की विशालता का अनुमान इस यंत्र में दायीं ओर लगे हुए फल (spade) से

लगाया जा सकता है



pressure) युक्त उपकरण कक्ष से संयुक्त कर दिया गया जिस पर और अधिक भार और अतिरिक्त दबाव डालने का प्रबन्ध उपरोक्त 'यूनिवर्सल प्लाउ' के ढाँचे पर किया गया। कूँड़ में और नीचे उतारकर इस नवीन शक्ति सम्पन्न हल से ५-६ फुट की गहरी जुताई की सफल व्यवस्था हो गयी।

गहरी जुताई तो हो गयी, किन्तु एक नयी समस्या सामने आयी। निचले पानी के निकास को सुधारने, भूमि परतों में भूमिकणों की व्यवस्था (soil texture) सुधारने और भली-बुरी परतों को तोड़-फोड़कर संयुक्त कर देने का काम तो हो गया, किन्तु ऊपर की उपजाऊ भूमि का इस विकराल मिट्टी के दूहों में पता न चला। वह तो इसमें न जाने कहाँ विलीन हो गयी। क्षारयुक्त, कंकरीली-पथरीली, खट्टी-कड़वी निकम्मी मिट्टी के ढेर से तो दशा पहले ही अच्छी थी। आप तो जानते ही हैं कि खेती के उपयुक्त तो धरती की केवल ५ से १० इंच तक की ही गहराई होती है। इसी में फसल देने की शक्ति होती है और किसानों के सभी साधन—खाद-पानी, जुताई-निराई आदि, इसी ऊपर की मिट्टी को और अधिक उपजाऊ बनाने के



कॉसन निर्मित यह सबसाइलर (Sub-soiler) भूमि के कठिन स्तरों को तोड़ कर इकसार कर देता है

निमित्त होते हैं। यदि कभी गहरी जुताई और वह भी मिट्टी पलटने वालों हलों से की जाए तो सारी उपजाऊ भूमि बहुत नीचे चली जाती है वहाँ पौधों के मूल संस्थान की पहुँच नहीं हो पाती और खेती असफल हो जाती है। प्रकृति अपने विभिन्न साधनों द्वारा कई वर्ष की लम्बी अवधि में इस प्रकार नष्ट की गयी भूमि का पुनरुद्धार कर पाती है। परन्तु प्रारम्भ में तो ऐसी धरती से साधारण उपज भी नहीं ली जा सकती।

डच वैज्ञानिकों ने इस प्रतिकूल स्थिति से निवटने के लिए भी व्यवस्था कर ली। वहाँ ऊपरी पर्त में खनिज और कार्बनिक (organic) खाद्य पदार्थों की प्रचुर मात्रा को उसको पूर्व स्थिति में सुरक्षित रखने के नवीन यान्त्रिक उपकरण की शोध कर ली। इस नवीन यंत्र (elevator) द्वारा जिसमें ऊपर उठाने वाली चर्खी के सिद्धान्त का समावेश है ४ से १० इंच की मोटाई की ऊपरी धरती की परत को एक उपकरण से छीलकर पिछली जुताई में खोदी गयी मिट्टी के कूँड़ के ऊपर यथापूर्व जमा दिया जाता है, फलस्वरूप जोती हुई जगह फूली-फूली तो अवश्य दिखती है, किन्तु ऊपर यथास्थान मिट्टी ऊपर ही रहने के कारण उसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट नहीं होती।

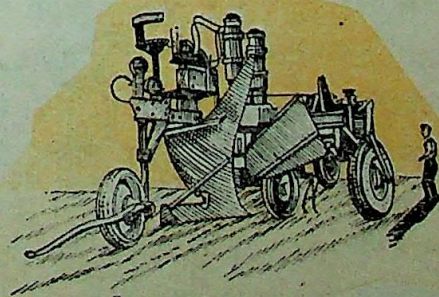
आगे का काम आसान रह गया। बलडोजरों द्वारा भूमि को फिर समतल कर लिया गया। यथास्थान सिंचाई की नालियाँ,

सड़क और पानी के निकास के लिए बलचियों अथवा खाइयों के निशान लगा दिये गये। फिर मशीनों से ही ऊपर वर्णित प्रणालियों द्वारा सड़कों का निर्माण किया गया। ट्रैक्टर के उपकरणों द्वारा नालियाँ और खाइयाँ बना दी गयीं।

खेत की सीमा निर्धारित हो जाने पर रोटेवेटर या रोटरी हलों द्वारा, जो मिट्टी को एकवारगी मथानी की भाँति मथकर रख देते हैं, खेत की अन्तिम तैयारी करके भूमि खण्डों को उनके आगामी स्वामियों के सुपुर्द कर दिया।

यह भूमि अब अपने जीवनकाल में इन दैत्याकार भारी-भरकम हलों द्वारा फिर कभी नहीं रौंदी जाएगी, क्योंकि साधारण खेती में इन दानवों का कोई स्थान नहीं। इतनी गहरी जुताई की कभी आवश्यकता नहीं होती। अधिक से अधिक कभी-कभार १०-१५ वर्षों में साधारण 'सबसाइलर' का व्यवहार करने की आवश्यकता पड़ सकती है जो गहराई में तो दो फुट नीचे की परतों को फोड़ देता है, किन्तु वैसे मिट्टी को छेड़ता नहीं। कालान्तर में अत्यधिक सिंचाई करने के कारण नीचे की भूमि की परतें कठोर पड़ जाती हैं और पानी का रिसाव रुक जाता है तब सबसाइलर के उपयोग की आवश्यकता पड़ सकती है।

गहरी खोदाई के लिए पहले यूनिवर्सल हल बनाया गया था परन्तु इसके पहिये नर्म भूमि में धसने लगे तब NHM यूनिट ने यह नया ट्रैक्टर तैयार किया





रमेशचन्द्र कपूर

पृथ्वी के गर्भ में सोना अधिक होते हुए भी काफी बँटा-बिखरा है, अतः यह सहज-प्राप्य नहीं है। सागर जल भी सोने का अटूट भण्डार है। माना जाता है कि एक घन किलोमीटर सागर जल से पाँच टन तक सोना प्राप्त किया जा सकता है। ज्वालामुखी की सक्रियता के फलस्वरूप निर्मित ग्रेनाइट की चट्टानों तथा क्वार्ट्ज की दरारों में भी सोना रहता है। उसे रीफ गोल्ड (Reef Gold) कहते हैं। उसके अतिरिक्त आर्सेनिक, लोहा, जस्ता तथा चाँदी आदि के सल्फाइड यौगिकों में भी यह मिश्रित रहता है। जब नदियाँ इन चट्टानों को घिसती हुई तथा अन्य पदार्थों को घुलाती हुई आगे बढ़ती हैं तब शेष अधुलनशील स्वर्ण-कण भी उसी रेत (alluvial sand) में चलते हैं। उनसे प्राप्त होने वाले सोने के किंचित बड़े टुकड़ों को नुगेट (nugget) कहते हैं।

आकाश से गिरती हुई उल्काओं में भी सोना पाया जाता है। सोने की अल्प मात्राएँ कुछेक अयस्कों (ores) में भी होती है। उदाहरणार्थ, एक लाख ग्रेनाइट के भाग ०.३७ भाग सोना, सैण्डस्टोन में ०.००३ भाग, तथा चूना-पत्थर में ०.००००३ भाग सोना पाया जाता है। संयुक्त अवस्था में बिस्मथ औराइट (bismuth aurite) तथा गोल्ड-सिल्वर-टैल्यूराइड सोने के मुख्य अयस्क हैं। अमरीका, साइबेरिया, ट्रान्सवाल (अफ्रीका), ब्रिटिश कोलम्बिया तथा आस्ट्रेलिया प्रमुख स्वर्ण उत्पादक देश हैं।

अमरीका की पहली खान

अमरीका में सोने की पहली खान प्रायः १८४८ में सुहावने सदनों जेम्स मार्श नामक एक धनाढ्य व्यक्ति छोड़े पर सवा केलीफोर्निया के जंगलों का निरीक्षण करते

हुआ जा रहा था। चले-चले वह सानफ्रान्सिस्को की उस सीमा पर पहुँचा जहाँ सेक्रामेण्टो नदी बह रही थी। उसने सोचा कि वन-काष्ठ की चिराई का कारखाना खोलने के लिए वह स्थान अच्छा रहेगा क्योंकि नदी में बड़े-बड़े लट्ठे सरलता से बहाकर लाये जा सकेंगे। वहीं पर भूमि का निरीक्षण करते हुए उसे एक पीला और चमकीला ढेला मिला। ध्यान से देखा और खुरचा तो पाया कि वह सोना था! हर्षावेग में उसने चारों ओर वारीकी से देखना शुरू किया तो अगल-बगल २-३ ढेले और भी मिले।

सोने का महत्व नहीं, महत्व मात्र

एक भौतिक अथवा रसायनशास्त्री के लिए सोना महत्व की वस्तु नहीं है। उसके लिए इसका महत्व इसकी उपयोगिताओं के कारण है। सोना आवर्त-तालिका (Periodic Table) के प्रथम वर्ग के 'ब-समूह' (B-Group) में ताँबे और चाँदी के साथ स्थित एक धातु-तत्त्व है। सोने का आपेक्षिक महत्व १९.३२ है जो केवल प्लेटिनम के समकक्ष और अन्य समस्त धातुओं से अधिकतम है। अन्य धातुओं की अपेक्षा यह 1068°C ताप पर सरलता से पिघल जाता है किन्तु वाष्परूप में यह सहज ही परिवर्तित नहीं होता। 2600°C पर यह जलने लगता है। शुद्ध अवस्था में यह जलना नर्म होता है कि इस पर नाखून से खरोंच लगाया जा सकता है।

आधुनिक उपकरणों के द्वारा रसायनज्ञ किसी भी धातु में एक करोड़वें भाग जितने सोने के सूक्ष्माणु का पता लगा लेता है। सोने की तन्यता तथा घनवर्द्धता अत्यधिक है। एक औंस सोने से ५० मील लम्बा तार तैयार किया जा सकता है तथा इसका तीन इंच व्यास, चौड़ा और मोटा एक टुकड़ा पीटकर इतना लम्बा-चौड़ा फैलाया जा

सकता है कि वह एक एकड़ भूमि पर बिछाया जा सके।

सोना मुलायम होने के कारण ताँबे से मिश्रित होकर ही काम आता है। उस अवस्था में इसकी शुद्धता अंकों में दी जाती है, यथा—७५० अर्थात् ७५ भाग सोना और शेष भाग ताँबा। इसकी शुद्धता कैरट से मापी जाती है। २४ कैरट का सोना शुद्ध माना जाता है। १८ कैरट का सोना $18/24$ शुद्धता का माना जाएगा।

स्वर्ण-खनन

नदियों की लोम मिट्टी (alluvial sand) से सोना प्राप्त करने की विधि अब अधिक लाभप्रद नहीं रही। पहले भी स्वर्ण-अन्वेषकों को जब लोम मिट्टी से सोना नहीं मिलता था तब वे ऐसी चट्टानों की खोज में रहते थे जिनसे घुल-घुलकर स्वर्णकण नदियों में चले आते थे। अतः चट्टानों और खदानों से स्वर्ण प्राप्ति का प्रयत्न किया जाने लगा।

इसके लिए काफी गहरी खानें बनायी जाती हैं। दक्षिण अफ्रीका की संसार प्रसिद्ध २५०० वर्ष पूर्व की संस्कृति के प्रतीक स्वरूप एक युद्ध का एक दृश्यांकन इस सोने की कंधी पर आज भी सुरक्षित है



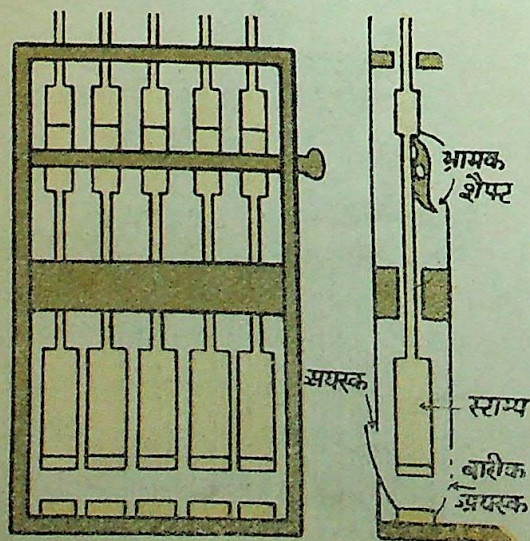
ट्रान्सवाल की खानें अति विशाल उद्योगों में गिनी जाती हैं। साधारणतया ये खानें ४५०० से ७००० फुट तक गहरी हैं। हाल ही में एक खान की गहराई ६३०० फुट तक पहुँच चुकी है और सम्भव है कि उसे लगभग दो मील अर्थात् १०४०० फुट तक पहुँचा दिया जाए। ऐसी प्रत्येक खान में ४-५ हजार श्रमिक काम करते हैं। खुदाई करने वाली शाफ्ट ४० फुट लम्बी और १० फुट चौड़ी होती है।

खान के नजदीक ही अनेक विशाल कारखाने रहते हैं। खान से निकाले हुए अयस्क को कूटने-पीसने तथा धोने-छानने से लेकर शोधित सोना तैयार करने तक के समस्त कार्य इन कारखानों में सम्पन्न होते हैं। खान से निकले हुए एक टन अयस्क से लगभग पाव तोला सोना निकल पाता है।

कानू-कम

खान से निकले हुए अयस्क को निम्न-लिखित मुख्य विधियों से गुजरना पड़ता है।

कूटाई-पिसाई—सबसे पहले अयस्क के बड़े टुकड़ों को मशीनों द्वारा तोड़कर छोटा कर लिया जाता है। छोटे टुकड़ों को स्वर्णमिश्रित अयस्क, औरिफेरस क्वार्ट्ज को ऐसे सरल युक्त स्टाम्प मिलों में कूटा-पीसा जाता है



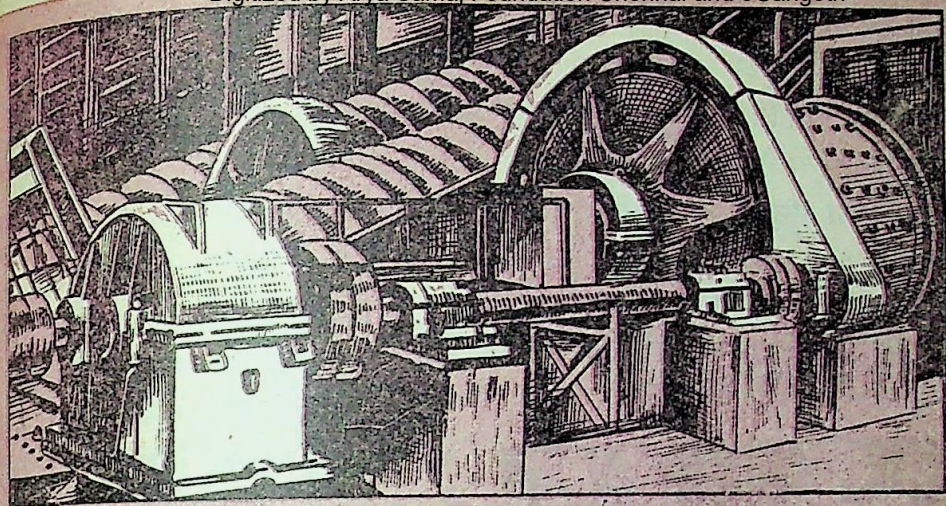
मूसल-चक्कियाँ (stamp mills) में बारीक पीसा जाता है। मूसल-चक्कियाँ इस्पात की बनी होती हैं और एक लम्बी पंक्ति में लगी रहती हैं। प्रत्येक का मूसल लगभग १२५० पौण्ड भारी होता है। ये मूसल ७-८ इंच की ऊँचाई से प्रति मिनट ६६ बार चोट करते हैं जिससे खरल में रखा अयस्क सरलता से पिस जाता है। पिसे हुए अयस्क को छलनीनुमा पत्थर पर रखकर उस पर पानी की तेज बौछार डाली जाती है। इस विधि द्वारा सोने के बारीक कण नीचे के छिद्रों से निकल आते हैं।

समाहरण—सोने की कणयुक्त रेती (जिसे लोम मिट्टी भी कहते हैं) को पानी से धोने पर हलकी बालू मिट्टी बह जाती है और भारी स्वर्ण-कण नीचे बैठ जाते हैं।

तसलों में धोना—बालू तथा कंकड़ के मिश्रण को बड़े-बड़े तसलों में पानी के साथ हिलाते हैं। इससे पथरीला पदार्थ अलग छँट जाता है और स्वर्णयुक्त बारीक बालूकण नीचे बैठ जाते हैं। इन्हें स्वर्ण-धूलि कहते हैं।

प्लेसर तथा हाइड्रोलिक माइनिंग—पहली विधि में लकड़ी की लम्बी नालियों में स्वर्णमिश्रित बालू को पानी की तेज धार में बहाते हैं। फलतः नालियों में लगे तिरछे तख्तों में स्वर्णकण जमा हो जाते हैं। दूसरी विधि में पानी की वह धार हाइड्रोलिक यन्त्रों द्वारा फेंकी जाती है। इसीलिए इस विधि का नाम हाइड्रोलिक माइनिंग दिया गया है। इन विधियों में लोहे के कण पृथक् करने के लिए चुम्बक की भी सहायता ली जाती है। शुद्ध अवस्था में अयस्क प्राप्त करके जिन विधियों से सोना प्राप्त किया जाता है, उनमें निम्न मुख्य हैं।

मेकार्थर फारेस्ट सायनाइड विधि—इस विधि में अशुद्ध स्वर्ण-कणों पर सोडियम सायनाइड के घोल की प्रतिक्रिया कराई



वृहत् पैमाने पर स्वर्ण अयस्क इस बड़ी चक्की में पिसता है, तत्पश्चात् सायनाइड के घोल की उस पर प्रक्रिया करायी जाती है

संकीर्ण लवण—सोडियम अवरो सायनाइड बना लिया जाता है। उस संकीर्ण घोल में जस्ता डालने से स्वर्ण-कण अवक्षिप्त हो जाते हैं। जस्ता बिछाने के लिए जस्ते की तहें बिछी हुई लकड़ी के बक्से में उस संकीर्ण घोल को एकत्र किया जाता है। इस विधि से ५५-६०% तक सोना प्राप्त हो जाता है।

प्लेनर क्लोरीन निष्कर्षण विधि—इस विधि में अयस्क को सूखा तप्त करके उसमें से सल्फर तथा आर्सेनिक की शुद्धियाँ दूर कर दी जाती हैं। तत्पश्चात् उसे भिगोकर लकड़ी की नादों में रखकर उस पर क्लोरीन प्रवाहित किया जाता है। इससे स्वर्ण, गोल्ड क्लोराइड में परिणत हो जाता है। ३६ घण्टे बाद उसे पानी से धोकर उसमें फेस सल्फेट मिलाते हैं जिससे स्वर्ण अवक्षिप्त हो जाता है।

सोने में चाँदी, सीसा, ताँबा तथा अन्य धातुओं की भी अशुद्धियाँ रहती हैं। उन्हें दूर करने के लिए सोने को सुहागे और सोडियम नाइट्रेट के साथ गरम किया जाता है। इससे अशुद्ध धातुएँ मैल के रूप में ऊपर तिर आती हैं।

भारत में सोने का उद्योग

भारत में कोलार की खानों से अधिकांश सोना प्राप्त होता है। कोलार की स्वर्ण खानें संसार प्रसिद्ध बड़ी तथा गहरी खानों में से हैं। इनकी गहराई $1\frac{3}{4}$ मील से भी अधिक है तथा अन्दर ही अन्दर सुरंगों की कुल लम्बाई ६०० मील तक की है। इरेल्यूमिन के बने दो बड़े-बड़े कक्ष ऐसे हैं जिनमें एक साथ ५० व्यक्तियों का बोझ अथवा पाँच टन अयस्क लादकर ७००० फुट लम्बी तथा २०-२० टन भारी जंजीरों द्वारा १-१½ मील ऊपर खींच लिया जाता है। इन खानों में ६०,००० से भी अधिक श्रमिक काम करते हैं तथा पिछले वर्षों में लगभग २,२८,००० औंस सोना प्रतिवर्ष निकाला जाता रहा है।

सोने का मुलम्मा

ताँबे तथा चाँदी की बनी वस्तुओं को सोने का रूप देने के लिए उन पर सोने के पत्र चढ़ाये जाते हैं अथवा विद्युत-रंजन (electrolysis) द्वारा सोने का पानी चढ़ाया जाता है। तीसरी विधि रोलडगोल्ड की है। इस विधि में ताँबे अथवा चाँदी की

इस प्रकार सोने के सूक्ष्म कण ताँबे-चाँदी की परतों में समा जाते हैं और चदर का रंग सोने जैसा हो जाता है। उस चदर को काटने पर अन्दर से भी सुनहरा रंग ही दिखता है। सोने की चमक कभी मन्द नहीं पड़ती। इस गुण का उपयोग अवरक्त किरणों (infra-red rays) द्वारा ताप पहुँचाने के लिए इन चमकीले परावर्तकों (reflectors) में किया जाता है



इसका उपयोग अधिकतर आभूषणों तथा सिक्कों में होता आया है। ब्रिटिश सिक्का २२ कैरट (९१.६६%) तथा अमरीकी सिक्का २१.६ कैरट (९०%) का बनाया जाता है।

सामान्य धातुओं की अपेक्षा सोने में अनेक रसायनों से अप्रभावित रहने का विलक्षण गुण है। यह नाइट्रिक तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड के मिश्रण में घुलनशील है। प्राचीन कीमियागरों को यह रहस्य ज्ञात था। अतः वे अम्लों के इस घोल को अम्लराज कहते थे। स्वर्ण के ऐसे घोल से चमकीला रंग बनाना भी वे जानते थे और उसका उपयोग रूबी ग्लास (ruby glass) बनाने में करते थे। अब तो स्वर्णघोल फोटोग्राफी तथा ओषधियों में भी काफी प्रयुक्त होता है।

वगैर गोली के शिकार

तास के ७२ वर्षीय शिकारी बेइशेबायेव ने वर्ष भर में शिकार तो ४७ लोमड़ियों का किया किन्तु उन्हें गोली एक भी नहीं चलानी पड़ी। एक खूँखवार, फुर्तीले बाज की मदद से वे शिकार करते हैं। वे लोमड़ी की ताक में रहते हैं और ज्योंही लोमड़ी इधर-उधर हुई, उनका पालतू बाज अपने गज-गज लम्बे डंते फेलाकर बिजली की तरह उस पर दूट पड़ता है और पलक मारते उसका शिकार करके इनके पास ला पटकता है।

चलता-फिरता दैत्याकार भूमि-खोदक

२० मंजिल ऊँचा और ६०००० टन भारी एक्सकैवेटर (भूमि-खोदक) इस योग्य है कि सरलता से चाहे जहाँ घूम सकता है और नर्म धरती पर भी चल सकता है। ७-७ टन के ५०० डम्पों के बराबर अकेला काम देने वाला यह यन्त्र यूक्रेन की शेवर्चेंको कोयला-खानों में काम कर रहा है, जहाँ वह एक घण्टे में ३००० घन मीटर मिट्टी खोद देता है।

पौधे तेजी से उभारे जा सकेंगे

राई, गेहूँ और कुछेक पत्तियों से सोवियत वैज्ञानिकों ने एक ऐसा पदार्थ तैयार किया है जिसकी एक ही बूंद का इंजेक्शन पौधे को छः घण्टे धूप में रखने के बराबर लाभ पहुँचाता है और उसकी वृद्धि में सहायक होता है।

अन्तरिक्ष किरणों

का

निर्माण

डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

बहुत दिनों से अनन्त आकाश से आने वाली अन्तरिक्ष किरणें ही ऊर्जायुक्त मौलिक कणों की प्रधान स्रोत रही हैं। अब तक वैज्ञानिक इन किरणों की खोज करने में ही लगे रहे हैं। उन्होंने किरण-कणों की शक्ति तथा उनके गुणों का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु आकाश की ओर बैलून एवं हवाई जहाज उड़ाये, पर्वत शिखरों और समुद्र की गहराइयों में प्रयोग किये तथा आकाश की गहरी ऊँचाइयों में राकेट और कृत्रिम उपग्रह भेजे। काफी जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त वैज्ञानिकों ने किरण-कणों को प्रयोगशाला में उत्पन्न करने की ओर कदम उठाया। आज वह आधुनिक आणविक यन्त्रों द्वारा जितनी मात्रा में चाहे उतनी मात्रा में ऊँची ऊर्जा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मौलिक कणों को निर्मित कर सकता है। जिस प्रकार की घटनाएँ ब्रह्माण्ड के हृदय में संघटित होने वाली प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं, ठीक उसी प्रकार की घटनाएँ आज प्रयोगशाला में मानव निर्मित एक्सीलरेटर में पुनर्निर्मित होती रहती हैं। इन एक्सीलरेटरों द्वारा अत्यधिक गति और ऊर्जा वाले

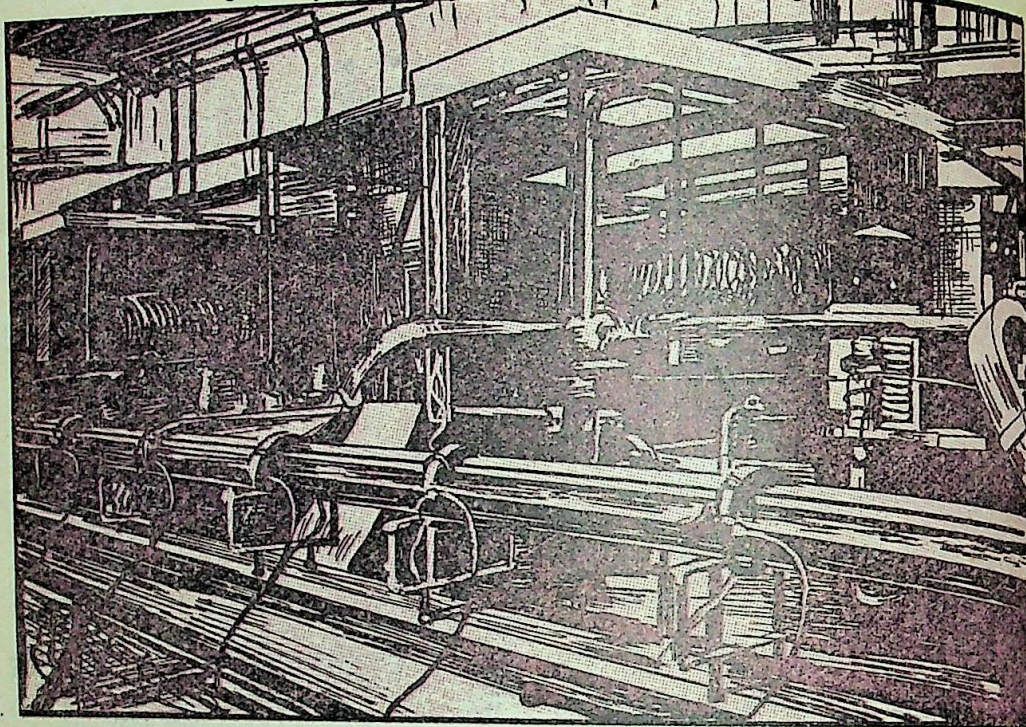
प्रोटॉन, ड्यूट्रॉन, एल्फाकण एवम् इलेक्ट्रॉन जैसे आवेशयुक्त कण पैदा होते हैं।

एक्सीलरेटरों का विकास

एक्सीलरेटरों का विकास बहुत ही परिश्रम और अनेक कठिनाइयों के पश्चात् हुआ है। सर्वप्रथम काक्रापट और वाल्टन नामक दो ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने एक एक्सीलरेटर बनाया था। यह एक बहुत ही सरल त्वरणकारी नली का यन्त्र था जिसमें ऊँचे विभव वाले इलेक्ट्रोडों को वैक्यूम में रखकर प्रोटॉन कण को सफलतापूर्वक काफी त्वरण दिया गया था।

तत्पश्चात् जटिल यन्त्रों का निर्माण होता गया और उनसे उत्पन्न कणों की गति और शक्ति भी बढ़ती ही चली गयी। उन दिनों दो प्रकार के एक्सीलरेटरों का निर्माण किया जाने लगा। एक तो वह जिनमें कणों का त्वरण सरल रेखा में दिया जाता था तथा दूसरे वह जिनमें त्वरण वृत्ताकार मार्ग में दिया जाता था। पहले प्रकार के एक्सीलरेटरों को रेखिक एक्सीलरेटर तथा दूसरे प्रकार के एक्सीलरेटरों को साइक्लोट्रॉन कहा जाता है। साइक्लोट्रॉन के अतिरिक्त

सितम्बर १९६३



स्टेनफर्ड लीनियर एक्सीलेरेटर जो एक लम्बी वैकुअम ट्यूब में इलेक्ट्रान वेग से फेंकता है

बीटाट्रॉन, सिंक्रोट्रॉन, सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन, प्रोटॉन-सिंक्रोट्रॉन आदि अन्य एक्सीलेरेटर भी हैं जिनमें कणों को सर्पिल मार्ग में घुमाकर उच्च गति और ऊर्जा का अनोखा त्वरण उत्पन्न किया जाता है।

रैखिक एक्सीलेरेटरों से केवल दस लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट तक की ही ऊर्जा के कण उत्पन्न किये जा सकते हैं परन्तु साइक्लोट्रॉन से लगभग पन्द्रह गुनी ऊर्जा के अर्थात् डेढ़ करोड़ इलेक्ट्रॉन वोल्ट तक के कण निर्मित किये जा सकते हैं।

साइक्लोट्रॉन का निर्माण सन् १९३१ में ई. ओ. लॉरेन्स नामक अमरीकन वैज्ञानिक ने किया था। रैखिक एक्सीलेरेटरों के इलेक्ट्रोडों को काफी ऊँचा विभव देकर कणों को काफी ऊँची ऊर्जा प्रदान की जा सकती है परन्तु साइक्लोट्रॉन में विशेषता यह होती है कि एक ऊँचे विभव के मुकाबले में बहुत कम विभव को ही लगातार बारी-बारी से

कई बार देकर अर्थात् प्रत्यावर्ती विभव को लगाकर कणों को काफी ऊँची ऊर्जा प्रदान की जा सकती है।

सन् १९४४ में रूसी वैज्ञानिक बेक्सेलेर तथा सन् १९४५ में अमरीकन वैज्ञानिक मैकमिलन के ऑटो-फेजिंग सिद्धान्त के आधार पर सिंक्रो-मशीनों का भी निर्माण किया गया। साइक्लोट्रॉन में त्वरणशील कण का भार वैज्ञानिक आइन्स्टीन के सापेक्ष-वाद सिद्धान्त के आधार पर लगातार बढ़कर त्वरण प्रक्रिया की राह में बाधा डालता है तथा कणों की परम ऊर्जा को सीमित कर देता है। प्रोटॉन के लिए यह सीमा लगभग दस करोड़ इलेक्ट्रॉन वोल्ट ही होती है जो प्राकृतिक अन्तरिक्ष किरणों के प्रोटॉन कणों की ऊर्जा से काफी कम है। अतः सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन में इलेक्ट्रोडों का जो प्रत्यावर्ती विभव लगाया जाता है उसकी आवृत्ति कणों की गति, भार तथा ऊर्जा बढ़ते

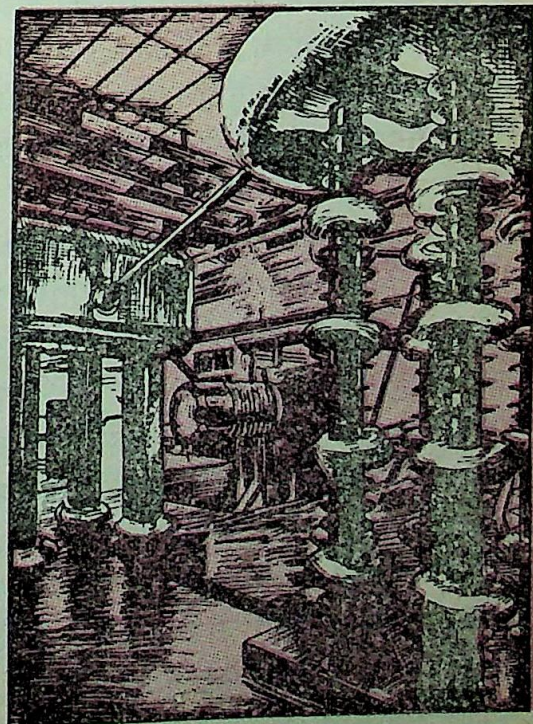
हो कम करना आरम्भ कागुिied by श्रीA Hamajकबुलेतेहैं साधिकाणों के कषर्णस्थित उड़ान
 ताकि कणों की गति और लगाये गये प्रत्या-
 र्ती विभव में सामंजस्य बना रहे। यही
 कारण है कि इस सिद्धान्त पर बनाये गये
 साइक्लोट्रॉन को आवर्ति-संक्रमण साइक्लो-
 ट्रॉन अर्थात् सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन के नाम से
 करते हैं। अतः यह सिंक्रो यन्त्र कणों की
 गति हुई गति के साथ-साथ बढ़ते हुए भार
 कारण उत्पत्ति-कमी को भी पूरा करता
 रहता है तथा कणों का भार त्वरण प्रक्रिया
 राह में बिल्कुल भी बाधक न होकर
 चक्कोटि की ऊर्जा के कणों को उत्पन्न
 करता है।

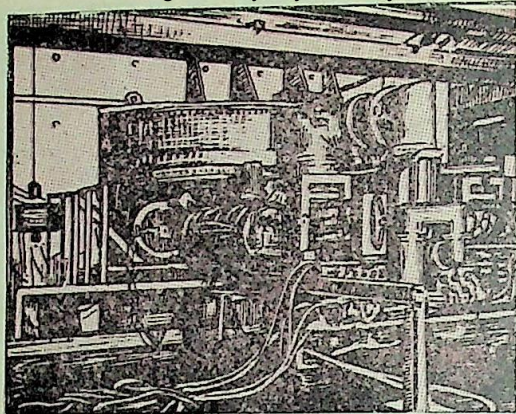
सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन

सन् १९५० में निर्मित रूसी सिंक्रो-
 साइक्लोट्रॉन का विशाल विद्युत चुम्बक
 १०० टन भार का है। इस चुम्बक के
 दो ध्रुव सिरे ६ मीटर व्यास के हैं तथा यह
 ध्रुवजनक चुम्बकीय तीव्रता प्रदान करता
 है। दर्शकों की चाभियाँ, चश्मे, पाकेट के
 कफ बटन तथा ऐसे ही धातु निर्मित
 वस्तुओं को यह चुम्बक अपनी ओर खींच
 लाता है।

इस विशाल विद्युत चुम्बक से जो चुम्ब-
 क क्षेत्र उत्पन्न होता है वह घड़ी की स्प्रिंग
 की भाँति एक समावर्तक सर्पिल कक्षा में
 कणों को घुमाता रहता है। कणों की गति
 धीमे-धीमे बढ़ती चली जाती है। प्रारम्भ में
 कणों की गति कुछ किलोमीटर प्रति सेकण्ड ही
 होती है, परन्तु बाद में बढ़कर २४ या २५
 किलोमीटर प्रति सेकण्ड हो जाती है
 यान्त्रिक कणों की गति प्रकाश की गति से
 कुछ ही कम रह जाती है। कणों की यह
 गति दो धातु के एक कक्ष में होती रहती
 है जो विद्युत चुम्बक के दोनों ध्रुवों के बीच
 स्थित होता है। इस कक्ष में पहले से ही
 हवा निकालकर वैक्यूम तैयार

में कोई बाधा न पड़ सके। इसी कक्ष में दो
 उच्च विभव वाले इलेक्ट्रोड होते हैं तथा
 इन्हीं दोनों इलेक्ट्रोडों के बीच के स्थान में
 कणों का त्वरण-कार्य होता है। इन इले-
 क्ट्रोडों को स्थिर विभव नहीं दिया जाता
 बल्कि प्रत्यावर्ती ऊँचे विभव वाला प्रवाह
 एक सशक्त लघुतरंग जनरेटर (जनित्र) के
 द्वारा इन इलेक्ट्रोडों तक बराबर भेजा जाता
 है और वह नियमित अवधि से एक के बाद
 धनात्मक से ऋणात्मक और ऋणात्मक
 से धनात्मक रूप में बदलता रहता है। इन
 इलेक्ट्रोडों का आवेश इतनी जल्दी बदलता
 रहता है कि कण इलेक्ट्रोडों के बीच की
 जगह में त्वरण प्राप्त करने के लिए उचित
 समय में ही पहुँच जाते हैं। एक इलेक्ट्रोड
 अपने से विपरीत आवेश वाले कण को
 आकर्षित कर लेता है। यह कण उतनी ही
 हावेल (इंग्लैण्ड) स्थित काक्राफ्ट-वाल्टन जनरेटर,
 एक्सीलरेटर के लिए उच्च धारा की विद्युत प्रवाहित
 करता है





हावेल स्थित सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन

देर तक इसके द्वारा आकर्षित रहता है जब तक कि उसे यही एक आवेश मिलता रहता है। जैसे ही आवेश बदलता है तो दूसरा इलेक्ट्रोड कणों को आकर्षित करना शुरू कर देता है। इस प्रकार से इन दोनों इलेक्ट्रोडों की एकत्रित क्रिया उस कण का त्वरण बढ़ाने में तथा उसकी ऊर्जा को उत्प्रेरित करने में सहायक होती है। इन इलेक्ट्रोडों के बीच के त्वरण क्षेत्र में कण प्रत्येक आधे चक्कर में अपनी ऊर्जा और गति बढ़ाता जाता है और अन्त में कणों की गति तथा ऊर्जा अति विशाल तथा भयानक हो जाती है। त्वरण-युक्त कणों के भार में वृद्धि का सारा प्रभाव एक परावर्तक कन्डेन्सर द्वारा स्थानान्तरित किया जाता है।

आयन स्रोत का स्थान कक्ष के बीचो-बीच चुम्बकीय क्षेत्र के केन्द्र से समस्थित होता है। प्रोटॉन कण प्राप्त करने के लिए हाइड्रोजन गैस को आयन स्रोत में भर दिया जाता है। आयनीकरण की क्रिया में हाइड्रोजन गैस के अणुओं का इलेक्ट्रॉन कवच अलग हो जाता है और यही नग्न हाइड्रोजन नाभिक प्रोटॉन कण कहलाते हैं जिनको एक मशीन में त्वरण दिया जाता है। जैसे ही ये प्रोटॉन कण स्रोत से उड़कर कक्ष में पहुँचते हैं, विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र उसे आकर्षित करना

क्षेत्र की ध्रुवीयता बदलती है त्वरणक्षेत्र का कार्य आरम्भ हो जाता है।

ऑटोफेजिंग के सिद्धान्त के आधार पर 'जल्दी आने वाले', 'समय पर आने वाले' अथवा 'देर से आने वाले' सभी कण एक प्रकार से एक ही उच्चतम ऊर्जा को प्राप्त कर लेते हैं जैसे कि नियम से चलने वाले कण प्राप्त करते हैं।

इस सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन से ६८ करोड़ इलेक्ट्रॉन बोल्ट वाली ऊर्जा के प्रोटॉन उत्पन्न किये जा सकते हैं। मशीन से निकलने पर विशाल ऊर्जायुक्त कण एक प्रकार के प्लेट-लक्ष्य पर बमवर्षा प्रारम्भ कर देते हैं। यह लक्ष्य सामान्यतः बहुत ऊँचे ताप पर चलने वाली धातु का बना जाता है। इस बमवर्षा से प्लेट-लक्ष्य न्यूट्रॉन, मेसॉन तथा गामा किरणें आदि निकलने लगती हैं। प्लेट-लक्ष्य के अणुओं में विखण्डन होकर उससे दूसरे तत्वों के नाभिक पैदा होने लगते हैं। सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन से निकलकर प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और मेसॉन कण कौलिमीटर की मजबूत इस्पात नली के विशेष मार्गों से गुजरने लगते हैं। विभिन्न कणों पर वैज्ञानिक अपना शोध करते रहते हैं। सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन से उत्पन्न होने वाले कणों का स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, इसलिए एक्सीलेरेटर बहुत दूर के नियन्त्रकों से चालित होता है। इन नियन्त्रकों के लिए एक इमारत के बड़े कमरे में मुख्य नियन्त्रक होती है तथा उसी इमारत में सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन के विद्युत संभरण की सुविधा होती है। इस मुख्य नियन्त्रक अगणित यन्त्रोपकरण होते हैं। रंगीन प्रकाश बत्तियाँ चुम्बक, वैक्यूम परावर्तक, उच्च आवर्ति जनरेटर,

बनाने वाले और हवा देने वाले यन्त्र तथा
बनाने वाली के उप-स्टेशन आदि की गति-विधि
जलाती हैं। इस मेज पर एक ही इन्जी-
नर सभी नियन्त्रकों की देखभाल करता
है। मुख्य इमारत में जब त्वरण
किया चल रही हो तब वहाँ उपस्थित
जाना अपनी जान को खतरे में डालना
ये त्वरणयुक्त कण समस्त संसार के
त्वरण के कण-कण में घुसने की शक्ति
को है, इसलिए उनके हानिकारक प्रभाव
मनुष्यों और यन्त्रों को बचाने के लिए
अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है।

अमरीका के सिक्रोसाइक्लोट्रॉन

अमरीका में शिकागो यूनिवर्सिटी के
सिक्रोसाइक्लोस्ट्रॉन के चुम्बक के ध्रुवीय
सिरे १७० इंच व्यास के हैं तथा इसके
चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता १८,६०० गौस
है। इसमें प्रोटॉन को त्वरण देने के समय
चुम्बक की आवृत्ति को २८.६ लाख चक्कर
प्रति सेकण्ड से घटाते-घटाते १८ लाख
चक्कर प्रति सेकण्ड तक कर देते हैं ताकि
प्रोटॉन की गति या ऊर्जा तथा प्रत्यावर्ती
चुम्बक में सामंजस्य बना रहे। इस मशीन से
१० लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा के प्रोटॉन
२६० इलेक्ट्रॉन वोल्ट के ड्यूट्रॉन तथा
१० लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा के एल्फाकण
(हेलियम नाभिक) उत्पन्न किये जाते हैं।
संसार का सबसे बड़ा सिक्रोसाइक्लो-
ट्रॉन अमरीका की केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी
में स्थित है। इसके चुम्बक के ध्रुवीय सिरे
१४ इंच व्यास के हैं तथा यह चुम्बक
१५०० गौस का चुम्बकीय क्षेत्र तीव्रता
संसार करता है। इस मशीन द्वारा ७४०
लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा के प्रोटॉन कण,
११५ लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट के ड्यूट्रॉन कण
और १६६ लाख इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा के
एल्फाकण उत्पन्न किये जाते हैं।

रूस में मास्को के समीप वैक्सलर की
प्रयोगशाला में आवेशयुक्त कणों का एक
सबल एक्सीलेरेटर बनाया गया है जिसको
प्रोटॉन-सिक्रोट्रॉन कहते हैं। इस मशीन से
दस अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट की ऊर्जा के प्रोटॉन
कण उत्पन्न किये जाते हैं।

इस मशीन के विद्युत चुम्बक का भार
३६,००० टन है तथा इसके चुम्बकीय ध्रुवों
का व्यास लगभग ७० मीटर है। विशेष
चुम्बकों और विद्युत आवेशयुक्त प्लेटों की
रचना में प्रोटॉन कण मशीन के कक्ष के
भीतर ३.३ सेकण्ड में ४५ लाख बार चक्कर
लगा लेते हैं। इन कणों द्वारा तै की गयी यह
दूरी हमारी पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की
दूरी की लगभग ढाई गुनी अधिक होती
है।

प्रोटॉन कण मशीन के कक्ष में अपनी
घूर्णिमान यात्रा पूरी कर लेने के बाद एक
आठ मीटर चौड़ी कंकरीट की दीवार में-से
एक बहुत तंग रास्ते से बाहर निकाले जाते
हैं और प्रयोगशाला के उस प्रकोष्ठ में पहुँचा
दिये जाते हैं जिसमें पदार्थ विज्ञान शोध के
अनेक उपकरण होते हैं। अब इन त्वरण
प्राप्त प्रोटॉन कणों की बमवर्षा विशेष प्रकार
की प्लेट-लक्ष्य पर होती है तब उस लक्ष्य के
द्रव्य के नाभिक स्फोट करते हैं और मेसॉन,
न्यूट्रॉन, हाइपेरॉन, हाइपेर-खंड और एन्टी-
प्रोटॉन आदि मौलिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण
उत्पन्न कर देते हैं।

अमरीका के प्रोटॉन-सिक्रोट्रॉन

केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी में बनायी गयी
बीटाट्रॉन मशीन से ६.५ अरब इलेक्ट्रॉन
वोल्ट की ऊर्जा के प्रोटॉन कण उत्पन्न किये
जाते हैं। इतनी विशाल ऊर्जा के प्रोटॉन
कण तैयार करने की आवश्यकता इसलिए
होती है ताकि लक्ष्य पर इन प्रोटॉन कणों

की वमवर्षा से ~~प्रचंड ऊर्जा वाले~~ ^{प्रचंड ऊर्जा वाले} कण भी सफलता-पूर्वक तैयार किये जा सकें।

अमरीका की ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में निर्मित कोस्मोट्रॉन मशीन से २६ अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट की ऊर्जा के प्रोटॉन कण तैयार होते हैं। इसी प्रयोगशाला में संसार की सबसे विशाल मशीन तैयार की जा रही है जो २५ अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट की ऊर्जा के प्रोटॉन कण तैयार कर सकेगी।

इलेक्ट्रॉन-सिकोट्रॉन भी क्षेत्र में

प्रोटॉन-सिकोट्रॉन मशीनों की भाँति इलेक्ट्रॉन-सिकोट्रॉन भी तैयार किये गये हैं जिनसे उच्च ऊर्जा के इलेक्ट्रॉन कण तैयार किये जाते हैं। इन मशीनों द्वारा बीटाट्रॉन मशीनों की अपेक्षा अधिक ऊर्जा के इलेक्ट्रॉन कण उत्पन्न किये जा सकते हैं।

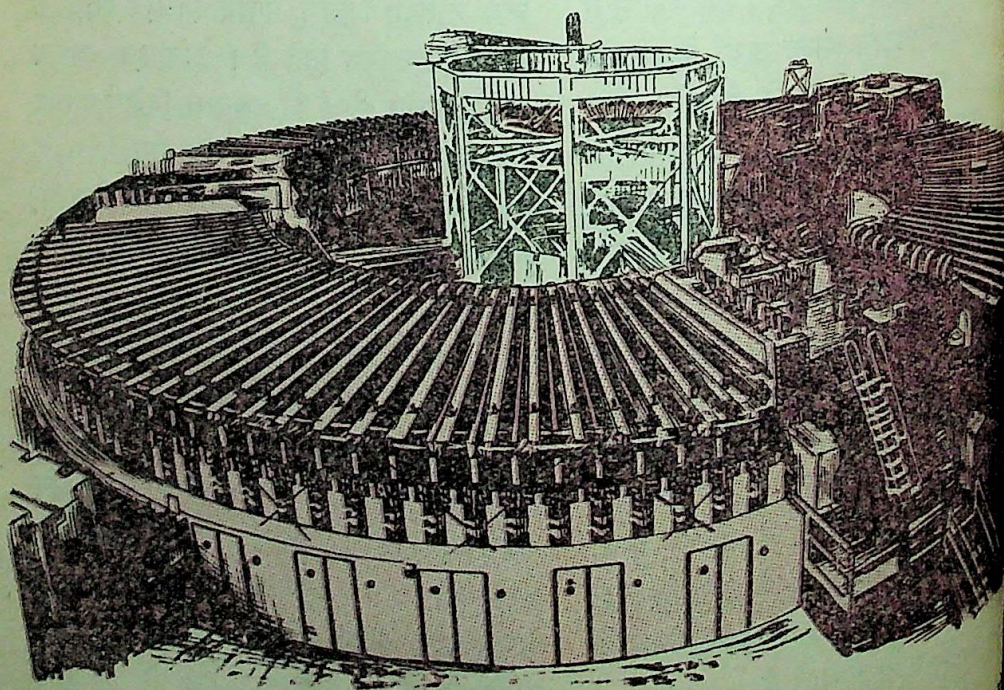
अन्तरिक्ष किरणों के पुनर्निर्माण की अद्भुत देन

वास्तव में विज्ञान और इन्जीनियरिंग की ये सब अद्भुत उपलब्धियाँ हैं। ऐसे

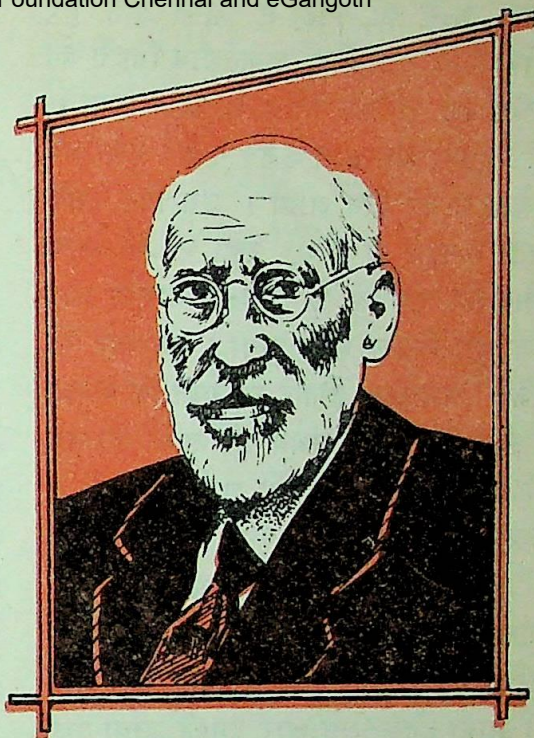
प्रचंड ऊर्जा वाले एक्सीलरेटरों की सफल रचना का पहले शायद ही किसी को कोई अनुमान होता होगा। इन मशीनों के द्वारा वैज्ञानिकों को नाभिक शक्तियों के बारे में और मौलिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म द्रव्य कणों के बारे में निश्चित रूप से नये रहस्यों का पता चलेगा। यही कारण है कि वह ऊँचे से ऊँची ऊर्जा वाले कणों को प्राप्त करने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं ताकि इसकी रचना की स्पष्ट और विवरणपूर्ण कल्पना का ज्ञान तथा उसके भीतरी प्रक्रियाओं का ठीक विश्लेषण हो सके।

इन मशीनों द्वारा अब वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष किरणों के पुनर्निर्माण करने में अधिकांश स्वप्न सफल होते जा रहे हैं। मनुष्य अभी इतनी ऊँची ऊर्जा उत्पन्न नहीं कर पाया है जितनी प्रकृति स्वयं अन्तरिक्ष किरणों के रूप में पृथ्वी की ओर देती है।

केलीफोर्निया विश्वविद्यालय का यह सिकोट्रॉन यन्त्र इलेक्ट्रॉन के बदले प्रोटॉन का प्रयोग करता है।



सेन्टाइगो रेमन केजेल



कुमारी रेखा सरीन

सेन्टाइगो रेमन केजेल (Santiago Ramon Cajal) परिस्थितियों से निवृत्त होकर १० वर्ष की अवस्था में ही बाल-अपराधियों का अगुआ बनकर सिपाहियों से घिरा हुआ जेल की ओर चला गया। उस समय किसी को यह कल्पना नहीं होगी कि वह आवारा बालक विज्ञान-क्षेत्र में नाम चमका देगा। उस जेलयात्रा के ठीक ४० वर्ष बाद तंत्रिका-संस्थान की रचना पर किये अनुसन्धान के उपलक्ष्य में केजेल को नोबेल पुरस्कार मिला !

बाल्यकाल

पेटिला-डी-आरेगन (Petilla de Aragón) में १ मई, १८५२ को केजेल का जन्म हुआ। बालक केजेल की शिक्षा-दीक्षा चार वर्ष की आयु से ही प्रारम्भ कर दी गयी। केजेल ने शीघ्र ही अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया और छः वर्ष का होते-होते उसने स्पेनिश के अतिरिक्त फ्रेंच, इंग्लिश और गणित में भी दक्षता प्राप्त कर

ली। तभी इसके पिता ने वाल्पाल्मास (Valpalmas) के शहर में अच्छी आजी-विका का साधन प्राप्त कर लिया और परिवार सहित वहीं जम गये। वहाँ थोड़े ही समयान्तर से दो घटनाओं ने केजेल को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्हीं घटनाओं ने इसकी जीवनधारा को अप्रत्याशित मोड़ दे दिया।

पहली घटना जब घटी तब बालक केजेल विज्ञान से सर्वथा अपरिचित था। जिस चर्च में केजेल पढ़ने जाता था, उसे एक दिन वर्षा, बादल और बिजली ने भयंकर रूप से घेर लिया। उस घनघोर वर्षा में बच्चों को घर जाने से रोकने के लिए चर्च का पादरी ऊँची मीनार पर चढ़ गया और जोरों से घण्टा बजाने लगा। तभी एक कर्णभेदी कड़क और जोर का धमाका हुआ। गहरे धुन्ध और धुएँ में केजेल ने देखा कि पादरी का झुलसा हुआ मृत शरीर अधटूटी शहतीर और चर्च के मलबे से चिपका पड़ा

था। आग की लपटा से ध्वस्त होत हुआ।
मीनार ने उस दिन आकाशीय विद्युत की
शक्ति का परिचय केजेल को करा दिया।

दूसरा चमत्कार केजेल ने तब देखा जब
सूर्यग्रहण का दिन आया। उस दिन उसके
पिता ने पहले ही से कह रखा था कि अमुक
समय पर सूर्य का बिम्ब छिप जाएगा और
कब पुनः निकल भी आएगा। इस बार भी
केजेल चमत्कृत होकर रह गया कि मनुष्य
के लिए यह कैसे संभव हो सका जो सूर्य
की गति के बारे में इतना शुद्ध पूर्व-अनुमान
लगा ले।

केजेल परिवार को कुछ समय के लिए
वाल्पात्मास छोड़कर एयरबे (Ayerbe)
नामक ऐसे विचित्र गाँव में रहना पड़ा जहाँ
की भाषा इनके लिए और इनकी भाषा वहाँ
के निवासियों के लिए दुरूह थी। वहाँ के
लोग बहुत ही पिछड़े हुए तथा असभ्य थे।
केजेल का अच्छा खाना, पीना और पहनना
उन्हें पसंद नहीं था। वहाँ के किशोर लड़कों
का यही प्रयत्न रहता था कि बालक केजेल
भी उन्हीं की तरह आवारागर्दी में शामिल
हो जाए। विवशतः केजेल उनके गुट में मिला
और अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उनका नेतृत्व करने
लगा। उसी दौरान में एक कोठी का ताला
तोड़ने का नेतृत्व करते हुए केजेल पकड़ा गया
था। तभी उसे प्रथम बार और अन्तिम बार
जेल जाना पड़ा था।

पाप-नगरी से छुटकारा और ज्ञानार्जन

शीघ्र ही उस जहरीले वातावरण से
केजेल को छुटकारा मिल गया। उसके पिता
ने अपना लक्ष्य बना लिया कि जिन शैक्ष-
णिक सुविधाओं से स्वयं उन्हें अपने विद्यार्थी
जीवन में वंचित रहना पड़ा था, वे समस्त
बालक केजेल को अवश्य मिलें। केजेल अपने
अवकाश का उपयोग ज्ञानवर्द्धन में करता
रहा। प्रत्येक संभव स्थल से रंग-बिरंगे फूलों

को संग्रह करके उनका सूक्ष्म अध्ययन करता
रहा और उसने एक उपयोगी संकलन भी
तैयार कर लिया। विभिन्न पक्षियों के अण्डे
एकत्र करके उनका भी अवलोकन किया।

शीघ्र ही केजेल ने भौतिकी, रसायन
और जीव-विज्ञान में दक्षता प्राप्त करके
अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को
चकित कर दिया, अपने पिता को विशेषतः
प्रभावित किया। मानव शरीर की रचना
के अध्ययन में वह अपने पिता को बहुमूल्य
सहयोग देता रहा। पिता-पुत्र दोनों ही रात
को कब्रिस्तान में पड़े हड्डियों के ढेर में से
मानव अस्थियाँ बोरों में भर लाते थे। १८
वर्ष की आयु में ही केजेल ने मानव कंकाल
का ऐसा चित्र-संग्रह तैयार किया जो तत्का-
लीन समस्त ग्रन्थों में प्रकाशित चित्रों से
उत्तम और उच्चस्तरीय माना गया।

प्रतिभा की धाक

जारागोजा (Zaragoza) यूनिवर्सिटी
में केजेल ने, जहाँ वह अध्ययन कर रहा था,
अपनी प्रतिभा की धाक हर छोटे-बड़े पर
जमा रखी थी। वहाँ केजेल को नीचा
दिखाने के लिए एक अति कठिन प्रति-
योगिता का आयोजन किया गया। केजेल
ने जब उसमें अपने प्रतिद्वन्द्वी को हरा दिया
तो द्वेषभरे अधिकारी यह आरोप लगाने
लगे कि—'निश्चय ही इसने नकल की
होगी, अन्यथा सर्वशुद्ध हल लिखना किसी
विद्यार्थी के लिए तो क्या, अध्यापक तक
के लिए असम्भव है।' इससे क्षुब्ध होकर
केजेल ने प्रतियोगिताओं में भाग लेना
ही छोड़ दिया।

चिकित्सा-विज्ञान में पूर्ण दक्षता प्राप्त
करने के पश्चात् केजेल कुछ समय क्यूबा के
युद्ध मोर्चे पर भी रहे। वहाँ का जलवायु
इन्हें अनुकूल न आया और वे बीमार हो
गये। बीमारी के कारण वे वहाँ से लौट

आये और पिता की कुदाल अन्धश्रम में
शीघ्र ही इन्होंने स्वास्थ्य लाभ कर लिया।
स्वस्थ होने पर जारागोजा यूनिवर्सिटी
ने इन्हें शरीरशास्त्र का अध्यापक नियुक्त कर
लिया। वहाँ इन्होंने अपने अध्ययन की भी
सुविधा मिलने लगी। सूक्ष्मदर्शी की सुविधा
उनमें प्रमुख थी। सूक्ष्मदर्शी उन दिनों अधिक
प्रचलित न थे। अपनी स्लाइड को उसके नीचे
रखे हुए वे उसमें घण्टों डूबे रहते थे। एक
बार तो लगातार २० घण्टे तक अध्ययन करते
रहे थे !

२८ वर्ष की आयु में इन्होंने कु. डोना
ग्रेसिया (Dona Gracia) से विवाह किया
और लेखन कार्य प्रारम्भ किया। आरम्भ
में स्पेन का विज्ञान-जगत इनकी ओर से
काफी उदासीन रहा और इनकी अनेक
उत्तम रचनाओं के बावजूद भी इनकी ओर
ध्यान नहीं दिया। तब केजेल विदेशी पत्र-
पत्रिकाओं में अपने विचारों का आदान-
प्रदान करने में लग गये। उन्हें यह जानने
की उत्कण्ठा रहती थी कि देश से बाहर
विज्ञान-जगत में क्या हो रहा है। उपास्थि
(cartilage) नेत्र-लेन्स तथा पेशी-तन्तुओं
की संरचनाओं पर इनकी लेखन-कृतियों की
अनेक पत्रों में प्रशंसा होती रही। इनकी
Manual of Normal Histology and
Micrographic Techniques की बहुत
प्रशंसा हुई।

हैजा और भ्रम-निवारण

उन्हीं दिनों हैजा फैलने से अध्ययन का
एक नया सूत्र केजेल के हाथ लगा। इन्होंने
देखा कि डा. फेरान (Ferran) नामक
एक चिकित्सक अपनी पुरातन प्रथा के अनु-
सार जीवित बैक्टीरिया के इन्जेक्शन देकर
मनुष्यों को हैजे से सुरक्षित रखते थे। केजेल
के अनुसार वह एक भ्रम मात्र था और यह
निश्चित नहीं कहा जा सकता था कि वे

उत्पन्न कर ही दें। डा. फेरान जन्तुओं पर
किये गये अपने ऐसे प्रयोगों को मनुष्यों के
लिए भी प्रभावयुक्त सिद्ध करना चाहते थे
किन्तु केजेल ने सिद्ध कर दिया कि वह
विधि काफी त्रुटिपूर्ण थी !

शीघ्र ही बार्सिलोना विश्वविद्यालय के
ऊतक-विज्ञान (histology) विभाग में एक
महत्त्वपूर्ण पद पर केजेल की नियुक्ति हो गयी।
वहाँ इन्होंने तंत्रिका-संस्थान का तलस्पर्शी
अध्ययन किया। इस क्षेत्र में मस्तिष्क का
सूक्ष्मदर्शी अध्ययन करने के लिए एक
असुविधा यह थी कि तन्तुओं को रंजित
करने के लिए कोई सफल साधन नहीं बन
पाया था। गोलगाई (Golgi) नामक
वैज्ञानिक का पोर्टेशियम बाइक्रोमेट और
सिलवर नाइट्रेट का प्रचलित फार्मूला भी
प्रायः निष्प्रभाव हो जाता था। केजेल ने यह
परीक्षण भ्रूणावस्था के मस्तिष्क पर ही
कर लेने का परामर्श देकर इस कठिन समस्या
का हल प्रस्तुत किया।

निराशा को कोई स्थान नहीं

तंत्रिका-संस्थान की संरचना पर प्रमुख
विद्वानों में जो चर्चा-विवाद चल रहे थे
उनमें केजेल के विद्वत्तापूर्ण अभिमत को न
तो किसी ने सराहा और न इनके प्रमाण-
भूत प्रयोगों पर ही कोई ध्यान दिया।
पर इससे केजेल निराश न हुए और बर्लिन
में आयोजित शरीर-विज्ञान के अधिवेशन में
सम्मिलित होकर इन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध
डा. कोलिकर (Kolliker) को पूर्णतः
प्रभावित कर दिया। डा. कोलिकर को
अपनी स्थापित अनेक मान्यताएँ बदल देनी
पड़ीं।

डा. कोलिकर से प्रोत्साहन पाकर
केजेल ने मस्तिष्क अनुसंधान कार्यों में अपनी
उपलब्धियों से विज्ञान-जगत को आश्चर्य में

डाल दिया। स्पेन-अमरीकी औद्योगिक फाउंडेशन (Lennet and Gantebel) पुरस्कार-प्रेषकों के ऊतक-अनुसंधानशाला ने तथा लन्दन की रायल सोसाइटी ने आपको सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त स्पेन-अमरीकी युद्ध समाप्त न होने पर भी इस स्पेनिश केजेल को अमरीका ने ससम्मान निमन्त्रित किया।

केजेल के जीवन में १९०६ स्वर्ण-वर्ष था जब कि ४० वर्ष पूर्व का बाल-अपराधी और जेलयात्री केजेल, अपने कट्टर प्रतिद्वन्द्वी वैज्ञानिक गोलगाई से हाथ मिलाकर सम्मि-

सम्मुख उपस्थित हुआ।

केजेल ने अनुसंधान कार्य को एक क्षण के लिए भी न छोड़ा। मस्तिष्क और तंत्रिका-संस्थान विषयक इनके अनुसंधान कार्य आज इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के युग में और भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही मानी जाती है कि एक समय के उपेक्षित और महत्त्व से शून्य स्पेन को सेन्टाइगो केजेल ने विज्ञान-जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया।

खेल-खिलवाड़ भरा पौपस

[पृष्ठ १८ का शेष]

इन लक्षणों से ये प्रश्न उभरने लगे हैं कि क्या पौपस को एक पनडुब्बी की भाँति शत्रु-जहाजों के पेंदे में बम-विस्फोट कराने के लिए भी प्रशिक्षित किया जा सकता है? अमरीका के प्रसिद्ध संस्थान नासा (NASA—National Aeronautics & Space Administration) के अधिकारियों को इस बारे में काफी आशा है। विगत १० वर्ष के प्रयोगों ने उनकी इस आशा को बल भी दिया है।

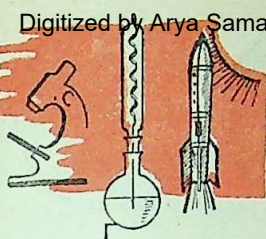
एक अन्य उदाहरण में पौपस का सह-कारी कार्य भी देखने में आया। दो पौपस एक ईल मछली का पीछा कर रहे थे और उसे घेर लेने की कोशिश में थे। ईल जान छुड़ाकर एक ऐसी दरार में जा छिपी जिसमें वे प्रवेश नहीं कर सकते थे। तब एक पौपस तो पहरे पर खड़ा रहा और दूसरा डंक मारने वाली एक मछली को पकड़ लाया। उसके विपैले डंक से उन्होंने ईल को तिल-

मिला दिया और आखिर उसे खींचकर निकाल लिया।

इन लक्षणों से जीव-शास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि इसकी मस्तिष्क-रचना में अवश्य कुछ विशेषता होनी चाहिए। अतः एक पौपस के मस्तिष्क की शल्य-परीक्षा द्वारा उन्होंने इसका समर्थन पा लिया है। उन्होंने ज्ञात किया है कि पौपस के मस्तिष्क में प्रमस्तिष्क (cerebrum) का भाग अधिक है और वही इसके उच्च बौद्धिक विकास का कारण है। एक अन्य प्रयोग-स्वरूप एक जीवित पौपस के मस्तिष्क में कुछेक विद्युदाग्र उतारकर देखा गया कि जब-जब वे विद्युदाग्र उसके उल्लास-केन्द्रों को छूते थे, तब-तब वह किसी भी कार्य के लिए सरलतापूर्वक प्रशिक्षित किया जा सकता था।

सम्भव है भविष्य में पौपस भी पालतू जन्तुओं में अपना अग्र स्थान बना ले।

वैज्ञानिक अवलम्बियाँ



गैर सड़क खोदे, पाइप-लीकेज की जाँच

बड़े शहरों में भूमिगत पाइपों का जाल बिछा रहता है। कभी पानी का तो कभी गैस का पाइप कहाँ से लीक कर रहा है, यह देखने के लिए भी सड़क को स्थान-स्थान पर खोदना पड़ता है। इस परेशानी से बचने के लिए इन्स्टीट्यूट आफ टेकनालाजी ने एक ऐसा ध्वनि निरीक्षक बनाया है जो सड़क के ऊपर से ही ध्वनि-परीक्षण द्वारा लीकेज का ठीक स्थान बता देता है। इस यंत्र को एक कार में फिट करके चाहे जहाँ जाया जा सकता है।

कैंसर चिकित्सा की नवीन विधि

शिकागो विश्वविद्यालय के चिकित्सकों ने नारी-वक्ष के कैंसर का इलाज करने के लिए अनेक सफल प्रयोग किये हैं। कैंसर को हटाने का हो अथवा अन्य किसी ग्रंथ का, हार्मोन्स दिये जाने पर उलटे और बढ़ता है। इन चिकित्सकों ने प्रतिदिन दो के इलाज से दोहरे प्रजनन हार्मोन्स के इंजेक्शन देकर १५ महिला मरीजों में से ६ को कैंसर-मुक्त कर दिखाया है। इस नवीन चिकित्सा के श्रेय के भागी हैं—डा. रिचार्ड, डा. एलरिक और डा. चार्ल्स हगिन्स।

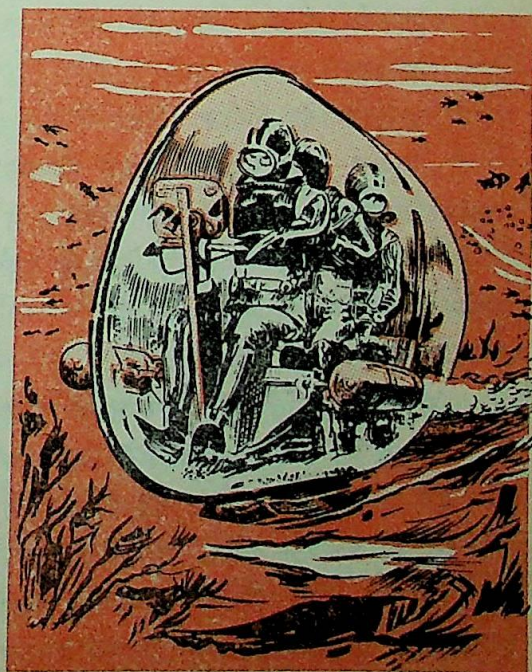
गैर टन का कोमल हथौड़ा

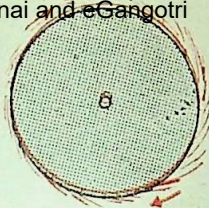
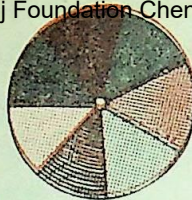
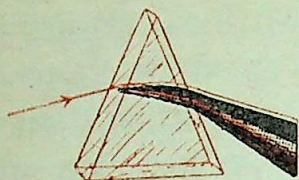
एक अण्डे को चुटकी में चटकाया जाए तो उससे भी अधिक कोमलतापूर्वक इस पाँच पाउंड वजनी हथौड़े से इस प्रकार चटकाया जा सकता है कि केवल उसका खोल चटकर रह जाए और अण्डा कुचलने न पाए। इस विधि के जेम्स नेस्मिथ ने जो वाष्प-

जालिन, Chennai and e-व्यापार हथौड़ा तैयार किया है, उससे कड़ी से कड़ी और मोटी से मोटी धातु एक ही चोट में चूर-चूर हो जाती है। उसके प्रथम प्रदर्शन के अवसर पर चोट के साथ जो धमाका हुआ था, उससे अनेक व्यक्ति बेहोश हो गये थे फिर भी उसका नियन्त्रण इतना विलक्षण है कि शीशे के ग्लास में आधा फँसाया हुआ अण्डा कोमल दाब से खोल तक ही चटककर रह गया था !

समुद्री जीवों के लिए नयी सुसीबत

सी-बबल (Sea Bubble) अर्थात् समुद्री-बुलबुला नामक इस यान में यह सुविधा है कि इसमें चारों ओर का दृश्य स्पष्ट देखा जा सकता है। इसमें तीन व्यक्ति आराम से बैठ सकते हैं। पर्सपेक्स (perspex) नामक नयी वस्तु से बना यह यान काफी देर तक गहराई में ठहरा रहकर आवश्यक अध्ययन की सुविधा प्रदान करता है। इसमें लगे छोटे-छोटे जेट इंजनों से इसके संचालन में पर्याप्त सरलता रहती है। बड़े समुद्री जीव भी इसे तोड़-फोड़ नहीं सकते।





रंगीन प्रकाश की अनुभूति

सुरेन्द्रकुमार सक्सेना

प्राचीन काल से ही मनुष्य को रंगों की जानकारी रही है। उस समय भी वह रंगों का उपयोग वस्तुओं की सजावट में करता था। रंगीन प्रकाश की वास्तविक जानकारी सर्वप्रथम न्यूटन ने ही सन् १६६६ में की थी। उसने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि सूर्य का श्वेत प्रकाश वास्तव में सात रंगों से मिलकर बना हुआ है। यही नहीं, न्यूटन ने इस बात का भी समाधान किया कि वस्तुएँ रंगीन क्यों दिखती हैं। उसने वस्तुओं के रंगीन दिखने के इन्द्रधनुषी नियम को प्रस्तुत किया जिसके अनुसार वस्तु या तो इन्द्रधनुषी रंग में से किसी एक रंग की अनुभूति देती है या उनके सम्मिलित रंग की।

नेत्रों को रंग की अनुभूति

रंग की अनुभूति और प्रकाश के तरंगदैर्घ्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्य के श्वेत प्रकाश से प्राप्त वर्णपट को सफेद परदे पर लेने से क्रमशः लाल, नारंगी, पीला हरा, नीला, आसमानी और बैंगनी सात रंग मिलते हैं जिनकी अपनी अलग-अलग

तरंगदैर्घ्य होती है। ये रंग इन्द्रधनुषी रंग कहलाते हैं। स्पष्ट है कि नेत्र में इन्द्रधनुषी रंगों का प्रकाश पहले प्रवेश करेगा और तब ही रंग का प्रथम अनुभव होगा—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार अधिक आवृत्ति वाले ध्वनि-तरंग हमारे कान को ऊँचे स्वर की अनुभूति कराती है और कम आवृत्ति वाले ध्वनि से नीचा स्वर सुनाई पड़ता है।

नेत्र में रंग की अनुभूति के सम्बन्ध में सन्तोषजनक व्याख्या हेल्स हाल्टस ने मैक्सवेल ने दी थी। उनके अनुसार नेत्र में तीन प्रकार के शिरा-तन्तु होते हैं जो क्रमशः लाल, हरे तथा बैंगनी रंग की अनुभूति पैदा करते हैं। ये ही तीनों रंग प्राथमिक रंग कहलाते हैं। इन तीनों रंगों के विभिन्न परिमाण में उत्तेजित करके शिरा तन्तुओं द्वारा विभिन्न रंगों की अनुभूति कराती है और कम आवृत्ति वाले ध्वनि से नीचा स्वर सुनाई पड़ता है।

माने प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार का प्रदर्शन प्रयोग द्वारा इस प्रकार किया जा सकता है—सफेद परदे के एक भाग पर तीन प्रक्षेपी लालटेनों से क्रमशः लाल, हरा और बैंगनी प्रकाश डालें और प्रकाशों की तीव्रता इच्छानुसार घटाये-बढ़ाये तो परदे के इस भाग पर पड़ने वाले प्रकाश को जिस रंग का चाहें, वैसा ही बना सकते हैं। यदि तीनों की तीव्रता समान रखी जाए तो श्वेत प्रकाश का धब्बा परदे पर मिलेगा।

वस्तुएँ किस रंग की दिखती हैं

कुछ वस्तुएँ स्वयं प्रकाश उत्पन्न करती हैं। उनमें विभिन्न तरंग-दैर्घ्य वाले प्रकाश विभिन्न तीव्रता में मौजूद रहते हैं। इस प्रकार निकले हुए प्रकाश ही नेत्र के प्राथमिक रंग-चेतना वाले शिरातन्तु को उत्तेजित करते हैं जिसके फलस्वरूप रंग की अनुभूति होती है। उदाहरण के लिए भट्ठी से निकला प्रकाश लाल लोहा, लालटेन की लौ, विद्युत बल्ब आदि इसी श्रेणी में आती हैं।

यहाँ यह बात समझ लेना आवश्यक है कि प्रदीप्त वस्तु के रंग को देखकर यह बताया जा सकता कि वह रंग प्रदीप्त वस्तु से निकले किसी एक वर्ण प्रकाश के कारण है, या कई वर्णों के मिश्रण का जो क्रम मौजूद है। उदाहरण के लिए गैस लैम्प की लौ पीले रंग की दिखती है, किन्तु वर्ण-प्रक्षेपी द्वारा उसमें सूर्य वर्णक्रम के सभी रंग मौजूद पाये जाते हैं। केवल नीला और बैंगनी प्रकाश नहीं होता। उसे हम नीला और बैंगनी रहित श्वेत प्रकाश कह सकते हैं। इसके विपरीत सोडियम लैम्प का प्रकाश भी पीला दिखता है और उसके वर्णक्रम विश्लेषण से पता चलता है कि यह शुद्ध पीला-वर्ण प्रकाश ही मौजूद है।

दूसरी वस्तुएँ वह जो स्वयं तो प्रकाश उत्पन्न नहीं करती परन्तु उनके रंग की अनुभूति उन पर बाहरी प्रकाश के पड़ने से होती है। उन वस्तुओं के रंग की अनुभूति दो बातों पर निर्भर करती है—एक उस पर पड़ने वाले प्रकाश की किस्म पर तथा दूसरे इस बात पर कि वह वस्तु पड़ने वाले प्रकाश के किन वर्णों को परावर्तित करती है, किन्हीं अपने में से गुजरने देती है तथा अपने अन्दर किन वर्णों को शोषित कर लेती है।

जिन वस्तुओं के आरपार हम देख नहीं सकते उन वस्तुओं का रंग प्रकाश की उन तरंगों द्वारा निर्धारित होता है जो उनसे परावर्तित होकर हमारी आँखों में पहुँचती हैं। दिन के प्रकाश में सफेद कागज हमें सफेद इसलिए दिखता है कि वह श्वेत प्रकाश में मौजूद सभी वर्णों के प्रकाश को समान रूप से परावर्तित करता है परन्तु जब सोडियम लैम्प से प्राप्त प्रकाश में रखा जाता है तो पीला दिखता है। ऐसा इसलिए होता है कि सोडियम के प्रकाश में केवल विशुद्ध पीले रंग का एकवर्ण प्रकाश ही मौजूद रहता है। अतः कागज केवल पीले रंग को परावर्तित कर पाता है जो हमारी आँखों में पहुँचकर पीले रंग का अनुभव कराता है।

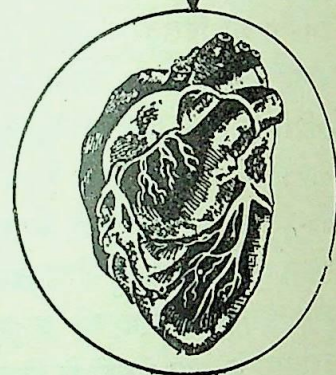
इसी प्रकार हरे रंग की ऊन की लच्छी दिन के प्रकाश में हरी इसलिए दिखती है कि श्वेत प्रकाश के अन्य सभी वर्णों का शोषण करके यह केवल हरे वर्ण के प्रकाश को परावर्तित करती है। उसी लच्छी को यदि सूर्यप्रकाश के वर्णपट के विभिन्न भागों में रखें तो केवल हरे वर्ण वाले भाग में वह हरी दिखेगी और शेष भागों में काली दिखेगी। यह इसलिए कि उन भागों के प्रकाश को यह पूर्णतया अपने में शोषित कर

लेती है। पारे की वाष्प की लम्बी राति को यद्यपि दिन सरीखा प्रकाश देता है, फिर भी रंगों के शेड की सही पहचान उस प्रकाश में नहीं की जा सकती, क्योंकि उसके प्रकाश में लाल-वर्ण प्रकाश की तरंगें मौजूद ही नहीं होतीं।

जिन वस्तुओं के आरपार हम देख सकते हैं, उनका रंग प्रकाश की उन तरंगों द्वारा व्यक्त होता है जो उन्हें पार करके दूसरी ओर आ जाता है। आपतित प्रकाश जब पारदर्शी पदार्थ में से गुजरता है तब प्रकाश के कुछ तरंग-दैर्घ्य के प्रकाश-वर्णों को वह अपने में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में शोषित कर लेता है। उस पार निकलने वाले बचे हुए वर्णों के प्रकाश अपना मिश्रित प्रभाव आँखों पर डालते हैं और वस्तु के रंग की अनुभूति करते हैं। उदाहरण के लिए, गहरे नीले रंग के कोबाल्ट काँच पर जब सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो यह पीले, नारंगी तथा लाल वर्ण वाले प्रकाशों को शोषित कर लेता है और उस पार केवल विशुद्ध हरा, नीला, तथा बैंगनी वर्ण का प्रकाश पहुँच पाता है। इनके मिश्रण के प्रभाव से आँखों को गहरे नीले रंग की अनुभूति होती है। इसकी जाँच के लिए यदि सूर्य के प्रकाश से प्राप्त वर्णपट के मार्ग में कोबाल्ट काँच को रखें तो परदे पर हम केवल वर्णक्रम का हरा, नीला तथा बैंगनी भाग ही पाएँगे। शेष भाग काँच में शोषित हो जाता है।

कोई वस्तु अपनी वास्तविक अवस्था में जिस रंग की दिखती है उसे यदि चूर्ण कर दी जाए तो दूसरे रंग की दिखने लगे। उदाहरण के लिए, श्वेत प्रकाश में नीले-थोथे का क्रिस्टल नीले रंग का दिखता है, क्योंकि उसमें से गुजरकर आने वाले प्रकाश का लाल तथा पीला वर्ण क्रिस्टल द्वारा

चिन्ता और मय का
हृदय पर गहरा
प्रभाव होता
है



साफ़ी

पाचन-क्रिया को ठीक करती है, खून को साफ़ करती है और ताज़ा खून पैदा करके चेहरे पर ताज़गी लाती है।



देहली-कानपुर-पटना

शोषित हो जाता है और वचा हुआ प्रकाश नीले रंग की अनुभूति देता है। यदि उस क्रिस्टल को पीसकर बारीक चूर्ण कर लिया जाए तो वह पीला और हलका नीला दिखेगा। ऐसा इसलिए होता है कि श्वेत प्रकाश चूर्ण की ढेरी में थोड़ा ही प्रवेश करने पर नन्हें-नन्हें टुकड़ों की सतह से परावर्तित हो जाता है। अतः पीले तथा नीले वर्ण का शोषण कम मात्रा में हो पाता है और ढेरी का रंग पीला और सफेदी लिए नीला दिखता है।

इस प्रकार रंग-हीन पारदर्शी पदार्थ जैसे काँच, बर्फ आदि को चूर्ण कर देने पर वे सफेद दूधिया रंग के दिखते हैं। यह इसलिए कि श्वेत प्रकाश भीतर प्रवेश करते ही नन्हें वर्णों की सतह से परावर्तित होता है। उसमें श्वेत प्रकाश के वर्णक्रम के सभी रंग मौजूद रहते हैं तथा किसी भी वर्ण का प्रकाश शोषित नहीं हो पाता। अतः चूर्ण के रूप में ये चीजें सफेद दूधिया रंग की दिखती हैं।

मनुष्य में रंग-दोष

सभी मनुष्य संसार की चीजों को उनके वास्तविक रंग-रूप में नहीं देख पाते। जिन मनुष्यों की आँखों में रंग-दोष होता है वे नीले तथा लाल रंग की पहचान करने में असमर्थ रहते हैं। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जॉन डाल्टन की आँखों में रंग-दोष था। कई बार वे सार्वजनिक उत्सवों में चटकीले लाल रंग के सूट पहनकर चले गये थे—इस धोखे में कि उनके सूट का रंग गहरा नीला है।

रेफ्रिजरेटर का जेबी संस्करण

कुल १५ ग्राम वजन का एक जेबी रेफ्रिजरेटर लेनिनग्राड की एक कम्पनी ने तैयार किया है। यह रेफ्रिजरेटर किसी भी वस्तु का ताप ५०-६० डिग्री से गिरा देता है और लम्बे समय तक वही शीत निभाये रखता है। वायु के फैलने पर उत्पन्न होने वाले शीत के सिद्धान्त पर बने हुए इस रेफ्रिजरेटर में बिजली की आवश्यकता नहीं है।

विज्ञान-
सितम्बर १९६३

पशु-पक्षी वस्तुओं को उसी रंग-रूप में नहीं देखते जैसे मनुष्य। पशु-पक्षियों तथा कीड़े-पतंगों की रंग पहचानने की क्षमता में भी विभिन्नताएँ हैं। इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—एक, वे जो चीजों के रंग की पहचान नहीं कर पाते। उदाहरणार्थ कुत्ते, बिल्ली आदि के लिए बाह्य जगत रंग-हीन होता है। इन्हें संसार में सभी चीजें सफेद, भूरे और काले रंग की दिखती हैं। दूसरे, वे जिन्हें सभी रंग प्रायः एकसे ही दिखते हैं। मधुमक्खियों को सभी रंग प्रायः एकसे दिखते हैं। तीसरे, वे जो कुछ रंगों को पहचानने में समर्थ होते हैं और कुछ को नहीं। तितली लाल और सफेद रंग को विशेष रूप से पहचानने में समर्थ होती है। बन्दर प्रायः गहरे लाल, हरे तथा आसमानी रंग को पहचानते हैं।

पक्षियों में रंग पहचानने की क्षमता प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। यही कारण है कि प्रकृति ने विभिन्न पक्षियों को रंग-बिरंगे चटकीले रंग प्रदान किये हैं। साधारणतया पक्षी लाल, गुलाबी, पीले और हरे रंग को बखूबी देख सकते हैं। नीला रंग इनको अच्छी तरह प्रभावित नहीं कर पाता तथा बैंगनी रंग को ये बिलकुल ही नहीं देख सकते। मछलियों के बारे में अभी किसी खास नतीजे पर नहीं पहुँचा जा सका है कि मछलियाँ रंग की पहचान करने में समर्थ होती हैं या नहीं। मेंढक रंगों की पहचान करने में पूर्ण असमर्थ है। ●



जगदीशप्रसाद अग्रवाल

[पूर्वाद्ध में अनेक पक्षियों—काग-परिवार का विदेशी राजकुमार, स्वर्ग पक्षी, कबूतर, बगुला, मारकोनी पेंगुइन, मुर्गा, पेलिकन, सारस, पनकौआ और सुरखाब आदि की प्रणय-क्रियाओं का वर्णन है। प्रस्तुत अंक में तितली, भोंगुर, जुगनू, केकड़ा, बिच्छू, मकड़ी, मछली, मेंढक, मोर, पपीहा, छिपकली, बिल्ली, बन्दर और खरगोश आदि की प्रणय-प्रेरणाओं का विवरण दिया गया है।]

[शेषांश]

कीटों के प्रणय-कीशल

अनेक कीटों में बाह्य रूप-रंग और निखार में नर और मादा में बड़ा अन्तर (sexual diamorphism) होता है। प्रकृति ने तितलियों और शलभों (परवानों) में रंगों की बहार इतने खुले दिल से सम्भवतः परस्पर आकर्षण के लिए ही लुटायी है। भंभीरी (dragon fly) और डेमजल मक्खी (damsel fly) में नाना प्रकार की वेशभूषा के परिधान का दान प्रकृति ने इसीलिए दिया है।

केटिटिड (katyctid), साइकडा (cicada), भोंगुर और टिड्डे वह सुरीला सितार बजाते हैं कि हरित बांस की बांधुरी भी मुकाबला नहीं कर पाती। मादा इस प्रकार का संगीत उत्पन्न नहीं कर सकती। वातावरण में यह मीठी लहर मादा को रिझाने के लिए छोड़ी जाती है।

तितली फूल पर जाकर बैठती है पर उस फूल को ज्यादा पसन्द करती है जिसमें सुवास हो, माधुर्य हो और जिनकी पतियों पर रंग-बिरंगी छटा छाई हो। उसके आकर्षण के लिए ही तो फूल अपना शृंगार करता है! तेल और इत्र-फुलेल का भी अपना खिचाव होता है।

जुगनू मादा अपनी कुटिया में प्यार का दीपक जलाये अपने प्रेमी की राह देखती रहती है। वह दीप क्या उसी के पंखों का पिछला छोर मानो वियोग में जल रहा हो। उनके उपासक मन्थर गति से

बड़ा और बिच्छू

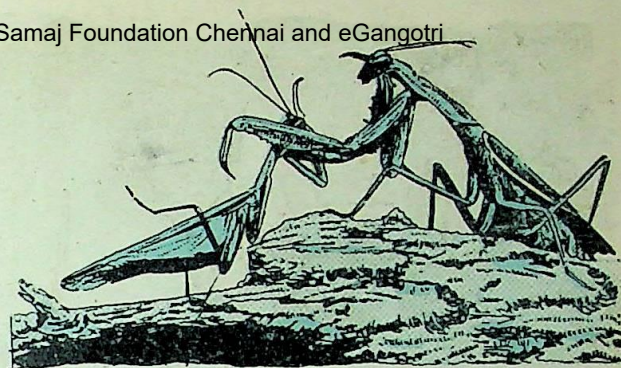
समुद्र निवासी एक कीड़ा (bristle worm) मादा की कुंडली में लिपटकर एक सिहरन पैदा करता है जिसके कारण वह अण्डे देने के लिए बाध्य हो जाती है। एक विशेष जाति का केकड़ा (fiddler crab) अपने अगले भारी हाथ (पंजे) को छोटी-सी मादा के हाथ के लिए आगे बढ़ाता है और उसके वरण का धैर्य से प्रतीक्षा करता रहता है। बिच्छू अपनी मादा को अगले दो पंजों से जकड़कर उसका आलिगन करता है और फिर वे दोनों प्यार की राहों में टहलते हुए कुछ समय व्यतीत करते हैं। सुना जाता है कि मादा इतनी नृशंस होती है कि समागम के पुराने बाद अपने पति की हत्या कर देती है। रेशमी कपड़ों और लाइब्रेरी की अलमारियों में मिलने वाला छोटे आकार का कंकहीन बिच्छू (book scorpion) अपने युवाओं को नन्हें-सी कटोरी, जो किसी पंखों में प्रणय-संदेश ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता होती है। मादा को गंध और नर के स्पर्श पंखों की तरंगों दोनों को दूर-दूर से निकट खींच लाती हैं

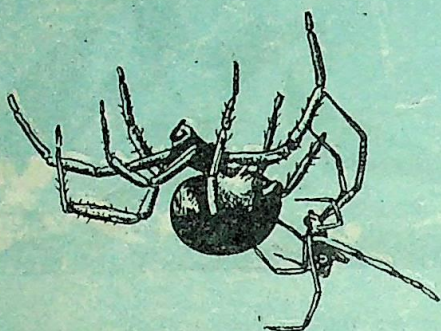
हिम्मत बटोर कर मादा के निकट पहुँचता है और मादा उसे अपने मजबूत पंजों से जकड़े रहती है

घास-फूस या तिनके पर आराम से जमायी हुई होती है, में रखकर मादा की खोज में निकलता है। किसी भी सुन्दरी के मिलने पर उसे कटोरी तक आने के लिए मनाता है। अपने कार्य में सफल होने से पूर्व उसे कम से कम आधी दर्जन मादाओं की खुशामद करनी होती है।

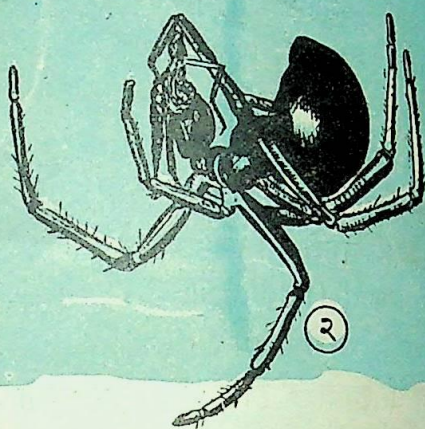
मकड़ी, प्रेङ्ग मेन्टिस और स्पंज

मकड़ी की कोई ही ऐसी जाति हो जिसमें दोनों कुछ समय के लिए मेल-मिलाप से रहते हों। नर को इस प्यार की दुनिया में बड़ा सम्भलकर कदम रखना पड़ता है। वह अपनी अगली दोनों टाँगों से अपनी प्रियतमा को आने का इशारा करता है। कितना कौतूहलपूर्ण है वह दृश्य जबकि एक ओर तो वह अपने ऊटपटांग नाचों से अपनी प्रेमिका को प्रेमपाश में बाँधने की कोशिश करता है और दूसरी ओर अपनी जान-बचाकर भाग निकलने के लिए प्रयत्नशील भी होता है। इस आँखमिचौनी के चक्कर में जरा भी पैर फिसला कि कर्कश मादा उसे अपने जहरीले पंजों से चीरकर रख देती है। कितने ही मकड़े जब इस प्रकार बलि का





१



२

१. ब्लैक विडों (Black widon) जाति की मकड़ी का नन्हा नर अपनी विशालकाय मादा के निकट प्रणय-आवेदन कर रहा है। २. रति क्रीडा के शीघ्र ही पश्चात् मादा नर को निगल रही है

बकरा वन चुकते हैं तो दम्भी दैत्य मकड़ी उनमें से एक का चुनाव कर लेती है और वह गरीब भी अपनी सुहागरात पूरी होने से पूर्व ही इस दुनिया से दूर चला जाता है।

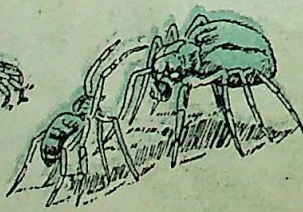
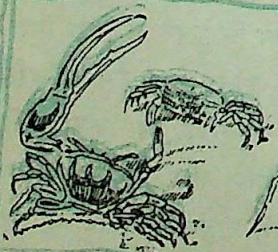
प्रेइंग मेन्टिस (praying mantis) में मादा की भूख बड़ी प्रबल होती है। भोजन न मिलने की अवस्था में अपने साथियों और बच्चों को खा जाने के लिए यह कीट कुख्यात है। मादा तो समा-गम करते-करते अपनी कामाग्नि की पूर्ण-आहुति अपने पति महोदय को चेंट करके देती है।

केकड़े और लोबस्टर (lobster) में नर का शरीर रंग-बिरंगा और मोहक होता है।

केकड़े हों, कीड़े-मकोड़े हों या बिच्छू, प्रणय-ताप से सभी आक्रान्त हो उठते हैं

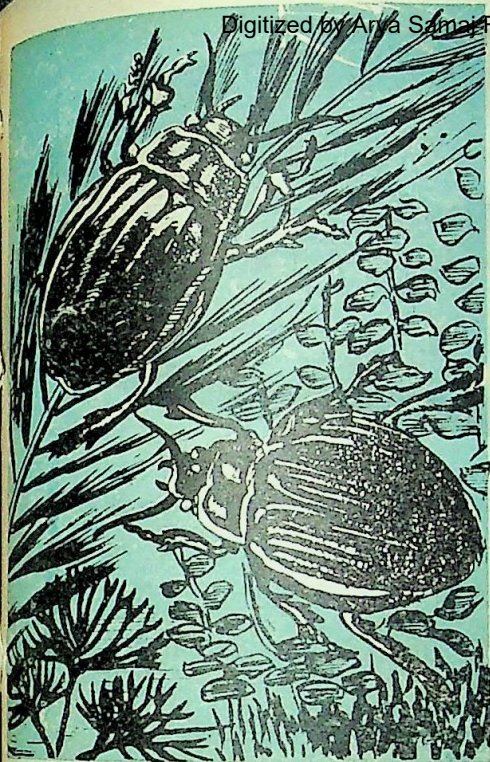
कई मछलियों में नर अपने चोइयों की चमक-दमक और भड़कीलेपन से मादा का मन मोह लेता है। इस स्वयंवर में प्रतियोगियों को छल-छद्म, चाटुकारी और समय पड़ने पर वीरता का सहारा लेना पड़ता है। मादा वरमाला सर्वसुन्दर नर को ही पहनाती है। वरण के पश्चात् नर के शरीर की सुन्दरता न जाने कहाँ चली जाती है और दूल्हे का शरीर भी साधारण मछलियों जैसा हो जाता है।

फूल दान स्पंज (vase sponge) में श्रिम्प (shrimp—एक सन्धि पाद जन्तु) का जोड़ा एक स्पंज में आकर रहने लग जाता है। एक बार साथ हो जाते हैं



है और मादा की सहायता से प्रसव करता है। यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं होता। कई मछलियों में नर मादा द्वारा प्रेम निवेदन की स्वीकृति पर इतना आत्म-विभोर हो जाता है कि प्रसव का आंशिक भार सहर्ष अपने ऊपर ले लेता है। हिपोकेम्पस (hippocampus), पाइप मछली (pipe fish) और मेंढक की विरादरी का एक जन्तु पाइपा अमरीकाना (*pipa americana*) मादा के अण्डों को अपने शरीर पर धारण करके उनका पोषण करता है। एक मछली फोटोकोरिनस (*photocorynus*) में नर इतना हीन और स्त्री-निर्भर हो जाता है कि वह मादा का दास बना रहता है।

ड्रेगनेट (Dragonets) मत्स्य युगल रतिक्रीडा-रत



ये गुबरीले कीट भी ऋतुकाल में प्रणयावेशित हो जाते हैं

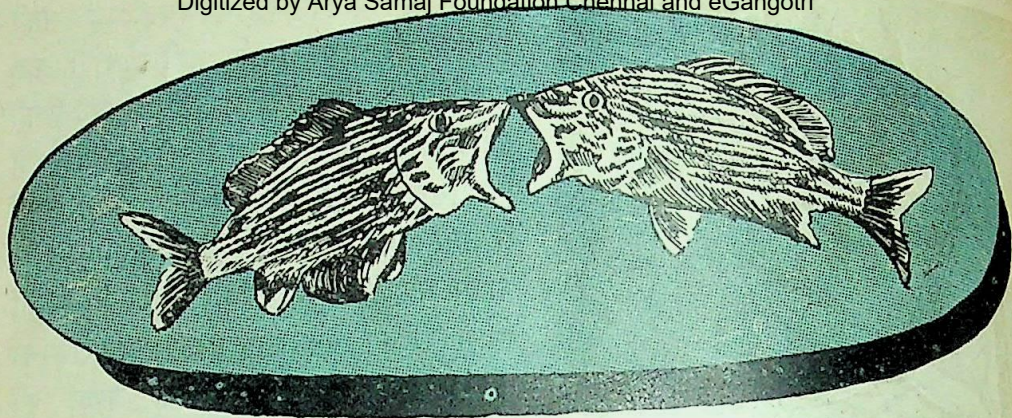
परचात् वे कभी भी एक-दूसरे से नहीं बिछुड़ते। जापान में 'चिरजीवै जोड़ी जुरे' के प्रतीक इस स्पंज को विवाह में दहेज के रूप में दिया जाता है। बोनिला (bonella) में नर बेचारा अपना जीवन ही मादा के आश्रय पर बिताता है।

रति-रत मछलियाँ

एक मछली (goby-waxes) सम्भोग के समय विद्रोही हो उठती है। साल्मन (salmon) में नर में प्रजनन काल में जबड़े से एक कंटे की तरह का अंग उभर आता है जिसका प्रयोग मादा को तनिक भी अवहेलना करने पर डराने के लिए होता है। सभी मछलियों में कामोद्दीपन स्वाभाविक संवेदना से होता



सितम्बर १९६३



नीली पट्टीदार ग्रन्थ मछलियों के ये प्रतिनिधि नर और मादा प्रणय-मुद्रा में मछलियों में नर-वर्ग ही अधिक क्रियाशील रहता है। यह भी समागम-काल के लिए स्वयं को विशेष रूप से तैयार कर लेता है। आकर्षक और चमकीले रंग उभर आने के साथ ही इसके स्वभाव में भी तेजी आ जाती है। उन दिनों अपनी मादा के निकट आने वाले प्रत्येक पराये नर को यह अपना कट्टर शत्रु समझता है। काँटेदार पीठवाली स्टिकिलबैक (stickle-back) तथा सियाम की लड़ाकू मछली इसके उत्तम उदाहरण हैं। स्टिकिल बैक राबिन के नर को मादा प्राप्त करने के लिए शौर्य का प्रदर्शन करना पड़ता है। पुराने क्षत्रिय राजाओं की भाँति यहाँ भी भगड़े होते हैं। नर अपने से कई गुने बलवान प्रतिद्वन्द्वी से टक्कर लेता है। लड़ाकू नर-मत्स्य तो प्रणयावेग की आन्तरिक आग से दीप्त हो उठता है और एक तूफानी दौर की भाँति संवनन-क्रिया सम्पन्न करता है।

कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो मकड़ी की भाँति समागम के पश्चात् नर के जी का जंजाल बन जाती हैं। तब अण्डों की सुरक्षा के लिए नर दूर तक मादा को खदेड़ आता है और यों एक बार की अपनी प्रिया किन्तु बाद की जानलेवा शत्रु से पीछा छुड़ाता है। शेर एक से अधिक पत्नी

नहीं रखता। पक्षियों में बहुपत्नित्व या बहुपत्नीत्व है अथवा नहीं इस विषय में पक्षी - जीवन - वेत्ताओं के विभिन्न मत हैं।

दादुर-ध्वनि, एक नेह-निमग्न

मेंढकों के सम्बन्धी न्यूट (newt) में मादा से अंतरंग निकटता स्थापित करने के लिए काले-काले धब्बों की मखमली पोशाक उमड़ आती है। सिर से पैर तक की झालर, चमकीले वस्त्र और नशीली भाव-भंगिमाएँ मादा को सहज ही लुभा लेती हैं और वह गुब्बारेनुमा खोल से निकले हुए पुरुष के नर बीजों (sperms) को अपने दोनों हाथों में लेकर पैरों की ओर ले जाती है और अन्त में वह स्त्रीबीजवाहिनी (oviduct) तक पहुँच जाता है।

दादुर (मेंढक), मोर और पपीहा (cuckoo) की तरह समय आने पर टर्र टर्र की आवाज करके मादा के लिए आवाहन - दुंदुभी बजाता है। मेंढक का अस्थायी विवाह उसके लिए एक लाटरी है। किसी भी और चीज का विचार करके जो भी मादा सर्वप्रथम जयमात लेकर आगे आती है उसी को स्वीकार कर लिया जाता है। प्रेमक्रीड़ा में सचमुच ही मीठी आवाज का बड़ा स्थान है।

सर्प-प्राणी

ऋतुकाल आया और मादा के शरीर की नवीन गंध से प्रेरित सर्प बावला बन जाता है। वह गंध उसे मोहांध बना देती है। उसी के सहारे वह मादा के निकट पहुँच जाता है। जल-सर्प तथा गार्टर-सर्प मादा के बदन पर अपनी ठोड़ी रगड़कर माँ को उसकी खुशामद करते हैं। द्विप जाति का सर्प अपनी सरपट दौड़ और उछल-कूद दिखाकर मादा को रिझा लेता है और महमति मिल जाने पर कुण्डली बनाकर दोनों आलिंगन-बद्ध हो जाते हैं और उसी मुद्रा में अपने-अपने सिर उठाकर इस प्रकार मदा लेते हैं कि मादा का सिर नर के सिर से कुछ उठा ही रहता है। वह मुद्रा एक शीणा के समान दिखती है और १-११ घण्टे तक वह प्रणय नृत्य चलता है। चरम पर पहुँच कर वह सम्मोहन रति-क्रिया में परिणत हो जाता है।

भारत में सर्वत्र पायी जाने वाली छिपकली (*calotis versicolor*) में नर

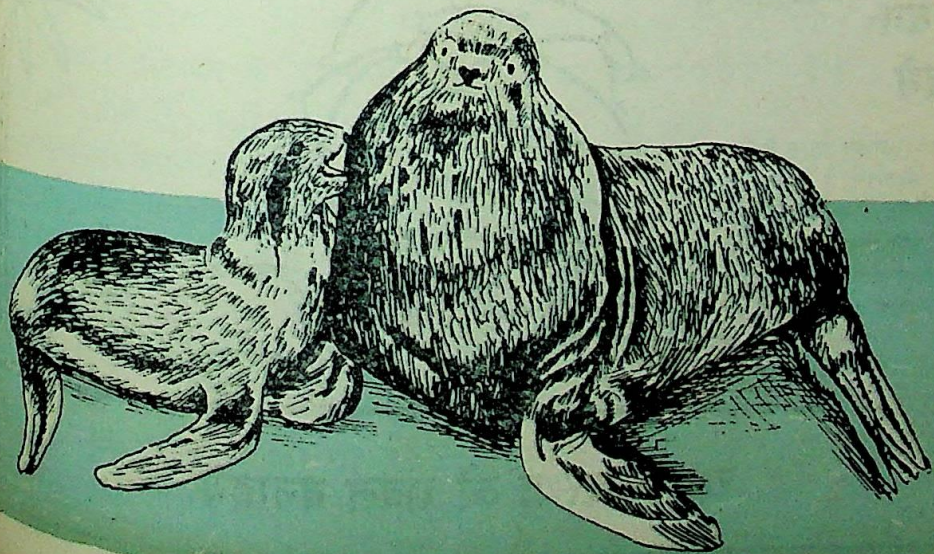
की संख्या मादा की अपेक्षा अधिक होती है। नर कई मादाओं के बीच अश्लील चेष्टाएँ करके मादा को प्रसन्न करने की कोशिश करता है। एक दूसरी अफ्रीकन छिपकली (*agana colonorum*) में तो पासा ही पलट जाता है। पाँच-सात मादाएँ एक नर के नेतृत्व में रहती हैं। नर का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करने के लिए वे मटक-मटककर दौड़ती, नाचती और राग-रंग से रति की अर्चना करती हैं। कई छिपकलियों में आपस में खूब भगड़े होते हैं।

स्तनपायी प्राणियों का प्रणय-वैविध्य

सम्भवतः नर हरिण में बड़े हुए सींग (antlers), बोर के दाँत (tusk), गैंडे के सिर के पास का नुकीला काँटा, मधु-मक्खी का डंक इनके प्यार के भगड़ों का निपटारा करने के लिए और आये दिन संयोगिता स्वयंवर रचाने के लिए प्रकृति ने प्रदान किये हैं।

बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ, हाथी की चिंगाड़, भैंस का डकराना और घोड़े का

नर सोल निर्धारित स्थल पर मादा से कुछ दिन पूर्व ही पहुँचकर प्रतीक्षा-रत रहता है। इनकी रतिक्रिया जून के आरम्भ में होती है



कुत्ता, बिल्ली, खरगोश और दूसरे चौपाये पूँछ के नीचे इत्र की शीशी को छुपाये सम्भोग के दिनों में मादा को मोहित करने का प्रयत्न करते हैं। नर हाथी में ये गन्ध ग्रन्थियाँ (scent glands) नयनों के निकट तथा नर ऊँट में सिर के पीछे होती हैं। मगर-मच्छ में गले से टपकती हुई ये ग्रन्थियाँ रास्ते भर अपनी सुगन्ध छोड़ती आती हैं जिसे सूँघती हुई मादा नर को खोज

निकालती है। बन्दरों की प्रणयलीला मनुष्य के निकटतम है। इनका मुख्य आधार किलकारी है। ब्राजील में पाया जाने वाला बन्दर आकार में तो विशेष बड़ा नहीं, किन्तु आकार के अनुपात में उसकी किलकारी प्राणी-जगत में अद्वितीय है। ऋतुकाल में इसकी जीभ की अस्थियाँ पतली थैली के रूप में बदल जाती हैं। हवा भरने पर वह थैली मनुष्य की मुट्ठी के आकार की हो जाती है। उसी की सहायता से जब यह किलकारी मारता है तब निकटवर्ती विस्तार गूँज उठे हैं। अन्य मनोरंजक प्रयोगस्वरूप एक पशु-वाटिका में पाली हुई मादा चिम्पान्जी को जब एक के बाद अनेक नर-चिम्पान्जी पसन्द न आये तब आखिर २०१वें नर पर उसकी नजर ठहर पायी थी। तब कहीं जाकर उस पशुवाटिका को प्रथम चिम्पान्जी-शिशु प्राप्त हुआ था।

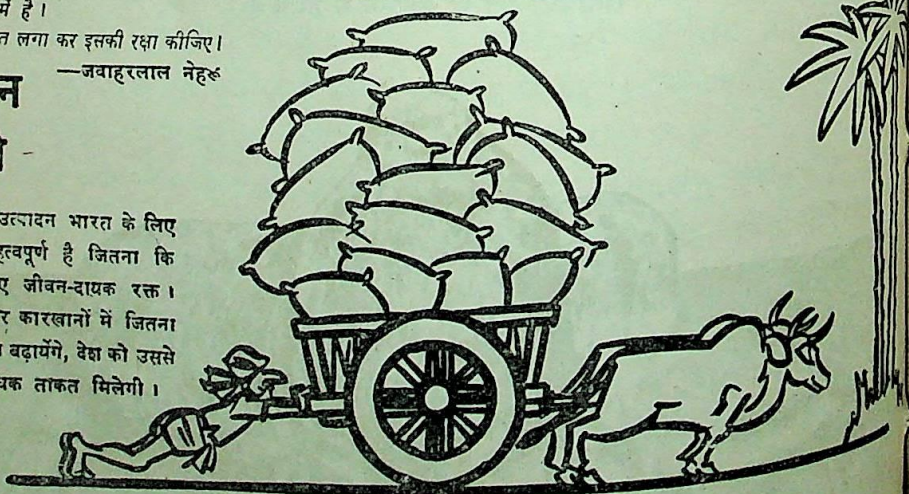
आजादी खतरे में है।

अपनी पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।

—जवाहरलाल नेहरू

उत्पादन बढ़ाइये

आज अधिक उत्पादन भारत के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शरीर के लिए जीवन-दायक रक्त। आप खेतों और कारखानों में जितना अधिक उत्पादन बढ़ायेंगे, देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।



रक्षा व्यवस्था को सबल बनाइये

हमारी

बिजली

सुशीलकुमार

एक समय था जब मानव आग जलाकर उससे रोशनी का काम लिया करता था। परन्तु अब तो हमने स्विच आन किया और कमरा रोशनी से भर गया। हीटर जलाकर केतली रख दी और ५ मिनट में चाय तैयार। घर बैठे ही रेडियो द्वारा संसार भर के समाचार मालूम हो जाते हैं और टेलीविजन द्वारा सिनेमा का आनन्द लूटते हैं। यह सब विद्युत का चमत्कार है। विद्युत हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। कभी आपने यह भी सोचा है कि यह विद्युत, जिसका हमारे प्रतिदिन के जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान है, कहाँ से आती है और कैसे उत्पन्न की जाती है?

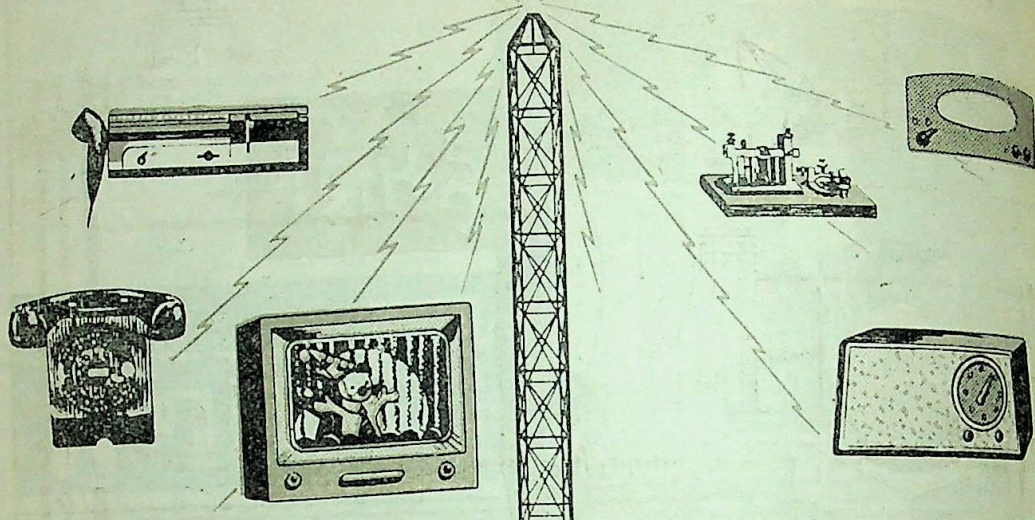
आप यह जानते हैं कि सब प्रकार की शक्ति हमें सूर्य से प्राप्त होती है। यह बात विद्युत के विषय में भी सही मानी जा सकती है। सूर्य समुद्र तथा पृथ्वी से पानी वाष्प के रूप में लेता है जो बादलों के रूप में इकट्ठा हो जाता है और फिर वर्षा तथा बर्फ के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। इसी बर्फ के पिघलने पर तथा वर्षा के पानी से नदियाँ

बनती हैं, जो पन बिजलीघर चलाने के काम आती हैं। करोड़ों वर्षों से सूर्य पेड़-पौधों, मछलियों तथा जानवरों के जीवन में सहायता करता आ रहा है। उसकी शक्ति इनमें जमा हो गयी थी और जब वे खत्म हुए तब बड़े-बड़े पर्वतों के बनने के कारण उनमें दब गये। इन्हीं से हमें अब कोयला, तेल तथा गैस प्राप्त होते हैं, जिनसे वाष्प बिजलीघर (steam power house) चलते हैं। यूरेनियम के परमाणु में भी यह शक्ति संचित रहती है। इसको भी विद्युत शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है।

विद्युत कैसे बनती है

चुम्बकीय शक्ति की वजह से जब एक बड़ा चुम्बक घूमता है तो तारों में विद्युत उत्पन्न होती है। बिजलीघरों में एक विशाल चुम्बक को ताँबे के तारों के चारों तरफ घुमाकर विद्युत उत्पन्न की जाती है। यह हम साधारणतः दो तरह से कर सकते हैं—जल द्वारा एवम् वाष्प द्वारा। दोनों अवस्थाओं में इनकी शक्ति से एक पहिया घूमता है जिसे टरबाइन कहते हैं। इस टरबाइन से

सितम्बर १९६३



संदेश तथा चित्र पहुँचाने वाली हमारी बिजली

चुम्बक जुड़ा रहता है और इसके साथ-साथ वह भी घूमता रहता है। चुम्बक तथा ताँबे के तार मिलकर जनरेटर कहलाते हैं। इसमें जो चुम्बक हम प्रयोग करते हैं वह विद्युतीय चुम्बक होता है।

पन बिजलीघर

एक पन बिजलीघर को चलाने के लिए करोड़ों टन पानी की आवश्यकता होती है। यह पानी बाँध के पीछे एक भील में इकट्ठा किया जाता है। भील बिजलीघर से काफी ऊँचाई पर बनायी जाती है जिससे कि जब पानी गिरे तब उसमें टरबाइन को चलाने के लिए काफी शक्ति आ जाए।

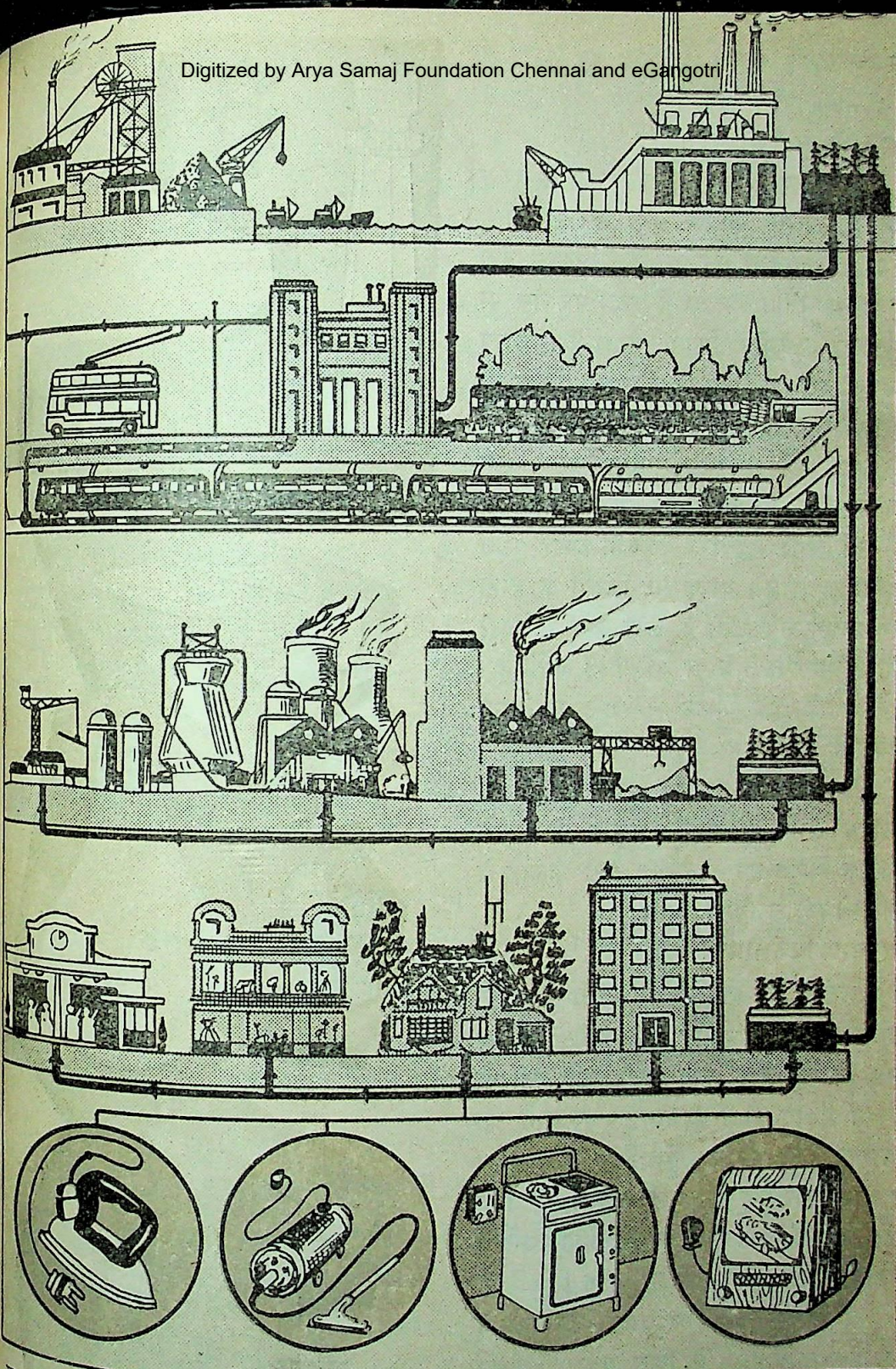
बिजलीघर या तो बाँध की सतह पर होता है या उससे नीचे। कुछ बिजलीघरों में तो पानी की गति, जब वह टरबाइन से टकराता है, २०० मील प्रति घंटा से भी अधिक होती है। पर्वतों में तो एक ही नदी के ऊपर कई भील तथा पन बिजलीघर क्रम से बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार एक ही नदी का पानी बार-बार कई पन बिजलीघर चलाने के काम आ सकता है। यही पानी बाद में नदियों में बहकर खेतों तथा शहरों में काम आता है।

वाष्प के द्वारा विद्युत

जब हम एक केतली में उसका ढक्कन बन्द रखते हुए पानी उबालते हैं तो वाष्प उसके ढक्कन को ऊपर उठाने की कोशिश करती है। यह इसलिए होता है कि जब पानी वाष्प में परिवर्तित होता है तो इसको अधिक स्थान की आवश्यकता होती है और वह फैलने की कोशिश करता है। अब अगर हम केतली में एक पतली नली लगा दें तो हम वाष्प उसके द्वारा निकलने लगेगी। अगर इसके आगे एक हलका पहिया रख दें तो वह वाष्प की शक्ति से घूमने लगेगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर वाष्प बिजलीघर कार्य करते हैं।

वाष्प बिजलीघरों की कार्य प्रणाली

वाष्प बिजलीघरों में एक विशाल बाँयलर में सैकड़ों नलियों के अन्दर पानी उबलता है। यह बाँयलर किसी-किसी बिजलीघर में तो १२ मंजिल तक ऊँचे होते हैं। पानी वाष्प बन जाता है तब इसको बहुत अधिक दबाव के साथ टरबाइन पर छोड़ा जाता है जिससे टरबाइन घूमने लगता है और उसके साथ संलग्न चुम्बक भी घूमने लगता है। इस प्रकार तारों के अन्दर घूमने लगता है। इस प्रकार विज्ञान-तंत्र



लान के कोयले से बिजली के स्विच तक—(ऊपर से नीचे) कोयले में निहित ताप की ऊर्जा को चालकशक्ति में परिवर्तित करके उससे टर्बो-आल्टरनेटर चलाकर विद्युत पैदा की जाती है। उत्पन्न हुई बिजली को केबुल द्वारा दूर-दूर तक भेजने योग्य बनाने के लिए उसे ट्रांसफार्मर से गुजारकर उसका वोल्टेज बढ़ाया जाता है। वे ही ट्रांसफार्मर कारखानों के लिए उसका वोल्टेज आवश्यकतानुसार घटा भी देते हैं। घरेलू यन्त्रों के लिए और भी कम वोल्टेज की आवश्यकता रहती है

सितम्बर १९६३

से जो विद्युत उत्पन्न होती है वह तारों में १८६००० मील प्रति सेकण्ड की गति से बहने लगती है।

साधारणतः वाष्प बिजलीघरों में वाष्प बनाने के लिए कोयले को जलाया जाता है। जहाँ कोयला सरलता से उपलब्ध नहीं होता या महँगा पड़ता है वहाँ पर गैस या तेल का उपयोग किया जाता है। वाष्प बिजलीघरों में एक बार पानी लेकर ही उसे बार-बार उपयोग में लाया जाता है। टरबाइन को चलाने के बाद वाष्प एक कन्डेन्सर में जाती है। कन्डेन्सर में बहुत-सी नलियाँ लगी रहती हैं जिनमें ठण्डा पानी बहता रहता है। वाष्प इन नलियों के चारों तरफ चक्कर काटती है और अन्त में ठण्डी होकर फिर पानी में परिवर्तित हो जाती है। यही पानी दुबारा फिर बॉयलर में वाष्प बनने के लिए भेजा जाता है।

इस प्रकार वाष्प बिजलीघरों से हमें विद्युत प्राप्त होती है। संसार में सबसे अधिक विद्युत का उत्पादन इसी प्रकार के बिजलीघरों से किया जाता है।

परमाणु बिजलीघर

संसार की कोयले, गैस तथा तेल की मात्रा सीमित है और यह बड़ी तेजी से खर्च हो रही है। यदि यही गति रही तो इनका भंडार शीघ्र ही समाप्त हो जाने की आशंका है। इसलिए वैज्ञानिक लम्बे समय से प्रयत्न कर रहे हैं कि इन चीजों की जगह किसी और ईंधन की खोज की जाए जिसका भंडार काफी समय तक चल सके।

अथक परिश्रम के बाद वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के ईंधन के लिए एक तत्त्व को खोज निकाला है। इसका नाम यूरेनियम है। जिन बिजलीघरों में इस तत्त्व का उपयोग होता है उन्हें परमाणु बिजलीघर कहते हैं। इनमें यूरेनियम के परमाणुओं के



विजलीघर से ताप उत्पन्न किया जाता है। फिर वह अपने मार्ग में आगे को बढ़ सके। वोल्टेज का काम वही होता है जो आपके हाथ का होता है, जब आप पम्प के हैंडिल को दबाते हैं। ट्रांसफार्मर वोल्टेज को इतना बढ़ा देता है कि विद्युत सैकड़ों मील दूर जा सके। जब विद्युत शहरों और गाँवों में पहुँच जाती है तो एक दूसरे ट्रांसफार्मर द्वारा फिर से इसका वोल्टेज कम कर दिया जाता है। अगर वोल्टेज बहुत अधिक होगा तो आग लग जाने का खतरा है।

उत्पादित विद्युत को विजलीघर के बाहर ट्रांसफार्मर में भेजा जाता है, जहाँ से वह तारों द्वारा शहर और गाँवों में भेजी जाती है। ट्रांसफार्मर का काम वोल्टेज को बढ़ाना है। वोल्टेज विद्युत को एक प्रकार

के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार का एक परमाणु विजलीघर भारत में भी तारापुर (गुजरात) नामक स्थान पर स्थापित किया जा रहा है। भारत में इस प्रकार के कई और विजलीघर बनाने की योजना है।

इस प्रकार विद्युत उत्पन्न की जाती है और आपके घर तक पहुँचायी जाती है। अब चाहे इससे आप रोशनी कीजिए, रेडियो चलाइए, टेलीविजन देखिये या पंखा चलाइए। यह हर समय आपकी सेवा के लिए तत्पर है।

स्वतंत्रता की सोलहवीं वर्षगाँठ पर
हम भारतवासी पुनः संकल्प करते हैं कि
प्राणपण से देश की स्वतंत्रता की रक्षा करेंगे।

हिमालय पर
उत्तरी सीमा की रक्षा हमारे वीर जवान कर रहे हैं

परन्तु
देश के इन रणबांकुरों को
अधिकाधिक शक्ति प्रदान करना हमारा कर्तव्य है।

इसके लिए—

खेती और कारखानों में

उत्पादन बढ़ाइए,

अपना खर्च घटाइए

और

बचत का धन

राष्ट्रीय बचत योजनाओं में लगाइए।

घोर परिश्रम और आपकी बचत से ही राष्ट्र सुरक्षित रहेगा।

सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

वित्त्र संसार

नाखूनों का बीमा

जापान में कालीन और रंग-विरंगे पर्दे बनाने वालों को अपनी अँगुलियों के नाखूनों की बहुत हिफाजत रखनी पड़ती है। खासकर बीच की अँगुली के नाखून को तो बड़े ही यत्नपूर्वक पाला-पोसा जाता है। इस नाखून के सिरे पर एक विशिष्ट माप का खाँचा बनाना पड़ता है जो धागों को बँटने के काम में आता है। इस नाखून को क्षति पहुँचने का अर्थ है आजीविका का तब तक रुके रहना जब तक नाखून पुनः बढ़ न आए। इसीलिए कितने ही सम्पन्न कारीगर इसका बीमा कराये रहते हैं।

दृष्टिहीन, किन्तु ज्ञान का अवतार

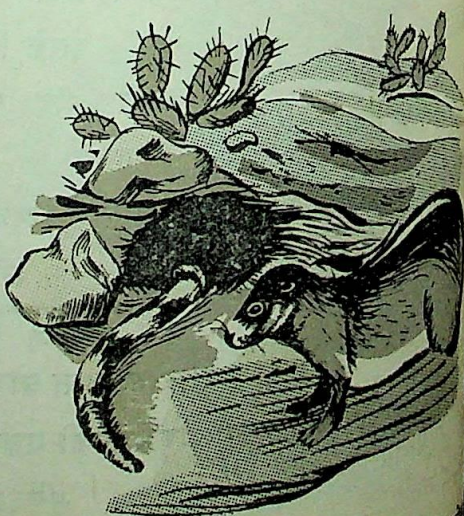
सात वर्ष की अवस्था में दृष्टि खोकर भी जीवन के १०१ वर्ष पूरे करने वाला हनावा होकाइशी (जापान) १७२२ से १८२३ तक ज्ञान का ऐसा चमत्कारिक व्यक्ति रहा जो उन दिनों के इतिहास में अतुलनीय माना जाता है। दृष्टि खोने के दिन से ही उसने गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया और अपने ज्ञान से संसार को आश्चर्य में डाल दिया। चार लाख ग्रन्थों की, जिनमें से अनेक तो केवल एक ही बार उसे सुनाये गये थे, सामग्री उसके स्मरण-कोष में सुरक्षित थी। चाहे जब कोई भी उद्धरण प्रस्तुत कर देना उसके लिए सहज था। अपने असीम ज्ञान-भण्डार के आधार पर उसने २८२० खण्डों का महान ग्रन्थ तैयार किया है।

सप्ताश्रयों में से एक, यह पिरामिड भी

संसार के प्राचीन सप्ताश्रयों में सम्मिलित, मिस्र का केओप्स (Cheops) नामक पिरामिड विशालतम है। इसके निर्माण में २० वर्ष तक एक लाख व्यक्तियों ने प्रतिदिन काम किया था। २११-२१२ टन के तथा उससे भारी भी, लगभग २५ लाख शिलाखण्ड इसमें ६ मील की दूरी से लाकर लगाये गये हैं। इन पत्थरों के ढोने का वह अलग मार्ग आज भी देखा जा सकता है। लगभग १३ एकड़ के भूमि विस्तार में फैला हुआ संसार का सबसे बड़ा पिरामिड ऊँचाई में लन्दन के सेंट पाल चर्च से भी १०० फुट अधिक ऊँचा है।

प्यारा दुश्मन

अमरीका में पाया जाने वाला यह रेटलस्नेक और गिलहरी जैसा यह बिलकारी प्राणी आपस में कट्टर शत्रु नहीं हैं। परिस्थितियों के प्रभाव ने इन्हें एक आश्चर्यजनक अपवाद सिद्ध किया है। तो सर्प ही कभी इसे डसने की सोचता है और न यही सर्प पर आक्रमण करता है। यों दोनों एक ही बिल में शान्ति और सहयोगपूर्वक रह लेते हैं।



श्रीराज के कुत्ते

शीवावा (Chihuahua) कुत्तों की उत्त जाति का नाम है जो अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है। आकार में सबसे छोटे होना इनकी विशेषता है। इनका इतिहास इस अर्थ में बड़ा सुनहरा रहा है कि प्राचीन मेक्सिको-निवासी इन्हें देवदूत मानते थे और ये कुत्ते भोजन केवल सोने के ही पात्रों में पाते थे। उन दिनों उच्च घराने के व्यक्ति के शव को बलि चढ़ाये हुए एक शीवावा कुत्ते के साथ इस मान्यता से दफनाया जाता था कि मृतात्मा को शान्ति मिलेगी।

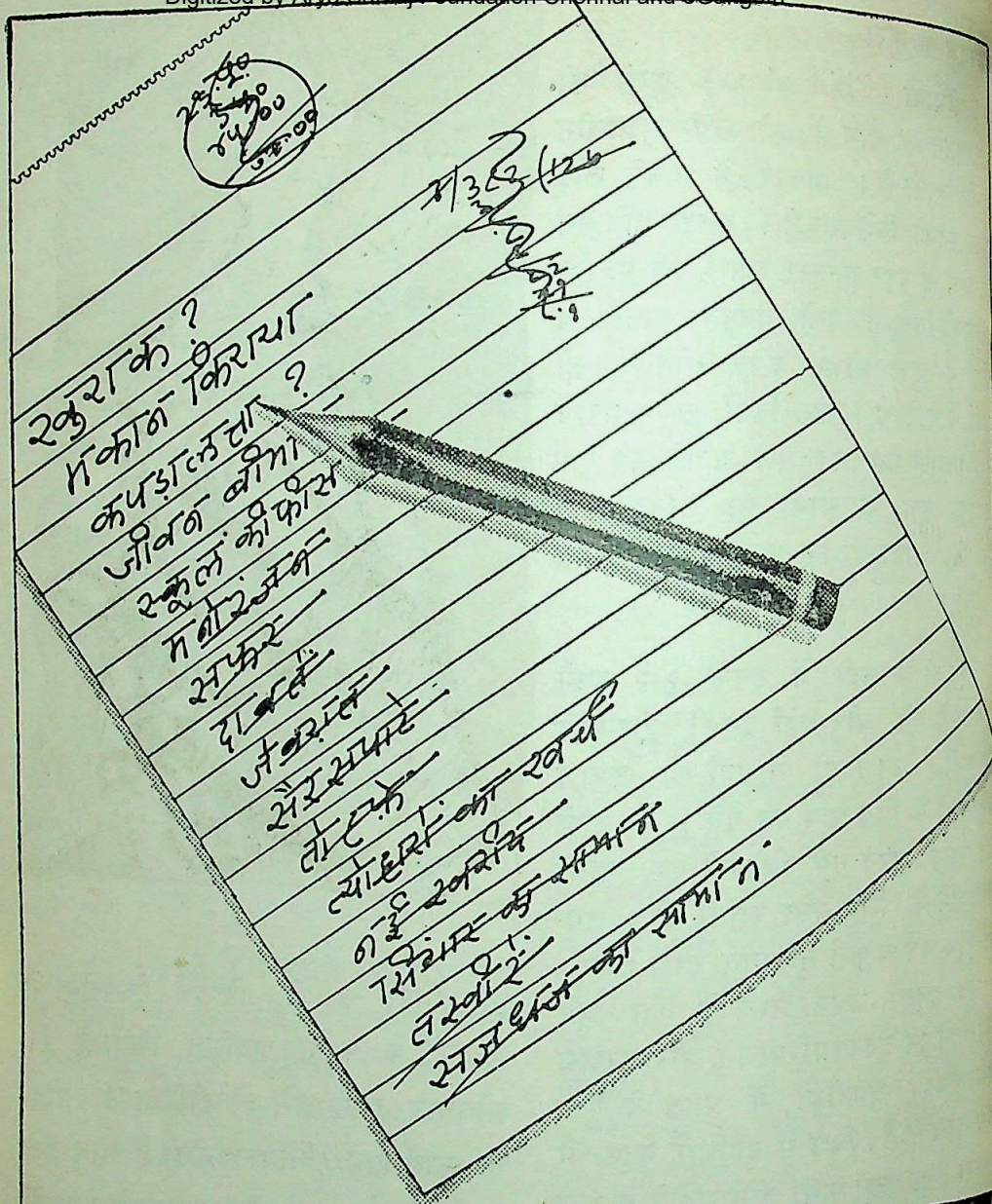


१६वीं शताब्दी में इनके १-२ नमूने लाये गये और वहाँ इनकी वंश-वृद्धि हो गयी। उन दिनों ये वहाँ की सम्पन्न महिलाओं के प्रिय पात्र बन गये। वे इन्हें मोते समय अपने नर्म बिस्तरों पर, पाँवों को गर्म करने के लिए सुला रखती थीं। लगभग १५० वर्ष ये कुत्ते लुप्तप्राय रहे। १८५० में पुनः इनकी जंगली नस्ल के कुछ नमूने हाथ आने पर इनका परिपालन और संरक्षण किया गया। अमरीका में प्राप्त ये कुत्ते उसी नस्ल के हैं। चित्र में प्रदर्शित, मुट्ठी में समाया हुआ नन्हा कुत्ता तीन महीने से कम आयु का नहीं और वजन में भी केवल १४ औंस है !

सृष्टि के संतुलन में बैक्टीरिया

कोलतार (asphalt) ही जिनका भोजन है, ऐसे बैक्टीरिया प्रकृति के विधानानुसार सृष्टि का संतुलन बनाये रखने के साथ-साथ मानव-हितकारी विभिन्न रासायनिक प्रयोगों के लिए उल्लेखनीय सुविधाएँ भी प्रस्तुत करते हैं। साउथ वेस्टर्न लूसियाना

यूनिवर्सिटी के प्रो. रिचार्ड ट्रेक्सलर ने अध्ययन के पश्चात् प्रदर्शित किया है कि कोलतार खाने वाले बैक्टीरिया में स्वाद-कलिकाएँ प्रायः निष्क्रिय होती हैं और इन्हें विशेष ही प्रकार का कोलतार माफिक आता है। अतः हमें यह सुविधा रह सकती है कि दैनिक कार्यों में काम आने योग्य कोलतार को हम मुक्त रूप से उपयोग में ला सकते हैं। साथ ही, इनके खाने योग्य कोलतार के रासायनिक परीक्षण में भी सुविधा रहेगी। प्रकृति ने यदि इन बैक्टीरिया को इस काम पर तैनात न किया होता तो भूमण्डल पर बढ़ता हुआ एस्फाल्ट रहने योग्य स्थान ही शेष न छोड़ता।



क्या आपने कभी अपने घरेलू खर्च पर दूसरी नज़र भी डाली है? जीवन की ज़रूरी चीज़ों में याने किराया, जीवन बीमा, स्कूल फीस वगैरह में कितना खर्च करना मुमकिन नहीं है। लेकिन आप दूसरी चीज़ों पर खर्च कम कर सकते हैं? आप स्वयं अपने खर्च की सूची बनाइए और देखिए कि किन किन फालतू चीज़ों से आप छुटकारा पा सकते हैं?

जीवन बीमा सुरक्षा का बेजोड़ साधन है



ASP/LIC-2-3 A



विज्ञान क्लब



प्यारे बच्चो,

सितम्बर का अंक प्रस्तुत है। लिखना, कैंसा लगा ?

‘तुम्हारी कलम से’ स्तम्भ के लिए भारत के भूतपूर्व एवं वर्तमान वैज्ञानिकों के सचित्र परिचय के रूप में मैंने उत्तम रचनाएँ माँगी थीं। तुम्हारे पत्रों में रचनाओं के सम्बन्ध में आश्वासन मिले हैं, तदनुसार उनकी प्रतीक्षा है।

इस बार तुम्हारे अनेक प्रश्नों तथा पत्रों को देखते हुए इस क्लब के कुछेक नियमों को निम्न भाँति दोहराने की आवश्यकता है :

(१) सदस्यता कूपन भेजने के कम से कम १५ दिन तक प्रमाणपत्र प्राप्त करने की प्रतीक्षा आवश्यक है।

(२) नये सदस्यों में अपना नाम देखने के लिए इस हिसाब से अनुमान लगाओ कि प्रति मास कुल १८० नाम ही छपने का स्थान रहता है।

(३) अपना फोटो भेजने के बाद छपने के लिए कम से कम ५-६ मास तक की प्रतीक्षा आवश्यक है।

(४) ऐसा भी देखने में आया है कि अधिक उत्साही सदस्य एक से अधिक (चार-छह तक) सदस्यता कूपन भर कर भेज देते हैं। इससे तुम्हें लाभ तो कुछ नहीं होता, पर असुविधा ही बढ़ती है। अतः एक ही बार सदस्यता कूपन भेजने की सावधानी रखें।

जुलाई अंक के लेखों में जबलपुर के

जागेश्वरप्रसाद, फिरोजाबाद के शशिकान्त तथा किशोरगंज के मिलनकुमार को ‘देश-देश के नाग’ बहुत अच्छे लगे। इसी प्रकार विलासपुर से सुशीलकुमार तथा ग्वालियर से विष्णुभगवान ने ‘पनडुब्बी’ लेख सराहा है और प्रत्येक अंक में आधुनिक मशीनरी के बारे में कम से कम एक लेख देते रहने का आग्रह भी किया है। अतः इस अंक में ‘अन्तरिक्ष किरणों का निर्माण’ लेख इसी आशय से दिया जा रहा है।

मेरा यह सतत् प्रयास रहता है कि विज्ञान-लोक द्वारा तुम्हारी नित नूतन जिज्ञासाओं की यथासम्भव परितुष्टि करूँ। यह तभी सम्भव है जब तुम अपनी अभिरुचियों से मुझे परिचित कराते रहो।

शुभ-कामनाओं सहित,

तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४२ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

कृष्णसिंह (१२८६) नगला पिथौरा, प्रदीप-कुमार (४१३५) इलाहाबाद, नरेशकुमार (७५५६) अमृतसर, कुमारी मायादेवी (८६०४) कानपुर।

द्वितीय पुरस्कार

गजेन्द्रपाल सिंह (१६०५) मेरठ, सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा, गोपाल माधव (२३७६) मेरठ, मंधाराम हरवानी (५२५७) जोधपुर, ओमप्रकाश गुप्ता (६५१५) मेरठ।

तृतीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र अग्रवाल (११५७) आगरा, अशोक गुप्ता (२७०१) लखनऊ, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, कैलाशनाथ डोंगरे (३८३२) इटारसी, रवीन्द्रकुमार मेहरा (३८४७) अजमेर, रणजीत सिंह (४७२४) नयी दिल्ली, चन्द्रमोहन सिंह (४८४४) अजमेर, प्रभूदयाल (५०६५) जोधपुर, धर्मीचन्द्र जैन (७२३३) पीसांगन, धर्मीचन्द्र गंगवाल (७२५६) अजमेर, अरुणा मेहता (१०१७५) उन्हेल।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४४

सदस्य संख्या



विन्देश्वर
(स. सं. ६०३)



कृष्णसिंह
(स. सं. १२८६)



रामस्वरूप
(स. सं. १३१८)



रजनीकान्त
(स. सं. २५३१)



प्रवीणचन्द्र
(स. सं. ४५५६)

६८१० अशोकप्रताप (१७) गोविन्दपुर, ११ कल्लुमल (१६) व्यावर, १२ शान्तिलाल (१५) आलीराजपुर, १३ जगदीशप्रसाद (१५) जबलपुर, १४ राजेशकुमार (१४) मेरठ, १५ एस. वेणुराव (१३) जमशेदपुर, १६ एम. कुमार (१२) जमशेदपुर, १७ सर्वजीत (१३) रांची, १८ जुगलकिशोर (११) व्यावर, १९ सत्येन्द्रनाथ (१३) खनवां, २० नवलकिशोर (१५) व्यावर, २१ विजयभण्डारी (१४) लुधियाना, २२ शान्ताकुमारी (१४) व्यावर, २३ बलरामदास (२०) हनुमना, २४ रमेशदत्त (१४) कानपुर, २५ किशनलाल (१७) सीथल, २६ द्वारिकाप्रसाद (१९) माधार, २७ कृष्णदेव (१५) पूर्णिया, २८ सुमेधकुमार (१४) धनबाद, २९ प्राणेशचन्द्र (१४) इन्दौर, ३० नरेन्द्रकुमार (१७) हरिद्वार, ३१ माधवलाल (१६) बालोद, ३२ भूपेन्द्रदेव (१२) भोगांव, ३३ सत्यकुमार (२०) जबलपुर, ३४ हरिनारायण (१०) जमशेदपुर, ३५ सोमेश्वर (१६) भगवन्तनगर, ३६ सतीशकुमार (९) पटना, ३७ प्रेमनाथ (१४) वाराणसी, ३८ उमेशचन्द्र (१६) कानपुर, ३९ मनजीतसिंह (१५) सहारनपुर, ४० जयशंकर (१२) लालबाग, ४१ कु. नूतन (१०) छपरा, ४२ जगदीशचन्द्र (१६) मुरादाबाद, ४३ अशोककुमार (१४) कतरासगढ़, ४४ मशहूरआलम (१४) बुलन्दशहर, ४५ रंजन (१५) छपरा, ४६ लेखराज (१७) लाखनगर, ४७ विकास (१४) छपरा, ४८ हेमचन्द्र (१४) हातोद, ४९ रामप्रसाद (१५) भुमरीतलैया, ५० अरविन्द (६) छपरा, ५१ मुकुन्दमोहन प्रसाद (१२) पूर्णिया, ५२ कुमारी प्रमिला (१५) पूर्णिया, ५३ मनोरंजन प्रसाद (१२) मोरातालाव, ५४ गोपालदास (१४) मेरठ, ५५ रमेशकुमार (१४) रायगढ़, ५६ रामकुमार (१६) छतरपुर, ५७ कमलेशचन्द्र (१५) जयपुर, ५८ सतीशकुमार (१५) जयपुर, ५९ अमृतकुमार (१६) जयपुर, ६० सूरजमल (१६) जयपुर, ६१ विजयप्रताप (१४) बसांव, ६२ प्रमोदकुमार (१०) वण्डा, ६३ रमेशचन्द्र (२०) चंडीगढ़, ६४ लक्ष्मीकांत (१५) अकोला, ६५ राजेन्द्रकुमार (१७) जबलपुर, ६६ शिवकुमार (१५) कलकत्ता, ६७ संगीतकुमार (११) दुर्ग, ६८ सुरेन्द्रकुमार (१५) हरद्वार, ६९ सांवरमल (१६) तिनसुकिया, ७० महेन्द्रपाल (१७) लखनऊ, ७१ प्रमोदकुमार (१४) कानपुर, ७२ दिनेशचन्द्र (२०) आगरा, ७३ प्रदीपकुमार (१४) साकची, ७४ मदनविभूषण (१२) आरा, ७५ जेरोल्ड जोसेफ (१६) दमोह, ७६ विजयकुमार (१८) देवास, ७७ निमाईप्रकाश (१५) अलीगढ़, ७८ सन्तोषकुमार (१७) बौसी, ७९ अरुणकुमार (१३) भोगांव, ८० अरविन्दप्रकाश (१४) आरा, ८१ कु. पूनम (१३) नई दिल्ली, ८२ श्रीनारायण (१३) कानपुर, ८३ वी. सीताराम (१२) जमशेदपुर, ८४ लोकेशराय (१६) अम्बाला, ८५ रामस्वरूप (१६) भाटापारा, ८६ महेशदत्त (१६) व्यावर, ८७ सुशीलचन्द्र (१४) कानपुर, ८८ ओमप्रकाश (१५) मण्डलेश्वर, ८९ प्रदीपकुमार (१४) इन्दौर, ९० सुवीर (१०) फैजाबाद, ९१ मुनीशकुमार (१२) बिधुना, ९२ नारायणश्याम (१५) छिन्दवाड़ा, ९३ धनश्यामदत्त (१५) मेरठ, ९४ विश्वनाथ (१३) अजमेर, ९५ कृष्णकुमार (१२) नेतरहाट, ९६ मुकुलकुमार (१२) शाहाबाद, ९७ सुरेशचन्द्र (२२) गाजियाबाद, ९८ कृष्णप्रसाद (१५) बाँदा, ९९ चन्द्रकिशोर (१८) जसीडीह, ९९०० सुरेन्द्र-



लालताप्रसाद
(स. सं. ५४१३)



मोहनप्रसाद
(स. सं. ७१८०)



सुशीलकुमार
(स. सं. ७२१६)



लालाराम
(स. सं. ७२४६)



श्रीकान्त
(स. सं. ७२७३)

कुमार (१४) छपरा, ३ अरुण (११) लखनऊ, ४ कु. मृणालिनी (१३) दरभंगा, ५ सी. राजशेखर (१२) वाराणसी, ६ गोविन्दप्रसाद (१६) सारंगपुर, ७ शिवचरन (२८) सारंगपुर, ८ कन्हैयालाल (१८) सारंगपुर, ९ कृष्णकान्त (२१) सारंगपुर, १० रामेश्वर (१८) सारंगपुर, ११ शिवनारायण (१७) सारंगपुर, १२ कीर्तिकुमार (१६) मुरादाबाद, १३ कु. राधादेवी (१४) हनुमना, १४ अशोककुमार (१४) इन्दौर, १५ प्रावजोत, (११) दिल्ली, १६ शैलेन्द्रकुमार (१५) उज्जैन, १७ वेलूनकुमार (१२) बालोद, १८ प्रकाशनारायण (१४) दुर्ग, १९ कंवलकुमार (१४) कलकत्ता, २० वलराज (१७) इन्दौर, २१ भरत प्रसाद (१३) वैरगनियाँ, २२ जी. सी. पन्त (१६) नौसोजाबाद, २३ सतीशकुमार (१३) कलकत्ता, २४ सोमनाथ (१७) लुधियाना, २५ इमैनवेलसैमसन (१२) वृन्दावन, २६ अरुणकुमार (११) कालका, २७ सुनीलमोहन (१४) चूरू, २८ मन्नालाल (१३) हनुमना, २९ इतिहासामनवी (१५) चेतारा, ३० राजेन्द्रकुमार (१५) लश्कर, ३१ प्रतापविभाकर (१३) कानपुर, ३२ राजेन्द्र (१३) इटारसी, ३३ मनजीतकुमार (१४) इटारसी, ३४ प्रेमनारायण (१५) झांसी, ३५ ब्रजेश (१२) उरई, ३६ सरजूप्रसाद (१७) वाराणसी ३७ वीरेन्द्रनारायण (१८) जबलपुर, ३८ ओमप्रकाश (११) समस्तीपुर, ३९ विनोदकुमार (१६) दुर्ग, ४० अमृतलाल (१६) लश्कर, ४१ कु. निर्मला (१४) कानपुर, ४२ रेवाशंकर (१६) सरायपाली, ४३ देवीप्रकाश (११) बुरहानपुर, ४४ उपेन्द्रदयाल (१६) लखनऊ, ४५ राजेन्द्रदयाल (१४) लखनऊ, ४६ अमृतकुमार (१५) महु, ४७ वीरेन्द्रकुमार (११) गया, ४८ विजयकुमार (१३) शाहदरा, ४९ असलमसिद्दीकी (१५) लालगंज, ५० रामकिशोर (१५) बड़ौत, ५१ मोहन प्रसाद (१५) कतरास बाजार, ५२ जगमोहन (१५) भोपाल, ५३ सत्यप्रकाश (१६) दिल्ली, ५४ सोहनलाल (१८) सुथासरामण्डी, ५५ सतीशकुमार (१२) रांची, ५६ एम. एस. रामाराव (१६) साकची, ५७ बुद्धप्रकाश (१४) बियाबानी, ५८ सुशीलमोहन (१४) मेरठ, ५९ गंगानन्द (१४) महादेव स्थान, ६० देवीप्रसाद (१३) बम्बई, ६१ पारुमल (१६) व्यावर, ६२ प्रदीपकुमार (१२) दिल्ली, ६३ कृष्णराव (१७) इटारसी, ६४ राजेश (१०) कामठी, ६५ हरमेशलाल (१७) नई दिल्ली, ६६ मोहम्मदखाँ (१४) व्यावर, ६७ जयप्रकाशनारायण (१२) रतनमाला, ६८ ललन (११) खगडिया, ६९ गुरुवचन (१७) मोकामा, ७० इकबालसिंह (१४) हीनू, ७१ मोहनलाल (१४) गया, ७२ शशांकशेखर (१३) डुमरी, ७३ वीरेन्द्रकुमार (१४) नेतरहाट, ७४ सुधीरकृष्ण (१६) भटिंडा, ७५ कौशलेन्द्रमोहन (१७) लखनऊ, ७६ सुभाषचन्द्र (१०) नैनीताल, ७७ राजेशकुमार (१५) झुंझुनू, ७८ मुख्तिराम (१६) फगुरम, ७९ कुमारी डाली (१७) नई दिल्ली, ८० विकार (१३) बड़नगर, ८१ शमशुद्दीन (१६) मीरजापुर, ८२ तोषचन्द्र (१४) सागर, ८३ राजेन्द्रप्रसाद (१५) परडिया, ८४ अनवरआलम (१५) गोरखपुर, ८५ पूर्णप्रकाशशरण (१२) गया, ८६ अजीतसहाय (१२) भागलपुर, ८७ राजेश्वरप्रसाद (१२) मन्दसौर, ८८ देवेन्द्रकुमार (१०) लखनऊ, ८९ लक्ष्मणलाल (१७) आवूरोड, ९० अशोककुमार (१६) कानपुर, ९१ अशोककुमार (१४) नैनीताल, ९२ देवीप्रसाद (१४) डिगबोई।



देवकीनन्दन
(स. सं. ८३७४)



तेहसीनजुबैर
(स. सं. ८४११)



श्रीनारायण
(स. सं. ८४७७)



अजय
(स. सं. ८७०२)



ओमप्रकाश
(स. सं. ८७८०)

आपके प्रश्न



शरदचन्द्र पाण्डेय (७३१८) इन्दौर

प्रश्न—सूत कातने की हस्तकला का और तत्पश्चात् यन्त्रों का प्रारम्भ कब से हुआ ?

उत्तर—यन्त्रहीन कताई अर्थात् कताई की हस्तकला में १४वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक भारत अग्र स्थान पर रहा है। यहाँ के जुलाहों की बनायी हुई ढाका की मलमल संसार-प्रसिद्ध रही है जिसके सूत की कताई के लिए केवल बाँस की बनी तीलियों से काम लिया जाता था। १८वीं शताब्दी के मध्यकाल की औद्योगिक क्रान्ति से इस क्षेत्र में यन्त्रों का विकास होता रहा है।

विनोदकुमार मिश्र (४७०६) हरदोई

प्रश्न—क्रिकेट बॅट के लिए किस पेड़ की लकड़ी काम में लायी जाती है ?

उत्तर—सैलिकेसिया (*salicacea*) श्रेणी के अन्तर्गत ३०० विभिन्न जाति के वृक्षों में से विलो (*willow*) वृक्ष की लकड़ी प्रयुक्त होती है। ताजा काटने के बाद इसे दो वर्ष तक तैयार होने (*seasoning*) के लिए रखे रहना पड़ता है। तत्पश्चात् ही काम में ली जाती है।

रामकुमार उपाध्याय (४४७४) राजगढ़

प्रश्न—अभी तक कितने तत्त्व प्राप्त किये जा सके हैं ?

उत्तर—१०३।

सुरजीतसिंह (३७१४) चित्तौड़गढ़

प्रश्न—चुम्बक से सर्वप्रथम साक्षात् किसने किया ?

उत्तर—ईसा से हजारों वर्ष पूर्व भी ग्रीक निवासियों को ज्ञात था कि लोहे का चुम्बकीय आक्साइड—मैग्नेटाइट (*magnetite*) सामान्य लोहे को खींचता है। ११वीं शताब्दी से चुम्बक का प्रयोग नाविकों द्वारा होने लगा था। प्राप्य उल्लेखों से ज्ञात होता है कि चीन के शेन कुवा (*Shen Kua*, १०३०-६३) ने ही सर्वप्रथम चुम्बक का प्रायोगिक महत्त्व दर्शाया था।

सज्जनसिंह सुराना (७६८१) उदयपुर

प्रश्न—क्या खाना खाने के पश्चात् वृत्त स्नान करने से हानि हो सकती है ?

उत्तर—खाने की क्रिया के अन्तर्गत आन्तरिक ताप इतना बढ़ जाता है कि उस अवस्था में नहाने से बहुत बड़ी हानि हो सकती है।

राजकिशोर राजेश (६१०६) सहर्षा

प्रश्न— H_2SO_4 को SO_4H_2 क्यों नहीं लिखते ?

उत्तर—यह सूत्र है। इसका पूरा नाम Hydrogen Sulphate है।

धर्मीचन्द्र गंगवाल (७२५६) अजमेर

प्रश्न—स्टेनलेस स्टील का प्रारम्भ कैसे हुआ ?

उत्तर—इसका श्रेय इंग्लैण्ड के हेरी ब्रेयरने को है। उन्होंने क्रोमियम की अधिक मात्रा युक्त एक लोहे के ढेर को कई दिन कोने में पड़े रहने पर भी जंगरहित पाया तो आश्चर्यसहित दूसरे प्रयोगस्वल्प उसी मिश्रण के एक टुकड़े से एक छुरी बनाकर खुली मिट्टी-पानी में गाड़ दी। महीने भर बाद भी वह वैसी ही चमकती हुई निकली। १९१२ की उस घटना से ही स्टेनलेस स्टील का प्रचलन बढ़ा है।

वीरेन्द्रकुमार गुप्त (६६७३) नेतरहाट

प्रश्न—*Aurora Borealis* क्या है ?

उत्तर—ये उत्तर ध्रुवीय क्षितिजों पर कभी कभी दिखने वाले अत्यन्त मोहक और दुर्लभ रंगीत प्रकाशपुंज हैं। ये केवल सूर्य-कलंकों की सक्रिय अवस्था में ही देखे जा सकते हैं।

अजयकुमार सिन्हा (७७५४) राँची

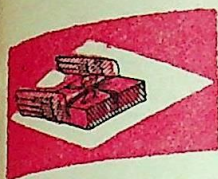
प्रश्न—अधिक से अधिक कितने बड़े ओले कहीं गिरे होने का उल्लेख प्राप्त है ?

उत्तर—सन् १८७० में, श्रीरंगपट्टम (भारत) में नन्हे हाथी जितने बड़े ओले पड़े होने का प्रत्यक्षदर्शी के कथन का उल्लेख है।

पूरनचन्द्र जोशी (८००) सागर

प्रश्न—पोजीट्रॉन क्या है ? इसका आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—धनावेशित इलेक्ट्रॉन है। इनकी खोज केलीफोर्निया के एण्डरसन ने १९३२ में की थी।



प्रथम पुरस्कार
द्वितीय पुरस्कार
तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तकें
२० रु. की पुस्तकें
१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३० सितम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५६ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४४ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३० सितम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४४ के प्रश्न

१. जाइरोस्कोप (gyroscope) का प्रयोग सर्वप्रथम किसने और कब प्रारम्भ किया ?

२. मेंढक (frog) तथा मेक (toad) में मुख्य दो अन्तर बताइए।

३. फोरेमाइट (foramite) क्या है। इसके दोनों पात्रों में कौन-कौनसे मिश्रण रहते हैं ?

४. संसार का सबसे बड़ा सिंक्रोसाइक्लोट्रॉन कब और कहाँ बनाया गया था ?

५. आकाश के तारों का माप तथा भार किस प्रकार ज्ञात किया जाता है ?

६. वानस्पतिक हाथीदाँत किस वनस्पति से और कहाँ-कहाँ प्राप्त होता है ?

७. १६ जून, १९६३ को अन्तरिक्ष में उड़ान भरने वाले सोवियत यात्री-युगल (महिला और पुरुष) के नाम बताइए। दोनों के यान कितने-कितने घण्टे उड़ान में रहे ?

८. एक आँख को जरा दबाने पर एक ही वस्तु के दो बिम्ब क्यों दिखते हैं ?

९. सागर की उत्ताल तरंगें ज्वार के समय जब किनारे से टकराती हैं तब पानी की बड़ी हुई मात्रा साथ में लाती हैं—इस कथन के सत्य-असत्य को विवेचना कीजिए।

१०. १४४ फुट गहरे कुएँ पर से फेंके हुए एक पत्थर को पानी की सतह तक पहुँचने में कितना समय लगेगा ?

प्रतियोगिता संख्या ४२ के प्रश्नों के उत्तर

१. हमारे नेत्रपटल का शंकु-समूह (cones) केवल सूर्य के ही प्रकाश में रंगानुभूति कर पाता है। अतः चाँदनी रात अथवा अन्य मन्द प्रकाश में रंग स्पष्ट नहीं दिखते।

२. नया खोजा हुआ तत्त्व सं. १०३ है। घायो-रसो (Ghiorso) तथा उसके साथियों ने १९६१ में इसकी खोज की थी।

३. पानी में घुले हुए कैल्सियम तथा मैगनी-शियम के क्षारों (carbonates) के कारण।

४. इस नाम का जहाज १७६० में हालैण्ड के निकट डूब गया था। उसके अवशेषों के साथ इसे समुद्र-तल से प्राप्त करके लाइड्ज इंश्योरेन्स के केंद्रीय कार्यालय में रखा गया है। आने वाले जहाज को पूर्वसूचना सुखद होने पर इसे दो बार, अन्यथा

दुखद होने पर एक बार बजाया जाता है।

५. स्ट्रोबोस्कोप द्वारा।

६. British Thermal Unit के प्रथमाक्षरों से निर्मित यह ताप का वह अंक मान है जो एक पौण्ड पानी को १°C तक गर्म करने के लिए आवश्यक है।

७. अरस्तू (Aristotle); क्राइस्ट से पूर्व (B. C.) वर्ष ३८४-३२४ तक।

८. वह उसकी तीव्र संवेदक श्रवणेन्द्रिय है।

९. पोजीट्रॉन कहते हैं। इसकी खोज केली-फोर्निया के एण्डरसन ने की थी।

१०. उन्हें प्रायः ही गीले फर्श और छिछले पानी में काम करना पड़ता है। अतः ढीले पांयचों से उन्हें सुविधा रहती है। वे चाहे जैसे उन्हें ऊँचे चढ़ा लेते हैं।

खेल-खेल में शिक्षा

शिशुशरण (स. सं. १५०४)

शिक्षा के साथ मनोरंजन का जितना महत्त्व है, उससे अधिक महत्त्व मनोरंजन के साथ शिक्षा का है। अमरीका के शिक्षाशास्त्रियों ने इस तथ्य को भलीभाँति समझ लिया है। वे इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विविध प्रयोगों में बहुत आगे हैं। उनके सहयोग से वहाँ की एक फर्म ने विज्ञान के सरल उपकरणोंयुक्त कुछेक ऐसी पेटियाँ तैयार की हैं जिनमें न केवल अल्प-वयस्क स्कूली बच्चे, बल्कि शालाओं के अध्यापक भी गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं। ये पेटियाँ वैज्ञानिक शिक्षा के लिए उपयोगी होने के साथ-साथ विद्यार्थी समाज में लोक-प्रिय भी बहुत हैं।

वैज्ञानिक शिक्षा की प्रयोगशालोपयोगी पेटियों (laboratory chests) के नाम से फिलहाल तैयार की गयी १८ पेटियों में उदाहरणस्वरूप निम्न पाँच पेटियों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण रहेगा।

बीजांकुरण पेटो—इसमें रखी हुई वस्तुओं के कुशल प्रयोग द्वारा बच्चे यह देख और समझ सकते हैं कि पौधों में बीजांकुरण किस प्रकार सम्पन्न होता है।

पारदर्शक मनके—इसमें वे पदार्थ रखे गये हैं जिनसे पारदर्शक मनके बड़ी सरलता से बनाये जा सकते हैं। इसमें मिश्री के

क्रिस्टल बनाकर बच्चे उसकी मिठास का भी आनन्द ले सकते हैं।

विद्युतचुम्बकीय शक्ति—यह पेटो चुम्बक तथा विद्युत सिद्धान्तों के बारे में बड़ी सरलता से प्राथमिक ज्ञान देती है। इसमें लोहे की एक गरारी पर सोलेनाइड (solenoid) तार लिपटा रहता है। तारों में विद्युत प्रवाहित करने पर वह गरारी चुम्बकीय गुण प्रदर्शित करती है। इसी पेटो में टेलीग्राफी सिखाने का भी उपकरण रखा हुआ है।

सौर वर्णपट—इस पेटो की सहायता से सूर्य का वर्णपट बनाकर सूर्य-रश्मियों की संरचना तथा अन्य जानकारी प्राप्त की जा सकती है। एक सरल स्पेक्ट्रोस्कोप यन्त्र भी बनाया जा सकता है।

पदार्थ रसायन—विभिन्न सरल एवं हानिरहित रसायनों तथा अन्य उपकरणोंयुक्त इस पेटो से द्रवीय, ठोस तथा गैसीय पदार्थों की विभिन्न अवस्थाएँ तथा उनके विविध गुणों का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्रत्येक पेटो में विषय विशेष से सम्बन्धित सरल पाठ भी रखा रहता है। उस पाठ के द्वारा विज्ञान के आधारभूत नियम, परिवर्तन तालिकाएँ, तत्त्वों के वजन, उनकी संख्या तथा अन्य अनेक विवरण दिये होते हैं। ●

उत्तर रेलवे

सूचना

विलम्ब-शुल्क (डेमरेज) की दरों में वृद्धि

दिनांक १-८-६३ से नीचे लिखे हुए स्टेशनों के लिए विलम्ब-शुल्क (डेमरेज) की संशोधित दरें निम्न भाँति लागू को जाएँगी :

स्टेशन	डेमरेज की दरें
दिल्ली डिवीजन	
हजरत निजामुद्दीन, सहीबाबाद, ओखला, तुगलकाबाद (तुगलकाबाद मिनरल साइडिंग सहित) तथा दिल्ली सफदरजंग	(१) माल छुड़ाने की निःशुल्क अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रथम २४ घण्टे तक, ०.०६ नये पैसे प्रति मीट्रिक टन (अथवा अंशतः); प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)
	(२) उपरोक्त २४ घण्टे के अनन्तर अतिरिक्त २४ घण्टे तक, ०.१२ नये पैसे प्रति मीट्रिक टन (अथवा अंशतः); प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)
	(३) उपरोक्त द्वितीय २४ घण्टे की अवधि के पश्चात् प्रति अतिरिक्त २४ घण्टे के लिए, ०.३० नये पैसे प्रति मीट्रिक टन (अथवा अंशतः); प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)
फीरोजपुर डिवीजन	
अमृतसर, छोहारटा, भगतानवाला, जलंधर सिटी, पठानकोट, फीरोजपुर कैन्ट, लुधियाना तथा वरका	उपरोक्त

सितम्बर १९६३

मुरादाबाद डिवीजन

रामपुर, हापुड़, मुरादाबाद, सीतापुर
सिटी, शाहजहाँपुर, बरेली, हरदोई,
कोटद्वारा, देहरादून, हरद्वार, नजीबाबाद,
चन्दौसी, टामसनगंज साइडिंग, रुड़की,
अमरोहा तथा हरदुआगंज ...

दिल्ली डिवीजन
के समान

लखनऊ डिवीजन

बाराबंकी, फैजाबाद, अकबरपुर, शिवपुर,
जौनपुर, वाराणसी, काशी, भदोही,
प्रतापगढ़, प्रयाग, फाफामऊ, रायबरेली,
उन्नाव तथा लखनऊ ...

उपरोक्त

इलाहाबाद डिवीजन

कानपुर सेन्ट्रल गुड्जशेड, फीरोजाबाद,
इलाहाबाद, इटावा, अलीगढ़, हाथरस
किला, शिकोहाबाद तथा राबर्ट्सगंज ...

उपरोक्त

कानपुर सेन्ट्रल गुड्जशेड पर टैंक-वैगनों के लिए डेमरेज की दरें निम्न प्रकार
ली जाएंगी :

माल छुड़ाने की निःशुल्क-अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रथम २४ घण्टे तक, ०.१० नये
पैसे प्रति मीट्रिक टन (अथवा अंशतः), प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)

उपरोक्त अवधि के पश्चात् द्वितीय २४ घण्टे के लिए ०.१५ नये पैसे प्रति मीट्रिक टन
(अथवा अंशतः); प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)

उपरोक्त द्वितीय २४ घण्टे के पश्चात् प्रति २४ घण्टे के लिए ०.३० नये पैसे प्रति
मीट्रिक टन (अथवा अंशतः); प्रति घण्टे (अथवा अंशतः)

उपरोक्त स्टेशनों के अतिरिक्त अन्य समस्त स्टेशनों के लिए डेमरेज की
वर्तमान दरें ही चालू रहेंगी ।

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

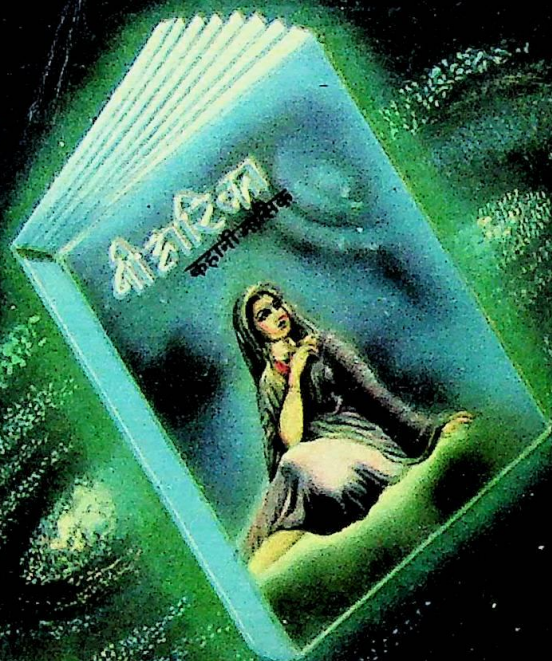
Book II.....Price : Re.1'00

Book III.....Price : Re.1'20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

कहानी जगत में नया नदीय



वीटारिका

- रोचक कहानियाँ
- नयनाभिराम साज-सज्जा

न्यूज एजेंटों, बुकस्टालों से उपलब्ध

पृष्ठ संख्या ११६

वार्षिक मूल्य ७ रुपये

एक प्रति ६०

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

विज्ञान-लोक



पक्षियों का गृह-निर्माण	३
—कुमारी प्रमिला	
बाल पॉइन्ट पेन	६
—जुगलकिशोर बाण्येय	
जड़ की बात	११
—राजेन्द्रकुमार	
इन्हें आपसीजन नहीं चाहिए	१५
—डा. विनोदविहारी	
मछलियों की भाषा	१८
—डा. शिवगोपाल मिश्र	
भूमिगत जलस्रोत	२१
—रमेशचन्द्र	
आणविक बिजलीघर	२६
—डा. अयोध्या प्रसाद शर्मा	
यदि नमक न हो	३२
—प्रेमानन्द चन्दोला	
लियोनार्दो-द-विंशी	३७
—प्रेमलाल टण्डन	
चन्द्र-अभियान	४३
—द्रोणवीर कोहली	
आज के उद्योगों की रीढ़	
संपीड़ित वायु	५२
—अवधविहारीलाल	
स्थायी स्तम्भ	
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	३१
विचित्र संसार	४१
विज्ञान क्लब	५६
इनाम लो	६२
आपके प्रश्न	६३
तुम्हारी कलम से	६५

इसी मास, विश्व-प्रसिद्ध भारतीय वनस्पति-वैज्ञानिक प्रो. पंचानन माहेश्वरी की ५६वीं जन्म-तिथि मनायी गयी है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति-विभागाध्यक्ष प्रो. माहेश्वरी उन विरले व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने अति विस्तृत और व्यापक अनुसन्धान के बल पर अन्तरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। १९५० की भारतीय विज्ञान-कांग्रेस के वनस्पति-विभागाध्यक्ष और १९५६ में बीरबल साहनी पुरस्कार के लिए निर्वाचित, प्रो. माहेश्वरी १९५०, १९५४ और १९५६ में लगातार आयोजित अन्तरराष्ट्रीय वनस्पति-विज्ञान की सभाओं में भारत का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। संसार के वनस्पति-विज्ञान के क्षेत्र में भारत को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने वालों में प्रो. माहेश्वरी का प्रमुख योग है।

इनका विशेष कार्यक्षेत्र पौधों का भ्रूण-विज्ञान और आकारिकी के जटिल विषयों में रहा है। अमरीका, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, पोलैण्ड और हंगरी आदि से विशिष्ट शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों का इनके निकट ताँता लगा रहता है।

इस पुनीत अवसर पर विज्ञान-लोक प्रो. माहेश्वरी की दीर्घायु की कामना करता है और उनका हार्दिक अभिनन्दन करता है।

वर्ष ४

अंक १०



मूल्य

एक प्रति : ७५ नये पैसे

वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

स्पति-
जन्म-
आध्यक्ष
गन्धीन
ल पर
0 की
आध्यक्ष
लिए
और
राष्ट्रीय

नधित्व
क्षेत्र
लो में

विज्ञान
परिकी
आदि
इन्के

हाहरेव
हादिक

श



पक्षियों

का

गुरुकुल कागड़ी

गृह-निर्माण

कुमारी प्रमिला

धारणतया पक्षियों को निवास की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये रात्रि में किसी डाल पर विश्राम कर लेते हैं, किन्तु विशेष परिस्थितियों में इन्हें घोंसला बनाने की जरूरत पड़ती है। मादा के गर्भकाल से लेकर नई सन्तानों के चहचहा उठने तक इन्हें आकाश को छोड़कर कहीं न कहीं आश्रय लेना ही पड़ता है। तभी अनुकूल स्थलों की खोज शुरू होती है। स्थल की खोज में वे यह देखते हैं कि भोजन का साधन निकट तथा घर की सुरक्षा भी सुनिश्चित हो। इस भोजन के लिए पेड़, झाड़ियाँ, घास, मकान की दीवारें, छप्पर, आलमारियाँ, दीवार-तट्टी तथा टूटे-फूटे घड़े और पोखर-तालाब के पानी में भी ये अपने घोंसले बनाते हैं।

पक्षियों में यह विशेषता है कि अमुक पक्षी अपने आकार-प्रकार के अनुरूप घोंसला निश्चित वस्तुओं द्वारा ही बनाता है। पक्षियों के घोंसले बिल्कुल ही नगण्य कोटि से लेकर बड़ा तथा निर्माण-कौशल के उत्कृष्ट नमूने तक भी देखने को मिलते हैं।

नगण्य नमूनों में गिलेमोट (guillemot) नामक समुद्री पक्षी की मादा अपने अण्डे लहरों की टक्कर भेलती हुई चट्टान के किसी कोने पर छोड़ देती है। शायद आप सोचें कि यों तो वे अण्डे चाहे जब नीचे लुढ़क जाते होंगे, लेकिन प्रकृति इतनी निष्ठुर नहीं है। प्रथम तो अण्डे ही लम्बगोलाकार और नुकीले सिरे के होते हैं; दूसरे, मादा उन्हें ऐसे गड्ढों में रखती है कि वे उसमें जमे रहते हैं और उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती। नगण्य प्रकार के अन्य घोंसले उन पक्षियों के हैं जो केवल रेत में गड्ढा करके ही अण्डे रख देते हैं। चिड़ियों और कबूतरों के घोंसले भी साधारण प्रकार के होते हैं।

इनके विपरीत बया (weaver bird), फुदकी अर्थात् दर्जिन चिड़िया (tailor bird), नन्हें रेत (wren) तथा टिट (tit) के घोंसले निर्माण-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

पफिन (puffin) नामक समुद्री पक्षी पानी के किनारे अपना घर बनाता है। यह घर भूमिगत सुरंगों के रूप में होता है जिसके

विज्ञान-लोक

परिवार रहता है। बहुधा यह किसी खरगोश की बनी-बनायी सुरंग काम में ले लेता है। इसके डर के मारे खरगोश को अपना घर पुनः प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। पहरे पर बैठा हुआ नर-पक्षी ज्योंही किसी खरगोश को अन्दर घुसते देखता है, उसे पीछे से टाँग पकड़ कर घसीट लेता है और सुरंग से बाहर निकाल देता है।

हेज स्पेरो (hedge sparrow) मेंहदी या कांटों की बाड़ पर घोंसला बनाने वाली एक सामान्य चिड़िया है। यह अपना घोंसला घास-फूस द्वारा चौड़े कप के आकार का बनाती है और चारों ओर बालों तथा उलभे सूत आदि से ढँके रखती है। देखने पर इसके घोंसले में कोई विशेषता नहीं मालूम होती, किन्तु विचित्रता इसके उपयोग में रहती है। कुकुलस (cuckoo) जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह अपने अण्डों को स्वयं नहीं सेती, इसके घोंसले में तो हिस्सा बटाती ही है, इसकी सेवाएँ भी भरपूर लेती है। वह अपने अण्डे इसके घोंसले में छोड़ जाती है। यह भोली-भाली चिड़िया अपने ही अण्डे समझ कर उन्हें सेती रहती है। कुकुलस के बच्चे अण्डे से निकलते ही इसके अण्डों और बच्चों को नीचे धकेलकर घोंसले पर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं।

फुदकी (tailor bird) किसी भी टहनी के २-३ पत्तों की सिलाई तने के रेशों से इतनी बढ़िया कर देती है कि पत्तियाँ थैली जैसी बन जाती हैं। उस थैली में अण्डे सुरक्षित रहते हैं और नन्हें बच्चे हवा के झोंकों के साथ डाल पर भूला भूलते रहते हैं।

कठफोड़वा (wood pecker) अपनी सख्त चोंच से पेड़ के तने में सूराख करता-करता एक खोल-सी बना लेता है। उसे अपने रहने लायक बनाने के लिए उसमें नीचे-ऊपर,



ध्रुवीय प्रदेशों को छोड़कर प्रायः सभी देशों में पाए जाने वाली अत्यंत मोहक रंगों की सात इंच बड़ी काली स्वैलो (barn swallow) अपना घोंसला गीली मिट्टी बनाती है और उसके लिए वस्तुएँ जुटाने में १०००० भी अधिक चक्कर लगाती है

तथा अगल-बगल लकड़ी की छीलन बिखेर देता है।

विदूषक पक्षी (mocking bird) सुरीला गायक है और शरमीला भी। अतः जंगलों तथा उद्यानों की घनी भाड़ियों में बिना रहना पसन्द करता है। इसका घोंसला किन्हीं बड़ा और फैला-फैला होता है तथा घास, तिनके, चिथड़े, कागज आदि से बनाया हुआ होता है।

रेन (wren) एक छोटी घरेलू चिड़िया है और जहाँ भी मौका लगे, घोंसला बनाती बहुत तेज है। दीवार के आले में, पुरानी टारियों में, पुराने टायरों में, यहाँ तक कि समय से खूँटी पर टँगे रहे कपड़ों की जेबों में भी घोंसला बनाने से यह नहीं चूकती। अपनी पिछली जगह खूब याद रहती है। प्रतिवर्ष ठीक उसी जगह पहुँच जाती है। तुनुकमिजाज भी बहुत है। दूर-दूर तक ही घेरे में इन दो चिड़ियों के जोड़े मिलते हैं।

नहीं रह सकते। यदि एक के घोंसले में दूसरी रैन आ जाए तो गृहस्वामी उसके जड़ों में छेद कर देगा या उन्हें उठाकर फेंक देगा।

स्विफ्ट (swift) भी नहीं चिड़िया है। इसे चिमनी स्विफ्ट (chimney swift) भी कहते हैं क्योंकि यह अपना घोंसला किसी बन्द की हुई, ठण्डी चिमनी में बनाती है। इसे आप खीं भी भूमि पर अथवा डाल पर चहकती नहीं पाएँगे। अवसर पड़ने पर यह तेज उड़ान में बाज तथा गरुड़ को भी पीछे छोड़ जाती है। यह अपने घोंसले के लिए धरती पर पड़े पेड़ों से तिनके बटोरना पसन्द नहीं करती। यह पेड़ की शाखों पर से ही तिनके और पत्तों बटोरकर चिमनी के अन्दर प्यालेनुमा घोंसला बनाती है।

पेण्डुलिन टिट (penduline tit) दल-दलीय क्षेत्रों में रहने वाली चिड़िया है। दलदल में घुसने के लिए इसे अपना घोंसला पेड़ की डाल पर बनाना पड़ता है। एक थैली जैसी बाल्टीमोर की सोनचिरैया है। घोड़े के तालों, धागों आदि से बना हुआ इसका घोंसला विशेषतः मजबूत होता है।

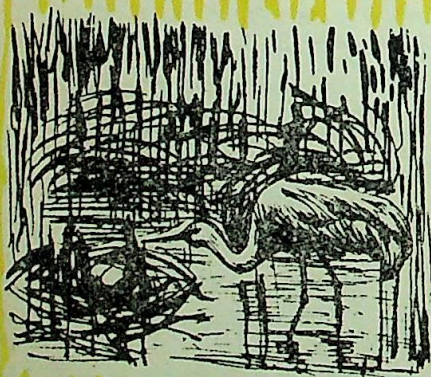
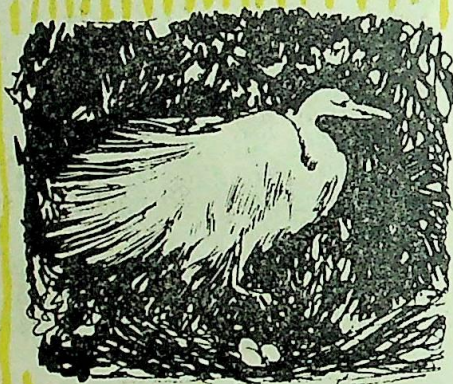


बया का घोंसला

के रूप में सुन्दर और सुहृद इसका घोंसला पतली और लचकती ऐसी डाल पर बनाया जाता है जो पानी की ओर झुकी हो। अतः कोई भी बड़ा जन्तु घोंसले को लपक नहीं सकता; क्योंकि उसे डर रहता है कि घोंसले के साथ कहीं वह भी पानी में न गिर पड़े। इसके जोड़े में नर ही घोंसला बनाता है।

इन्हीं चिड़ियों में लम्बी पूँछ वाली टिट भी होती है। यह कँटीली बाड़ में घोंसला बनाती है। इसका घोंसला सुन्दर गेंदनुमा होता है जिसमें एक ओर आने-जाने का सुराख रहता है। अधिकांश कीचड़-मिट्टी से बना इसका घोंसला ऊपर से शैवाल आदि से ढँका रहता है। इसके अन्दर तरह-तरह के पंखों-परों को भी संजाये रखना पड़ता है ताकि अन्दर गर्मी बनी रहे। ऐसे एक घोंसले को खोलकर देखने





थे । एक ही साथ १२ अण्डे तक देने पर नन्हे मुन्नों को वह घर छोटा पड़ता है, किन्तु गोरी सीले वातावरण में भी घोंसले के अन्दर गर्मी बनी रहती है ।

बया (weaver bird) अपना घोंसला बनाने में वह कौशल प्रदर्शित करता है जो मानव को भी स्तब्ध कर देता है । पक्षी-जगत् में सबसे बड़ा, सबसे जटिल और सर्वोत्तम घोंसला इसी का रहता है । यह अपना घर एक दो तथा तीन मंजिल का भी बना लेता है । यह पक्षी अपने आकार के अनुसार बहुत बड़े घोंसला बना लेता है । कहीं-कहीं तो अच्छे खासा तम्बू जैसा तान देता है । अकसर ऐसा प्रतीत होता है कि इतने सुन्दर नमूने शायद किसी कलाकार ने बनाये हों । ५-६ इंच लम्बा यह पक्षी जब घोंसला बनाना प्रारम्भ करता है तब नर और मादा अपने असंख्य सम्बन्धियों को एकत्रित कर लेते हैं और एक क्षेत्र में गृहनिर्माण प्रारम्भ हो जाता है । ऊँचे डाल पर सबसे पहले एक छप्पर-सा बुन लेते हैं फिर उसके नीचे घास-फूस से घोंसला बनाते चलते हैं । घोंसला एक खड़ी सुरंग के रूप में बनता है जिसके बीचोबीच झरोखे तथा उठने-वैठने के कक्ष बनाये जाते हैं । घोंसला बन जाने के बाद ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें (पलास्क) उलटे लटका रखे हों । इस घोंसला हलका होता है । अतः तेज हवा घोंसले को वचाने के लिए यह सबसे नीचे कक्ष में रेत भर देता है । रात को घोंसले में झिलमिलाते तारों का आनन्द के लिए अनेक जुगनू बीनकर ले आता है । घोंसले में छोड़ देता है ।

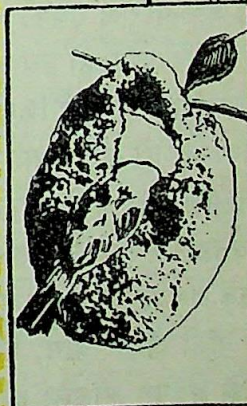
अवाबील (swallow) चिड़िया नर-पक्षी चूने-गारे का कारीगर है । यह

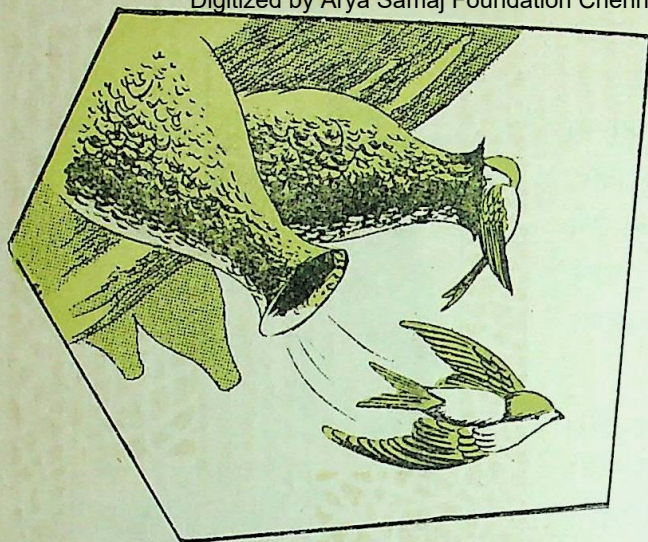
जैसे पक्षी और जैसी उनकी आवश्यकता है ही उनके घोंसले

आस्ट्रेलिया का ब्रशटर्की (brush-
 turkey) बड़ी बत्तख जैसा पक्षी है। घोंसला
 बनाने में यह भी अपना सानी नहीं रखता।
 यह अधिकतर कूड़े के ढेर, टीले तथा पहाड़ी
 ढलानों के निकट अपना घोंसला बनाता है।
 अपनी पिछली टाँगों से कूड़े के ढेर को जो
 उलोचना शुरू करता है तो अन्ततः जहाँ ढेर
 या वहाँ मालूम होता है किसी ने भाड़ू लगा
 दी हो और उसी के निकट जो नया टीला
 खड़ा दिखता है वह इसका घर होता है। ऐसा
 एक-एक ढेर १२-१३ फुट व्यास और ३५-३६
 फुट की परिधि का होता है। उसका वजन भी
 ५ टन से कम नहीं होता।

हुदहुद (hoopoe) कलँगीदार पक्षी
 है। यह घोंसला बनाने के लिए अधिक
 परिश्रम करना पसन्द नहीं करता। पेड़ के एक
 खोखले से ही काम चला लेता है। यह भी
 अपनी प्रसूता का बहुत खयाल रखता है।
 मादा कुछ दिनों के लिए उस कोटर में
 मानो कैद हो जाती है और जब तक अण्डों
 से बच्चे नहीं निकल आते, उसी में बन्द रहती
 है। मादा के एक बार उसमें प्रवेश कर लेने पर
 नर-पक्षी उस खोखले को इस प्रकार बन्द कर
 देता है कि मादा की केवल चोंच ही बाहर
 निकलती रहे। वह चोंच जब-जब बाहर
 खुलती है, नर उसमें भोजन पकड़ा देता है।

भिन्न-भिन्न पक्षियों द्वारा निर्मित विभिन्न घोंसले-
 की कलाकृतियों के नमूने





आस्ट्रेलिया के ये फेयरी मार्टिन पक्षी, गीली मिट्टी से सुराहियों जैसे घोंसले बनाते हैं। नर-पक्षी मिट्टी लाता है, मादा चिनाई करती है और धूप उन्हें सुखाकर मजबूत बना देती है

डिपर बर्ड (dipper bird) ग्रेट ब्रिटेन में पाया जाने वाला गोताखोर पक्षी है। यह अपना घोंसला भरनों के किनारे, जलाशयों के निकट और कभी-कभी तो जल-धार के मध्य में बनाता है। जल-धार में डुबकी लगाने से यह नहीं डरता, क्योंकि प्रायः ही उस डुबकी में उसे नन्हीं मछलियाँ मिल जाती हैं जिन्हें वह घोंसले में मादा तथा बच्चों को दे आता है।

शेफिन्स (cheffinch) बड़ी कारीगरी से सुन्दर घोंसला बनाता है। घोंसले के लिए यह घनी झाड़ी, बाड़ अथवा ठिगने पेड़ चुनता है। यह एक गहरी कूंडी जैसा घास, तिनके तथा गीली मिट्टी से अपना घोंसला बनाता है। बाहर की ओर शैवाल आदि का पलस्तर चढ़ाकर मकड़ी के जाले से उसकी मजबूती बनाये रखता है।

क्रासबिल (crossbill) भी ब्रिटेन का पक्षी है। इसकी चोंच के ऊपर-नीचे के भाग विचित्र ढंग से क्रास की शकल में रहते हैं ताकि जिन खजूर आदि के वृक्षों पर यह अपना स्थायी घोंसला बनाता है, उसके फलों और बीजों को कुतरकर अपना भोजन प्राप्त कर

सकेगा वह अपना घोंसला चीड़, ताड़, खजूर आदि के वृक्षों पर बनाता है। घास और तिनकों से बने इसके घोंसले में विभिन्न पक्षियों के पंख तथा खरगोश के मुलायम वालों की दीवार बना रहती है।

गोल्डन ईगल (golden eagle) ऊँचे और दुर्गम गिरि-शिखरों तथा पहाड़ी खोहों पर अपना घोंसला बनाता है। पेड़ों की शाखें, टहनियाँ, पत्तियाँ तथा मिट्टी आदि से कुछ बेडौल किन्तु भारी-भरकम इसके घोंसले में उल्लेखनीय बात केवल यही है कि

एक ही बार का बना हुआ घोंसला हमेशा काम आता रहता है। बार-बार और स्थान-स्थान पर घोंसला बनाना इसके स्वभाव में नहीं है।

यह बात निश्चित है कि गृह-निर्माण में पक्षी वैसी ही तत्परता, लगन और कौशल प्रदर्शित करते हैं, जैसी मानव अपना निवास बनाने में करता है।

सीटी बजाने वाली यह नन्हीं चिड़िया घास-फूस से ही अपना घोंसला सुदृढ़ तथा ३-४ मंजिल का बना लेती है



विज्ञान-नोक

बाल पॉइन्ट पेन

जुगलकिशोर वाष्णोय

लिखने के लिए आजकल बाल पॉइन्ट पेन का प्रयोग बहुत हो रहा है। देखने में यह बहुत साधारण प्रतीत होता है परन्तु इसे बनाने में विशेष इंजीनियरिंग कौशल की आवश्यकता होती है। एक स्विस् इंजीनियर के अनुसार बाल पॉइन्ट पेन बनाने में हाथघड़ी से अधिक परिशुद्धि की आवश्यकता होती है।

बाल पॉइन्ट पेन का सिद्धान्त बहुत ही साधारण है। इसमें एक धातु या प्लास्टिक की नली होती है जो गाढ़ी स्याही से भरी होती है। नली के एक किनारे पर पीतल का एक खोल (socket) होता है जिसमें धातु की एक छोटी गोली होती है। वह स्वतंत्र रूप से घूम सकती है। लिखते समय जब वह गोली घूमती है तो उसका सम्पर्क नली में भरी हुई स्याही से होता है और स्याही का निशान कागज पर आ जाता है। देखने में यह सिद्धान्त बड़ा सीधा लगता है, परन्तु इसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए वर्षों का परिश्रम और करोड़ों रुपये व्यय हुए हैं।

बाल पॉइन्ट पेन का सर्वप्रथम पेटेंट १८८६ में लिया गया। दूसरा पेटेंट १८९६ में बनाया गया, परन्तु दोनों पेन सफल नहीं हुए, क्योंकि उनमें स्याही गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे

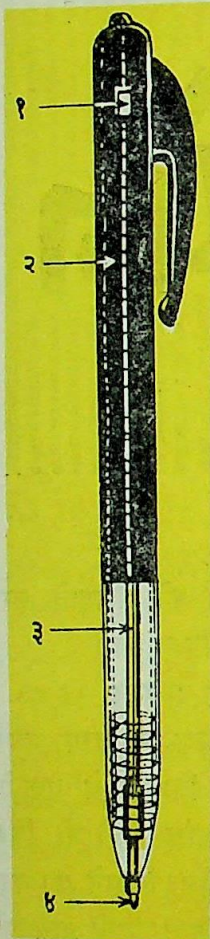
उतरती थी और पेन को लिखते समय विलकुल सीधा रखना पड़ता था।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् १९४३ में इसका प्रश्न पुनः प्रकाश में लाया गया। अमरीका की वायुसेना विभाग ने एक ऐसे सरल, सहज पेन की माँग रखी जो बिना किसी भ्रंश के, चाहे जैसा लिखने का कार्य कर सके। उसमें यह विशेषता होनी आवश्यक थी कि चाहे जिस ऊँचाई पर भी उस पेन में स्याही बह न निकले। उस समय इस आवश्यकता की पूर्ति एक ही पेन कर सकता था और वह था बाल पॉइन्ट पेन।

अर्जेन्टाइना में बसे हुए हंगरी के एक शरणार्थी एल. जे. बीरो ने २० वर्ष तक बाल पॉइन्ट पेन पर तरह-तरह के प्रयोग किये और १९४३ में एक नमूना अमरीका की एबरहार्ड फेवर कम्पनी को भेजा। बीरो के पेन की विशेषता यह थी कि उसमें स्याही केशिका-क्रिया (capillary action) द्वारा नीचे उतरती थी। इस कारण पेन को किसी भी कोण पर झुकाकर लिखा जा सकता था।

१९४४ में फेवर कम्पनी ने एवरशार्प पेन कम्पनी से एक समझौता किया और बाल पॉइन्ट पेन बनाने शुरू किये परन्तु उसे सफलता

नवम्बर १९६३



पेन का भीतरा दृश्य—

१. संचालक बटन; २. बॉडी;
३. स्याही कोष; ४. बाल पॉइंट

पेन बेचे। थोड़े दिनों में बाल पॉइंट पेन बनाने की सैंकड़ों कम्पनियाँ बन गयीं और पेन का मूल्य १ रुपये तक आ गया।

बाल पॉइंट पेन में फिर भी बड़ी खराबियाँ थीं। कभी पेन लिखना बन्द कर देता था, कभी स्याही लीक करने लगती थी या कभी स्याही की नली फट जाती थी। इस कारण बहुत-सी कम्पनियाँ बन्द हो गयीं और हजारों लोग बेकार हो गये।

उन्हीं बेकार आदमियों में से एक रसायन-शास्त्री फानसीच था। उसका विश्वास था कि स्याही में सुधार करने से सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी।

इसमें सामान्य पेनों की भाँति बार-बार

नहीं मिली।
ग्राहकों ने पेन से
स्याही निकलने
की शिकायत की।

उसी वर्ष
गिम्बलस फर्म के
रीनोल्ड ने गुरुत्वा-
कर्षण के सिद्धान्त
वाला एक नया पेन
बनाया और क्रिस-
मस के अवसर पर
फर्म ने १२ लाख
पेन बेचे। फर्म को
एक पेन ४ रुपये का
पड़ा परन्तु उन्होंने
उसकी कीमत ६५
रुपये रखी। चूँकि
वह एक नयी वस्तु
थी, अतः उसकी
बिक्री खूब हुई।

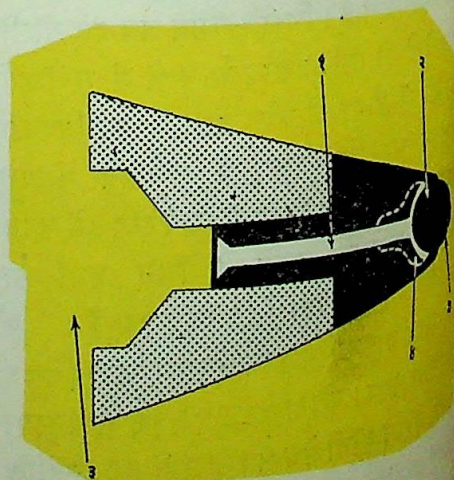
कुछ समय
पश्चात् एवरशार्प
कम्पनी ने स्याही
लीक होने का
आंशिक हल ढूँढ़
निकाला और एक
ही वर्ष के अन्दर
१० करोड़ रुपये के

स्याही भरने की आवश्यकता नहीं रहती।
बोहिया बाल पॉइंट पेन में इतनी स्याही
का प्रबन्ध रहता है कि एक बार
पेन को कागज से उठाये वगैर १॥ मील
लम्बी रेखा खींची जा सके। स्याही जल्दी
सूखने वाली होने के कारण ब्लाटिंग पेपर की
जरूरत नहीं पड़ती। १९५० में सीचे ने एक
नयी स्याही बनायी और पेपरमैट कम्पनी को
इसकी विधि बेच दी। यह नयी स्याही कागज
पर फैलती नहीं थी। नये पेन इतने प्रसिद्ध हुए
कि १० वर्ष में लगभग ७६ करोड़ पेन बिके।

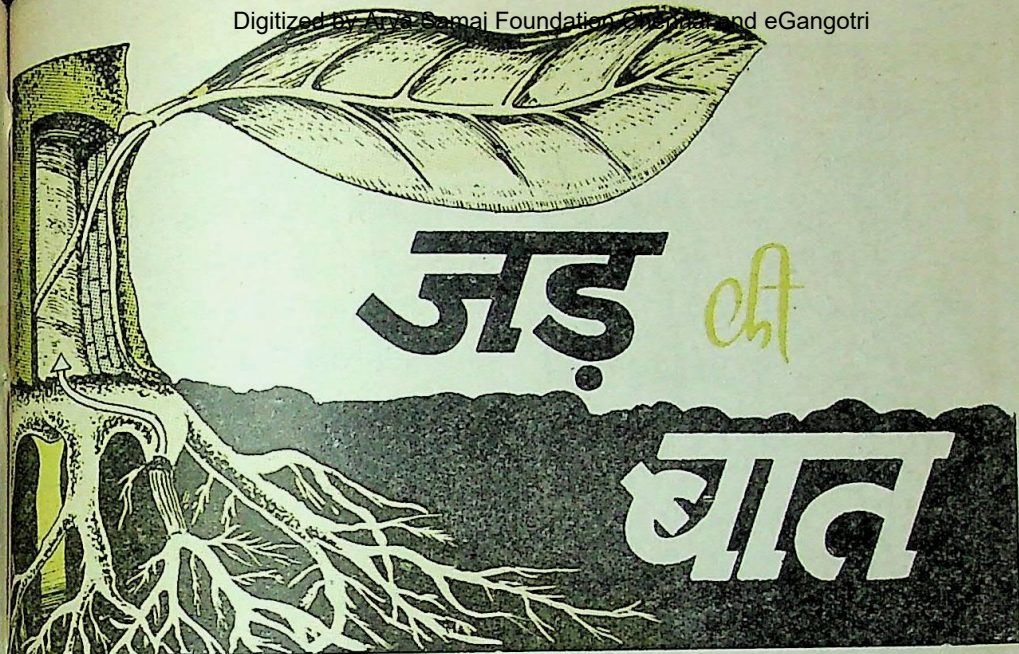
इनमें दो त्रुटियाँ अवश्य हैं किन्तु वे
इनकी अन्य खूबियों में ढँक जाती हैं। पहली
त्रुटि यह कि सामान्य निब की तरह इसका
मुँह चिरा हुआ न होने के कारण सुलेखन,
कलात्मक लिखाई, तथा मोटी-पतली रेखाएँ
खींचने के योग्य नहीं है। दूसरी यह कि
सामान्य पेन की अपेक्षा इससे लिखने में
अँगुलियों पर जोर अधिक पड़ता है।

भारत में बाल पॉइंट पेन काफी बिकने
लगे हैं। इनका उत्पादन भी देश में होने लगा
है। खोल में गोली फिट करने में बड़ी दक्षता
की आवश्यकता है। अब स्याही की नली
प्लास्टिक की भी बनने लगी है। पोलि-
प्रोपिलीन (polypropylene) प्लास्टिक
इस कार्य के लिए उपयुक्त है।

संरचनात्मक दृश्य—१. स्याही-प्रवाहक केशिका
२. बाल-पॉइंट के लिए साकेट; ३. स्याही-कोष
४. स्याही प्रवाहक सूक्ष्म केशिका; ५. बाल पॉइंट



रहती।
 स्याही
 बार
 मोल
 जल
 पर की
 ने एक
 मनी को
 काम
 सद हुए
 के।
 कन्तु वे
 पहली
 इसका
 मुलेखन
 रेखाएँ
 यह कि
 रखने में
 ।
 विक्रम
 ने लगा
 दक्षता
 नी नली
 पोली
 लास्टिक
 केसिका
 ही-नो
 न पाँद



राजेन्द्रकुमार

जड़ में अंकुर फूटते ही सबसे पहले जड़ ही एक धागे के रूप में निकलती है। गमले या बगीचा में बीज की स्थिति खड़ी हो, झड़ी हो, ऊँची हो अथवा कैसी भी हो, जड़ का वह रेशा अपनी जिम्मेदारी बखूबी जानता है। भूमि में धँसते, उतरते उसे पौधे के ऊर्ध्वांगों को पुष्टि और जीवन-निर्वाह के लिए जल-मृदा, खनिज पदार्थ तथा घुले हुए लवण प्राप्त करने से रहना ही इसका काम है।

जड़ों की जान मूलाग्रों में

जड़ों के प्राण उनके मूलाग्रों में ही बसते हैं। जैसे कुछेक जन्तु केवल गंध अथवा स्पर्श-संवेदन के सहारे ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं, वैसे ही जड़ों के ये सिरे अधिकतम जल, खनिज तथा अनुकूल ताप की ओर बढ़ते हैं और साथ ही परजीवी शत्रुओं से बचते जाते हैं।

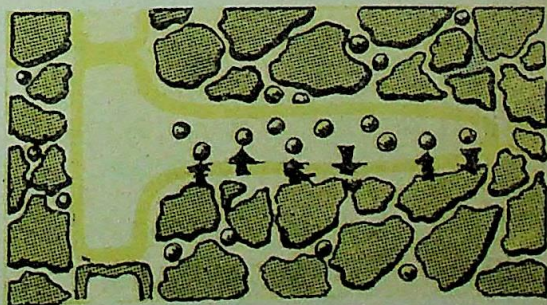
पौधों को प्रकृति द्वारा दिये हुए ऐसे विलक्षण नियंत्रक यंत्र का सुरक्षित रहना भी आवश्यक है। इन मूलाग्रों को न केवल ऊबड़-खाबड़ भूमि के विभिन्न स्तरों से गुजरना पड़ता है, बल्कि कठोर चट्टानों से भी जूझना

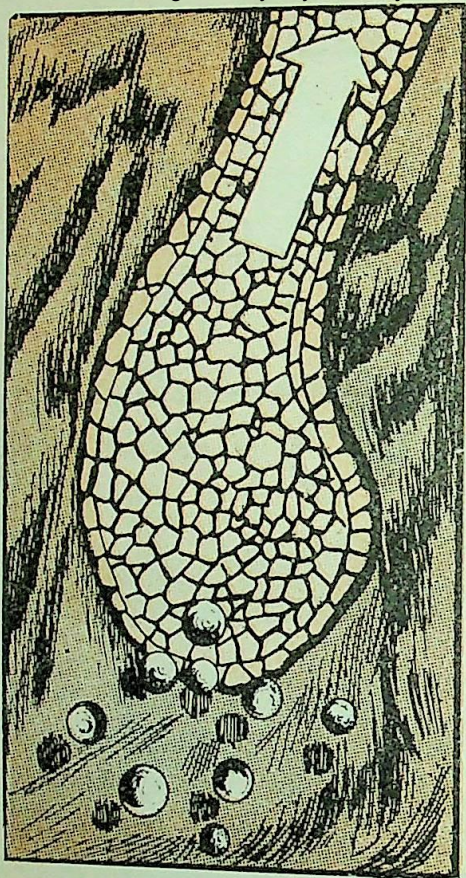
पड़ता है। उस नोक की सुरक्षा के लिए प्रकृति ने उसके ऊपर एक सख्त खोल की टोपी कैलिप्ट्रा (calyptra) दे रखी है। यह खोल भी बीच-बीच में आवश्यकतानुसार केंचुल की तरह नहीं चढ़ती रहती है। अनेक कोमल पौधों में यह खोल बगैर सूक्ष्मदर्शी के नहीं देखी जा सकती, किन्तु कुछेक पेड़-पौधों में स्पष्टतः देखी जा सकती है।

ये चट्टान-तोड़ जड़े

मूलाग्र के जरा पीछे जड़ का अपेक्षाकृत कठोर भाग रहता है। मूलाग्र की अपेक्षा

जब मूलरोमों द्वारा धरती से लवणादि शोषित किये जाते हैं तब उन तत्त्वों के अणुओं का आदान-प्रदान होता है ताकि उस क्रिया का संतुलन बना रहे





मूलरोम द्वारा रसाकर्षण का
एक विशालित दृश्य

जड़ का पिछला भाग अधिक वयस्क होता है। तने और टहनियों की भाँति ये जड़ें भी अपनी शाखा-प्रशाखाएँ बढ़ाने के साथ-साथ शरीर में कठोर होती जाती हैं तथा बढ़ती-फूलती जाती हैं। हम प्रायः देखते हैं कि मन्दिरों, मकानों की दीवारों से पीपल आदि के वृक्षों की शाखाएँ जब फूट निकलती हैं तब कंक्रीट तक की दीवारें चटखाकर रख देती हैं और कहीं-कहीं फर्श को भी तोड़ देती हैं। इनकी इस अपरिमित शक्ति का आभास एक उदाहरण से हो जाएगा जिसमें दो चट्टानों के बीच की दरार में जड़ों ने अपनी कारगुजारी प्रारम्भ करके अन्त में उनमें से एक २० टन वजनी चट्टान को उचकाकर उसके नीचे से अपना मार्ग बना लिया था।

यह निर्विवाद सत्य है कि समस्त चेतन जगत में पेड़-पौधों को सबसे अधिक जल की आवश्यकता होती है। यद्यपि जल का काफी भाग पत्तियों की वाष्पन-क्रिया द्वारा वायुमण्डल में लौट जाता है, तथापि उससे कहीं अधिक भाग जड़ें सोख लेती हैं। यह पाया गया है कि लगभग २ लाख पत्तियों वाला एक घना वृक्ष एक दिन में ७००-८०० गैलन जल वाष्पित कर देता है।

स्वाश्रयी जड़ें

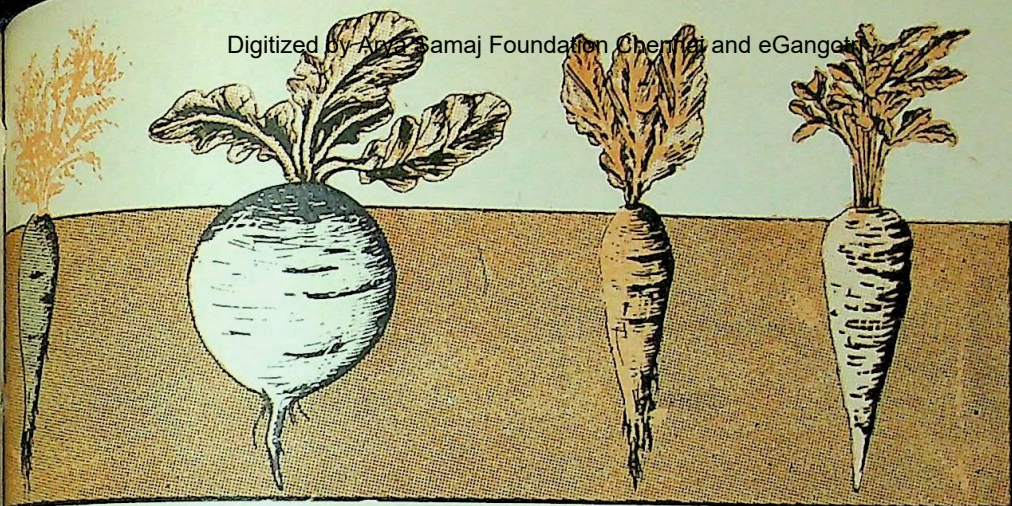
जड़ें अपनी जड़ जमाने के लिए दूसरों की मोहताज नहीं। अधिक से अधिक जल-अवशोषक अंग बढ़ाने के हेतु मूलाग्र के निकट ये अपने मूलरोम (root-hairs) उत्पन्न करती हैं। ये मूलरोम पम्पिंग स्टेशनों का काम करते हैं। इन्हीं की सहायता से जड़ें जल-भाग को ऊपर तने, टहनियों और पत्तियों तक पहुँचाती हैं। जल शोषण का कार्य भी इतना सरल नहीं है। जब मिट्टी में आर्द्रता कम होती है तब मूलरोमों को भूमि कणों से कठिन संघर्ष करना पड़ता है।

जड़ों की लम्बाई

जड़ों की कुल लम्बाई का सहज अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। प्रयोगस्वरूप कुछ वर्ग गज में फैले हुए एक वृक्ष की जड़ें ४४० फुट तक लम्बी पायी गयी थीं। इस हिसाब से केलीफोर्निया (अमरीका) के संसार-प्रसिद्ध २००-३०० फुट ऊँचे वृक्षों की जड़ें तो मीलों लम्बी होंगी!

तरह-तरह की जड़ें

जड़ों की, विशेषकर अस्थानिक (adventitious) जड़ों की, विविधता अनन्त है। सामान्यतः हम समझते हैं कि जड़ों को भूमिगत ही होना चाहिए; किन्तु इस नियम के भी अपवाद हैं। कुछेक उदाहरणों में मूलरोम तने तथा पत्तियों तक में पाये जाते हैं।



जड़ें जो खायी जाती हैं—मूली, गाजर, शकरकन्द, चुकन्दर आदि

जड़ों का अपवाद पर कलमों द्वारा कृत्रिम प्रजनन आधारित है। इसी के द्वारा वन्यकृतानुसार कलम लगाकर नये पौधे उत्पन्न करना सम्भव हो सका है। प्रकृति भी जो-कभी मूलरोमोंयुक्त पत्तियों तथा टहनियों से इस प्रकार घुमाती रहती है कि मूल संयोग प्राप्त होते ही उन पत्तियों से विकसित हो जाता है। भड़बेरी, फर्न (fern) तथा अन्य ऐसी ही पत्तियों की टहनियाँ जहाँ सहारा पाती हैं, वहाँ जम जाती हैं।

बाहर की ये जड़ें केवल वंशवृद्धि के लिए प्रयोग भी नहीं हैं। ऐसी अनेक जड़ें पेड़ को सहारा देने का भी काम करती हैं। इसके अतिरिक्त मक्का का पौधा तथा पाम वृक्ष हैं। इनके तने कैसे लम्बे और पतले होते हैं जो सिर से झुके-झुके पड़ते हैं? अतः इनको सिर रखने के लिए बाहरी जड़ें (prop-roots) निकलकर पुनः भूमि में गड़ जाती हैं। इनके तने अत्यधिक लचीले होते हैं। सहारा देने वाली ऐसी जड़ों से सम्पन्न भारत का वरगद सर्वश्रेष्ठ है। इसकी जड़ें नयी-नयी जटाओं, रेशों के रूप में निकलती हैं, बाद में नीचे की ओर झुकते-झुकते क्रमशः भूमि में प्रवेश कर जाती हैं।

वरगद अपने चारों ओर ऐसी असंख्य जड़ें लटकाकर मानो एक कुंज खड़ा कर देता है। ऐसे अनेक वरगद के कुंज हमारे देश में देखने को मिलेंगे जिनकी रमणीयता संसार में अप्रतिम मानी जाती है। ऐसे वटवृक्षों की आयु १००० वर्ष से भी अधिक पायी जाती है। इन्हें अश्वत्थ भी कहते हैं। मूलतः बुद्ध के अनुयायियों द्वारा इन अश्वत्थ वृक्षों का पूजन बड़ी श्रद्धा से किया जाता था। वे इनकी जड़ों को लम्बे, पोले बाँसों में पिरोकर वहाँ की वहाँ पहले से भुरभुरी बनायी हुई मिट्टी में रोप देते थे।

भारत में नर्मदा नदी के तट पर यही वह ऐतिहासिक वटवृक्ष है जिसके नीचे सिकन्दर महान के सैनिकों ने विश्राम लिया था



श्रीलंका. के डिजिटल पाठ्य (Digital Text) (Digitized by eGangotri)

स्थान पर एक वरगद की छत्रछाया में पूरा १०० भोंपड़ियों का गाँव बसा हुआ है। ऐसे ही कलकत्ता में एक १०० वर्षीय वरगद है जिसके तने का घेरा ४२ फुट है और १०-१० फुट घेरे वाले इसमें २३२ जड़ों के स्तम्भ हैं।

अनेक बेलों, लताओं से ऐसी जड़ें निकलती हैं जिनका काम केवल सहारे को पकड़कर बेल को चढ़ने में सहायता प्रदान करना है। ये जड़ें अपने सहारे को पकड़े रहती हैं और बेल को उसके भार से नीचे नहीं गिरने देतीं। संयोगवश यदि इनकी पकड़ छूट जाए तो वह छूटा हुआ सिरा जल्द ही सूखकर गिर जाता है।

आतिथ्य का पुरस्कार नागपात्र

दूसरों पर चढ़ने-लिपटने वाली परारोही वनस्पतियों (epiphytes) में अनेक परजीवी

भी होती हैं। इन्हीं में कुछ पौधे तो वृक्षों के रूप में बढ़ जाते हैं। पक्षियों द्वारा उन वृक्षों की टहनियों पर भूले-भटके छोड़े गये बीज समय पाकर फल-फूल उठते हैं और क्रमशः रस्सी की भाँति अपनी जड़ों का जाल लटकाये रहते हैं। ये ही रस्सेनुमा जड़ें जिस आश्रयदाता वृक्ष में पोषण पाती हैं, उसी के तने से नागपाव की तरह लिपटकर कालान्तर में उसका काल हो बन जाती हैं।

इन जड़ों की विभिन्नताओं और विलक्षणताओं का अन्त नहीं है। कहीं तो ये भूमिगत रहकर पेड़-पौधों को मजबूती से पकड़े रहती हैं। कहीं तने पर बाहर ही फूट निकलती हैं, कहीं रस्से बनकर लटकती हैं, सीढ़ी बनकर चढ़ती हैं, कसकर लिपटती हैं तो कहीं आवश्यक वातानुकूलन का भी प्रयोजन करती हैं।

दुर्लभ आराम और राहत के लिये

जंशीना

जोशीना प्रसिद्ध यूनानी नुस्खे 'जोशान्दा' का एकस्ट्रेक्ट है। यह जुकाम के सभी लक्षणों को तुरन्त दूर करती है, वन्द नाक को खोलती है और आराम पहुँचाती है।

जोशीना की एक शीशी सदा
अपने पास रखिये ।



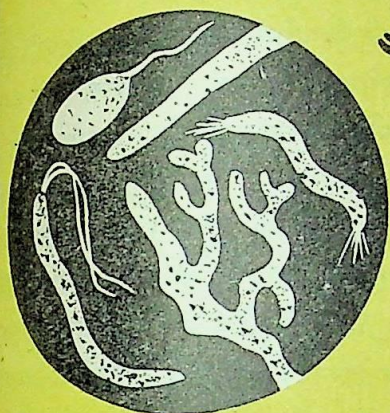
देहली • कानपुर • पटना



३०६

आक्सीजन

बही चाहिए



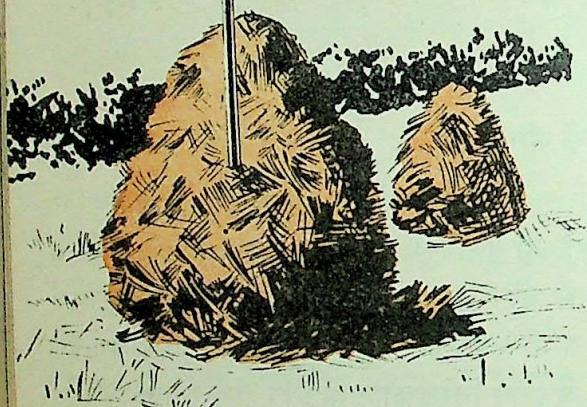
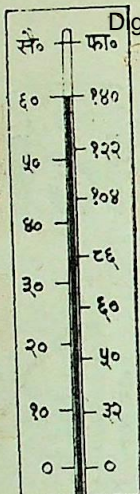
डा. विनोदबिहारी श्रीवास्तव

आक्सीजन की अनिवार्यता सृष्टि का प्रमुख विधान है। कुछ ऐसी वनस्पतियाँ जो प्रवास में आक्सीजन निकालती हैं उन्हें भी स्वसन में आक्सीजन की आवश्यकता होती है। इस नियम के अपवाद भी हैं। कुछ एककोशीय अत्यन्त सूक्ष्म वनस्पतियाँ तथा जीवाणु ऐसे हैं जो किंचित भी आक्सीजन पर निर्भर नहीं। वे आरम्भ से अन्त तक अपना जीवन ऐसे वातावरण में बिता देते हैं, जहाँ आक्सीजन का अस्तित्व सम्भव ही नहीं। निश्चय ही, आक्सीजन के प्रति उदासीन ऐसे सूक्ष्माणु सृष्टि का अति अल्प भाग घेरते हैं। ये जीव-जगत के इतने निम्न स्तर पर होते हैं कि वहाँ यह कहना सम्भव नहीं कि ये जन्तु हैं अथवा वनस्पति। उच्चतर श्रेणी के जन्तु तथा वनस्पतियाँ अपनी आन्तरिक ऐसी रासायनिक क्रियाओं द्वारा पचाये हुए भोजन को ऊर्जा में परिवर्तित करते रहते हैं जो आक्सीजन द्वारा सम्पन्न होती है। दूसरी ओर ये सूक्ष्माणु बगैर आक्सीजन के ही सम्पन्न होने वाली रासायनिक क्रियाओं से जीवन-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

उदाहरणार्थ हम बैक्टीरिया को ले सकते हैं जो दूध के शर्करा भाग को लैक्टिक एसिड में बदलकर दूध का दही बना देता है तथा कभी-कभी उसे फाड़ भी देता है। जीव-जगत में इतने निम्न कोटि के और केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही दिखाई देने वाले ये बैक्टीरिया मानव के बहुत काम आते हैं।

ज्यों-ज्यों उद्योगों का विकास होता जा रहा है तथा बस्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, त्यों-त्यों नदी-नालों की गंदगी भी बढ़ती जा रही है। कारखानों से लगे हुए नाले-पोखर गंदगी की अधिकता के कारण अपना संचित आक्सीजन तो खो ही देते हैं, नया आक्सीजन प्राप्त करने में भी असमर्थ हो जाते हैं। परिणामतः उसके समस्त जल-जीव नष्ट हो जाते हैं। इतने पर भी सहज ही आँखों से दिखाई न पड़ने वाले ऐसे सूक्ष्माणु तो बने ही रहते हैं जो बगैर आक्सीजन के भी जीवित रहते हैं। ये बैक्टीरिया पानी में संचित मृत पदार्थों को क्रमशः सरल यौगिकों में काटते-छाँटते तथा उनका पृथक्करण करते-करते उन्हें खनिज क्षारों तथा लवणों की स्थिति में ले आते हैं।

नवम्बर १९६३



फूस का यह ढेर स्वतः ही ताप-वृद्धि प्राप्त कर लेता है। इसे आक्सीजन नहीं चाहिए।

वे खनिज क्षार तथा लवण, पानी और कार्बन डाइआक्साइड मिलकर एककोशीय वनस्पति, एलगी का प्रमुख भोजन बन जाते हैं। जैसे-जैसे यह एलगी बढ़ती है, अन्य एककोशीय जीवाणु भी पोषण पाते चलते हैं। वे जीवाणु स्वयं छोटी-छोटी मछलियों का आहार बनते हैं और इस प्रकार यदि वह पानी किसी रासायनिक मिश्रण द्वारा विषैला न बना दिया गया हो तो कालान्तर में वह स्वयं ही गंदगी से मुक्त होकर पुनः साफ हो जाएगा।

दूसरे प्रकार के बैक्टीरिया घास-कूड़े के ढेर पर मिलते हैं। ढेर के कुछ सीला होने पर भी ये बैक्टीरिया उसका ताप बढ़ाकर 140°F तक पहुँचा देते हैं। यदि वह अधिक गीला हुआ तो वह ढेर जल उठने के ताप तक भी

पहुँच जाएगा। तीसरी श्रेणी के बैक्टीरिया नाइट्रोजन का स्थानिकरण कर देते हैं। उन्हीं के प्रभाव से कृषि-योग्य भूमि की उर्वरता बनी रहती है।

इनके विपरीत, टायफाइड, डिप्थीरिया तथा डिसेन्टरी जैसे रोग उत्पन्न करने वाले हानिकारक बैक्टीरिया एवं रिंगवर्म, हुकवर्म, टेपवर्म आदि सूक्ष्म जीवाणु जन्तुओं तथा मनुष्यों के शरीर में, विशेषतः आँतों में पनपते रहते हैं। वहाँ आक्सीजन का सर्वथा अभाव रहने पर भी इन्हें कोई परेशानी नहीं होती।

बैक्टीरिया के पश्चात् फन्जाई के विशाल परिवार में खमीर (yeast) आता है। खमीर भी एककोशीय है और बगैर सूक्ष्मदर्शी के नहीं देखा जा सकता। यह तो कहना सत्य नहीं है कि खमीर बगैर आक्सीजन जीवित रह लेता है, किन्तु यह निश्चित है कि यदि इसे मुक्त आक्सीजन न मिले तो भी यह घाटे में न रहेगा। विशेषतः शर्करा में से यह आक्सीजन स्वयं के लिए निकालकर उसमें कार्बन डाइआक्साइड और अल्कोहल शेष छोड़ देता है।

खमीर सड़े-गले फल पर बहुत जल्दी दिखाई दे जाता है। प्राचीन काल से इसका उपयोग मदिरा जैसे नशीले पेय बनाने में होता आया है। मदिरा की उत्तमता खमीर की प्रकृति पर ही निर्भर रहती है।

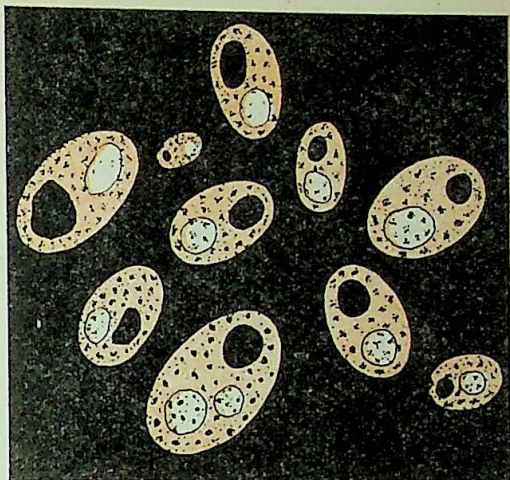
मदिरा के अतिरिक्त रोटी बनाने में भी खमीर का उपयोग होता है। गूँधे हुए आटे में किंचित खमीर मिला देने से उसमें तेजी और खटास आ जाती है। आटे के शर्करा भाग से खमीर आक्सीजन तो स्वयं में मिला लेता है और कार्बन डाइआक्साइड बुदबुदों के रूप में उठा के अल्कोहलीय तत्त्व द्वारा उसमें तेजी तथा खटास उत्पन्न कर देता है। रोटी को आग पर सेंकते समय अल्कोहलीय तत्त्व तथा कार्बन डाइआक्साइड उड़ जाता है और

ब्र माना जाता है कि वह रोटी तासीर में
हल्की है।

खमीर को अपना प्रभाव दिखाने के लिए
यह आवश्यक है कि सम्बन्धित पदार्थ का
शर्करा भाग घोल की अवस्था में हो, शुष्क
ही। तनिक उच्च ताप भी इसकी सक्रियता
को वेग प्रदान करता है। यह अपनी वृद्धि
गोल दानों के रूप में करता है। एक बड़े दाने
के चारों ओर छोटे-छोटे दाने उग आते हैं जो
इसकी नवांकुरित कलियाँ ही होती हैं। बढ़ते-
बढ़ते दाने कभी छितरा जाते हैं, किन्तु
अधिकतर माला के रूप में ही रहते हैं।

फलों का रस भी खमीर का उत्पादक है।
रस का शर्करा भाग खमीर द्वारा खपा
लिये जाने पर वह रस खट्टा हो जाता है।
ग्लूकोस डाइआक्साइड का अल्पांश तथा
एल्कोहल का अधिकांश उसमें बना रहता है।
इस क्रिया को फर्मेंटेशन (fermentation)
कहते हैं। मदिरा बनाने में यही विधि काम
आती है।

इन गुणों के कारण खमीर अब विशेष
रूप से उत्पादित किया जाने लगा है और



ये खमीर के सूक्ष्माणु हैं जो बगैर आक्सीजन ही फल-
फूलकर डबलरोटी में खटास और मदिरा में
अल्कोहलीय गुण उत्पन्न करते हैं

तैयार टिकियों के रूप में भी मिलता है।
टिकियों को रखे रहने में यह सावधानी रखनी
पड़ती है कि उनमें शर्करा तथा पानी की मात्रा
इतनी न रहने पाये कि रखे ही रखे वे अपना
काम शुरू कर दें और कुछ न मिलने पर स्वयं
को ही खा डालें। इन्हें काफी ठण्डक में भी
रखना आवश्यक है अन्यथा ताप में ये शीघ्र ही
सक्रिय हो उठते हैं।

आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।

—जवाहरलाल नेहरू

देश की रक्षा आपका भी काम है

मर्चे पर लड़ने वाले एक सैनिक को पर्याप्त रूप से लेस करने के लिए देश के
अन्तर ५० से १०० व्यक्तियों को काम करना होगा। रक्षा सम्बन्धी बढ़ती हुई
असरतों को पूरी करने के लिए अधिकाधिक सामान और रसद निरन्तर पहुंचती
रहनी चाहिए।

आपका काम बहुत महत्वपूर्ण है। हर किस्म की बरबादी रोकिये, मुस्ती या डोल
छोड़िये, जो-तोड़ मेहनत कर के राष्ट्र की कुशलता बढ़ाइये।

आपका अनुशासन भारत की शक्ति है



अप्रैल १९६३

मछलियों की भाषा

डा. शिवगोपाल मिश्र

प्रव मछलियों को केवल जाल द्वारा पकड़ने की प्रथा में परिवर्तन होने की सम्भावना होने लगी है। इस दिशा में जो प्रयास हुए हैं उनमें हैम्बर्ग इंस्टीट्यूट फॉर फिशिंग गियर एण्ड मैटीरियल के प्रयास सराहनीय हैं। इस इंस्टीट्यूट ने एक योजना बनायी है जिसके अन्तर्गत मछलियों को उनकी भाषा का प्रयोग करके पकड़ा जाएगा। यह कार्य २ वर्ष पूर्व मरीन बायोऐक्यूस्टिक (समुद्री जैव ध्वनिकी) नाम से प्रारम्भ किया गया था। यद्यपि जर्मनी में यह नया प्रयास है किन्तु अमरीकियों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इस दिशा में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की थी। यह देखा गया कि समुद्री जल के भीतर जितना कोलाहल एवं शब्द होता है उसके कारण पनडुब्बियों के संचालन में कठिनाई पड़ती थी फलतः ऐसी विधि ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता हुई जिससे इस प्रकार के समस्त शाब्दिक व्यवधानों को दूर किया जा सके।

जर्मनी में समुद्रीजल के भीतर की ध्वनियों का पता लगाने का कार्य डा. फ्रेटैग ने बड़ी ही कुशलता के साथ दो ही वर्षों में पूरा कर लिया है। अब वे अपने इयरफोन की सहायता से विभिन्न समुद्रों की पृष्ठभूमि ध्वनि स्तर में अन्तर बता सकते हैं, किन्तु अभी तक इस प्रकार की कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये ध्वनियाँ लहरों, तरंगों तथा चट्टानों से उत्पन्न प्रतिध्वनियों एवं कई से आच्छादित पेटी के कारण उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार डा. फ्रेटैग उत्तरी सागर,

वाल्टिक सागर तथा उत्तरी अटलांटिक सागर की ध्वनियों का अध्ययन कर चुके हैं। इन ध्वनियों के अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न प्रकार की मछलियों द्वारा उत्पन्न ध्वनियों का भी अध्ययन किया है। फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जर्मनी के आसपास समुद्र के भीतर मछलियों द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ ठीक उसी प्रकार की हैं जैसी अमरीका के समुद्री किनारे की मछलियों से उत्पन्न।

मछलियों द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं। एक वे, जो दो करोड़ पदार्थों के टकराने से उत्पन्न टकटक की ध्वनि जैसे कि केकड़ों के संडसों से टकराने के कारण तथा दूसरी सम्बद्ध ध्वनि, जो सभी प्रकार की मछलियों के ब्लाडर द्वारा उत्पन्न होती है। यही कारण है कि विभिन्न समुद्रों में समुद्री जन्तुओं के अनुसार ही उनसे प्राप्त ध्वनियों सुनी जाएँगी। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न समुद्रों एवं समुद्र तटों के जल के भीतर की बोलियाँ भिन्न होंगी। यदि हम यह चाहें कि हमें विभिन्न वक्ताओं का ज्ञान हो सके, तो हमें इनका अध्ययन करना होगा। हैम्बर्ग इंस्टीट्यूट में ऐसा ही किया गया है। इसके लिए जलाशय की पानी को खर के रेशों से बनी चटाई द्वारा ध्वनिरोधी (sound-proof) कर दिया गया है। प्रत्येक प्रकार की मछली द्वारा उत्पन्न की ध्वनि का अध्ययन किया गया। यह देखा कि सभी मछलियाँ बोलना चाहती हैं किन्तु उनमें से एक भूरी गुर्नाई मछली ऐसी थी

न तो काँच के दण्ड छूने से जलने का और न बिजली के शाक द्वारा ही बोली। किन्तु विचित्र बात यह देखी गयी कि जैसे ही उसी किस्म की दूसरी मछली जलाशय में डाली गयी तो उस पहली मछली ने अपना मौन भंग किया। फिर तो दोनों ने विचित्र ध्वनियाँ उत्पन्न कीं, जैसे अपने दुश्मनों को आगाह कर रही हों। एक अन्य प्रयोग में, जो बाल्टिक सागर की खाड़ी में सम्पन्न हो रहा था, छिछले जल के भीतर एक कटकट की आवाज सुनाई पड़ी किन्तु ढूँढ़ने पर वह कहीं नहीं मिली। अन्ततः एक काड मछली पकड़ी गयी जिसके पेट में ऐसे अनेक केकड़े मिले जिनकी वह ध्वनि थी।

समुद्र के भीतर ध्वनियों की विविधता इस बात से स्पष्ट है कि ऐसी अनेक ध्वनियाँ हैं जिनमें कोई तारतम्य नहीं होता और फलतः उन्हें समझना अब भी शेष है। ऐसी ध्वनियाँ हैं—सिटकारी की ध्वनि, कराहने की ध्वनि अथवा उच्च घोष। अभी तक अनेक स्तनपायी प्राणियों की ध्वनियों का कोई अध्ययन नहीं हुआ। ये प्राणी हैं—समुद्री शेर, सील मछलियाँ आदि। हैम्बर्ग में इन प्राणियों की ध्वनियों (आवाजों) को रिकार्ड करने के प्रयास किये गये, किन्तु यह देखा गया कि इनमें से अधिकांश बन्दी पशु या तो बिलकुल मुस्त थे अथवा जो माइक्रोफोन उनके सम्पर्क में रखा गया था, उनमें वे कुछ बोले ही नहीं, वे उससे खेलते ही रह गये।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि अब पृथक्-पृथक् ध्वनियों का वैज्ञानिक विवेचन होने लगा है। हेरिंग शोल द्वारा उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति ७०००-८००० चक्र प्रति सेकण्ड है, वह हेरिंग के मुँह से नहीं निकलती वरन् जब हेरिंग करवट लेती है तो उसके शरीर के जल के बीच उत्पन्न कम्पनों के कारण जनित होती है। साथ ही पृथक्-पृथक्

ध्वनियों में अन्तर का कारण भी समझ में आने लगा है जैसे कि गुनार्ड की ध्वनियों को मोहक ध्वनि, सम्पर्क ध्वनि, चेतावनी ध्वनि या फटकार ध्वनि के रूपों में जाना जा सकता है।

इस अध्ययन का उपयोग मछलियों के पकड़ने में किया जाने लगा है। मछली पकड़ने के प्रयोगों में जल के भीतर लाउडस्पीकर लटका दिये जाते हैं और उनमें मछलियों की बोलियों या भाषाओं को प्रेषित किया जाता है। इससे मछलियाँ जालों की ओर आकर्षित होती हैं। इससे एक दूसरा लाभ यह होता है कि भयवश जो मछली चट्टानों में छिपी रहती है, उन्हें विचित्र ध्वनियों द्वारा जगाया जा सकता है। वे अपने गुप्त स्थानों को त्यागकर दूसरी ओर भागने लगती हैं, तब उन्हें पकड़ लिया जाता है।

हैम्बर्ग इंस्टीट्यूट ने उपयोगी मछलियों की ध्वनियों के तमाम रिकार्ड तैयार किये हैं जिन्हें मछली पकड़ने वाले मछुए उपयोग में ला सकते हैं। विशेषतया काड मछली की गलगलाने की ध्वनि के रिकार्ड बन चुके हैं। इन रिकार्डों को बजाने से मछली उसी ओर दौड़ेगी, तभी उसे पकड़ा जा सकता है।

यही नहीं, मैक्स प्लांक सोसाइटी के हाइड्रोबायोलोजिकल इंस्टीट्यूट में एक वृहद कार्प (मछली) जिसका नाम जानी है, पकड़ कर रखा गयी है और उसकी पूँछ में एक छोटा-सा अल्ट्रासोनर ट्रांसमीटर बाँध दिया गया है। इस ट्रांसमीटर द्वारा कम्पन उत्पन्न होते हैं जिन्हें जल की सतह के ऊपर ग्राही यंत्र द्वारा जाना जा सकता है। इस प्रकार से जिस दिशा में मछली बढ़ेगी उसे अंकित किया जा सकता है। इस नवीन प्रणाली से न केवल मछलियों के पकड़ने में सहायता मिलेगी वरन् मछलियों के स्थानान्तरण पर भी काफी प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

उत्तर रेलवे

सूचना

१-१०-१९६३ से लागू होने वाली उत्तर रेलवे समय-सारणी (अंग्रेजी संस्करण) में पायी गयीं निम्न त्रुटियाँ संशोधन सहित जनसाधारण की सूचनार्थ प्रस्तुत हैं :

पृष्ठ सं.	ट्रेन नं.	स्टेशन	सही पढ़ें	अशुद्ध मुद्रित
XXIII	३१	बम्बई (वी.टी.)	छ. १३-१०	१३-१५
XXXIV	१	गौहाटी	छ. २२-१०	२२-४०
"	७/४	मनमड	प. ०-२	०-०
XXXV	७/४	जबलपुर	छ. १३-५	२३-५
XXXVIII	२	बरौनी	छ. १-५५	२१-५५
XL	ट्रेन (नं. ६-मेल के नीचे १८-एच. के स्थान पर नं. ४२-एक्सप्रेस पढ़िए)			
XLII	३२८ (चाहिए ४४)	वर्दवान	छ. १६-१३	१३-१३
LIV	२६	अम्बाला कैण्ट	छ. १०-२३	१०-३२
"	३२ (चाहिए ३३)	भोपाल	प. २२-५०	१७-५०
"	८७	नागदा	छ. १५-२०	१५-२६
"	८७	उज्जैन	प. १६-५६	१६-५०
A	२८	करनाल	प. १८-३६	१८-४६
७	१०	राएसी	छ. २१-४२	२१-४२
		बलावली	छ. २१-५५	२१-५५
		चन्दोक	छ. —	०-००
३७	३७१	सहारनपुर	प. १-००	२२-८
६२	५७	वरका	छ. २०-८	१४-५५
६५	१० जे.एच.	नसराला	छ. १५-५४	६-२१
६७	२ जे.एन.	शंकर	छ. ६-३१	११-२२
७५	३३५	कबरवाला	छ. १७-२२	६-५१
९१	२ ए.जे.	प्रयाग	छ. ६-३२	५-४१
१०८	४ बी.एस.एच.	दिपलाना	छ. ५-४४	१२-२६
११२	२ जे.जे.पी.	ओसीयन	छ. १२-३६	१४-५१
११८	२ पी.बी.जे.	मंगावल	छ. १३-५३	१३-५३

भूमिगत जलस्रोत

रमेशचन्द्र

जहाँ कहीं भी कुआँ खुदता है, हम देखते हैं कि २५, ५० या १०० फुट और कहीं-कहीं इससे भी अधिक गहराई पर पानी मिलता है। हमारी पृथ्वी के अन्तर्स्तर केवल सागर-सरिता के तटों पर ही नहीं, अति शुष्क स्थलों पर भी जल-संतृप्त हैं। यह दूसरी बात है कि जलस्रोत कहीं कम गहराई पर मिलते हैं और कहीं अधिक। पृथ्वी के विभिन्न भू-स्तरों की रचना में इस भूमिगत जल का महत्त्वपूर्ण योग है।

जल-चक्र

सूर्य द्वारा तप्त वायुमण्डल सागर, सरिता तथा पृथ्वी-तल से निरन्तर जल-शोषण करता रहता है। वह शोषित जल वर्षा, ओस तथा हिम के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। अनुमान है कि एक वर्ष में वर्षा का कुल जल इतनी मात्रा में हो सकता है कि वह समस्त भूमण्डल को तीन फुट की ऊँचाई तक लपेट ले। वर्षा द्वारा जल का यह

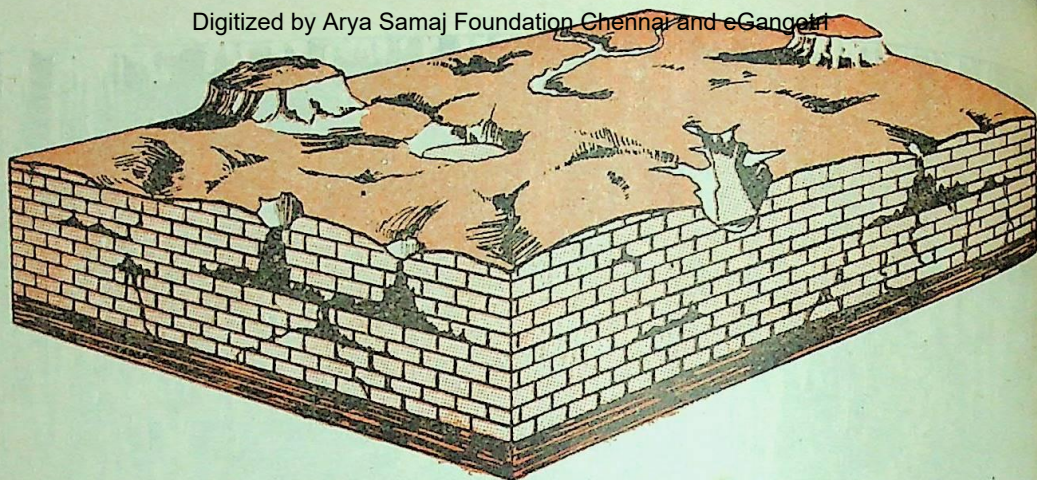
पुनरागमन पृथ्वी के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की विभिन्न वायुमण्डलीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

वर्षा का यह जल ढलानों पर उतरता, दौड़ता तथा भरनों, तालाबों और नदियों आदि को उफनाता हुआ सागर में जा मिलता है। साथ ही, वनस्पतियों तथा जंगलों को तृप्त करता जाता है और अल्पांश में पुनः सूर्य ताप से वाष्पित होकर उड़ जाता है।

धरती की प्यास

धरती की प्यास अनन्त है। धरती पर गिरते ही पानी मिट्टी में समाने लगता है। यदि मिट्टी के कण बालू जैसे मोटे और छितरे हुए मिले तो जल्दी उतर जाएगा और यदि चिकनी मिट्टी जैसे बारीक और सटे हुए हों तो देर लगेगी। इस कार्य में पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बहुत सहायता करता है। फिर भी जल का कुछ भाग रजकण पी ही लेते हैं। यही कारण है कि वर्षा के काफी दिन बाद भी

नवम्बर १९६३



भूमिगत चूना-पत्थर की सतहों में पानी इसी प्रकार खोहें, भरने और गड्ढे बना लेता है खोदने पर भीतर से मिट्टी गीली निकलती है।
 जिन प्रदेशों में वर्षा बहुत कम होती है वहाँ गीली मिट्टी और पानी के लिए अधिक गहराई तक खोदना पड़ेगा। पानी जब नीचे उतरता हुआ ठोस चट्टानों (dead rocks) तक पहुँचता है तो वहाँ छिद्रों तथा दरारों से रिस-रिसकर आगे बढ़ता है। अन्त में चिकनी मिट्टी की तथा अन्य चट्टानों की ऐसी तहें आती हैं जहाँ भरने के लिए दरारें या गड्ढे जैसा कुछ भी नहीं रहता और वहाँ पानी समतल बहता रहता है। उस भाग को स्रोत-सतह (water table) कहते हैं।

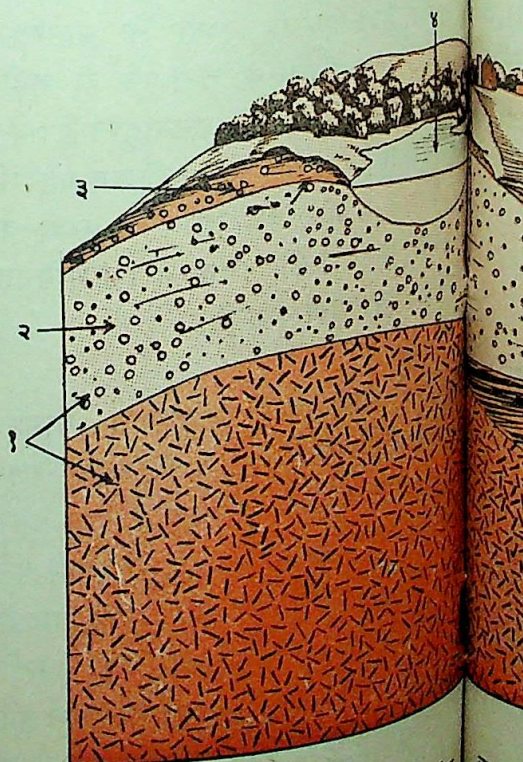
भूमिगत जल की समस्त क्रियाएँ वहाँ की चट्टानों पर आधारित हैं। स्लेट-पत्थर की चट्टानें पानी को रिसने नहीं देती, रेतीली सतहें पानी को सोखती रहती हैं और चूने की परतों को वह पानी घुलाकर नीचे उतारता रहता है। केवल कुछ ही सौ फुट की गहराइयों पर स्थित ऐसे भरनों से कुएँ पानी प्राप्त करते हैं। २०० फुट से अधिक नीचे उतरने पर दबाव इतना बढ़ जाता है कि पानी रुकने लायक स्थान ही नहीं रहता।

पुराने और नये कुएँ

पुराने ढंग के कुओं में केवल यह होता था कि गड्ढा खोदते गये और चारों ओर की

दीवारें सुदृढ़ बनाते गये ताकि मिट्टी गिरे नहीं। अब नये बोरिंग के कुओं में एक नाकेदार पाइप को नीचे उतारते जाते हैं। उस पाइप के ऊपरी सिरे पर पानी खींचने के लिए एक पम्प लगा रहता है।

पृथ्वी के विभिन्न अन्तर्स्तर : १. संतृप्त स्तर, ११. स्लेटी पत्थर, १२. चूना पत्थर। जहाँ जलस्तर नीचे उतर जाता है, वहाँ समस्त पानी (६)



भूमिगत चट्टानों के कारण स्थल-स्थल पर प्राप्त पानी की मात्रा तथा गुणों में अन्तर पड़ता जाता है। अतः खुदाई करने वाला बीच-बीच में मिट्टी, रेत तथा चट्टानों के नमूनों का सूक्ष्म निरीक्षण करता रहता है जिससे उसे मालूम होता रहे कि कितनी गहराई पर कैसा और कितना पानी मिलेगा। कभी-कभी कुएँ से निकलता ऊपर-ऊपर का पानी बहुत कम मात्रा में तथा कारखानों और गटरों आदि की गंदगी से दूषित मिलता है। उस स्थिति में उस पानी को छोड़कर और भी गहरे उतरना आवश्यक हो जाता है।

उत्स्रोत कुएँ

इन्हें आर्टेजियन (Artesian) कुएँ कहते हैं। फ्रांस के आर्टोइज (Artois) नामक स्थल पर सबसे पहले ऐसे कुएँ का पता लगा था।

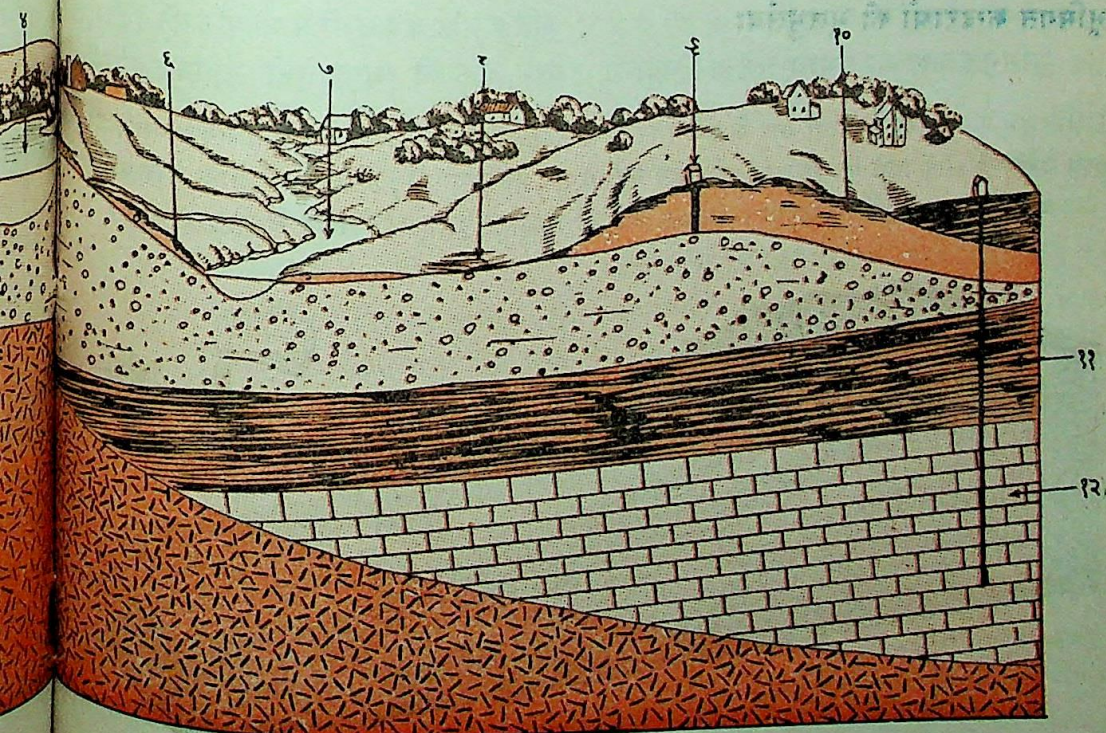
सामान्यतः ये जलस्रोत कुएँ काफी गहराई पर पाये जाते हैं किन्तु इनके पानी को ऊपर आने में कठिनाई नहीं पड़ती, क्योंकि ऐसे कुओं का मूलस्रोत उसके पानी की सतह से काफी ऊँचा रहता है।

भूमिगत पानी में अनेक खनिज लवण घुले रहते हैं। कैल्सियम तथा मैगनीशियम के प्रभाव से पानी भारी (hard) हो जाता है। ऐसे पानी में साबुन के भाग नहीं उठते। कुछेक मरुस्थलीय कुओं का जल तो पीने योग्य भी नहीं होता जबकि कुछ स्थलों पर पाये जाने वाले गंधक-मिश्रित स्रोतों में नहाने से चर्मरोग दूर हो जाते हैं।

जब स्रोत सतह गिरती है

लम्बे समय तक सूखा पड़ने तथा अनावृष्टि के कारण कुओं का पानी घटता जाता है। जब घटते-घटते कुएँ के तल से भी नीचे

जलस्तर, ४. झील, ५. कुआँ, ६. झरना, ७. सरिता, ८. दलदल, ९. निष्क्रिय कुआँ, १०. जलस्तर, जहाँ जलस्तर पर आ जाता है, वहाँ झील, कुआँ, झरना तथा दलदल आदि बन जाते हैं, इसके विपरीत, जहाँ जलस्तर गिरती है। उपरोक्त चित्र में प्रथम कुआँ (५) संरंध्र बलुआ पत्थर (२) से जल प्राप्त कर लेता है। कुआँ (६) गिरते हुए जलस्तर के कारण सूखा ही रह गया



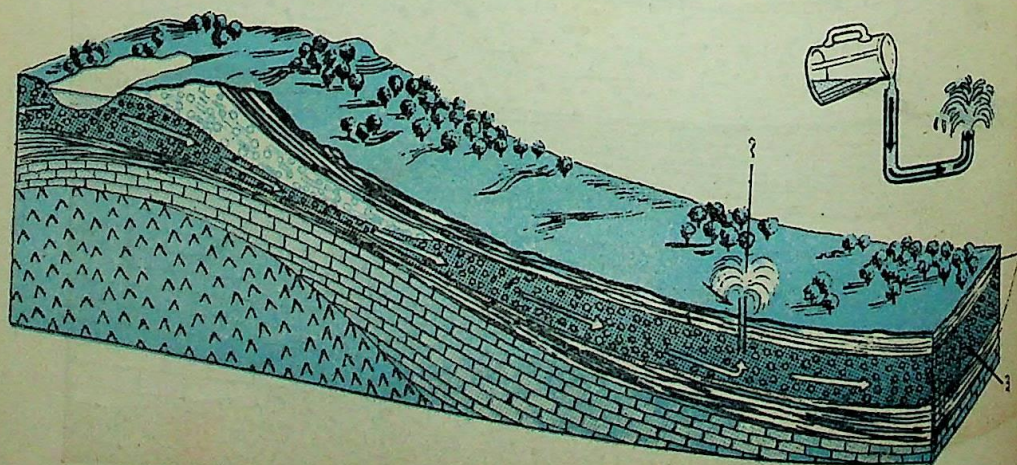
उतर जाता है, पानी बहा जाता है और कुआँ सूख गया। इसके अतिरिक्त कुएँ का पानी जब उसकी प्राप्ति से अधिक खर्च कर दिया जाता है तब भी यह संकट उपस्थित हो जाता है। उदाहरणार्थ अमरीका के दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्रों में कुओं से इतना अधिक पानी खींचा जाता है कि उसकी पूर्ति वर्षा तथा अन्य स्रोतों से नहीं हो पाती। फलतः कुओं की स्रोत-सतह जल्द ही गिर जाती है और कुएँ सूख जाते हैं।

स्रोत-सतह गिरने के प्रभाव भी बड़े हानिकारक होते हैं। सतह के गिरने के साथ भूमिगत चट्टानों और भू-स्तरों में जब खाली जगह पड़ जाती है तब विकट संकट उपस्थित हो जाता है। मेक्सिको में कहीं-कहीं स्रोत-सतह गिरने के कारण १-२ फुट प्रति वर्ष के हिसाब से धरती नीचे को दबती जाती है। फलतः मकानों की दीवारें तड़क जाती हैं, सड़कें धसक जाती हैं और जमीन में विछायी हुई पानी तथा गैस की पाइप-लाइनें टूट जाती हैं।

भूमिगत कन्दराओं की भूलभुलैया

भूमिगत जल का प्रभाव चूने की चट्टानों

उत्स्रोत कुएँ की उत्पत्ति—बायीं ओर के ऊँचे स्तर से आता हुआ पानी स्लेटी चट्टानों तथा संतृप्त स्तर (२, ३) के मध्य बहता है और वहीं पर बोरिंग का पाइप पहुँचने पर इसलिए (१) ऊपर उछल आता है कि उस बहाव का मूल स्तर काफी ऊँचा था। विज्ञान का यह सिद्धान्त पृथक् छोटे चित्र में दिखाया गया है



विज्ञान-नोके

उदाहरण—केन्टकी (अमरीका) की विशाल कन्दरा (Mammoth Cave) है। अनुमान है कि लगभग २५ करोड़ वर्ष पूर्व मेक्सिको की खाड़ी का एक सिरा अमरीका के क्षेत्र तक पहुँचा होगा और वहाँ लगभग ३ करोड़ वर्ष रहा भी होगा। तत्पश्चात् वहाँ भूमि में उभर आने से समुद्र की वह धारा लुप्त हो गयी होगी और जाते-जाते हजारों वर्ग मील के विस्तार में चनायुक्त मिट्टी और दलदल छोड़ गयी होगी। उस दलदल में समुद्री वनस्पतियाँ तथा जन्तु दबते रहे और क्रमशः उसकी मोटाई १२००० फुट हो गयी। एक लम्बे समय तक वहाँ की स्रोत-सतह काफी ऊँची रही। उसमें पड़ी हुई दरारों और गड्ढों में पानी रमता रहा। पानी में घुले हुए आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड चूने में निहित कैल्सियम कार्बोनेट को कुरेद-कुरेदकर खाते रहे, घुलाते रहे। वे छोटी-छोटी दरारें बड़ी और गहरी होती-होती फैलती गयीं। उनमें से कई तो गहरे खाई, खंदक और कंदराओं में भी परिवर्तित हो गयीं। अब तक की प्राप्ति ऐसी भूमिगत कंदराओं

पानी के नीचे बहने वाली पानी की तीव्र ताप में वाष्पित हो जाता है तब अवक्षेपित चूना एकत्र होता-होता कहीं शंकु, कहीं अंगूठी तो कहीं खम्भे के रूप में ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता रहता है। ऐसे खम्भों के बढ़ते जाने से सुरंगें अंदर ही अंदर मीलों लम्बी बढ़ती जाती हैं। इन ऊपर से नीचे उतरते खम्भों को अवशैल कहते हैं तथा इनकी उलट स्वरूप जो खम्भे नीचे से ऊपर उठते जाते हैं उन्हें उच्छशैल कहते हैं। जहाँ कहीं ये दोनों आपस में मिल जाते हैं वहाँ पूरा खम्भा ही बन जाता है।

पानी द्वारा एक फुट तक की मोटाई कटने में २००० वर्ष लगते हैं। हमारी पृथ्वी के अन्दर लाखों मील लम्बी इन सुरंगों का जाल फैला हुआ है। अनेक स्थल ऐसे भी हैं जहाँ इन सुरंगों के ठीक ऊपर, पृथ्वी पर बाहर दिखते हुए गड्ढे हैं जिन्हें सिंक (sink) कहते हैं। सम्भव है ऐसे गड्ढों के मार्गों से ही अनेक सरिताएँ पृथ्वी में समा गयी हों।

ऐसे गड्ढे वाले कुछेक स्थल—उपरोक्त केन्टकी विस्तार चिह्नित कर दिये गये हैं। वे स्थल आज ऐसे सैलानियों के लिए आकर्षण-केन्द्र बने हुए हैं जिन्होंने स्पेलम किंग नामक एक नया तैराकी खेल ईजाद कर रखा है। इस खेल में कुशल तैराक कृत्रिम बवसन तथा अन्य सुरक्षा-साधनों से लैस होकर इन कन्दराओं में उतरते हैं और उनकी अतल गहरी सरिताओं में तैरने का आनन्द लेते हैं।

चूने की चट्टानों के विस्तारों में पानी द्वारा निर्मित ऐसे गड्ढे प्रायः ही मिलते हैं। ये यह विशाल कंदरा (Mammoth Cave) काफी बड़ी और विस्तृत है। इनमें भी जिनकी स्रोत-सतह गिर चुकी है, वहाँ घूम-फिरकर देखा जा सकता है। और भी नीचे की कन्दराएँ अभी पानी में डूबी हुई हैं।

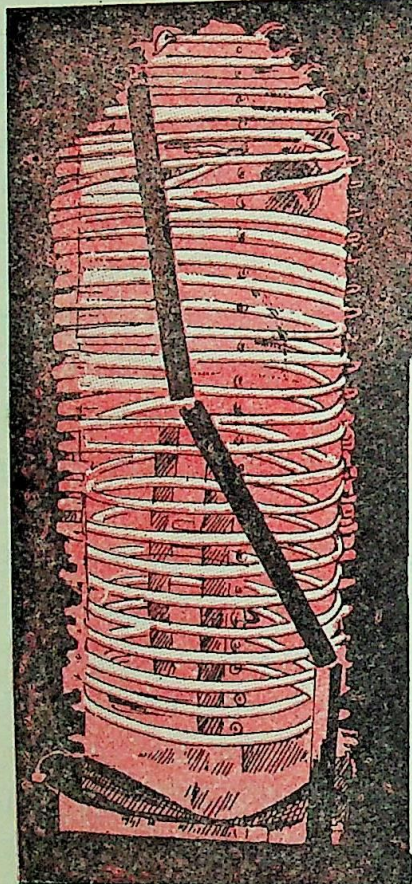
अवशैल और उच्छशैल

इन कंदराओं में अवशैल (stalactite) और उच्छशैल (stalagmite) नामक सुरंगों तथा खम्भों जैसी चित्र-विचित्र आकृतियाँ बनती रहती हैं। चूनामिश्रित पानी जब नीचे

शुतुरमुर्ग की कहावत बदलिये

इस बात में कोई तथ्य नहीं रहा कि खतरे के समय शुतुरमुर्ग अपनी गर्दन रेत में गड़ाकर सुरक्षा का अनुभव कर लेता है। पक्षी-जगत में सबसे बड़े डील-डौल का, आठ फुट ऊँचा, नर शुतुरमुर्ग पंख होते हुए भी उड़ तो नहीं सकता लेकिन पीछा किये जाने पर अपनी मजबूत टाँगों पर ४० मील प्र. घ. के वेग से सरपट दौड़ता हुआ, घोड़े को भी पीछे खदेड़ देता है। सादा अवश्य अपनी गर्दन धरती पर सटाये हुए विश्राम करती रहती है, विशेषतः जबकि वह अण्डा से रही हो।

नवम्बर १९६३



आणविक विजली घर

डा.
अ
थो
ध्या
प्र
सा
द
श
र्मा

जाती हैं। यूरेनियम काफी भारी धातुओं में से है और यह पानी से लगभग बीस गुना भारी है। पृथ्वी के गर्भ में इसकी २००० खरब टन की मात्रा का अनुमान है। इसका द्रवांक भी काफी ऊँचा (1132° सें.) है। इसकी अपरिमित शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक सामान्य विजलीघर में जहाँ प्रतिदिन १०० टन कोयला आवश्यक हो, वहाँ उतनी ही विद्युत उत्पन्न करने वाले आणविक विजलीघर में केवल ३० ग्राम यूरेनियम काफी है।

साधारण विजलीघर में ईंधन स्वरूप कोयले को जलाकर उससे उत्पन्न ताप से पानी को वाष्प में बदला जाता है और वह वाष्प उन टर्बाइनों को चलाती है जो विद्युतोत्पादक जनरेटरों को चलाते हैं। इसके विपरीत आणविक विजलीघर में यूरेनियम-नाभिक के विस्फोट से तीव्र ताप उत्पन्न कर लिया जाता है और शेष क्रिया पूर्ववत् रहती है। यूरेनियम का वह विस्फोट परमाणु भट्ठी में कराया जाता है।

परमाणु भट्ठी का कक्ष काफी लम्बा-चौड़ा तथा अत्यधिक ऊँची छत का बनाना पड़ता है। सर्वप्रथम कंक्रीट की एक ढाल बनायी जाती है जिसके ऊपर एक अर्द्धगोलाकार अथवा लम्ब-गोलाकार टोप चढ़ा दिया जाता है। उस टोप के चारों ओर ग्रेफाइट का घना पलस्तर चढ़ा दिया जाता है और उसमें से ग्रेफाइट की अनेक नलियाँ तथा छड़ें निकाल ली जाती हैं। उन नलियों तथा छड़ों के भीतरी भाग में इस्पात के

परमाणु और उसके नाभिक की भीतरी दुनिया एक अद्भुत तथा जटिल व्यूह-रचना है। नाभिक के बहुत निकट अनन्त नाभिक शक्तियाँ पूरे वेग से कार्य करती रहती हैं। यही कारण है कि आज का वैज्ञानिक उन शक्तियों का मूल स्वरूप जानने तथा उन पर अपना अधिकार जमाने को उत्सुक है। परमाणु-चालित विजलीघर इस प्रचण्ड आणविक शक्ति की महान देन है।

परमाणु भट्ठी का ईंधन, यूरेनियम

वैसे तो सभी रासायनिक तत्वों के नाभिकों में प्रचण्ड शक्तियाँ छिपी हुई हैं किन्तु मनुष्य ने मुख्यतः यूरेनियम से ही आणविक शक्तियों का निर्माण किया है। कई तत्वों से मिश्रित यूरेनियम के खनिज और धातुएँ कच्चे माल के रूप में परमाणु भट्ठी के ईंधन के काम में लायी

जैसे पाइप भी होते हैं जिनमें से पानी गुजरता है। वही गुजरता हुआ पानी यूरेनियम-विस्फोट से उत्पन्न ताप के द्वारा वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। इन परमाणु भट्टियों में यूरेनियम ईंधन को कोयले की तरह बेलचे से चलाया नहीं जाता। इसे तो ग्रेफाइट की छड़ों में भीतर रखा जाता है और समय-समय पर छड़ों को बदलते रहना पड़ता है। इन भट्टियों को नाभिक रीएक्टर (nuclear reactors) भी कहते हैं।

यूरेनियम से उत्पन्न प्रचण्ड उष्मा

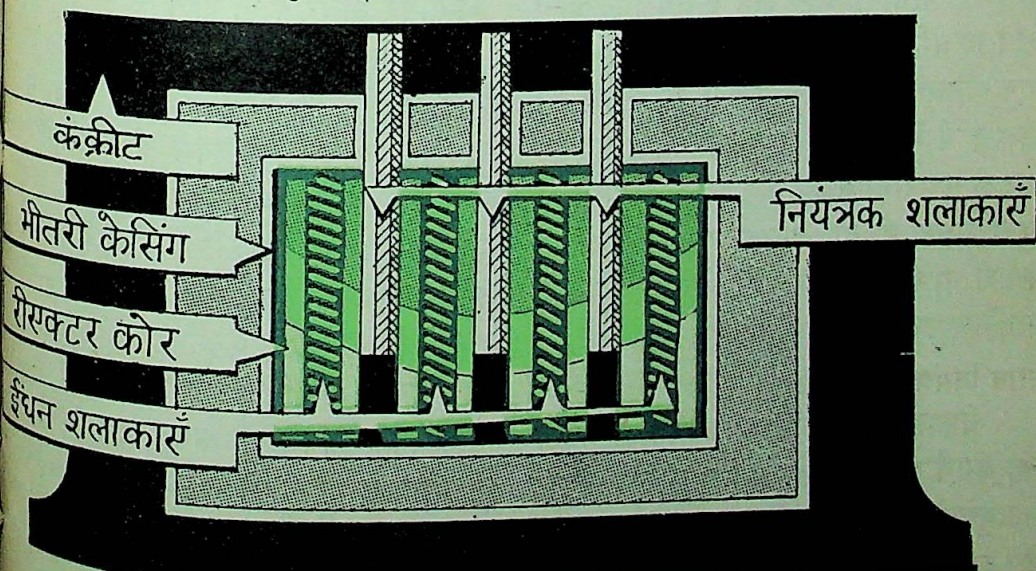
यूरेनियम के नाभिक पर न्यूट्रॉन कणों का प्रहार करके विस्फोट कराया जाता है। इस क्रिया में असंख्य अन्य न्यूट्रॉन भी विसर्जित होते हैं। ये न्यूट्रॉन संख्या और वेग में उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं और फलतः उष्मा भी बढ़ती जाती है।

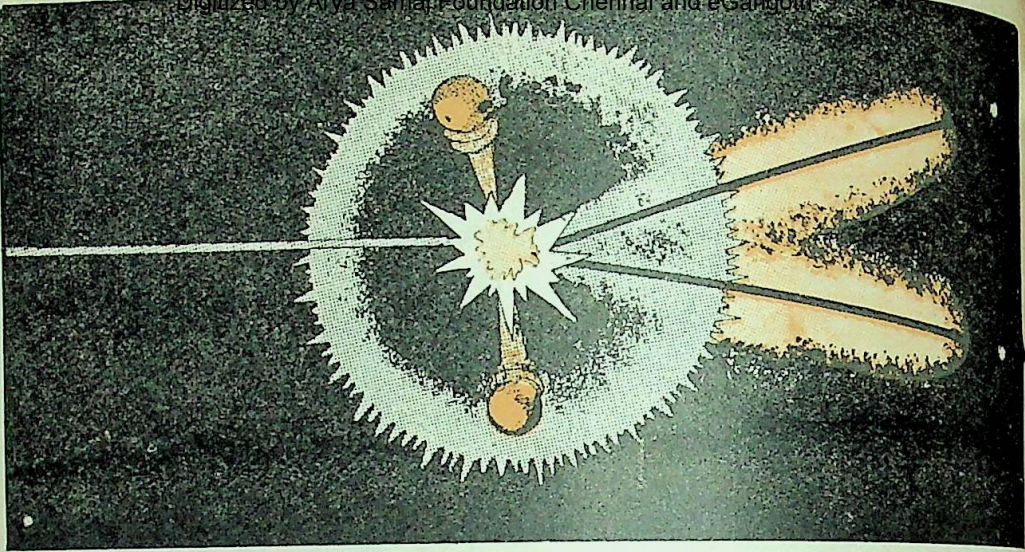
प्रकृति में प्राप्त यूरेनियम के विविध प्रकारों में यूरेनियम-२३८ अधिकतम अर्थात् ९९ प्रतिशत मात्रा में पाया जाता है। यह हाइड्रोजन से २३८ गुना भारी होता है। शेष मात्रा यूरेनियम-२३५ और २३४ पाये जाते हैं।

यूरेनियम-२३५ की विस्फोटक शक्ति सर्वोत्तम मानी जाती है, क्योंकि उसे किसी भी प्रकार के न्यूट्रॉनों से विस्फोटित किया जा सकता है। अतः यूरेनियम-२३८ से २३५ को विशेष साधनोंयुक्त प्रयोगशालाओं में मास-स्पेक्ट्रोग्राफ विधि से पृथक् किया जाता है। इसके अतिरिक्त यूरेनियम-२३३, प्लूटोनियम-२३९ तथा प्लूटोनियम-२४१ भी ईंधन के रूप में काम आ सकते हैं। अतः इन्हें भी थोरियम तथा यूरेनियम-२३८ से न्यूट्रॉन-विकिरण क्रिया द्वारा परमाणु भट्टियों में ही प्राप्त कर लिया जाता है।

यूरेनियम-२३५ पर धीमी गति वाले न्यूट्रॉनों का प्रभाव सबसे अधिक होता है। ये धीमी गति वाले न्यूट्रॉन भी परमाणु भट्टी में ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। इसके लिए भट्टी में ग्रेफाइट काफी मात्रा में रखा जाता है। ग्रेफाइट तीव्र गति वाले न्यूट्रॉनों को धीमी गति में बदल देता है। इसके अतिरिक्त वह पानी भी जो रीएक्टर का ताप संतुलित रखता है, न्यूट्रॉनों की गति को धीमी करने में सहायता करता है।

आणविक भट्टी में कैडमियम की छड़ें न्यूट्रॉनों का अवशोषण करती हुई भट्टी का ताप नियन्त्रित रखती हैं





न्यूट्रॉनकणों का सतत प्रहार यूरेनियम के नाभिक का विस्फोट कर देता है, फलस्वरूप बेरियम और क्रिप्टॉन के विखण्डित परमाणु छितरा जाते हैं (चित्र में दायीं ओर)

सर्वप्रथम किसी एक क्रिया से भट्ठी में थोड़े से न्यूट्रॉन उत्पन्न किये जाते हैं। उदाहरणतः बेरीलियम धातु पर पोलोनियम से उत्पन्न अल्फा किरणों की तेज बौछार से न्यूट्रॉन कण उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही यूरेनियम के भी नाभिक विघटित होना प्रारम्भ कर देते हैं और इस क्रिया में न्यूट्रॉन मुक्त हो जाते हैं। वे न्यूट्रॉनकण ग्रेफाइट की छड़ों से गुजरते हुए अपनी गति धीमी कर देते हैं। वह धीमी गति ही इन्हें नवीन विस्फोटन से लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार यह क्रिया एक अनन्त शृङ्खला के रूप में बने जाती है। इस कार्य में सफलता तभी सम्भव है जब कि भट्ठी में यूरेनियम का भार निर्धारित मात्रा से कुछ अधिक ही हो, अन्यथा न्यूट्रॉन कणों की काफी मात्रा बिखर जाएगी और यूरेनियम के नाभिक पर आघात न कर सकेगी।

ताप नियंत्रक ग्रेफाइट

ग्रेफाइट (और पानी भी) परमाणु भट्ठी का समर्थ ताप-नियंत्रक है। ताप के नियंत्रण का मुख्य प्रयोजन न्यूट्रॉन का अवशोषण होता है। इस कार्य के लिए बोरन कार्बाइड अथवा

कैडमियम का भी उपयोग किया जाता है। इन दोनों पदार्थों के डण्डे ग्रेफाइट की नलियों के अन्दर रखे जाते हैं तथा भट्ठी के स्तर को बदलने अथवा बन्द करने के काम में भी लिये जाते हैं। यदि इनका प्रयोग न किया जाए तो यूरेनियम की अनियंत्रित मात्रा तथा अपरिमित ताप उस भट्ठी को नष्ट करके रख देंगे। भट्ठी में जितनी प्रक्रिया तथा यूरेनियम का विस्फोट आवश्यक हो उसी हिसाब से छड़ों को बाहर-भीतर करते रहते हैं ताकि न्यूट्रॉन के अधिक से अधिक कण उनकी पकड़ में आते रहें। उस शृङ्खलाबद्ध प्रक्रिया में वे छड़ें दूर रहकर यूरेनियम को व्यर्थ ही नष्ट नहीं होने देतीं। ज्यों-ज्यों यूरेनियम खपता जाता है, ये छड़ें हटा ली जाती हैं और भट्ठी स्वतः स्वाभाविक रूप से कार्य करने लगती है।

इनमें एक विलक्षणता यह भी है कि आकस्मिक खतरे के समय इन छड़ों की सहायता से भट्ठी को पलक मारते बन्द किया जा सकता है। भट्ठी में ज्योंही न्यूट्रॉनों की संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ने लगती है

विद्युत कुण्डलियों में विद्युत का प्रवाह बहने लगता है और फलस्वरूप वह चला चल उठती है जो इन छड़ों को नियंत्रण में सक्रिय कर देती है।

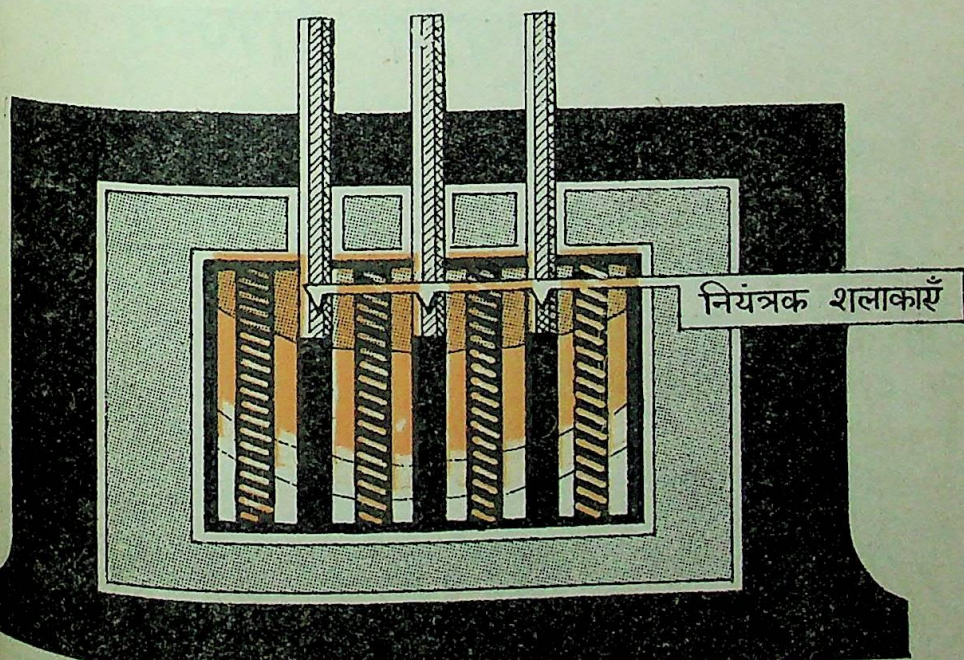
आणविक बिजलीघर

भट्ठी में उष्मा अवशोषक पानी वाष्प में परिवर्तित नहीं होता बल्कि उसे प्राथमिक कुण्डली के स्टेनलेस स्टील निर्मित नलिकाओं में प्रेषित किया जाता है ताकि उसे 100° वायुदाब पर तथा 270° सें. ताप पर ले आया जाए। ध्यान देने योग्य है कि 100° वायुदाब पर पानी 305° सें. पर उबल सकता है। उस प्राथमिक कुण्डली के पानी को भाप-जनित्र में एक द्वितीय कुण्डली में बहा ले जाते हैं जहाँ वह 12.5 टेकनीकल वायुदाब के अन्तर्गत 300° सें. पर उबलने लगता है। वहाँ से उबलन वाष्प उन टर्बाइनों तक पहुँचायी जाती जो जनरेटरों को चलाते हैं। टर्बाइनों में घूम आने वाली वाष्प पुनः द्रवित कर ली जाती है और उससे जो पानी तैयार होता है

विश्व का सर्वप्रथम आणविक बिजलीघर सोवियत रूस में २७ जून १९५४ को स्थापित किया गया। तब से वह सुचारु रूप से कार्य कर रहा है। उसकी क्षमता लगभग एक लाख किलोवाट की है। अब तो प्रायः अनेक बड़े देशों में आणविक बिजलीघर स्थापित किये जा रहे हैं। कम्बरलैण्ड (इंग्लैण्ड) का काल्डरहाल बिजलीघर अक्टूबर १९५६ से कार्य कर रहा है। अकेले ब्रिटेन में ही सन् १९६५ तक १८-१९ आणविक बिजलीघर बना लेने की योजना है जिनसे कुल मिलाकर ७५ लाख किलोवाट तक बिजली तैयार की जा सकेगी।

भारत में भी तारापुर (महाराष्ट्र) में प्रथम आणविक बिजलीघर का निर्माण आरम्भ हो गया है। लगभग पौने चार लाख किलोवाट

कैडमियम की छड़ें ऊपर उठाने पर न्यूट्रॉनों को टिके रहने का अवकाश मिल जाता है जिससे ताप बढ़ता है



की क्षमता वाला यह विजलीघर संसार के सबसे बड़े दो विजलीघरों में से एक होगा तथा एशिया में तो प्रथम स्थान पर होगा। इसके द्वारा महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रदेशों को विजली दी जा सकेगी। इस कार्य के लिए १.६ किलोवाट की तथा उबलते हुए पानी की किस्म की दो परमाणु भट्टियाँ लगायी जाएँगी जिनमें ईंधन के लिए यूरेनियम आक्साइड का उपयोग होगा। इसके भाप-जनित्र में ऊँचे दाब की वाष्प १५०० चक्कर प्रति मिनट वाले दो टर्बाइनों को चलाने में समर्थ होगी।

अन्य देशों के विजलीघरों की अपेक्षा इसमें कुछ अन्य विशेषताएँ होंगी। इस योजना पर लगभग ६१.५ करोड़ रुपये व्यय करने का अनुमान है। ३.१३ लाख किलोवाट का एक आणविक बिजलीघर कैलिफोर्निया के बोडेगावे

में तथा दूसरा १७ लाख किलोवाट का जर्मनी में और तीसरा १.५ लाख किलोवाट का इटली में बिठाया जा रहा है।

भारत की तारापुर आणविक बिजलीघर योजना के पश्चात् राजस्थान के राणाप्रताप सागर नामक स्थान पर भी एक विजलीघर बनाने की योजना है। उस योजना में लगभग ३२ करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। उसकी क्षमता दो लाख किलोवाट होगी। तत्पश्चात् उससे भी विशाल, चार लाख किलोवाट की क्षमता का बिजलीघर मद्रास प्रदेश में लगाने की योजना है।

अब तक तो भारत के ट्राम्बे स्थित सर्वप्रथम आणविक बिजलीघर में, जो छोटा है, अर्थात् २० हजार किलोवाट क्षमता का है, हमारे वैज्ञानिक व्यस्त रहे हैं ताकि उन्हें इन आणविक विशाल योजनाओं के लिए पर्याप्त अनुभव हो जाए।

केवल मेट्रिक नापों का प्रयोग कीजिए



● यहां कुछ खास-खास कपड़ों की मीटरों में लम्बाई दी गयी है।

अब देश भर में नाप-तौल की मेट्रिक प्रणाली ही एकमात्र कानूनी प्रणाली है।

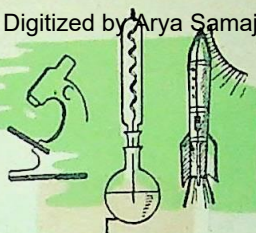
बुश शर्ट	१.८५ मीटर
कमीज	
(पूरी बांह की)	प्रत्येक के लिए
कोट	२.७५ मीटर
पतलून	
ब्लाउज़	०.६० मीटर

उचित और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

मीटर में खरीदिए

डी ए ६३/२४५

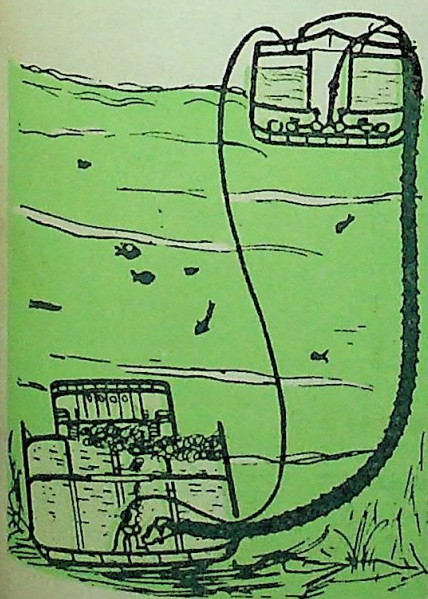
वैज्ञानिक प्रलब्धियाँ



जहाजों के उद्धारक, ये बुलबुले

अब सम्भव हो जाएगा कि डूबे हुए जहाजों को ऊपर खींचने के बजाय उनमें बुलबुले भरकर उन्हें स्वयं ही उभर आने का अवसर दिया जाए। किन्हीं भी रेजिनयुक्त दार्थों पर एमिन अथवा पराक्साइड जैसे उत्प्रेरकों की प्रक्रिया कराने से प्लास्टिक के बुलबुले उत्पन्न किये जाएंगे जो टिकाऊ होंगे।

सतह पर खड़े हुए जहाज से दो पाइपों द्वारा उपरोक्त दोनों रासायनिक घोल अलग-अलग नीचे डूबे हुए जहाज तक पहुँचाये जाएंगे। वहाँ एक गोताखोर उन पाइपों के निरों को एक टॉटी में जोड़कर जहाज के बन्द भाग में प्रवेश करा देगा। दोनों घोलों का संयोजन होते ही बुलबुले उस कक्ष में भरने लगेंगे और वह जहाज ऊपर उठ आएगा। वे बुलबुले इतने सुदृढ़ होंगे कि जहाज के ऊपर उठ आने पर उन्हें फावड़े से उलीचा जा सकेगा।



यह टेलीफोन सामान्य यंत्रों की अपेक्षा अधिक विशेषताएँ लिये हुए है। इसका नाम टेलीफोन किंग है। आप इसके भरोसे निश्चिन्त होकर बाहर घूमते रहेंगे और यह बाहर से आते हुए आपके संदेशों का लेखा रखता रहेगा। इसके नीचे रखे बक्से में वह यंत्रसज्जा है जो इस टेलीफोन को बहुउद्देशीय बना देती है। इसका रिसीवर ऐसे स्प्रिंगदार हथ्ये पर टिका रहता है जो सामने से घण्टी आते ही उठ जाता है, साथ ही स्वचालित पुश-बटन बक्से में रखे टेप-रिकार्डर को चला



देते हैं। रिसीवर के निकट रखा हुआ पिकअप सामने वाले को आपका नम्बर बताकर संदेश कहने का अनुरोध कर देता है। टेप-रिकार्डर एक बार में २½ घण्टे तक संदेश आलेखन की क्षमता रखता है। आप लौटकर सारे संदेशों को आराम से सुन सकते हैं।

घोड़े नाव चलाएंगे !

अमरीका में न्यू हेम्पशायर के विनेपेसौकी भील में एक ऐसी नयी तरह की नाव तैराने का सफल प्रयोग किया गया है जिसमें दो घोड़े जुते हैं। सड़क की भाँति वे घोड़े पानी पर तो नहीं दौड़ सकते किन्तु नाव में खड़े ही खड़े पाँव चलाते हैं और अपनी उसी अश्वशक्ति से विशेष डिजाइनयुक्त डाँड़ों को तेजी से घुमाते हैं। डाँड़ घूमते जाते हैं और नाव चलती जाती है।

थ न भ क ह

प्रेमानन्द चन्दोला

तो हमारा जीवन सचमुच असम्भव हो जाएगा तथा अधिकतर प्राणी जीवित नहीं रह पाएँगे और हमारे सारे सुख, सुविधाएँ, समस्त औद्योगिक समृद्धि नष्ट हो जाएगी।

लवण या नमक कई प्रकार का होता है। उस नमक को जिसे हम प्रतिदिन उपयोग में लाते हैं, कामन साल्ट, साधारण नमक या सोडियम क्लोराइड (sodium chloride—NaCl) कहते हैं। इस तरह यह साधारण नमक का ही एक प्रकार है। वैज्ञानिकों ने जरा-सा अन्तर होने के कारण नाम अलग-अलग रख दिये। लेकिन हम उन भिन्न-भिन्न प्रकारों को अलग न मानकर एक इकाई ही मानें तो उचित होगा और तभी हम नमक के महत्त्व को भली प्रकार समझ सकेंगे।

हमारे नित्यप्रति के जीवन में यह भोजन के अन्य पाँच अवयवों अर्थात् कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन, वसा या चर्बी और पानी के साथ मिलकर भोजन का छाँटा अवयव बनाता है। नित्यप्रति उपयोग में लाया जाने वाला साधारण नमक अन्य सब प्रकारों में

बादशाह है। यह हमारे भोजन को पूर्ण बनाता है, हमें स्वाद प्रदान करता है और स्वस्थ एवं नीरोग रखता है।

नमक या साल्ट इतना बेशकीमती समझा जाता था कि साल्ट के लैटिन पर्याय सैलैरियम (salarium) शब्द के आधार पर ही सेलरी (salary) शब्द बना। सैलैरियम का मूल अर्थ है साल्ट या नमक। सैलैरियम का मूल अर्थ है साल्ट मनी (salt money) अर्थात् नमक का पैसा। क्योंकि रोमन सिपाहियों को जो भत्ता मिलता था वह उन्हें नमक खरीदने अर्थात् भोजन आदि पदार्थों के लिए या जीवन निर्वाह करने के लिए दिया जाता था और इस तरह उनका वेतन साल्ट-मनी कहलाता था। तब से आज तक नमक के आधार पर बना हुआ सैलरी (salary) शब्द वेतन के लिए आज भी प्रयोग किया जाता है।

नमक क्या है ?

विज्ञान की सरलतम परिभाषा में हम यह कह सकते हैं कि लवण, अम्ल (acid) और समाक्षार (base) की परस्पर अभिक्रियास्वरूप बना, हुआ पदार्थ है।

परन्तु वैज्ञानिक और तकनीकी परिभाषा के अनुसार लवण वह यौगिक है जिसके जलीय घोल में हाइड्रोजन आयन (hydrogen ion) के अतिरिक्त कोई अन्य धनायन (positive ion) और हाइड्रॉक्सिल आयन (hydroxyl ion) के अतिरिक्त कोई अन्य ऋणायन (negative ion) हो। जैसे कि साधारण नमक (common salt) या सोडियम क्लोराइड (NaCl) में सोडियम (Na) धनायन (cation) और क्लोरीन (Cl) ऋणायन (anion) है।

कुछेक लवण जैसे सिलिकेट को छोड़कर बाकी लगभग सभी पानी में घुलनशील होते हैं। तभी तो पौधों और जानवरों द्वारा अपने जीवन के रूप में इनका उपयोग हो पाता है। सोडियम क्लोराइड या साधारण नमक स्वाद में नमकीन होता है लेकिन सभी प्रकार के नमक नमकीन नहीं होते। हर एक का स्वाद और अपनी विशेषता अलग होती है।

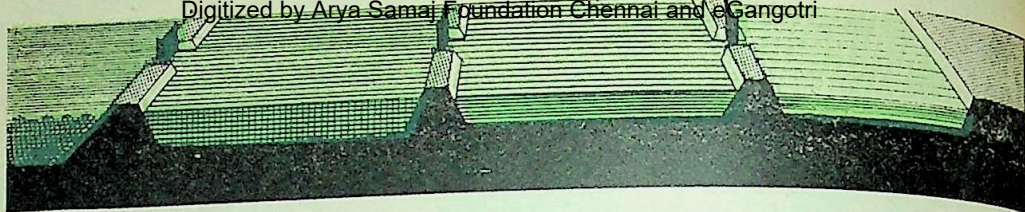
नमक
हम अपने उपयोग के लिए समुद्री पानी और झीलों से नमक प्राप्त करते हैं। लेकिन नमक चट्टानों में भी पाया जाता है। चट्टानों में पाये जाने वाले नमक को चट्टानी नमक या रॉक नमक (rock salt) कहते हैं। इसी तरह साँभर झील से प्राप्त होने वाले नमक को साँभर नमक कहते हैं। कहीं-कहीं तो यह मिट्टी या भूमि में भी पाया जाता है और इसी आधार पर उस मिट्टी को लवणीय मिट्टी या लोनी मिट्टी के नाम से पुकारा जाता है। कुछ लवण ऐसे भी हैं जो भूगर्भ से निकलते हैं जिन्हें सामान्य भाषा में खनिज लवण (mineral salt) के नाम से पुकारते हैं और विज्ञान में नाइट्रेट (nitrate), क्लोराइड (chloride), कार्बोनेट (carbonate), सल्फाइड (sulphide) और सिलिकेट (silicate) आदि के नाम से। उदाहरण

के लिए कैल्सियम फ्लूओराइड, फास्फोराइड, कैल्सियम कार्बोनेट या लाइमस्टोन, सोडियम एल्यूमिनियम फ्लोराइड या क्रायालाइट, पोटैशियम नाइट्रेट या नाइट्र और पोटैशियम एल्यूमिनियम सिलिकेट या फेल्सपार।

जीव द्रव्य (protoplasm) जो जीवों के जीवन का आधार है पाँच से सात प्रतिशत तक जो अकार्बनिक यौगिक अनिवार्य रूप से विद्यमान होते हैं। वे कैल्सियम, मैंगनीशियम, पोटैशियम, लोहे और सोडियम के लवण हैं। अल्प मात्रा में जस्ता, मैंगनीज, एल्यूमिनियम, बोरॉन, ताँबे आदि धातुओं के लवण भी रहते हैं। हमारे शरीर का लगभग ४ प्रतिशत भार खनिज लवणों के ही कारण होता है। आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन और नाइट्रोजन को छोड़कर जन्तुओं को जिन शेष १६ तत्वों की आवश्यकता होती है वे सब खनिज लवणों से ही प्राप्त होते हैं। मनुष्य के रक्त-प्लाज्मा में कई लवण होते हैं जिनमें मुख्य हैं लोहा, कैल्सियम, पोटैशियम और सोडियम के क्लोराइड, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, सल्फेट तथा फास्फेट। मनुष्य में ही नहीं बल्कि अन्य

पूर्वकाल में रोमन सैनिकों को नमक की थैलियों के रूप में वेतन—सैलेरियम (salarium) चुकाये जाने की प्रथा पर ही वेतन को सेलरी (salary) कहा जाने लगा





सागर-जल से वाष्पन द्वारा नमक प्राप्त करने के लिए तीन फुट गहरी क्यारियों की पंक्तियाँ बनायी जाती हैं। इनमें छोटी-बड़ी अशुद्धियाँ क्रमशः तल में बैठती जाती हैं और जल वाष्पित होते होते शेष नमक छोड़ जाता है। प्राणियों के शरीर में भी ये लवण इसी तरह विद्यमान होते हैं। कैल्सियम कई जन्तुओं के कड़े कवचों (shells) का तथा कैल्सियम फास्फेट के रूप में कशेरुकी प्राणियों (vertebrates) की हड्डियों का आधार पदार्थ है। फास्फोरस गंधक के साथ मिलकर कई प्रोटीनों का निर्माण करता है और साथ ही तंत्रिकाओं का संतुलन भी बनाये रखता है। कैल्सियम के साथ मिलकर यह हड्डियों तथा दाँतों का भी निर्माण करता है। कैल्सियम खून के थक्के बनाकर खून के जमने में सहायता देता है। प्राणियों में रक्त की लाल कणिकाओं की वृद्धि के लिए तथा रक्त के रंजक (pigment) हीमोग्लोबिन और हीमोसाएनिन के लिए लोहे और ताँबे की आवश्यकता होती है। सोडियम के लवण हृदय गति पर नियंत्रण रखते हैं और गंधक बालों एवं नाखूनों की वृद्धि के लिए अति आवश्यक है। आयोडीन-हीन नमक और पानी के कारण गलगण्ड या घेघा (goitre) नामक रोग हो जाता है। इसीलिए इस रोग की रोकथाम के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत आयोडीनयुक्त नमक के तैयार करने के लिए राजस्थान की साँभर भील में दो कारखाने चालू किये जा रहे हैं।

पौधों का जो चमकीला हरा रंग होता है और जिसके कारण चारों ओर हरियाली छाया रहती है वह पौधों की पत्तियों के रंजक (pigment) क्लोरोफिल के कारण होती है और इस पर्णहरिम का मुख्य अवयव मैग-

फुट गहरी क्यारियों की पंक्तियाँ बनायी जाती हैं। नीशियम होता है। इनके अतिरिक्त लवण दूध, दही, पनीर, समुद्री मछलियों, फलों, हरी तरकारियों, भूसीदार अनाज, मांस, अण्डे आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

कृत्रिम लवण

अम्ल (acid) और समाक्षार (base) को मिलाकर कृत्रिम रूप से भी लवण बनाया जाता है। अम्ल और समाक्षार के आधिक्य तथा पूर्ण उदासीनीकरण (neutralization) की कई रीतियों से विभिन्न प्रकार के लवण प्राप्त किये जा सकते हैं, जैसे सामान्य लवण, अम्लीय लवण, क्षारीय लवण, मिश्र लवण, द्विगुण लवण तथा जटिल लवण। विभिन्न प्रकार के लवण फ्लोराइड, क्लोराइड, ब्रोमाइड, आयोडाइड, सल्फाइड, सायनाइड, परक्लोरेट, क्लोरेट, क्लोराइट, हाइपोक्लोराइट, सिलिकेट, फास्फेट, कार्बोनेट, नाइट्रेट, ऐसीटेट, सल्फेट आदि के नाम पुकारे जाते हैं।

लवण और जीव-क्रिया-विज्ञान

मनुष्य को प्रतिदिन आधी औंस नमक की आवश्यकता होती है। शरीर में पहुँचकर यह सूक्ष्म जीवों से शरीर की रक्षा करता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध भी हो गया है कि रक्तोद या सीरम जो जीवाणुओं को मारने में समर्थ होता है, लवण निकाल देने पर ऐसा करने में असमर्थ हो जाता है। प्रोटीन की तरह यह भी शरीर की वृद्धि में योगदान है और उसकी रक्षा करता है।

गरम जलवायु में रहने वाले मनुष्यों के लिए तो यह नमक बहुत ही अधिक आवश्यक है।

का है। पसीने में जो नमक वह जीता हुआ निकल जाता है उसकी कमी को पूरा करने के लिए नमक की अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता होती है। ऐसी सावधानी बरतने पर लू और गरमी से होने वाली गड़बड़ियों से रक्षा हो जाती है। फैक्टरियों में भारी कार्य करने वाले श्रमिकों को भी उत्सर्जित लवणों की क्षतिपूर्ति करनी आवश्यक होती है क्योंकि ऐसा न होने से उनमें पेशीय ऐंठन शुरू हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजन में लिया जाने वाला नमक हमें केवल स्वाद ही नहीं देता बल्कि नष्ट या खर्च हुए नमक की क्षतिपूर्ति भी करता है। इसी तरह दूध, दही, गोشت और तरकारियों आदि से प्राप्त लवणों में भी यह कमी नित्य-प्रति पूरी होती रहती है। जीव-कोशिकाओं की कुछ नमक सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ तो सचमुच चौंका देने वाली हैं। यदि हलके नमकीन पानी के माध्यम वाली सक्रिय कोशिका को हटाकर शुद्ध पानी वाले माध्यम में रख दिया जाए तो वह फूलकर फट जाएगी। इस प्रकार उच्च प्राणियों में अववणीय जल कुछ तो रक्त कणिकाओं के नष्ट जाने और रक्त में पोर्टेशियम के प्रवाहित हो जाने से तथा कुछ गुर्दों (वृक्कों) को बिना लवण के निष्क्रिय बना देने से नुकसान पहुँचाकर मार देता है। फटी हुई रक्त कोशिकाएँ इन्ध को भी हानि पहुँचाती हैं, न केवल इसलिए कि पोर्टेशियम प्रवाहित होता है बल्कि प्रत्यक्ष रूप में वे फेफड़ों से आक्सीजन को शरीर में ले जाने में भी असमर्थ हो जाती हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि यदि कुत्तों को लवणों से वंचित कर दिया जाए तो वे केवल तीन हफ्ते तक ही जीवित रह सकते हैं। इसीलिए लोग अपने जानवरों को समय-समय पर नमक चटाते हैं कि नमक की कमी पूरी हो जाए। नमक, चीते आदि जंगली जानवर मांसाहारी

हानि के कारण अन्य पशुओं के मांस और रक्त से लवण प्राप्त कर लेते हैं।

जैसे हम पानी, शिकंजी, शर्बत, लस्सी आदि पीते हैं वैसे ही पौधे अपने मूलरोमों (root-hairs) द्वारा लवणों का घोल पीते हैं। यह सब रसाकर्षण की क्रिया के द्वारा सम्पन्न होता है। पौधे में भी लवणों का घोल होता है जो भूमि के लवणों के घोल की अपेक्षा अधिक सान्द्र होता है। इसीलिए वह रसाकर्षण की रीति से भूमि के घोल को मूलरोमों द्वारा अपने अन्दर खींच पाता है। यही कारण है कि पौधे के अन्दर के घोल या पादप-रस के सान्द्रण की अपेक्षा यदि भूमि के घोल का सान्द्रण अधिक होता है, तो वह चारों ओर कितनी ही लवण राशि के होने पर भी भूमि के घोल को अपने अन्दर ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पौधा मुरझाता और सूखता चला जाता है। इसीलिए पौधों की जड़ों को बहुत अधिक खाद नहीं दी जाती।

नमक के अन्य उपयोग

नमक मनुष्यों, जन्तुओं और पौधों की परम आवश्यक वस्तु तथा भोजन का अपरिहार्य अवयव तो है ही, इसके अतिरिक्त हमारे दैनिक जीवन में भी कई प्रकार से उपयोगी है। आधुनिक गृह-विज्ञान, कृषि-

केलीफोर्निया की सर्लेंस (Searles) झील से प्राप्त नमक के ढेर की एक पंक्ति



विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, औद्योगिक-रसायन आदि में तो इस मूल पदार्थ को अनेकानेक उपयोगों में लाया जा रहा है। यह पानी को शुद्ध करने, मक्खन बनाने तथा गोश्त आदि को सुरक्षित रखने के काम आता है।

लवण द्वारा फसलों में बहुत सुधार किये जा सकते हैं। कुछ प्रयोगों के आधार पर यह भी खोज निकाला गया है कि यदि एक एकड़ वाली भूमि में तीन सौ से पाँच सौ पौण्ड तक नमक डाल दिया जाए तो उपज में आशा से कहीं अधिक वृद्धि हो जाती है। जितने भी कृत्रिम उर्वरक या खाद हैं वे सब लवण ही हैं। कैल्सियम सुपरफास्फेट, सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रेट, सोडियम सल्फेट आदि लवण के ही विभिन्न प्रकार हैं।

नमक जीवाणुओं और रोगाणुओं आदि को मारने की क्षमता भी रखता है। इसलिए गला खराब होने पर सभी नमक के गरारे लेते हैं कि गला साफ होकर संक्रमण मुक्त हो जाए। पैर सूजने पर तथा पैरों की थकान मिटाने के लिए नमक के गुनगुने पानी में पैर डालकर आराम पाने की विधि भी बहुत पहले से चली आ रही है। आधुनिक चिकित्सक भी रोगों के निदान के लिए नमक को लेकर नयी-नयी खोजों में लगे हुए हैं। शरीर में नमक देने से एड्रीनल ग्रन्थियों (adrenal glands) पर प्रभाव पड़ता है। इसी तरह भोजन में नमक का उचित नियंत्रण गुर्दों के इलाज का जाना-पहचाना नुस्खा है।

हाथी के दाँत, शोभा नहीं असुविधा

हाथी का मूल्य उसके दाँतों के कारण होता है, किन्तु हाथी का जीवन तो सूँड़ के ही सहारे है। वैसे यदि दिखावे को दाँत न होते तो शायद सूँड़ की भी जरूरत न पड़ती। अन्य प्राणियों की भाँति हाथी भी सूँड़ से ही अपना भोजन खाता है। अतः प्रकृति ने इसे ऐसी ही व्यवस्था की है जिसमें अस्थि एक भी नहीं, पेशियाँ ही पेशियाँ हैं ताकि चाहे जिस तरफ मोड़कर पहुँचाया जा सके।

औद्योगिक क्षेत्र में नमक का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला जा रहा है। काँच बनाने, मिट्टी के बर्तन, एल्यूमिनियम बनाने, साबुन बनाने, चर्वी और तेल साफ करने, ब्लोचिंग पाउडर बनाने, कीटनाशक और फफूँदीनाशक दवाएँ बनाने, मकान बनाने के लिए चूना प्राप्त करने, बरफ बनाने के लिए हिम मिश्रण (freezing mixture) बनाने, कागज बनाने, उपयोगी गैस और तेजाब बनाने तथा वाहद आदि अन्य कई रासायनिक उपयोगी पदार्थ बनाने में लवण का प्रयोग किया जाता है। अकेले तेजाब ही ऐसे पदार्थ हैं जिनकी नींव पर सारे उद्योग खड़े हैं और जिनके बिना औद्योगिक उन्नति का एक भी कदम आगे चलना असम्भव है।

प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह मत भी प्रतिपादित किया है कि नमक की सहायता से कृत्रिम वर्षा भी की जा सकती है और प्राकृतिक वर्षा होने में समुद्र के नमक का बहुत बड़ा हाथ है। सबसे महत्वपूर्ण और आश्चर्यचकित कर देने वाली जो अति आधुनिक खोज हुई है उनके आधार पर तो इस बात की पुष्टि होती है कि प्राक्-जैविक (pre-biological) युग में या सृष्टि के आरम्भ में जीवों का उद्भव लवण के घोलों के कारण ही हुआ, क्योंकि इनसे ही उनको पोषण प्राप्त हुआ।

नमक प्रकृति की महानतम देन है।

लियोनार्दो-द-विंशी



प्रेमलाल टण्डन

१५ अप्रैल १४५२ को इटली में फ्लोरेंस के निकट विंसी ग्राम में २३ वर्षीय युवा लियोनार्दो पाइरो-द-विंशी के घर लियोनार्दो ने जन्म लिया। जब यह एक वर्ष का था तभी उसकी माँ की मृत्यु हो गयी। इसका लालन-पोसन इसकी सौतेली माँ ने किया। बचपन से ही इसका स्वभाव अत्यन्त कोमल था। यह बड़ों में बन्द पक्षियों को खरीद-खरीदकर बड़ों से मुक्त कर देने में अवर्णनीय आनन्द अनुभव करता था।

रेखांकन के प्रति इसकी रुचि प्रारम्भ से ही थी। छोटी अवस्था में ही यह तरह-तरह की आकृतियाँ शुद्ध रेखाओं से बना लेता था। इसके बनाये हुए घोड़ों के चित्रों में उनके अंग-प्रयोगों के विविध कोणीय चित्रण दर्शकों और लेखियों को आश्चर्य में डाल देते थे। इसने जीवन का प्रारम्भ चित्रकला से किया और फ्लोरेंस के तत्कालीन प्रसिद्ध कलाकार वेरो-रियो (Verrochio) का प्रिय शिष्य होने का सम्मान प्राप्त किया। २० वर्ष की आयु में लियोनार्दो कलाकार-संघ का सदस्य बन गया और मेडिसी-परिवार (House of Medici) का आश्रय प्राप्त कर कला साधना करता रहा।

उन्हीं दिनों इसके बनाये हुए तीन चित्र *Annunciation*, *Adoration of Kings* तथा *Ginevra of Benci* विश्व-प्रसिद्ध हुए। १४८२ से सत्रह वर्ष तक वह मिलन के ड्यूक स्फोर्जा का राज्याश्रित कलाकार बना रहा। उसी दौरान में तैयार की गयी इसकी कृति मोना लिसा (*mona lisa*) ने इसका नाम अमर कर दिया।

महान वैज्ञानिक

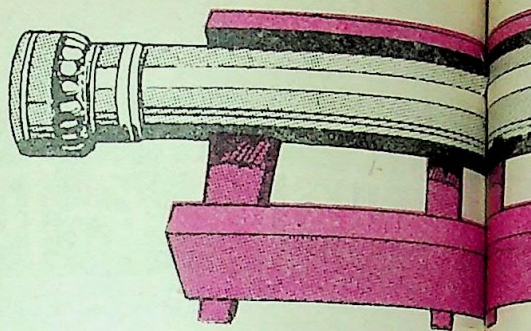
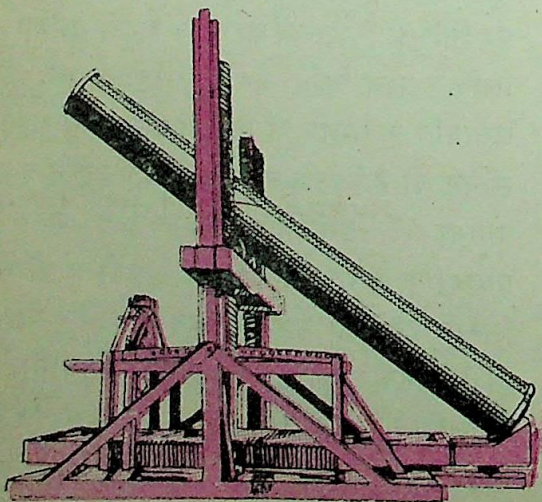
विज्ञान के क्षेत्र में लियोनार्दो ने सदैव ही वास्तविक प्रयोगों को प्राथमिकता दी। उसका कथन था, “हमें प्रत्येक अध्ययन प्रयोग से ही प्रारम्भ करना चाहिए और उसी के आधार पर विभिन्न सिद्धान्तों की खोज करनी चाहिए। लिखित कार्य-विधि अथवा सिद्धान्त भले ही सेनापति के समान हों किन्तु प्रयोग तो साक्षात् सैनिक ही हैं जिनके बगैर सेनापति कुछ न कर पाएगा।” इसीलिए जीवनपर्यन्त सहस्रों प्रयोगों के करते रहने तथा अपनी पोथी में लिखते रहने की व्यस्तता के कारण और साथ ही वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में लियोनार्दो के लिखित प्रयोग लम्बे समय तक यथार्थरूप न पा सके।

गणित में तो लियानादी का प्रतिपाद

वचन से ही चमकने लगी थी। रसायन में इनकी जिज्ञासा नित नयी बात जानने की तत्पर थी। विभिन्न विस्फोटक पदार्थों की मिश्रण विधियों, वाष्प इंजनों के संचालन तथा चुम्बकीय शक्ति विषयक इनका ज्ञान अल्पावस्था में ही आश्चर्यजनक रूप से विकसित हो चुका था। ५००० से भी अधिक पृष्ठों की अपनी पुस्तक में इन्होंने जो कुछ लिखा है उसे पूर्णतः कार्यान्वित कर पाने में तो न जाने आगे और कितना समय लगेगा, किन्तु जो कुछ किया जा चुका है, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ उपयुक्त रहेगा।

इनकी पुस्तक में पवनचक्कियों, युद्धोपयोगी यंत्रों, यंत्र-चालित जलपोतों, हलकी-भारी तोप के गोले तथा कारतूस, सूत-कटाई तथा कपड़ा-बुनाई के यंत्रों आदि के उल्लेख हैं। लन्दन के विज्ञान-संग्रहालय में आज भी इनके नक्शों, चित्रों आदि से बनाये अनेक माडल सुरक्षित हैं। आर्कमिडीज के सिद्धान्त का भी इन्होंने परिमार्जन किया और द्रवों की गतिशीलता तथा तरंगों की

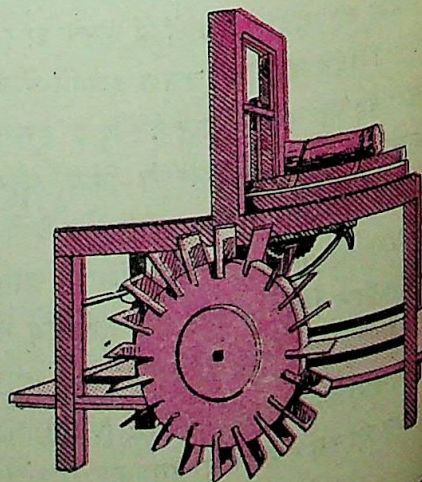
भारी खंभों, आदि को उठाने और सीधा करने का यंत्र। ज्यों-ज्यों ऊपर का सिरा उठता जाता है, त्यों-त्यों नीचे का सिरा अन्दर की ओर खिंचता आता है

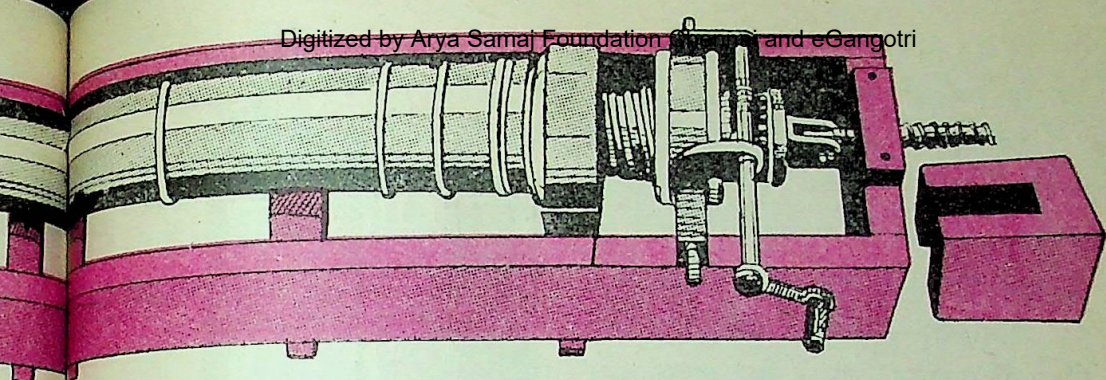


युद्धोपयोगी अनेक यंत्रों का तोप

प्रकृति से वायुतरंगों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया। उड्डयन-विद्या तथा अनेक विमानों के नक्शे इन्होंने तैयार किये। भू-अवलोकन से इन्होंने प्रतिपादित किया कि किस प्रकार ज्वालामुखीय तथा वायुमण्डलीय प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप पृथ्वी के स्तर निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। इन्होंने शरीर-विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया तो मानव-शरीर की शल्यक्रिया के अनेक प्रयोग प्रस्तुत करके हृदय की कार्यविधि, रक्त तथा अंग-उपांगों के विभिन्न कार्य और नेत्र-रचना पर अति सूक्ष्म अवलोकन प्रस्तुत किये।

काठ चीरने की आग्रा मशीन। यह बड़ा पहिया पत्तों के वेग से चलाया जाता था। इस पहिये से जुड़े हुए छोटे दाँतेदार पहिये आरे के ऊपर-नीचे तथा काठ लट्टे को आगे सरकाते थे





अनेक शत तोप की ढलाई और निर्माण लियोनार्दो के आलेखों पर ही किया गया है

अध्ययन तुर लियोनार्दो

१४८१ में लियोनार्दो ने मिलन के ड्यूक फ्रान्को को जो आवेदनपत्र लिखा, वह इनकी मुझूझ और चतुराई का बेजोड़ नमूना था। इन्हें ज्ञात था कि वह शासक अपने स्वर्गीय पिता की एक भव्य मूर्ति बनवाने को उत्सुक है तथा यह भी कि वह आक्रमणकारियों से डरभीत है। अतः अपने पत्र का तीन-चौथाई भाग तो इन्होंने अपनी वैज्ञानिक क्षमताओं तथा युद्धोपयोगी अस्त्र-शस्त्र बनाने की निपुणता के वर्णन में लगाया और केवल अंतिम एक-चौथाई भाग में उसके पिता की भव्य मूर्ति बना देने का आश्वासन दिया। उनके इस पत्र का एक अंश निम्न प्रकार था :

“मेरे पास तरह-तरह के ऐसे पुल बनाने के नुस्खे हैं जो आवश्यकतानुसार हलके-फुलके हों, आग और दूट-फूट से सुरक्षित रहें तथा जिन्हें ऊँचा-नीचा भी किया जा सके। मेरे पास विस्फोटों द्वारा किले की दीवारें उड़ा देने के नुस्खे हैं। मैं ऐसी तोपें बनवा सकता हूँ जो हलकी हों, सरलता से चाहे जहाँ ले जायी जा सकें तथा दूर तक आग भी उगल सकें। ऐसी मुरगें तैयार की जा सकती हैं जो दुर्गम मार्गों तथा नदी-नालों को नीचे ही नीचे पार करा दें। मैं ऐसी गाड़ियाँ तैयार करा सकता हूँ जो दुश्मनों की मार के बीच सुरक्षित रहती हुई

तोपें ले जा सकें। स्पष्ट है कि वही रूप आज के टैंकों का था। युद्ध काल के अतिरिक्त शान्ति के दिनों में मूर्तियाँ, भवन, नहरें आदि के निर्माण में मेरी स्थापत्यकला किसी से भी द्वितीय नहीं रहेगी।” उनके इस पत्र ने अपना कार्य शत-प्रतिशत पूरा कर दिखाया।

बहुप्रतिभावान लियोनार्दो

लियोनार्दो की बहुमुखी प्रतिभा का किंचित् आभास निम्न वर्णनों से हो सकेगा जो उनकी पुस्तक से लिये गये हैं :

सिविल इंजीनियरिंग—नहरें, सड़कें, मकान, पुल आदि बनाने तथा नगर-निर्माण के विषय में लियोनार्दो के सूचन, संकेत चित्र और योजनाएँ सर्वाधिक महत्त्व की मानी जाती थीं। अनेक प्रकार के पम्प तथा भारोत्तोलक के डिजाइन इन्होंने प्रस्तुत किये। खुदाई के लिए एक की अपेक्षा दो यंत्र एक साथ काम में लेकर अन्य नहरों के मुकाबले काफी चौड़ी नहर खोदना इन्होंने सम्भव कराया।

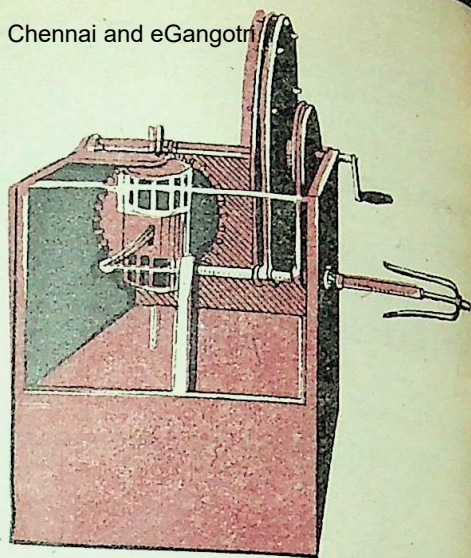
मेकेनिकल इंजीनियरिंग—कटाई मशीनें, बरमे, खरादें आदि वर्कशाप के छोटे-बड़े यंत्र, रेतियाँ, सान धरने के पहिये, आरा मशीनें, चूड़ी काटने के यंत्र, कुटाई-पिसाई की मशीनें आदि असंख्य यंत्रों में से अधिकांश तो लियोनार्दो के स्व-आविष्कृत थे और कुछेक

ऐसे भी थे जिनके द्वारा इन प्रचलित स्वरूपों को इन्होंने संशोधित किया था।

टेक्सटाइल मशीनें—रुई धुनने, सूत कातने, कपड़ा बुनने, काटने तथा सिलाई करने के यंत्रों का भी प्रचलन लियोनार्दो का ही आभारी है।

धातुक्रिया—धातुएँ पिघलाने, ढालने, पीटने की भट्ठियाँ, हथौड़े, प्रेस, डाइयाँ तथा तदुपयोगी मशीनों के संकेत लियोनार्दो की पोथी में हैं। सर्वथा अनोखी तोपें बनाने के अद्भुत चित्र और विधियाँ लियोनार्दो ने प्रस्तुत कीं। आज की मशीनगन के प्रारूप भी इन्होंने प्रस्तुत किये। इन सबके अतिरिक्त वायु में मानव की उड़ान के लिए विविध यानों के डिजाइन लियोनार्दो ने तैयार किये।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि लियोनार्दो के पश्चात् ४०० वर्षों तक कोई



वस्त्र की बुनाई में काम आने वाला यह यंत्र फिरकी (bobbin) पर धागे को सफाई से लपेटता है।

वैज्ञानिक विभूति अथवा साधन ऐसे उपलब्ध न हो पाये जो ५००० पृष्ठ की उस पुस्तक के अनमोल खजाने का लाभ संसार को दे सकें।



आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।

—जवाहरलाल नेहरू

आपकी किरफायत में देश की ताकत

देश की स्वतंत्रता व अखण्डता की रक्षा लोगों के त्याग तथा निरन्तर सतर्कता से ही हो सकती है।

सभी फजूल और व्यर्थ के खर्च रोक कर, आप देश के विकास की गति तेज करने के लिए अधिक साधन उपलब्ध करने में सहायक होते हैं।

आपकी वचत से राष्ट्र की जरूरतें पूरी होती हैं



वित्त्र संसार



स्काटलैण्ड में काँटेदार गोखरू की भाड़ी हो राष्ट्रीय सम्मान क्यों प्राप्त है, इसका अति अनोखे इतिहास है। द्वितीय मास्क के शासनकाल में स्काटलैण्ड के आवरडीन नगर डेन (Danes) लोगों ने आक्रमण किया और किले को घेर लिया। दिन भर वे गुमसुम रहे और यह सोचा कि रात के अँधेरे में चुपचाप खाई को पार करके किले पर धावा चल देंगे। रात की नीरवता में जब किले के रक्षक सोये हुए थे और किले के अन्य समस्त सैनिक नींद में वेखबर थे, डेन सेना खाई को पार कर पार करने की नीयत से कूद पड़ी। तभी यह महान आश्चर्य उपस्थित हुआ कि खाई में जिसे वे पानी समझे हुए थे, गोखरू की भाड़ियों का विकट जंगल फैला हुआ निकला! वस, सैनिक और घोड़ों की चीत्कारों में किले में जगार हो गयी, समस्त रक्षक सावधान हो गये और डेन सेना को मार-कूट कर भागा दिया। अतः गोखरू को, जिसने किले की रक्षा की, राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया।

कृता का विलक्षण बल

इस चित्र में विशालकाय मकड़ा दिखाया गया है जो एक-एक करके लाखों चींटियाँ मार सकता है किन्तु चींटियों की फौज के आगे वेवस हो रहता है। चींटियों की यह



फौज कभी-कभी तो सैकड़ों फुट लम्बी चलती है। चींटियों का यह दल किस तरह बड़े मकड़े को समाप्त कर देता है यह चित्र से स्पष्ट है।

चिड़ीमार मछलियाँ

कुछेक मछलियाँ पक्षियों का शिकार करती हैं, यह जानकर आपको आश्चर्य होगा। यूरोप की कैटफिश (catfish) जिसे वेल्स (wels) भी कहते हैं, पानी पर उतराते-तैरते पक्षियों पर ही जीवनयापन करती है। इसी प्रकार अमरीका की गूजफिश (goofish) बत्तखें, बगुले, हंसावर आदि पक्षियों का शिकार करती है तथा बहुधा नन्हें बालकों को भी खींच ले जाती है। यह उन मछलियों के पेट से निकाले गये जन्तुओं आदि से ज्ञात होता है।

घड़ी, जो मर गयी !

बिलकुल मर गयी! बहुत हिलायी-डुलायी मगर ठप्प ! ऐसे अशिक्षित व्यक्तियों की अब भी कमी नहीं जिनके अज्ञानान्धकार में विज्ञान की ज्योति प्रविष्ट ही नहीं हुई। ऐसे ही एक व्यक्ति को लड़ाई के मैदान में एक मृतक सिपाही की कलाई पर बँधी घड़ी मिली। उसे खोला और कान पर रखा तो उसकी टिकटिक ने उसे अत्यन्त रोमांचित किया। उसे भी कोई जीवित वस्तु समझकर वह घर ले गया और बड़े जतन से सम्हालकर रखा। दो दिन बाद चाभी समाप्त हो जाने पर घड़ी को बन्द होना ही था, सो हो गयी। वह व्यक्ति अत्यन्त उदास हो गया और यह समझकर कि न जाने किस बीमारी में घड़ी मर गयी, बड़े सम्मान से घर के पिछवाड़े दफन कर आया !

हरेक के लिए गृहस्थी कदाचित एक बोझ, अथवा पाँवों की बेड़ियाँ न हो किन्तु ब्राजील के आदिवासियों के लिए तो यथार्थ में है। वहाँ मर्द का विवाह होना कम मुसीबत नहीं। विवाह होते ही उन्हें अपने होंठ और कान छिदाने पड़ते हैं। कानों में काठ के छल्ले तथा होंठों में काठ का चक्का पहने रहना पड़ता है ताकि दूसरों को उसके विवाहित होने की पहचान रहे। ४० वर्ष की अवस्था के निकट इन आभूषणों से छुटकारा मिलता है !

भील गायब हो जाती है !

आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स में ज्यार्ज लेक (George lake) एक भील क्या, नन्हा समुद्र ही है। २० मील लम्बी और १५ मील चौड़ी इस भील का समूचा पानी कभी-कभी न जाने कहाँ गायब हो जाता है और साल-सवासाल बाद लौटता है। भील फिर पूर्ववत् लहलहाने लगती है। शुष्कावस्था में उसकी उर्वरा मिट्टी कृषि के व्यापक कार्यों में बहुत काम आती है और उतने दिन वह भील खेतों के रूप में परिणत हो जाती है।

बाबा ने खोया, पोते ने पाया

प्राकृतिक हिम-खण्डों में सुरक्षित वस्तुओं के मुकाबले हमारा यांत्रिक शीतलक खाद्य-संरक्षण (फ्रिज) कितना अल्प क्षमतायुक्त है, इसका एक मनोरंजक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। दक्षिणी ध्रुव के अभियानकर्ताओं में

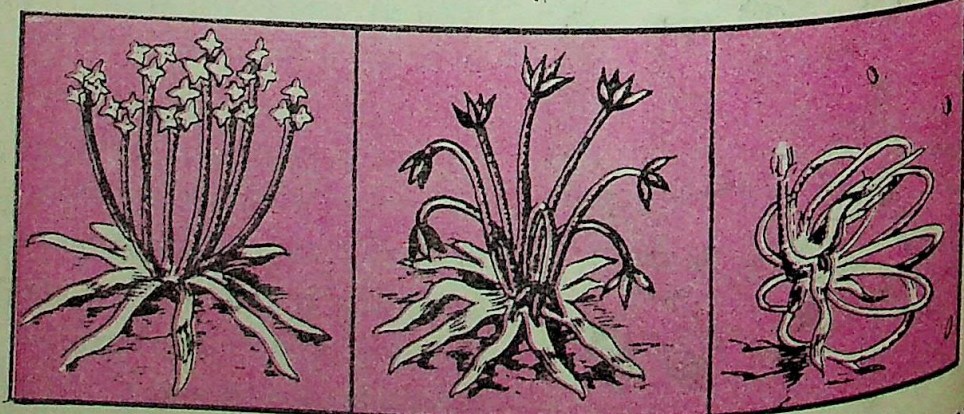
में छोड़ा गया खाने का टिफिन १९५७ में जब उनके प्रपौत्र पीटर स्काट के हाथ लगा तो उसने उत्सुकतावश उसे खोला और पाया कि खाने का सामान ठीक वैसी ही हालत में था जैसा ४६ वर्ष पूर्व रहा होगा !

१५०० दिन की नींद !

वात २५ मार्च, १८४६ की है। ब्रिटिश म्यूजियम में मित्र से प्राप्त एक बहुमूल्य सीपी शीशे के केस में रखी गयी। चार वर्ष बीत जाने पर वहाँ का चौकीदार यह देखकर हैरात रह गया कि वह सीपी हिल उठी। दौड़कर उसने अधिकारियों को इस अनहोनी घटना की सूचना दी तो निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि वह सीपी खाली नहीं थी बल्कि उसमें घोंघा मौजूद था और १५०० दिन बाद नींद से उठकर अँगड़ाई ले रहा था !

यों बीज छितराते हैं

प्लान्टेगो (plantago) नाम का यह पौधा उत्तरी एशिया में पाया जाता है। बीज छितराने का इसका अनोखा ढंग है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इस पौधे के फल ज्यों-ज्यों पकते जाते हैं, तने बाहर की ओर झुकते तथा नीचे को मुड़ते जाते हैं। इस क्रिया में जड़ें जमीन छोड़ने लगती हैं। उपयुक्त समय पर वायु के तेज झोंकों में यह उखड़ चलता है और धरती पर लोट-पोट होता हुआ दूर तक अपने बीज बिखेरता जाता है।





चन्द्र-अभियान

द्रोणवीर कोहली

जयन्त ने राकेट यान के छिद्र पर लगे पारदर्शी प्लास्टिक के साथ नाक सटाकर बाहर देखा तो खुशी से उसकी आँखें चमक उठीं। मुश्किल से पाँच सौ मील दूर मखमली, धूमिल बाह्य अन्तरिक्ष में चन्द्रमा जगमगा रहा। अजब-खावड़ पक्ष दिखाई पड़ रहा था। जयन्त सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ और वह कल्पना-लोक में डूब गया—“मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ? क्या सचमुच मैं, जिसकी उम्र मुश्किल से पन्द्रह साल है, उस राकेट यान से चन्द्रमा पर जाने जा रहा हूँ? सिर को झटका देकर जैसे वह जाग्य हो गया और हाथ के चार्ट को देखने लगा।

“जयन्त, अल्फानसस ज्वालामुख अभी दिखाया है?” राकेट यान के नेवीगेटर और को-पायलट रेडारज ने पूछा।

“कह नहीं सकता सर। यह तो नक्शे से काफी सटीक दिखाई देता है।” महेन्द्रराज रेडार-स्क्रीन को देखकर उठा और नियन्त्रण-कक्ष में से सावधानी से निकलकर जयन्त के पास सरक आया। “बड़ा खतरा है!” चुम्बकीय तश्तरी को घुमाकर वह जयन्त को दिखा रहा था। “हाँ, अब ठीक है। वह काला धब्बा देख रहे हो?”

वही मेयर नुवियम यानी बादलों का सागर है—असली सागर नहीं, वहने वाला लावा है वह। उसके पश्चिमी किनारे पर, ऊपर की तरफ बीचोबीच, एक पंक्ति में तीन ज्वालामुख हैं। पहला छोटा, दूसरा उससे बड़ा और तीसरा उससे भी बड़ा। अल्फानसस बीच वाला है।”

“हाँ, अब दिखाई दिया,” जयन्त ने ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा।

“और, हम इसके अधिक से अधिक समीप उतरने की कोशिश करेंगे। नक्षत्रविदों का कहना है कि पिछले कई वर्षों से वे इस ज्वालामुख को लावा उगलते हुए देख रहे हैं।”

“क्या ऐसा सम्भव है?” जयन्त ने जिज्ञासा प्रकट की।

“मुझे विश्वास नहीं होता। मेरा खयाल है कि यह रोशनी और चमक के कारण पैदा हुआ भ्रम है। जब सूर्य निकलता है, तो उसकी किरणें ज्वालामुख पर पड़ती हैं और ऐसा दिखाई देता है मानो वहाँ से लावा निकल रहा हो। वैज्ञानिकों का यह आम विश्वास है कि चन्द्रमा का भीतरी हिस्सा बिलकुल

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
(Social Psychology) १८.००
२. ग्रामीण समाजशास्त्र
(Rural Sociology) १५.००
३. नागरिक समाजशास्त्र
(Urban Sociology) ७.५०
४. व्यक्तित्व
(Personality) १०.००
५. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएँ
(Problems of Hindu Marriage and Family) ६.००
६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज संस्कृति, तथा व्यक्तित्व
(General Sociology : Society, Culture and Personality) १०.००
७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
(Social Theory : Sociological Study of Personality) ५.००
८. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : सामाजिक व्यक्तित्व अध्ययन प्रणाली
(Social Microscope : Social Case Study Technique) १०.००

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय १०.००

इण्टमीरडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र २.५०
२. भारतीय सामाजिक संगठन २.५०

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

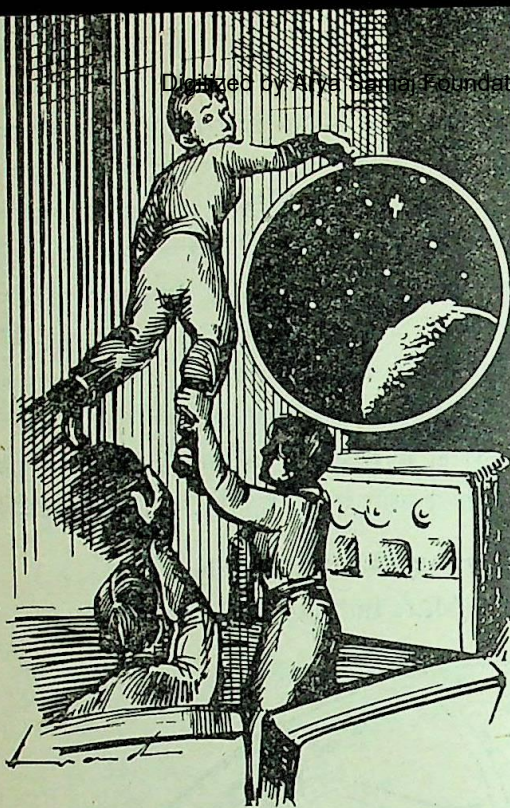
और निर्जीव है। भाग्य ने साथ दिया, तो हम
 रहस्य का पता लगाकर देखेंगे।”
 जयन्त और महेन्द्र को बातें करते हुए देख यान
 पायलट और कैप्टन प्रेमचन्द्र ने केविन में से
 क्लत्कर कहा—“अब बातें बन्द करो और छिद्र
 भी बन्द कर दो। अपने-अपने बिस्तरों में जाकर
 जाओ। हम चन्द्रमा पर उतरने वाले हैं।” फिर
 मुखोपाध्याय को सम्बोधित करते हुए बोला, “पृथ्वी
 कोई संकेत आया ?”
 मुखोपाध्याय यान का रेडियो आपरेटर था।
 १५.०० ता हेडफोन उतारकर बोला, “आल क्लीयर।”
 “ठीक है,” कैप्टन ने कहा। फिर महेन्द्र से बोला,

“अपना टेपरिकार्डर सम्हालो। मैं यान की गति
 चेक कर रहा हूँ।”

उनका राकेट-यान अन्तरा उस समय लगभग
 २,३०० मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चन्द्रमा की
 परिक्रमा कर रहा था। जयन्त अपने गद्देदार बिस्तर
 पर लेटा था। उसने अपनी पेटी कस ली। यान को
 चन्द्रमा पर उतारने का आदेश मिल चुका था और
 जयन्त का मन उस दिन से करीब एक मास पहले की
 उस भयंकर रात में जा भटका था जब वह एक
 राकेट-यान में अकेला रह गया था, उसे उड़ाकर
 अन्तरिक्ष में ले गया था और अपने इस चतुराई एवं
 साहस से उसने शत्रुओं के हाथों से यान को नष्ट होने

चन्द्रमा पर सक्रिय ज्वालामुखियों में से एक—एरिस्टिलस (Aristillus), तथा
 २. महासागर मेयर इम्ब्रियम (Mare Imbrium)





से बचा लिया था। जयन्त के पिता डाक्टर जगन्नाथ चन्द्रमा पर उतरने वाली वैज्ञानिक संस्था के प्रधान थे। उन्होंने रिमोट कंट्रोल गियर की सहायता से यान और अपने पुत्र को कुशलतापूर्वक नीचे उतार लिया था। जयन्त के इस अपूर्व साहस के कारण ही उसे चन्द्रमा पर उतरने वाले इस अभियान में शामिल कर लिया गया था। इस प्रकार जयन्त को राकेट में बैठने का अनुभव पहले से ही हो चुका था। चन्द्र अभियान के लिए उसे और गहन प्रशिक्षण दिया गया और कुछ ही सप्ताहों में वह अन्तरिक्ष में जाने की सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गया। फोटोग्राफी का उसे शौक था, इसलिए चन्द्रमा के फोटो उतारने का काम भी जयन्त को ही सौंपा गया।

इंजनों के शोर से जयन्त चौंककर उठ बैठा। यान की गति कम होने से उत्पन्न खिंचाव ने उसे नीचे दवाना शुरू किया, पर अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर उतरने की दशा में गुरुत्वाकर्षण में जितना परिवर्तन मालूम पड़ता है, उतना चन्द्रमा पर उतरते समय नहीं। करीब दस मिनट बाद, अन्तरा धीरे-धीरे अपने तीन पैरों पर चन्द्रमा पर उतर गया। प्रेमचन्द्र ने मोटरें बन्द कर दीं। फिर कहा, “मुखोपाध्याय! नीचे पृथ्वी पर सन्देश भेज दो कि हम चन्द्रमा पर उतर चुके हैं। और, जयन्त! तुम छिद्र खोलकर बाहर देखो।”

जयन्त अपनी पेट्टी खोल चुका था। आदेश पाते ही वह उल्लसित हो गया। पर चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण कम होने की बात जैसे उसे भूल ही गयी और वह तैरता हुआ छत के साथ जा लगा। उसको यह दशा देखकर उसके तीनों साथी हँस पड़े। उन्होंने जयन्त को पकड़कर उतारा। जयन्त भेंप गया और जल्दी से जाकर उसने छिद्र के आगे की प्लेट हटाकर देखा।

बाहर चन्द्रमा का भयावह सौन्दर्य फैला पड़ा था। जयन्त अकसर जिस प्रकार के दृश्यों की कल्पना किया करता था, सामने वाला दृश्य कुछ-कुछ वैसा ही निकला। चिलचिलाती धूप में एक विचित्र धरती दूर तक फैली पड़ी थी जहाँ वायुमण्डल शून्य था। राकेट-यान उस अस्सी मील चौड़े ज्वालामुख के पास ही जाकर उतरा था और उसके नीचे धूमिल लावा फैला पड़ा था। ज्वालामुख के करीब पाँच हजार फुट ऊँचा पर्वत खड़ा था।

अल्फानसस बहुत गहरा ज्वालामुख नहीं है। उसका कुछ हिस्सा लावा से भरा हुआ है। राकेट यान तथा पथरीली ढलान के बीच एक बहुत बड़ी और भयावह खाई थी, जो करीब आध मील चौड़ी होगी। उसके चारों ओर की ऊबड़-खावड़ जगह बिल्कुल काली थी और उस पर मलबा बिखरा पड़ा था।

जयन्त आश्चर्यचकित होकर यह सब देख रहा था। किसी प्रकार उसके मुँह से ये शब्द निकले, “अरे, क्या इसी खाई को जीवित ज्वालामुखी बताया जाता है!”

अभियान के दूसरे साथी छिद्र के पास आ खड़े हुए थे। मुखोपाध्याय ने कहा, “ऐसा लगता है जैसे किसी ने विस्फोटक पदार्थ से इस जगह को उड़ा दिया है और इतनी बड़ी खाई बन गयी है। पर जयन्त इसमें से गैसों अब भी न निकल रही हों। पर जयन्त मुखी फटने का कोई प्रमाण नहीं है। मीलों दूर तक कहीं भी ताजा लावा दिखाई नहीं देता। यान के बाहर निकलकर ही सारी वास्तविकता मालूम होगी।”

“चलो, चलो, नीचे उतरो। यहाँ खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?” प्रेमचन्द्र ने कहा। “पहले तुम आँखें मूँदो। महेन्द्र और जयन्त यान पर रेडियो द्वारा हमारे साथ और नीचे पृथ्वी पर सम्पर्क बनाये रखेंगे। रिकार्ड करने वाली सब मशीनों को चला दो। और जयन्त! अपने कैमरे निकाल लो। छिद्र में से बाहर देखो।”

कुछ दिखाई देता है। उसके फोटो उतारो। इसके बाद बाहर आकर भी जयन्त और महेन्द्र ने उनसे प्रेमचन्द्र और मुखोपाध्याय ने अपना-अपना प्रेसर सूट निकाल लिया। जयन्त और महेन्द्र ने उन्हें सूट पहनाया। उन्होंने भारी-भरकम मुखौटे भी पहन लिये। आक्सीजन के सिलिंडरों, रेडियो, बैटरियों तथा विविध प्रकार के उपकरणों का इतना भार उठाकर पृथ्वी पर एक कदम भी चलना उनके लिए मुसीबत हो जाती, पर चन्द्रमा पर सामान्य गुरुत्वाकर्षण का छठा भाग होता है, इसलिए वे बड़ी आसानी से चल-फिर सकते थे।

अपने उपकरणों की जाँच करने के बाद वे एयर-टाइट कमरे में आ गये। अन्दर का दरवाजा बन्द कर लिया गया। पम्पों ने शब्द करते हुए मूल्यवान वायु-मण्डल को राकेट-यान में भर दिया। फिर बाहर का दरवाजा चरमराकर खुला और उन्होंने सीढ़ी नीचे लटका दी। जयन्त और महेन्द्र रेडियो डेस्क पर साँस रोककर बैठे थे।

“हम नीचे उतर रहे हैं।” लाउडस्पीकर में से प्रेमचन्द्र का स्वर उनके कानों में पड़ा जो मुखौटे के माइक्रोफोन में से आने के कारण कुछ विकृत हो गया था। “यहाँ धूल वगैरह नहीं है। लगता है यान के उतरने से वह उड़ गयी।”

जयन्त यान के छिद्र में से नीचे झाँकने लगा। यान के नीचे से दोनों व्यक्तियों की बेडौल आकृतियाँ निकलकर जा रही थीं और उनके प्रेसर सूटों पर चिलचिलाती धूप फिसल रही थी। वस्तुतः ये सूट इसी प्रयोजन से बनाये गये थे। प्रेमचन्द्र और मुखो-पाध्याय धीमे-धीमे चले जा रहे थे। एक स्थान पर रुककर उन्होंने हाथ हिलाया और फिर वे खाई की तरफ बढ़ने लगे।

अगले आध घण्टे में जयन्त कैमरे से चित्र उतारता रहा और मुखोपाध्याय तथा प्रेमचन्द्र आगे बढ़ते हुए आँखों देखा हाल रेडियो पर बताते गये, जिसे महेन्द्र ने टैपरिकार्ड कर लिया। अन्त में प्रेमचन्द्र ने खबर दी कि वे दोनों काली धूल और मलबे की मोटी परत पर जा पहुँचे हैं और उस रहस्यपूर्ण खाई से कुछ ही दूर रह गये।

“अभी तक हमें ताजा लावा का कोई चिह्न नहीं मिला,” प्रेमचन्द्र ने बताया—“खाई की उतराई धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। यहाँ से अधिक कुछ नहीं दिखाई देता। अब मैं धीरे-धीरे नीचे जा रहा हूँ।

...मुखोपाध्याय ! तुम खाई के सिरे पर खड़े रहो और यान के माइक्रोफोन से बताना क्या मैं नीचे पहुँच सकूँ।”

“ठीक है,” यह मुखोपाध्याय की आवाज थी।

“महेन्द्र ! मेरी आवाज तुम तक पहुँच रही है न ?”

“हाँ, हाँ, बखूबी,” महेन्द्र ने यान पर से माइक्रो-फोन में कहा। जयन्त दूरदर्शी से खाई के सिरे पर खड़े मुखोपाध्याय को देख रहा था। तभी मुखोपाध्याय ने एक कदम आगे बढ़ाया और प्रेमचन्द्र के पीछे वह भी खाई में चला गया।

“महेन्द्र !” जयन्त ने कुछ चिन्ताजनक आवाज में कहा—“मुखोपाध्याय भी नीचे चला गया है।”

“यह मुखोपाध्याय बिल्कुल गधा है। जानता है कि यदि वह आँखों से ओझल हो गया, तो उनसे हमारा रेडियो सम्पर्क टूट जाएगा। पता नहीं कभी-कभी उसके दिमाग में क्या फितूर आ जाता है।”

जयन्त यान के छिद्र से हट आया। बोला, “मुझे संशय है, महेन्द्र ! बिना कारण मुखोपाध्याय कभी ऐसा नहीं करेगा। कहीं प्रेमचन्द्र मुसीबत में तो नहीं फँस गया ?”

महेन्द्र ने भी कुछ चिन्तित होते हुए कहा, “तुम्हारा सन्देह ठीक हो सकता है, जयन्त। हम दस मिनट तक प्रतीक्षा करेंगे। फिर मैं स्वयं उनका पता लगाने जाऊँगा।”

“क्या मैं नहीं चल सकता तुम्हारे साथ ?”

“नहीं। किसी को यहाँ रहकर पृथ्वी से सम्पर्क तो रखना ही है।”

महेन्द्र ने इस सारी घटना की सूचना पृथ्वी पर दी। यद्यपि पृथ्वी परिक्रमा करती रहती है, फिर भी किसी न किसी रिले स्टेशन से अभियान के प्रमुख कार्यालय के साथ सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था। दस मिनट बाद जब मुखोपाध्याय तथा प्रेमचन्द्र का कोई समाचार नहीं मिला, तो महेन्द्र ने तुरन्त नीचे उतरने का निश्चय किया। जयन्त की सहायता से उसने जल्दी-जल्दी प्रेसर-सूट और मुखौटा पहना और नीचे उतरने के लिए तैयार हो गया।

“महेन्द्र, उस खाई के सिरे से आगे मत जाना” जयन्त ने कुछ डरे हुए स्वर में कहा—“और मेरे साथ सम्पर्क बनाये रखना।”

“बिल्कुल। तुम घबराना नहीं। लगता है, उन्हें कोई ऐसी दिलचस्प चीज मिल गयी है और उसके चक्कर में वे हमारी खबर लेना तक भूल गये हैं।”

फिर जयन्त के कंधे पर भारी-भरकम कवच की

घोल मारकर महेन्द्र एयर-टाइट कमरे में से निकलकर नीचे उतर गया। Digitized by Arya Samaj Foundation

जयन्त यान के छिद्र के पास खड़ा होकर देख रहा था। महेन्द्र धूमिल लावे को पार करता हुआ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। प्रति-क्षण महेन्द्र और यान के बीच का अन्तर बढ़ता जा रहा था। जयन्त अब यान पर अकेला रह गया था। उसके मन में भय समाने लगा। उसे बिलकुल आशा नहीं थी कि उन्हें ऐसी स्थिति का भी सामना करना पड़ेगा। 'कहीं प्रेमचन्द्र और मुखोपाध्याय किसी मुसीबत में तो नहीं फँस गये?' यह कल्पना करते ही जयन्त सिहर उठा और दूरदर्शी उठाकर देखने लगा।

आखिर महेन्द्र जब उस बड़ी खाई के सिरे पर पहुँचा, तो एकाएक वहाँ रुक गया। फिर उसने जयन्त से बात की, "मुझे तो यहाँ कोई भी दिखाई नहीं देता। नीचे खाई में घटाटोप अँधेरा है। उतराई बहुत अधिक नहीं है। फिर पता नहीं वे गिर कैसे पड़े होंगे?" फिर एकाएक वह चौंक पड़ा।

जयन्त ने उछलकर माइक्रोफोन हाथ में ले लिया। बोला, "महेन्द्र। क्या बात है?"

"नीचे मुझे प्रकाश की एक लौ दिख रही है। कोई लाल-लाल रोशनी है। धीरे-धीरे वह तेज होती जा रही है। यह तो जीवित ज्वलामुखी मालूम होता है। आह!" एकाएक उसका स्वर बन्द हो गया।

"महेन्द्र! कहाँ हो तुम? बोलते क्यों नहीं?" जयन्त ने चिल्लाकर कहा। पर प्रेमचन्द्र और मुखोपाध्याय की भाँति महेन्द्र भी अदृश्य हो गया था। जयन्त भय और आश्चर्य से आँखें फाड़कर देख रहा था।

काफी देर तक जयन्त छिद्र में से बाहर देखता रहा, पर उसे न प्रेमचन्द्र, न मुखोपाध्याय और न महेन्द्र ही दिखाई दिये। अन्त में वह मुड़ा और रेडियो डेस्क पर आकर उसने मुख्य ट्रांसमीटर द्वारा पृथ्वी के साथ सम्पर्क स्थापित करके महेन्द्र, प्रेमचन्द्र और मुखोपाध्याय के रहस्यमय ढंग से अदृश्य हो जाने की सूचना दी। अभियान के मुख्य कार्यालय में इस दुख-पूर्ण खबर ने सनसनी पैदा कर दी और कुछ ही क्षणों में जयन्त के पिता डाक्टर जगन्नाथ ने आकर माइक्रोफोन सम्हाल लिया।

"जयन्त, अब ध्यान से मेरी बात सुनो।" जयन्त के पिता ने पृथ्वी से करीब ढाई लाख मील ऊपर अन्तरिक्ष में अपने पुत्र जयन्त को निर्देश देने शुरू

किये। उनके स्वर में किसी प्रकार की घबराहट नहीं थी। उन्होंने धीरे-धीरे कहा, "उन लोगों के पास कितनी आक्सीजन है?"

"हरेक के पास नम्बर एक के दो-दो सिलिंडर हैं, पिताजी।"

"तो वे अधिक से अधिक पाँच घण्टे तक जिन्दा रह सकते हैं। जयन्त, तुम किसी भी दशा में राकेट से उतरकर मत जाना। छह घण्टे तक रुककर उनकी प्रतीक्षा करो। तब तक उनकी खबर मिल जाए तो ठीक, वरना तुम्हें अकेले ही पृथ्वी पर लौट आना होगा।"

"पर, पिताजी,...." जयन्त कुछ कहना चाहता था। साथियों को छोड़कर पृथ्वी पर लौटने की कल्पना से ही वह सिहर उठा।

"मैं समझता हूँ वेटा। माना कि यह बड़ा भयंकर निश्चय है, पर ऐसी स्थिति में यही करना उचित है। तुम मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। तुमने जितने भी चित्र उतारे हैं और उपकरणों पर जो कुछ रिकार्ड हुआ है, उन्हें पृथ्वी पर लाना आवश्यक है। और, अब यह तुम्हीं ऐसा कर सकते हो। यह न समझो कि मैं अपने पुत्र की जान बचाने के लिए यह कह रहा हूँ। अगर तुम यान में से उतर गये होते और तुम्हारी जगह यान पर कोई और होता, तो भी मैं यही करता। इसलिए, जयन्त, अब तुम और कोई बात न सोचो और मेरे निर्देशों के अनुसार काम करना शुरू कर दो।"

जयन्त को काटो तो खून नहीं।

पृथ्वी से उसके पिता फिर निर्देश दे रहे थे—

"अब जल्दी से सब सामान एकत्र करना शुरू करो। जिस तरफ वे तीनों गये हैं, उस तरफ के चित्र टेली-स्कोप को यान के छिद्र में रखकर उतार लो। शायद उनसे हमें उनका कोई सुराग मिल जाए। इस बीच हम तुम्हें रिमोट कंट्रोल द्वारा पृथ्वी पर उतारने का प्रयत्न करते हैं। बस, तुम इतना भर करो कि इंजन स्टार्ट करके गीयर को पीछे कर दो। यह परीक्षा की घड़ी है और तुम्हें साहस से काम लेना है। मुझे पूरा भरोसा है कि तुम अब भी पहले की भाँति बहादुरी का परिचय दोगे। अब रेडियो बन्द कर दो और बैटरियाँ बचाकर रखो। पाँच घण्टे बाद फिर हमसे सम्पर्क स्थापित करना।"

"अच्छा पिताजी।" जयन्त ने भरपूर आवाज से कहा। वह कई क्षणों तक एकटक रेडियो को

देखता रहा। फिर हेडफोन उतारकर वह मशीन की तरह अपने पिता के निर्देशों के अनुसार कार्य करने लगा। बाहर से तो वह बिलकुल शान्त प्रतीत होता था पर अन्दर ही अन्दर उसका मन विद्रोह कर रहा था।

जयन्त जानता था कि उसके पिता ने बिलकुल ठीक ही निर्देश दिये थे और अब बुद्धिमत्ता इसी में थी कि उनकी हर बात का अक्षरशः पालन किया जाए। पर उसके मन में एक बात यह भी आ रही थी कि उसका एक और भी कर्तव्य है, अपने माथियों के प्रति। क्या उसके साथी उस भयावह खाई में दम तोड़ते पड़े रहें और वह उनकी सहायता के लिए उँगली भी न हिलाए? क्या अपनी जान बचाने की खातिर, यान को पृथ्वी पर सुरक्षित लौटाने की खातिर, वह अपने तीन साथियों को मरने दे?

उसने तुरन्त एक निश्चय कर डाला। उसके शरीर में नयी स्फूर्ति आ गयी। वह उठ खड़ा हुआ। उसने थोड़ा-बहुत भोजन किया, उपकरणों की देख-भाल की, अपना प्रेसर सूट निकालकर पहनने लगा। किसी की सहायता के बिना प्रेसर सूट पहनना आसान काम नहीं था, पर किसी तरह उसने उसे पहना। इसके बाद उसने आक्सीजन के चार बड़े-बड़े सिलिंडर, पाँच सौ फुट लम्बी नायलॉन की रस्सी, खूँटे, एक हथौड़ा, एक लैम्प और कैमरा भी साथ ले लिया और दस मिनट बाद ही वह यान से निकलकर उस खाई की ओर बढ़ा जा रहा था जिसमें उसके तीन साथी रहस्यमय ढंग से अदृश्य हो गये थे।

ज्वालामुख के प्रान्त की पूर्वी पहाड़ी के ऊपर सूर्य भुंक आया था और काले आकाश में उसकी सफेद-नीली रोशनी बड़ी भयंकरता से चमक रही थी। आकाश में एक भी सितारा नहीं दिखाई देता था। लावा की चकाचौंध से आँखें चौंधिया रही थीं। उससे बचने के लिए जयन्त ने स्फटिक के बने तंग मुखौटे को और नीचे सरका लिया। आक्सीजन तथा ताप का नियंत्रण करने वाले उपकरण बिलकुल ठीक काम कर रहे थे, फिर भी उस अज्ञात धरती पर पैर रखते हुए और अनजाने खतरों की ओर बढ़ते हुए जयन्त के कदम डगमगा रहे थे।

आगे बढ़ते हुए उसे पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ज्वालामुख की सतह ऊबड़-खाबड़ थी। चन्द्रमा पर रात और दिन के बीच के ताप में भयंकर अन्तर होता है। उसी कारण वहाँ

की सतह कट-फट गयी है। आखिर जयन्त उस खाई के मुँह से करीब बीस गज के अन्तर पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह रुक गया और मलबा हटाकर उसने एक खूँटा चट्टान की दरार में गाड़ दिया। फिर रस्सी का एक सिरा उसने खूँटे के साथ और दूसरा सिरा अपनी पेटो के साथ बाँध लिया और आगे बढ़ने लगा।

उस भयंकर खाई की ऊपरी ढलान में कहीं प्रकाश था, कहीं अंधकार। पर अपने साथियों का कोई चिह्न उसे वहाँ नहीं दिखाई दिया। नीचे खाई में घटाटोप अँधेरा था। रस्सी को पकड़कर वह फूँक-फूँककर कदम रख रहा था।

वह अभी कुछ कदम ही नीचे उतरा था कि एकाएक नीचे अंधकार में उसे आग का शोला-सा दिखाई पड़ा। यह रोशनी क्षण प्रति-क्षण तेज होती जा रही थी। जयन्त को लगा कि वह आग उसे अपने में समेट लेना चाहती है। पर फिर उसे ऐसा महसूस हुआ कि ऊपर से कोई दबाव उसे नीचे धकेल रहा है। फिर देखते ही देखते उसके पैर उखड़े और यदि उसने ऊपर खूँटे से रस्सी न बाँध ली होती, तो वह अवश्य ही नीचे की अतल गहराई में जा गिरता। वह नायलॉन की मजबूत रस्सी को पकड़कर झूल गया।

कई क्षणों तक जयन्त उस रस्सी के सहारे लटकता रहा। पर अब ऊपर का दबाव धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। लाल रोशनी भी मन्द पड़ती जा रही थी। जयन्त की जान में जान आयी और कोशिश करके वह पथरीली ढलान पर चढ़ गया।

तो क्या उसके साथियों को भी इसी स्थिति का सामना करना पड़ा था? पर यह दबाव ऊपर से नीचे की तरफ क्यों? यदि नीचे गैसों निकल रही होतीं, तो वह ऊपर की ओर उड़कर जाता। क्या नीचे कोई चुम्बक लगा हुआ है? वह भी नहीं, क्योंकि उसका मुखौटा और कवच आदि एल्यूमिनियम के बने थे, इस्पात या लोहे के नहीं। पर वह समय इस बारे में सोचने का नहीं था। जयन्त संम्लहकर खड़ा हो गया और दिल मजबूत करके रस्सी के सहारे नीचे उतरने लगा।

शीघ्र ही वह सूर्य के प्रकाश से निकलकर अंध-कारमय गुफा में जा पहुँचा। उसने अपना लैम्प जला लिया। सिर पर से मुखौटा उतारकर उसने ऊपर आकाश की ओर देखा। अब सितारे दिखाई दे रहे

थे। यह देखकर वह साहसपूर्वक नीचे उतरता चला गया।
Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खाई की चौड़ाई धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। जयन्त को ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह किसी चौड़ी द्यूब में उतरता जा रहा है। उसके पैर आसपास की दीवारों से टकरा रहे थे। फिर करीब सौ फुट नीचे जाने के बाद वह द्यूबनुमा खाई में से बाहर निकल गया पर आसपास पैर रखने के लिए उसे कोई अवलम्ब न मिला। एक प्रकार से वह अधर में लटक रहा था। अपनी स्थिति का भान होते ही निराशा ने उसे आ दबोचा। क्या इतनी ऊँचाई से नीचे गिरने पर उसके साथी बच सके होंगे?

अब क्या हो? जयन्त ने आशा बिलकुल छोड़ दी थी। अवश्य ही उसके तीनों साथी अब तक प्राण छोड़ चुके होंगे। और, उसके दिल में यह डर भी समा गया कि ऊपर लौटने के लिए उसमें अब जरा भी ताकत नहीं रही है। पर इतनी निराशा-जनक स्थिति में भी उसने साहस का परिचय दिया लैम्प से उसने नीचे रोशनी डाली। कुछ ही फुट नीचे एक चट्टान देखकर उसके अन्दर नयी आशा का संचार हो उठा।

वह उस चट्टान पर कूद गया। उस पर खड़े होकर उसने पुनः रोशनी डाली। पर इतने बड़े अंधकार को छोटा-सा लैम्प कैसे भेद सकता था?

अपने साथ वह फोटोग्राफी का सामान ले आया था वह सामान जोत ही उसने मैगनीशियम फ्लेयर निकाला और इगनाइटर को खींचा।

उसके प्रकाश में जयन्त ने जो कुछ देखा, वह विश्वास करने योग्य नहीं था। उसकी आँखें एकदम फैल गयीं। उस अन्तहीन जगह के बीचोबीच, उस द्यूबनुमा खोह के ठीक नीचे जिसमें से होकर वह आया था, किसी चमकीली धातु का एक बहुत बड़ा ढाँचा खड़ा था। उसकी ऊँचाई होगी कोई पचास फुट। वह बिलकुल पिरामिड जैसा था और उसके सिरे पर एक स्फटिक का गुम्बद था मानों उसमें कोई बहुत बड़ा लेन्स लगा हो। जयन्त को समझे देर न लगी कि इसी में से वह लाल-लाल लौ निकलती होगी और सम्भवतः इसी में उस शक्ति का स्रोत था, जिससे खिंचकर उसके तीनों साथी नीचे चले गये थे।

इस विचित्र ढाँचे से दृष्टि हटाकर जो उसने नीचे देखा, तो पिरामिड के साथ ही तीनों साथियों को पड़े देखकर वह एकदम चौंक पड़ा। अखिर उनका पता तो चला। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस स्थिति में क्या करे। तब तक उसका फ्लेयर भी जल चुका था। पर उसने अपने साथियों को देख लिया था और लैम्प की मदद से वह उनकी तरफ बढ़ने लगा। उनके पास पहुँचकर



या था
नकासा
वा, वह
एकदम
च, उस
कर वह
त बड़ा
पचास
र उसके
उसमें
समझे
लौ लौ
शक्ति
साथी

उसने
साथियों
अखिर
वहीं आ
तब तक
ने अपने
मदद से
हुँचकर

रस्सी के सहारे वे लोग ऊपर चढ़ने की तैयारी
ले लगे। जयन्त ने एक और फ्लेयर जलाकर उस
चित्र मशीन के कई चित्र उतारे। पहले तो
चन्द्र ने उसे मना किया, क्योंकि उसे डर था कि
इससे मशीन पुनः चालू न हो जाए। पर जयन्त
न से अब डर बिलकुल दूर हो चुका था और
ने जी भरकर चित्र उतारे।
रस्सी के सहारे शीघ्र ही वे लोग ऊपर आ गये
बिना किसी दुर्घटना के अपने राकेट यान पर
गये। वहाँ से तुरन्त उन्होंने नीचे पृथ्वी पर

उन्होंने उनके सिलिंडरों की जाँच की, जहाँ तक पेश
कम हो गया था। देर करना अब कितना
जराक साबित हो सकता था, यह जयन्त भली-
भाँति जानता था, इसलिए फुरती से उसने अपने
लाने लाये हुए तीनों सिलिंडर अपने साथियों के साथ
दिये।

नयी आक्सीजन मिलते ही उनमें जुम्बिश हुई
ले महेन्द्र हिला, क्योंकि वह सबसे बाद में वहाँ
जा था। आश्चर्य की बात कि किसी को जरा भी
डर नहीं लगी थी। तीनों को वह लाल लौ दिखाई
दी थी और तीनों के पैर उखड़ गये थे। वे सीधे
त खोह में जा गिरे थे। पर खोह में जाकर फर्श
जोर से टकराने की वजाय वे धीरे से, जैसे किसी
पर, जाकर गिरे थे।

प्रेमचन्द्र ने होश सम्हालते ही कहा, “ऐसा
लता है कि इस मशीन से सामान्य गुरुत्वाकर्षण
क्षेत्र में कोई परिवर्तन कर लिया गया है।
ह सब एक फंदा-सा दिखाई देता है। जयन्त, अगर
त साहस करके यहाँ न आ जाते, तो हम मर ही
जाते। हमारे पास लैम्प नहीं थे। अँधेरे में हमें मार्ग
न दिखाई देता और आक्सीजन खत्म हो जाने से
तड़प-तड़पकर जान दे देते। पर अब हमें जल्दी
कल्दी यहाँ से निकलकर अपने राकेट पर पहुँच
ना चाहिए।

रस्सी के सहारे वे लोग ऊपर चढ़ने की तैयारी
ले लगे। जयन्त ने एक और फ्लेयर जलाकर उस
चित्र मशीन के कई चित्र उतारे। पहले तो
चन्द्र ने उसे मना किया, क्योंकि उसे डर था कि
इससे मशीन पुनः चालू न हो जाए। पर जयन्त
न से अब डर बिलकुल दूर हो चुका था और
ने जी भरकर चित्र उतारे।

रस्सी के सहारे शीघ्र ही वे लोग ऊपर आ गये
बिना किसी दुर्घटना के अपने राकेट यान पर
गये। वहाँ से तुरन्त उन्होंने नीचे पृथ्वी पर

उन्हें चन्द्रमा पर
रात होने पर उतरना शुरू करना था। पर जयन्त
के पिता ने उन्हें तुरन्त नीचे उतर आने का आदेश
दिया। भविष्य में चन्द्रमा की जानकारी प्राप्त करने
के लिए उन्हें जो उपकरण वहाँ रखने थे, उन्हें रख
कर उन्होंने राकेट को पृथ्वी की तरफ मोड़ दिया
और पाँच दिन बाद वे चन्द्र अभियान कार्यालय में
पहुँच गये।

जयन्त के पिता ने चारों अन्तरिक्ष यात्रियों की
कहानी सुनी। फिर जयन्त के चित्रों को देखकर कहा,
“जानते हो वह मशीन क्या चीज थी? मुझे तो ऐसा
प्रतीत होता है कि यह खोह, जिसमें तुम लोग जा
गिरे थे, एक बहुत बड़े कौशल का काम था और
शायद चन्द्रमा पर उतरने वाले मनुष्यों को पकड़ने
का एक फंदा था।”

जयन्त ने जिज्ञासा प्रकट की, “पर यह मशीन
वहाँ किसने लगायी होगी।”

“अरे, स्पष्ट है, जो प्राणी विज्ञान के क्षेत्र में
हम लोगों से आगे हैं उन्होंने इस अद्भुत मशीन
का निर्माण किया है। हमको तो गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र
के बारे में रत्ती भर भी ज्ञान नहीं, उसे नियन्त्रण
करने की तो बात ही और है। लगता है किसी और
ग्रह के लोगों ने या चन्द्रमा वालों ने ही मनुष्य और
पृथ्वी के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह मशीन
लगायी है और वे यह देखना चाहते हैं कि मनुष्य ने
टेकनीकल ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त कोई और
विद्या भी सीखी है या नहीं। और, जयन्त, शायद
तुमने अपने साहस से मनुष्य के बुद्धि-बल का पूरा-
पूरा परिचय उन्हें दे दिया है। मैं समझता हूँ कि न
केवल तुम्हारे तीनों साथी बल्कि सारा मानव समाज
तुम्हारे प्रति कृतज्ञ है। वह मानव की परीक्षा की
घड़ी थी। तुमने दिखा दिया कि बुद्धिमान व्यक्ति
बड़ी से बड़ी विपत्ति का धैर्य से मुकाबला कर
सकता है।

मुनहरे मुकुट का पक्षी नन्हां रेन (wren) यूरोपीय पक्षियों में सबसे छोटा है—केवल तीन इंच
और वजन में आधा तोला। एक प्रसंग पर उड़ते हुए उल्लू की पीठ से चिपके ही चिपके नन्हें रेन ने
पार कर लिया था। बेचारा उल्लू, उल्लू ही बना रहा और रेन ने आराम से समुद्र पार कर लिया।

नवंबर १९६३



आज के उद्योगों की संपीड़ित वायु

अवधबिहारीलाल

वायु का दबाव हम पर इतना अधिक है कि यदि हमारे शरीर को निर्वात किया जा सके तो यह पिचककर चपटा बन जाए ! हम जानते हैं कि समुद्री सतह पर वायु प्रति वर्ग इंच १४.७ पौण्ड अर्थात् प्रति वर्ग फुट २११६ पौण्ड का दबाव हम पर डालती है। वैज्ञानिकों ने वायु की इस अपरिमित शक्ति का उपयोग करने का बीड़ा उठा लिया। उन्हीं के अथक परिश्रम का यह फल है कि वायु को बन्दी बनाकर अर्थात् संपीड़ित करके आज हम स्प्रे-पेंटिंग जैसे छोटे से छोटे काम से लेकर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी करने के लिए, इस्पात को काटने, जोड़ने जैसे बड़े से बड़े काम भी ले रहे हैं। संपीड़ित वायु परिचालित छोटे-बड़े यंत्रों से हम मोटर कार, ट्रेनों तथा विशाल जहाजों पर रोगन कर सकते हैं, खदानों में हर प्रकार की खुदाई कर सकते हैं, ट्रेन की जंजीर खींचकर ब्रेक लगा सकते हैं, मशीनों की सफाई करते समय जहाँ हाथ अथवा अन्य वस्तु न पहुँच सके वहाँ इसके द्वारा सफाई कर सकते हैं तथा बड़े-बड़े स्टोरो में त्वरित सेवा के लिए पाइप लाइनों में आवश्यक सूचनाओं के पर्चे रखकर उन्हें चाहे

जिस काउण्टर पर दौड़ा सकते हैं।

उद्योगों की रोड़

अपनी अनेक विशेषताओं के कारण संपीड़ित वायु आज बड़े-बड़े उद्योगों की रोड़ बनी हुई है। पहली विशेषता यह कि वायु घन रूप न होने से उसे चाहे जिस प्रकार का रूप दिया जा सकता है। दूसरे यह कि इसके परिचालन में चिनगारियाँ निकलने का प्रयत्न ही नहीं उठता जिससे कोई खतरा पैदा हो अतः इसे खदानों तथा अन्य ऐसे बन्द स्थानों में बेखटके प्रयुक्त किया जा सकता है जहाँ कार्बन मोनोक्साइड जैसी जहरीली और ज्वलनशील गैसों फैली रहती हैं। इसके विपरीत, इससे यह लाभ होता है कि यंत्र वाहर निकली हुई संपीड़ित वायु फैलकर स्थल की दूषित वायु को वाहर निकाल देती है। है और वातावरण को शुद्ध कर देती है।

वायुसंपीड़ित यंत्र जिन्हें (compressors) भी कहा जाता है, अनेक प्रकार के होते हैं। सबसे सरल यंत्र वह साइकिल पम्प है जिसे हम नित्य ही में लाते हैं। साइकिल की ट्यूब हो या फुटबॉल पम्प के बगैर बेकार है। दूसरी ओर बड़े

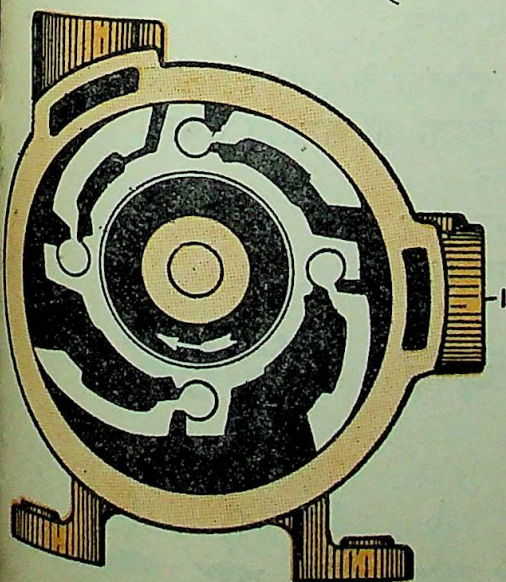
ऐसे जटिल कम्प्रेसर भी हो जाते हैं। छोटे यंत्र हाथ
हजारों पौण्ड की दाब देते हैं। और बड़े यंत्रों को स्टीम
अथवा डीजल चालित टर्बाइन के इंजनों से
चलाया जाता है।

शक्तिचालित कम्प्रेसरों की मुख्य श्रेणियाँ

शक्तिचालित कम्प्रेसरों को मुख्यतः तीन
श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—पश्चाग्र
(reciprocating), घूर्णन (rotary) तथा
टर्बो-संपीड़क (turbo compressor)।

पश्चाग्र संपीड़क—इन कम्प्रेसरों में
आगे-पीछे दौड़ते हुए एक पिस्टन द्वारा वायु
संपीड़ित की जाती है। इनमें इकहरे और
दोहरे यंत्र होते हैं। इकहरे यंत्रों में एक सिर
के वाल्व से वायु खींची जाती है और दूसरी
ओर के वाल्व से संपीड़ित वायु फेंकी जाती
है। दोहरे यंत्र में दो-दो वाल्वों के सेट दोनों
ओर होते हैं। वायु का संपीड़न बढ़ाने के लिए
ऐसे अनेक कम्प्रेसरों की शृंखला बनानी
पड़ती है। ऐसी एक शृंखला आठ-आठ
कम्प्रेसरों तक की भी होती है। शृंखलाबद्ध
कम्प्रेसरों की क्षमता प्रति वर्ग इंच १५००

है। द्विअर्थी पम्प दोनों कार्य—वायुसंपीड़न तथा
वायुशोषण—करने में समर्थ है।



पौण्ड दाब तक की हो जाती है।

पिस्टन द्वारा वायु संपीड़ित करने में
काफी ताप उत्पन्न होता है। ज्यों-ज्यों पिस्टन
के सीमित स्थल में वायु का दाब बढ़ता जाता
है, ताप भी उच्चतर होता जाता है। इससे
अनुमान लगाया जा सकता है कि उतने
संकुचित स्थल में कितनी विकट प्रतिक्रिया हो
रही होगी। यह ताप अनेक कारणों से
हानिकारक है। प्रथम यह कि सिलिण्डर के गर्म
हो जाने से वायु संपीड़न में विलम्ब होता है।
दूसरे यह कि पिस्टन की चाल संतुलित रखने
के लिए उसमें तेल देते रहना भी कठिन हो
जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कठिनाई यह
है कि लम्बे पाइप में चलते-चलते जब संपीड़ित
वायु अधिकांश ताप खो देती है, तब उसके
बाहर निकलने पर उसमें वह शक्ति नहीं रहती
जो वायु-प्रवेश के समय थी। संपीड़ित वायु को
अधिक क्षमतापूर्ण बनाने के लिए एक विशिष्ट
ताप पर स्थिर रखा जाता है। छोटे कम्प्रेसरों
को तो मोटर-रेडिएटर की भाँति ठण्डा रखना
सहज है, किन्तु बड़े कम्प्रेसरों को पंखों द्वारा
ठण्डी हवा दे-देकर ठण्डा रखना पड़ता है।
कहीं-कहीं तो चारों ओर पाइपों द्वारा ठण्डा
पानी दौड़ाकर भी ताप पर नियंत्रण रखा
जाता है।

घूर्णन संपीड़क—ये कम्प्रेसर सर्वथा भिन्न
सिद्धान्त पर काम करते हैं। ये गोल पंखों के
रूप में होते हैं जिसमें तेजी से घूमते हुए एक
ओर के पंखे वायु को अन्दर खींचते हैं और दूसरी
ओर के पंखे वायु को बाहर फेंकते हैं। इन्हीं
यंत्रों से किसी स्थल की वायु बाहर फेंकने
का भी काम लिया जाता है। इनमें ताप को
संतुलित रखने की आवश्यकता पड़ती है।

टर्बो-कम्प्रेसर—इनमें एक या अधिक
भाग से वायु का परिचालन होता है। प्रथम
चरण पर तो इन्हें घूर्णन शक्ति प्राप्त होती है
और दूसरे पर वह शक्ति संपीड़न शक्ति में

भारत सरकार

प्रीमियम इनामी बाण्ड

१९६३

उत्सव-त्यौहारों के लिए

उत्तम उपहार

बिक्री केवल ३१ दिसम्बर, १९६३ तक

तुरन्त खरीदिये और अगले वर्ष

आकर्षक इनाम जीतने का

अवसर प्राप्त कीजिए

अधिक विवरण निम्न स्थानों से प्राप्य :

रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया के सभी कार्यालय

स्टेट बैंक आफ इण्डिया की शाखाएं तथा

उसके सहायक बैंक

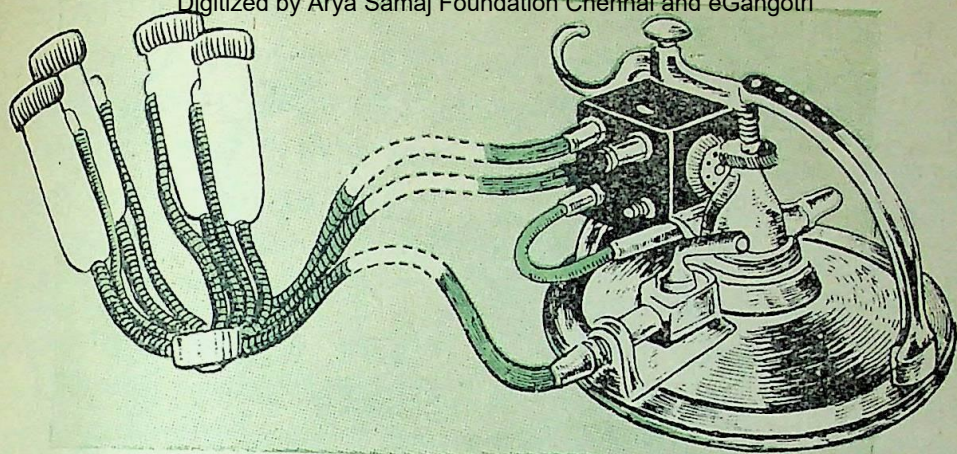
सभी मुख्य डाकघर और

विभागीय उप डाकघर



राष्ट्रीय बचत संगठन

DA 61/310



आधुनिक दुग्धशालाओं में जहाँ सभी कार्य यंत्रों द्वारा होते हैं, गाय, भैंस के थनों से दूध इस वायुसंपीडक यंत्र द्वारा निकाला जाता है

बदल जाती है। ये दो प्रकार के—सेन्ट्रीफ्यूगल कम्प्रेसर तथा एक्सियल कम्प्रेसर होते हैं। सेन्ट्रीफ्यूगल कम्प्रेसर में एक लम्बी शाफ्ट से पखेनुमा अनेक भाग जुड़े रहते हैं जिन्हें इम्पेलर्स (impellers) कहते हैं। पूरी शाफ्ट एक केसिंग में बन्द रहती है। प्रत्येक पंखे का अपना अलग-अलग कक्ष-सा बन जाता है। जिसे डिफ्यूजर (diffuser) कहते हैं। वायु का जितना दाब चाहिए उतने ही पंखे उस शाफ्ट पर लगाये जाते हैं।

विविध उपयोग

बड़े-बड़े कारखानों में कम्प्रेसर स्थायी रूप से रखे जाते हैं। कुछ कम्प्रेसर हलके-फुलके भी होते हैं। ऐसे कम्प्रेसरों से पाइप द्वारा संयोग कराकर चट्टानें तोड़ने के बरमे (drills), मूर्तिकार की छेनी, पेंटिंग करने के स्प्रे, लकड़ी चीरने के आरे तथा फर्श तोड़ने के हथौड़े चलाये जाते हैं। टारपीडो तथा खदानों में माल ढोने वाले इंजन कम्प्रेसरों के साथ-साथ वायु भरे सिलिण्डर भी रखते हैं। टारपीडो के लिए पानी के अन्दर तथा खदानों में स्वभावतः ही दबाव हजारों पौण्ड प्रति घन इंच रहता है। अतः उन स्थलों पर कम्प्रेसरों को केवल १००-१५० पौण्ड की ही दाब पर चलाया जाता है। आवश्यक परिवर्तनों के

पश्चात् इन वायु-संपीडकों से गैस संपीड़न का भी काम लिया जाता है। घरों में पाइप लाइन द्वारा ज्वलनशील गैस कम्प्रेसर से ही पहुँचायी जाती है। कम्प्रेसरों की ही सहायता से प्रयोगशालाओं के लिए बड़े-बड़े सिलिण्डरों में गैस भरकर सुरक्षित रखी जाती है।

खदानों में खोदने तथा चट्टानें तोड़ने-फोड़ने के लिए भारी-भरकम हथौड़े तथा बरमे कम्प्रेसरों की सहायता से चलाये जाते हैं। उन्हीं में माल भरने, ढोने तथा उठाने के समस्त कार्य कम्प्रेसरों की सहायता से किये जाते हैं। इन कार्यों के लिए संपीड़ित वायु देते रहने योग्य कम्प्रेसर-प्लान्ट अलग से लगाने पड़ते हैं। खदानों में वायु-संपीड़न का औसत प्रति घन इंच ६० पौण्ड का रखा जाता है। काम के दौरान में जो अतिरिक्त संपीड़ित वायु बाहर निकलती है वह अन्दर की दूषित वायु को साफ करने में बड़ी सहायता करती है।

वायु-संपीडक यंत्रों तथा औजारों के उपयोग की सूची काफी लम्बी बनायी जा सकती है। पुल बनाते समय कोठियाँ (caissons) बिठाने में, रिबिट बिठाने वाले हथौड़े चलाने में, बाँयलर-प्लेटें जड़ने में, वायुयान तथा जलयान के ढाँचे में स्टील-प्लेटें बिठाने में कम्प्रेसरों का ही मुख्य भाग रहता है।

विशाल कारखानों के अतिरिक्त सदेश-
वहन में कम्प्रेसरों का अति मनोरंजक उपयोग
किया जाता है। यह पेरिस शहर के इस
उदाहरण से स्पष्ट है। वहाँ बड़े स्टोरों
में, विशेषतः डाकखानों में खर की पाइप
लाइन इस प्रकार बिठायी जाती है कि
स्टोर के विभिन्न विभाग तथा विभिन्न
क्षेत्रीय डाकखाने एक-दूसरे से सम्बन्धित रहते
हैं। स्टोरों में आवश्यक निर्देश के पर्चे, सामान
के छोटे-छोटे पैकेट तथा नकदी-रेजगारी के
पैकेट पाइप में रखकर कम्प्रेसर द्वारा इच्छित
काउण्टर पर पहुँचा दिये जाते हैं। इसी प्रकार
डाकखानों में एक्सप्रेस डिलिवरी पत्रों के लिए
पत्रवाहक दौड़ाने की आवश्यकता नहीं
पड़ती। जिस क्षेत्र में पत्र भेजना हो उस क्षेत्र
के डाकखाने को पाइप लाइन द्वारा वह पत्र
कम्प्रेसर की सहायता से भेज दिया जाता है
और वहाँ से निकटवर्ती व्यक्ति को वह पत्र
सरलतापूर्वक पहुँचा दिया जाता है।

वायु-संपीड़न का उलट-यंत्र वैकुअम क्लीनर फर्श,
कालीन आदि की सफाई बड़ी सफाई से करता है

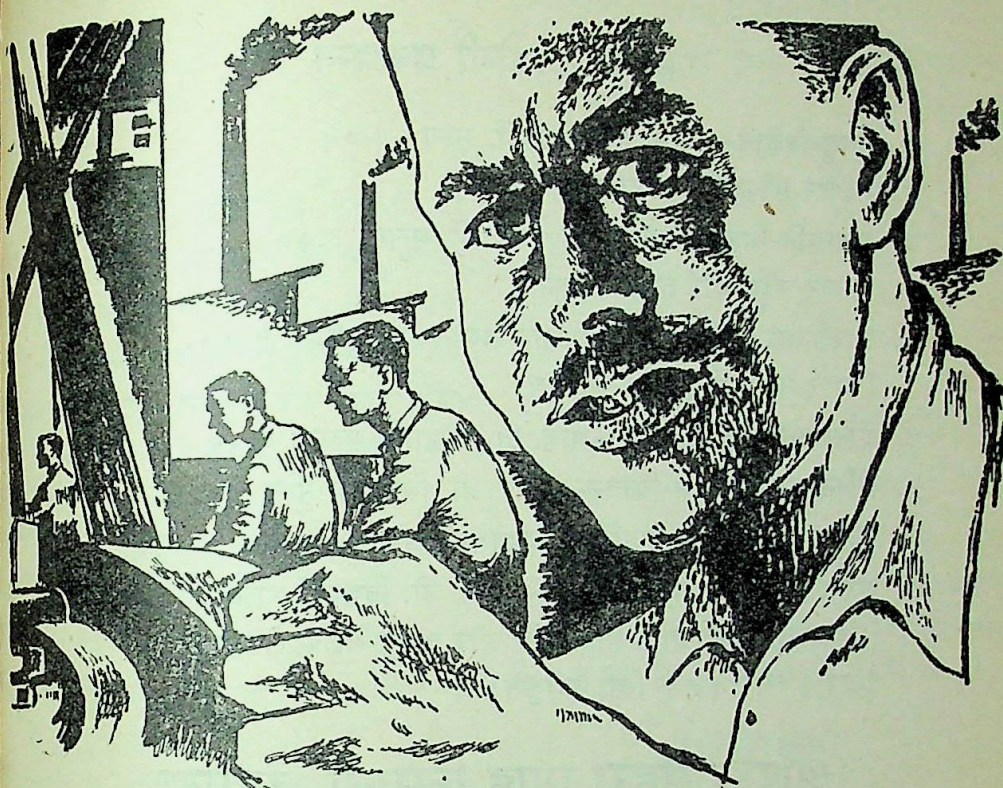


दूसरा उदाहरण अमरीका की कांग्रेस
लाइब्रेरी का है। वहाँ आप काउण्टर पर खड़े
होकर किसी भी पुस्तक का आर्डर दीजिए,
पलक मारते ही लाइब्रेरियन की मेज पर
पाइप में से वह पुस्तक जिस मंजिल पर होगी,
वहीं से आ टपकेगी।

स्प्रे-पेंटिंग में भी कम्प्रेसरों का उपयोग
बहुतायत से होता है। चित्रकला की
बारीकियों में संपीड़क सुई से ही काम लिया
जाता है। यह सुई पोली होती है और इसके
अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र से तरल रंग की गैसनुमा
फुहार छूटती है। वायु का दबाव घटाने-
बढ़ाने के लिए इसके हैंडिल पर स्विच रहता
है। बड़े आकार में यही यंत्र स्प्रे-गन कहलाता
है जो मोटर कार, जहाज, ट्रेन, कमरों की
दीवारें, तथा फर्श आदि रँगने के काम
आता है।

कम्प्रेसर के सिद्धान्त का जब उलटकर
प्रयोग किया जाता है तो वह वायु फेंकने के
बजाय वायु सोखने का काम करने लगता है।
यही सिद्धान्त वैकुअम क्लीनर में काम करता
है। इसके द्वारा फर्श, दीवारें, कम्बल, कार्पेट
आदि की धूल इस प्रकार सोख ली जाती है
मानो सख्त ब्रश फेर दिया गया हो। वैकुअम
क्लीनर के आविष्कार का श्रेय एच. सी.
बूथ (H. C. Booth) को है, जिन्होंने १९०१
में अपने आविष्कार को पेटेन्ट करा लिया
था। इसके द्वारा धूल साफ करने में एक लाभ
यह भी है कि भाड़ू लगने जैसी धूल उड़कर
नाक-मुँह में नहीं घुसती बल्कि एक अलग
पात्र में एकत्र होती रहती है। इससे अनेक
ऐसे रोगों से भी रक्षा हो जाती है जो धूल
उड़ने से फैलते हैं।

इस प्रकार मुक्त वायु को कैद करके
उससे अपनी इच्छानुसार बड़े-बड़े विलस
कार्य करा लेना विज्ञान ने ही मानव के लिए
सम्भव कराया है।



जीत के लिए जी-तोड़ मेहनत

विजय के लिए आपका काम भी बहुत जरूरी है। मातृभूमि की रक्षा के लिए हमारी सीमा पर लड़ रही सेनाओं को सुदृढ़ करने, राष्ट्र को अधिक साधन सम्पन्न बनाने और सभी मोर्चों पर प्रहार-शक्ति सबल करने के लिए प्रत्येक को उत्पादन बढ़ाने के वास्ते जी-तोड़ मेहनत करना आवश्यक है।

चाहे विशाल औद्योगिक-कारखाना हो या मशीन शॉप, चाहे फाउन्ड्री हो अथवा खराद, सभी प्रकार का काम करने वाले लोगों को उत्पादकता बढ़ाने और अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक परिश्रम करने का समय आ पहुँचा है। हमें इस बात का पक्का इंतजाम करना है कि सैनिक मोर्चों तक और देश की अन्दरूनी जरूरतों के लिए आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई का प्रवाह निरन्तर और निर्विघ्न चलता रहे।

**हर नागरिक
एक
सैनिक है**

**खूब उत्पादन बढ़ा कर
रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करने
के लिए**

नवम्बर १९६३

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए

हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
२. वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
३. प्रारम्भिक भौतिकी—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३.५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)
४. प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
५. प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००
६. सामान्य विज्ञान—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६.२५
७. सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५.००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ६ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

..... यहाँ से काटिये

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृपया दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए ।

जन्म-दिन आयु

नाम

घर का पता

स्कूल का नाम

शिक्षा रुचि

..... यहाँ से काटिये

भेजते समय यह अवश्य देख लिया करो कि पहले का प्रकाशित विषय न हो, अन्यथा वह परिश्रम प्रायः व्यर्थ हो जाता है।

दीपावली की शुभकामनाओं सहित,

प्यारे बच्चे !

बहुत दिनों से वैज्ञानिक कहानी की तुम्हारी माँग थी। इस अंक की कहानी—**अभियान** तुम्हारी वह माँग पूरी होगी। अन्य भी कुछेक नये विषय इस अंक में प्रस्तुत हैं। लिखना यह अंक तुम्हें कैसा लगा ? साथ ही यह भी कि तुम और क्या चाहते हो ?

सितम्बर-अंक तुम सबको बहुत पसन्द आया, यह तुम्हारे पत्रों में प्रदर्शित है। इन सभी का उल्लेख तो इन पंक्तियों में सम्भव नहीं, किन्तु तुम्हारी उस प्रशस्ति के लिए मैं कृतज्ञ अवश्य हूँ।

रांची से कीर्तिशंकर और राजकोट से रामदेव ने सितम्बर-अंक के मुखपृष्ठ को अत्यन्त आकर्षक तथा युक्तियुक्त बताया है। गोरजाकुमारी ने सबौर से तथा वृजमोहन ने गोरखपुर से लिखा है कि **सर्पगंधा** लेख बहुत उपयोगी है एवं ऐसे अन्य भारतीय पौधों पर और भी सामग्री देने का आग्रह किया है। मद्रास से पारसमल जैन, अमृतसर से नरेशकुमार तथा मण्डफिया से मांगीलाल शर्मा ने **रेमन केजेल** की जीवनी और **खिलवाड़ भरा** पोपस अत्यन्त रोचक बताये हैं। इसी प्रकार पीकर से उषाकुमारी और जमशेदपुर से वल्लभभाई **प्राणियों में प्रणय-लीला** लेख से प्रभावित हैं तथा **अन्तरिक्ष किरणों का** निर्माण अत्यन्त आधुनिक विषय के रूप में पसन्द किया है। आगामी अंकों में इस विषय पर तुम्हें प्रायः ही नवीन सामग्री मिलती रहेगी।

सितम्बर १९६३

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४४ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ, सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा, गोपाल माधव (२३७६) मेरठ, मंजुला सिरौही (११०३१) मेरठ।

द्वितीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (६१४) आगरा, प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, जयन्त घोष (४२६७) मेरठ, रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली, वल्लभदास पारिख (७७५८) उदयपुर, नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा, मंजु अग्रवाल (८१७६) इलाहाबाद, ज्ञानेश्वरदयाल निगम (६६५०) महु।

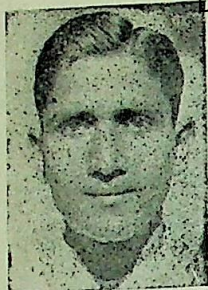
तृतीय पुरस्कार

विजयमणि अन्धवाल (२८०) आगरा, शशिवाला श्रीवास्तव (३४३४) इलाहाबाद, निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, चित्रगुप्त (३७००) मेरठ, चन्द्रमोहनसिंह (४८४४) अजमेर, घनश्यामदत्त शर्मा (६८६३) मेरठ, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, नरेशकुमार (७५५६) अमृतसर, ललितकुमार राव (७७३३) जगदलपुर, गोपी शहानी (८४८६) राँची, मायादेवी (८६०४) कानपुर, ओमप्रकाश श्रीवास्तव (६८८८) इलाहाबाद, हरीशचन्द्र (६६७०) सहारनपुर, अरुणा मेहता (१०१७५) उन्हेल।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४६

नाम

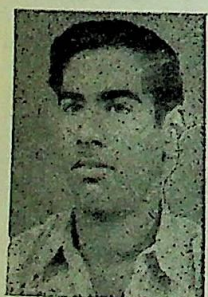
विशाल वलय के नये सदस्य



नन्दकिशोर
(स. सं. ७३६०)



वीरेन्द्रकुमार
(स. सं. ७६१५)



गजानन्द
(स. सं. ८४०७)



तेजकरण
(स. सं. ८४७६)

७१७७ अंजनीकुमार (१७) हाटा, ७८ सतीशचन्द्र (१०) कुरुक्षेत्र, ७९ चन्द्रकान्त (१४) कानपुर, ८० मोहनप्रसाद (१६) इचाक, ८१ भगवानदास (१४) बण्डा, ८२ प्रदीपकुमार (१३) कोटा, ८३ बलवीर (१६) प्यौदा, ८४ शिशिरकुमार (१३) हिसार, ८५ रामनरेशप्रसाद (१५) नौवतनुर, ८६, राममोहन (१६) भरतपुर, ८७ ज्ञानसिंह (१६) रायगढ़, ८८ इनायतअली (१६) रायपुर, ८९ भृगुनन्दन (१६) वामनडीहा, ९० सुरेशकुमार (१५) अमृतसर, ९१ देवेन्द्रकुमार (१३) जबलपुर, ९२ सुरेन्द्रदेव (१३) फैजाबाद, ९३ राजसहाय (१६) भागलपुर, ९४ राजेन्द्रप्रसाद (१७) इचाक, ९५ दुर्गानारायण (१७) खाचरौद, ९६ हरीशकुमार (१३) दिल्ली, ९७ अशोक (१५) जालन्धर, ९८ राजेन्द्रकुमार (१७) चांदा, ९९ श्यामसुन्दर (८) सरगुजा, ७२०० कृष्णमुरारी (१२) बीकानेर, १ वैजनाथप्रसाद (१२) मुरारपुर, २ कैलाशचन्द्र (१५) बल्लभनगर, ३ राजेन्द्रकुमार (१६) लश्कर, ४ रामनरेशचन्द्र (११) उन्नाव, ५ मधुसूदन (१५) लखनऊ, ६ रमणीकलाल (१३) चाईबासा, ७ अनुपम (१२) फरीदाबाद, ८ राजीव श्रीवास्तव (१०) मेरठ, ९ विद्योत्तमकुमार (१६) जोधपुर, १० शिवप्रसाद (१७) जबलपुर ११ कृष्णचन्द्रप्रसाद (१३) छपरा, १२ जशवीर (१४) बुरला, १३ सुबोधकुमार (१५) राँची, १४ कमलेश्वरप्रसाद (१२) इनई, १५ कु. विमलादेवी (१०) एरा, १६ विनोदानन्द (१४) भागलपुर, १७ प्रकाशचन्द्र (१५) देवेन्दनगर, १८ देवेन्द्रराज (१४) नई दिल्ली, १९ सुशीलकुमार (१६) लखनऊ, २० कु. शशि (९) आगरा, २१ रामवतार (१३) कतरास बाजार, २२ निरंजन (१७) टिटिलागढ़, २३ अंजनीकुमार (१२) लखनऊ, २४ रूपचन्द (१४) श्योपुरकलां, २५ महेन्द्रकुमार (१४) लश्कर, २६ विजयचन्द्रकुमार (१७) टाटानगर, २७ सन्दीपकुमार (१०) दिल्ली, २८ सुरेन्द्र (१५) चांदा, त्रिभुवननाथ (१५) जौनपुर, ३० प्रकाशचन्द्र (१६) हातोद, ३१ कु. सुशीला (१४) राँची, ३२ मोहनप्रसाद (१३) मुजफ्फरपुर, ३३ धर्मीचन्द्र (१५) पीसांगन, ३४ भर्गेश्वरप्रसाद (१६) जयपुर, ३५ रमेशचन्द्र (१६) नई दिल्ली, ३६ अशोककुमार (१२) इन्दौर, ३७ राजकुमार (१०) इन्दौर, ३८ सतीशकुमार (१५) दिल्ली, ३९ सन्तोषकुमार (१२) धौलपुर, ४० विनोदकुमार (१५) बीकानेर, ४१ निर्मलकिशोर (१४) टूंडला, ४२ राजकुमार (१८) बैतूल, ४३ श्यामसुन्दर (१०) भाँसी, ४४ हरकचन्द (१४) पीसांगन, ४५ मनोहरलाल (१४) भांगल्या, ४६ कु. रानी (११) आगरा, ४७ वीरेन्द्रकुमार (१६) आलिराजपुर, ४८ ओमप्रकाश (१५) पीसांगन, ४९ लालाराम (१६) रानावास, ५० हीतेशचन्द्र (१४) दिल्ली, ५१ लोकेश (१४) इन्दौर, ५२ अशोककुमार (१२) कलकत्ता, ५३ रामनिवास (१६) अलीगढ़, ५४ गोपालप्रसाद (१५) भरिया, ५५ मोहनलाल (१६) इन्दौर, ५६ धर्मीचन्द्र (१६) अजमेर, ५७ जीवनभाई (२०) भाणसा, ५८ सिद्धार्थकुमार (१४) नयानंगल, ५९ कमलचन्द (१४) मण्डलेश्वर, ६० कु. नसीमअनवर (१८) मेरठ, ६१ राधेश्याम (१५) रायगढ़, ६२ युगलकिशोर (१५) भासौर, ६३ प्रेमशंकर (१७) कोटा, ६४ नरेन्द्रकुमार (१५) जम्मू, ६५ लक्ष्मीनारायण (१६) आमला, ६६ दिनेशकुमार (१३) बनारस, ६७ एस. अनन्तराव (१५) जमशेदपुर, ६८ राजेश्वरसिंह (१६) खेरिया बाजार, ६९ एस.



वेदवत
(स. सं. ८५७८)



प्रेमचन्द
(स. सं. ८७८९)



देवीसरन
(स. सं. ८८९०)



घनश्याम
(स. सं. ८९०१)

सतीशकुमार (१४) छिन्दवाड़ा, ७२ जितेन्द्रकुमार (१८) जयपुर, ७३ श्रीकान्त (१३) दिल्ली ७४ ललितकुमार (१२) आदमपुर, ७५ नारायण (१५) वजीराबाद, ७६ शिवप्रसाद (१४) अयोध्या-गंज बाजार, ७७ राजेश्वरराम (१३) पटना, ७८ अरुण-कुमार (१३) बक्सर, ७९ शिवनाथ (१९) मकदुमा, ८० अभिलाष-शरण (१५) भाँसी, ८१ रघुवंश (१४) सरगुजा, ८२ भरतकुमार (१४) विलासपुर, ८३ नवीनकुमार (१०) वाराणसी, ८४ नवीन चन्द्र (१४) शहडोल, ८५ सीताराम (१४) आडसर, ८६ अशोक कुमार (१४) कानपुर, ८७ प्रेमनारायण (१५) भाँसी, ८८ रमेश दत्त (१६) आवूरोड, ८९ नीलमचन्द्र (१५) नयापारा राजिम, ९० कु. मंजु (१०) लखनऊ, ९१ नरेन्द्रकुमार (१४) अलीगढ़, ९२ विनोदकुमार (१४) सागर, ९३ ओमप्रकाश (१४) दिल्ली ९४ ब्रामुदेवनारायण (१२) कैरिया, ९५ विष्णुऔतार (१६) लखीपुर खीरी, ९६ वशिष्ठनारायण (१५) दरियापुरनेवादा, ९७ जैमासिंह, (१६) राँची, नानालाल १७ रायपुर, ९८ जंगबहादुर (१५) गया, ७३०० रमेशचन्द्र (१६) मुरैना, १ जगदीशचन्द्र (१३) चित्तौड़गढ़, २ वीरेन्द्रप्रताप (१६) नैनी, ३ कु. गीता (१०) गया, ४ अशोककुमार (१३) हुगली, ५ लक्ष्मीनारायण (१४) व्यावर, ६ रामकुमार (१४) कानपुर, ७ कुलविन्दर (१५) धौलपुर, ८ राजकुमार (१५) लाडनूँ, ९ हरिनारायणप्रसाद (१५) राँची, १० तरुणकुमार १७ पटना, ११ भोलानाथ (१४) राँची, १२ शंकरसिंह (१३) पंडरी, १३ अरुणकुमार (१३) पटना, १४ नरेन्द्रनारायण (१४) सिमटी, १५ एन. जगनाथ (१३) जमशेदपुर, १६ कु. एन. कमला (१९) जमशेदपुर, १७ विजयकुमार (८) सूरजपुर, १८ शरदचन्द्र (१३) इन्दौर, १९ सुरेन्द्रकुमार (१४) रत्नपुर, २० ज्ञानचन्द्र (१९) अजमेर, २१ अभयकेशव (१३) पटना, २२ रविनन्दन (१३) रामनगर, २३ अनिलकुमार (१४) मेरठ, २४ कु. शशिप्रभा (१४) सहारनपुर, २५ गोपाल नारायण लाल (१६) सहारनपुर, २६ कु. प्रेमप्रभा (१०) सहारनपुर, २७ मनोहरलाल (१९) आगरा, २८ इन्द्रजीत (१६) नयानगल २९ विष्णुदत्त (१३) हरद्वार, ३० प्रमिन्द्र (१७) सहारनपुर, ३१ कु. सुषमारानी (९) जोगों, (३२) सतीशकुमार (१३) कलकत्ता, ३३ विनयकुमार (१०) बम्बई, ३४ सुरेशकुमार (११) बम्बई, ३५ हरीशचन्द्र (१६) देहरादूर ३६ विनोदकुमार (११) देहरादून, ३७ सुरेन्द्रकुमार (१६) बड़नगर, ३८ केशरीचन्द्र (१३) फारबिसगंज, ३९ याकूब (१८) भाटापारा, ४० हीरालाल (१२) राँची, ४१ पुरुषोत्तमकुमार (१५) जगदलपुर, ४२ गुरमीत (१७) डाल्टनगंज, ४३ जार्जकुजूर (१५) लोहारदगा, ४४ शीलाकुमारी (१६) राँची, ४५ रामनगीना (२०) उदवन्तनगर, ४६ खुशालभाई (१५) भाभर, धीरेन्द्रमोहन (९) राँची, ४८ युधिष्ठिर (११) राईपुरा, ४९ लक्ष्मणप्रसाद (२०) मोदीनगर, ५० जुगलकिशोर (१६) दानापुर ५१ खैरातीलाल (१७) दिल्ली, ५२ शंभुदयाल (१५) चित्तौड़गढ़, ५३ प्रमोदकुमार (१२) सहजनवाँ, ५४ छतरसिंह (१३) लाडनूँ, ५५ महेशचन्द्र (१९) मोदीनगर, ५६ सन्तोषकुमार (१६) मल्लावाँ, ५७ उमाशंकर (१६) भगवन्तनगर, ५८ भगवानलाल (१४) राँची, ५९ गणेशीराम (१६) रिवाड़ी, ६० सुरैया सुल्ताना (१४) हजारीबाग, ६१ ललितेश्वरप्रसाद (१६) सुपौल, ६२ दिनेशकुमार (१४) अमनौर, ६३ सुऐब (१४) अनीसाबाद,



मारकाडेय
(स. सं. ६४६५)



कु. कमला जैन
(स. सं. ६५१२)



अमरकुमार
(स. सं. ६५१६)



महोपासिंह
(स. सं. ६६१२)



विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४६

प्रथम पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तकें

द्वितीय पुरस्कार

२० रु. की पुस्तकें

तृतीय पुरस्कार

१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३० नवम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५६ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४६ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३० नवम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४६ के प्रश्न

१. मस्तिष्क के विद्युतावेग किस यंत्र द्वारा अंकित किये जाते हैं ?

२. स्ट्रान्जियम-६० क्या है ?

३. बेल्लाडोना (Belladonna) का वानस्पतिक नाम क्या है ? इसे सौन्दर्यमयी क्यों कहा जाता है ?

४. रैटलस्नेक (rattlesnake) सर्प का खरखर (rattling) ध्वनि उत्पादक अंग कहाँ पर होता है ?

५. फ्लोजिस्टन - सिद्धान्त (Phlogiston Theory) का खण्डन किसने और कब किया ?

६. अन्तरिक्ष में किस दूरी पर पृथ्वी और चन्द्रमा का पारस्परिक आकर्षण शून्य हो जाता है ?

७. मानव-प्रक्षेपित उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में प्रक्षेपित करने के लिए किस न्यूनतम वेग से छोड़ना आवश्यक है ?

८. यदि खौलता हुआ पानी शीशे के एक गोले तथा पतले गिलास में उड़ोला जाए तो शीघ्र चटखने की सम्भावना किसकी रहेगी और क्यों ?

प्रतियोगिता संख्या ४४ के प्रश्नों के उत्तर

१. फ्रेन्च वैज्ञानिक लियन फोकोल्ट (Leon Foucault) ने १८५२ में ।

२. भेक की अपेक्षा मेंडक की पिछली टाँगें काफी लम्बी होती हैं जिससे उसके मुकाबले यह लम्बी छलाँगें भर सकता है। इसका शरीर भेक से अधिक लसलसा होने से आसानी से हाथ में नहीं आता।

३. यह अग्निशामक है। एक पात्र में सोडियम वाइकार्बोनेट व लिसोराइट रुट एक्स्ट्रैट का मिश्रण और दूसरे में एल्यूमिनियम सल्फेट भरते हैं।

४. रूस में, १९५० में ।

५. पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण-बल तथा उससे प्रभावित तारों की गति के आधार पर।

६. *Phytelephae* जाति के पाम वृक्षों से दक्षिणी अमरीका में तथा *Attalea* पाम से मध्य अमरीका में। नन्हें बीजों से निर्मित इनके फल मानव सिर के आकार के होते हैं। बटन जैसी नन्हें वस्तुएँ इनसे बनने पर असली हाथीदाँत जैसी ही दिखती हैं।

७. वैंलेरी बाइकोव्सकी ११६ घण्टे तथा वेलेंतीना तेरेश्कोव ७२ घण्टे अन्तरिक्ष-यान में रहे।

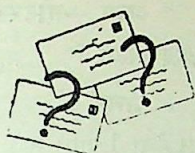
८. द्विनेत्री (binocular) अर्थात् दूरदर्शी के सिद्धान्त के अनुसार हमारे दोनों नेत्रों द्वारा संयुक्त रूप से ही प्रत्येक वस्तु का स्थूल स्वरूप दिखता है। एक को ऊँचा-नीचा करने पर दो भिन्न तैल बन जाने से दो बिम्ब दिखते हैं।

९. पानी की मात्रा नहीं बढ़ती। तरंगों के सागर के बड़े हुए वेग को लहरों ही लहरों पर चला किये हुए किनारे पर टकराती हैं। ज्वार के वेग के अनुपात में तरंगों की प्रचण्डता भी बढ़ती जाती है।

१०. तीन सेकण्ड में त्वरण (acceleration) सिद्धान्त के अनुसार नीचे गिरता हुआ पत्थर प्रत्येक सेकण्ड ३२ फुट का अधिक त्वरण प्राप्त करता है। अतः पहले सेकण्ड में १६ फुट, दूसरे में १६ + ३२ = ४८ फुट तथा तीसरे में ४८ + ३२ = ८० फुट कुल १४४ फुट पहुँचेगा।

जीतपालसिंह (६४८५) मण्डला

आपके प्रश्न



हरेन्द्रकुमार शाही (३४५८) डिगबोई

प्रश्न—ध्वनि की अनुभूति हमारे मस्तिष्क तक कैसे पहुँचती है ?

उत्तर—वायुचालित तरंगों के रूप में ध्वनि हमारे बाह्य कान द्वारा अन्दर पर्दे पर टकराकर पर्दे को तरंगित कर देती है। बदले में पर्दे द्वारा उत्पन्न तरंगें अन्तर्कर्ण (inner ear) के विभिन्न अंगों को संचालित करती हुई तंत्रिकाओं द्वारा सुनने की अनुभूति मस्तिष्क तक पहुँचा देती हैं।

ज्ञानचन्द जैन (६७५६) डोंगरगाँव

प्रश्न—पयूज तार का क्या उपयोग है ?

उत्तर—विद्युतधारा के अमर्यादित प्रवाह को रोककर बिजली के फिटिंग में तथा अन्ततः मकान में आग लगने से बचाता है। टिन, ताँवा तथा चाँदी का इतना पतला तार पयूज के काम में लाया जाता है कि विद्युतधारा का प्रवाह सीमा लांघते ही उसे जला देता है। भिन्न-भिन्न वोल्टेज पर विभिन्न मोटाई के तार प्रयुक्त होते हैं।

तारकेश्वर महतो (१०५३४) तमाड

प्रश्न—हाइड्रोजनेशन (hydrogenation) किसे कहते हैं ?

उत्तर—असंतृप्त तेलों को गैसीय हाइड्रोजन के मिश्रण द्वारा घनीभूत करने की क्रिया को यह नाम दिया गया है, उदाहरणार्थ वेजीटेबल तेल का नारियल तथा मूँगफली के तेल द्वारा निर्माण।

रमेशचन्द्र चौहान (७५६६) मैनपुरी

प्रश्न—सूर्य का ताप कितना है ? सूर्य से पृथ्वी तक क्या तब तक गर्मी आती रहेगी जब तक पृथ्वी का ताप सूर्य के बराबर न हो जाए ?

उत्तर—सूर्य के केन्द्र का ताप दो करोड़ डिग्री सेण्टीग्रेड से भी अधिक का आँका गया है। पृथ्वी का ताप सूर्य के बराबर पहुँचने का कोई प्रश्न ही नहीं, क्योंकि पृथ्वी के गिर्द का मुक्त वायुमण्डल पृथ्वी के ताप को निरन्तर शोषित भी करता रहता है।

प्रश्न—शुष्क सेल (dry cell) में कौनसे पदार्थ आते हैं ?

उत्तर—बाहर की ओर जस्ते का आवरण रहता है जो सेल के ऋणाय का काम करता है। इसकी भीतरी सतह साल अमोनियम (sal ammoniac) अर्थात् अमोनियम क्लोराइड (NH_4Cl) से पुती रहती है। ठीक मध्य में कार्बन की छड़ खड़ी रहती है जो धनाय का काम करती है। इस छड़ और जस्ते के मध्य अमोनियम क्लोराइड, कार्बन तथा मैंगनीज डाइआक्साइड का अर्द्धद्रव मिश्रण भरा जाता है।

बजरंगलाल अग्रवाल (७६५४) सक्ती

प्रश्न—चन्द्रमा पर पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल लगता है फिर भी चन्द्रमा अपने वृत्ताकार पथ पर ही क्यों चलता है ?

उत्तर—चन्द्रमा के अपने गुरुत्वाकर्षण तथा केन्द्रापसारि बल के कारण।

महबूबखान (६८२४) मनमाड

प्रश्न—अल्फा सेन्टारी (Alpha centaury) क्या है ?

उत्तर—सूर्य के बाद हमारी पृथ्वी के निकटतम का यह युग्म तारा है। विस्तृत विवरण के लिए देखिए विज्ञान-लोक, सितम्बर १९६२।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—क्या बिना पूँछ की भी बिल्ली होती है ?

उत्तर—मैंक्स बिल्ली (Manx cat) बिना पूँछ की होती है।

गोविन्दप्रसाद (६६२६) इलाहाबाद

प्रश्न—विज्ञान-लोक, जून ६३ में धातु-संकरधातु के शीर्षक के पास लिखे हुए Li-In-Ga संकेतों का क्या अर्थ है ?

उत्तर—धातु-तत्त्वों के संकेताक्षर हैं। क्रमशः लीथियम, इण्डियम तथा गैलियम।

भूपेन्द्रनाथ पाण्डे (१०६०१) देवरिया

प्रश्न—कौनसा ऐसा विष है जिसका एक भी कण जीभ पर रखते ही मृत्यु अवश्यम्भावी है ?

उत्तर—पोटैशियम सायनाइड।

नवम्बर १९६३

विनोदकुमार बतरा (७२६२) सोनर

प्रश्न—रेगुलेटर द्वारा पंखा किस प्रकार चलता है ?

उत्तर—बिना रेगुलेटर के पंखे को पूरी विद्युत-धारा मिलती रहेगी और वह अधिकतम गति से चलता रहेगा। इसके विपरीत, रेगुलेटर विद्युत-प्रवाह को आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर ही पंखे में जाने देता है।

भवानीप्रसादसिंह (१०१२२) हजारीबाग

प्रश्न—सूर्य जब स्थिर है तो फिर वह १२ मील प्रति सेकण्ड की गति से कैसे और कहाँ चक्कर काट रहा है ?

उत्तर—सूर्य भी विशाल व्योम में अनगिनत तारों जैसा एक तारा है जो स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित है और अन्यान्य तारों की भाँति ही गतिमान भी है। यह अपनी धुरी पर एक चक्कर लगभग २५.३८ दिनों में पूरा कर पता है।

गोपीचन्द बलवानी (५५५८) भंडारा

प्रश्न—आधी रात का सूर्य कथन से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—सूर्य अपनी कर्क संक्रान्ति पर उत्तर ध्रुवीय प्रदेशों में अस्त नहीं होता किन्तु पृथ्वी की धुरी झुकी हुई होने के कारण निरन्तर दिखता रहता है। नार्वे के उत्तरी छोर पर यह अवस्था १२ मई से अन्तिम जुलाई तक रहती है। अमुक स्थलों का दूरी ध्रुवों से जितनी हो, उसी अनुपात में सूर्य की यह अवस्था ४८ घण्टे से लगाकर ६ महीने तक रहती है। अधिकतर नार्वे का उत्तरी-पश्चिमी विस्तार आधी रात के सूर्य का देश कहलाता है।

शत्रुल अवस्थी (३६६८) इलाहाबाद

प्रश्न—काइमोग्राफ (Kymograph) क्या है ? इसका आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—धमनियों (arteries) के रक्तपात का तथा श्वसनक्रिया का निरीक्षण करने में काम आता है। थामस यंग ने इसका आविष्कार किया था।

राजेन्द्रकुमार (१०१३०) दिल्ली

प्रश्न—टंग्स्टन का गलनांक क्या है ?

उत्तर—३३६०°C

वेदप्रकाश अग्रवाल (८६११) गंज बासोदा

प्रश्न—मोटरबोट का आविष्कार किसने और कब किया ?

उत्तर—१८८७ में जर्मन वैज्ञानिक गॉट लिएव (Gott Lieb) ने।

रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली

प्रश्न—क्या सोडावाटर पीना लाभदायक है जब कि उसमें कार्बनडाइआक्साइड धुली रहती है ?

उत्तर—संतुलित मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड की भी तब आवश्यकता पड़ जाती है जब शरीर में अम्लीयता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ बदहजमी और खट्टी डकारें आने पर सोडियम कार्बोनेट पाउडर पानी में घोलकर अथवा सोडावाटर पीने से लाभ होता है।

रमेशकुमार सोनी (६३६६) पेण्ड्रा रोड

प्रश्न—किसी शहर का ताप लेने के लिए तापमापी को छाँह में रखना चाहिए अथवा धूप में ?

उत्तर—ऐसे स्थल पर रखना चाहिए जहाँ खुली धूप और तीव्र वायु के भोंके न पहुँचते हों।

बल्लाराम सोनी (६६७४) डोंगरगाँव

प्रश्न—गाय-बैल दौड़ते समय अपनी पूंछ उठाये क्यों रहते हैं ?

उत्तर—शरीर का संतुलन बनाये रखने के लिए।

प्रमोदकुमार (८५०६) उत्तर काशी

प्रश्न—अधिक पानी कहाँ बरसता है, पृथ्वी अथवा समुद्र पर ?

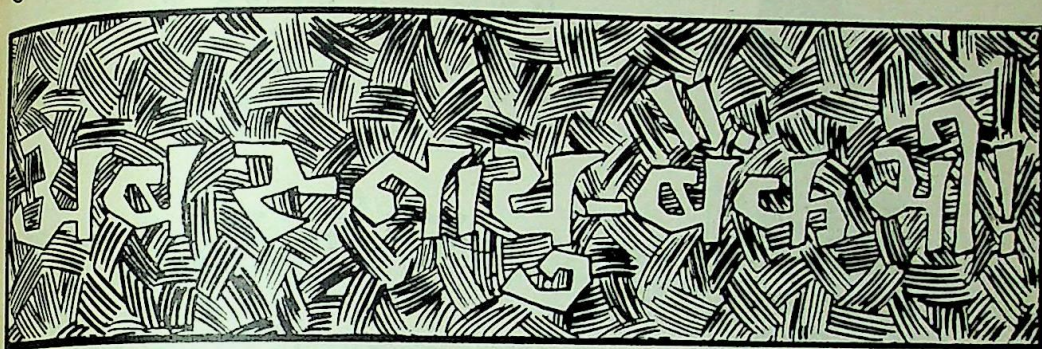
उत्तर—पृथ्वी पर।

सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर

प्रश्न—स्फिनोडॉन (sphenodon) को सजीव फासिल क्यों कहते हैं ?

उत्तर—इसलिए कि यह प्रागैतिहासिक काल के *Rhynchocephalia* समूह के सरीसृप की अन्तिम शृंखला स्वरूप है। यह न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।



निसारअहमद कुरेशी (७७६६)

देश-रक्षा के क्षेत्र में रक्तदान का अनूठा योग है। आधुनिक शल्य चिकित्सा नेत्र बैंकों का भी चमत्कार दिखा चुकी है। अंग दान तथा अंग बैंकों की यह शृंखला बराबर बढ़ती जा रही है। कूपरटाउन न्यूयार्क के डा. हर्बर्ट, डा. डेविड तथा डा. जहाँन फेफड़ों का भी अदान-प्रदान सम्भव करके जनसाधारण को समतृप्त कर चुके हैं। अब स्नायु-बैंकों का प्रादुर्भाव हुआ है।

पिछले कुछ वर्षों तक एक मनुष्य की नसें दूसरे मनुष्य में स्थापित करना एक उपहासास्पद कल्पना समझी जाती थी। अब डा. कैम्पबेल ने उसे यथार्थ का बाना पहना दिया है। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के मेडिकल सेन्टर में स्नायु-चिकित्सा के सहप्राध्यापक डा. कैम्पबेल ने इस दिशा में चमत्कारिक सिद्धि प्राप्त की है। सात वर्षों के अथक परिश्रम ने उन्हें आज सफलता दिखाई है। सफल प्रयोगों द्वारा उन्होंने प्रदर्शित किया है कि तुरन्त ही मरे हुए व्यक्ति की नसें तथा स्नायु जब तक विकृत नहीं होते तब तक निकालकर अन्य रोगी व्यक्ति के शरीर में रोपित किये जा सकते हैं।

उनके मत से इस प्रकार के स्नायु-रोषण के फलस्वरूप नवस्थापित स्नायुओं की प्राकृतिक क्रिया प्रणाली में कोई अन्तर नहीं आता।

अपने प्रयोगों की सफलता के उन्होंने मुख्यतः दो रहस्य बताये हैं—प्रथम, विकिरण प्रक्रिया तथा द्वितीय, प्लास्टिक की सूक्ष्म छिद्रोद्युक्त थैलियों का उपयोग। नसों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें विकिरण द्वारा कीटाणुमुक्त रखना अनिवार्य है तथा एक सुरक्षित स्नायु-खण्ड को रोगी व्यक्ति के शरीर में स्थापित करके उसे प्राकृतिक स्पन्दन देने के लिए यांत्रिक क्रिया का आश्रय लेना पड़ता है।

एक बार स्थापित हो जाने पर और प्राकृतिक स्पन्दन आरम्भ हो जाने पर यांत्रिक क्रिया बन्द कर दी जाती है। अब तक के सफल प्रयोगों से यह आशा होने लगी है कि रक्तदान की भाँति स्नायु-दान तथा स्नायु-बैंक अपना विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेंगे। नसों तथा स्नायुओं के असंख्य रोगियों के लिए सम्भव हो जाएगा कि वे किसी भी स्नायु-बैंक में जाकर घिसे-पुराने तथा रोगी अंगों के स्थान पर नये और स्वस्थ अंग प्राप्त करके नवजीवन पा सकेंगे।

इन प्रयोगों की प्रारम्भिक सफलता एक अति शुभ संकेत है और निश्चय ही इनका भविष्य अति उज्ज्वल है। इनकी पूर्ण सफलता से मानव-जीवन को लाभ ही होगा और खराब आँगों का परिवर्तन सहज ही सम्भव हो जायगा।



विशिष्ट वर्ग एकत्रित हों तो
हाईलैण्ड
चीफ
 माल्टेड विहस्की

एक अरोध्य प्रलोभन है

जब कभी मित्रगण सम्मिलित होते हैं तो अच्छी विहस्की से अधिक सुखद और कुछ नहीं है। उस सभा को अविस्मरणीय बनाने के हेतु आप उत्तम विधि तथा सावधानी से मिश्रित हाईलैण्ड चीफ से अधिक अच्छा चुनाव नहीं कर सकते।



DMB-NP-331

डायर मीकिन ब्रुअरीज़ लि० स्थापित १८५५

जगदीश मेहरा द्वारा एज्युकेशनल प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. [मुद्रण के लिए जवाबदार फंडिंग एण्ड ओपरेटिंग्स, मथुरा में मुद्रित]

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully, *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.

Book II.....Price : Re. 1.00

Book III.....Price : Re. 1.20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

दीपावली विशेषांक

गीतारिका
कहानी मासिक



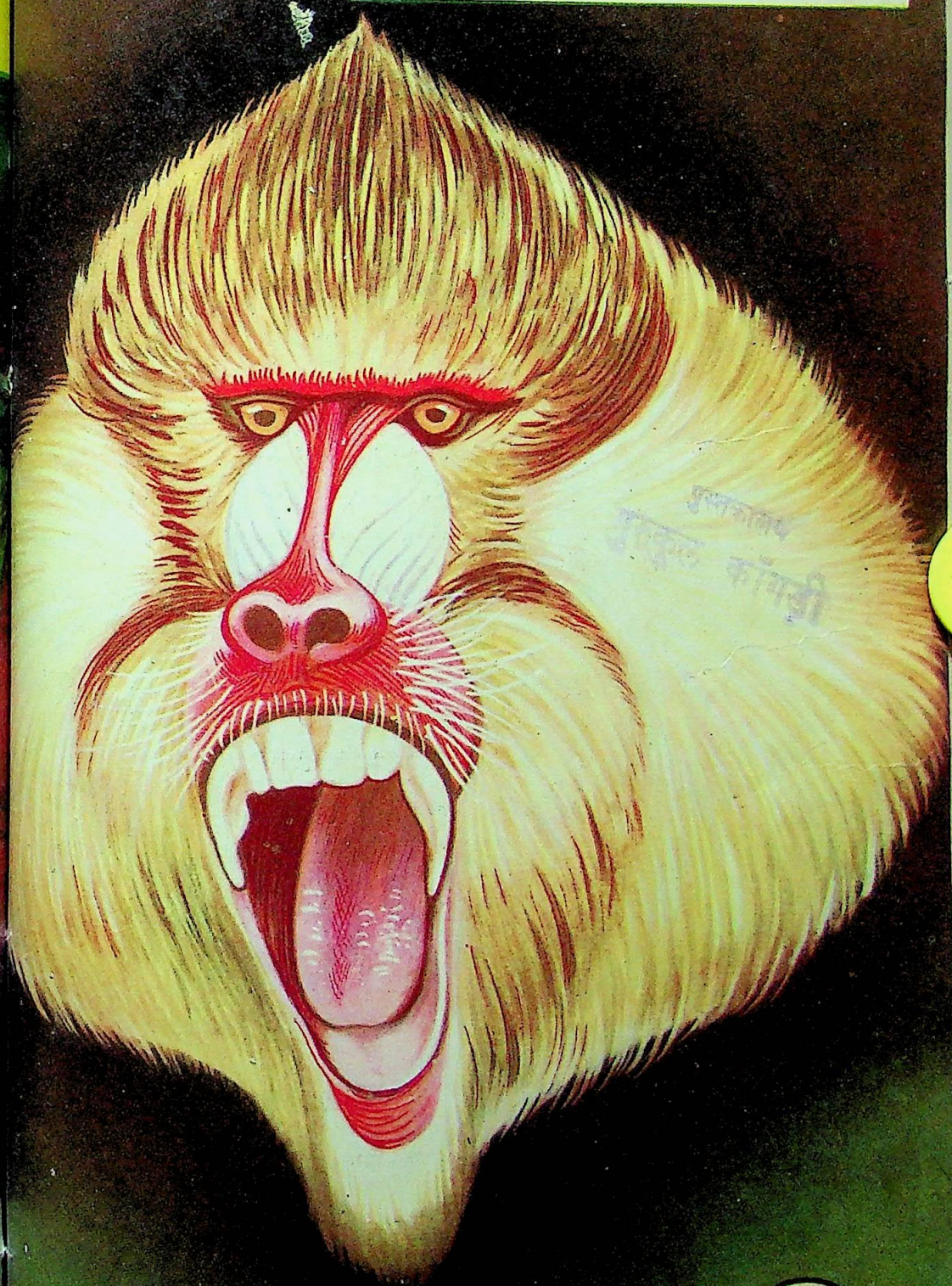
७५
नये पैसे

अब -----

सब जगह उपलब्ध है।

श्रीराम मेहरा एन्ड कम्पनी, आगरा.

विज्ञान-लोक



७५
नये पैसे

तरह-तरह के बन्दर	
—नरेन्द्रसिंह माथुर	
सिंगरेट के बारे में इतना तो जानिये ही	१२
—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	
जब समुद्र का मन्थन होता है	१६
—डा. नरेन्द्रमोहन बंसल	
विद्युदणि-रश्मि, प्लाज्मा टार्च	२२
—अशोक कुमार चौबे	
नीम	२७
—दिनेश चौहान	
शारीरिक प्रतिरक्षा का मन्त्रदाता, एडवर्ड जेनर	३०
—वीरेन्द्रकुमार	
अन्तर्राष्ट्रीय शान्त-सूर्य वर्ष	३३
—हरीश अग्रवाल	
जन्तु मशीन सदृश चलते हैं	३७
—डा. महेश्वरसिंह सूद	
यह लाख है	४३
—नरेन्द्र छावड़ा	
शिकार के पक्षी	४५
—कुँवर सुरेशसिंह	
अन्तरिक्ष-उड़ान में ईंधन-सम्पूर्ति	५४
डा. महेन्द्रकुमार	
स्थायी स्तम्भ	
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	४१
विचित्र संसार	५२
विज्ञान क्लब	५७
इनाम लो	६०
करो और देखो	६१
आपके प्रश्न	६२
तुम्हारी कलम से	६४

वर्ष ४



अंक ११

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा

प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

नरेंद्रसिंह

के

पुस्तकालय

शुक्र कौगड़ी



नरेंद्रसिंह माथुर

बन्दर संसार के लगभग सभी भागों में पाये जाते हैं। इनकी अनेक जातियाँ, उप-जातियाँ हैं। बन्दरों की कुछ प्रमुख जातियाँ निम्न हैं।

भारत, श्रीलंका, बर्मा, इण्डोचाइना मलाया तथा इण्डोनेशिया के द्वीपों में पाया जाने वाला यह बन्दर कम से कम २० उप-जातियों में विभाजित है। तदनुसार इनके आकार-प्रकार, रंग-रूप और रहन-सहन में भी भिन्नता पायी जाती है। इनके शरीर का रंग भूरा तथा मुँह, कान और हाथ-पाँव के पंजे गहरे काले होते हैं। सिर के बाल कुछ आगे को इस प्रकार निकले रहते हैं जो टोपी सरीखे दिखते हैं। मादा अपने बच्चे को पेट से

चिपकाये फिरती है। बच्चे कभी-कभी जुड़वाँ भी होते हैं।

इनमें सुमात्रा के लाल तथा जावा के काले लंगूर और भी आकर्षक होते हैं। काले लंगूर समूचे स्याह कोयले जैसे होने के कारण नीग्रो भी कहलाते हैं। इण्डोचाइना में पाये जाने वाले लंगूरों को डूक (douc) कहते हैं। ये डूक आकर्षक, चटकीले तथा बहुरंगी होते हैं। इनके आधे-आधे हाथ-पाँव काले, सिर भूरा, शरीर चमकीला पीला, गला लाल तथा पूँछ सफेद होती है।

भारत में लंगूर बड़ी श्रद्धा के पात्र हैं। इनमें एक विशेषता यह है कि ये लाल मुँह वाले बन्दरों की तरह भपटना, खसोटना, घुड़कना आदि कुछ नहीं करते। इनकी पूँछ लम्बी

दिसम्बर १९६३



भारत का लम्बी पूँछ का लंगूर

होती है किन्तु इस पूँछ से ये कोई महत्वपूर्ण काम नहीं लेते।

गुयेरेजा कोलोबस

अफ्रीका का यह प्रसिद्ध बन्दर गुयेरेजा कोलोबस (*Guereza Colobus*) शरीर में केवल तीन फुट लम्बा होता है किन्तु इसकी पूँछ ४० इंच लम्बी होती है। इसके हाथ में अँगूठा नहीं होता, केवल एक खूँटी जैसी उभरी रहती है। यह इतना चुस्त तरुनिवासी है कि कभी-कभी तो पेड़ों पर ही जिन्दगी गुजार देता है और जमीन पर उतरता तक नहीं। इसका शरीर गहरा काला होता है किन्तु भौंहों पर एक पट्टी, और गाल, ठोड़ी तथा कंधे के बाल सफेद होते हैं। इसके लम्बे बाल औद्योगिक

हैं। अफ्रीका के हिमाच्छादित किलिमानजारो पर्वत-शिखरों के क्षेत्र में रहने वाले इसके जाति-भाइयों की पूँछ लम्बी तथा सफेद वालोंयुक्त होती है। इसके पेट की रचना विचित्र होती है क्योंकि इसका पेट अन्दर ही अन्दर अनेक कक्षों में विभाजित रहता है। उन कक्षों से पत्तियों का भोजन पचने में सहायता मिलती है। यह अपने भुण्ड के साथ जलाशयों के निकट विचरना पसन्द करता है।

अमरीकी बन्दर

मध्य तथा दक्षिणी अमरीका के बन्दर यूरोप तथा एशिया महाद्वीपों के बन्दरों की अपेक्षा बहुत भिन्न तथा विचित्र होते हैं। ये अपनी पूँछ से पाँचवें हाथ का काम निकालते हैं जबकि अन्य बन्दरों की पूँछें केवल शोभा का काम देती हैं। इसके अतिरिक्त ये अधिक शान्त, सीधे और मृदु स्वभाव के हैं। अतः इन्हें सहज ही पाला भी जा सकता है। अन्य बन्दरों के मुँह में जो थैलीनुमा खोल पायी जाती है, वह इनमें नहीं होती।

हाउलर बन्दर

हाउलर (howler) अर्थात् पुकारने वाला यह बन्दर दक्षिणी अमरीका का प्रसिद्ध

भारत का यह रूहीसस बन्दर पोलियो उन्मूलन में बहुत सहायता करता है



विज्ञान-लोक

(*Ceboidae*) वर्ग के हैं। इन्हें अर्द्धवानर (half-monkeys) कहते हैं। इस वर्ग में कम से कम १० उपजातियाँ हैं। इनके अंगों की कुछ विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं—इनके हाथ-पाँव के पंजों में नुकीले और मुड़े हुए नाखून होते हैं। इनके शरीर पर घने बाल होते हैं। इनकी पूँछ रोयों से भरपूर, कहीं तो कुत्ते जैसी नोकदार और कहीं बिल्ली जैसी

दक्षिणी अफ्रीका में नील बन्दर के नाम से प्रसिद्ध यह वेरवेट बन्दर अपने काफी लम्बे हाथ पाँव तथा पूँछ युक्त शरीर की सफाई का बहुत खयाल रखता है



ब्राजील-निवासी यह मारमोसेट बन्दर
अति आकर्षक सुनहरे रंग का है

प्राणी है। इसके गले में स्वर-यन्त्र के निकट एक विशिष्ट अस्थि लगी होने से इसका स्वर सबसे अलग पहचाना जा सकता है। वह स्वर इतना तीव्र होता है कि शान्त रात्रि में दो मील दूर तक सुनाई देता है। इसके स्वर में क्रोधभरी गुर्राहट का उतना पुट नहीं होता जितना कि एक दर्दिले स्वर का। यह इसके स्वभाव का द्योतक है। इसका शरीर काला तथा भव्य, चेहरा सुशोभन दाढ़ीयुक्त और पूँछ बड़े काम की होती है। भिन्न-भिन्न विस्तारों में इसके शरीर में भी भिन्नता मिलती है। यह अपनी टुकड़ी बनाकर ही विचरता है। टुकड़ी का नायक वही चुना जाता है जो डील-डौल में सबसे बड़ा हो। अधिकांशतः टुकड़ी का एक ही सदस्य पुकार फेंकता है, किन्तु कोई विशेष प्रसंग होने पर सबके सब भी सुर में सुर मिलाकर शोर मचाते हैं। इसका मुँह कुछ लम्बा और कुत्ते से मिलता-जुलता दिखता है। इसके दाँत लम्बे और पैने होते हैं।

दक्षिणी अमरीका के अमेजन-क्षेत्रों में ऐसे बन्दर भी पाये जाते हैं जो आधे उल्लू या गिलहरी जैसे दिखते हैं। ये सिबाइड्ज



गोल होती है। अंगुष्ठिकाएँ लम्बी होती हैं। मुँह छोटा तथा आँखें उल्लू जैसी, केवल सामने की ओर देखने योग्य होती हैं। इनमें निम्न बन्दर उल्लेखनीय हैं।

डोरोकोलिस (douroucoulis)—यह छोटा बन्दर पूर्णतया निश्चर अर्थात् रातों को बाहर निकलने वाला है। अतः इसे उल्लूक-बन्दर (owl-monkey) भी कहते हैं। इसका शरीर एक फुट से बड़ा नहीं होता। शरीर पर घने, मुलायम बाल रहते हैं। सिर गोल तथा चेहरा चपटा होता है। इनकी बड़ी-बड़ी नीली आँखें चेहरे से मानो निकली पड़ती हैं। दोनों आँखें पास-पास सटी हुई होती हैं जिन्हें ऊँचा-नीचा किया जा सकता है। मुँह थूथन जैसा, नन्ही ठोड़ी समेत पूर्ण गोलाकार होता है और दोनों छोटे कान घने बालों में छिपे रहते हैं। पूँछ लम्बी तथा बालोंभरी होती है। आँखों के चारों ओर एक सफेद घेरा बना होता है जो सामान्यतः दूसरी बड़ी आँख जैसा दिखता है किन्तु विशेष मुद्रा में सफेद पट्टी के रूप में हो जाता है।

साकी—इनमें दो प्रकार के साकी (saki) पाये जाते हैं, रुपहले तथा दाढ़ीयुक्त। रुपहले साकी बन्दरों के शरीर पर लम्बे काले बाल होते हैं जो सिर पर टोपी का, शरीर पर ओवरकोट का और पूँछ पर ब्रुश का काम देते हैं। इनका मुँह कुत्ते जैसा होता है। जिन बन्दरों में सामने के बाल सफेद होते हैं वे रुपहली आभा देते हैं। ये फलाहारी हैं और रात्रि को पेड़ों की शाखाओं पर विश्राम करते हैं। इनकी भी अपने गिरोह की अलग पुकार है जो दूर तक सुनाई देती है।

गिलहरिये बंदर (squirrel-monkeys)—ये देखने में पूरे बन्दर नहीं मालूम होते। पूँछ से तो ये गिलहरी जैसे दिखते हैं। इनके कान बड़े होते हैं। ये भी सैकड़ों के झुण्ड बना कर चलते हैं। यद्यपि इनका मृत्यु-अंक अपेक्षा-

कृतकामी बंदर उदात्त है तथापि अपवाद-स्वरूप इनमें कई दीर्घजीवी भी पाये जाते हैं। वे दीर्घजीवी शरीर में भी बड़े-बड़े होते हैं, लगभग चौगुने। इनकी पूँछ बड़ी और घने बालोंयुक्त होती है। पेड़ों के फल और नन्हें कीड़े इनके प्रिय आहार हैं।

कैपूचिन बंदर—दक्षिणी अमरीका के समस्त बन्दरों में कैपूचिन बन्दर (capuchin monkeys) ही सबसे सुन्दर और सयाने होते हैं। ये पालतू अवस्था में कई मनोरंजक कार्य कर दिखाते हैं। एक उदाहरण में देखा गया था कि एक पालतू बन्दर रंग-विरंगे चाक के टुकड़ों से अपने पिंजरे की जाली का नमूना धरती पर रेखाएँ खींचकर बना लेता था। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् वह सही डिजाइन भी बनाने लगा था। दूसरे उदाहरणों में इन पालतू बन्दरों से घरेलू कामकाज—वर्तन धोना, सुखाना आदि भी—लिया जाता था। इनसे मित्रता बढ़ाना बहुत सरल है।

ऊनी बंदर—उदास सूरत के और अत्यन्त विनम्र स्वभाव के ऊनी बन्दर (woolly monkeys) भारी और स्थूलकाय होते हैं। शरीर के रोयें कुछ छोटे किन्तु इतने घने होते हैं कि भेड़ के ऊन सरीखे दिखते हैं। प्रारम्भ में तो काफी समय तक ये कच्चे फलों पर गुजर कर लेते हैं किन्तु बाद में मांसाहारी भी बन जाते हैं। बीच-बीच में फूलों, पत्तियों पर भी हाथ साफ करते रहते हैं। ये छोटी-छोटी पारिवारिक टुकड़ियों में चीख-पुकार करते हुए विचरते हैं।

मकड़ बंदर—मकड़ी जैसे पतले, लम्बे हाथ-पाँव वाले होने से इन्हें मकड़ बन्दर (spider monkeys) नाम दिया गया है। अपने लम्बे हाथ-पाँवों से ही ये पेड़ों पर लम्बी छलाँगें भरते रहते हैं। इनकी पूँछ भी उखल-कूद में बहुत सहायता करती है। इनमें विचित्रता यह है कि पेड़ों पर जितने चुस्त

यह इसलिए कि इनके लम्बे, पतले पाँव भूमि पर इनका भार इतनी सरलता से नहीं सम्हाल पाते जितनी सरलता इन्हें उनके बल पेड़ पर लटकने में रहती है।



मलाया के जंगलों में रहने वाला यह बन्दर स्वभाव से इतना सुस्त है कि इसका नाम ही स्लो लोरिस (slow loris) पड़ गया है

monkeys)—इस श्रेणी में बीसियों उपजातियाँ हैं। इस श्रेणी के समस्त बन्दर लम्बी पूँछ के हैं। सहारा रेगिस्तान के दक्षिणी भाग तथा दक्षिणी अफ्रीका के प्रदेश इनके क्रीडास्थल हैं। इनकी शरीर रचना में भिन्नता न होने पर भी रंगों में भिन्नता है। हरे, नीले, काले डाएना (diana) तथा डाएडम (diadem) इनमें उल्लेखनीय हैं। रहन-सहन में ये बहुत साफ-सुथरे हैं। ये फुर्तीले और लड़ाकू बन्दर इतने तेज हैं कि अपना व्यूहाकार गिरोह बना कर शत्रुदल को दूर खदेड़ आते हैं।

मैकेक—पूर्वीय गोलाद्ध के बन्दरों में अनेक उत्तम जातियाँ मैकेक (Macaques) श्रेणी में पायी जाती हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनके मुँह में एक संग्राहक खोल रहती है जो

चपटी नाक वाले बंदर—भारत और बर्मा में पाये जाने वाले चपटी नाक के बन्दर (snub-nosed monkeys) बड़े शरीर के, कठोर, मजबूत तथा रंग-विरंगे रोयेदार होते हैं। कहीं ये भूरे रंग के तो कहीं मुनहरे रंग के होते हैं। भूरे शरीर वाले स्याह मुँह के तथा मुनहरे शरीर वाले खुलते नीले मुँह के होते हैं। इनके चेहरे लंगूर से काफी मिलते-जुलते हैं। नाक ऐसी दिखती है मानो दौड़ते हुए किसी दीवार से टकराकर चपटी हो गयी हो। उत्तर में तिब्बत से गोवी मरुस्थल के दक्षिणी भाग तक तथा निकट के हिमाच्छादित क्षेत्रों में ये विचरते देखे गये हैं। ये व्यवस्थित टुकड़ियों में अनुशासनबद्ध घूमते हैं। ये सर्वभक्षी हैं। जब मौज आती है तब किसी भी बाजार-हाट में उतर पड़ते हैं और जी भरकर लूटते-खाते हैं। बाजार के लोग इन्हें रोकते भी नहीं।

बोनियो के बंदर (proboscis monkeys)—उपरोक्त बन्दरों के निकट सम्बन्धी हैं और उनसे काफी मिलते-जुलते हैं। ये केवल बोनियो द्वीप में पाये जाते हैं। ये शरीर में और भी कुछ बड़े किन्तु चेहरे से विदूषक लगते हैं। मादा तथा बच्चों की नाक तो ऊपर वर्णित चपटी नाक वाले बन्दरों जैसी होती है लेकिन नर की नाक के नीचे से मांस का एक अलग पर्दा ऐसा लटकता है जो मुँह के आगे से होता हुआ ठोड़ी के नीचे तक ३-४ इंच लम्बा पहुँचता है। इनका आहार केवल बाँस की पत्तियाँ हैं। ये सीधे-सादे और शान्त प्रकृति के होते हैं। अकसर इन्हें तैरने का भी आनन्द लेते हुए देखा गया है।

लम्बी पूँछ के बंदर (long tailed

गालों से प्रारम्भ होकर गदन के नीचे तक पहुँचती है। यह खोल अतिरिक्त भोजन के संग्रह में काम आती है। इस श्रेणी में वानरों के अतिरिक्त र्हीसस (*Rhesus*) जाति के वन्दरों का भी समावेश होता है। इन वन्दरों की उपयोगिता बहुमुखी है। चिकित्सा तथा ओषधि-विज्ञान में इनका उपयोग विशेषतः होता है। साधारणतया अजायबघरों में भी ये ही देखने को मिलते हैं। अन्तरिक्ष उड़ानों के लिए आधी दूरी तक भेजने में इनका उपयोग किया गया था। ये वन्दर बंगाल में अधिकता से पाये जाते हैं। लाल मुँह और छोटी पूँछ के ये वन्दर अधिकतर भारतीय ही हैं। बर्मा, सियाम, मलाया, श्रीलंका तथा इण्डोनेशिया के द्वीपों में पाये जाने वाले केकड़ा-भक्षक (crab-eating), शूकर-पुच्छ (pig-tail), मूर (moor) तथा सिंह (lion) जाति के वन्दर भी इसी श्रेणी में आते हैं।

वानर (Apes)

वन्दरों और वानरों में मुख्य भेद यही है कि वानरों के वन्दरों जैसी पूँछ नहीं होती है। छोटे वानरों को वानर और वृहत्काय वानरों को वनमानुष कहेंगे। वनमानुषों में गोरिल्ला, चिम्पान्जी, ओरांग-उटान और गिवन सम्मिलित हैं। पहले हम छोटे वानरों की चर्चा करेंगे।

बेबून (Baboon)—अफ्रीका और अरब देश के निवासी हैं। इनका मुँह कुत्ते जैसा थूथनदार होता है। इन्हें वृक्षों की अपेक्षा भूमि पर विचरना अधिक पसन्द है। भूमि-विचरण के अन्तर्गत ही ये कभी-कभी टोली बाँधकर खेतों, खलिहानों में उतर आते हैं और धन-धान्य को अपार हानि पहुँचाते हैं। अपने शत्रुओं को भगाने के लिए पत्थर फेंकने का भी इन्हें अभ्यास रहता है।

गिनी (guinea) चकमा (chacma) तथा हेमड्रेज (hamadryas) बेबून की प्रसिद्ध



अफ्रीका की यह शृंगार-प्रिय रोलोवे बन्दरिया अपने रोयों तथा ठुड्डी के बालों को साफ-सुथरा, रखती है। इसलिए इसे दड़ियाल बानू (bearded lady) भी कहते हैं।

जातियाँ हैं। हेमड्रेज इन तीनों में प्रसिद्ध है। प्राचीन मिस्रवासियों द्वारा यह उसी श्रद्धा से देखा जाता था जैसे भारत में लंगूर। वे इन्हें मृत्योपरान्त विधिवत् ममी बनाकर सुरक्षित रखते थे। अबीसीनिया तथा अरब में भी इनकी शाखाएँ पहुँची हैं। शरीर में भारी-भरकम और शेर जैसे लम्बे बाल सारे शरीर को ढँके रहते हैं। बच्चों तथा मादा का शरीर गहरे भूरे रंग का तथा प्रौढ़ नर-वानर का हलका भूरा रहता है।

दक्षिणी अबीसीनिया में जब कभी इन्हीं के जाति-भाई गेलेडा (*Gelada*) वानरों से

विज्ञान-लोक

युद्ध-कौशल देखने योग्य होता है। व्यूहाकार सैन्य सजाकर दोनों पक्ष घोर युद्ध में जुट जाते हैं और मनुष्यों जैसे पैतरे दिखाते हैं। छिप-छिपकर छापा मारने की इनकी तथा गोरिल्ला वानरों की पद्धति के आधार पर ही आज के थल-युद्ध में छापामार आक्रमणों को गोरिल्ला-युद्ध कहा जाता है।

ये दोनों जातियाँ अपने-अपने नेता के नेतृत्व में टोलीबन्द रहती हैं। इन्हें अपने नाशते के लिए अधिकतर कन्दमूल, कीड़े-मकोड़ों तथा छिपकली आदि नन्हें जन्तुओं की तलाश रहती है। साथ ही ये पत्थरों, चट्टानों को उलटते-पुलटते तथा खेतों, क्यारियों को उखाड़ते-उजाड़ते भी नजर आते हैं। दौड़ने में ये घोड़े को मात करते हैं। इनके रौद्र रूप के आगे एक बार तो चीता भी काँप जाता है। जहाँ इनका वाहुल्य रहता है, वहाँ ये आतंक मचाये रहते हैं।

गिबन—मलाया, इण्डोनेशिया और सुमात्रा में पाया जाने वाला गिबन बुद्धि में तो विकसित है ही, नटबाज भी पूरा फिलिपाइन्स के इस मैकेक बन्दर को अभिमान है कि यह अन्तरिक्ष में ३६ मील की ऊँचाई नाप आया है



है। इसके हाथ कुछ अधिक लम्बे होते हैं— इतने कि सीधा खड़े होने पर भी जमीन को छू सकें। ये भी काले तथा अनेक रंगी होते हैं। ये डाल-डाल उछलने में बहुत कुशल हैं। इसीलिए सरकसवाले इनका उपयोग भूले के खेलों में करते हैं। इन्हें फल खाना बहुत प्रिय है। पालतू अवस्था में तथा प्रशिक्षित किये जाने पर ये अनेक मानवोचित कार्य कर दिखाते हैं। एक लेखक के शब्दों में—“गिबन सर्वाधिक साफ-सुथरा, विनम्र और बुद्धिमान जन्तु है। मेरे साथ दूर-दूर तक के प्रवासों में इसने मेरा न केवल मनोरंजन किया है, बल्कि कार्यभार भी हलका किया है। अपनी मेज पर सफाई से खाना-पीना, अपना विस्तर लगा लेना तथा मेरे कीट-संग्रह के कार्य में इसने विलक्षण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।”

गोरिल्ला

वनमानुषों में यह सिरमौर है। इसकी ऊँचाई छह फुट से भी अधिक और फैले हुए दोनों हाथ नौ फुट की लम्बाई तक पहुँचते हैं। ये वजन में ४०० से ६०० पौण्ड तक पाये जाते हैं। यह वनमानुष शक्ति का अटूट भण्डार है। २-२॥ इंच मोटी लोहे की छड़ को सहज ही तोड़-मरोड़कर फेंक सकता है तथा एक ही चपेट में मनुष्य की बाँह तथा जाँघ को उखाड़ सकता है। इसका सिर और मुँह बहुत कुछ बेवून बन्दर से मिलता-जुलता है। इसके कान छोटे, नाक मोटी और बेडौल, फौलादी मांसपेशियाँ तथा गहरे काले बालों से भरा शरीर होता है।

अपनी श्रेणी के तीनों वानरों में सर्वाधिक शक्तिशाली होते हुए भी बौद्धिक स्तर में यह चिम्पान्जी से पिछड़ा ही रहता है। यद्यपि पालतू अवस्था में यह भी मानव का साथी बनकर रह सकता है तथापि इसके हठीले स्वभाव के कारण इससे भय बना ही रहता



वनमानुषों का सिरमौर, गोरिल्ला

है। देखा गया है कि घर में खेल के मध्य खाने का ध्यान आ जाने पर यह खेल छोड़ देता है और सीधे ही खाने की आलमारी के पास जाकर, उसे खोलकर दो-चार कौर मुँह में भर लेता है और पुनः आलमारी बन्द करके खेल में जुट जाता है।

खाने के समय विक्षेप डालना खतरनाक हो सकता है। संसार-प्रसिद्ध फिल्म किंग कांग के लिए ऐसे ही भीमकाय गोरिल्ला को सिखाने में निर्देशक को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, वह केवल कल्पना की ही वस्तु है। खेल ही खेल में प्रायः इसे खाली डब्बे तथा पीपे आदि को ढोल बनाकर पीटने में बड़ा आनन्द आता है। सिखाये जाने पर यह बीड़ी-सिगरेट का भी अभ्यस्त होता देखा गया है। तब यह बड़े शौक से धूम्रपान करता है।

चिम्पाञ्जी

वनमानुषों में भीमकाय गोरिल्ला के पश्चात् इन्हीं का स्थान है। साधारणतया लम्बाई-चौड़ाई में ये गोरिल्ला से कम ही बैठते हैं किन्तु अपवादस्वरूप कहीं-कहीं उतने ही

हैं। ऐसे तीन पालतू नमूने बर्लिन, लन्दन तथा रोचेस्टर के अजायबघरों में हैं। खड़ी अवस्था में इनकी ऊँचाई पाँच फुट तक पहुँचती है। इनके कान लम्बे और नाक पिचकी होती है। वालों के रंगों में विभिन्नता के कारण शरीर के रंग विभिन्न प्रतीत होते हैं।

ये अपने परिवार के साथ अमरीका के जंगलों में निर्द्वन्द्व घूमते रहते हैं। एक-एक नर अनेक मादाएँ लिये रहता है। ये किसी से डरते नहीं, साथ ही व्यर्थ उलभते भी नहीं। सामना पड़ जाने पर अवश्य डटकर मुकाबला करते हैं। इनकी विचित्र पुकार तथा निडर प्रवृत्ति से वहाँ के लोग भलीभाँति परिचित हैं और सामना हो जाने पर इन्हें चुपचाप मार्ग दे देते हैं।

मानव ने अपने कौशल से इनकी बुद्धिमत्ता का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। पालतू अवस्था में इनकी बुद्धि को और भी विकसित करके इनसे आश्चर्यजनक कार्य कराये जा सकते हैं। सरकस में इनका खेल मुख्य आकर्षण होता है। परिवारों में रहकर कभी-कभी तो ये मानवों से भी श्रेष्ठ और जटिल कार्य कर दिखाते हैं। सिखाये जाने पर स्वयं कपड़े पहनना, खाने की मेज पर लुगरी-काँटे तथा चम्मच से सफाईदार ढंग से खाना इनके लिए नयी बातें नहीं रह गयी है। अब तो गणित के प्रश्न तक हल कर देने के कुछेक उदाहरण मिले हैं। मानव से बढ़कर कौशल दिखाने के एक विशेष उदाहरण में देखा गया था कि एक कमरे की छत से केले का एक गुच्छा लटका दिया गया और केवल एक छड़ी के अतिरिक्त अन्य कोई सहायक वस्तु स्टूल आदि कमरे में न रहने दी गयी। मानव अधिक से अधिक यह कर सकता था कि छड़ी से उस गुच्छे को गिरा लेता जिससे केले अवश्य ही पूरे

जाते। चिम्पान्जी ने अपनी सुभ-वसु का परि-
चय देते हुए छड़ी को खड़ी करके पलक मारते
ही उछलकर गुच्छे को हथिया लिया और छड़ी
के गिरने से पहले ही उसके सहारे नीचे उतर
आया।

ओरांग-ओटान

मानव से अधिकतम मिलते-जुलते चार
श्रेणी के वनमानुषों में ये भी एक हैं। केवल
वॉनियो में ओरांग और सुमात्रा में ओटान
पाये जाते हैं। मानवों से इनकी समानता के
कारण वहाँ की भाषा में इन्हें वन-मानव
(man of the woods) कहते हैं। इनके
भी हाथ अपेक्षाकृत लम्बे होने के कारण ये
तरु-जीवन के उपयुक्त हैं। गोरिल्ला और
चिम्पान्जी के मुकाबले शकल में ये काफी
भिन्न हैं। शरीर पर लम्बे, भूरे बाल उलभे-
उलभे रहते हैं। पूर्ण वयस्क ओरांग चार फुट
से भी कुछ ऊँचा होता है। भूमि पर चलने
में इन्हें कठिनाई रहती है।

केवल तीन वर्ष की आयु में इनका वजन
लगभग ५० पौण्ड रहता है। उस छोटी
अवस्था में भी ये मानव के समकक्ष अपना बल
प्रदर्शित करते हैं। आठ वर्ष की आयु इनकी
युवावस्था मानी जाती है। तब इनका वजन
लगभग पौने दो सौ पौण्ड तक पहुँच जाता है
जो कि ६०० पौण्ड वजनी गोरिल्ला वर्ग के
पश्चात् ही द्वितीय स्थान पर माना जाता है।
सूक्ष्म-बुद्धि और बुद्धि में मानव से बढ़कर
नहीं तो समान स्तर पर स्थित, ये फूलों
को विशेष पसन्द करते हैं तथा मानवोचित
कोमलता से उनका आनन्द भी लेते हैं।

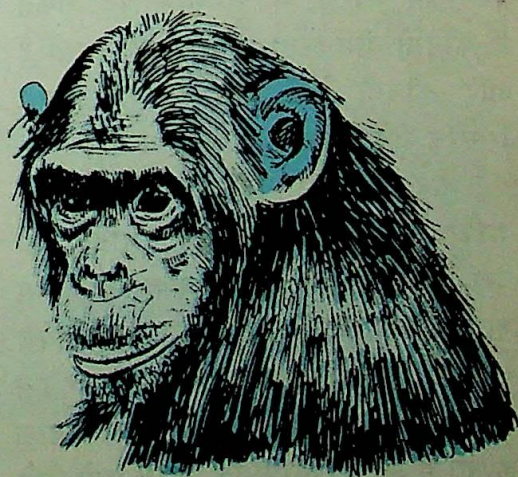
स्वभावतः ये मानवों के संसर्ग और
वस्तियों से दूर, जंगल में ही रहना पसन्द
करते हैं। जब कभी शिशु अवस्था से ही इन्हें
पालतू बना लिया जाता है, तब ये मानव-
प्रवृत्तियों का आश्चर्यजनक अनुकरण कर
दिखाते हैं। फिर तो ये मानव-परिवार के

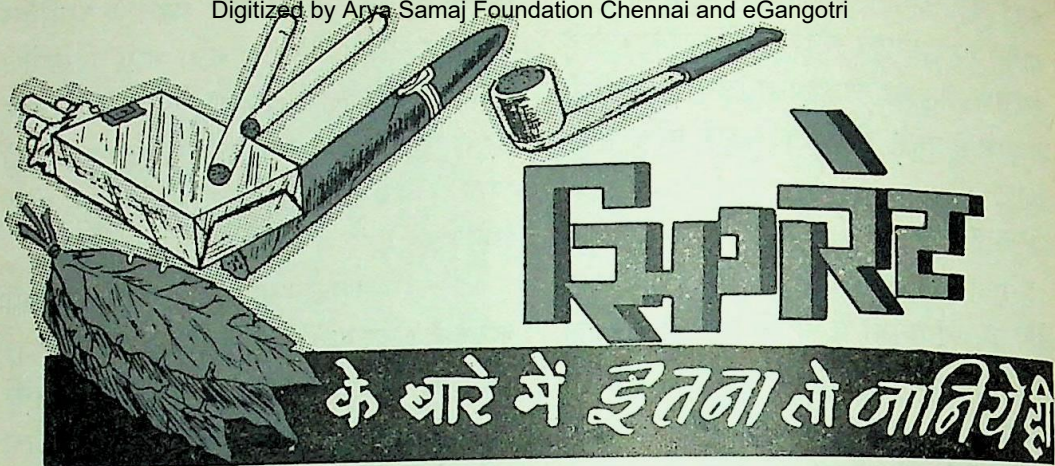
सदस्य ही बने रहते हैं और अपने वन-जीवन
की ओर लौटने की उत्सुकता नहीं दिखाते।
एक उदाहरण में तो पालतू ओरांग ने परिवार
के सदस्यों से हिल-मिलकर गृहस्वामी को
'पापा' और गृहिणी को 'मम्मी' कहना सीख
लिया था।

ओरांग-ओटान पेड़ों पर ही रात्रि-विश्राम
करते हैं। इनका शरीर कम भारी नहीं होता
फिर भी डाल-डाल की छलाँग फुर्ती से लगा
लेते हैं। इनके हाथ-पाँवों की रचना डाल-डाल
उछलने, कूदने के उपयुक्त होने के कारण
गोरिल्ला और चिम्पान्जी जैसे मानवोचित
कमाल ये भूमि पर चल-फिरकर नहीं दिखा
सकते। हाँ, पेड़ों पर ये अपनी कलाएँ दिखाकर
अवश्य आश्चर्य चकित कर देते हैं। ये अधिकतर
शाकाहारी बने रहते हैं किन्तु अन्यान्य खाद्य
पदार्थों पर भी हाथ साफ करने में नहीं चूकते।

कालक्रम से मानव इन बिछुड़े हुए
वनवासी वानरों और वनमानुषों को अपनी
बुद्धि और कौशल से पुनः अपने निकट बुला
सकता है और इनकी बुद्धिहीन शारीरिक
शक्ति को बुद्धियुक्त करके एक अच्छी जीवित
मशीन की भाँति इन्हें अनेक उपयोगी और
कठिन कार्यों में लगा सकता है।

बुद्धिकौशल में मानव के सर्वाधिक निकट चिम्पान्जी





भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

सिगरेट के बारे में अनेक भ्रान्तिमूलक धारणाएँ लोगों में प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि सिगरेट से मस्तिष्क को राहत मिलती है, सोचने की प्रेरणा मिलती है और कवि तथा लेखकों को रचना की प्रवृत्ति भी। इसके प्रतिकूल कुछ लोगों का खयाल है कि सिगरेट से बुद्धि कुण्ठित होती है, निर्णय करने की शक्ति मारी जाती है और स्वास्थ्य पर क्षतिकारक प्रभाव पड़ता है, गले में खराश आती है तथा फेफड़े रोगग्रस्त हो जाते हैं।

इस लेख में सिगरेट पीने के प्रभाव पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है ताकि आप स्वयं समझ सकें कि सिगरेट से स्वास्थ्य पर किस तरह के कुप्रभाव पड़ सकते हैं, कौनसी बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और कौनसी ऐसी बीमारियाँ हैं जिनसे सिगरेट पीने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

यह जानने के लिए कि सिगरेट का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, आइए जरा देखें कि सिगरेट के धुएँ की शक्ल में कौनसे रासायनिक पदार्थ हमारे फेफड़ों में प्रवेश करते हैं। रासायनिक विश्लेषण करने पर इस बात का पता लगाया जा सका है कि तम्बाकू के धुएँ में अनेक रासायनिक पदार्थ पाये जाते

हैं जिनमें कम से कम छह निश्चित रूप से हमारे स्वास्थ्य पर विषकारी प्रभाव डाल सकते हैं। किन्तु इनमें अधिकांश तो बहुत ही कम मात्रा में मौजूद होते हैं—केवल निकोटीन और बेन्जोपाइरिन ही पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है।

निकोटीन

दिलचस्प बात तो यह है कि सिगरेट के धुएँ की निकोटीन ही सिगरेट पीने का मजा प्रदान करती है, किन्तु सर्वाधिक विपाक प्रभाव भी निकोटीन ही से उत्पन्न होते हैं। निकोटीन पानी की तरह पारदर्शी द्रव होता है और यह केवल तभी उत्पन्न होता है जब तम्बाकू धीरे-धीरे सुलगती है अर्थात् सिगरेट, सिगार, बीड़ी, हुक्के की तम्बाकू से ही निकोटीन मुक्त होती है, पान के साथ खायी जाने वाली तम्बाकू या सुँघनी की तम्बाकू के सेवन में निकोटीन उत्पन्न नहीं होती।

औसत तौर पर प्रति सिगरेट चन्द मिलीग्राम निकोटीन ही धुएँ के साथ उत्पन्न होती है जिसमें दो तिहाई तो हवा में विलीन हो जाती है और एक तिहाई (लगभग १-६ मिलीग्राम) भीतर मुँह और नाक में जाती है। वास्तव में कितनी निकोटीन आप अपने शरीर में जजब करते हैं, यह कई बातों पर निर्भर

करती है। यदि आप सिगरेट का धुआँ एकदम साँस के संग भीतर फेफड़े में खींच लेते हैं तो निस्सन्देह निकोटीन का विष अधिक मात्रा में आपके शरीर में प्रवेश पाता है। जो लोग सिगरेट को जरा कंजूसी के साथ पीते हैं अर्थात् उस वक्त तक सिगरेट को नहीं छोड़ते जब तक कि उसका आखिरी सिरा खत्म न हो तो उस दशा में निकोटीन अधिक मात्रा में शरीर के अन्दर पहुँचती है। या फिर ऐसे लोग जो सिगरेट पीते समय तेजी के साथ बार-बार धुआँ खींचते हैं, अधिक मात्रा में निकोटीन भी अपने शरीर के अन्दर पहुँचाते हैं।

सिगरेट में फिल्टर लगा होने पर लगभग आधी निकोटीन फिल्टर अपने में रोक लेता है। बड़े साइज की सिगरेट पीने पर निकोटीन की मात्रा दुगुनी-तिगुनी हो सकती है और सिगार पीने पर तो सिगरेट की तुलना में पाँच गुनी निकोटीन आपके शरीर में पहुँचती है।

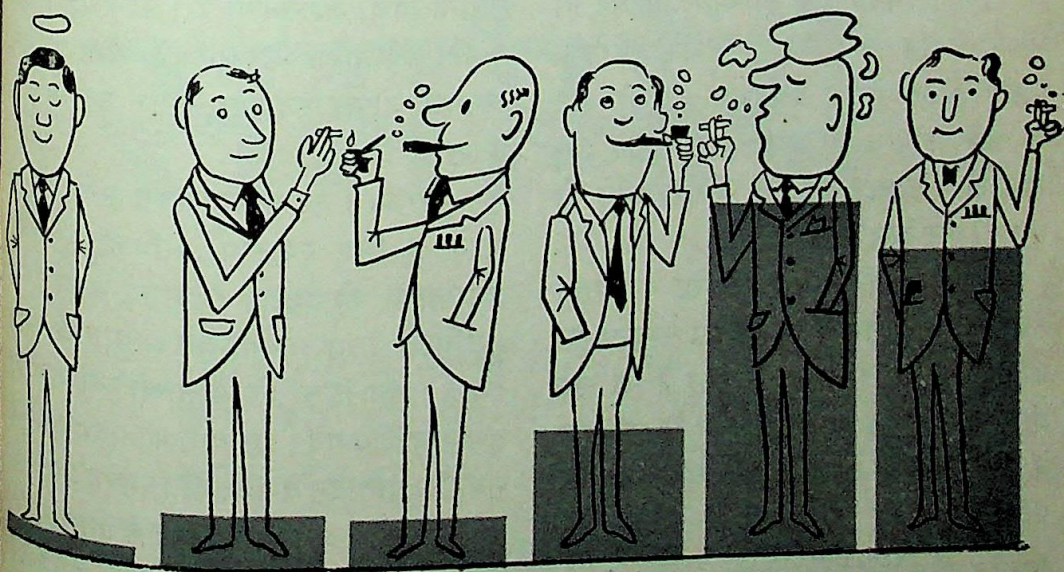
निकोटीन शरीर में प्रायः दो तरीकों से

प्रवेश करती है। एक तो फेफड़े में पहुँचकर यह शरीर में जज्व होती है या फिर मुँह की लार में घुलकर यह आँतों में पहुँचती है और वहाँ से कोषों में चली जाती है। शरीर में पहुँचने वाली निकोटीन का लगभग १०% तो बिना आपको हानि पहुँचाए मूत्र के साथ मिलकर शरीर से बाहर निकल जाती है। किन्तु शरीर में जज्व होने वाली निकोटीन अवश्य विभिन्न प्रकार के असर पैदा करती है। निकोटीन नौसिखुए सिगरेट पीने वाले व्यक्ति के दिल की धड़कन की रफ्तार को घटा देती है, धमनियों में सिकुड़ने पैदा करती है।

निकोटीन की केवल अल्प मात्रा मस्तिष्क को राहत प्रदान कर सकती है। मात्रा यदि अधिक हुई तो रक्तचाप में वृद्धि कर सकती है जिसमें पहले तो हृदय की धड़कन सुस्त पड़ती है, फिर धड़कन की रफ्तार बढ़ जाती है।

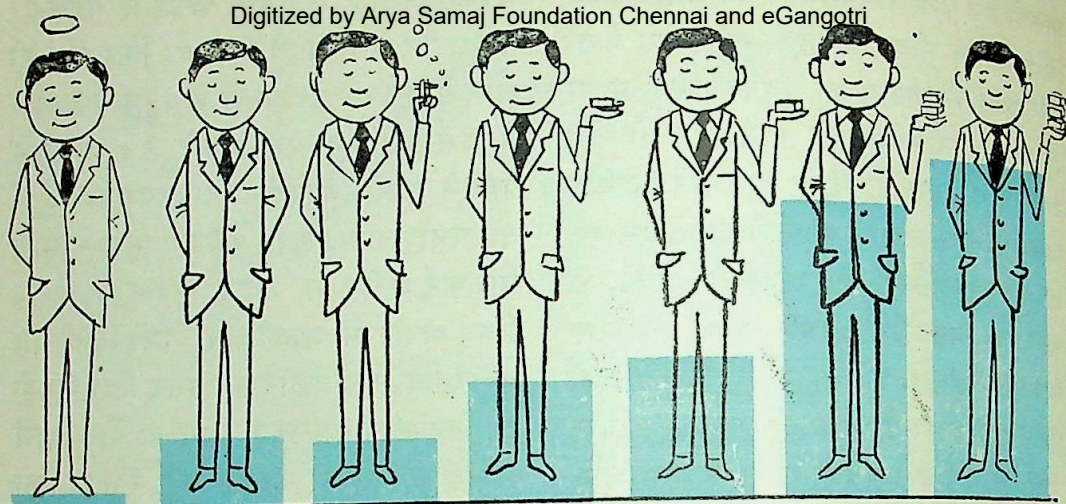
कैंसर रोग से धूम्रपान का सम्बन्ध : मृतक संख्या, प्रति वर्ष, प्रति लाख व्यक्ति

३.४	११.६	११.४	२८.६	७८.६	६७.०
कभी न पीनेवाले	कभी-कभी पीनेवाले	केवल सिगार पीनेवाले	केवल पाइप पीनेवाले	केवल सिगरेट पीनेवाले	सिगरेट तथा अन्य धूम्रपायी



[अमरीकन कैंसर सोसाइटी]

दिसम्बर १९६३



कैंसर रोग से धूम्रपान (सिगरेट) का सम्बन्ध : मृतक-संख्या, प्रति वर्ष, प्रति लाख व्यक्ति

१२०८

५६३

४६३

६५२

१०७८

२२६२

२६४२

कभी न नियमित पीनेवाले किन्तु अब

रोजाना पीनेवाले

पीनेवाले कभी नहीं पीते; कभी-कभी पीते हैं आधा पैकेट एक पैकेट दो पैकेट दो पैकेट से अधिक

[अमरीकन कैंसर सोसाइटी]

ऐसे वयस्क लोगों की, जो सिगरेट अधिक पीते हैं, प्रायः निकोटीन के कारण आँखों की ज्योति धुँधली पड़ जाती है। डाक्टरों परामर्श के अनुसार जब सिगरेट पीना ऐसे लोगों ने बन्द कर दिया तो पुनः इनका दृष्टिदोष दूर हो गया।

निकोटीन का एक कुप्रभाव यह भी हो सकता है कि आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक एसिड अधिक मात्रा में विमुक्त हो और पेट में फोड़े उत्पन्न हो जाएँ। इसीलिए इस बीमारी में डाक्टर सदैव ही सिगरेट पीने की मनाही कर देता है।

विशेषज्ञों के अनुसार सिगरेट के व्यसन तथा दिल की बीमारी में घनिष्ठ सम्बन्ध है। आँकड़ों के देखने से पता चलता है कि इस बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों में दो-तिहाई लोग वे हैं जो सिगरेट बहुत अधिक मात्रा में पीते रहे हैं।

सिगरेट और कैंसर में सम्बन्ध

सिगरेट के धुएँ के साथ कोलतार सरीखा

पदार्थ भी निकलता है जिसे तम्बाकू की कीट कह सकते हैं। बेन्जोपाइरिन इसी में पाया जाता है। प्रयोगशाला में किये गये अनुसंधानों से पता चलता है कि बेन्जोपाइरिन युक्त तम्बाकू की कीट का लेप चूहों आदि की त्वचा पर करने से उनके शरीर में कैंसर उत्पन्न किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि फेफड़ों में सिगरेट के धुएँ के साथ पहुँचने वाला बेन्जोपाइरिन क्या कैंसर उत्पन्न कर सकता है?

इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त करने के लिए स्वास्थ्य अधिकारी तथा वैज्ञानिकों की ओर से समय-समय पर सुसंगठित तथा सुनियोजित अनुसंधान किये गये हैं। इस सिलसिले में लाखों व्यक्तियों से इण्टरव्यू लिये गये। इस बात का पता लगाया गया कि प्रतिदिन वे कितनी सिगरेट पीते रहे हैं, कितने वर्षों से वे इस आदत के शिकार रहे हैं आदि-आदि। उनके दिल, फेफड़े आदि की डाक्टरी जाँच की गयी और तब संकलित

आँकड़ों का विस्तृत विवेचन और अध्ययन किया गया।

अमरीकन कैंसर सोसाइटी ने लगभग दो लाख व्यक्तियों का अध्ययन किया जिसमें हर तरह के व्यक्ति शामिल थे—बहुत अधिक सिगरेट पीने वाले, औसत श्रेणी के सिगरेट व्यसनी, यदाकदा एकाध सिगरेट प्रतिदिन पीने वाले, तथा वे लोग भी जिन्होंने कभी भी सिगरेट का स्वाद नहीं लिया। निष्कर्ष इस प्रकार है :

१. फेफड़े के कैंसर वाले रोगियों में ६६.५ प्रतिशत ऐसे थे जो पिछले २० वर्षों से प्रतिदिन १० से १५ सिगरेट या इससे भी अधिक पीते रहे हैं।

२. फेफड़े के कैंसर वाले रोगियों में केवल २ प्रतिशत ही ऐसे व्यक्ति थे जो सिगरेट नहीं पीते थे।

३. पाइप या सिगार पीने वाले व्यक्तियों

को फेफड़े के कैंसर लगाने वालों के मुकाबले में बहुत कम होता है।

सिगरेट का पीना छोड़ा जा सकता है

सिगरेट पीने की आदत छुड़ाना कठिन तो है किन्तु असम्भव नहीं। दरअसल अफीम आदि के व्यसन तथा सिगरेट पीने की आदत में मौलिक अन्तर यह है कि अफीम का व्यसनी यदि अचानक अफीम का सेवन बन्द कर देता है तो उस पर अनेक शारीरिक कुप्रभाव पड़ सकते हैं जो उसके लिए अत्यन्त हानिकर साबित हो सकते हैं, किन्तु सिगरेट के लिए ऐसी बात नहीं है। अपनी इच्छा शक्ति प्रबल बना सकें तो सिगरेट का पीना आप एकदम बन्द कर सकते हैं। आरम्भ में थोड़ी मानसिक परेशानी भले ही हो किन्तु आपके स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि आपके स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार ही होगा।

समस्या

कि समस्या क्या है ?

विकास और सुरक्षा का बहुत निकट का सम्बन्ध है।

खेतों और कारखानों में आप जितना उत्पादन

बढ़ाएंगे देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।

सुदृढ़ रक्षा के लिए जी तोड़ मेहनत करें।



डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

समुद्र में ज्वार-भाट के साथ उठती-गिरती लहरें समुद्र का मन्थन कर देती हैं। इसी ज्वार-भाटे पर कोटि-कोटि जन्तुओं तथा वनस्पतियों के जीवन आधारित हैं। इसी पर संसार के विभिन्न व्यापार-उद्योग और सागर यात्राएँ निर्भर रहती हैं।

अभी मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं हो पाया है कि वह ज्वार-भाटे का नियन्त्रण कर सके। उसे पूर्णतः सागर के नियन्त्रण में रहना पड़ता है। बन्दरगाह से दूर जहाज को इस प्रतीक्षा में खड़े ही रहना पड़ता है कि कब अनुकूल लहर आए और कब उसे किनारे लगा दे। इसी प्रकार मछुआ भी लहरों का रुख देखकर ही जाल फेंकता है। विज्ञान का बड़े से बड़ा साधन भी क्वीन मेरी जैसे विशाल जलयान को छिछले पानी अथवा दलदल में चलाकर किनारे नहीं ला सकता। यदि वह यान को तूफानी तरंगों की अवहेलना करके न्यूयार्क के बन्दरगाह पर पहुँचाने की जल्दबाजी करे तो उसे चकनाचूर होने से भी न बचा सकेगा। कितने ही बन्दरगाहों पर जहाजों को अपनी घड़ी से नहीं, ज्वार-भाटे के समयचक्र की मर्जी

पर चलना पड़ता है, माल उतारना और लादना पड़ता है। यदि वे लहरों का रुख न देखें तो या तो छिछले पानी और दलदल में फँसे रह जाएँगे अथवा ज्वार की लहरें उन्हें किनारे लगने ही न देंगी।

सृष्टि के आरम्भकाल में

सूर्य और चन्द्रमा के संयुक्त आकर्षण द्वारा प्रेरित इन सागर-ज्वारों का रूप आज के रूप से कितना भिन्न रहा होगा, यह गणना द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। उन दिनों जब पृथ्वी का ही एक छोटा टुकड़ा अलग होकर पृथ्वी के उपग्रह स्वरूप, चन्द्रमा के नाम से बना तब वह नवोत्पन्न चन्द्रमा पृथ्वी के काफी निकट होने से समुद्र को उछाल-उछाल कर गजब ढाता रहा होगा। आज जो वृहत् ज्वार (spring tide) और लघुज्वार (ebb tide) के मध्य तरंगों की उछाल का अन्तर केवल २०-३० फुट का है, वह उन दिनों सैकड़ों फुट का रहा होगा। आज चन्द्रमा पृथ्वी से २॥ लाख मील की दूरी पर होता हुआ भी वृहत् ज्वार के समय सागर को मथ देता है, वह उन दिनों क्या कुछ न करता

विज्ञान-नोक

होगा ? २०० करोड़ वर्षों से भी अधिक समय तक पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच टन जल टकरा देती हैं।

प्रश्न हो सकता है कि समुद्र क्यों इस प्रकार उद्वेलित हो उठता है ? सो भी नियत तिथि और नियत ही समय पर ? इसके समाधान के लिए यह पहले ही समझ लेना आवश्यक है कि सृष्टि का कण-कण एक-दूसरे को आकर्षित किये रहता है। भूमण्डल के समस्त जल की एक-एक बूंद व्योम-मण्डल के एक-एक तारे द्वारा आकर्षित होती है। यह दूसरी बात है कि तारों की अत्यधिक दूरी उनके आकर्षण को नगण्य कर देती है। सागर-जल के आकर्षण का समस्त उत्तरदायित्व सूर्य और चन्द्रमा पर ही है। जो व्यक्ति समुद्र किनारे रहते हैं वे प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को सागर की हालत देखते हुए जानते हैं कि सूर्य से भी अधिक आकर्षण चन्द्रमा का है। ज्यों-ज्यों प्रतिदिन चन्द्रमा लगभग ५० मिनट विलम्ब से उदय होता है, त्यों-त्यों सागर का ज्वार भी अपना समयचक्र मिलाये रखता है। इन दो तिथियों पर पृथ्वी और चन्द्रमा सूर्य की ठीक सीध में रहते हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा का सम्मिलित आकर्षण पृथ्वी पर पड़ता है। तभी सागर में बृहत् ज्वार उठता है। इसके अतिरिक्त, अर्द्धचन्द्र की दोनों तिथियों पर सूर्य और पृथ्वी की सीध से चन्द्रमा समकोणीय अवस्था में रहता है। तब दोनों का आकर्षण परस्पर विरोधी होने के कारण विभाजित हो जाता है। उस अवस्था में लघु ज्वार ही उठता है।

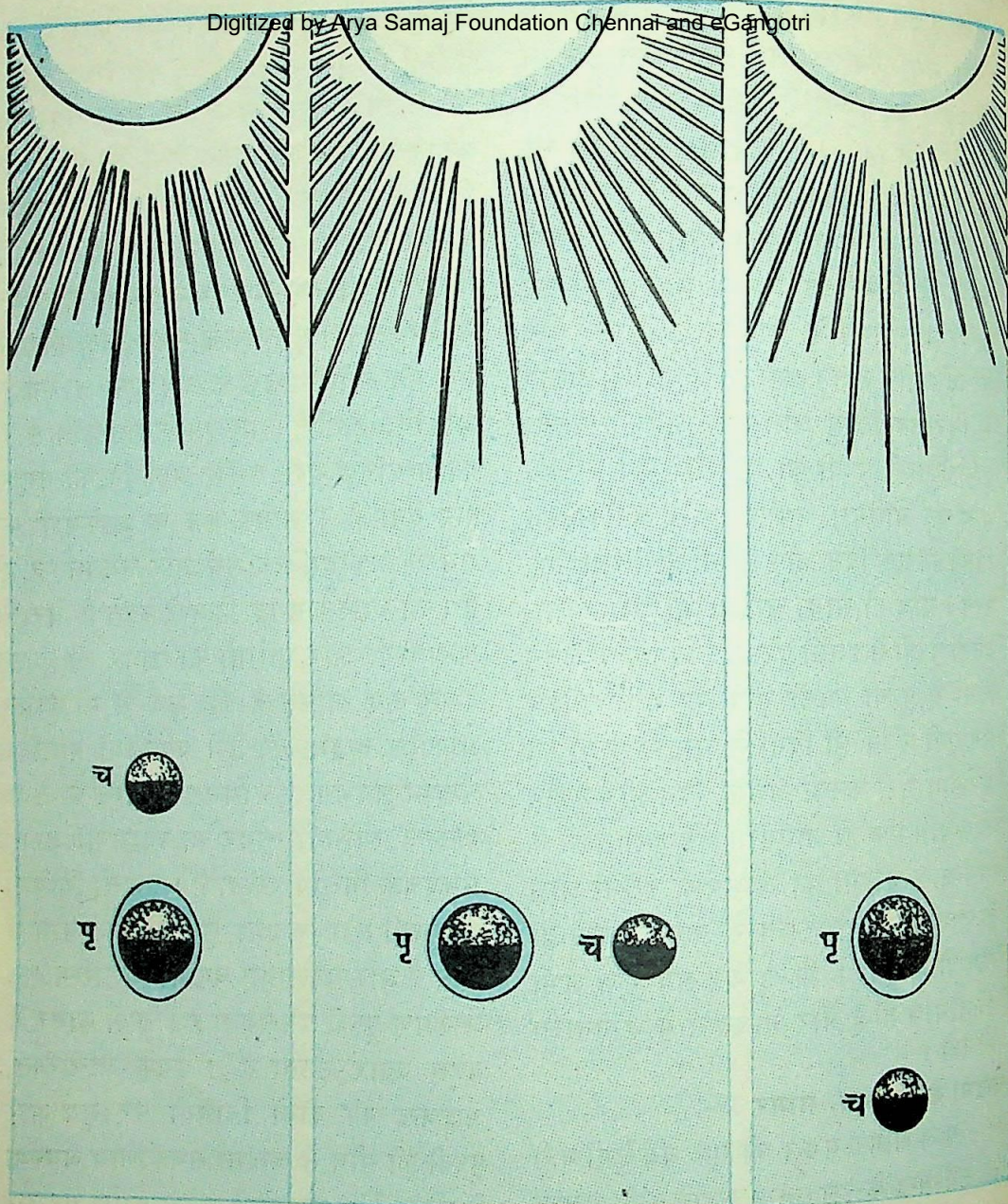
एक शंका यह भी हो सकती है कि सूर्य के मुकाबले चन्द्रमा एक राई के दाने के बराबर है फिर भी इसका आकर्षण सूर्य से अधिक क्यों है ? उत्तर स्पष्ट है कि अन्तर्ग्रही आकर्षण में आकार का बड़ा होना उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना कि मध्य की दूरी कम से कम होना। अतः चन्द्रमा पृथ्वी के निकटतम होने के नाते सूर्य से अनेक गुना छोटा होते हुए भी

वीत गया जब क्रमशः हटते-हटते चन्द्रमा इस दूरी पर पहुँचा है। साथ ही, पृथ्वी की घूर्णन गति (speed of rotation) भी कई गुना घट गयी है। आज तो पृथ्वी को अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा करने में २४ घण्टे लगते हैं किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में उसे ४ ही घण्टे लगते थे; अर्थात् ४-४ घण्टे बाद ही दिन और रात। अनुमान है कि कालान्तर में निरन्तर किन्तु अति सूक्ष्म गति से घटता हुआ हमारी पृथ्वी का यह वेग आज से ५० गुना घट जाएगा; अर्थात् १२०० घण्टों (५० दिन) का एक दिन और उतनी ही लम्बी एक रात। साथ ही साथ, चन्द्रमा भी पीछे हटता-हटता पृथ्वी से इतनी दूर हो जाएगा कि जितने दिनों में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाएगी उतने ही दिनों में चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करेगा अर्थात् दिन और महीने की अवधि एक हो जाएगी। यह दूरी बढ़ने के साथ-साथ चन्द्रमा का आकर्षण इतना क्षीण हो जाएगा कि सागर-ज्वार का अस्तित्व ही लोप हो जाएगा। किन्तु यह सब कुछ अभी गणनामात्र ही है और आजकल में होनेवाला भी नहीं।

चन्द्रमा के वशीभूत, सागर

सप्त सागर-मण्डल की एक बूंद ऐसी नहीं जो सूर्य-चन्द्र के इस ज्वार उठाने वाले अदृश्य किन्तु महाप्रबल आकर्षण की अधीनता न स्वीकार करती हो। इस आकर्षण के आगे लहरें उठानेवाले प्रचण्ड पवन तथा पृथ्वी का घूर्णन वेग आदि अन्य बल तो निर्बल ठहरते हैं, अतः एक प्रकार से नगण्य ही हैं। इनका प्रभाव कुछेक सौ फुट की गहराई तक ही रहता है। उससे आगे ये शक्तियाँ अशक्त हो जाती हैं। उधर चन्द्रमा का आकर्षण तो सागर-जल को ऊपर-तले ही कर देता है। ज्वार की अवस्था में सागर की उत्ताल तरंगें किसी भी सामान्य

दिसम्बर १९६३



कभी आकर्षण-बल को द्विगुणित करके तो कभी परस्पर ही न्यून भी करके सूर्य और चन्द्र (च), पृथ्वी (पृ) के जल भाग का भाग्यनिर्धारण करते हैं

अपेक्षाकृत अत्यधिक बल से सागरजल को खींचता है। यह आकर्षण पृथ्वी के बाह्य भाग पर ही पड़ता होने से यह सहज अनुमान लगाना गलत हो जाएगा कि पृथ्वी के समस्त स्थलों पर एक समान ही आकर्षण पड़ता होगा। विचित्रता तो यह है कि कुछ ही मील दूर के सागर-तटों पर भी ज्वार के वेग में काफी अन्तर रहता है। ज्वार उठने के पहले और मध्य

की अवस्था में तरंगों की ऊँचाई का अन्तर कहीं तो फुट-दो फुट ही रहता है, और कहीं २०-३० फुट का। यह अन्तर सागरतल की ऊँची-नीची ढलान पर आधारित रहता है। सागरतल की असमानता के कारण ज्वार के क्रम में भी अन्तर पड़ जाता है फलतः कहीं तो दिन में दो बार और कहीं एक ही बार ज्वार आता है।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि मृष्टि के प्रारम्भ से अब तक चन्द्रमा पृथ्वी से निरन्तर हटता जा रहा है। यदि हटता न होता और उतना ही निकट होता तो सागर-ज्वार का पानी पृथ्वी पर मनुष्य और जन्तु-जीवन तो था, किसी भी वस्तु को टिकने न देता। यह तथ्य कम मनोरंजक नहीं कि चन्द्रमा जिस ज्वार को उत्पन्न करता है, वही ज्वार उसे पृथ्वी से दूर-दूर किये रहता है। इसका रहस्य इस प्रकार है।

यह तो स्पष्ट है कि तीव्र वेग से घूमती हुई पृथ्वी चन्द्रमा को अपनी ओर आकर्षित किये रहती है। ज्वार के साथ खिंचता हुआ सागर-जल पृथ्वी की गति को निश्चय ही मन्द कर देता है। पृथ्वी की गति मन्द होते ही इसका गुरुत्वाकर्षण-बल घट जाने से चन्द्रमा इसकी कैद से यथाकिंचित मुक्त होकर दूर खिसकता है। ज्वार के उतरते ही भाटे की अवस्था में चन्द्रमा पुनः घाटे में आ जाता है और पृथ्वी अपनी स्वाभाविक गति पुनः प्राप्त करते ही चन्द्रमा को अधिक निकल भागने से रोक लेती है।

चन्द्रमा के इस प्रकार दूर हटते जाने से पृथ्वी के गिर्द उसकी परिक्रमा के पथ में और अन्ततः समय में भी दीर्घता आ जाती है। समय का यह अन्तर इतना सूक्ष्म होता है कि हमारी सामान्य घड़ियों की तो पकड़ में आ ही नहीं सकता। हाँ, आधुनिकतम अणुचालित घड़ियाँ अवश्य यह अन्तर प्रदर्शित करने में समर्थ हैं। इन्हीं की सहायता से अनुमान लगाया गया है कि प्राचीन मिस्रवासियों ने जिस काल में संसार-प्रसिद्ध पिरामिड खड़े किये थे, तब की अपेक्षा आज हमारा दिन कई मिनट बढ़ चुका है।

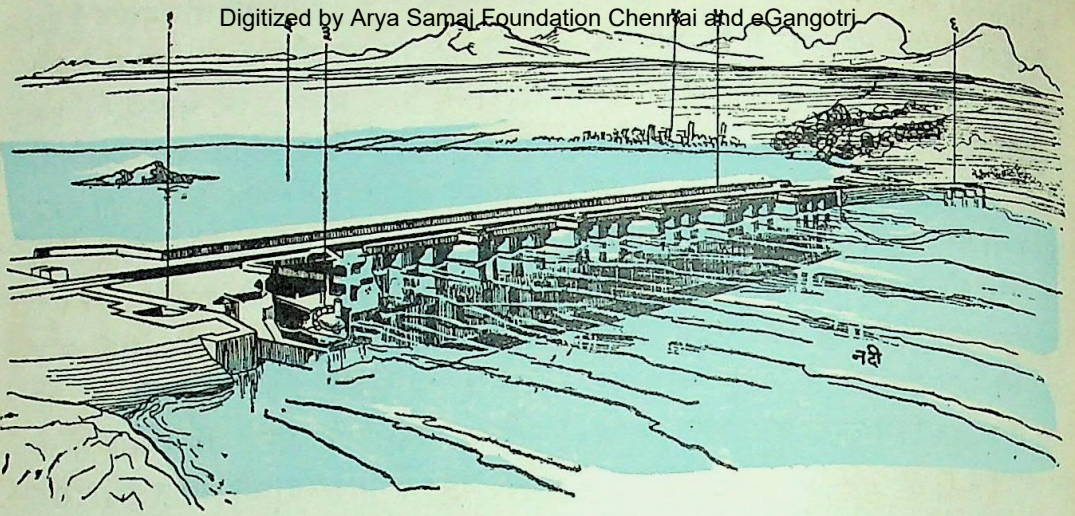
नौकारोहण के भय-स्थान

ज्वार के समय जहाजों तथा नौकाओं

को समुद्र के बीच में होने पर भयस्पद है ही, किन्तु वह भय तब और भी बढ़ जाता है जब लहरों के बीच भँवरें पड़ने लगती हैं। इन भँवरों में एक बार फँसने पर निकलना असम्भव हो जाता है। एक चिलम की तरह ऊपर से चौड़ी और नीचे से सँकरी होती-होती यह भँवर अनन्त बढ़ती ही जाती है और एक भँवर समाप्त होने से पहले तीन नयी और उत्पन्न कर जाती है। कुशल नाविकों को यदि २-३ मिनट का समय मिल जाए तो वे ऐसी भँवर से निकलना भी जानते हैं। इसके लिए वे अपना डाँड़ अथवा अन्य कोई भारी तथा लम्बी-चौड़ी वस्तु भँवर में फँकते हैं जिससे पानी का क्रम टूट जाता है और भँवर कुछ देर के लिए अदृश्य हो जाती है।

भँवर के अतिरिक्त एक दीवार के रूप में ज्वार-भित्ति (bore) का बनना भी बड़ा भयस्पद रहता है। इसका बनना ऐसी नदी के मुहाने पर सम्भव होता है जहाँ ज्वार तथा भाटे की लहरों में ८-१० फुट का अन्तर हो। कभी-कभी दो-तीन बड़ी लहरें एक साथ मिल कर लम्बी, ऊँची दीवार के रूप में समुद्र से उठ कर नदी के मुहाने से उलटे नदी की ओर बढ़ती हैं। एकबारगी तो उनकी यह दीवार ज्वार के वेग को रोके रहती है किन्तु शीघ्र ही पीछे आनेवाली लहरों से मिलकर स्वयं एक बाढ़ के रूप में नदी पर चढ़ दौड़ती है।

संसार की विशालतम नदी अमेजन में समय-समय पर आनेवाली ऐसी ज्वार भित्तियाँ इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि वे नदी में अन्दर ही अन्दर २०० मील से भी अधिक तक चढ़ आती हैं। इसी प्रकार सीयेन्तांग नदी की ज्वारभित्ति इसलिए प्रसिद्ध है कि उस नदी का समस्त नौकारोहण उसी पर आधारित है। वह भित्ति १०-११ फुट ऊँची और १२-१३ नाट (knots) की गति से आती है। बृहत् ज्वार के अवसर पर तो वह भित्ति



ज्वार को रोकने तथा उससे विद्युत् उत्पादन करने का सफल प्रयोग फ्रान्स के सेन्ट मेलो स्थान पर किया गया है। आते और जाते ज्वार से द्विमुखी टर्बाइनों द्वारा २४ हाइड्रोइलेक्ट्रिक इंजन गतिमान होकर लगभग ५० करोड़ किलोवाट विद्युत् प्रति मास उत्पादित कर रहे हैं। १. जलपाश; २. समुद्र; ३. पम्प टर्बाइन; ४. सेन्ट मेलो; ५. कन्ट्रोल रूम; ६. जल-निष्कासन कपाट

२५ फुट तक ऊँची हो जाती है। पूर्व काल में उक्त नदी के तटवासी इसे नदी का प्रकोप समझकर बलि चढ़ाया करते थे।

ज्वार-प्रभावित समुद्री जन्तु

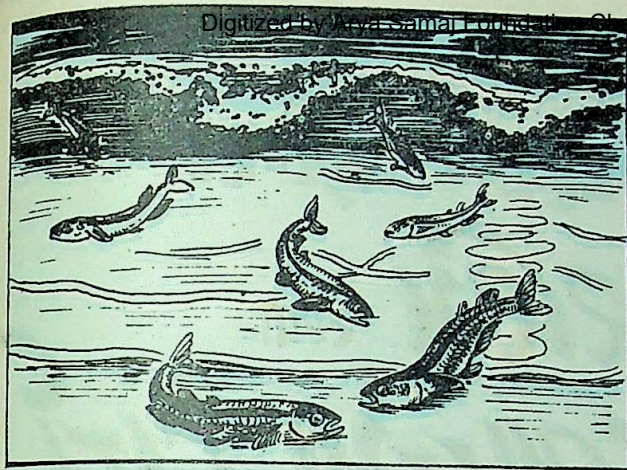
मानव के तो विविध व्यापार ज्वार-भाटे से प्रभावित रहते ही हैं, कुछेक समुद्री जन्तु भी विलक्षण प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। ज्वार-भाटे के अचूक तथा निर्धारित समय-कुसमय का उनका ज्ञान तथा उस पर आधारित उनकी जीवन क्रियाएँ, विशेषतः जनन-क्रिया तो आश्चर्य-जनक ही है। शंख, सीपियों तथा घोंघे आदि नन्हें जन्तुओं का तो जीना-मरना ही ज्वार-भाटे पर आश्रित है। जिन जन्तुओं के लिए सागर की गहराइयों में रहते हुए भोजन की तलाश में ऊपरी सतह के निकट आना असम्भव है, उन तक भोजन ये ज्वार ही घसीट ले जाते हैं।

इन जन्तुओं ने अपना ऋतुकाल (mating period) ज्वार के चढ़ने-उतरने के साथ इस खूबी से बिठा रखा है कि दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाना पड़ता है। सी-अर्चिन (sea-urchin) नामक कीड़े की तो

नियमितता इतनी विलक्षण है कि जब भी वह सतह पर दिखायी पड़े, यह कहा जा सकता है कि वह किस महीने का, कौन दिन होगा और उस समय दिन का कौनसा प्रहर होगा।

प्रशान्त महासागर में सेमोओ द्वीप के निकट पाये जाने वाले पैलोलो (palolo) नामक कीट की जीवनक्रियाएँ और भी मनोरंजक हैं। वर्ष में दो बार, अक्टूबर तथा नवम्बर के अर्द्धचन्द्र-दिनों में अर्थात् लघुज्वार की अवस्था में यह कीड़ा जल में छिपे चट्टानों के अपने घर से निकलकर सतह पर तैर आता है। सतह पर आते समय अपना आधा शरीर वहीं चट्टान पर छोड़ आता है। आने के दूसरे दिन तक इनका समूह इतने अधिक अण्डे दे देता है कि एक बार तो पानी की सतह का रंग ही बदल जाता है। अपना काम समाप्त करके वह आधा ग्रंग पुनः अपने घर जाकर अर्द्धांग से मिल जाता है।

केलीफोर्निया के समुद्री तट पर पायी जाने वाली ग्रुनियन (grunion) मछली तो और भी विचित्र है। केवल हाथ भर की और चाँदी सी चमकती यह मछली न केवल प्रति दिन के



ये हैं ग्रुनियन (grunions) मछलियाँ जो ज्वार और भाटे का अचूक हिसाब रखकर जननक्रिया सम्पन्न करती हैं

दोनों ज्वार-भाटे के समय का घड़ी-पल-शुद्ध ज्ञान रखती है, बल्कि यह भी जानती है कि कितने दूर के किनारे पर ज्वार का पानी कम चढ़ेगा या अधिक। इसी आधार पर वे अपनी जनन-क्रिया सम्पन्न करती हैं।

मार्च से अगस्त के मध्य लघु-ज्वार की लहरों के साथ ये मछलियाँ किनारे पर आना प्रारम्भ करती हैं। एक लहर इन्हें किनारे ला पटकती है। वहाँ वे चन्द्रा की चाँदनी में चमकती हुई चन्द्र घड़ियाँ गुजारती हैं और दूसरी लौटने वाली लहर में कूद-कूदकर पुनः विलीन हो जाती हैं। उसके लगभग एक घण्टे पश्चात् पुनः इनका नया जत्था किनारे आता है और वह भी कुछ देर ठहरकर दूसरी लौटती लहर से लौट जाता है। इसका रहस्य यह है कि पहला जत्था केवल मादाओं का था जो अण्डे देकर चली गयीं और दूसरा जत्था केवल नरों का था जो उन्हें निषेचित करके चले गये। वे इस हिसाब से और इतने सुरक्षित फासले पर अण्डे छोड़ जाते हैं कि लघु ज्वार की लहरें वहाँ तक नहीं पहुँच पातीं और वे रेत में पड़े-पड़े तैयार होते रहते हैं। उन्हें तैयार होने के लिए भी केवल १४ दिन का समय चाहिए। अतः दो सप्ताह बाद ही वृहत् ज्वार की पहली लहर

का ठोड़ा समुद्र अण्डों की भिल्ली को चटखा देता है और नवजात मछलियाँ लौटती लहरों के साथ अपने नये घर बनाने के लिए समुद्र में समा जाती हैं।

प्रकृतिकी ऐसी ही विलक्षणता *Convoluta ros coffensis* नामक सपाटकृमि (flatworm) में भी पायी जाती है। यह समुद्री जन्तु नन्हीं शैवाल वनस्पतियों से नाता जोड़ लेता है। वह वनस्पति अपना हरा रंग और अन्य पोषक अंग इसे अर्पण कर देती है।

अब प्रकाश-संश्लेषण सम्पन्न करने के लिए यह कीट प्रत्येक लघुज्वार की लहर के साथ किनारे आ जाता है। वहाँ खुली धूप में पड़ा रहकर प्रकाश-संश्लेषण द्वारा शरीर-पोषण के लिए स्टार्च व शुगर बनाने में सहयोग देता है। पुनः पानी में लौटकर अपना निर्मित भोजन उस वनस्पति को दे देता है। ऐसी सपाटकृमियों के एक जत्थे को जब मीनालयों में रखकर अध्ययन किया गया तो पाया गया कि मीनालय कोई समुद्र न होते हुए भी और फलतः उसमें ज्वार-भाटे का कोई प्रश्न न होते हुए भी वे कृमि बराबर दिन में दो बार (ज्वार के हिसाब से ही) सतह के ऊपर तिर आते थे और पुनः तल में उतर भी जाते थे।

कौन इन निरीह जन्तुओं को ज्वार-भाटे की वैज्ञानिकता, लहरों का समयचक्र और चन्द्रमा की कलाओं का ज्ञान कराता होगा; जिसके आधार पर ये इतनी अचूक प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं; और जिन एकाकी स्थलों पर समुद्री जन्तुओं को खाने के लिए कुछ भी उपलब्ध नहीं, उन्हें निर्धारित समयान्तर से किस प्रकार ये सागर-तरंगें शिकार तथा भोजन आदि पहुँचाती रहती हैं, यह विज्ञान के लिए आज भी एक अबूझ पहेली है, गूढ़ गुत्थी है। ●

दिसम्बर १९६३

उच्च ताप

के

दो महान श्रोत

विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च

अशोककुमार चौबे

अपने दैनिक उपयोग तथा उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हमें उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है और उसकी पूर्ति हम विभिन्न विधियों द्वारा कर लेते हैं। यहाँ दो आधुनिकतम विधियों का परिचय दिया जा रहा है जिनके द्वारा हम अति सुगमता से उच्च ताप प्राप्त कर सकते हैं।

व्यापारिक क्षेत्र में विभिन्न धातुओं को जोड़ने के लिए हमें उच्च ताप की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक नवीन संयोजनकारी (welding) विधियों में विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च द्वारा संयोजन दो बहुत ही अच्छी विधियाँ हैं जिनमें सरलता एवं मित-व्ययिता से उच्च ताप प्राप्त किया जा सकता है।

विद्युदणु-रश्मि द्वारा संयोजन पर आजकल अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इस विधि का प्रयोग प्रतिक्रियाशील (reactionary) और भुजायकीय (refractory) दोनों ही प्रकार की धातुओं के लिए तथा स्टेनलेस स्टील की शलाकाओं के संयोजन के लिए सुगमता से किया जा सकता है।

आधारभूत सिद्धान्त—यदि एक शून्य-कक्ष में दो विद्युत-ध्रुव लगा दिये जाएँ और

उन पर एक विद्युत शक्य (potential) लगा दिया जाए तो उन ध्रुवों के बीच प्रवाहित होने वाली विद्युदणु-रश्मि का वेग दोनों ध्रुवों के बीच के शक्य पर निर्भर रहता है। जितना ही अधिक विद्युत विभव का प्रयोग किया जाएगा, विद्युदणु-रश्मि का वेग भी उतना ही अधिक हो जाएगा। विद्युदणु-रश्मियों की तीव्र गति होने के लिए कक्ष में उच्चस्तरीय शून्य होना अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यदि कक्ष में गैस या वायु उपस्थित होगी तो विद्युदणु गैस-अणुओं से संयोग करने के पश्चात् उसे आवेशित कर देंगे तथा विद्युदणुओं की गति कम हो जाएगी। इस प्रकार प्राप्त उच्च शक्तिशाली विद्युदणु-रश्मि की गतिज ऊर्जा शत-प्रतिशत क्षमता सहित ताप-शक्ति में बदली जा सकती है। यद्यपि विद्युदणु की मात्रा बहुत कम होती है लेकिन इस प्रकार प्राप्त विद्युदणु-रश्मि की गतिज ऊर्जा बहुत अधिक होती है क्योंकि विद्युत शक्य को अधिक करके उसकी गति बढ़ायी जा सकती है। धातुओं को जोड़ने आदि के लिए प्राप्त ताप विद्युदणु-रश्मि के घनत्व पर भी निर्भर रहता है।

विद्युदणु-रश्मि प्राप्त करने के उपकरण दो प्रकार के हैं। प्रथम उपकरण में जिन

विज्ञान-लोक

धातुओं को जोड़ना होता है, उन्हीं धातुओं द्वारा रश्मि का वेग-वर्धन किया जाता है, अर्थात् वे ही धातुएँ धन ध्रुव का भी कार्य करती हैं। द्वितीय प्रकार के उपकरण में अन्य धातु के ध्रुवों द्वारा रश्मि का वेग-वर्धन किया जाता है तथा प्रायोगिक धातुओं को उपकरण के बाहर रखकर प्रयोग किया जाता है। द्वितीय प्रकार के उपकरण में धन द्वार में एक छोटा-सा छिद्र कर दिया जाता है और विद्युदणु-रश्मि उस छिद्र में से प्रायोगिक धातुओं पर डाली जाती है। आधुनिक एवं संशोधित द्वितीय प्रकार के उपकरण में विद्युदणु-रश्मि का नाभिकरण (focussing) विद्युत्स्थैतिकी या विद्युच्चुम्बकीय वीक्षों (electrostatic or electromagnetic lenses) द्वारा किया जाता है। नाभिकरण की द्वितीय विधि का प्रयोग अधिक किया जाता है और रश्मियों को ०.००२ इंच व्यास के गोले तक केन्द्रित किया जाता है।

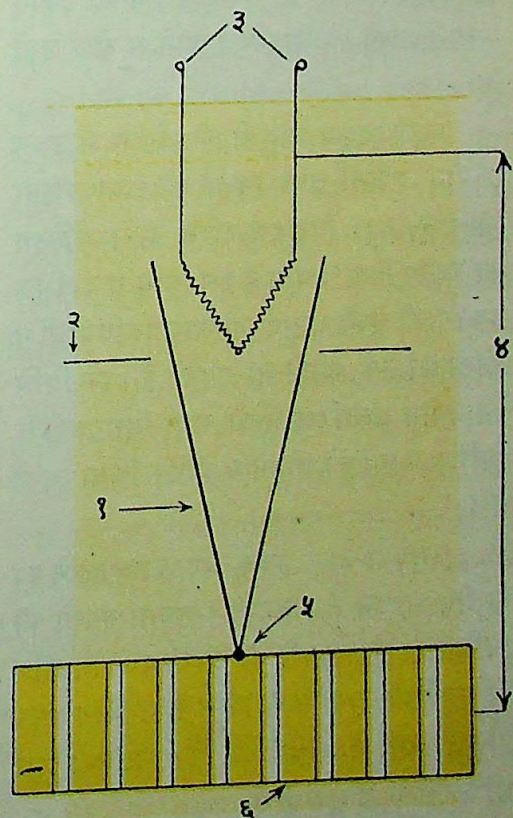
उपकरण—उपकरणों में मुख्यतः चार भाग होते हैं : १. शून्य कक्ष तथा उससे सम्बन्धित सामग्री, २. विद्युदणु शतद्गनों (electron gun), ३. उच्च विद्युत शक्त का साधन (high D.C. voltage), ४. प्रायोगिक धातुओं को शून्य कक्ष में ले जाने वाला एक स्वचालित यन्त्र।

धातवीय टुकड़े संयोजन के हेतु शून्य कक्ष में १०-४ मि. मी. पारे के स्तम्भ के दबाव तक शून्य कर लेते हैं। सामान्यतः दो प्रकार के विद्युत शक्ति के साधन काम में लाये जाते हैं— १. जिसमें उच्च विद्युत विभव (५०-१५० किलो वोल्ट्स या और ज्यादा) का प्रयोग किया जाता है तथा २. जिसमें निम्न विद्युत विभव (५-५० कि.वो.) का प्रयोग किया जाता है। उच्च विद्युत शक्त वाली विधि सर्वप्रथम यूरोपीय देशों में प्रयुक्त की गयी थी। संयुक्त राज्य अमरीका में कम विद्युत शक्त वाली

विधि का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि कम विद्युत विभव प्रयोग करने से रश्मियों की गति कम होती है और जिस समय वह धातु के टुकड़े पर टकराती है, एक्स-किरणों के बनने का भय कम हो जाता है।

विद्युदणु-रश्मि द्वारा संयोजन की विशेषताएँ—इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा बहुत मोटी पट्टिकाओं की भी वेल्डिंग की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि अन्य विधियों द्वारा एक इंच मोटी तथा दो इंच चौड़ी शलाकाओं की वेल्डिंग की जा सकती है तो इस विधि द्वारा २० इंच मोटी तथा एक इंच चौड़ी पट्टिकाओं की वेल्डिंग आसानी से की जा सकती है। विद्युदणु-रश्मियाँ अधिक ऊर्जा के कारण अधिक गहराई तक धातुओं में प्रवेश कर जाती हैं और उन्हें

प्रथम उपकरण—१. विद्युदणु-रश्मि ; २. शील्डिंग पट्टी ; ३. तन्तु शक्ति प्रदायक ; ४. वेग-वर्धन हेतु विद्युत-शक्त ; ५. नाभिकेन्द्र ; ६. प्रायोगिक धातु

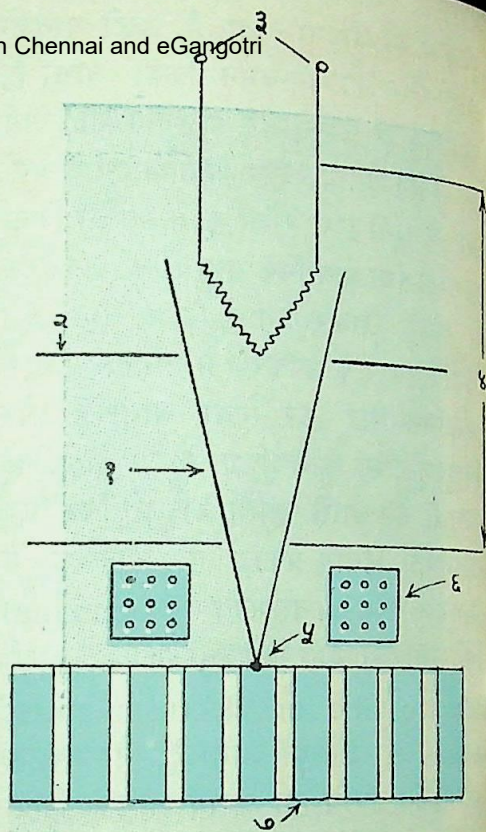


जोड़ सकती हैं। इस विधि द्वारा जोड़ी गयी पट्टिकाएँ शीघ्र ठंडी भी हो जाती हैं क्योंकि ये रश्मियाँ बहुत ही संकुचित केन्द्र पर केन्द्रित होती हैं जिससे धातुओं का अन्य भाग गर्म नहीं हो पाता। इस विधि में धातुओं को एक शून्य कक्ष में, जिसमें वायु-दाब पारे के १०-४ मि.मी. स्तम्भ के बराबर होता है, जोड़ा जाता है। फलतः प्रायोगिक धातुएँ अधिक शुद्ध वातावरण के सम्पर्क में रहती हैं और उनकी अशुद्धता वाष्प रूप में निकल जाने से वे अधिक शुद्ध हो जाती हैं।

जब विद्युदणु-रश्मि धातु के केन्द्र पर टकराती है तब एक्स-किरणें भी उत्पन्न होती हैं जो मनुष्य के लिए हानिकारक होती हैं। एक्स-किरणों की शक्ति ध्रुवों पर लगाये गये विद्युत विभव पर निर्भर रहती है। यदि विद्युत विभव ४० कि. वो. से अधिक हो तो एक्स-किरणों के बनने का भय रहता है और काम करते समय अपनी सुरक्षा के लिए शीशा धातु की पट्टिकाओं का प्रयोग जरूरी है। ये पट्टिकाएँ एक्स-किरणों को आर-पार जाने से रोक लेती हैं।

जहाँ विशेष धातुओं को जोड़ने में उच्च स्तरीय शुद्धता तथा दृढ़ता की आवश्यकता होती है, वहाँ विद्युदणु-रश्मि द्वारा वेल्डिंग का प्रयोग किया जाता है इस विधि से दो भिन्न प्रकार की ऐसी धातुएँ जो अन्य विधियों से न जोड़ी जा सकें, जोड़ी जा सकती हैं। इस विधि का प्रयोग अन्तरिक्ष-यानों तथा मिसायलों के विभिन्न भागों को जोड़ने में अधिक किया जाता है।

प्लाज्मा-टार्च उच्च ताप प्राप्त करने का द्वितीय साधन है। यद्यपि प्लाज्मा बनाने की विधियाँ इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही ज्ञात हो चुकी थीं, तथापि प्लाज्मा के उपयोग इधर ही कुछ वर्षों में अधिक बढ़े हैं। प्लाज्मा टार्च भी उन्हीं में से एक है।



द्वितीय उपकरण—१. विद्युदणु-रश्मि; २. शील्डिंग पट्टी; ३. तन्तु शक्ति प्रदायक; ४. विद्युत-शक्ति; ५. नाभि-केन्द्र; ६. विद्युच्चुम्बकीय वीक्ष्य; ७. प्रायोगिक धातु

प्लाज्मा-टार्च में गैस को एक उच्च ताप वाले विद्युत चाप (electric arc) पर प्रभावित किया जाता है जिससे वह गैस १५०००° से ३००००° F तक गर्म हो जाती है। यह ताप आक्सी-ज्वालाओं से प्राप्त ताप से कहीं अधिक है। उच्च ताप प्राप्त करने के लिए विद्युत शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए दो प्रकार के उपकरण काम में लाये जा सकते हैं। प्रथम प्रकार में विद्युदणु-रश्मि की भाँति विद्युत चाप के धन ध्रुव का काम वही धातु करती है जिसे जोड़ना या काटना हो। इस प्रकार के विद्युत चाप को परिवर्तित चाप (transferred arc) कहते हैं। द्वितीय प्रकार में विद्युत चक्र टार्च के भीतर ही पूरा कर दिया जाता है और स्वतन्त्र प्लाज्मा की धारा एक फव्वारे की भाँति प्रायोगिक धातु

द्वितीय विधि कुचालक पदार्थों को गर्म करने में, वायुसुरंगों के लिए गर्म गैसों बनाने में, रासायनिक संश्लेषण में तथा उन धातुओं को जोड़ने में जिनका सीधा सम्पर्क विद्युत चाप से नहीं किया जा सकता, प्रयुक्त की जाती है। प्रथम विधि में द्वितीय विधि की अपेक्षा धातु को अधिक ताप प्राप्त होता है, क्योंकि धातु का सीधा सम्पर्क विद्युत-चाप से होता है। इसलिए वह विधि धातुओं को काटने तथा जोड़ने में अधिक सरलता से काम आती है। यदि प्लाज्मा की धारा का अध्ययन विभिन्न जातियों पर करना हो तो प्लाज्मा की धारा की गति बढ़ायी या कम भी की जा सकती है। कम वेग पर चलने वाली प्लाज्मा की धारा एक पतली धातु की सतह की भाँति प्राप्त की जा सकती है जिसे मिन्नार ज्वाला (laminar flame) कहते हैं।

प्लाज्मा टार्च के कुछ महत्वपूर्ण उपयोग निम्न भाँति हैं—अपरिवर्तित प्लाज्मा-ज्वाला का प्रयोग बर्तनों तथा काँच के सामान को गलाने में तथा काँच को रेशों में बदले बगैर उसमें छेद करने के लिए किया जाता है। इस किसी भी गलनशील धातु को गलाने में तथा धातुओं के चूरो को इकट्ठा करके उनके बीच जोड़ने में भी काम आती है—जैसे यूरैनियम आक्साइड, कार्बाइड और बोरन कार्बाइड आदि। इसमें ऑरगन आदि अक्रियाशील गैसों भी प्रयुक्त की जा सकती हैं। ऑरगन मुख्यतः यूरैनियम, बेरीलियम, एल्यूमिनियम आदि धातुओं को पिघलाकर उनके बीच जोड़ने में काम आती है। इस प्रकार

वैद्युत गैसों का घनत्व अधिक होता है और उन गोलों का आणविक भट्ठियों तथा राकेट आदि में उपयोग किया जाता है। आधुनिक प्लाज्मा टार्च में और भी प्रगति की गयी है। इनमें प्लाज्मा बनाने के लिए वायु का अधिक दाब पर उपयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त उच्च ताप में किया गया अधिक दाब की वायु का व्यय आक्सी-ज्वालाओं की अपेक्षा बहुत कम होता है।

वायु-सुरंगों के लिए गैसों गर्म करने तथा मिसायलों के विभिन्न भाग जोड़ने में प्लाज्मा टार्च का प्रयोग बहुत ही सफल सिद्ध हुआ है। प्राकृतिक गैसों से ऐसीटिलीन बनाने में भी प्लाज्मा विधि सफल रही है। परिवर्तित प्लाज्मा टार्च का प्रयोग धातुओं को काटने में भी किया जाता है। ये टार्च स्टेनलेस तथा नरम स्टील को काटने में बहुत ही सफल रही हैं। इनकी कार्य विधि आक्सी-ज्वालाओं की अपेक्षा दस गुनी सस्ती पड़ती है। धातुओं को जोड़ने में प्लाज्मा-ज्वाला का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य के लिए अक्रियाशील गैसों वाली प्लाज्मा टार्चें अधिक उचित रहती हैं, क्योंकि उनसे धातुओं का आक्सीकरण नहीं होता जो आक्सी-ऐसीटिलीन-ज्वाला के साथ हो जाता है। प्लाज्मा टार्च से जोड़ी जाने वाली धातुएँ अधिक जल्दी जम जाती हैं जबकि अन्य विधियों में अधिक समय लगता है।

अन्तरिक्ष में राकेट यान दागने के लिए इलेक्ट्रोथर्मल यन्त्र में प्लाज्मा विधि का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि विद्युदणु-रश्मि तथा प्लाज्मा टार्च आधुनिक उच्च ताप प्राप्त करने के साधनों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

केवल १० इंच लम्बा और ५ औंस वजन का एक ऐसा औजार तैयार किया गया है जो एक घण्टा तक औजारों का काम देता है उसी से आरी का काम लीजिए, हथौड़ा चलाइए, जम्बूर की तरह लोच लीजिए, २-३ माप के छोटे-बड़े पेचकस का काम लीजिए और ३-४ तरह के बरमे के रूप में जहाँ साराख भी कर लीजिए।



विशिष्ट वर्ग एकत्रित हों तो
हाईलैण्ड
चीफ
 माल्टेड विहस्की

एक अरोप्य प्रलोभन है

जब कभी मित्रगण सम्मिलित होते हैं तो अच्छी विहस्की से अधिक सुखद और कुछ नहीं है। उस सभा को अविस्मरणीय बनाने के हेतु आप उत्तम विधि तथा सावधानी से मिश्रित हाईलैण्ड चीफ से अधिक अच्छा चुनाव नहीं कर सकते।



डायर मीकिन ब्रूअरीज़ लि० स्थापित १८५५

भारत

का

बहुशैल-निरोधक वृक्ष नीम

दिनेश चौहान

जिस प्रकार मनुष्यों की ख्याति गुणों पर आधारित है, उसी प्रकार वनस्पतियाँ अपने सद्गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे हुए हैं। ऐसी वनस्पतियों में सबसे अधिक सामान्य और परिचित नीम है। इसके नाम और गुणों से बालक-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण तथा नगरवासी सभी भलीभाँति परिचित हैं। अपने गुणों के प्रकाश से इस वनस्पति ने संसार भर को वैदिक काल से आज तक जगमगाया है। ओषधि विज्ञान को भी भारत की यह एक बहुमूल्य देन है जो केप कोमोरिन (Cape Comorin) से हिमालय पर्वत तक सर्वत्र उपलब्ध है।

वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार नीम को मीलिया इण्डिका (*Melia indica*) कहते हैं जो मीलिएसी कुल (*Meliaceae* family) का मुख्य सदस्य है। भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में निम्ब, अरिष्टा, लिम्बा, वेपा, भारगोसा आदि शब्द नीम के ही पर्याय हैं। नीम की लगभग तीस प्रजातियाँ (species) एशिया के विभिन्न भू-भागों में फैली हुई हैं।

नीम की गणना विशाल वृक्षों में की जाती है। इसकी ऊँचाई ४०-६० फुट होती

है। इसका तना चौड़ा और मोटा होता है जिसके ऊपरी भाग से अनेक लम्बी-पतली शाखाएँ निकलती हैं। नीम के तने पर काफी मोटी छाल चढ़ी रहती है जिसके सूखने पर अनेक आड़ी-तिरछी दरारें पड़ जाती हैं। नयी निकलने वाली शाखाएँ रोमहीन और चिकनी होती हैं। नीम की लकड़ी कठोर, रंगीन तथा गंधयुक्त होती है। पत्तियाँ संयुक्त, असम-पक्षवत तथा एकान्तर होती हैं तथा इनकी लम्बाई ६ से १५ इंच तक होती है। प्रत्येक पत्ती से ८ से १७ तक पर्णक निकलते हैं जो तिर्यक, दाँतेदार और नुकीले होते हैं। इनका रंग गहरा हरा होता है। पुष्प छोटे, असंख्य, सम्पूर्ण तथा द्विलिंगी होते हैं। पुष्प प्रायः गुच्छों या समूह में निकलते हैं जो सामान्य भाषा में बौर कहलाता है।

फरवरी और मार्च के महीनों में नीम की पत्तियाँ झड़ जाती हैं, किन्तु अप्रैल के प्रथम सप्ताह में पुनः कोपल कहलाने वाली नयी चिकनी पत्तियाँ निकल आती हैं। नमकीन, क्षारीय या ऊसर सभी प्रकार की भूमि में यह समान रूप से फूलता और फलता है। नीम को अधिक पानी देने की भी आवश्यकता नहीं

पड़ती। नीम के ~~पत्तियों~~ ^{पत्तियों} के ~~अपघ्रात~~ ^{अपघ्रात} के ~~समय~~ ^{समय} सबसे अधिक नीम के समय भी विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग होता है। मलाबार में जनवरी, मैसूर में फरवरी, मध्य प्रदेश में मार्च, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में अप्रैल और हिमाचल प्रदेश में मई मास में बीर आता है।

भारतीय धर्मों में नीम के वृक्ष तथा पत्तियों को बहुत महत्त्व दिया गया है। सनातनी इसकी गणना पवित्र वृक्षों में करते हैं। पत्तियों तथा टहनियों का पूजन के समय प्रयोग किया जाता है। नव-वर्ष के दिन नयी कोंपल को खाने और पत्तियों के उवाले हुए जल से नहाने की प्रथा है और इस प्रथा में आस्था रखने वालों का कथन है कि इस कार्य से आगामी वर्ष भर उन्हें किसी प्रकार का भयानक रोग नहीं होता। वैष्णव धर्म के अनुयायी विश्वास करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु का जन्म नीम के वृक्ष के ही नीचे हुआ था, इसीलिए उनका नाम 'निमाई' पड़ा। घटस्थापन नामक त्यौहार जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है, उसमें भी नीम की पत्तियों को घड़े में रखकर पूजन किया जाता है। लोगों का विश्वास है कि यह पर्व दुर्भाग्य तथा रोगों से उनकी रक्षा करता है। इसीलिए कहीं-कहीं इस पर्व पर बलि भी चढ़ायी जाती थी। श्मशान से लौटकर गृह-प्रवेश करने से पूर्व भी नीम की पत्तियों को चबाना आवश्यक माना गया है।

प्राचीन काल से नीम का अनेक रूपों में उपयोग होता आया है। मजबूत होने तथा आसानी से छिलने और कटने के कारण इसकी लकड़ी गाड़ियाँ, हल तथा घर और खेतों में काम आने वाले अन्य सामान बनाने में काम आती है। इससे दरवाजे, आलमारियाँ, फर्नीचर आदि भी बनते हैं। छाया के लिए बरगद, पाकर, महुआ आदि के साथ नीम का भी उपयोग किया जाता है। सम्राट अशोक

तथा सादरजहाँ के समय सबसे अधिक नीम के वृक्ष ही सड़कों के किनारे लगाये गये थे। नीम की पतली-पतली शाखाएँ दातून के रूप में भी घर-घर प्रयोग की जाती हैं जिनके कीटाणु नाशक गुण के कारण मुँह की गन्दगी दूर हो जाती है। कुछ लोग नीम की पत्तियों को थोड़ा सुखाकर कपड़ों, किताबों और कागजों के भी बीच में रखते हैं, जिससे कीड़ों के लगने का भय नहीं रहता। अनेक गाँव में निर्धन और आदिम जातियाँ अब भी नीम के तेल का ही दीपक जलाती हैं।

प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महर्षि चरक तथा सुश्रुत के समय में भी लोगों को नीम के गुणों का ज्ञान था। उस समय भी नीम की पत्तियों, छाल और फलों को ओषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था। संस्कृत भाषा में सम्भवतः नीम के अरिष्ट और पिचुमर्द आदि नाम इसीलिए पड़े कि इसके द्वारा अनेक रोगों का संहार होता है। मुसलमान जब भारत में आये और उन्होंने नीम को स्थान-स्थान पर स्वतंत्र रूप में उगा हुआ देखा तो वे इसे आजाद-दरख्त-ए-हिन्द कहने लगे, जिसके कारण इसका नाम वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार एजेडिरेकटा इण्डिका (*azadirachta indica*) पड़ गया। यूनानी चिकित्सा विज्ञान के अनुसार नीम को शीत और शुष्क मानते हैं।

ओषधि के रूप में देशी तथा विदेशी दोनों ही चिकित्साओं में नीम का प्रयोग किया जाता है। नीम के तने और जड़ की छाल को विषम ज्वर और सामान्य दुर्बलता में देते हैं। नीम का तेल चर्म रोगों, गठिया, मोच आदि में लाभदायक सिद्ध होता है। चालुमुगुरा के तेल के साथ मिलाकर प्रयोग करने पर कोढ़ में भी लाभ होता है। नीम की नयी पत्तियों का रस रक्तशोधक होने के कारण, चर्म रोगों से रक्षा भी करता है। कीटाणुनाशक गुण के

विज्ञान-नीम

कारण नीम का साबुन (Digitized by eGangotri Foundation) जो हमारे आसपास ही होता है, एक अन्य नीम मैसूर फोड़ों के धोने में प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार आजकल कार्बोलिक साबुन का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार कुछ वर्षों पूर्व नीम के साबुन का प्रयोग होता था। नीम के पुष्प मन्दानि में लाभकारी होते हैं। नीम का गोंद बबूल के गोंद की भाँति ही शक्तिदायक होने के कारण खाने के काम आता है। ज्वर में नीम का उपयोग विदेशियों ने १८वीं शताब्दी से प्रारम्भ किया। इसका अध्ययन और प्रयोग करने वालों में फ्रा वारथोलेमो, सोनेरेट, गारसिया डी ओरटा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डा. कोरनिश तथा विण्डौर ने तो यह भी प्रमाणित किया है कि ज्वर को रोकने में नीम की छाल सिक्कोना तथा संखिया से भी अधिक सफल है। डा. फोर्ब्स ने भी १८५५ में यही निष्कर्ष निकाला था।

श्री सिद्दीकी ने १९४५ में नीम की निबौरियों और तेल का विश्लेषण किया जिससे ज्ञात हुआ कि इसमें निम्बीन (nimbin), निम्बीनीन (nimbinin) तथा निम्बीडीन (nimbidin) आदि एल्कोलाइड (alkoloid) होते हैं।

नीम के कुछ वृक्ष आज तक विज्ञान के लिए एक पहेली बने हुए हैं। इनमें से एक कोयमबदूर जिले के कोठानूर ग्राम में है। यह वरगद के वृक्ष पर उगा है। इसकी पत्तियाँ अन्य नीम के वृक्षों की भाँति कड़वी नहीं हैं। किन्तु इसी वृक्ष की निबौरियाँ पकने, सूखने और भूमि में गिरकर अंकुरित होने पर जिन अंकुरों को जन्म देती हैं उन सभी की पत्तियाँ

बेटा बाप से सवाया

तरुण गरुड़ पक्षी अपने माता-पिता (माता, पिता से कहीं बड़ा-चढ़ा होता है) से लम्बाई-चौड़ाई और वजन में प्रत्यक्षतः बढ़कर होता है। अवलोकनों द्वारा ज्ञात किया गया है कि आयु के बढ़ने के साथ-साथ अंग-प्रत्यंग, विशेषतः अस्थियाँ कुछ सिकुड़ती हैं और कठिन परिश्रम के फलस्वरूप शरीर कद और सार में कुछ घटता भी जाता है।

सितम्बर १९६३

राज्य के माण्डया ग्राम में है। इसकी कुछ शाखाएँ जो निकट के मंदिर की दीवार को छूती हैं, उनकी पत्तियाँ कड़वी नहीं हैं, किन्तु अन्य कड़वी हैं। दोनों ही अवस्थाओं के अब तक कोई वैज्ञानिक कारण नहीं ज्ञात हो सके।

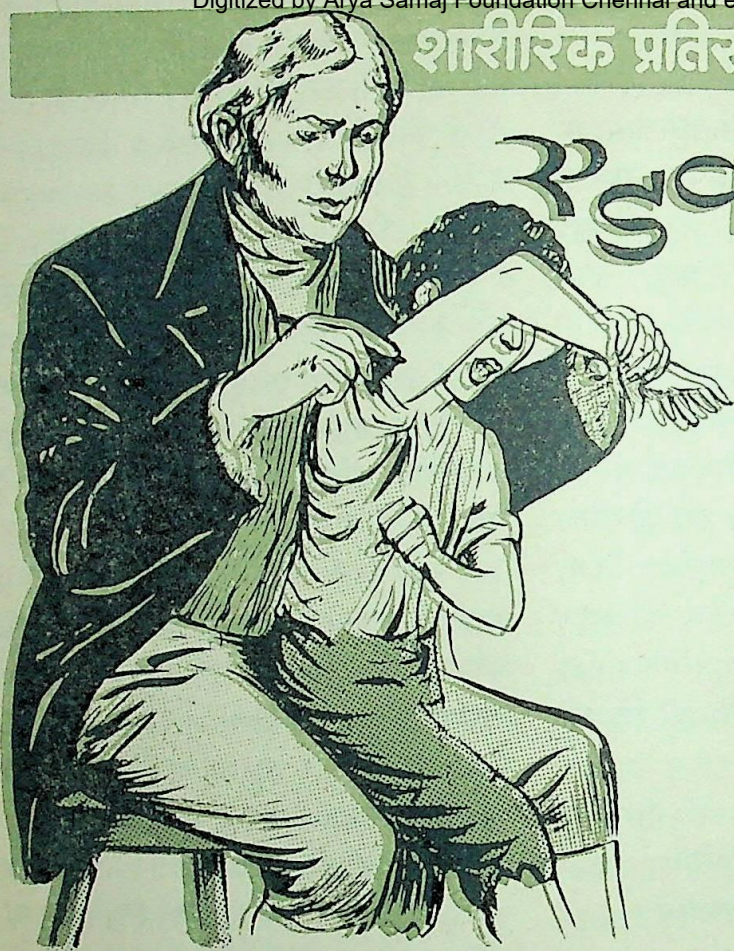
नीम वायु को शुद्ध भी करता है। पत्तियों की संख्या अधिक होने के कारण पर्णक्षेत्र (leaf area) अधिक होता है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण भी अधिक होता है और आक्सीजन अधिक मात्रा में निकलती है जिससे वायु शुद्ध होती है।

नीम के समान ही रूप वाला एक अन्य वृक्ष भी उत्तरी भारत में मिलता है जिसे बकायन (bakayan), महानिम्ब या मीलिया एजाडरेक (melia azadiarach) कहते हैं। यह भी उसी कुल का सदस्य है। नीम का अपेक्षा बकायन के वृक्ष, पत्ते तथा पुष्प बड़े होते हैं। विदेशी आक्रमणकारियों के साथ भारत में आने के कारण, आयुर्वेद में इसका अधिक उल्लेख नहीं मिलता। यह वृक्ष वास्तव में अरब और फारस का निवासी है। यूनानी ओषधि-विज्ञान के अनुसार बकायन गर्म और शुष्क होता है तथा इसको मिर्गी तथा सिर दर्द में प्रयोग करते हैं। छाल, पत्तियों या फल का रस अधिक मात्रा में बेहोशी उत्पन्न कर देता है।

नीम के रूप में इतने प्रभावशाली वृक्ष के अपने चारों ओर होते हुए भी यदि फोड़े-फुन्सियों, चर्मरोगों और मौसमी ज्वरों से हम पीड़ित रहते हैं तो यह हमारा अज्ञान है। ●

शारीरिक प्रतिरक्षा का मन्त्रदाता

रूडोल्फ जेनर



वीरेन्द्रकुमार

एक समय यूरोप में चेचक ने वही आतंक फैला रखा था जो प्लेग ने। १०वीं शताब्दी में भारत और मिस्र से आगे बढ़कर इस रोग ने यूरोप में प्रवेश किया। तत्पश्चात् ६००-७०० वर्ष तक इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगत नहीं हुआ। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस रोग ने यूरोप की जनसंख्या को आक्रांत कर दिया। उस समय जो व्यक्ति इस रोग द्वारा मरने से बच भी जाते तो उनके चेहरे तथा अन्य अंग विकृत हो ही जाते थे। तब प्रायः ही किसी अपराधीको खोजने के लिए यह पहचान दी जाती थी कि वह साफ चेहरे का है अथवा चेचक का साइनबोर्ड लिये हुए।

टीका लगवाना, बहुत पुरानी प्रथा

यह प्रथा भारत तथा मिस्र के लिए

पुरानी होते हुए भी इंग्लैण्ड के लिए सर्वथा नयी साबित हुई। इसका सर्वप्रथम परिचय कराने का श्रेय लेडी मेरी वर्टले (Lady Mary Wortley) को है जो उन दिनों तुर्किस्तान में स्थित ब्रिटिश राजदूत की पत्नी थीं। उन्होंने मध्य पूर्वी देशों में यह देखा था कि वहाँ के लोग सामूहिक रूप से शौकिया ही टीके लगवाते रहते थे। उन्हें देखकर तब तो यह आश्चर्य होता था

कि टीके लगवाने के पश्चात् वे स्वयं को चेचक से प्रतिरक्षित अनुभव कर लेते थे।

लेडी वर्टले ने इंग्लैण्ड निवासियों को इस रोग के आतंक से मुक्त कराने तथा टीके के प्रति विश्वास स्थापित कराने के लिए सबसे पहले अपने बच्चों को टीके लगवाए और तत्पश्चात् राजघराने में भी प्रवेश करके राजकुमारी को इसके लिए राजी कर लिया। राजकुमारी इसके लिए सहज ही तैयार नहीं हुई। पहले उसने बन्दीगृह से ६ बन्दियों को इस प्रयोग के लिए तैयार किया और प्रयोग सफल हो जाने की खुशी में पुरस्कारस्वरूप उन्हें मुक्त भी कर दिया।

जेनर का प्रवेश और चिकित्सा में क्रांति
१७ मई १७४६ को बर्कले (इंग्लैण्ड) में विज्ञान-जीव

हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् जेनर ने डैनियल लडलो (Daniel Ludlow) नामक सर्जन के यहाँ चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन शुरू किया। शीघ्र ही १७७० में जेनर लन्दन चला आया और वहाँ डा. ज़ॉन हण्टर (Dr. John Hunter) के शिष्य होने का गौरव प्राप्त किया। उसी के अन्तर्गत उसे मुख्यतः भिन्न-भिन्न प्राणियों के नमूने संकलित करने का काम सौंपा गया। अन्य कार्यों में व्यस्त रहने पर भी जेनर की जिज्ञासा टीके लगाने की परिमार्जित और अधिक वैज्ञानिक विधि खोजने के प्रति बनी ही रही।

टीके लगाने की उन दिनों की प्रचलित तथा उलभी मान्यताओं को सुलभाने की दिशा में जेनर के प्रयोग बराबर चलते रहे। १७७५ में अनेक प्रयोगों के पश्चात् उसने यह निश्चित रूप से ज्ञात कर लिया कि बड़ी चेचक (COW-POX) स्वयं में दो रोगों का मिश्रण होती है जिनमें से केवल एक के रोगाणु छोटी चेचक (smallpox) के लिए निरोधक हो सकते हैं। इससे एक यह रहस्य स्वतः खुल गया कि बड़ी चेचक के टीके द्वारा प्रतिरक्षित हो जाने पर भी कभी-कभी असफलता क्यों खड़ी हो जाती है। जेनर ने यह भी ज्ञात किया कि बड़ी चेचक के रोग की एक निश्चित अवस्था पर ही उसका टीका लगाया जाए तो छोटी चेचक के प्रति सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है

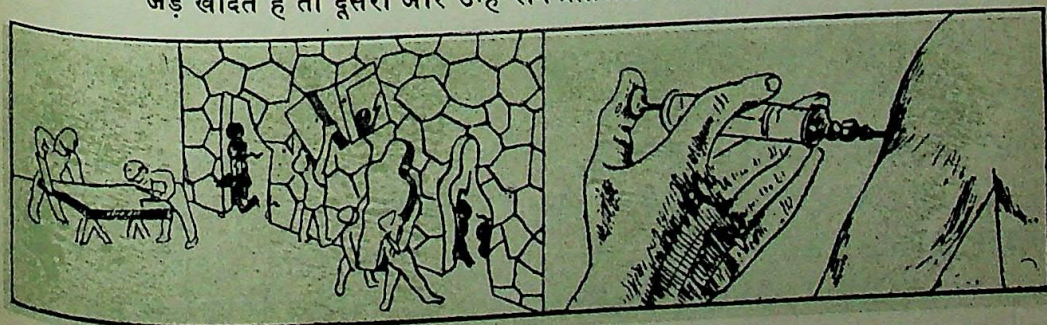
ऐतिहासिक प्रयोग

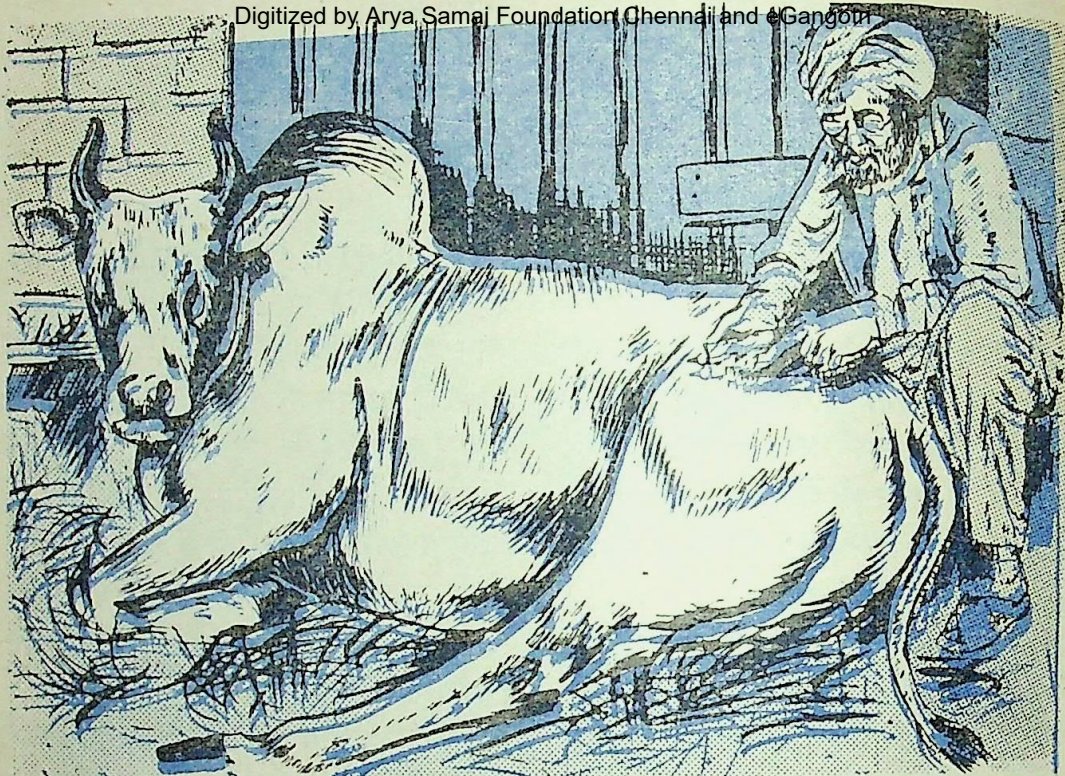
अपने प्रयोगों को प्रदर्शन द्वारा सिद्ध करने के लिए जेनर को ऐसे साधन उपलब्ध नहीं थे जिनसे बड़ी चेचक का टीका सहज ही उपलब्ध हो सके। वह यह देखकर तो चकित रह जाता था कि ग्वाले अपनी गायों को दुहते समय प्रायः ही बड़ी चेचक से ग्रसित हो जाते थे, किन्तु वे प्रथम ही बार रोगाक्रान्त होकर तत्पश्चात् सदैव के लिए इस रोग के प्रति सुरक्षित हो जाते थे। उन लोगों में यह मान्यता इतनी प्रबल थी कि वे रोगी के कपड़े-लत्तों को एकबार पहन-ओढ़ लेते थे ताकि कम से कम एकबार चेचक से आक्रान्त हो जाएँ और तत्पश्चात् आगे के लिए मुक्ति पा जाएँ।

उन्हीं लोगों में जेनर ने एक यह विशेषता भी देखी कि जहाँ सामान्यतः अन्य अरक्षित व्यक्ति चेचक से या तो प्राण गँवा देते थे अथवा चेहरे से कुरूप, दृष्टिहीन तथा विकलांग तक हो जाते थे, वहाँ वे ग्वाले अच्छे होने पर शरीर और रूप-स्वरूप से पूर्ववत् हो जाते थे।

अन्ततः योग्य पात्र की खोज में लगे हुए जेनर को सारा नेम्स (Sarah Nelmes) नामक एक ग्वालिन मिल ही गयी जो बड़ी चेचक से ग्रस्त थी। जेनर ने भरपूर सावधानी से उसके शरीर से चेचक के रोगाणु की अल्प मात्रा लेकर १४ मई १७७६ को जेम्स फिप्स

इस प्रतीकात्मक चित्र में प्रदर्शित है कि यदि एक ओर चेचक के रोगाणु शरीर रूपी भवन की जड़ खोदते हैं तो दूसरी ओर उन्हें रोग-प्रतिरोधक भी बनाया जा सकता है





पशुओं को भी रोग-निरोधक बल देने के लिए टीका लगाना आवश्यक है

(James Phipps) नामक एक आठ वर्षीय बालक के टीका लगाया। वह ऐतिहासिक प्रयोग पूर्णतः सफल रहा किन्तु जनसाधारण को फिर भी इस पर एकाएक पूर्ण आस्था न हो सकी और काफी समय पश्चात् तक जेनर को वैसे प्रयोग दोहराने का पुनः अवसर न मिला।

शान्ति छोड़ी, व्यस्तता अपनायी

नैसर्गिक सौन्दर्य के उपासक, कुशल संगीतज्ञ और चेचक-चिकित्सा के अन्वेषक डा. जेनर ने सोचा कि मानव-कल्याण के लिए शान्त जीवन छोड़कर व्यस्तता और संघर्ष को अपनाना आवश्यक है और यह भी कि चेचक-टीके के अपने सफल प्रयोगों को अधिक से अधिक प्रचारित करना चाहिए। अपने इस संकल्प की पूर्ति हेतु जेनर जी-जान से जुट गया और अवरोधों तथा असफलताओं से विचलित न होता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही गया।

१८०३ में जेनर के प्रशंसकों, समर्थकों

के प्रयत्न से लन्दन में रायल जेनेरियन सोसाइटी स्थापित की गयी। उस सोसाइटी का प्रमुख उद्देश्य टीकों के प्रचार द्वारा चेचक-उन्मूलन था। प्रारम्भिक डेढ़ वर्ष में ही जेनर की विजय-पताका फहरा उठी और विपक्षियों के समस्त विरोध यह देखकर समाप्त हो गये कि उतने अल्प समय में ही १२००० व्यक्तियों को टीके लगाए जाने के फलस्वरूप मृत्यु संख्या २०१८ से घटकर ६२२ रह गयी। शीघ्र ही जेनर की वह छोटी-सी संस्था राष्ट्रीय संस्था बन गयी।

मन्दगामी किन्तु स्थायी ख्याति

जेनर का जीवन अपने उत्तरकाल तक अत्यन्त संघर्षमय तथा घोर परिश्रमी रहा। उसने ख्याति प्राप्त करने की न कभी लालसा रखी और न ही कभी स्पर्धा की। जनसाधारण ने शारीरिक प्रतिरक्षा के उस मन्त्रदाता को बहुत देर से पहचाना। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने

[शेष पृष्ठ ३६ पर]

विज्ञान-लोक

अंतर्राष्ट्रीय शान्त-सूर्य-वर्ष

हरीश अग्रवाल

इस समय संसार के अनेक देश एक नये अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष की तैयारी कर रहे हैं, जिसका नाम इस बार अंतर्राष्ट्रीय शान्त सूर्य वर्ष (International Year of the Quiet Sun—IQSY) रखा गया है। यह वर्ष दो वर्ष का होगा और १ जनवरी १९६४ से ३१ दिसम्बर १९६५ तक मनाया जाएगा। अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष १ जुलाई १९५७ से ३१ दिसम्बर १९५८ तक मनाया गया था। शान्त सूर्य वर्ष नाम इसलिए रखा गया है कि इन दो वर्षों में सूर्य में बहुत कम गतिविधि होगी और वैज्ञानिकों को सूर्य का अच्छी तरह से अध्ययन करने का अवसर मिलेगा। इस अवधि में पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल पर सूर्य का प्रभाव भी न्यूनतम होना चाहिए, इसलिए कम चुम्बकीय तूफान आएंगे, उत्तरी ज्योतियाँ कम दिखायी देंगी और अयनमंडल में गड़बड़ी भी कम होगी।

अंतर्राष्ट्रीय शान्त सूर्य वर्ष का प्रमुख उद्देश्य सूर्य का प्रभाव उस समय पृथ्वी और अन्तरग्रही अवकाश पर देखना है जब इसमें सबसे कम गतिविधि होती है। इस कारण इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्हीं भू-भौतिक घटनाओं का अध्ययन किया जाएगा जो सौर-गतिविधि से निकट रूप से सम्बन्धित होंगी। ये घटनाएँ अनेक हैं, जैसे अंतरिक्ष किरणों, उत्तरी ज्योतियाँ, पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र और पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल, विशेषतः

अयनमंडल पर अनेक प्रभाव।
सूर्य कलंक

वैज्ञानिक लगभग सौ वर्ष से सूर्य की गतिविधि का मापदण्ड मानते आये हैं और यह उल्लेखनीय है कि गतिविधि ११ वर्ष के चक्र के अनुसार होती है। वैज्ञानिक अभी तक इस चक्र का रहस्य नहीं जान पाये हैं। जब सूर्य कलंकों की गतिविधि न्यूनतम होती है तो सूर्य को शान्त कहा जाता है।

लेकिन जब सूर्य उत्तेजित होता है तो इसकी गतिविधि बढ़ जाती है। इसका प्रकोप पृथ्वी पर बरसता है और रेडियो संचार में बाधा पड़ती है, पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र डोल जाता है, कुतुबनुमाओं की सुइयाँ डगमगाने लगती हैं तथा तार और टेलीफोन संचार में बाधा पड़ने लगती है।

इसी सूर्य-प्रकोप के समय सूर्य से ज्वालाएँ निकलती हैं और कणों की वर्षा होती है। ये कण किस प्रकार कहाँ गिरफतार हो जाते हैं, सूर्य के पास या पृथ्वी के पास, यह बात अभी तक एक रहस्य बनी हुई है। शान्त सूर्य वर्ष में इस रहस्य का पता लगाने का प्रयत्न किया जाएगा।

अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के दौरान अमरीकी उपग्रहों से पृथ्वी के चारों ओर विकिरण पट्टियों का पता चला था, जिन्हें वान एलन पट्टियाँ कहते हैं। इन पट्टियों का विकिरण अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए खतरनाक

दिसम्बर १९६३

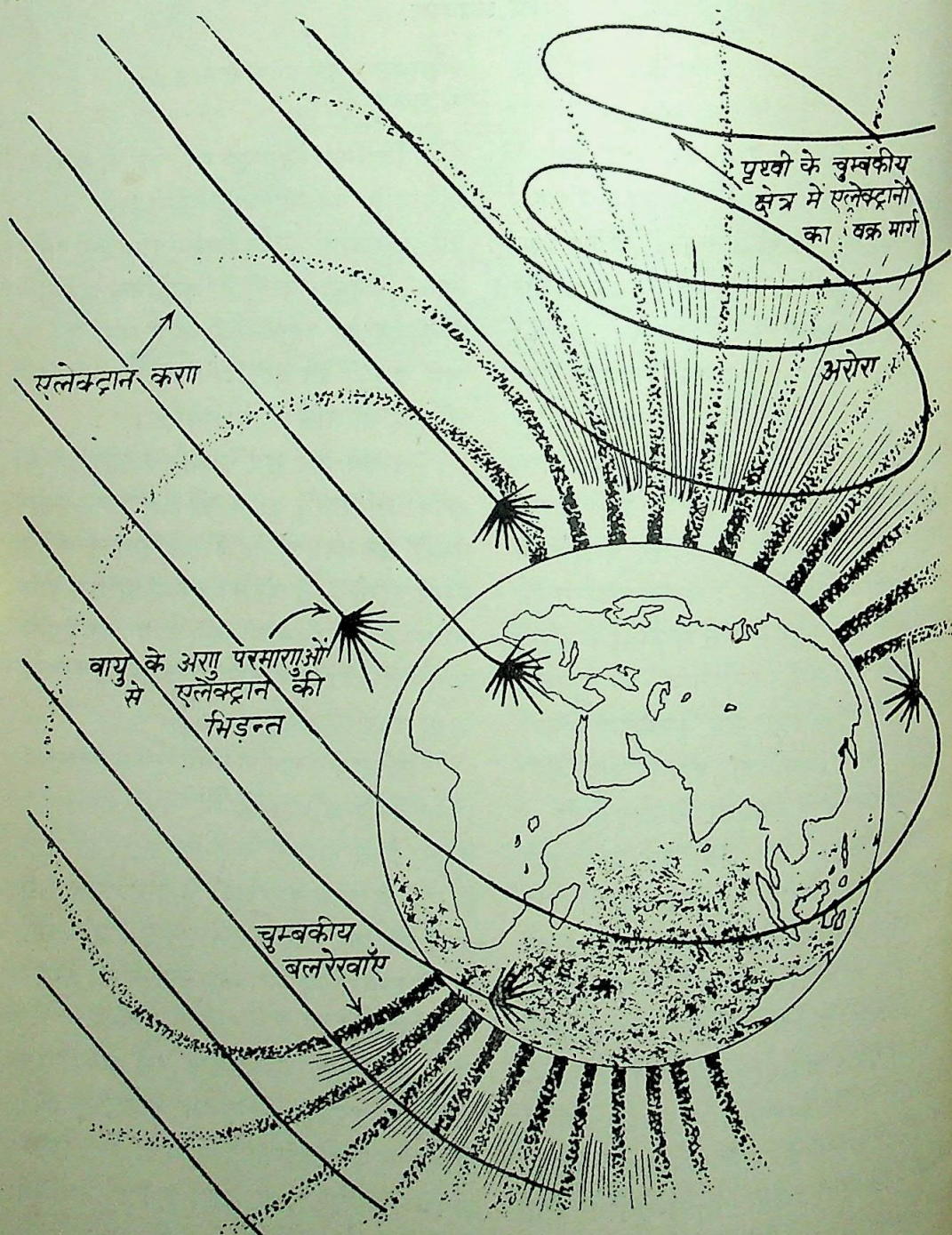
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है। ५० से लेकर १५० मील की ऊँचाई तक पृथ्वी के वायुमंडल पर सूर्य के अल्ट्रावायलेट तथा एक्स-रे विकिरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी के कारण रेडियो का प्रसारण एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को

संभव हो गया है।

शान्त सूर्य वर्ष के दौरान पृथ्वी से १५ से ३५ मील की ऊँचाई तक का वायुमंडल राकेटों से निरंतर भेदा जाएगा। अमरीका की तीनों सेनाओं की एजेंसियाँ और अमरीकी

सूर्य के आवेशित होने पर उसके इलेक्ट्रान-कणों की पृथ्वी पर बौछार



विज्ञान-लोक

जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

अमरीका की अंतरिक्ष एजेंसी चन्द्रमा पर तथा शुक्र और मंगल ग्रहों के पास बिना मानव के उपग्रह भेजेगी।

भारतीय कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष के लिए भारतीय कार्यक्रम गत वर्ष ही तय हो गया था। इसके लिए एक विशेष समिति बनायी गयी है। भारतीय कार्यक्रम इन क्षेत्रों में बांटा गया है।

मौसम विज्ञान—यह हिन्द महा-सागर अभियान से सम्बद्ध है और इसके अंतर्गत वायुमंडल की जाँच-पड़ताल के लिए ऊँचाई तक गुब्बारे छोड़े जाएँगे और नियमित विश्व दिवसों तथा विशेष भू-भौतिक इंटरवलों पर मौसम सूचक राकेट छोड़े जाएँगे।

अयनमंडल—अहमदाबाद, त्रिवेन्द्रम, वाल्टेयर और दिल्ली के ऊपर अयनमंडलीय नाप-जोख होगी। इनके अतिरिक्त कलकत्ता और कोडाईकनाल से गुब्बारे छोड़े जाएँगे।

सौर-गतिविधि—कोडाईकनाल से टेलि-स्कोप द्वारा सूर्य का अध्ययन किया जाएगा;

सूर्य कलंक का एक चक्रवात



सूर्य का प्रभामण्डल

मौसम विभाग के वैज्ञानिक इस कार्यक्रम में भाग लेंगे। इस क्षेत्र के वायुमंडल में ओजोन की मात्रा भी मालूम की जाएगी, आंशिक रूप से उन उपग्रहों से, जिनके यंत्र पृथ्वी की ओर केन्द्रित होंगे।

इनके अतिरिक्त अमरीका ध्रुवीय क्षेत्रों तथा समुद्र में खड़े जहाजों से वायुमंडलीय राकेट छोड़ेगा। कुछ राकेटों में विस्फोटक पदार्थ होंगे जो ७० मील की ऊँचाई तक जाएँगे, जिससे ध्वनि तरंगों के द्वारा अधिक ऊँचाइयों पर हवाओं की रफतार मालूम की जा सकेगी वैज्ञानिकों को आशा है कि इस सूचना से मौसम की सही भविष्यवाणी में सहायता मिलेगी, दूर संचार में आनेवाली बाधाओं से रक्षा हो सकेगी, अंतरिक्ष यात्राओं के खतरों को अच्छी तरह समझा जा सकेगा और पृथ्वी के सम्बन्ध

दिसम्बर १९६३

कोडाईकनाल, अहमदाबाद और दिल्ली में सौर रेडियो गड़बड़ी का अध्ययन होगा और अहमदाबाद और दिल्ली में सौर-विकिरण का अध्ययन होगा।

अन्तरिक्ष-अनुसंधान—अन्तरिक्ष किरणों और अन्तरिक्ष का अनुसंधान किया जाएगा। ये अध्ययन अहमदाबाद, कोडाईकनाल, नैनीताल और दिल्ली में होंगे।

भारतीय कार्यक्रम में आंध्र विश्व-विद्यालय, बोस इंस्टीट्यूट, कलकत्ता, ज्योडे-टिक एण्ड रिसर्च ब्रांच, सर्वे आफ इंडिया, देहरादून, भारतीय मौसम विभाग, नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी, फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद, पूना विश्वविद्यालय, टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई तथा उत्तर प्रदेश राजकीय वैधशाला, नैनीताल भाग लेंगे।

पिछली गर्मियों में पेरिस के यूनेस्को हाउस में अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष के लिए एक समिति बनायी गयी थी। इस समिति

के प्रधान ब्रिटेन के प्रो. वेनन के अनुसार शांत सूर्य वर्ष का उद्देश्य बदली परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में किये गये प्रयोगों को दोहराना ही नहीं है, बल्कि कुछ मूलभूत खोजें भी करना है।

अमरीका के एक वैज्ञानिक डा. ओडीशा से एक पत्रकार ने पूछा “इन सब कार्यक्रमों का व्यावहारिक प्रयोग क्या है?”

डा. ओडीशा ने उत्तर दिया, “ज्ञान की खोज ही अपने में एक उचित और व्यावहारिक लक्ष्य है। विज्ञान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि नये ज्ञान की प्राप्ति के बाद ही उसे व्यवहार में लाना सम्भव होता है।”

अंतर्राष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष में किये जाने वाले वैज्ञानिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण मानव के कल्याण के लिए एक नया संदेश लाने वाले हैं। मानव पृथ्वी और उसके चारों ओर के वातावरण को अच्छी तरह समझ सकेगा और इस जानकारी को व्यवहार में ला सकेगा।

एडवर्ड जेनर

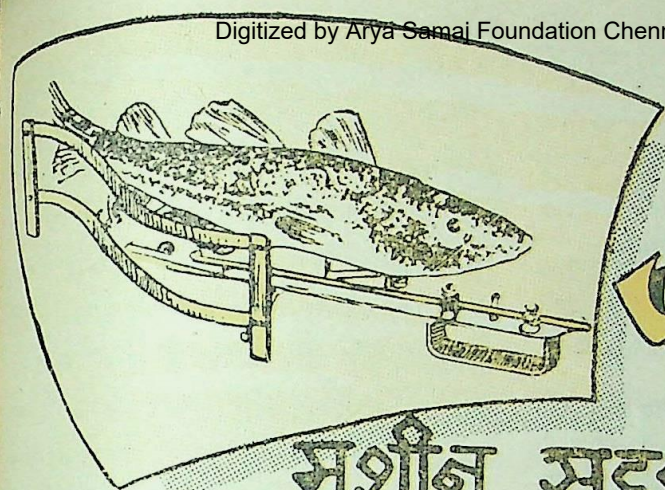
[पृष्ठ ३२ का शेष]

चारों ओर की सिफारिशों और प्रशंसा के फल-स्वरूप प्रारम्भ में जेनर को १०,००० पौण्ड की वार्षिक सहायता प्रदान की। जेनर उसके सदुपयोग स्वरूप नित्यप्रति ३००-४०० गरीबों को निःशुल्क चेचक के टीके लगाता रहा। क्रमशः वह सहायता २०,००० और ३०,००० तक बढ़ा दी गयी। भारत की ओर से भी लगभग ७,४०० पौण्ड की सहायता दी गयी।

चेचक-उन्मूलक टीकों का इतना प्रचार

बढ़ा कि शहर-शहर और गाँव-गाँव में हजारों व्यक्ति सामूहिक रूप से टीके लगवाने लगे। इसके अतिरिक्त, टीके लगाने वालों के दल के दल जहाजों द्वारा भी समुद्र-पार देशों में दूर-दूर गये। १८१३ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने जेनर को M.D. की उपाधि प्रदान की। १८१४ में उसने लन्दन की यात्रा की। जनवरी १८२३ में मानव को उसके महानतम शत्रु चेचक से मुकाबला लेने योग्य और जीतने योग्य बनाने वाले एडवर्ड जेनर की मृत्यु हो गयी।

विज्ञान-स्रोत



जन्तु

मशीन सदृश चलते हैं

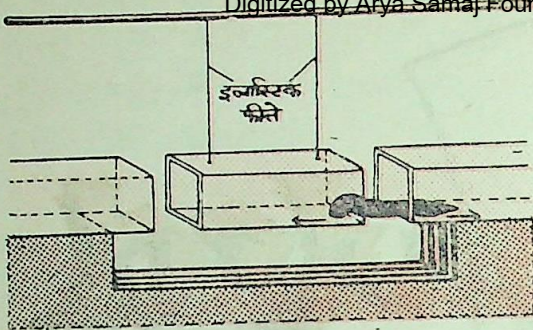
डा. महेश्वरसिंह सूद

चलना जन्तुओं की एक विशेषता है। जितनी भी मशीनें या इंजन बनाये गये हैं वे सब जन्तुओं के चलन को देखकर ही बनाये गये हैं। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म दृष्टि से जन्तुओं के चलने को परखा और उससे प्राप्त ज्ञान के आधार पर स्वचालित मशीनें बनायीं। जन्तु और मशीन में अन्तर केवल इतना रहता है कि जन्तु स्वयं गति करता है जबकि मशीन को शक्ति देनी पड़ती है। जन्तु जिन विभिन्न परिस्थितियों में रहते हैं उसी के अनुसार उनमें चलन या गति करने की विधि होती है; जैसे भूमि पर रहने वाले रेंगते हैं, उछलते हैं, कूदते हैं, चलते हैं या दौड़ते हैं। ऐसे समस्त जन्तुओं को भूमिचर कहा जाता है। कुछ वायु में उड़ते हैं उनको वायुचर कहते हैं। कुछ पानी में तैरते हैं उन्हें जलचर कहा जाता है। देखने में सभी जन्तुओं में चलन भिन्न प्रकार का प्रतीत होता है पर वास्तव में गति करने का सिद्धान्त सबका एकसा ही है।

यदि जन्तु को विधिपूर्वक चलन करना है तो उसको मोटरकार के इंजन के समान कार्य करने वाले अंग चाहिए अर्थात् उनमें इंजन होना चाहिए, चाल देने के लिए चलाने वाले इंजन का अन्य पुर्जों से मिलान होना

चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर रोकने के लिए ब्रेक होना चाहिए। यदि ऐसी मोटरकार को हम चलाना चाहें जिसका इंजन कुछ देर के लिए बन्द हो गया हो या कर दिया गया हो तो वह समतल स्थल पर तभी हिलेगी जबकि उसको आगे या पीछे से धक्का दिया जाएगा। ऐसी मोटरकार को आगे बढ़ाना तभी सम्भव हो पाता है जबकि हम समान बल तथा विपरीत दिशा में अपने पाँव के बल से भूमि पर धक्का देते हैं और ऐसा करने में हम जिस शक्ति से पीछे धक्का देते हैं उस गति से कार आगे को बढ़ती है। यह धक्का देना शक्ति देना होता है। मोटरकार जड़ वस्तु है। यदि उसे शक्ति न दी जाए तो वह गति नहीं कर सकती। वैज्ञानिक भाषा में हम यह कह सकते हैं कि मोटरकार में निश्चलता (inertia) होती है और इस निश्चलता को बाह्य शक्ति से जीता जाता है। धक्का कार को चलाने की शक्ति देता है और कार उस समय तक चलती रह सकती है जब तक इस शक्ति के विरुद्ध दिशा में दूसरी शक्ति न लगायी जाए। ऐसी शक्ति कार में पहियों और जमीन के बीच में रगड़ से आती है। जब हम रुकी हुई कार के इंजन

दिसम्बर १९६३



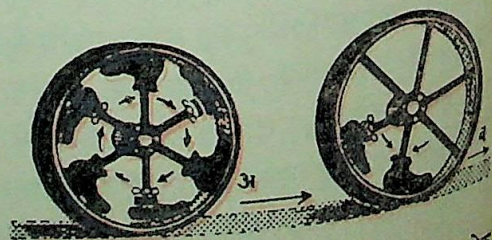
उपरोक्त प्रयोगपात्र जोंक आगे बढ़ने के लिए अपने पृष्ठ भाग के नीचे लगे नन्हे चूषक अंग (sucker) को भूमि पर दबाते समय कितना बल लगाती है, यह इलास्टिक फीतों के खिंचाव से ज्ञात कर लिया जाता है

को स्विच खोलकर, गीयर में डालकर स्टार्ट करते हैं तब कार आगे की ओर बढ़ जाती है। बिल्कुल यही सिद्धान्त, जब हम हाथ से धक्का देते हैं, काम में आता है। केवल हमारे हाथ और पाँव पहियों और धुरी का स्थान ले लेते हैं। पीछे के पहिये पृथ्वी पर पीछे की ओर दबाव डालते हैं जिससे कार आगे की ओर बढ़ती है। यदि किसी प्रकार पिछले पहियों को ऊपर उठाकर स्वतन्त्रता से घूमने दिया जाए तो कोई आगे की ओर फेंकने वाला दबाव उत्पन्न नहीं होगा और इससे मोटरकार आगे की ओर नहीं बढ़ेगी। इस तथ्य को हम एक साधारण प्रयोग से सिद्ध कर सकते हैं और इससे यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि मनुष्य या जन्तु का चलन भी इसी मोटरकार की तरह होता है। एक चबूतरा स्प्रिंगों से लगा हुआ बना लें और उस पर बिजली से चालित होने वाली एक कार का मॉडल इस प्रकार रख लें कि उसका अगला पहिया तो स्थिर चबूतरे पर हो और पिछला पहिया स्प्रिंगों से लगे चबूतरे पर। फिर इसको चालित करें तो देखेंगे कि जब मोटरकार आगे को चलती है तो स्प्रिंग से लगा हुआ चबूतरे का भाग पीछे को खिसकता है। आगे की ओर बढ़ाने वाली शक्ति बिल्कुल पीछे को ढकेलने वाली शक्ति के

यदि यही प्रयोग कार के स्थान पर मनुष्य या जन्तु को लेकर किया जाए तो यही सिद्ध होगा कि जन्तु भी आगे की ओर पीछे को धक्का देकर ही गति करता है। भूमिचर पृथ्वी पर पीछे की ओर बल लगाकर आगे की ओर बढ़ता है, जलचर भी पानी को पीछे की ओर धकेल कर आगे की ओर बढ़ता है तथा वायुचर वायु को पीछे की ओर धकेलकर आगे की ओर बढ़ता है। प्रत्येक दशा में जन्तु को आगे की ओर बढ़ाने वाला बल जन्तु द्वारा पीछे की ओर धक्का लगाने की शक्ति के बिल्कुल बराबर होता है।

कार में, पानी के जहाज में, वायुयान में, सब में धरातल या स्थल के विरुद्ध पीछे की ओर दबाव एक ही प्रकार के यंत्र से उत्पन्न किया जाता है जिसको पंखा (propeller) कहते हैं। जिस प्रकार स्वचालित यानों में जहाज या हवाई जहाजों को आगे बढ़ाने वाला पंखा सबसे आवश्यक भाग होता है उसी प्रकार जन्तु भी स्वचालित होने के कारण अपने में पंखानुमा आकृति रखते हैं, जो जन्तु को आगे चलाता है। वे आकृतियाँ जन्तुओं में आसानी से पहचानी जा सकती हैं—जैसे कुत्ते की टाँग या पक्षियों के पंख। कुत्ते की टाँगें शरीर पर इधर-उधर गोलाई में घूमती हैं

यदि (अ) पहिये की छह तानों (spokes) को छह पाँव मान लें तो पहिये को गति देने के लिए एक बार एक ही पाँव बल लगाता है और उसके हटने से पूर्व ही दूसरा उसका स्थान लेने आ जाता है। वही प्रयोजन (ब) पहिये के अनुसार मानव के दो पाँवों द्वारा सिद्ध हो जाता है



विज्ञान-ब्लॉक

और ये टांगें जमीन पर विपरीत दबाव डालती हैं जिससे कुत्ता आगे की ओर गति करता है। इसी प्रकार पक्षियों के पंख भी ऊपर नीचे होते रहते हैं और हवा को विपरीत दिशा में दबाते रहते हैं जिससे पक्षी आगे की ओर बढ़ते हैं। किन्हीं-किन्हीं जन्तुओं—घोंघा आदि—में यह अंग इतना स्पष्ट नहीं होता जैसा कि कुत्ते या पक्षियों में। फिर भी यदि ध्यान से देखा जाए तो पता चलेगा कि जब घोंघा गता है तो उसके कुछ भाग पृथ्वी पर जमे रहते हैं तथा कुछ भाग गति करते हैं जिससे विपरीत दिशा में दबाव उत्पन्न हो जाता है। समस्त जन्तु अपनी शक्ल बदलकर और पीछे की ओर धकेलकर ही चल पाते हैं अथवा यों कहा जाए कि इन दोनों नियमों का पालन करके ही जन्तु चलन कर पाते हैं।

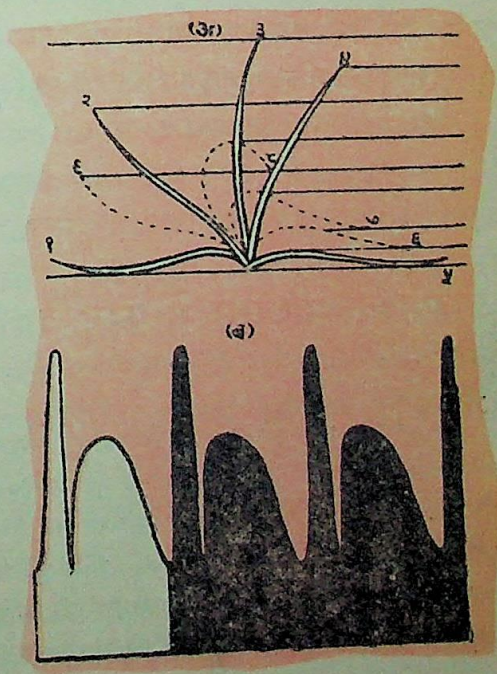
जन्तुओं को आगे बढ़ाने वाले अंगों में तथा यानों के पंखों में विभिन्नता थी। अब जेट विमानों में यह भिन्नता भी समाप्त हो गयी है। उनमें पीछे की ओर सीधा धक्का लगता है। प्रकृति में यदि यह आकृति वृत्त में घूमने वाली ही होती तो शरीर के अन्दर जो रक्त नलिकाएँ या नाड़ियाँ होती हैं वे लगातार बल खाने से टूट जातीं। अतः प्रकृति कभी भी पहियानुमा आकृति नहीं रखती बल्कि उसने उत्तोलकों (levers) का सहारा लेकर इस कार्य को पूरा किया है। ये ऊपर-नीचे, अगल-बगल घूम सकते हैं, परन्तु कभी भी पूर्ण वृत्त में नहीं घूमते। देखने में तो धुरी में लगा हुआ पहिया और उत्तोलक अलग-अलग दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में धुरी में लगा पहिया उत्तोलकों या आरों (spokes) का बना होता है जो एक-दूसरे के बाद क्रमशः काम में आते हैं।

पहिये के समान जन्तुओं की टांगें भी कार्य करती हैं। टांगें अपने अर्ध छोर पर उसी प्रकार घूमती हैं जैसे कि पहिया अपनी धुरी पर।

पहिये के आरे और टांगों में केवल इतना अन्तर रहता है कि टांग कूल्हे की सन्धि पर जब उठी होती है, आगे की ओर घूमती है तथा जब पृथ्वी पर होती है तो पीछे की ओर घूमती है। पहिये के आरे सदैव एक ही दिशा में घूमते हैं। यांत्रिक रूप से दोनों में घूमने वाला प्रभाव समान होता है।

यदि हम किसी ऐसे जन्तु को जैसे कनखजुरा, जिसमें टांगों की संख्या अत्यधिक होती है, चलते हुए देखें तो पता चलेगा कि प्रत्येक टांग तभी ऊँची जाती है जबकि दूसरी पृथ्वी पर आ जाती है। बहुधा प्रश्न पूछा जाता है कि कनखजुरा पहले अपनी कौनसी टांग उठाता है। इसका उत्तर है कि उसकी सब टांगें पहिये के आरों की तरह साथ ही उठना शुरू करती हैं परन्तु जन्तु का नाड़ी मण्डल उसको इस प्रकार नियंत्रित कर लेता है कि एक के उठने पर ही दूसरी टांग पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि

शरीर के रोंयें पवन-भूकोरे में किस प्रकार आगे-पीछे की गति का आभास कराते हैं, वह इस चित्र में प्रदर्शित है। १ से ५ तक अग्र गति और ६ से ९ तक पृष्ठ गति प्रदर्शित है



मनुष्य दो, कुत्ता आदि चार, पतंगे आदि छह मकड़ी आदि आठ तथा कनखजूरा या काँतर आदि अनेक पाँवों के सहारे चलते हैं।

जन्तुओं में उत्तोलकों का स्थान हड्डियाँ लेती हैं तथा शक्ति प्रदान करने का कार्य मांसपेशियाँ। मांसपेशियाँ सामान्य रूप से लोथड़ेनुमा होती हैं परन्तु नाड़ी-तन्तुओं के प्रभाव से इतनी सख्त और शक्तिशाली हो जाती हैं कि अनुमान लगाना कठिन है। मांसपेशियों का कार्य जन्तु की टाँगों को इधर-उधर हिलाना होता है। हड्डियाँ सामान्य रूप से उत्तोलकों का कार्य करती हैं। यंत्र-शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के उत्तोलक होते हैं परन्तु प्राणीविज्ञान के लिए यह मान लेना पर्याप्त होगा कि मांसपेशियों और हड्डियों में एक ही चूल से यह कार्य सम्पन्न हो जाता है। विभिन्न परिस्थितियों में शरीर के उत्तोलकों का स्वरूप भी परिवर्तनशील होता है। जब हम अपने समस्त शरीर को अपने पाँव की उँगलियों पर पिण्डलियों की मांसपेशियों द्वारा उठाते हैं तो उँगलियाँ शक्ति बिन्दु बनाती हैं, वजन टखने की सन्धि पर आता है तथा शक्ति पिण्डलियों की मांसपेशियों से एड़ी के खिचाव से बनती है। यंत्र-शास्त्र के अनुसार इस प्रकार का उत्तोलक द्वितीय श्रेणी का होता है। यदि

यह बड़ा कनखजूरा ४०० से अधिक पाँवों युक्त है फिर भी एक बार में एक से अधिक पाँव भूमि को स्पर्श नहीं करता। यह क्रम द्रुत गति का होने के कारण प्रतीत होता है कि अनेक पाँव एक साथ स्पर्श कर रहे हैं। एड़ी की सन्धि को स्थिर करके उँगलियों और एड़ी को स्वतन्त्र रूप से घूमने वाला कर दिया जाए तो पिण्डलियों की मांसपेशियाँ पाँव को प्रथम श्रेणी के उत्तोलकों की तरह घुमायें हैं।

चलन में जन्तु और मशीन की तुलना को और आगे देखा जाए तो पता चलता है कि जन्तु अपनी शक्ति को जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही काम लाता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे इंजन में शक्ति को थ्रोटल (throttle) नियंत्रित करता है। यह नियंत्रण शक्ति मांसपेशियों को काम में लाने से आ जाती है। इस प्रकार केन्द्रीय नाड़ीमण्डल तो संचालक या ड्राइवर होता है और उससे संलग्न नाड़ियों का काम इंजन के शक्ति नियंत्रक की तरह होता है। मस्तिष्क समस्त प्राण संवेदनाओं के आधार पर कार्य करता है। जन्तु तथा मशीन एक ही प्रकार से चलन करते हैं।

आमरिका के माध्यम से फोन वार्ता

अमरीका-द्वारा प्रक्षेपित 'सिनकौम' संसार का वह प्रथम भू-उपग्रह है जो पृथ्वी का सहगामी है अर्थात् पृथ्वी के साथ ही २४ घण्टे में एक परिक्रमा पूरी करता है। जब वह ब्राजील के ऊपर २२,३०० मील की ऊँचाई पर परिक्रमा कर रहा था तब ३० मिनट के लिए उससे सम्पर्क साधकर अमरीका के भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट स्व. केनेडी ने ६००० मील दूर नाइजीरिया के प्रधान मन्त्री अबूबकर से टेलीफोन पर संदेश प्रसारित किया था—'व्हाइट हाउस' से आपके साथ बातचीत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है। सिनकौम के माध्यम से उक्त वार्ता को लगभग ४५,०००, मील की दूरी तय करनी पड़ी थी।

विज्ञान-सौक्य

उसके धुलकर रहे जाँगी । उसके धुल जाने से कपड़ों की सफाई में कोई अन्तर भी नहीं पड़ेगा ।

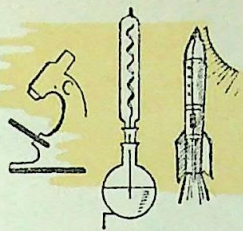
कागज अभी का, अभी नहीं !

बहुधा इस बात की आवश्यकता पड़ जाती है कि नाप-तोलकर बाँधे हुए दवाओं, रंगों तथा खाद आदि के पैकेट बगैर खोले ही काम में ले लिये जाएँ । इस प्रयोजन के लिए अमरीका की गिलब्रेथ (Gilbreth) कम्पनी ने ऐसा कागज बनाया है जो पानी में पलक मारते ही धुल जाता है । यह कागज इतना मजबूत है कि हर प्रकार की सीलन खिंचाव तथा बल को सहन कर सकता है । यह कागज उनके लिए वरदान स्वरूप है जो संकट सामने देखते ही अपने दस्तावेजी सबूतों को नष्ट कर देना चाहते हैं । ऐसे दस्तावेज पानी में डुबोने की देर है, सेकण्डों में थे न थे हो जाएँगे ।

युग्मी श्रॉन्ग की नयी पुतलियाँ

श्रॉन्गों में नयी पुतलियाँ बिठाने के यद्यपि अनेक प्रयोग प्रचलित हैं किन्तु शत-प्रतिशत सफलता अभी बाकी ही है क्योंकि जल्द ही वे बिठायी हुई पुतलियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं । मेक्सिको के एक नेत्र-चिकित्सक डा. मेन्युअल टारेस (Dr. Manuel Torres) द्वारा प्रस्तुत एक नया प्रयोग पूर्ण सफलता के काफी निकट पहुँच चुका है । उन्होंने शीशा तथा प्लेटिनम मिश्रित सर्वथा नवीन प्रकार की पुतलियाँ बनाकर दृष्टिहीनों को दृष्टि देने के अनेक सफल प्रयोग किये हैं । उनके प्रयोगपात्र रोगियों में अधिकांश की पुतलियाँ अपारदर्शी हो चुकी थीं, कुछेक की सर्वथा अन्ध तथा शेष व्यक्तियों की काफी दोषपूर्ण थीं । उनमें बिठायी हुई पुतलियों से वे न केवल देख सकते थे बल्कि पुतलियाँ इस कुशलता से बिठायी गयीं थीं कि तिरछापन तथा अधिक बिम्ब दिखने के भी दृष्टिदोष दूर हो गये थे ।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ



अब अब समेटिए, अब पूरा कीजिए

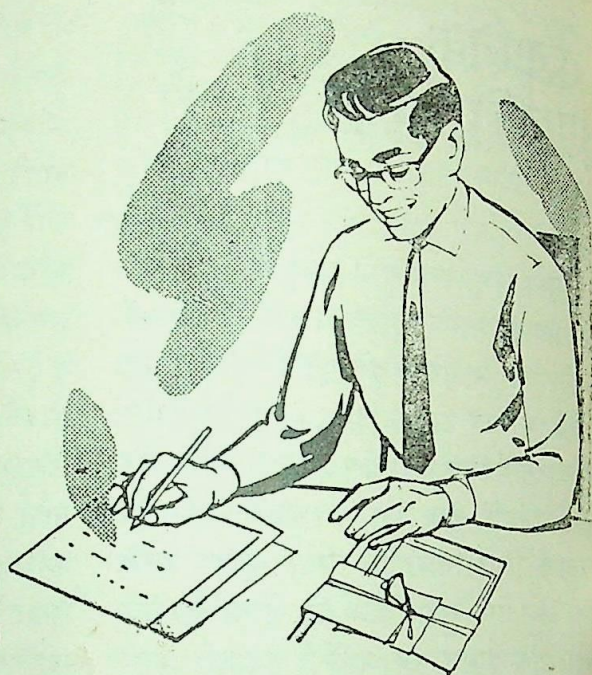
प्रायः ही धाराप्रवाह वक्तृत्व देने वालों को समय का ज्ञान नहीं रहता तब वे श्रोताओं के कोप का भाजन बनने की स्थिति में पड़ जाते हैं । मास्टर-टाक-टाइमर ऐसी परिस्थिति में उबारने के लिए नया यंत्र है । हरी-भूरी और लाल बत्तियों युक्त इस स्वचालित यंत्र में वक्ता के लिए निर्धारित समय सूचित करने वाले अंक पर सुई बिठा दी जाती है । जब केवल पाँच मिनट रह जाते हैं तब हरी बत्ती संकेत करती है कि अब भाषण समेटना शुरू कीजिए ; दो मिनट रह जाने पर भूरी बत्ती बहती है फुलस्टाप दूर नहीं और लाल बत्ती बोलती बन्द कर देती है ।

अब धुलाई में थैला मीसब !

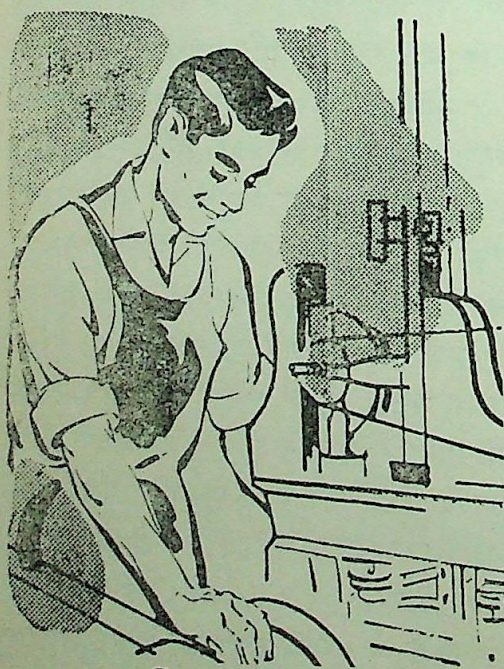
अस्पतालों में सफाई तथा कीटाणुरोधन बनाये रखने के लिए एक नये प्रकार के प्लास्टिक थैले का निर्माण किया गया है । चारपाइयों तथा रोगियों के गन्दे कपड़ों को धुलाई के लिए समेटकर रखने के अब तक के विविध प्रकार और साधन कीटाणुरोधन बनाये रखने में पूर्णतः समर्थ नहीं हो पाते थे । इन थैलों के प्रयोग से आश्चर्यजनक रूप में ६२ प्रतिशत सफाई तथा कीटाणुरोधन रखा जा सकेगा । विधि यह है कि मैले गन्दे कपड़ों को उतार कर सीधे ही इन थैलों में भर दिया जाएगा । थैलों की सिलाई ठण्डे पानी का स्पर्श पाते ही खुल जाएगी । अतः बन्द थैले को ही धुलाई मशीन में डाल देने पर मुँह की सील तथा सीवन पहले खुल जाएँगे और पानी गर्म होने पर बाकी थैला समूचा

दिसम्बर १९६३

आप चाहें दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक ! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

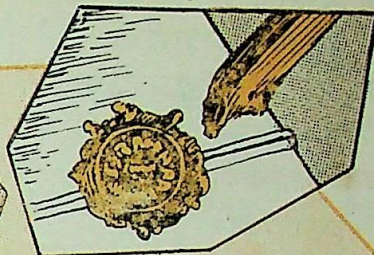
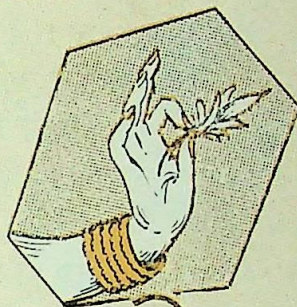
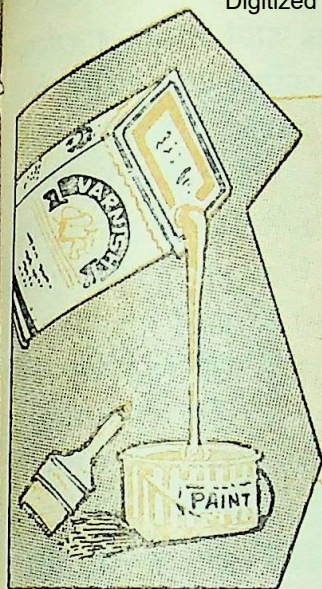


जी तोड़ मेहनत करें



अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

यह ल
स्पर्
न किर
अछूता
मुहर
स्याहि
अनेक
विस्तृत
और इ
एक नि
नहीं !
भारत
क
प्रतिशत
उत्पाद
है। शेष
मलाया
वले अ
उत्पाद
प्राचीन
उल्लेख
भारत
दिसम्बर



यह लाख है

नरेन्द्र छाबड़ा

यह लाख है। न तो यह खनिज है, न वन-स्पति ही। इसकी बनी हुई वस्तुओं के किसी न किसी प्रयोग से शायद ही कोई व्यक्ति अछूता हो। ग्रामोफोन का रिकार्ड, वार्निश, मुहर लगाने की लाख, खिलौने, चूड़ियाँ, स्याहियाँ, चमड़े को चमकाने तथा विजली की अनेक वस्तुओं के बनाने तक लाख का क्षेत्र विस्तृत है। आश्चर्य है कि हमारे इतने निकट और इतनी उपयोगी वस्तु का निर्माता केवल एक निरीह कीड़ा है जो आध इंच से बड़ा नहीं !

भारत प्रमुख उत्पादक

कच्ची लाख के विश्व-उत्पादन का ८५ प्रतिशत भाग भारत में होता है। यहाँ से इसके उत्पादन का ६० प्रतिशत विदेशों को भेजा जाता है। शेष उत्पादक देश हैं श्रीलंका, बर्मा और मलाया। भारत में भी विभिन्न देशों के मुकाबले अकेले छोटा नागपुर से ६० प्रतिशत उत्पादन होता है। हमारे यहाँ यह अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। वेदों में इसका उल्लेख ओषधि के रूप में किया गया है। महा-भारत में तो उल्लेख है ही कि पाण्डवों को

मारने की नीयत से दुर्योधन ने लाक्षागृह अर्थात् लाख का महल बनवाया था। मध्य-काल में लाख का उपयोग कपड़े रंगने, चूड़ियाँ बनाने तथा काठ के खिलौनों पर रंग करने के लिए होता था।

लाख का कीड़ा

लाख के कीड़े (lac insect) को जन्तु विज्ञान में लैक्सिफर लेक्का (laccifer lacca) कहते हैं। यह अधिकांश भारत, बर्मा तथा श्रीलंका में पाया जाता है। जन्तुविदों का प्रथम ध्यान इनकी ओर १९०१ में आकर्षित हुआ। तब से इनकी जीवन-क्रियाओं पर सूक्ष्म अध्ययन जारी है। १९३५ में नामकुम (बिहार) में प्रथम लाख-अनुसन्धानशाला खोली गयी। यह स्थान राँची के निकट है। इस अनुसन्धानशाला के दो प्रमुख भाग हैं। एक में लाख के कीड़े उपजाये जाते हैं और दूसरे में रासायनिक परीक्षण किये जाते हैं। प्रयत्न यह रहता है कि इसकी 'कुसुमी' नामक सर्वोत्तम जाति अधिकाधिक उत्पन्न की जाए, क्योंकि विदेशों की माँग उसी के लिए अधिक रहती है।

लाख के कीड़े की विशिष्ट ग्रन्थियों से जो

दिसम्बर १९६३

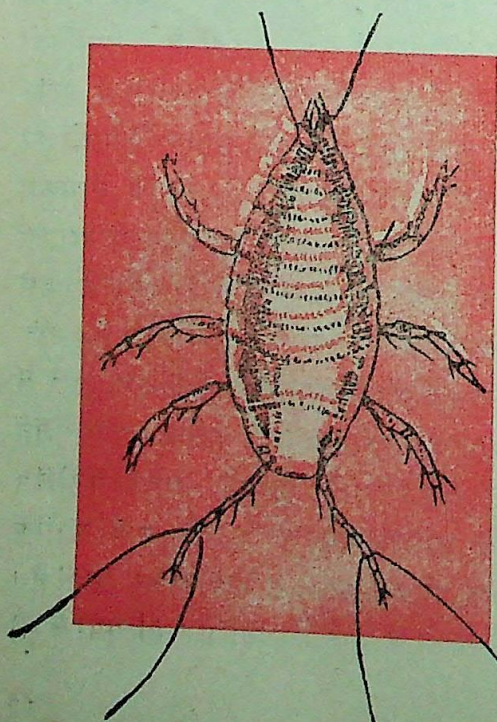
स्राव निकलता है वही लाख के रूप में प्राप्त होता है। यह कीड़ा परजीवी है और जिन विशेष प्रकार के पौधों पर पलता है, उन्हीं का रस चूस-चूसकर जीवन निर्वाह करता है।

लाख की पैदावार

केवल मादा ही लाख स्रवित करती है। प्रौढ़ मादा स्वयं को एक बाँबी में बन्द कर लेती है और अण्डे देना प्रारम्भ करती है। अण्डों की संख्या एक बार में २०० से १००० तक पहुँच जाती है। बाँबी के खुले छिद्र से अण्डों से तैयार हुए गिराड़ निकल-निकलकर पेड़-पौधे पर पलना प्रारम्भ कर देते हैं। ये डिम्ब एक इंच में २०० से भी अधिक संख्या में छत्ते के रूप में एकत्र रहते हैं। ज्यों-ज्यों ये रस चूसते जाते हैं, अपनी ग्रन्थियों से राल जैसा पदार्थ निकालते जाते हैं। इन गिराड़ों को लम्बे समय तक के लिए एक ही डाल पर रहने नहीं दिया जाता बल्कि उस डाल को काट कर दूसरे पेड़ की डाल से बाँध देते हैं ताकि उस पेड़ पर भी ये फैल जाएँ।

अच्छी लाख प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ये डिम्ब स्वस्थ रहें।

लाख का कीड़ा



अतः इन्हें हवादार, शीतल तथा छाया के स्थानों पर रखा जाता है और आवश्यकता पड़ने पर बन्द टोकरियों तथा बोरियों में भी रखा जाता है। लाख का नर-कीट तो केवल प्रजनन के उपयोग में आता है क्योंकि मादा से संयोग करने के पश्चात् ही वह समाप्त भी हो जाता है। बाँबी में अकेली मादा तब तक लाख उत्पन्न किये रहती है जब तक वह जीवित रहे।

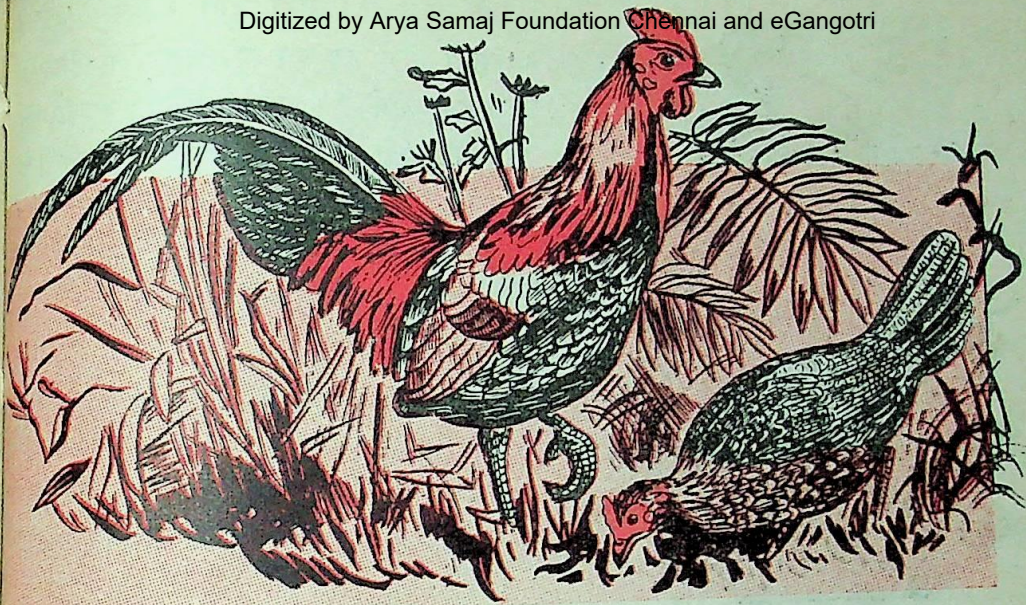
पेड़ की शाख से उतारी हुई लाख कच्ची लाख कहलाती है और पिस जाने पर लाक्षा-चूर्ण बन जाती है। शोधित किये जाने पर इसे चमड़ा भी कहते हैं। भारत में प्रति वर्ष उत्पादित ४३००० टन कच्ची लाख से ३२००० टन शुद्ध चमड़ा प्राप्त किया जाता है।

लाख-कीट के प्रमुख पोषक वृक्ष

पलाश, वरगद, बेर, कुसुम, अरहर, घोंट खैर और जलारी वे मुख्य पेड़-पौधे हैं जो लाख के कीड़ों को आश्रय देते हैं। सर्वोत्तम लाख कुसुम वृक्ष पर पलने वाले कीटों से प्राप्त होती है। उसे कुसुमी लाख कहते हैं। अन्य पेड़ों पर पलने वाले कीटों की लाख मध्यम प्रकार की होती है जिसे रंगीनी लाख कहते हैं। खैर अवश्य ऐसा पेड़ है जिस पर दोनों प्रकार के कीट पल सकते हैं। पेड़ से लाख की वर्ष भर में दो प्रकार की दो-दो फसलें प्राप्त होती हैं। उनके तैयार होने के समय भी विभिन्न होते हैं। यों एक वर्ष में कुल चार अर्थात् दो फसलें कुसुमी की तथा दो रंगीनी की प्राप्त हो जाती हैं।

आर्थिक महत्त्व

भारत के लिए लाख का उद्योग आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ४० लाख से भी अधिक व्यक्ति इसी उद्योग से आजीविका प्राप्त करते हैं। लाख के उत्पादन का ६० प्रतिशत विदेशों को भेजा जाता है उससे हमारे देश को लगभग ८ करोड़ रुपये के मूल्य की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।



शिकार के पक्षी

कुँवर सुरेशसिंह

शिकार के पक्षियों में केवल वे ही पक्षी आते हैं जिनमें कुछ खास गुणों का समावेश हो। हमारे देश में बत्तखें, कबूतर तथा शरिल भी शिकार के पक्षी माने जाते हैं क्योंकि एक तो इनका मांस कम स्वादिष्ट नहीं होता। दूसरे इनके शिकार में ज्यादा परेशानी नहीं लगानी पड़ती। वास्तविक शिकार-पक्षियों को निम्न पाँच भागों में बाँटा गया है। १. मुर्गियाँ, २. तीतर, ३. भट-तीतर, ४. बटेर तथा ५. लवे।

इन पक्षियों की शकल-सूरत, रंग-रूप, आकार, स्वभाव और रहन-सहन में एक दूसरे से इतना भेद रहता है कि केवल देखकर कोई सरलता से नहीं पहचान सकता। शिकार के इन पक्षियों की चोंच छोटी, मजबूत तथा सिर पर कुछ झुकी हुई रहती है। चोंच की जड़ के पास चढ़ी हुई खाल पर नथुने के छेद साफ दिखाई पड़ते रहते हैं। इनके डैने छोटे और घूमे हुए रहते हैं तथा पूँछ छोटी, बड़ी या भीतर की होती है। इनके पाँव छोटे और

मजबूत होते हैं और काफी ऊपर तक रोयों से ढँके रहते हैं। इनमें कुछ पक्षियों के पाँवों पर पीछे की ओर १-२ काँटे से निकले रहते हैं जो लड़ाई के समय आत्मरक्षा के काम आते हैं।

इन पक्षियों का शरीर गठीला और वजनी होता है। अपने छोटे डैनों के कारण ये तेज तो उड़ लेते हैं परन्तु अधिक दूर नहीं। कुछ पक्षियों की लम्बी पूँछ उड़ते समय बाधा पहुँचाती है। अतः थोड़ी ही दूर उड़कर उन्हें नीचे उतर आना पड़ता है। इनमें मादा को रिभाने के लिए जहाँ नर पक्षी को सुन्दर और भड़कीली पोशाक मिली है, वहाँ मादाएँ भी चितली या मटमैले रंग की होती हैं और उन पर दुश्मनों की नजर आसानी से नहीं पड़ने पाती। ये सब पक्षी पानी की अपेक्षा धूल में लोटना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि उससे इनके बदन की कुटकियाँ आदि मर जाती हैं। इन पक्षियों का मुख्य भोजन अनाज के दाने, बीज, जड़ें तथा कीड़े-मकोड़े हैं।

ही होती है। छोटी मुर्गी सामान्य मुर्गी से छोटी और रंग-रूप में तीतर से मिलती-जुलती होती है। पहाड़ी मुर्गियाँ रंग-विरंगी, सुन्दर तथा भड़कीली पोशाक वाली होती हैं। इनमें 'लुंगी', 'मोनाल' तथा 'चेड़' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका शिकार शिकारी कुत्तों की सहायता के बिना नहीं हो पाता।

तीतर

इनका भी वर्ग काफी विस्तृत है। इनकी १५-२० तरह की विभिन्न जातियाँ हैं। ये भूरे, मटमैले तथा चितले रंग के पक्षी कद में कबूतरों से कुछ ही बड़े होते हैं। ये जंगलों, पहाड़ों,



लुंगी

मुर्गियाँ

मुर्गियों का वर्ग काफी बड़ा है जिसमें मोर के अलावा जंगली मुर्गियाँ (कस्तूर और चकोत्री) तथा पहाड़ी मुर्गियाँ सम्मिलित हैं। जंगली मुर्गी शकल-सूरत में पालतू मुर्गी जैसी

भूरा तीतर



पहाड़ी मुर्गी

खुले मैदानों तथा बर्फीले क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। कहीं-कहीं ये जोड़ों और कहीं छोटे-छोटे गिरोहों में रहते हैं। इनमें सामान्य भूरे और काले तीतरों के अतिरिक्त चकोर, केहा, सिसी, पिडरा, रोली और जंगूरिया प्रसिद्ध तीतर हैं।



भट-तीतर

भट-तीतर

ये अपने ढंग के निराले पक्षी हैं। ये मटमैले, चितले रंग के होते हैं। इनके पाँव छोटे और कद कबूतर के बराबर होता है। ये खुले पठारों पर प्रायः छोटे-बड़े गिरोहों में रहते हैं। शिकारी को देखकर जमीन में ये ऐसे छिप जाते हैं कि इन्हें ढूँढ़ निकालना कठिन होता है।

बटेर

ये पक्षी तीतर से कुछ छोटे और लवे से

कुछ बड़े होते हैं। रंग में ये भी भूरे, मटमैले और चितले होते हैं। ये जंगलों, पहाड़ों तथा घास के मैदानों में रहते हैं। इनमें घाघस, चिनिंग, गिरजा तथा गोपाल प्रसिद्ध जातियाँ हैं।

लवा

ये पक्षी कद में छोटे हैं और इनका वर्ग भी छोटा ही है। हमारे यहाँ केवल पाँच प्रकार के लवे पाये जाते हैं। ये पक्षी बटेर से छोटे, मटमैले-चितले रंग के होते हैं। ये भी जंगलों

बटेर





छोटा लवा

पहाड़ों और घास के मैदानों में पाये जाते हैं।
इनमें कुकनी और सरसैया बहुत प्रसिद्ध हैं।

चहे

चहे भी शिकार के पक्षी हैं। शायद ही
कोई शिकारी हो जो इनसे परिचित न हो।
हमारे देश में इनकी आठ जातियाँ पायी जाती
हैं। इनमें कुछ तो बारहमासी हैं जो यहीं रहते

हैं और कुछ ऐसे हैं जो सर्दियों में बाहर से
आते हैं।

चहे कद में कबूतर जैसे होते हैं। इनकी
आँखें बड़ी और सिर में काफी पीछे की ओर
रहती हैं। ये चितले रंग के पक्षी हैं। इनकी
पीठ के पर प्रायः काले होते हैं। इनकी चोंच
लम्बी और कुछ गोलाई लिए रहती है।

छोटा चहा





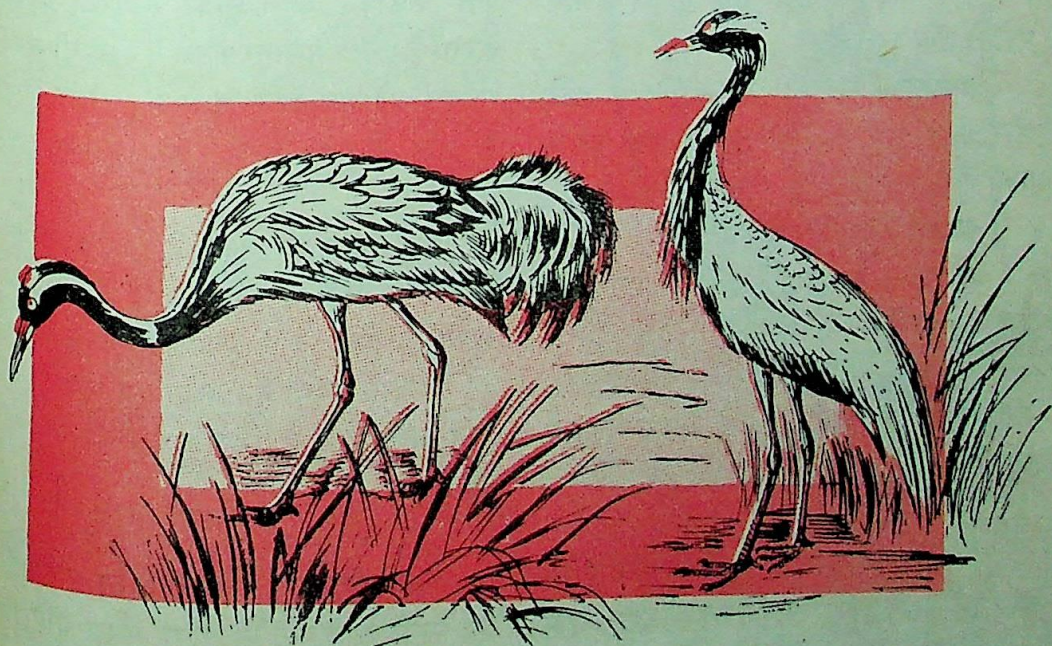
छोटा चहा

इनके चोंच का ऊपरी पल्ला बड़ा और मोटा होता है। यह चोंच इतनी मुलायम होती है कि बिना इसे खोले ही चहा ऊपरी सिरे को अपनी इच्छानुसार उठा-गिरा सकता है।

चहों के नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इनके बच्चों में भी अधिक रंग-भेद नहीं रहता। ये अधिकतर भूमि पर ही रहते हैं।

इनके बच्चे अण्डों से निकलते ही दौड़ने-फिरने लगते हैं। स्वभाव से ये कीट भक्षी हैं। कीड़े-मकोड़ों के अतिरिक्त छोटे-छोटे कटुए और घोंघे भी ये बड़े स्वाद से खाते हैं। ये अधिकतर रात में अपना पेट भरते हैं लेकिन बहुत खाऊ होने के कारण दिन में भी चराई करते रहते हैं। अपनी लम्बी चोंच को कीचड़

सारस





सारस

में डालकर जब ये कीड़े-मकोड़े चुगते हैं तब इनकी आँखें इधर-उधर देखने में बहुत सहायक होती हैं।

चहे भुण्ड बनाकर नहीं रहते। ये प्रायः अकेले या जोड़ों में ही दिखाई पड़ते हैं। ये भूमि पर ही अपने घोंसले बनाते हैं। एक बार में मादा चार अण्डे देती है। इनकी आठ जातियों में निम्न उल्लेखनीय हैं :

सिमतीतर—यह कद में सबसे बड़ा, लगभग १४ इंच का पक्षी है। इनके डैने चौड़े और पाँव छोटे होते हैं। कुछ दूरी तक पाँव परों से ढँके रहते हैं।

बनचहा—ये चहे सिमतीतर से छोटे और अन्य चहों से बड़े लगभग एक फुट के पक्षी हैं।

बगबद—इनके डैने छोटे होते हैं।

भंरका—ये दोनों पक्षी लगभग १०" कद के होते हैं।

घोरटा—यह कद में सबसे छोटा, लगभग ८" का पक्षी है। इसकी दुम नुकीली रहती है।

क्रौंच

ये पक्षी महावक-वर्ग से भिन्न और भूमि-चारी हैं। इनका रंग सफेद, स्लेटी और

कलछौंह भी होता है। इनमें नर और मादा का रंग-रूप एक ही रहता है। महावकों की तरह इनके डैने बड़े और दुम छोटी जरूर होती है लेकिन चोंच सर्वथा भिन्न होती है। इनकी नाक के छिद्र चोंच के बीच में होते हैं। इनके पाँवों का पिछला अँगूठा छोटा और कुछ ऊपर होता है जिससे वह लगभग बेकार ही रहता है।

क्रौंच के बच्चे अण्डे से बाहर निकलते ही इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उनका रंग बचपन में भूरा रहता है और सारा शरीर मुलायम परों से ढँका रहता है। इन्हें बहुत सरलता से पाला जा सकता है। घास-पात, अनाज के दाने, बीज, घोंघे, कटुए, मेंढक मछली आदि इनके मुख्य आहार हैं।

सर्दियों के प्रारम्भ में ये हमारे यहाँ आ जाते हैं और सर्दियाँ समाप्त होते-होते फिर लौट जाते हैं। उड़ने से पहले इन्हें जमीन पर दौड़ना पड़ता है और एक बार उठ जाने पर ये बहुत तेज उड़ लेते हैं। उड़ते समय महावकों के समान इनकी भी गरदन और टांगें बाहर की ओर निकली रहती हैं।

मादा को रिभाने के लिए नर पक्षी अपने पंख फैलाकर बहुत सुन्दर नृत्य का प्रदर्शन करता है। नृत्य समाप्त करके नर अपनी लम्बी गरदन को झुकाकर हवा में उछल जाता है और अन्ततः मादा को प्रसन्न कर लेता है।

यह भूमिचर पक्षी है। अतः अपना घोंसला जमीन पर ही रखता है। घोंसला देखने में ऊँचा घास-फूस और नरकुलों का ढेर-सा जान पड़ता है। मादा एक बार में दो-तीन अण्डे देती है जिन पर चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जलकुक्कुट

जलकुक्कुट को पनकुकुरी भी कहते हैं। यह पानी के निकट ही सारा समय बिताती

है। इस पतली छोटी चिड़िया आसानी से लम्बी और दुम छोटी होती है। यह अधिकतर अपनी दुम को सतर्क होते समय उठाती, गिराती रहती है। इसके पाँव के तीनों अंगले और एक पिछला अँगूठा काफी लम्बा रहता है। कोई भी अँगूठा एक दूसरे से जुड़ा नहीं रहता। इसकी चोंच प्रायः लम्बी और मुट्ठ रहती है और नथुने का छिद्र चोंच की जड़ के पास न होकर उसके सिरे के पास रहता है। इनमें से प्रायः सभी पक्षियों की आँखें अधिकतर लाल रहती हैं।

यह चिड़िया भूमिचारी होने के कारण सारा समय जमीन पर ही बिता देती है। कभी-कभी यह छोटी, ठिगनी भाँड़ियों पर भी बसेरा ले लेती है। यह बखूबी तैरती और डुबकी तो लगाती ही है, जमीन पर भी दौड़ लेती है। इसकी उड़ान कमजोर होती है और उड़ते समय कुछ दूर तक इसके पैर नीचे की ओर लटकते रहते हैं। उड़ने से पहले इसे कुछ दूर तक पानी की सतह पर दौड़ना पड़ता है।

इनमें से कुछ चिड़ियाँ मौसमी हैं जो जाड़ों में यहाँ आकर जाड़ा समाप्त होते-होते यहाँ से लौट जाती हैं। कुछ बारहमासी भी हैं जो यहाँ जलाशयों के निकट रहती हैं। पंख गिरने के समय इनके अधिकांश पंख एक साथ ही गिर जाते हैं जिससे ये कुछ समय के लिए उड़ नहीं पातीं। इनका भोजन कीड़े-मकोड़े और छोटे कटुए, घोंघे आदि हैं लेकिन ये घास-पात, दाना और बीज आदि भी खा लेती हैं। इनमें नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। इनके बच्चे अण्डों से बाहर निकलते ही भागने-दौड़ने लगते हैं लेकिन कुछ दिन तो उसके माँ-बाप उन्हें स्वयं खिलाते-पिलाते हैं। इनका रंग अधिकतर कतई तथा कलछौंह रहता है।

ये बरसात में अण्डे देती हैं और उनके लिए अपना घास-फूस का घोंसला बनाती हैं।

घोंसला पानी के किनारे जमीन पर ही रखा जाता है। मादा एक बार में कई चित्तीदार अण्डे देती है। इन्हें मुख्यतः तीन निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :

१. जलबोदरिया—यह अपनी लम्ब चोंच के कारण आसानी से पहचानी जा सकत है। इनमें भिल्ली, खैरी जलबोदर, छोटी जलबोदर, चितली जलबोदर, स्लेटी जलबोदर, पहाड़ी जलबोदर, और भूरी जलबोदर उल्लेखनीय हैं।

२. पनकुकुरिया—ये अपनी छोटी चोंच के कारण अन्य जलकुकुरियों से अलग पहचानी जा सकती हैं। इनमें मुख्य हैं—पनकुकुरी, छोटी पनकुकुरी, खैरी पनकुकुरी, और गोदन।

जलमुर्गियाँ—इनकी चोंच मोटी होती है। इनमें से कुछ एक में चोंच की जड़ के पास एक चौड़ी, बड़ी-सी टिकली रहती है। इनमें निम्न पाँच चिड़ियाँ मुख्य हैं:

टीकी, जलमुर्गी, कैमा, कोरा, और डाउक आदि।

जलकुक्कुट



विश्व संसार

आपसे मिलिये !

सुनते ही हम तपाक से अपना हाथ आगे बढ़ाते हैं, क्यों? इतिहास कहता है कि पाश्चात्य देशों में पूर्वकाल में जब पुलिस-व्यवस्था प्रचलन में नहीं थी तब अँधेरी रातों को बाहर निकलना सुरक्षित नहीं होता था। प्रायः ही चोर, लुटेरों से सामना हो जाया करता था। अतः राहगीर भी शस्त्र लेकर ही चलते थे। अँधेरे में जब दो व्यक्ति मिलते थे तब दोनों अपने हथियार थामने वाले अर्थात् दाहिने हाथ बढ़ाकर ज्ञात कर लेते थे कि विपक्षी मित्र है अथवा शत्रु। दोनों खाली हाथों के मिलने का अर्थ होता था मित्र-मिलन, न कि शत्रु-मिलन। क्रमशः वही प्रथा दो मित्रों के मिलने की प्रतीक बन गयी।

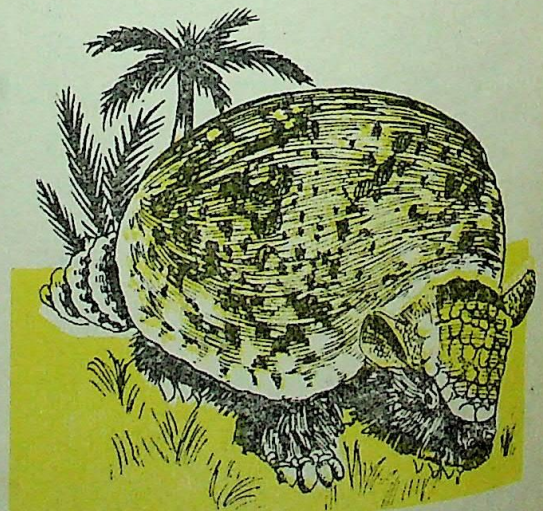
सागरों के पेट में लाखों जहाज

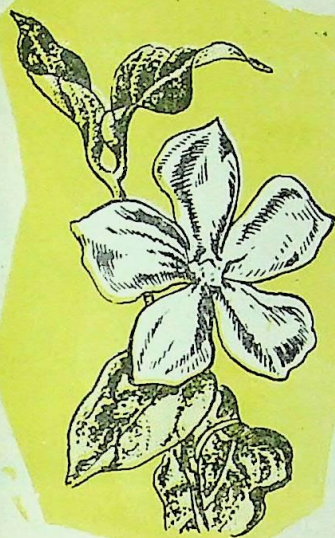
विगत २००० वर्षों से आज तक संसार के सप्त महासागरों द्वारा सैकड़ों, हजारों क्या, लाखों जहाज डकार लिए जाने के अनुमान की पुष्टि की गयी है। लन्दन के लाइड्ज संग्रहालय से प्राप्त विवरणों में उल्लिखित है कि सन् १६०२ से जहाजों के डूबने का औसत प्रति वर्ष लगभग ४०० का रहा है। इसी प्रकार फ्रान्स में प्राप्त विवरणों से ज्ञात किया गया है कि १६वीं शताब्दी तक यह औसत ३००० जहाज प्रति वर्ष का रहा है। यदि मध्यमान के लिए ५०० जहाज प्रति वर्ष का औसत मान लें तो पिछले २००० वर्षों में डूबे हुए जहाजों का स्थल-औसत प्रति १४ वर्ग मील में एक जहाज का रहेगा। इसका भी खण्डन करते हुए कुछेक विशेषज्ञों का मत है कि यह औसत कम से कम प्रति वर्ग मील, एक जहाज का होता चाहिए।

गिलहरियाँ भी एक प्रकार से वृक्षारोपण करके वन-प्रसारण में सहयोग देती हैं। इनकी नींद महीनों की होती है और जाड़ों भररहती है। उन दिनों अपना पेट भरने के लिए तथा बाहर की सर्दी से बचने के लिए ये जगह-जगह अनाजों और बीजों के भण्डार खेतों से घसीट-घसीट कर जमा कर रखती हैं। नींद खुलने पर इन्हें भटकना नहीं पड़ता किन्तु अनेक बार यह भी होता है कि ये अपने खजानों के स्थलों को भूल जाती हैं और जहाँ-तहाँ से गुजर कर लेती हैं। अनुकूल वर्षाजल तथा अन्य परिस्थितियाँ पाकर भूमिगत वे ही खजाने पौधे बनकर उग आते हैं।

आर्मडिलो के पुरखे

दक्षिण अमरीका का निवासी, चारों ओर से बख्तरबन्द, यह प्राणी जैसा आज है लाखों वर्ष पहले उससे कहीं भिन्न था। आज के नन्हें छह इंच से लेकर छह फुट तक के विशाल आर्मडिलो के वे पुरखे १० फुट लम्बे होते थे। उन्हें ग्लिप्टोडन (glyptoden) नाम दिया गया है। भारी और कड़ी ढाल से सुरक्षित तथा विकराल आकृति होते हुए भी ये जन्तु स्वभाव से शरमीले तथा सीधे-सादे हैं। निकट होने पर ये हानि नहीं पहुँचाते और पालतू हो जाने पर बड़े खिलवाड़ भरे बने रहते हैं।





मृत्यु में अमरता का प्रतीक, यह फूल

इस फूल की सही उपमा देने के लिए कहा जा सकता है कि 'इधर भूम कर गाए ज़िन्दगी, और उधर है मौत खड़ी'। इस फूल की बारहमासी बेल पर सदा बहार रहती है। मनोरम नीली आभा लिये हुए उसके कोमल फूल (periwinkle) को इंग्लैण्ड निवासियों ने अमरता का प्रतीक माना है और मृत्युदण्ड पाने वाले व्यक्तियों ने सिर कटाने से पहले इसे पहना है। साइमन फ्रेजर उनमें से एक उदाहरण है जिसने १३०६ में इसी फूलों की माला सिर से बाँधकर मृत्यु का आलिङ्गन किया था।

दूसरी ओर इसकी बेल के सुदृढ़ तंतुओं को अमर दृढ़ता का प्रतीक माना गया है और मित्रों ने पारस्परिक मित्रता की तथा नवविवाहितों ने परस्पर निष्ठा की शपथ इसी की पत्तियाँ खाकर, इसी की माला पहनकर निभायी है।

एक दिन का जीना भी तो जीना है !

मेपलाई (mayfly) नामक मक्खी की गिराड़ावस्था तो सौ दिन चलती है किन्तु

एक ही दिन मिलता है। उसी एक दिन में यह सब कुछ कर गुजरती है और उसी दिन पूरा जीवन जीकर, प्रजनन सम्पन्न करके समाप्त हो जाती है—वंशानुक्रम चलाये रखने के लिए।

चमत्कारिक कुत्ता पुरस्कार

अमरीका के एलेक्जेण्ड्रिया (वर्जीनिया) के पुलिस-विभाग का यह कुत्ता वास्तव में विलक्षण है। वर्ष का सर्वोत्तम कुत्ता घोषित होने का इसे गौरव प्राप्त है। इसकी विलक्षणता इसमें है कि गले में लटके हुए रिसीवर द्वारा यह अपने प्रशिक्षक के संकेत एक मील दूर से ग्रहण करके उन्हें पलक मारते ही कार्यान्वित कर देता है। परीक्षणों में अनेक बार इसे धोखा देने के लिए प्रशिक्षक के स्वर से स्वर मिलाकर बनावटी आदेश दिये गये, किन्तु इसने कभी धोखा नहीं खाया और वास्तविक आदेशों का ही पालन किया। अपने पुरस्कार को हस्तगत किये हुए गौरवपूर्ण मुद्र में इस कुत्ते की छवि दर्शनीय है।



अन्तरिक्ष उड़ान में ईंधन- सम्पत्ति



डा. सहेन्द्रकुमार

संसार के सबसे बड़े, ८५००० टन भारी, १०३० फुट लम्बे और ११८ फुट चौड़े जलपोत, क्वीन मेरी को पंख लगाकर सितारों की सैर कराने की कल्पना कैसी रहेगी? जो अपने अन्तरिक्ष-यान में चन्द्रमा से लौटने तक की यात्रा के योग्य ईंधन लाद ले जाने की सोच रहे होंगे, उनकी कल्पना ठीक ऐसी ही कही जाएगी। ईंधन की उस विपुल मात्रायुक्त अति विशाल अन्तरिक्ष-यान बनाना तो नहीं, किन्तु उड़ा ले जाना अवश्य असम्भव रहेगा। फिर भी आगामी १०-१२ वर्षों में उड़ानें भरकर दिखानी हैं। इस संकल्प के रहते हुए हाथ पर हाथ धरे तो न बैठा जा सकेगा कि ईंधन की कल्पना ही दुरुह है, क्या करें! पृथ्वी का निकटतम ग्रह चन्द्रमा ही है, वह भी लगभग २॥ लाख मील से कम दूर नहीं। वहाँ पहुँचना और वहाँ से लौटना अर्थात् लगभग ५ लाख मील की यात्रा के योग्य ईंधन अपने साथ उड़ान भर रखना आज के अन्तरिक्ष-उड्डयन-विज्ञान के लिए सबसे बड़ा प्रश्न चिह्न है।

लक्ष्यपूति की दिशा में

अनवरत प्रयोगों तथा अधिक परिश्रम

के उपरान्त इस समस्या को भी सुलझाने की कुछेक युक्तियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। एक युक्ति द्वारा यान का वजन काल्पनिक ८५००० टन से घटाकर कुछ ही हजार टन तक और लागत हजारवें भाग तक उतारी जा सकेगी। इसके प्रयोगस्वरूप सामान्य आधुनिक यानों के लिए तो यह संभव किया ही जा सका है कि ईंधन के लिए यात्रा-भंग किये बगैर ही वे पृथ्वी-प्रदक्षिणा जैसी लम्बी से लम्बी उड़ान भी भर सकें। बोइंग बी-५० लकी लेडी (Boeing B-50 Lucky Lady) ऐसा ही उल्लेखनीय यान है जो यात्रा के मध्य, साथ में उड़ते हुए तेल-यान से ईंधन

Boeing B-50 *Lucky Lady* यान ने ऊर्ध्वाकाश में उड़ते-उड़ते ही टैंकर-यान से ईंधन प्राप्त करते हुए भू-प्रदक्षिणा पूरी की



विज्ञान-लोक

प्राप्त करता रहा और बीच में यात्रा भंग होने का अवसर ही नहीं दिया। इस प्रकार अतलांतिक महासागर को निर्वाध लांघ जाने वाले जेट-यान तथा वम-वर्षक यान उड़ान के दौरान में ही ईंधन प्राप्त कर लेते हैं।

यान, यान ही है राकेट, राकेट

सामान्य वायुयानों के लिए यह व्यवस्था जितनी सहज हो सकती है, राकेट के लिए उतनी ही कठिन है। अन्तरिक्ष में पेट्रोल-पम्प जैसे स्टेशन कैसे खड़े किये जा सकेंगे जहाँ राकेट मोटरकार की भाँति बीच बीच में ईंधन-सम्पूर्ति कर ले ? आज तो यह शंका कठिन है किन्तु आगामी १०-२० वर्षों में अन्तरिक्ष-उड्डयन विज्ञान के लिए यह असम्भव न रह जाएगा कि अन्तरिक्ष में ईंधन-स्टेशनों की एक शृंखला खड़ी की जा सके।

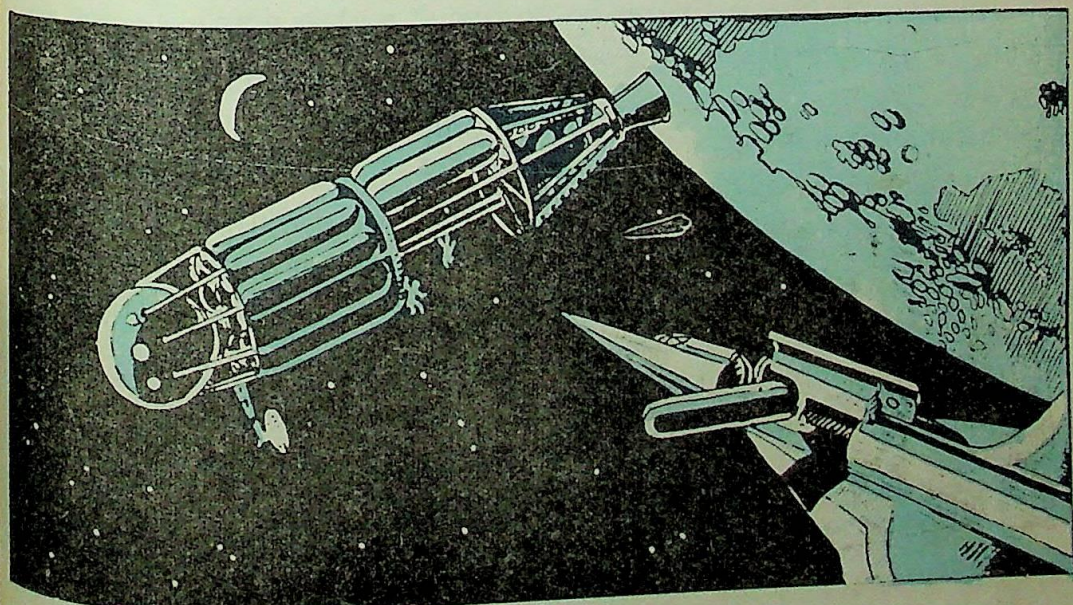
इस प्रयोजन के लिए लगभग ७००० टन भारी एक त्रिखण्डी राकेट ऐसा बनाया जाएगा जिसके प्रथम खण्ड में अन्तरिक्ष-स्टेशन बनाने की सामग्री रहेगी। दागे जाने के बाद निर्धारित ऊँचाई पर पहुँचते ही वह राकेट कक्षापथ में अपना सामान खाली करके पुनः

उसी प्रकार नया सामान लाने के लिए पृथ्वी की ओर लौट पड़ेगा। उस कक्षापथ में सामान के साथ पहुँचे हुए कुशल इंजीनियर अन्तरिक्ष स्टेशन खड़ा करना प्रारम्भ कर देंगे और पुनः आनेवाले राकेट की प्रतीक्षा में रहेंगे।

वह स्टेशन पृथ्वी से लगभग ७०० मील की ऊँचाई पर रहेगा। दूसरे दौर में सामान ले जानेवाला वही राकेट-खण्ड ईंधनका भंडार ले जाएगा और उसी कक्षापथ में पहले अन्तरिक्ष-स्टेशन के समान्तर १६००० मील प्र. घ. के वेग से चक्कर लगाता रहेगा। अपनी विलक्षण यंत्र-सज्जा केवल पर वह उसके निकट पहुँचता जाएगा। निश्चित निकटता आते ही उस खण्ड का इंजन बन्द कर दिया जाएगा और दोनों यान समान गति से वगैर अपना ईंधन व्यय किये उस कक्षा में घूमते रहेंगे।

निश्चित घड़ी पर उस खण्ड की एक खिड़की खुलेगी और अन्तरिक्ष-परिधान पहने दो व्यक्ति एक लम्बे पाइप का सिरा थामे हुए बाहर तैर आएँगे। अपनी राकेट-पिस्टल की सहायता से वे रास्ता काटते हुए स्टेशन तक पहुँच जाएँगे और उसी समय बाहर निकलती

वायुचापित छोटी-छोटी ईंधन टंकियों को भी यान में पहुँचाकर अन्तरिक्ष में ईंधन-सम्पूर्ति सम्पन्न की जा सकेगी

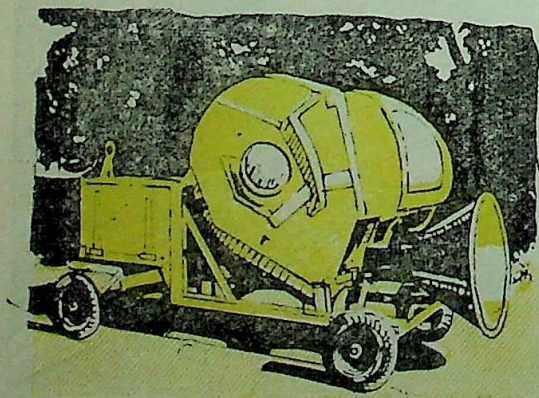


हुई उसकी नली में पाइप का सिरा फिट कर देंगे। शक्तिशाली पम्प द्वारा तेल का भण्डार उस खण्ड से अन्तरिक्ष स्टेशन के टैंक में पहुँचने लगेगा और आधे घण्टे से पूर्व ही वह अपना कार्य समाप्त करके, पाइप समेट कर पृथ्वी की ओर लौट पड़ेगा।

पाइप जोड़ने की उपरोक्त विधि के अतिरिक्त एक अन्य विधि भी संभव हो सकेगी। वायुचापित छोटी टंकियाँ विशेष रूप से ऐसी बनायी जाएँगी जिन्हें ईंधन से भर कर राकेट के फ्रेम में बाहर की ओर फिट कर दिया जाएगा। अन्तरिक्ष स्टेशन पर पहुँच कर वे एक-एक करके अपनी टंकियाँ वहीं दे देंगे और लौट आएँगे। देखने में शायद वगैर स्ट्रीमलाइनिंग की वे टंकियाँ खूबसूरत न लगें किन्तु स्ट्रीमलाइनिंग की इसलिए आवश्यकता न रहेगी कि अन्तरिक्ष में गत्यावरोधन के लिए वायुमण्डल तो होगा ही नहीं!

१६००० मील प्र. घ. के वेग से सनसनाते हुए दो यानों में एक से दूसरे तक ईंधन पहुँचाना बड़ी विकट कल्पना कही जा सकती है। इसमें भी रहस्य यह है कि यह तीव्र गति इस कार्य में किंचित भी अवरोधक नहीं बनेगी, क्योंकि दोनों यान प्रायः ही गतिहीन प्रतीत होंगे। इसे सरल रूप में समझना हो तो याद कीजिए कि सुबह से अब तक आपने जब-जब कुछ वस्तुएँ

उड़ानगत ईंधन-सम्पूर्ति के लिए यह भी एक यंत्र है जो अन्तरिक्ष की उड़ानों में बहुमूल्य सिद्ध होगा



दूसरों को दीं, तब-तब किसी वस्तु के छूट-गिरने अथवा आपके पाँव डगमगा जाने का आभास हुआ! यदि नहीं हुआ तो क्यों; जबकि जिस पृथ्वी (ग्रह) पर आप खड़े हैं, वह १६००० के बजाय ५५००० मील प्र. घ. के वेग से अन्तरिक्ष में चक्कर काट रही है? उलटे, इस से तो यह आशा की जा सकती है कि वायुमण्डल की अपेक्षा निर्वात अन्तरिक्ष में ईंधन-सम्पूर्ति और भी सरल रहेगी।

अन्तरिक्ष-स्टेशन से चन्द्रमा की ओर

ईंधन-यान की इस प्रकार कुछेक उड़ानों के पश्चात् चन्द्र-राकेट अपने ईंधन के स्टैंक से सम्पन्न होकर अन्तरिक्ष-स्टेशन से चन्द्रमा की ओर उड़ने को तैयार हो जाएगा। यहाँ एक नयी शंका खड़ी हो सकती है कि पृथ्वी से तो अभी केवल ७०० मील ही उठकर आये हैं और चन्द्रमा की २॥ लाख मील की दूरी में कोई अन्तर नहीं पड़ा; फिर कितने ईंधन से हमारी मंजिल पूरी होगी? इसके लिए यह समझना आवश्यक है कि एक ओर तो पृथ्वी को लपेटे हुए वायुमण्डल का गत्यावरोध और दूसरी ओर अन्तरिक्ष का निर्वात विस्तार, इन दोनों को दृष्टि में रखते हुए वह प्रारम्भिक ७०० मील की ही यात्रा आधी से अधिक ही प्रमाणित होगी। अतः शेष भाग तो आधे से भी कम के लगभग रह जाएगा।

और, अब तो नये ईंधन से युक्त हमारा चन्द्र-राकेट अपनी गति भी ड्योढ़ी से अधिक बढ़ा देगा। १६००० मील प्र. घ. की गति से पृथ्वी के कक्षापथ में घूमता हुआ यह यान, पृथ्वी के आकर्षण-बल से भाग-छूटने के लिए २५००० मील प्र. घ. की तो गति कर ही लेगा। यों, चन्द्रमा उसके लिए पहुँच के बाहर न रहेगा और १०-२० वर्षों के अन्दर ही शायद आज की पीढ़ी के लिए भी, चन्द्रमामा (दूर का नहीं) पास का हो जाएगा और हमारा स्वप्न साकार हो जाएगा।



**विज्ञान
क्लब**



प्यारे बच्चो !

यह नया अंक तुम्हारे हाथ में तब पहुँच रहा है जबकि १९६३ का वर्ष अपने अन्तिम मोपान पर है। इसमें सन्देह नहीं कि यह वर्ष विज्ञान की प्रगति में सुनिश्चित प्रगति का सूचक रहा है, विशेषतः अन्तरिक्ष-उड्डयन-विज्ञान में। हम आशा करें कि आगामी वर्ष हमारे चन्द्र-अभियान के प्रयासों को आश्चर्य-जनक गति प्रदान करेगा।

प्रति मास, प्रत्येक अंक, प्रति पाठक को कितना पसन्द आता है, यह सार स्वरूप निम्न पत्रों से ज्ञात हो जाएगा :

जसीडीह से विनोदकुमार (६७१७) टीकमगढ़ से कन्हैयालाल (१०४३२) तथा इलाहाबाद से प्रदीपकुमार (४१३५) ने एकद्वार अंक में हेलीकाप्टर तथा टेलस्टार से अधिक पसन्द किये हैं। सागर में ३३०० वर्ष, भोजन की तलाश तथा पास्कल की जीवनी ने दिल्ली के श्रवणकुमार (१३००) और सहारनपुर के मनवेन्द्रसिंह (६०३३) को प्रभावित किया है। इसी प्रकार पुष्कर से निरंजनप्रकाश (३६१६) और दिल्ली से मेहप्रभा (१४२२) ने लिखा है कि कीटोन और निऑन गैस बहुत अच्छे लगे।

प्रायः ही तुम्हारे पत्रों में विज्ञान के नवीन विषयों पर विज्ञान-लोक में दिये गये लेखों के प्रति विशेष रुचि प्रतिलक्षित होती है। यह पाठकों की परिष्कृत रुचि का प्रतीक है और ससम्मान इस ओर आवश्यक ध्यान दिया जा रहा है।

तुम्हारी कलम से स्तम्भ के लिए आती

रचनाओं में अब भी विविधता तथा नवीनता का अभाव है और अधिकतर छपे-पुराने विषय ही सामने आते हैं। इसीलिए कोई-कोई ही रचना प्रकाशित करना सम्भव हो पाता है। इसी प्रकार 'करो और देखो' के लिए भी ऐसे ही विषय चुनने चाहिए जो सर्वथा नवीन हों और जिनको बनाना सहज तथा उपयोगी सिद्ध हो।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४५ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

प्रमोदकुमार शर्मा (११८५) इलाहाबाद; गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ; रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली; शान्तिलाल सरणोत (६४७४) उदयपुर; सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर; मोहिनी शहानी (७८२७) रांची।

द्वितीय पुरस्कार

सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा; गोपाल माधव (२३७६) मेरठ; शीतलासहाय शुक्ल (२३८६) लखनऊ; ब्रजेश्वरप्रसाद शर्मा (३६७२) ललितपुर; गोपालराव पारेख (५१७२) सोनेगाँव; मनवेन्द्रसिंह नारंग (६०३३) सहारनपुर; राधेलाल गुप्ता (६४३७) बुलन्दशहर; नरेश मजीठिया (७५५६) अमृतसर; सज्जनसिंह मुराना (७६८१) उदयपुर; बल्लभदास पारेख (७७५८) उदयपुर।

तृतीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (६१४) आगरा; प्रफुल्लराय (६०६८) बरेली; दिलीप जालान (२७६२) कलकत्ता; प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद; सत्यपाल अग्रवाल (५३२३) दिल्ली; नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा; नारायणकुमार खरे (८११७) टीकमगढ़; शैलेन्द्र कुमार कसेरा (८४६५) कानपुर; ओमप्रकाश गुप्ता (६५१५) मेरठ; अवधेशकुमार बाजपेई (६८२२) आगरा; रमेशचन्द्र घरिया (१०१४८) इन्दौर; हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ; धीरेन्द्रकुमार सक्सेना (११८६६) करहल; कु. कल्पनाश्रीवास्तव (११८६७) लखनऊ।

प्रतियोगिता संख्या ४७



सुशीलकुमार
(स. सं. ६६०१)



सतीशकुमार
(स. सं. ७२३८)



रमेशचन्द्र
(स. सं. ८६५०)

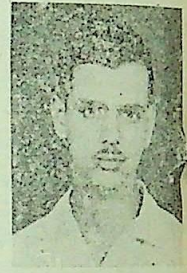


राधेश्याम
(स. सं. ८६८३)

७३६४ ब्रिजेशकुमार (१५) भांसी, ६५ जमालपेघर (१६)
बड़ा बाजार, ६६ सुरेन्द्रकुमार (१६) सिवनी, ६७ कैलाशचन्द्र
(१८) नई दिल्ली, ६८ सुदर्शन (१८) उत्तरांत, ६९ बाबुधनप्रसाद
(१५) कदमा, ७० द्वारिकादास (१६) निमार, ७१ त्रिलोकनाथ
(१६) वहराइच, ७२ चरणजीत (१५) सिरसा, ७३ गयाप्रसाद
(१६) रायपुर, ७४ प्रतापकुमार (१३) शिवपुरी, ७५ गुरुवचनसिंह
(१७) कलकत्ता, ७६ कल्याणमय (१०) भांसी, ७७ रामनिवास
(१२) जमशेदपुर, ७८ लक्ष्मीप्रसाद (१३) फारविसगंज, ७९
देवकृष्ण (२०) भांडोल, ८० अशोककुमार (१५) कानपुर, ८१
सन्तोषकुमार (१६) सागर, ८२ अरविन्दकुमार (२०) कटनी,
८३ धीरेन्द्रकुमार (१६) जोधारिया, ८४ धन्नालाल (१६)
चन्द्रावतीगंज, ८५ ईश्वरप्रसाद (१५) खरसिया, ८६ बलराम
(१७) नेवरा, ८७ धनेश्वरप्रसाद (१७) सारंगगढ़, ८८ शिवानन्द
(१५) महादेवस्थान, ८९ महेशचन्द्र (१५) श्योपुरकलां, ९०
नन्दकिशोर (२०) राजनांदगांव, ९१ सुभाष (१३) इचलकरंजी,
९२ रविन्द्रकुमार (१८) दिल्ली, ९३ कृष्णकुमार (१७) पुष्करायों,
९४ राधेश्याम (१६) थानेसर, ९५ हरीचरण (१६) सागर,
९६ देवेन्द्रकुमार (१७) सागर, ९७ नरेन्द्रप्रसाद (१३) वटसार,
९८ नित्यानन्द (१५) प्रसस्त डोह, ९९ मोहनप्रसाद (१२)
जोगियारा, ७४०० हर्षदराय (१६) रायपुर, १. आर. श्रीनिवासन
(१५) जमशेदपुर, २ धीराजवरा (२३) आमवारी, ३ विड्डीचन्द
(१७) विल्हा, ४ लक्ष्मीनारायण (१६) भागलपुर, ५ कु. शकुन्तला
(१५) वरारीपुरा, ६ कुमारी आशा (१४) सिवान, ७ ज्ञानचन्द
(१२) व्यावर, ८ सुबोधशंकर (१६) टिटारा, ९ कु. कुमुदनी
(१५) बाह, १० गनेश (१६) रामपुर बाघलान, ११ प्रेमकुमार
(१३) कालका, १२ गोविन्दनारायण (१२) व्यावर, १३ राजकुमार
(१३) व्यावर, १४ अरविन्दकुमार (१२) अनिसाबाद, १५ मोहन
(१४) सिरौही, १६ कृष्णकुमार (११) रायपुर, १७ सुदर्शनचक्र
(१०) रायपुर, १८ किशोरनारायण (१३) कोठिया, १९ उमेशचन्द्र
(१६) जयपुर, २० जयमूर्ति (१४) मेहनाजपुर, २१ पांडुरंग
(१५) इंदौर, २२ मयूरचन्द्र (१७) जूनागढ़, २३ सुदेशकुमार
(१३) महु, २४ सन्तसिंह (२३) अजनी, २५ वलेन्द्रसिंह (१४)
कलकत्ता, २६ पदमचन्द्र (१२) अजमेर, २७ अनिल वल्ली (११)
मेरठ, २८ राजेन्द्रकुमार (१५) टीकरी, २९ श्यामप्रकाश (१६)
वस्ती, ३० राकेशकुमार (१३) कानपुर, ३१ आद्याप्रसाद (१६)
नैकिनिया, ३२ विनोदकुमार (१३) हावड़ा, ३३ बेचन (११)
मधुवनी, ३४ कैलाशचन्द्र (१२) सागर, ३५ रतनलाल (१६)
जोधपुर, ३६ वृजबिहारीलाल (१२) जोधपुर, ३७ दिनेशचन्द्र
(१५) जगदीशपुर, ३८ श्रिपतिराव (१६) डोंगरगढ़, ३९
संजीवकुमार (९) मेरठ, ४० मांगीलाल (१६) व्यावर, ४१
अनिलप्रकाश (१७) अलीगढ़, ४२ विभाकर (१३) रांची, ४३
पारसमल (१८) जावद, ४४ ललितकुमार (१०) पूना कैन्ट,
४५ कृष्णस्वरूप (१३) छिन्दवाड़ा, ४६ राधेलाल (१३) बुलन्दशहर,
४७ खजानचन्द्र (१४) अलमोड़ा, ४८ बलवन्तसिंह (११) गया,
४९ कु. रीना (१२) आगरा, ५० ब्रजेश्वरलाल (१८) सुपौल, ५१
केन्द्रनारायण (१४) डुमरिया, ५२ राधवेन्द्रकुमार (१२) इनई,
५३ बलवीर (२३) पटना, ५४ नन्दकिशोर (१५) जामई, ५५



विमलकुमार
(स. सं. ८६८६)



रणविजय सिंह
(स. सं. ९१३६)



अरुणकुमार
(स. सं. ९२१६)



महेशकुमार
(स. सं. ९२३१)



रमेशकुमार
(स. सं. ६४७६)



सुरेशचन्द्र
(स. सं. १०१६४)



शंकरलाल
(स. सं. १०१६८)



अक्षयकुमार
(स. सं. १०५०२)

दिसम्बर १९६३

कमल कुमारी (८) देसरी, ५६ निहोली, ५६ (७) कुशीमठ, ५६
हरिशकुमार (२३) रायपुर, ५८ प्रदीपकुमार (१४) मुरादाबाद,
५६ सत्यनारायण (१४) दरभंगा, ६० कु. रेनु (७) लुधियाना,
६१ अशोककुमार (१५) लुधियाना, ६२ पुष्करनारायण (२०)
लुधियाना, ६३ अखिलानन्द (१३) सौर बाजार, ६४ आनन्दमोहन
(१६) इलाहाबाद, ६५ भूपनारायण (१६) कानपुर, ६६ यासीन
(१७) मतलुपुर, ६७ कु. शीला, (१६) फैजाबाद, ६८ अमरचन्द्र
(२०) व्यावर, ६९ कु. उमा (१३) लश्कर, ७० सुखवीन्दरसिंह
(१६) लुधियाना, ७१ मदनमोहनप्रसाद (१५) गया, ७२ मोहनलाल
(१८) लखनऊ, ७३ वीरेन्द्रकुमार (१२) भोपाल गंज, ७४
चन्दनकुमार (१२) मशरक, ७५ एस. वैकट रामन (१७) जमशेदपुर,
७६ वैकुण्ठनाथ (१४) महाराजगंज, ७७ ओंकारसरन (१८)
रामनगर, ७८ कु. इन्दुमती (११) विदिशा, ७९ वकीलचन्द्र (१६)
बडौत, ८० चन्द्रशकुमार (१४) चन्दौसी, ८१ मेनालउद्दीन (१६)
चम्पानगर, ८२ अलानूर (१६) अटल, ८३ भागीरथ (१४)
पूर्णिया, ८४ घनश्यामदास (१६) गाडरवारा, ८५ वीरेन्द्रकुमार
(९) किशनपुर, ८६ सुशीलकुमार (१४) लखनऊ, ८७ सुरजीतलाल
(१७) रुद्रपुर, ८८ मुरलीधर (११) छिन्दवाड़ा, ८९ प्रकाशचन्द्र
(१२) पंडोल, ९० धर्मचन्द्र (१५) राय, ९१ कृष्णकुमार (१२)
रांची, ९२ हीरालाल (१६) हिन्दोली, ९३ बलवन्तसिंह (१४)
कानपुर, ९४ कु. निशा (१३) बड़वाह, ९५ अच्युतानन्द (१५)
दरियापुर नेवादा, ९६ अयोध्याप्रसाद (१५) किशनगंज, ९७
महेन्द्रसिंह (१७) शिवपुरी, ९८ लतीफ (१७) चित्तौड़गढ़, ९९
अर्जुनप्रसाद (१५) पटना, ७५०० सुधीरराव (१५) इन्दौर, १
विजयकुमार (१४) मुंगेर, २ विपिनचन्द्र (१३) गादी, ३
सुर्देशनप्रसाद (१६) लोहरदगा, ४ नेत्रंजन (१३) जामटोला, ५
अशोककुमार (१२) अलीगढ़, ६ विनयमोहन (१२) साहिबगंज,
७ रवीचन्द्र (१३) जबलपुर, ८ रामकुमार (१६) करमा,
९ रामरतन (१४) विदिशा, १० अजय (१६) लखनऊ, ११
कु. लीला (१५) रांची, १२ नुरअख्तर (१३) बैनी, १३
नरेशचन्द्र (१४) बागबहारा, १४ सुरेशकुमार (१३) इन्दौर, १५
सुनील (१४) भांसी, १६ जयप्रकाश (१४) धरहरा, १७ जगदीश
प्रसाद (१५) मिरजान हाट, १८ कु. शकुन्तला देवी (१२) आगरा,
१९ जयप्रकाश (१३) लोहरदगा, २० कुमारी आशा (१५)
बड़वाह, २१ शशिकान्त (१४) भरिया, २२ युगलकिशोर (१६)
पटना, २३ गोपालचन्द्र (१४) रांची, २४ गोलास मुर्तजा (१५)
रांची, २५ जयन्तकुमार (१६) रांची, २६ राजकुमार (१४)
आगरा, २७ आदित्यप्रकाश (१४) कानपुर, २८ रुद्रावभलकृष्ण
(१७) नागपुर, २९ सतीशकुमार (१५) अजमेर, ३० मोहनलाल
(१३) मुरादाबाद, ३१ प्रेमबहादुर (१५) डिगबोई, ३२ अरविन्द-
कुमार (१६) बिजनौर, ३३ मोहनलाल (१३) धनबाद, ३४
गोपालबिहारी (१६) शाहदरा दिल्ली, ३५ अजयकुमार (१४)
लहरिया सराय, ३६ कमलाकान्त (१५) कलकत्ता, ३७ अनन्तमोहन
(१२) सहरसा, ३८ जितेन्द्रनाथ (२०) भांसी, ३९ दिनेश (११)
उरई, ४० रुद्रावभल वैकटराव (२३) नागपुर, ४१ मशकूरआलम
(१३) बुलन्दशहर, ४२ भूपालसिंह (१४) पिथौरागढ़, ४३ पुरुषोत्तम
(१४) किशनगढ़ ४४ कन्हैयालाल (१६) किशनगढ़, ४५ दयाशंकर
(१६) फतेहपुर ४६ कु. सावित्रीदेवी (१२) फतेहपुर, ४७ गुरुनाम-
सिंह (१६) अनिसाबाद, ४८ सुरेश (१३) इन्द्रनगर।



धीरेन्द्रप्रसाद
(स. सं. १०८०६)



उमेशचन्द्र
(स. सं. १०८१८)



रामलाल
(स. सं. १०८२१)



आनन्दप्रकाश
(स. सं. १०८८६)



प्रथम पुरस्कार

द्वितीय पुरस्कार

तृतीय पुरस्कार

२५ रु. की पुस्तकें

२० रु. की पुस्तकें

१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ दिसम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाके में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाके पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४७ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ दिसम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४७ के प्रश्न

- नेत्र-परीक्षक किस यंत्र द्वारा आँख की पुतली पर प्रकाश-किरण फेंकता है ?
- उस टेप रिकार्डर को क्या कहते हैं जिस पर स्वर के साथ-साथ दृश्यांकन भी सुरक्षित रखा जा सकता है ?
- फोटो-निगेटिव की धुलाई में काम आने वाले घोल हाइपो तथा सोडियम हाइपो सल्फाइड में क्या सम्बन्ध है ?
- हर्टिजियन तरंगों (Hertzian waves) का सिद्धान्त क्या है ? इन्हें यह नाम क्यों दिया गया है ?
- विश्व में सबसे ऊँचा और वर्तमान सक्रिय ज्वालामुखी कहाँ है ? उसका नाम तथा ऊँचाई भी बताओ।
- अवस्था बदलने के साथ-साथ अँगुलियों की रेखाएँ भी बदलती रहती हैं इस कथन के सत्या-सत्य की विवेचना कीजिए।
- प्रयोग द्वारा सिद्ध किये जाने से पूर्व ही विद्युतचुम्बकीय तरंगों की उपस्थिति किस वैज्ञानिक ने कब सिद्ध की थी ?
- नीयोप्रेन (Neoprene) क्या है ? किस उपयोग में आता है ?
- किस वैज्ञानिक ने अपने पुत्र के साथ विज्ञान में किस कार्य के लिए, कब नोबल पुरस्कार प्राप्त किया था ?
- आजकल कुछेक पोस्टरों (लिफ्टन जंसे) के लाल, पीले, हरे आदि रंगों के अक्षर विशेष चमकीले दिखते हैं। वह चमक किस प्रकार प्राप्त की जाती है ?

प्रतियोगिता संख्या ४५ के प्रश्नों के उत्तर

- प्रो. आवोगाड्रो (Avogadro) ने।
- सन के पौधे से रस्सियाँ और भाँग, दोनों प्राप्त किये जाते हैं।
- दाँतों की संख्या तथा संरचना देखने से।
- ग्रेटे रबर ने, १९३७ में।
- पार्श्व भाग पर।
- पृथ्वी के दोनों ध्रुवों को जोड़ते हुए एक वृत्त खींचा गया। उसे मिरिडियन (meridian) कहा गया। उसके चतुर्थ भाग को चतुर्थांश अर्थात् क्वाड्रेंट (quadrant) कहा गया। उस चतुर्थांश का एक करोड़वाँ भाग एक मीटर का सही माप माना गया है।
- एलेक्जेण्ड्रिया (मिस्र) स्थित फेरोस (Pharos) का प्रकाशस्तम्भ ; ४०० फुट ऊँचा।
- आकाशीय विद्युत वायुमण्डल से नाइट्रोजन की विपुल मात्रा विच्छेदित करके खेतों पर बरसा देती है। वही खेती का प्राण-तत्त्व है।
- Coconut crab नारियल के पेड़ पर बसेरा करते हैं और अधिकतर श्रीलंका के निकट पाये जाते हैं।
- जहाज के दिक्सूची में दोलन के बावजूद भी सही लेवल ज्ञात करने के लिए डायल पर खींची जाने वाली काली रेखा को लबर लाइन कहते हैं।

आपना हेक्टोग्राफ बनाइए

अरुणकुमार जाजू

यदि आप चाहते हैं कि आपके पास एक ऐसा यंत्र हो जिससे आप चाहे जितनी प्रतिलिपियाँ बना लें, तो हेक्टोग्राफ के द्वारा एक मीटर की आप ४०-५० प्रतियाँ निकाल लेंगे।

आवश्यक वस्तुएँ

बिस्कुट का खाली टिन, (एक ट्रे के रूप में) उसी की साइज का चिकना आर्ट पेपर; प्रतिलिपियों के लिए सादा कागज; १ औंस जिलेटिन; १ औंस brown demerara sugar; ६ औंस ग्लिसरीन; २ १/२ औंस बेरियम सल्फेट।

अब शुरू कीजिए

जिलेटिन के बड़े टुकड़ों को छोटे कर लीजिए। उन्हें किसी बर्तन में ३ औंस पानी लेकर उसमें २४ घण्टे के लिए डाल दीजिए। दूसरे दिन उन्हें अच्छी तरह घुलाकर उसमें ग्लिसरीन डाल दीजिए। तेज आँच पर उसे पकाइए और लकड़ी की डण्डी से चलाते भी रहिए। जब घोल काफी गाढ़ा हो जाए तो उसमें लायी हुई शुगर डाल दीजिए।

बेरियम सल्फेट को १ औंस पानी में अलग किसी बर्तन में भली प्रकार घोल लीजिए। उस घोल को गर्म हो रहे मिश्रण में मिला दीजिए और समूचे पदार्थ को लेई जैसा बना लीजिए। टिन की ट्रे को सफाई से धो लीजिए ताकि चिकनाई आदि न रहने पाए। अब उपर्युक्त लेई जैसे मिश्रण को टिन में इकसार फैलकर पड़ा रहने दीजिए। दूसरे दिन वह रबर की सपाट सतह के रूप में जम जाएगा। यदि नर्म

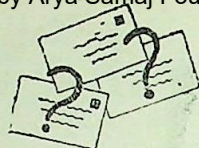
हो तो और पड़ा रहने दीजिए। यह आपका हेक्टोग्राफ तैयार हो गया।

स्टेशनरी की दूकान से हेक्टोग्राफ-स्याही ले आइए। यदि वह स्याही भी बनाना चाहें तो १/४ औंस मेथिल वायलेट एनिलीन तथा १/४ औंस स्पिट को १/४ औंस पानी में मिलाकर तब तक हिलाइए जब तक एनिलीन घुल न जाए। वस, आपकी स्याही भी तैयार हो गयी। इस स्याही से ही आर्ट पेपर की शीट पर जो मीटर लिखना हो, लिख लीजिए। लिखी हुई ओर कागज को हेक्टोग्राफ पर तब बिछाइए जब स्याही सूख जाए। शीट को इस सफाई से बिछाना होगा कि उसमें कहीं भी सिलवट न रह जाए। १०-१५ मिनट उसी प्रकार चिपका रहने दीजिए। फिर उसे धीरे से उतार लीजिए। हेक्टोग्राफ पर यह आपकी मास्टर कापी तैयार हो गयी जो प्रतिलिपियाँ देगी।

जिन कागजों पर कापियाँ छापनी हों, उन्हें एक-एक करके हेक्टोग्राफ पर रखकर सावधानी से हलके-हलके दबाते चलिए और उठाते रहिए। इस प्रकार ४०-५० कागज छापकर स्याही फीकी पड़ जाएगी और आगे नहीं छाप सकेगी।

इसे पुनः काम में लेने के लिए आठ भाग पानी में एक भाग हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिला कर उससे हेक्टोग्राफ की सतह साफ कर लीजिए और अन्त में साफ पानी से भी धो लीजिए। पुनः सूखकर तैयार होने पर नये सिरे से आपकी सेवा को प्रस्तुत हो जाएगा।

आपके प्रश्न



मदनमोहन श्रीवास्तव (१००३५) बलरासपुर

प्रश्न—वोल्टमीटर तथा वोल्तामीटर में क्या अन्तर है ?

उत्तर—वोल्टेज अर्थात् विद्युतधारा मापने के लिए वोल्टमीटर का उपयोग होता है तथा द्रवों के विद्युत्विश्लेषण में प्रयुक्त विद्युत की मात्रा मापने के लिए वोल्तामीटर का ।

मातादीन मिश्र (१०८११) मच्छटो (गाजीपुर)

प्रश्न— BaO_2 को बेरियम पराक्साइड कहते हैं तो MnO_2 को मँगनीज डाइआक्साइड क्यों कहते हैं ?

उत्तर—संयोजकता (valency) में अन्तर होने के कारण । BaO_2 प्राप्त करने के लिए तो बेरियम आक्साइड को वायु में उच्च ताप पर तप्त किया जाता है, जबकि मँगनीज डाइआक्साइड प्राकृतिक अयस्क के रूप में प्राप्त हो जाता है ।

राजेशचन्द्र (३१५६) अलमोड़ा

प्रश्न—ग्लाइडर का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वायु की गति और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के आधार पर ऐसे यान द्वारा वायु में उतराना जिसमें संचालक इंजन की सहायता न ली जाए । यह एक प्रिय खेल भी है ।

सुरेशकुमार श्रीवास्तव (६०८१) जौरा

प्रश्न—विज्ञान में नोबल पुरस्कार सर्वप्रथम किन्हें दिया गया था ?

उत्तर—१९०१ में (१) भौतिकी में के. रान्जन को एक्स-किरणों के लिए, (२) रसायन में रासायनिक गतिविज्ञान तथा रसाकर्षण के विषयों में शोधकार्य के लिए जैकब्स वान हाफ को और (३) औषधि-विज्ञान में ए. वेर्हार्ग को डिप्थीरिया में सीरम के प्रयोगों पर शोधकार्य के लिए ।

प्रदीपकुमार सिन्हा (६८७१) मुंगेर

प्रश्न—अब तक निम्नतम ताप किस ग्रंथ तक प्राप्त किया जा सका है ?

उत्तर— $-273^\circ C$ तक ।

प्रश्न—यदि आकाश दृष्ट पड़े तो ?

उत्तर—आकाश केवल नाम है, वस्तु कुछ है ही नहीं जो दृष्ट पड़े । पृथ्वी को चारों ओर से लपेटे हुए वायुमण्डल में सूर्य-रश्मियों के परावर्तन से जो भिन्न-भिन्न रंग दिखते हैं वे ही बहुरंगी आकाश का आभास कराते हैं । इन्हीं में जलपूरित बादल मँडराते रहते हैं । अतः ऐसी कुशंका निर्मूल है ।

कु. कुन्तल राठौर (१०१६१) आगरा

प्रश्न—सुना है कि एक पेड़ ऐसा है जिससे हाथीदाँत मिलता है, यदि यह सत्य है तो वह पेड़ कहाँ है ?

उत्तर—एक नहीं, अनेक पेड़ हैं । पश्चिमी तथा मध्य अमरीका में phytelephas और attalea जाति के पाम जैसे वृक्ष पाये जाते हैं । इनमें मानव-सिर के जैसे बड़े फल लगते हैं जिन्हें सुखाकर उनसे बटन आदि बनाये जाते हैं । वे बटन तथा अन्य वस्तुएँ ठीक हाथीदाँत जैसी लगती हैं ।

रघुनार्थसिंह (१०६१६) जमशेदपुर

प्रश्न—मोटरकार के इंजन में कार्ब्यूरेटर की क्या उपयोगिता है ?

उत्तर—पेट्रोल तथा वायु का ज्वलनशील गैस के रूप में मिश्रण करके इंजन के सिलिण्डर में ज्वलन के लिए भेजता है ।

शरदचन्द्र (८५२३) बडाली

प्रश्न—मानव शरीर के बाल जीवित हैं क्या ? इनमें क्या पदार्थ रहता है ?

उत्तर—जीवित कोशाएँ, जीवद्रव्य, रोम-मूल आदि उपांगों से सम्पन्न, बाल हमारे शरीर का जीवित अंग ही हैं । बाहर दिखने वाले बाल, बड़े हुए नाखून जैसे होते हैं जिन्हें बार-बार काटते रहने से कोई कष्ट नहीं होता ।

सुरजीतसिंह (३७१४) चित्तौड़गढ़

प्रश्न—दवा में दी जाने वाली केप्सूल किस वस्तु की बनी होती है जो हम बेखटके गले के नीचे उतार जाते हैं ?

उत्तर—जिलेटिनयुक्त अहानिकर रासायनिक पदार्थ की बनी होती है जो शरीर में घुल जाती है और स्वयं कोई प्रभाव नहीं डालती ।

विज्ञान-लोक

प्रश्न—वायुमण्डल का प्रत्येक वस्तु पर इतना दबाव पड़ने पर भी हमारा शरीर पिचक क्यों नहीं जाता ?

उत्तर—शरीर के अन्दर यदि वैकुअम कर दिया जाए तो अवश्य पिचक जाएगा ।

रवीन्द्रनारायण (१५७१) सिहोर (भोपाल)

प्रश्न—आँसू क्यों निकलते हैं ?

उत्तर—शोक अथवा हर्षविश के कारण अश्रु-ग्रन्थियाँ फूल कर सक्रिय हो जाती हैं ।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२६२) आगरा

प्रश्न—वह कौनसा जन्तु है जो नेत्रहीन होते हुए भी सबसे ऊँचा घर बना लेता है ?

उत्तर—दीमक ४० फुट तक ऊँची बाँवी बना लेती है ।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२६१) ग्वालियर

प्रश्न—किसी बिल्डिंग में आग लगने पर उसका ताप अनुमानतः कितना पहुँचता है ?

उत्तर—तीन मिनट से पूर्व ही 1400°C तक पहुँच जाता है, यह प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा चुका है ।

प्रश्न—डॉट-फटकार से मनुष्य का मानसिक संतुलन क्यों डगमगा जाता है ?

उत्तर—अपराधी व्यक्ति का संतुलन इतना नहीं डगमगाता जितना निरपराध ही फटकार सुनने पर । इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अधिकांश तो अफसर की योग्यता पर निर्भर करता है ।

दिनेशकुमार अग्रवाल (८८६७) उदयपुर

प्रश्न—क्रियाशीलता की दृष्टि से नाइट्रोजन एक सुस्त गैस है—टिप्पणी दीजिए ।

उत्तर—नाइट्रोजन स्वयं निष्क्रिय है और वायु-मण्डल का ७८% भाग घेरे हुए है । इसकी निष्क्रियता ही इसका महत्त्व है क्योंकि उसी के द्वारा यह अन्यान्य गैसों की तीव्रता को संतुलित किये रहती है, अन्यथा आक्सीजन जैसी प्राणवायु भी इसके अभाव में तीव्र होने पर घातक ही सिद्ध होती । हाँ, इसके यौगिक (नाइट्रेट आदि) तीव्रतः क्रियाशील हैं जो अधिकतर उर्वरकों में काम आते हैं ।

दुर्लभ आराम और शहत के लिये

जोशीना

जोशीना प्रसिद्ध यूनानी नुस्खे 'जोशान्दा' का एक्स्ट्रेक्ट है । यह जुकाम के सभी लक्षणों को तुरन्त दूर करती है, बन्द नाक को खोलती है और आराम पहुँचाती है ।

जोशीना की एक शीशी सदा अपने पास रखिये ।

हमदर्द देहली • कानपुर • पटना



विद्युतोत्पादन में क्रान्ति—

फ्यूएल सेल

080150

भुवनेश्वर गुप्ता (स. सं. ६१४)

सामान्यतः विद्युतोत्पादन व्यावसायिक प्रयोजन के लिए जनरेटरों द्वारा होता है, जिन्हें या तो पानी की तीव्र धारा अथवा वाष्प की शक्ति से चलाया जाता है। इन साधनों से उत्पादित बिजली को दूर-दूर तक भेजने में भारी खम्भे लगाने और तारों का जाल फैलाने में अत्यधिक खर्च तथा परिश्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसी बिजली को टर्कों, कारों आदि चलाने में भी काम में नहीं लिया जा सकता। इन कठिनाइयों का एकमात्र हल फ्यूएल सेल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सेलों के बनाने में रसायन को विद्युत शक्ति में परिवर्तित किया जाता है।

१८४२ में आविष्कृत, १९५५ में परिष्कृत

फ्यूएल सेल का आविष्कार तो इंग्लैण्ड के सर विलियम ग्राव ने १८४२ में कर लिया था किन्तु सौ वर्षों से अधिक काल तक इस ओर किसी का ध्यान आकर्षित ही नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि उस बीच के समय में वाष्प इंजन, अन्तर्दाही इंजन और परमाणु-शक्ति जैसे महत्त्वपूर्ण आविष्कारों का प्रचलन तथा विकास हो रहा था। अतः एक शताब्दी भर फ्यूएल सेल का आविष्कार उपेक्षित अवस्था में पड़ा रहा।

इधर अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय

के व्यवसाय-शिक्षा विभाग ने इस ओर अपना ध्यान दिया, इसका पुनः अध्ययन किया और इसके महत्त्व को पहचाना। उन्होंने अनुमान लगाया कि टर्कों, कारों, बुलडोजरों, ट्रैक्टरों तथा छोटी वस्तियों के लिए बिजलीघर के रूप में इन सेलों का उपयोग क्रान्तिकारी सिद्ध होगा। हुआ भी ऐसा ही। १९६२ के अन्त में अमरीका के जनरल इलेक्ट्रिक कारपोरेशन ने सेलों को बनाने का कार्य मैसाचूसेट्स में प्रारम्भ किया। यह प्रयास प्रारम्भिक है तो भी इन सेलों द्वारा प्रति वर्ग फुट ४० वाट बिजली प्राप्त की जा सकती है।

रचना-विधि

ये सेल अनेक प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के सेल में दो प्लेटें होती हैं जिनमें से एक के नीचे हाइड्रोजन तथा दूसरी के नीचे आक्सीजन का उपयोग किया जाता है। हाइड्रोजन अपनी प्लेट को इलेक्ट्रॉन दे देती है जो तार के रास्ते दूसरी प्लेट तक पहुँचते हैं। साथ ही, इलेक्ट्रॉन रहित हाइड्रोजन के अणु भी एक मिश्रण में से गुजरकर दूसरी प्लेट के आक्सीजन से संयुक्त हो जाते हैं और पानी बनाते हैं। तारों को जोड़कर विद्युतधारा प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रकार के सेलों में भी विभिन्नता होती है। उनमें भिन्न-भिन्न गैसों प्रयुक्त होती

क्रांतिक गैसों, अल्कोहल तथा प्रोपेन आदि तैयार प्रयुक्त की जाती हैं।

फ्यूएल सेल के लिए सस्ता कैटेलिस्ट

मिलबोकी के एक वैज्ञानिक ने ऐसे विकसित और सस्ते यन्त्र के निर्माण की सूचना दी है, जो फ्यूएल सेल की रासायनिक ऊर्जा को सीधे न्यून वोल्टेज की विद्युतधारा में परिवर्तित कर सकता है।

ये फ्यूएल सेल भू-उपग्रहों, हलके वजन के यन्त्रों, स्वचालित मौसम-अनुसन्धान केन्द्रों तथा अनेक अन्य कार्यों में उपयोग की दृष्टि से अमित सम्भावनाओं से युक्त हैं।

कार्य-विधि और विशेषताएँ

इन सेलों में न तो विद्युत शक्ति को संचित करने की आवश्यकता पड़ती है, न प्रयोग-क्षेत्र में अवस्था में इनकी क्षमता घटती है। सामान्य बैटरियों की अपेक्षा इनके द्वारा अधिक समय तक लगातार बिजली प्राप्त की जा सकती है।

इन्हें कार्य करने के लिए विशेष ताप की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इनका यंत्र गतिमान रहता है जिसके कारण न उसमें कम्पन होता है, न कोई शब्द। भार में अत्यन्त हलके होने का इसका विशेष गुण है जिसके प्रति आकृष्ट होकर अमरीका की राष्ट्रीय उड़डयन तथा अन्तरिक्ष प्रशासन संस्था (NASA) अन्तरिक्ष-यानों के लिए इनके वृहत् उत्पादन में प्रयत्नशील है। अन्तरिक्ष ही क्यों, पृथ्वी-विक्षिणा जैसी लम्बी, लगातार उड़ानों में इन सेलों का उपयोग इसलिए सर्वोत्तम रहेगा कि इनमें हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोजन पीने योग्य पानी प्राप्त होता रहेगा और यों ही भण्डार का बोझ यान में रखने की भ्रंशट बचा जा सकेगा। हलके, ठोस और दीर्घकाल तक चलने वाले फ्यूएल सेल अन्य सेलों से इस प्रकार श्रेष्ठतर हैं कि वे सामान्य सेल विकिरण

सेल रासायनिक बैटरियों से इसलिए श्रेष्ठतर हैं कि बैटरियों में संग्रहीत रासायनिक ऊर्जा बहुत ही थोड़े समय में समाप्त हो जाती है।

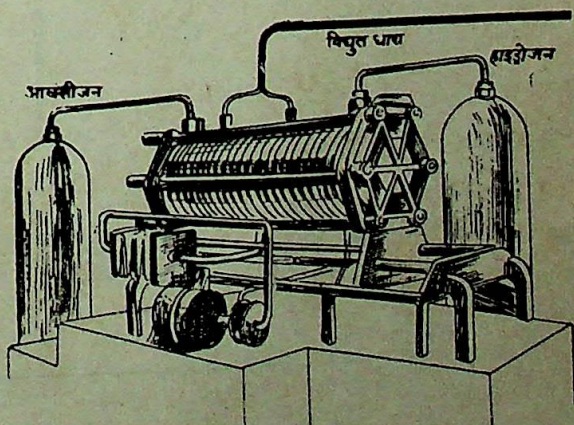
अन्य उपयोग

आजकल ट्रकों, बसों तथा कारों में पेट्रोल और डीजल आदि का जो प्रयोग होता है उनसे जहरीला धुआँ फैलकर नगर की वायु दूषित करता रहता है। साथ ही, थोड़ा रुकने के लिए भी इंजन को चालू रखना पड़ता है; अन्यथा वन्द करके पुनः चलाने पर बैटरी अधिक भार अनुभव करती है और कमजोर पड़ जाती है। फ्यूएल सेल इन सब दोषों से सर्वथा मुक्त हैं।

अनेक अमरीकी उद्योगों की ओर से शक्तिके स्रोत के रूप में इसके विषय में गहन अनुसंधान हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, एलिस चामर्स ने ट्रैक्टरों और ट्रकों को चलाने के लिए प्रयोगात्मक फ्यूएल सेल प्रणालियाँ विकसित की हैं।

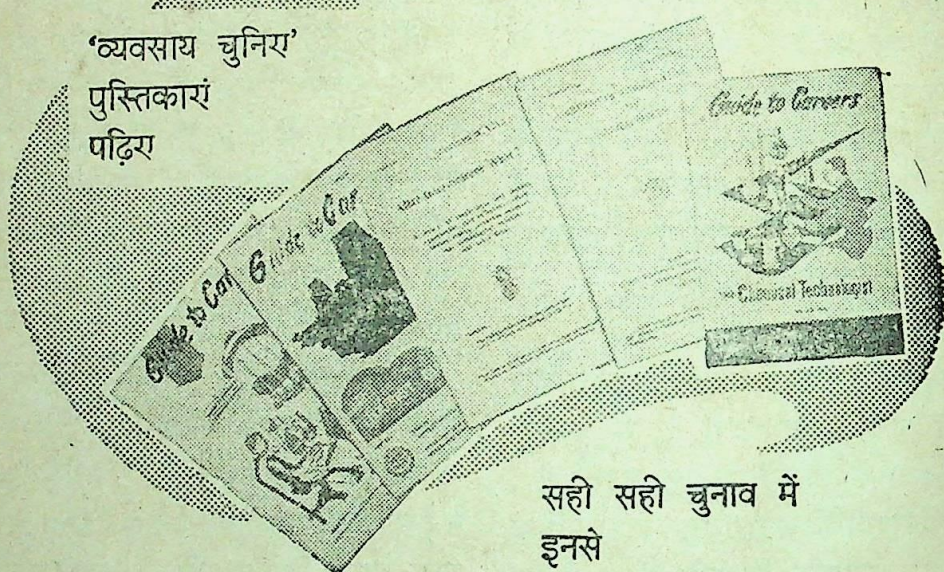
अभी तक उपग्रहों के भीतरी पुर्जों और यन्त्रों को चलाने के लिए रासायनिक बैटरियों और सौर सेलों से बिजली प्राप्त की जाती रही है। अमरीका के दो भू-उपग्रहों में रेडियो चलाने के लिए बिजली प्राप्त करने के हेतु रेडियो आइसोटोप जैनरेटरों का प्रयोग किया जा चुका है।

हाइड्रोजन-आक्सीजन द्वारा विद्युत् उत्पादन



कौनसी जीविका आपके लिए सबसे उपयुक्त है?

‘व्यवसाय चुनिए’
पुस्तिकाएं
पढ़िए



सही सही चुनाव में
इनसे
मदद मिलेगी

इनकी प्रतियां
(हिन्दी या अंग्रेज़ी में)
रोजगार
दफ्तर
अथवा
सरकारी
पुस्तक विक्रेता से
खरीदिये

कृषि अधिकारी
सखीतरी
फारेस्ट रेंजर
विमान इंजीनियर
खनन इंजीनियर
रासायनिक उद्योगविद
भू-वैज्ञानिक
धातु वैज्ञानिक
ट्रिस्ट गाइड
एयर पाइलट
ब्रिज़ार निर्माता
मिलर (मेटल)
यातानुकूलन तथा प्रशीतन यंत्रिक
मशीनमेन (प्रिंटिंग)
चिकित्सक
दंत का डाक्टर
नर्स
समाज शिक्षा आयोजक
व्यायाम शिक्षक
शिल्प शिक्षक
लेखाकार (एकाउण्टेंट)
जीवन बीमा एजेंट
सांख्यिकी विद
कृषि और सम्वद्ध क्षेत्रों में व्यावसायिक अवसर
आपटर इन्टर साईस हाट ?

... और अन्य



रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय
भारत सरकार

DA 62/580

जगदीश मेहरा द्वारा एज्युकेशनल प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित

[मुखपृष्ठ बजवासी फाइन आर्ट और प्रसेट वर्क में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

